मसीही आध्यात्मिक शिक्षा माला क्रमांक ३५ : सामान्य टीका ग्रन्थ ७
संपादक : पा. डॉ. सी. डबल्यु. डेविड, एम. ए., डी. डी.

नया नियम टीका

(मत्ती से प्रेरितों के काम)

लेखक
पा. एम. आर. रॉबिन्सन, बी. ए., बी. डी.
पा. एस. सी. दिल्लु, एम. ए., बी. डी.
पा. डॉ. सी. डबल्यु. डेविड, एम. ए., डी. डी.

प्रकाशक :

९७ सिविल लाइंस

बरेली, २४३००१, उ. प्र.

प्रथम मुद्रण

Masihi Adhyatmik Shiksha Mala No. 35
General Commentary Vol. VII

Editor : Rev. Dr. C. W. David, M. A., D. D.

NAYA NIYAM TIKA

(Matti se Preriton ke Kam)

New Testament Commentary (Matthew to Acts)

by

Rev. M. R. Robinson, B. A., B. D.
Rev, S. C. Dillu, M. A., B. D.
Rev. Dr. C. W. David M. A., D. D.

Grateful acknowledgement is made of a grant from the Theological Education Fund (London) of the Commission on World Mission and Evangelism of the World Council of Churches, for the publication of this book.

Distributors :

1. ISPCK-LPH Distributors
   P. O. Box 1585, Kashmere gate, Delhi 110006
2. Secretary, North India Christian Tract & Book Society
   18 Clive Road, Allahabad U. P.

Printers : The Educational Press, City Station Road, Agra-3 (U.P.)

1100 Copies] [*Price Rs. 15.00*

विषय सूची

विषय	पृष्ठ
विषय सूची	(iii)
लेखक परिचय	(iv)
संपादक का वक्तव्य	(vi)
ग्रंथ में प्रयुक्त संक्षिप्त रूप	(viii)
पाठकों से निवेदन	(x)
लेखक : पा. एम. आर रॉबिन्सन	
अध्याय १ मत्ती रचित सुसमाचार	१
अध्याय २ मरकुस रचित सुसमाचार	१०४
अध्याय ३ लूका रचित सुसमाचार	२१८
अध्याय ४ यूहन्ना रचित सुसमाचार	३१२
लेखक : पा. एस. सी. दिल्लु और पा. डॉ. सी. डबल्यु. डेविड	
अध्याय ५ प्रेरितों के काम	३९१
संकलनकर्ता : पा. डॉ. सी. डबल्यु. डेविड	
अध्याय ६ सहदर्शी सुसमाचारों में समांतर अंशों की अनुक्रमणिका	४७०

लेखक परिचय

१. पादरी मेक्सवेल आर. रॉबिन्सन, बी० ए०, बी० डी०

भूतपूर्व प्रोफेसर, नार्थ इंडिया थियॉलोजिकल कालेज, बरेली, उ. प्र.

आपका जन्म और बी. ए. तक शिक्षण न्यूजीलेंड में हुआ। बी.डी. की उपाधि आपने आस्ट्रेलिया के मेलबोर्न कालेज आफ डिविनिटी से प्राप्त की। १९३७ में आप मिशनरी होकर भारत आए। १९४८ तक पंजाब में सुसमाचार-प्रचार कार्य किया। १९४८-५१ बरेली सेमिनरी में प्रोफेसर, १९५१-१९६५ सहारनपुर धर्मविज्ञान महाविद्यालय में प्रोफेसर, १९६३ से १९६५ तक सहारनपुर धर्मविज्ञान महाविद्यालय में प्रिंसिपल और १९६५ से १९७१ उत्तर भारत धर्मविज्ञान महाविद्यालय में प्रोफेसर रहे। अब आप हिन्दी धर्मविज्ञान साहित्य निर्माण में ही योगदान दे रहे हैं। आप मिशनरी लेंग्वेज स्कूल देहरादून में भी सहायता कर रहे हैं।

आप अंग्रेजी, यूनानी, उर्दू और हिन्दी भाषाओं के अच्छे ज्ञाता हैं। आपने अनेक पुस्तकें लिखी हैं। फिलिप्पियों और गलतियों की पत्रियों पर उर्दू भाषा में टीका, पास्तरीय पत्रों पर अंग्रजी भाषा में टीका, हिन्दी आध्यात्मिक शिक्षामाला के अंतर्गत प्रकाशित 'नया नियम की भूमिका' में बारह पुस्तकों पर भूमिकाएं, यूहन्ना रचित सुसमाचार पर विस्तृत टीका लिखी है तथा नया नियम टीका (रोमियों से प्रकाशित वाक्य) का अधिकांश अंश लिखा है। आप नया नियम के तथा ख्रिस्तीय शिक्षा विषय के उच्चकोटि के विद्वान हैं। आप हिन्दी बार्कले दैनिक अध्ययन माला के सह सम्पादक हैं। हिन्दी थियॉलोजिकल लिटरेचर कमेटी के सेक्रेटरी-ट्रेजरर के पद से आपने हिन्दी धर्मविज्ञान साहित्य के प्रकाशन में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

२. पादरी एस. सी. दिल्लु, एम० ए०, बी० डी०, एम० टीएच०

प्रोफेसर, नार्थ इंडिया थियॉलोजिकल कालेज, बरेली, उ. प्र.

श्री दिल्लु ने १९४९ में प्रथम श्रेणी में हाईस्कूल परीक्षा पास की। उसी वर्ष आपने जी. टीएच. एवं बी. डी. प्रशिक्षण के लिए लेनर्ड थियॉलोजिकल कॉलेज, जबलपुर में प्रवेश प्राप्त किया। आपने सन् ५३ में जी. टीएच. और १९५५ में बी. डी. की उपाधियां प्राप्त की। सन् १९५८ में कलकत्ता विश्वविद्यालय से नियमित छात्र होकर दर्शनशास्त्र में एम. ए. किया। १९७३ में नया नियम क्षेत्र में एम. टीएच. की उपाधि प्राप्त की। २२ वर्ष की आयु में ही आप कानपुर में दो मेथोडिस्ट मंडलियों के पास्तर हो गए। १९५३ से १९५६ और १९६० से १९६३ तक आपने कानपुर में और बिहार प्रान्त के ग्राम क्षेत्रों में प्रीचर, पास्तर और डिस्ट्रिक्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट के रूप में सेवा की। सन् १९६३ में बरेली यूनियन सेमिनरी के बोर्ड ने आपको प्राध्यापक होने के लिए आमंत्रित किया। आप १९६३ में प्रोफेसर हो गए। सन् १९६५ में बरेली, इन्दौर

और सहारनपुर धर्मविज्ञान सेमिनरियों के एकीकरण से नार्थ इंडिया थियॉलोजिकल कॉलेज बना। श्री दिल्लु इस कॉलेज में आज भी प्रोफेसर हैं। साथ ही १९७० से १९७२ तक आप कॉलेज के ट्रेजरर भी रहे।

आपका यूनानी, अंग्रेजी और हिन्दी भाषाओं पर अच्छा अधिकार है। भोजपुरी के आप विद्वान हैं। संस्कृत भी अच्छी तरह जानते हैं। मसीही साहित्य के क्षेत्र में विभिन्न प्रकार से आप सेवा कर रहे हैं। आपकी मसीही कविताएं तथा धर्मविज्ञान विषयक लेख मसीही पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। १९५९-६० में आप लखनऊ पब्लिशिंग हाउस में हिन्दी लिटरेचर सेक्रेटरी रहे। वहां आपने अनेक मसीही नाटकों का अनुवाद किया और इंडिया संडे स्कूल यूनियन के श्रेणीबद्ध पाठ्यक्रम की प्रथम एवं द्वितीय मालाओं का सम्पादन किया। आपने 'कम्यूनिज्म और सोशल रिवोल्यूशन इन इंडिया' पुस्तक का अनुवाद किया। नया नियम के कुछ अंशों का अनुवाद आप यूनानी भाषा से भोजपुरी में कर रहे हैं। मसीही अध्यात्मिक शिक्षामाला के अंतर्गत प्रकाशित पुस्तक 'नया नियम की भूमिका' में आपने 'प्रेरितों के काम' पर भूमिका लिखी है। आपने नया नियम टीका (रोमियों से प्रकाशित वाक्य) में प्रकाशित वाक्य पर टीका लिखी है। आप उच्च कोटि के अध्येता, प्राध्यापक और लेखक हैं।

३. पादरी डॉ. सी. डबल्यु. डेविड, एम० ए०, डी० डी०

सम्पादक, हिन्दी आध्यात्मिक शिक्षामाला; भूतपूर्व प्रिन्सिपल, इन्दौर क्रिश्चियन कालेज।

आपने ३८ वर्ष इन्दौर क्रिश्चियन कालेज में अध्यापन कार्य किया। १९२८ से १९४८ तक आप अंग्रेजी विषय के प्राध्यापक रहे। १९३७ से कालेज के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष रहे। १९५९ से १९६६ तक उसी कालेज के प्रिंसिपल रहे। विक्रम और इन्दौर विश्वविद्यालयों की आर्ट्स फेकल्टी के डीन रहे। १९६८ में आप को रिटायर होना था। परंतु हिन्दी थियॉलोजिकल लिटरेचर कमेटी के आमंत्रण पर आपने १९६६ में मसीही आध्यात्मिक शिक्षा माला के सम्पादक का दायित्व ग्रहण किया। आप अभी भी विक्रम और इन्दौर विश्वविद्यालयों में हिन्दी विषय में पी. एच. डी. के शोध कार्य के लिये निर्देशक हैं। डी. डी. की उपाधि आपको पाइन हिल डिविनिटी हॉल, हेली-फेक्स, केनेडा ने प्रदान की और मालवा चर्च कौंसिल ने पादरी बना दिया।

आप कलीसिया में, धर्मविज्ञान शिक्षण में, बाइबल के नये अनुवाद के क्षेत्र में योगदान दे रहे हैं। आपने मसीही नाटक लिखे हैं। 'धर्मप्रमाण शास्त्र और वर्तमान भारत' पुस्तक लिखी है। कई पुस्तकों के अनुवाद किए हैं। कोई ३० पुस्तकों का सम्पादन किया है। आप और श्री एम. आर. रॉबिन्सन हिन्दी बार्कले दैनिक अध्ययन माला के सम्पादक हैं। अपनी ही कलम से अपने लिए लिखना अच्छा नहीं जंचता।

सम्पादक का वक्तव्य

मसीही आध्यात्मिक शिक्षा माला के अन्तर्गत अन्य धर्मविज्ञानिक पुस्तकों के साथ एक विशेष ग्रंथ माला हम प्रकाशित कर रहे हैं। उसको हमने सामान्य टीका ग्रंथ-माला की संज्ञा दी है। इस **सामान्य टीका ग्रंथमाला** में पूर्ण बाइबल पर आठ ग्रंथ होंगे। उन ग्रंथों के शीर्षक निम्नानुसार हैं :

१. पुराना नियम की भूमिका २. इस्राएली लोगों का इतिहास ३. पुराना नियम टीका (उत्पत्ति से एस्तेर) ४. पुराना नियम टीका (अय्यूब से मलाकी) ५. नया नियम की पृष्ठभूमि ६. नया नियम की भूमिका ७. नया नियम टीका (मत्ती से प्रेरितों के काम) ८. नया नियम टीका (रोमियों से प्रकाशित वाक्य)। आकार की वृद्धि के कारण हम ग्रंथ संख्या चार दो भागों में प्रकाशित कर रहे हैं : अय्यूब से यशायाह पहला भाग, और यिर्मयाह से मलाकी दूसरा भाग।

इनमें से ग्रंथ १, २, ५, ६ और ८ प्रकाशित हो चुके हैं। यह ७ वां ग्रंथ है। शीघ्र ही ग्रंथ संख्या ४ के भाग १ और २ भी प्रकाशित हो रहे हैं। अंग्रेजी भाषा में इस प्रकार का बाइबल टीका साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। पीक कमेन्टरी ११२६ पृष्ठों का डबल क्राउन आकार का एक ग्रंथ है। इंटरप्रीटर बाइबल के १२ ग्रंथ हैं। इंटरनेशनल क्रिटिकल कमेन्टरी भी कई ग्रंथों में है। अन्य कई संक्षिप्त टीका मालाएं हैं। उनकी तुलना में हमारा प्रयास नगण्य है। परंतु यह प्रयास भी इसलिए सम्भव हो सका है कि इस समय प्रकाशन के लिए वर्ल्ड कौंसिल ऑफ चर्चेज़ के थियॉलोजिकल एजुकेशन फंड से इस कार्य के लिए धनराशि उपलब्ध है और आज के हिन्दी धर्मविज्ञान महाविद्यालयों में विद्वान लेखक।

इस टीका के विद्वान लेखकों का परिचय अन्यत्र दिया जा रहा है। इन लेखकों ने नया नियम की भूमिका में विभिन्न पुस्तकों पर भूमिकाएं लिखी थीं। अब उन्होंने पूर्ण समर्पण एवं मनोयोग के साथ इस टीका को लिखा है। लेखक अपनी अयोग्यता का अनुभव करते हैं। बड़ी विनम्रता एवं संकोच के साथ उन्होंने टीका लिखना स्वीकार किया। वे मानते हैं कि उनका ज्ञान प्रभु की कृपा का दान है। प्रभु के अनुग्रह के प्रति कृतज्ञता और स्तुति स्वरूप उनका यह प्रयास पाठकों और कलीसिया और धर्मविज्ञान महाविद्यालयों के छात्रों के समक्ष प्रस्तुत है।

भारत की प्रायः समस्त कलीसिया तथा कलीसिया के शिक्षित वर्ग के लिए भी कहा जा सकता है कि समय के विचार से तो तुम्हें गुरु हो जाना चाहिए था, परंतु अब भी प्राथमिक शिक्षा की आवश्यकता जान पड़ती है। 'तुम्हें गरिष्ट भोजन की नहीं, दूध की आवश्यकता है। कोई दूध पीता बालक धर्म-वचन में निपुण नहीं होता, क्योंकि वह बालक ही है। गरिष्ट भोजन प्रौढ़ मनुष्यों के लिए है' (इब्रानियों ५ : १२-१४)।

परमेश्वर के वचन का टीका सहित अध्ययन करना मानो दूध पीना नहीं, गरिष्ट भोजन करना है। यह पुस्तक मसीही को प्रौढ़ बनाने और प्रौढ़ को गरिष्ट भोजन देने का प्रयास है। आशा है कि सब हिन्दी भाषी मसीही लोग इस पुस्तक के सहारे नया नियम का गहन अध्ययन करेंगे और वास्तव में प्रौढ़ मसीही बनेंगे। धर्मविज्ञान महाविद्यालयों के छात्रों के लिए यह पुस्तक बहुत उपयोगी सिद्ध होगी। उनके अध्ययन के लिये यह अनिवार्य है। इस पुस्तक के सम्यक अध्ययन के लिए हिन्दी आध्यात्मिक शिक्षामाला के अंतर्गत प्रकाशित 'नया नियम की भूमिका, क्र. १७' को भी साथ साथ पढ़ना आवश्यक होगा। इस पुस्तक के प्रत्येक अध्याय के आरंभ में उस पुस्तक के संबद्ध पृष्ठों का निर्देश किया गया है। हिन्दी भाषी मसीही लेमेनों, पास्तरों और छात्रों द्वारा इस पुस्तक का अध्ययन ही विद्वान लेखकों और थियॉलोजिकल एजुकेशन फंड की सराहना होगी।

हम विद्वान लेखकों का हृदय से आभार मानते हैं। वर्ल्ड कौंसिल ऑफ चर्चेज़ के वर्ल्ड मिशन एवं इवेन्जेलिज्म विभाग के थियॉलोजिकल एजुकेशनल फंड से वित्तीय सहायता तथा उसके अधिकारियों की प्रेरणा के लिए हम हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

सी. डबल्यु. डेविड
सम्पादक, हिन्दी आध्यात्मिक शिक्षा माला

६७, सिविल लाइन्स
बरेली, उ. प्र.

ग्रंथ में प्रयुक्त संक्षिप्त रूप

१—धर्मशास्त्र की पुस्तकों के नाम

उत्पत्ति	उ०	मीका	मी०
निर्गमन	नि०	नहूम	नहू०
लैव्यव्यवस्था	लै०	हबक्कूक	हब०
गिनती	गि०	सपन्याह	सप०
व्यवस्था विवरण	व्य०	हाग्गै	हा०
यहोशू	यहो०	जकर्याह	ज०
न्यायियों	न्य०	मलाकी	मल०
रूत	रू०	मत्ती	मत्त०
शमूएल	श०	मरकुस	मर०
राजाओं	रा०	लूका	लू०
इतिहास	इ०	यूहन्ना	यू०
एज्रा०	एज्र०	प्रेरितों के काम	प्रे०
नहेम्याह	नहे०	रोमियों	रो०
एस्तेर	एस०	कुरिंथियों	कुर०
अय्यूब	अय०	गलतियों	गल०
भजनसंहिता	भ०	इफिसियों	इफ०
नीतिवचन	नी०	फिलिप्पियों	फिलि०
सभोपदेशक	सभ०	कुलुस्सियों	कुल०
श्रेष्ठगीत	श्रे०	थिस्सलुनीकियों	थि०
यशायाह	यश०	तीमुथियुस	तीम०
यिर्मयाह	यि०	तीतुस	तीत०
विलापगीत	वि०	फिलेमोन	फिले०
यहेजकेल	यहे०	इब्रानियों	इब्र०
दानिय्येल	दा०	याकूब	या०
होशे	हो०	पतरस	पत०
योएल	योए०	यूहन्ना	यू०
आमोस	आ०	यहूदा	यहू०
ओबद्याह	ओ०	प्रकाशित वाक्य	प्रक०
योना	योन०		

पाठकों से निवेदन

सहदर्शी या प्रथम तीन सुसमाचारों का अध्ययन मरकुस की टीका से आरंभ कीजिए, क्योंकि मत्ती और लूका की टीका में मरकुस की टीका का लगातार उल्लेख किया गया है।

—संपादक
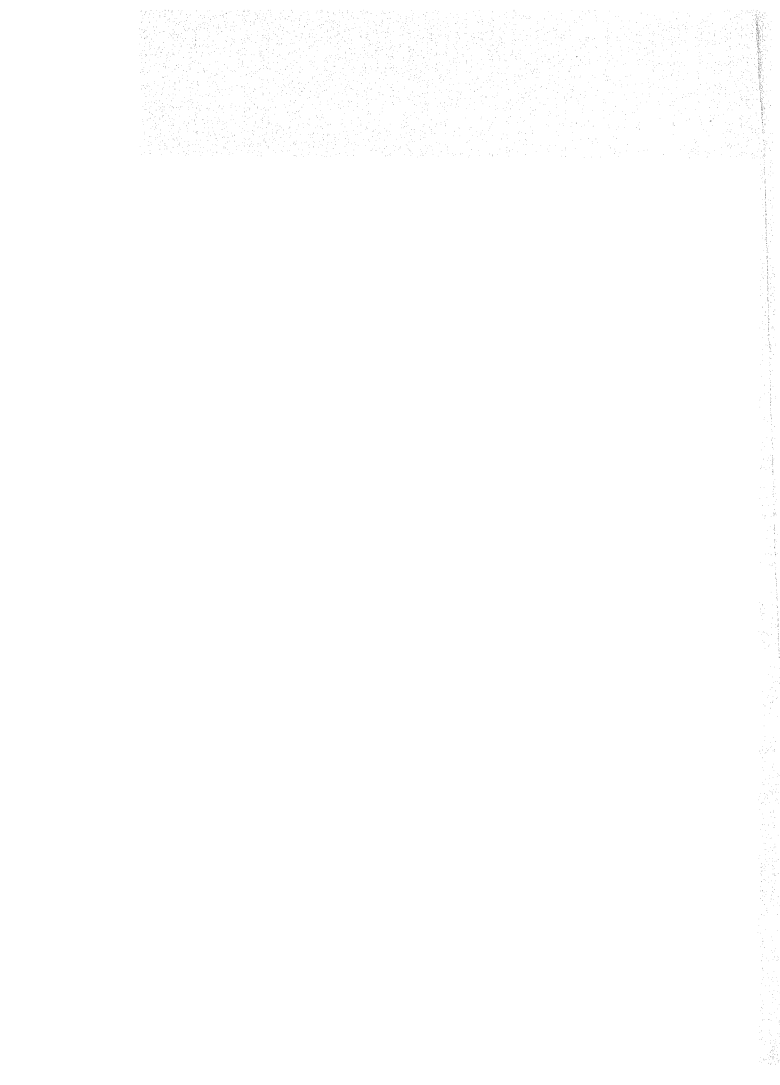
अध्याय १

मत्ती रचित सुसमाचार

निर्देश—इस सुसमाचार की सामान्य बातों के लिए पढ़िए "नया नियम की भूमिका" पृष्ठ ७८-९३ ।

प्राक्कथन : मरकुस रचित सुसमाचार की टीका के प्राक्कथन को पढ़िए, क्योंकि उसकी अधिक सामग्री मत्ती पर भी लागू है । हम यह टीका उस मान्यता को स्वीकार करते हुए लिख रहे हैं कि चारों सुसमाचारों में सब से पहले मरकुस लिखा गया, और कि मत्ती के लेखक ने अपनी रचना में मरकुस रचित सुसमाचार का प्रयोग किया। उस सामग्री के लिए जो केवल मत्ती और लूका में पाई जाती है, परंतु मरकुस में नहीं है, Q प्रतीक का प्रयोग किया गया है। भूमिका के उपरोक्त खंड में देखिए।

मत्ती रचित सुसमाचार की रूपरेखा

१. भूमिका—यीशु की शिशु-अवस्था अध्याय १ और २

(१) यीशु की वंशावली १ : १-१७

(२) यीशु का जन्म १ : १८-२५

(३) ज्ञानियों (ज्योतिषियों) का दर्शन के लिए आगमन २ : १-१२

(४) मिस्र-गमन, बालकों की हत्या, मिस्र से लौटना २ : १३-२३

२. पहला भाग ३ : १—७ : २९

(१) वृत्तान्त ३ : १—४ : २५

(क) यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाला और उसका संदेश ३ : १-१२ (मर. १ : १-८; लू. ३ : ७-९, १६, १७)

(ख) यीशु का बपतिस्मा ३ : १३-१७ (मर. १ : ९, ११; लू. ३:२१,२२)

(ग) यीशु की परीक्षा ४ : १-११ (मर. १ : १२, १३; लू. ४ : १-१३)

(घ) गलील में यीशु के कार्य का प्रारंभ ४ : १२-१७ (मर. १ : १४, १५)

(च) चार शिष्यों का बुलाया जाना ४ : १८-२२ (मर. १ : १६-२०)

(छ) गलील में यीशु के कार्य-विवरण का सारांश ४ : २३-२५ (मर. १ : ३९; ३ : ७-१०)

(२) प्रवचन ५ : १—७ : २९ (पर्वत प्रवचन)

(क) भूमिका ५ : १, २

(ख) धन्य वचन ५ : ३-१२ (तु. लू. ६ : २०-२३)

(ग) नमक और ज्योति ५ : १३-१६ (तु. मर. ९ : ५०; ४ : २१; लू. १४ : ३४, ३५; ११ : ३३)
(घ) व्यवस्था के विषय में शिक्षा ५ : १७-२० (लू. १६ : १७)
(च) व्यवस्था का पुन: प्रतिपादन ५ : २१-४८
(i) हत्या और क्रोध ५ : २१-२६ (लू. १२ : ५७-५९)
(ii) व्यभिचार और बुरी अभिलाषा ५ : २७-३० (मर. ९ : ४३-४७)
(iii) विवाह-विच्छेद ५ : ३१, ३२ (मर. १० : ११, १२; लू. १६ : १८)
(iv) शपथ ५ : ३३-३७
(v) प्रतिकार ५ : ३८-४२ (लू. ६ : २९, ३०)
(vi) शत्रु से प्रेम करना ५ : ४३-४८ (लू. ६ : २७, २८, ३२-३६)
(छ) धर्मकार्य ६ : १-१८
(i) दान ६ : १-४
(ii) प्रार्थना—गुप्त प्रार्थना, प्रभु की प्रार्थना ६ : ५-१५ (लू. ११ : २-४)
(iii) उपवास ६ : १६-१८
(ज) पूर्ण आत्मसमर्पण - सच्चा धन, प्रकाश और अंधकार, चिंता-उन्मूलन ६ : १९-३४ (लू. १२ : ३३, ३४; ११ : ३४-३६; १६ : १३; १२ : २२-३१)
(झ) दूसरों पर दोष लगाना ७ : १-६ (मर. ४ : २४; लू. ६ : ३७, ३८, ४१, ४२)
(ट) प्रार्थना के संबंध में प्रतिज्ञा, मांगो, ढूंढो, खटखटाओ ७ : ७-१२ (लू. ११ : ९-१३; ६ : ३१)
(ठ) संकीर्ण फाटक, झूठे नबी—वृक्ष और फल, कथन और कर्म ७ : १३-२३, (लू. १३ : २४; ६ : ४३, ४४, ४६; १३ : २६, २७)
(ड) दो निर्माता और उनके घर—पर्वत-प्रवचन की समाप्ति ७ : २४-२९ (लू. ६ : ४७-४९; मर. १ : २२)

३. दूसरा भाग ८ : १–१० : ४२
(१) वृत्तांत ८ : १—९ : ३४ (अधिकतर विविध लोगों को स्वस्थ करना)
(क) कोढ़ी को स्वस्थ करना ८ : १-४ (मर. १ : ४०-४५)
(ख) शतपति के सेवक को स्वस्थ करना ८ : ५-१३ (लू. ७ : १-१०; १३ : २८, २९)
(ग) अनेक लोगों को स्वस्थ करना ८ : १४-१७ (मर. १ : २९-३४)
(घ) शिष्य बनने की उत्सुकता ८ : १८-२२ (लू. ९ : ५७-६०)

(च) आंधी को शांत करना ८ : २३-२७ (मर. ४ : ३५-४१)
(छ) दो भूतग्रसितों को स्वस्थ करना ८ : २८-३४ (मर. ५ : १-२०)
(ज) अर्धांगी को स्वस्थ करना ९ : १-८ (मर. २ : १-१२)
(झ) मत्ती का बुलाया जाना ९ : ९-१३ (मर. २ : १४-१७)
(ट) उपवास का प्रश्न ९ : १४-१७ (मर. २ : १८-२२)
(ठ) अधिकारी की पुत्री का और उस स्त्री का, जिस ने यीशु के वस्त्र को स्पर्श किया, स्वस्थ हो जाना ९ : १८-२६ (मर. ५ : २१-४३)
(ड) दो अंधों और एक गूंगे को स्वास्थ्य-दान ९ : २७-३४

(२) प्रवचन ९ : ३५—१० : ४२

(क) प्रवचन की भूमिका—जनसमूह पर करुणा, बारह शिष्यों का चयन ९ : ३५-३८; १० : १-४ (मर. ६ : ६, ७, ३४; ३ : १६-१९; लू. १० : २)
(ख) प्रेरितों का भेजा जाना १० : ५-१५ (मर. ६ : ८-११; लू. ९ : २-५; १० : ४-१२)
(ग) आगामी उत्पीड़न १० : १६-२५ (मर. १३ : ९-१३)
(घ) भय का उपचार, ख्रिस्त को मान लेना १० : २६-३३ (लू. १२ : २-९; मर. ४ : २२; ८ : ३८)
(च) शांति नहीं, परन्तु तलवार १० : ३४-३९ (लू. १२ : ५१-५३; १४ : २६, २७; १७ : ३३; मर. ८ : ३४, ३५)
(छ) प्रतिफल १० : ४०-४२ (मर. ९ : ३७, ४१; लू. १० : १६)

४. तीसरा भाग ११ : १—१३ : ५२

(१) वृत्तांत और वाद-विवाद ११ : १-१२ : ५०

(क) संक्रांति-सूत्र (transition formula) यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाले का प्रश्न, यूहन्ना का चित्रण ११ : १-१५ (लू. ७ : १८-२८; १६ : १६)
(ख) समकालीन लोगों की आलोचना, अविश्वासी नगर ११ : १६-२४ (लू. ७ : ३१-३५; १० : १३-१५)
(ग) पिता को धन्यवाद, पिता और पुत्र, बोझ से दबे हुओं को आश्वासन ११ : २५-३० (लू. १० : २१, २२)
(घ) सबत पालन का प्रश्न १२ : १-८ (मर. २ : २३-२८)
(च) सूखे हाथवाले को स्वास्थ्य-दान और सबत पालन १२ : ९-१४ (मर. ३ : १-६; लू. १४ : ५)
(छ) परमेश्वर का सेवक १२ : १५-२१ (मर. ३ : ७, १०, १२)
(ज) यीशु और बालजबूल १२ : २२-३२ (मर. ३ : २०-३०; लू. ११ : १४-२३; १२ : १०)

(झ) भलाई और बुराई की कसौटी १२ : ३३-३७ (लू. ६ : ४३-४५)
(ट) चिह्न की मांग १२ : ३८-४२ (लू. ११ : २९-३२)
(ठ) अशुद्ध आत्मा का लौटना १२ : ४३-४५ (लू. ११ : २४-२६)
(ड) यीशु के वास्तविक नातेदार १२ : ४६-५० (मर. ३ : ३१-३५)

(२) प्रवचन : दृष्टांत १३ : १-५२

(क) तीसरे प्रवचन-भाग की भूमिका, बीज बोनेवाले का दृष्टांत १३ : १-९ (मर. ४ : १-९)
(ख) दृष्टांतों का अभिप्राय १३ : १०-१७ (मर. ४ : १०-१२, २५; लू. १० : २३, २४)
(ग) बीज बोनेवाले के दृष्टांत की व्याख्या १३ : १८-२३ (मर. ४ : १३-२०)
(घ) गेहूं और जंगली बीज का दृष्टांत १३ : २४-३०
(च) राई के बीज और खमीर के दृष्टांत, दृष्टांत और भविष्यवाणी १३ : ३१-३५ (मर. ४ : ३०-३४; लू. १३ : २०, २१)
(छ) जंगली बीज के दृष्टांत की व्याख्या १३ : ३६-४३
(ज) गुप्त निधि, बहुमूल्य मोती और जाल के दृष्टांत, नई और पुरानी वस्तुएं १३ : ४५-५२

५. चौथा भाग १३ : ५३—१८ : ३५

(१) वृत्तांत तथा वाद-विवाद १३ : ५३—१७ : २७

(क) नासरत में यीशु का अस्वीकरण १३ : ५३-५८ (मर. ६ : १-६)
(ख) यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाले की मृत्यु १४ : १-१२ (मर. ६ : १४-३०)
(ग) पांच सहस्र को भोजन कराना १४ : १३-२१ (मर. ६ : ३२-४४)
(घ) सागर पर चलना, रोगियों को स्वास्थ्य-दान १४ : २२-३६ (मर. ६ : ४५-५६)
(च) परंपरा पालन का प्रश्न १५ : १-२० (मर. ७ : १-२३)
(छ) अन्यजाति की बालिका को स्वस्थ करना, रोगियों को स्वास्थ्य-दान १५ : २२-३१ (मर. ७ : २४-३०; तु. मर. ७ : ३१-३७)
(ज) चार सहस्र को भोजन कराना १५ : ३२-३९ (मर. ८ : १-१०)
(झ) चिह्न-दान की प्रार्थना अस्वीकार १६ : १-४ (मर. ८ : ११-१३)
(ट) फरीसियों और सदूकियों के खमीर (शिक्षा) से चेतावनी १६ : ५-१२ (मर. ८ : १४-२१)
(ठ) पतरस का यीशु को ख्रिस्त स्वीकार करना १६ : १३-२० (मर. ८ : २७-३०)
(ड) यीशु के दुःखभोग और मृत्यु की पहली भाविष्यवाणी, क्रूस के मार्ग का स्पष्टीकरण १६ : २१-२८ (मर. ८ : ३१—९ : १)

(ढ) यीशु का रूपांतर १७ : १-१३ (मर. ९ : २-१३)
(त) अशुद्ध आत्मा-ग्रसित बालक को स्वस्थ करना, मृत्यु की दूसरी भविष्यवाणी १७ : १४-२३ (मर. ९ : १४-३२)
(थ) मंदिर के कर का भुगतान १७ : २४-२७

(२) प्रवचन १८ : १-३५

(क) विनम्रता की शिक्षा, ठोकर खिलाने का पाप, भटकी हुई भेड़ १८ : १-१४ (मर. ९ : ३३-३७; १० : १५; ९ : ४२-४७; लू. १७ : १; १५ : ३-७)
(ख) अपराधियों के प्रति व्यवहार १८ : १५-२० (लू. १७ : ३)
(ग) अक्षमाशील दास का दृष्टांत १८ : २१-३५

६. पांचवां भाग १९ : १—२५ : ४६

(१) वृत्तांत तथा वाद-विवाद १९ : १–२३ : ३९

(क) विवाह-विच्छेद के संबंध में शिक्षा १९ : १-१२ (मर. १० : १-१२)
(ख) बालकों को आशीर्वाद ९ : १३-१५ (मर. १० : १३-१६)
(ग) धनवान युवक, धन और शाश्वत जीवन १९ : १६-३० (मर. १० : १७-३१; लू. २२ : २८-३०)
(घ) दाख उद्यान के श्रमिक २० : १-१६
(च) यीशु की मृत्यु की तीसरी भविष्यवाणी २० : १७-१९ (मर. १० : ३२-३४)
(छ) यीशु और जबदी के पुत्र, यथार्थ बड़प्पन २० : २०-२८ (मर. १० : ३५-४५)
(ज) दो अंधों को दृष्टिदान २० : २९-३४ (मर. १० : ४६-५२)
(झ) यरूशलेम में यीशु का प्रवेश २१ : १-११ (मर. ११ : १-११ पू)
(ट) यीशु मंदिर में २१ : १२-१७ (मर. ११ : १५-१७; ११ : ११ उ)
(ठ) फल-रहित अंजीर का वृक्ष २१ : १८-२२ (मर. ११ : १२-१४; २०-२४)
(ड) यीशु के अधिकार का प्रश्न, दो पुत्रों का दृष्टांत २१ : २३-३२ (मर. ११ : २७-३३; लू. ७ : २९, ३०)
(ढ) दाख के उद्यान का दृष्टांत २१ : ३३-४६ (मर. १२ : १-१२)
(त) विवाह-भोज का दृष्टांत २२ : १-१४ (लू. १४ : १५-२४)
(थ) कैसर को कर देने का प्रश्न २२ : १५-२२ (मर. १२ : १३-१७)
(द) पुनरुत्थान के संबंध में एक प्रश्न २२ : २३-३३ (मर. १२ : १८-२७)
(ध) प्रमुख आज्ञा २२ : ३४-४० (मर. १२ : २८-३१)
(न) दाऊद-पुत्र ख्रिस्त २२ : ४१-४६ (मर. १२ : ३५-३७)

(प) फरीसियों के संबंध में चेतावनी २३ : १-१२ (मर. १२ : ३७उ-३६; लू. ११ : ४६)
(फ) फरीसियों पर सात धिक्कार २३ : १३-३६ (मर. १२ : ४०; लू. ११ : ५२, ३६-४२, ४४, ४७-५१)
(ब) यरूशलेम के लिए विलाप २३ : ३७-३८ (लू. १३ : ३४, ३५)

(२) **प्रवचन २४ : १—२५ : ४६**
(क) मंदिर का विनाश, विपत्तियों का प्रारंभ २४ : १-१४ (मर. १३ : १-१०, १३)
(ख) उजाड़नेवाली घृणित वस्तु २४ : १५-२८ (मर. १३ : १४-२३; लू. १७ : २३, २४, ३७)
(ग) मानव-पुत्र का आगमन, अंजीर के वृक्ष का दृष्टांत २४ : २६-३५ (मर. १३ : २४-३१)
(घ) जागरूकता की आवश्यकता २४ : ३६-४४ (मर. १३ : ३२, ३५; लू. १७ : २६, २७, ३४, ३५; १२ : ३६, ४०)
(च) विश्वास-पात्र दास और दुष्ट दास का दृष्टांत २४ : ४५-५१ (लू. १२ : ४२-४६)
(छ) दस कुमारियों का दृष्टांत २५ : १-१३
(ज) तोड़ों (तलंतों) का दृष्टांत २५ : १४-३० (लू. १६ : १२-२७)
(झ) अंतिम न्याय के संबंध में दृष्टांत २५ : ३१-४६

७. **यीशु के दुःखभोग तथा पुनरुत्थान का वर्णन** २६ : १—२८ : २०

(१) यीशु की हत्या के लिए षड्यंत्र, बैतनिय्याह में गंधरस से अभ्यंजन, यहूदा का विश्वासघात २६ : १-१६ (मर. १४ : १-११)
(२) फसह की तैयारी, यहूदा के विश्वासघात का संकेत २६ : १७-२५ (मर. १४ : १२-२१)
(३) प्रभु भोज की स्थापना २६ : २६-३० (मर. १४ : २२-२६)
(४) पतरस के अस्वीकरण की भविष्यवाणी, गतसमने में प्राणपीड़ा २६ : ३१-४६ (मर. १४ : २७-४२)
(५) यीशु का बंदी होना २६ : ४७-५६ (मर. १४ : ४३-५०)
(६) महापुरोहित के संमुख यीशु का विचार, पतरस की अस्वीकृति २६ : ५७-७५ (मर. १४ : ५३-७२)
(७) यीशु पिलातुस के संमुख, यहूदा इस्करियोती की मृत्यु २७ : १-१० (मर. १५ : १)
(८) पिलातुस के संमुख यीशु २७ : ११-२६ (मर. १५ : २-१५)
(९) सैनिक यीशु का उपहास करते हैं, क्रूस २७ : २७-४४ (मर. १५ : १६-३२)
(१०) यीशु की मृत्यु २७ : ४५-५६ (मर. १५ : ३३-४१)

(११) कबर में रखा जाना; कबर पर पहरा २७ : ५७-६६ (मर. १५ : ४२-४७)
(१२) पुनरुत्थान २८ : १-१० (मर. १६ : १-८)
(१३) पहरेदार बैठाए जाते हैं, शिष्यों को यीशु का दर्शन और आदेश २८ : ११-२०

१. भूमिका—यीशु की शिशु-अवस्था अध्याय १ और २

(१) यीशु की वंशावली १ : १-१७

यहूदी लोग वंशावलियों का महत्व मानते थे। राजा, पुरोहित, गोत्र का नेता आदि बनने के लिए वंशावली महत्वपूर्ण थी, उदाहरणार्थ उ. ५ : १ क्र.; १० : १ क्र.; ११ : १० क्र.; ११ : २७; १ इ. ५ : ७, १७; एज्रा. २ : ६१, ६२; नहे. ७ : ६३, ६४ को देखिए। यीशु की वंशावली इस स्थल में और लूका ३ : २३-३८ में पाई जाती हैं, पर इन दो वंशावलियों में बहुत अंतर है। मत्ती में वह अब्रहाम से, परन्तु लूका में आदम से आरंभ होती है। ये दो सूचियां केवल अब्रहाम से दाऊद तक के भाग में संगत हैं। इस भाग को छोड़ केवल शालतिएल और जरुब्बाबिल के नाम दोनों में हैं। लूका की सूची में ७७ नाम, मत्ती की सूची में ४१ नाम हैं। अब्रहाम से यीशु तक लूका में ५६ पीढ़ियों का, परन्तु मत्ती में केवल ४१ पीढ़ियों का वर्णन है। सामान्य रूप से विद्वान एकमत हैं कि ये दो वंशावलियां संगत नहीं की जा सकती हैं। ये इस तथ्य को प्रकट करने के दो भिन्न और पृथक प्रयत्न हैं कि यीशु वास्तव में दाऊद-पुत्र और ख्रिस्त है।

मत्ती की वंशावली तीन भागों में विभाजित है, जिन में चौदह चौदह नाम होने चाहिए, परन्तु तीसरे भाग में केवल तेरह नाम हैं। कारण अज्ञात है। अनेक विद्वानों के अनुमान के अनुसार चौदह चौदह इस कारण हैं कि दाऊद नाम के अक्षरों का योग चौदह है (४+६+४)। इस से कंठस्थ करने में सहायता मिलती थी।

१ : १ "अब्रहाम की संतान दाऊद के पुत्र यीशु ख्रिस्त की वंशावली" (हि. सं.)। "की वंशावली" के मूल यूनानी शब्द उ. २ : ४ और ५ : १ (सेप.) में पाए जाते हैं। मूल इब्रानी शब्द का भी यही अर्थ है। उ. २ : ४ का अनुवाद इस प्रकार है, "आकाश और पृथ्वी की उत्पत्ति का वृत्तांत" (वृत्तांत=वंशावली)। इस शब्द का प्रयोग करने से मत्ती संकेत करता है कि यीशु का अर्थ और महत्व विश्वीय हैं। उ. ५ : १ में "आदम की वंशावली" में मनुष्य-जाति के आरंभ का वर्णन है। ये दो पद मानो मत्ती के सुसमाचार में प्रस्तुत वंशावली की पृष्ठभूमि हैं। "ख्रिस्त" का स्पष्टीकरण मर. १ : १ की व्याख्या में किया गया है। मत्ती रचित सुसमाचार में यीशु बहुधा "दाऊद-पुत्र" कहा गया है (९ : २७; १२ : २३; १५ : २२; २० : ३०, ३१; २२ : ४२, ४५)। पुराना नियम के अनेक स्थलों में परमेश्वर दाऊद से एक पुत्र की प्रतिज्ञा करता है, उदाहरणार्थ २ श. ७ : १२। यहूदी लोग इस प्रतिज्ञा को आनेवाले ख्रिस्त से संबंधित मानते थे।

इस अंश के तीन भाग इस प्रकार हैं : (क) अब्रहाम से दाऊद तक (ख) दाऊद से निर्वासन तक (ग) निर्वासन से यीशु तक।

(क) १ : २-६ पू : अब्रहाम से दाऊद तक। यह १ इ. १ : ३४; २ : १-१५

के वर्णन पर आधारित है, जहां ये नाम पाए जाते हैं। इस में मत्ती ने राहब और रूत के नाम जोड़े हैं। यह स्पष्ट नहीं बताया गया है, पर साधारण मान्यता है कि राहब वही है जिसका वर्णन यहो. २; ६ : २२-२५ में है। वह वेश्या थी। रूत, जिसका वृत्तांत रूत की पुस्तक में है, मोआबी थी, यहूदी नहीं (दे. व्य. २३ : ३)। अतः ये दो स्त्रियां नगण्य मानी जाती थीं। इस भाग में मत्ती और लूका की सूचियां लगभग संगत हैं। हिस्रोन और अम्मीनादाब के बीच में मत्ती में "ऐराम" का नाम है, परन्तु लूका में "अरनी" का नाम है।

(ख) १ : ६उ-११ **दाऊद से निर्वासन तक**। लूका में वंशावली दाऊद के पुत्र नातान से है, परन्तु मत्ती में राजाओं का वर्णन है, जो दाऊद के पुत्र सुलैमान से आरंभ होता है। दाऊद पहला यहूदी राजा था जिस ने यरूशलेम में राज्य किया। यकुन्याह निर्वासन से पहले यहूदा का अंतिम राजा था। यह सूची संभाव्यतः १ इ. ३ : ५, १०-१६ पर आधारित है। मत्ती ने योराम और योताम के मध्य में तीन पीढ़ियों को छोड़ा— अहज्याह, योआश और अमस्याह। योशिय्याह के पश्चात् उस ने यहोयाकीम के नाम को छोड़ा। १ : ६ में "उस स्त्री से" का अर्थ "बतशेबा से" है, जिस ने दाऊद के साथ व्यभिचार किया (२ श. ११ और १२)। अंत में निर्वासन का उल्लेख है (५९७ ई. पू.)

(ग) १ : १२-१६ **निर्वासन से यीशु तक**। इस भाग में केवल शालतिएल और जरुब्बाबिल का उल्लेख मत्ती और लूका दोनों में है। मत्ती के पहले तीन नाम १ इ. ३ : १६-१९ में पाए जाते हैं, परन्तु शेष नाम किसी लिखित सूची में नहीं मिलते।

१ : १६ : यद्यपि वंशावली यूसुफ की है तथापि यह लिखा है कि यीशु मरियम से उत्पन्न हुआ। किसी का वंश उसकी माता से बताना यहूदियों में बहुत असाधारण बात है, परन्तु यह एक असाधारण व्यक्ति की वंशावली है। इस स्थल पर पाठभेद है, अनेक भिन्न पाठ पाए जाते हैं, जिनमें से एक (सीनावाली सूरियानी हस्तलेख) इस प्रकार है, "यूसुफ ने, जो कुमारी मरियम का मंगेतर था, यीशु को, जो ख्रिस्त कहलाता है, उत्पन्न किया।" परन्तु अधिकांश विद्वानों की मान्यता है कि वह मूल पाठ जिसका अनुवाद हमारी हिन्दी बाइबल में है संभाव्यतः प्रामाणिक है। वैध रूप से यीशु यूसुफ का पुत्र था। मरियम पांचवीं स्त्री है जिसका नाम इस वंशावली में है। वंशावली का अभिप्राय यह प्रमाणित करना है कि यीशु वास्तव में दाऊद-पुत्र है, अतः वह ख्रिस्त कहलाने योग्य भी है। पांच स्त्रियों के नाम इस वंशावली में होने का कदाचित् यह अर्थ है कि ख्रिस्त सब लोगों का है, और पापी भी और अयहूदी भी (रूत), स्त्री और पुरुष भी सब उस से जीवन प्राप्त कर सकते हैं।

(२) **यीशु का जन्म** १ : १८-२५

१ : १८ की मूल यूनानी में "जन्म" वही शब्द है जिसका अनुवाद पद १ में "वंशावली" किया गया है, अतः वह वंशावली यीशु के जन्म के वर्णन की पृष्ठभूमि के रूप में प्रस्तुत है। यहूदियों में मंगनी बंधनकारी होती थी। मंगनी के पश्चात् जोड़ा पति-पत्नी माने जाते थे, केवल उनका समागम नहीं होता था। कुछ समय पश्चात् पुरुष स्त्री

को अपने यहां ले आता था, और विवाह पूरा हो जाता था। इस पद में "पवित्र आत्मा" का अर्थ परमेश्वर की सृजनात्मक शक्ति है। और देखिए लूका १ : ३५ की टीका। १ : १९—वैध रूप से यूसुफ मरियम को त्यागने पर बाध्य था, और वह चुपचाप ऐसा कर सकता था। यहां "धर्मी" होने का अर्थ यह है कि वह व्यवस्थानुसार आचरण करता था। फिर भी वह मरियम का अपयश नहीं कराना चाहता था। १ : २०—जब यूसुफ "इन बातों के सोच ही में था" तब परमेश्वर ने उसकी अगुआई की। स्वर्गदूत एक संदेशवाहक है। मत्ती में कई बार इसका उल्लेख है कि परमेश्वर ने स्वर्गदूत या स्वप्न द्वारा मार्गदर्शन किया : २ : १२, १३, १९, २२; २७ : १९। इन स्थलों के अतिरिक्त ऐसे स्थल हैं जहां यीशु की शिक्षा में स्वर्गदूतों का उल्लेख है, उदाहरणार्थ ४ : ६, ११; १३ : ३९, ४१, ४९। यहां भी यीशु के दाऊद की संतान होने को महत्व दिया गया है। यहां इस जन्म के संबंध में यूसुफ को विश्सास दिलाया जाता है, परंतु लूका के अनुसार स्वर्गदूत मरियम को विश्वास दिलाता है।

१ : २१—"यीशु" साधारण यहूदी नाम था। यहां उसका यूनानी रूप है। इब्रानी रूप 'यहोशू' है, जिसका अर्थ है, "याहवे (यहोवा) उद्धार है"। इसी कारण यह कहा गया है कि "वह अपने लोगों का उद्धार करेगा"। यहां "लोग" का अर्थ इस्राएली लोग है, परन्तु यह शब्द विशेष रूप से कलीसिया के लिए प्रयुक्त होने लगा। "उद्धार" शब्द में स्वस्थ करने का सकारात्मक भाव पाया जाता है। पापों के उद्धार से वास्तविक स्वास्थ्य प्राप्त होता है। १ : २२ में, पुराना नियम से उद्धरणों के संबंध में पहला "सूत्र" है। विद्वानों ने इन उद्धरणों को "**सूत्र-उद्धरण**" नाम दिया है (Formula quotations)। ग्यारह सूत्र-उद्धरण हैं, जो पद २२ के शब्दों से या इनके समान शब्दों से आरंभ होते हैं। वे ये हैं : १ : २२; २ : ५, १५, १७, २३; ४ : १४; ८ : १७; १२ : १७; १३ : ३५; २१ : ४; २७ : ९। ये मत्ती के शेष उद्धरणों से भिन्न हैं। वे केवल मत्ती में पाए जाते हैं। साधारणतः मत्ती के अन्य उद्धरण सेप. से उद्धृत या सेप. के समान हैं, परन्तु ये सूत्र-उद्धरण अधिकतर इब्रानी मूल पाठ के समान हैं। फिर भी कहीं कहीं इन में सेप. का कुछ प्रभाव है। संभवतः ये उद्धरण वे हैं जिनको मसीही प्रचारक प्रचार करते समय प्रस्तुत करते थे। १ : २३ का उद्धरण यश. ७ : १४ से है। वह सेप. के समान है, परन्तु कुछ अंतर भी है। यश. ७ : १४ के हिन्दी अनुवाद में "कुमारी" शब्द है, परन्तु इब्रानी शब्द का अर्थ केवल "युवती" है, जो विवाहित हो सकती है। सेप. में इसका अनुवाद उस शब्द से किया गया है जिसका प्रयोग मत्त. १ : २३ में है। इस शब्द का अर्थ "कुंवारी" है। पाठकों को यश. ७ : १४ का प्रसंग पढ़ना चाहिए, क्योंकि उससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि नबी अपने काल की किसी स्त्री का उल्लेख कर रहा था, संभाव्यतः यहूदा के राजा आहाज़ की एक पत्नी का। भविष्यवाणी यह है कि इस से पूर्व कि यह पुत्र बड़ा हो जाए, आराम और इस्राएल नष्ट हो जाएंगे। इस "चिह्न" के पूरा होने का कोई वर्णन नहीं है। मत्ती का कहना है कि वास्तव में यह बात यीशु में पूरी हो गई। "**इम्मानुएल**" शब्द यश. ८ : ८ में भी पाया

जाता है, और पद १० में उसी शब्द का अनुवाद "परमेश्वर हमारे संग है" किया गया है। यह शब्द और कहीं नहीं पाया जाता। वह यीशु का नाम नहीं बना, परन्तु वह उसके संबंध में एक महत्वपूर्ण तथ्य को प्रस्तुत करता है। १ : २५ में यह विचार निहित है कि मरियम और यूसुफ के अन्य बच्चे कालांतर में हुए, तु. १२ : ४६-५०; १३ : ५५-५८, जहां यीशु के भाइयों और बहिनों का उल्लेख है।

अनेक ख्रिस्तीय विद्वान उपरोक्त वर्णन को ऐतिहासिक नहीं मानते। कारण निम्न-लिखित हैं : केवल मत्ती और लूका के पहले दो अध्यायों में यीशु के कुंवारी से जन्म लेने का वर्णन है। उसके संबंध में नया नियम का शेष भाग मौन है। मत्ती और लूका के वर्णन एक दूसरे से बहुत भिन्न हैं। केवल निम्न-लिखित बातें दोनों में हैं : यीशु का कुंवारी से जन्म लेना; पवित्र आत्मा का प्रभाव; मरियम और यूसुफ की मंगनी हुई थी; बैतलहम में यीशु का जन्म होना; उसका नाम यीशु रखना; उसका घर नासरत में बनना। कुछ विद्वान मानते हैं कि यदि ये वर्णन सच हैं तो यीशु का मानवत्व वास्तविक नहीं हो सकता। अनेकों की मान्यता के अनुसार ये वर्णन अद्भुत जन्मों की हेलेनीवादी चमत्कारात्मक कथाओं पर आधारित हैं। अन्य विद्वानों का यह विचार है कि यश. ७ : १४ के आधार पर मत्ती का वर्णन रचा गया।

संक्षेप में, क्रमानुसार, उपरोक्त तर्कों के उत्तर प्रस्तुत हैं : यीशु के कुंवारी से जन्म लेने का उल्लेख नया नियम की अधिकांश पुस्तकों में न होना यह प्रमाणित नहीं करता कि वह सच नहीं है। मत्ती और लूका के पास भिन्न परंपराएं थीं, इस कारण उन में भिन्नताएं हैं। हम उनके वर्णनों को संगत नहीं कर सकते। फिर भी उन्हें मौलिक रूप से ऐतिहासिक मान सकते हैं। यीशु के मानवत्व के संबंध में विद्वान एकमत नहीं हैं। बहुत हैं जिनकी यह मान्यता है कि कुंवारी से जन्म लेने का अर्थ यह नहीं है कि वह पूर्ण रूप से मनुष्य नहीं बना। हेलेनीवादी कथाओं के संबंध में योग्य विद्वान हमें विश्वास दिलाते हैं कि उक्त कथाओं में यीशु के जन्म के वर्णन के समान कोई कथा है ही नहीं। यह विचार कि यह वर्णन यश. ७ : १४ पर आधारित है निराधार और कल्पित है। उसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। वास्तव में इस वर्णन की मौलिक ऐतिहासिकता को अस्वीकार करने का कोई बाध्य करनेवाला कारण नहीं है। फिर भी यह कहना ठीक नहीं है कि वे लोग जो नहीं मान सकते कि यीशु ने कुंवारी से जन्म लिया उसके ईश्वरत्व को भी नहीं मान सकते। यीशु के ईश्वरत्व का मौलिक प्रमाण उसका कुंवारी से जन्म लेना नहीं है।

इस वर्णन के संबंध में यह द्रष्टव्य है कि उस में यह विचार निहित है कि मरियम और यूसुफ का घर बैतलहम में था, नासरत में नहीं, जैसे लूका में है। (यीशु के जन्म के संबंध में पढ़िए "मसीही सिद्धांतों की रूपरेखा", पहला भाग, पृ. ६५, ६६)।

(३) ज्ञानियों (ज्योतिषियों) का दर्शन के लिए आगमन २ : १-१२

इस अध्याय के वर्णनों और लूका के वर्णनों को संगत करना असंभव प्रतीत होता है, अतः दोनों में ऐतिहासिक और पौराणिक तत्व मानने पड़ते हैं। अनेक विद्वानों

की मान्यता के अनुसार ये वर्णन पूर्ण रूप से पौराणिक हैं, परन्तु उनके ऐतिहासिक तत्व को अस्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है। उनका प्रतीकात्मक अर्थ महत्वपूर्ण है।

२ : १—**हेरोदेस** ई. पू. ३७ से ई. पू. ४ तक पलिश्तीन का राजा था। ई. पू. ३७ में वह रोम के अधीन राजा बनाया गया। वह इदूमी वंश का था परन्तु प्रकट रूप से यहूदी धर्म को स्वीकार कर चुका था। उसके संबंध में देखिए "नया नियम की पृष्ठभूमि" पृ. ४०-४३। बैतलहम यरूशलेम से लगभग साढ़े नौ किलोमीटर दक्षिण की ओर स्थित था। ज्योतिषी (हि. सं. "ज्ञानी", पद-टिप्पणी, "मागी", जो यूनानी मूल शब्द है) कदाचित् फारस (ईरान) के जरदुश्ती (पारसी) पुरोहित थे। कालांतर में "मागी" शब्द का अर्थ "जादूगर" भी हो गया, जैसे प्रे. १३ : ६, ८ में, इलीमास के संबंध में है। यहां "ज्योतिषी" और "ज्ञानी" दोनों ठीक हैं। वे फलित ज्योतिष के ज्ञानी होते थे। यूनानी मूल पाठ में "कई" शब्द नहीं है। हिं. सं. : "पूर्व देश के ज्ञानी पुरुष" ठीक है। २ : २ (और ६) में "पूर्व में" के स्थान पर "उदय होते" अच्छा है, क्योंकि ये लोग पूर्व देश में थे, और तारा उनके पश्चिम में था। उन्होंने "यहूदियों के राजा" के संबंध में पूछा, जिससे विदित है कि वे स्वयं अयहूदी थे। २ : ३—हेरोदेस अपने अंतिम वर्षों में बहुत संशयालु था। वह सदा डरता था कि कोई न कोई उसका सिंहासन छीनने का प्रयत्न करेगा। अतः उसका घबरा जाना स्वाभाविक बात थी। २ : ४—इस प्रश्न का उत्तर कोई भी शास्त्री दे सकता था, अतः महासभा को एकत्रित करने की आवश्यकता नहीं थी। संभाव्यतः यहां महायाजक और शास्त्री यहूदी धर्म-संबंधी अधिकार का प्रतीक हैं। अन्यजातियों ने ख्रिस्त को पहचाना परन्तु इन अधिकारियों ने उसे नहीं पहचाना। 'महायाजकों' शब्द से महायाजकीय वंश के लोग अभिप्रेत हैं, महायाजक एक ही होता था। यहां "ख्रिस्त" शब्द पदवी के रूप में प्रयुक्त है।

२ : ५, ६—उद्धरण मी. ५ : २, ४ और २ श. ५ : २ से है। ये न तो इब्रानी न सेप. के अनुसार हैं। वे इस तथ्य का एक उदाहरण हैं कि कहीं कहीं मत्ती पुराना नियम की बातों को उनकी पूर्ति के अनुकूल करता है। उदाहरणार्थ मीका में "एप्राता" के स्थान पर मत्ती में "यहूदा" है, आदि। यहूदियों के शास्त्री लोग नया नियम के काल से पहले मीका के इस स्थल को ख्रिस्त-संबंधी मानते थे। २ : ७, ६ - यह स्पष्ट लिखा है कि हेरोदेस ने उन्हें बैतलहम भेजा (८), अतः उनके मार्गदर्शन के लिए तारा की आवश्यकता नहीं थी। यह बात पौराणिक प्रतीत होती है। पद ६ में, पद २ के समान, "तारा उदय होते देखा था" (हिं. सं.) होना चाहिए। तारा इस तथ्य का प्रतीक है कि यीशु का जन्म परमेश्वर का प्रबंध था। २ : ११—मत्ती उस परंपरा से परिचित नहीं था जिस पर लूका का वर्णन आधारित है, कि यीशु का जन्म एक सराय में हुआ। यहां एक 'घर' का उल्लेख है। ज्योतिषियों की भेंट-वस्तुएं पूर्व देशों की विशेष वस्तुएं थीं। इन भेंटों का कोई विशेष प्रतीकात्मक अर्थ नहीं है। ऐसी व्याख्याएं जिनके अनुसार सोना आदि प्रतीकात्मक माने जाते हैं काल्पनिक ही हैं। यह सामान्य विचार भी कि ये ज्योतिषी राजा थे काल्पनिक है। मत्ती में यह भी नहीं लिखा है कि तीन ज्योतिषी थे।

तीन की संख्या कदाचित् तीन भेंटों पर आधारित है, और राजा होने का विचार भ. ७२ : २०; यश. ४९ : ७; ६० : ६, १० जैसे स्थलों के कारण है। परन्तु इन विचारों का कोई निश्चित आधार नहीं है। इस वर्णन का अर्थ यह है कि अयहूदी लोग, जो ज्ञानी भी हैं, ख्रिस्त को पहचानते और उसे प्रणाम करते हैं। यहूदी धर्म के अधिकारी अंधे हैं परंतु ये अयहूदी ज्ञानी ख्रिस्त का महत्व जानते हैं। सब जातियों के लोग ख्रिस्त के अधीन हो जाएंगे। इस वर्णन के अनेक ब्योरे पौराणिक हैं, परन्तु ज्योतिषियों के प्रणाम करने के लिए आने की घटना को एक ऐतिहासिक घटना मान सकते हैं।

(४) मिस्र-गमन, बालकों की हत्या, मिस्र से लौटना २ : १३-२३

मिस्र-गमन १ : १३-१५ : लू. २ : ३९ को ध्यान-पूर्वक पढ़ने से ज्ञात होता है कि लूका के अनुसार यीशु के जन्म के पश्चात् मरियम और यूसुफ बैतलहम में लगभग ४० दिन रहे (लू. २ : २२ : "शुद्ध होने के दिन" ४० दिन थे), "और जब वे प्रभु की व्यवस्था के अनुसार सब कुछ निपटा चुके तो गलील में अपने नगर नासरत को फिर चले गए"। वह वर्णन मत्ती के इस वर्णन के साथ संगत नहीं किया जा सकता। यदि मिस्र-गमन एक ऐतिहासिक घटना थी तो यह मानना पड़ता है कि वे बहुत समय पश्चात् नासरत को गए। बहुत विद्वान मानते हैं कि मिस्र-गमन ऐतिहासिक नहीं है। इसका एक कारण यह है कि योसेपस, जिसके लेखों से हमें महान हेरोदेस के संबंध में अधिक जानकारी प्राप्त है, बालकों की हत्या का वर्णन नहीं करता। संभव है कि यूसुफ और मरियम थोड़े ही समय के लिए मिस्र गए, क्योंकि वह दूर नहीं था, और वहां अनेक यहूदी समुदाय भी थे। बहुत काल से मिस्र यहूदी शरणार्थियों के लिए शरणस्थान रहा था (उदाहरणार्थ यि. ४३ : ५, ७ को देखिए)। इस वर्णन में किसी स्थान या अवधि का उल्लेख नहीं है। हेरोदेस ई. पू. ४ में मर गया। २ : १५ में उद्धरण हो. ११ : १ से है। यह भी इब्रानी और सेप. से भिन्न है। हो. ११ : १ में भूतकाल का वर्णन है—परमेश्वर ने अपने पुत्र अर्थात् इस्राएली जाति को मिस्र से बुलाया। यह इस्राएलियों के मिस्र से निर्गमन का उल्लेख है। परन्तु मत्ती इसको यीशु पर लागू करता है। अनेक विद्वानों की मान्यता के अनुसार मत्ती ने होशे के उस पद के आधार पर यह (कल्पित) रचना लिखी। इस प्रकार की व्याख्या यहूदियों में प्रचलित थी। ऐसी व्याख्या "मिद्राश" कहलाती है।

बालकों की हत्या २ : १७-१८ : "ठठ्ठा किया" (हिं. सं. "मूर्ख बनाया") के स्थान पर "धोखा दिया" (बुल्के) ठीक है। यद्यपि योसेपस इसका उल्लेख नहीं करता (ऊपर देखिए) तथापि संभव है कि छोटे पैमाने पर ऐसी हत्या हुई। बैतलहम एक छोटा सा उपनगर था अतः यह अनिवार्य बात नहीं है कि योसेपस को इस घटना का पता लगे। ऐसी हत्या करना पूर्ण रूप से हेरोदेस के स्वभाव के अनुकूल था। २ : १८ में उद्धरण यि. ३१ : १५ से है। **रामाह** यरूशलेम से लगभग आठ किलोमीटर की दूरी पर उत्तर की ओर स्थित था। उसके निकट राहेल की कब्र थी। नबी कल्पना करता है कि राहेल निर्वासन में जाते हुए यहूदा के लोगों के लिए विलाप करती है। राहेल

के संबंध में उ. ३५ : १९ में लिखा है कि "एप्राता, अर्थात् बेतलहम के मार्ग में, उसको मिट्टी दी गई"। यह राहेल की कब्र के विषय में एक भिन्न परंपरा है। मत्ती ने यहां दोनों परंपराओं को काम में लिया है—वह यिर्मयाह के शब्दों को बैतलहम के माता-पिता पर लागू करता है। यह उद्धरण सेप. से बहुत भिन्न है और अधिकतर इब्रानी के समान है।

मिस्र से लौटना २ : १९-२३ : यहां भी दूत और स्वप्न के द्वारा संदेश दिया जाता है। २ : २० में "चाहते थे" और "वे मर गए" शब्द बहुवचन हैं, यद्यपि केवल हेरोदेस की ओर संकेत है। कारण यह है कि लेखक के मन में मूसा का विवरण था, विशेषकर नि. ४ : १९, जहां सेप. में लगभग यही शब्द हैं। मूसा के जीवन में और यीशु के जीवन में समानता प्रकट की जाती है। अरखिलाउस ई. पू. ४ से ई. स. ६ तक यहूदिया, सामरिया और इदूमिया का राज्यपाल रहा। उसके पिता हेरोदेस महान ने उसे राजा नियुक्त किया, परन्तु रोमी सम्राट ने इसे अस्वीकार करके अरखिलाउस को केवल राज्यपाल का पद दिया। ई. स. ६ में वह पदच्युत किया गया। इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि मत्ती उस परंपरा से अपरिचित था जिसके अनुसार मरियम और यूसुफ यीशु के जन्म से पहले नासरत-निवासी थे और केवल जनगणना के लिए बैतलहम आए। पुराना नियम में "वह नासरी कहलाएगा" जैसे शब्द नहीं पाए जाते। इसके संबंध में विद्वान केवल अनुमान लगा सकते हैं। सब से संभाव्य अनुमान यह है कि "नासरी" शब्द का संबंध यश. ११ : १ से है, "तब यिशै के ठूंठ में से एक डाली फूट निकलेगी और उसकी जड़ में से एक शाखा निकलकर फलवन्त होगी"। इस में ख्रिस्त की ओर संकेत माना जाता है। "**डाली**" इब्रानी शब्द "नेत्सेर" का अनुवाद है। संभव है कि "नेत्सेर" का संबंध "नासरी" से था, या समझा जाता था।

यीशु के जन्म की तिथि के संबंध में लूका की व्याख्या को पढ़िए।

२. पहला भाग ३ : १—७ : २९

(१) वृत्तांत ३ : १—४ : २५

(क) यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाला और उसका संदेश ३ : १-१२ (मर. १ : १-८; लू ३ : ७-९, १६, १७)

मर. १ : १-८ की व्याख्या पढ़िए।

३ : १—"**उन दिनों में**" शब्दों का अध्याय १ और २ से कोई संबंध नहीं है, वे संपादकीय हैं। ३ : २ के शब्द वही हैं जो ४ : १७ में, यीशु के प्रचार के संबंध में, हैं। मरकुस में ये शब्द केवल यीशु के प्रचार के संबंध में हैं (मर. १ : १५)। यूहन्ना के प्रचार के संबंध में मरकुस के शब्द भिन्न हैं (मर. १ : ४)। "**मन फिराओ**" के स्पष्टीकरण के लिए मर. १ : ४ की व्याख्या को देखिए। "**स्वर्ग का राज्य**" "परमेश्वर का राज्य" के समानार्थक शब्द हैं। मत्ती ने ३२ बार "स्वर्ग का राज्य" परन्तु केवल ४ बार "परमेश्वर का राज्य" लिखा। इसके अर्थ के संबंध में मर. १ : १५ की व्याख्या को पढ़िए। ३ : ३—मर. १ : २ में यशायाह के उद्धरण से पहले मलाकी ३ : १ उद्धृत है, परन्तु मत्ती इसको छोड़ देता है। वह उसे ११ : १० में उद्धृत करता है। यश. ४० : ३

शब्दश: उद्धृत हैं, और मरकुस में भी ऐसा ही है। केवल सेप. का "हमारे परमेश्‍र के लिए" "उसकी" में परिवर्तित है। मरकुस में यूहन्ना का चित्रण पद ६ में है, परन्तु मत्ती इसको यशायाह के उद्धरण के पश्चात् ही जोड़ता है, और इस प्रकार अपने वर्णन को अधिक क्रमबद्ध करता है। ३ : ५ में मत्ती मरकुस के वर्णन में "यरदन के आस पास के सारे देश के लोग" शब्दों को जोड़ता है।

३ : ७-१० Q में से है। मत्ती और लूका के वर्णन लगभग शब्दश: एक से हैं। अंतर केवल यह है कि लूका के अनुसार ये बातें "भीड़ की भीड़" से, परन्तु मत्ती के अनुसार फरीसियों और सदूकियों से कही गईं। विद्वान एकमत नहीं हैं कि कौनसा ठीक है। मत्ती कई बार फरीसियों के विरुद्ध बातें लिखता है (१२ : ३४; २३ : ३३ आदि)। फरीसियों के संबंध में मर. २ : १६ और सदूकियों के विषय में मर. १२ : १८ की व्याख्या को पढ़िए। केवल मत्ती बताता है कि फरीसी और सदूकी यूहन्ना के पास बपतिस्मा लेने के लिए आए। लू. ७ : ३० में वर्णित है कि फरीसियों ने यूहन्ना से बपतिस्मा नहीं लिया। "सांप के बच्चो" बहुत कठोर शब्द हैं। सांप बुराई का प्रतीक है। यह प्रचलित मुहाविरा था, जो मृत सागर के लेखों में भी मिला है। तुलना यूहन्ना ८ : ४४ से कीजिए। इन स्थलों में संकेत है कि मत्ती की समकालीन कलीसिया भी यहूदी नेताओं के संबंध में ऐसे विचार रखती थी। "आनेवाला क्रोध" परमेश्‍वर का न्याय है। इस स्थान में यह विचार निहित है कि लोगों ने वास्तव में पश्चाताप नहीं किया था, वे केवल दंड से बचना चाहते थे। ३ : ८, ९ में "फल", अर्थात् सदाचार, पर बल दिया गया है। तुलना ७ : ६-२० से कीजिए। "अब्रहाम की संतान" होना यथार्थ यहूदी होना है। बहुत यहूदी लोग मानते थे कि यहूदी होने के नाते ही हम उद्धार प्राप्त करेंगे, हम सुरक्षित हैं। यूहन्ना इस तथ्य को प्रकट करता है कि परमेश्‍वर इस प्रकार कार्य नहीं करता। उद्धार वंशज होने के आधार पर नहीं मिलता, उसको प्राप्त करने की शर्तें नैतिक और आत्मिक हैं। ३ : १०—**फल न लानेवाला पेड़** भी बुराई का प्रतीक है। यहाँ भी परमेश्‍वर के न्याय का वर्णन है। मत्ती में आग का रूपक कई बार न्याय के संबंध में प्रयुक्त हुआ है।

३ : ११, १२ - मर. १ : ८ की व्याख्या को पढ़िए। उस व्याख्या के अतिरिक्त यह भी है, कि मत्ती के मन में संभाव्यत: यह विचार भी था कि आग के बपतिस्मे के द्वारा अच्छे और बुरे लोग अलग किए जाते हैं, अर्थात् इस में भी न्याय का तत्व पाया जाता है। अनेक टीकाकार मानते हैं कि इस पद में यूनानी शब्द "न्यूमा" का अर्थ "आत्मा" नहीं वरन् "वायु" है। इस शब्द के ये दोनों अर्थ प्रचलित थे। यदि यह अनुमान ठीक है तो वायु और आग दोनों का अर्थ न्याय ही हैं। अधिक टीकाकार और अनुवादक "न्यूमा" से "आत्मा" का अर्थ लेते हैं। ३ : १२ में अवश्य आग न्याय की आग है। परन्तु न्याय का साधन सूप है, जिसके द्वारा गेहूं और भूसी (सदाचारी और दुराचारी लोग) अलग किए जाते हैं। आग "बुझने की नहीं है", अर्थात् वह अपना कार्य पूर्ण करती है। आग का काम केवल दुराचारी को नष्ट करना है। यूहन्ना कहता है कि

न्याय करनेवाला वह है "जो मेरे बाद आनेवाला है"। १३ : ४१, ४२ से तुलना कीजिए।

(ख) यीशु का बपतिस्मा ३ : १३-१७ (मर. १ : ९-११; लू. ३:२०,२१)

मर. १ : ९-११ की व्याख्या को पढ़िए।

३ : १६ और १७ पदों में मत्ती मरकुस १ : ९-११ के शब्दों में इस प्रकार परिवर्तन करता है जिससे यह बोध होता है कि केवल यीशु को ही नहीं वरन् समस्त उपस्थित जन समूह को संबोधन किया गया है ("उस ने...देखा" शब्द आकाश के खुल जाने के वर्णन के पश्चात् आते हैं। "तू मेरा प्रिय पुत्र है" के स्थान पर मत्ती में है, "यह मेरा प्रिय पुत्र है")।

३ : १४, १५ केवल मत्ती में हैं। इसके संबंध में दो मुख्य मान्यताएँ हैं : (i) यूहन्ना की आपत्ति इस प्रश्न का उत्तर देने के अभिप्राय से सम्मिलित की गई कि निष्पाप यीशु ने क्यों यूहन्ना का बपतिस्मा लिया, जो मनफिराव का बपतिस्मा था ? (ii) कि यूहन्ना ने अनुभव किया कि यह उपयुक्त है कि छोटा बड़े से बपतिस्मा ले, न कि बड़ा छोटे से। संभाव्यतः इनमें से (ii) ठीक है। यहां "धार्मिकता" का अर्थ परमेश्वर का प्रबंध, उसकी इच्छा की पूर्ति, है। पद १७ में, जैसे मरकुस की व्याख्या में प्रकट किया गया है, यीशु के 'परमेश्वर का दुःखी दास' होने का उल्लेख है। पापी मनुष्यों के साथ यीशु का एक होना आवश्यक था।

(ग) यीशु की परीक्षा ४ : १-११ (मर. १ : १२, १३; लू. ४ : १-१३)

मर. १ : १२, १३ की व्याख्या को पढ़िए। मत्ती और लूका के वर्णन कदाचित् Q में से हैं, परन्तु उन में बहुत शाब्दिक अंतर है। वह परीक्षा जो मत्ती में दूसरी है लूका में तीसरी है। दोनों में पुराना नियम की बातें सेप. से उद्धृत हैं, जिससे ज्ञात होता है कि इस परंपरा की रचना हेलेनी वातावरण में हुई। मत्त. ४ : ६ में भ. ९१ : ११, १२ के उद्धरण में, कुछ शब्द छोड़े गए हैं जो लूका में हैं। इस प्रकार पहली परीक्षा के संबंध में लूका व्य. ८ : ३ का पहला भाग ही सम्मिलित करता है। लूका का अंतिम पद मत्ती से भिन्न है।

४ : १—इस वर्णन में "इबलीस" शब्द का प्रयोग पद १ और ५ में किया गया है, परंतु पद ८ में "शैतान" है। इन पदों में एक ही यूनानी शब्द (दियाबलस) का अनुवाद है। पद १० में एक भिन्न शब्द (सतानास) का अनुवाद "शैतान" किया गया है। यह अच्छा है कि सब स्थलों में एक ही शब्द का प्रयोग किया जाए, अर्थात् "शैतान" (जैसे ध. ग्र. और बुल्के में हैं)। "दियाबलस" का शाब्दिक अर्थ "निंदक", और 'सतानास" का अर्थ "विरोधी" है। "सतानास" यूनानी भाषा में इब्रानी भाषा से आया। सेप. में "सातान" का अनुवाद (यह उस शब्द का इब्रानी रूप है) "दियाबलस" से किया गया है। मरकुस में यीशु के उपवास करने का कोई उल्लेख नहीं है, परन्तु मत्ती और लूका दोनों के अनुसार यीशु उपवास करने के अंत में भूखा हुआ। ४ : २—**चालीस दिनों** के संबंध में तुलना कीजिए नि. २४ : १८ (मूसा पर्वत पर), १ रा. १९ : ८ (एलि-

ग्याह्) और इस्राएलियों का ४० वर्ष जंगल में रहना (व्य. २ : ८, ९)। ४ : ३—यहां शैतान "परखनेवाला" कहा गया है। "परमेश्वर-पुत्र" के संबंध में मर. १ : १ की व्याख्या को पढ़िए। यह एक अत्यंत सूक्ष्म प्रलोभन है, जिस से यीशु के मन में अपने आवाहन के संबंध में संदेह को उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया है—"**यदि** तू परमेश्वर का पुत्र है"। इस से हम अनुमान लगा सकते हैं कि यीशु इस सोच विचार में पड़ा था कि मैं कौन हूँ और परमेश्वर मुझ से क्या चाहता है? प्रलोभन यह भी था कि वह अपनी शक्ति का अनुचित रीति से, अर्थात् केवल अपनी निजी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, प्रयोग करे। संभवतः यह भी इस में निहित है कि उसे लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए रोटी खिलाने का लोभ दिलाने की परीक्षा थी। ४ : ४ यीशु के तीनों उत्तर व्यवस्थाविवरण की पुस्तक के सेप. अनुवाद से लगभग शब्दशः उद्धृत हैं। यह उद्धरण व्य. ८ : ३ से है—इस्राएली लोगों को जंगल में चालीस वर्ष मन्ना खिलाया गया। उन्होंने परमेश्वर पर संदेह किया था, कि वह हमें खाने को नहीं देगा। परमेश्वर, जो दाता है, उस दान, अर्थात् रोटी, से महान है जो वह स्वयं देता है। उसका वचन सृजनात्मक है। ४ : ५—**पवित्र नगर** यरूशलेम है। मंदिर का कंगूरा अथवा शिखर (हि. सं.) उसका कोई ऊंचा और बाहर निकला हुआ भाग होगा। एक ओर मंदिर से किद्रोन घाटी के तल तक कई सौ फुट का प्रपात था। कदाचित् मंदिर का वह भाग अभिप्रेत है जो इस प्रपात के ऊपर था। ४ : ६ में फिर संदेह उत्पन्न करनेवाले शब्द हैं। इस स्थल में प्रलोभन धर्मशास्त्र के शब्दों के द्वारा ही होता है। पद ६ में शैतान के शब्द भ. ९१ : ११, १२ से उद्धृत हैं (ऊपर देखिए)। प्रलोभन यह था कि यीशु एक निरर्थक आश्चर्यकर्म के द्वारा लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करे। ४ : ७ में इसका उत्तर व्य. ६ : १६ से दिया गया है, "तुम अपने परमेश्वर यहोवा की परीक्षा न करना, जैसे तुम ने मस्सा में उसकी परीक्षा की थी"। इस पद में नि. १७ : १-७ की घटना की ओर संकेत है, जिस में जंगल में पानी न होने के कारण इस्राएली लोग परमेश्वर और मूसा पर बुड़बुड़ाते हैं। वे लोग परमेश्वर की परीक्षा कर रहे थे, और यीशु का इस प्रकार का आश्चर्यकर्म करना भी परमेश्वर की परीक्षा करना होता।

४ : ८—यह नहीं समझना चाहिए कि वास्तव में यीशु ने एक दृष्टि से संसार के **समस्त राज्य** अपनी शारीरिक आंखों से देखे। यह एक रूपक है। निस्संदेह उसको यह प्रलोभन हुआ कि वह स्वयं संसार के सब राज्यों के अधिकार को अपनाए, और इस प्रकार परमेश्वर के राज्य को स्थापित करने का प्रयत्न करे। यह एक राजनीतिक ख्रिस्त बनने का प्रयत्न होता। यहूदी लोग एक ऐसे ही ख्रिस्त की प्रतीक्षा कर रहे थे, और शिष्यों को भी यही आशा लगी थी। इस स्थल में यह विचार निहित है कि शैतान को यह अधिकार प्राप्त था। ४ : ९—शर्त बहुत स्पष्ट है—यीशु को शैतान का ख्रिस्त बनना पड़ता। ४ : १०—"हे शैतान दूर हो जा" शब्द लगभग वही हैं जो मर. ८ : ३३, —मत्त. १६ : २३ में भी हैं। पतरस की स्वीकृति के समय भी यीशु को प्रलोभन दिया

गया। गतसमने में भी इसी प्रकार हुआ, देखिए मत्त. २७ : ४०, ४३, जहां "यदि तू परमेश्वर-पुत्र है" शब्द आए हैं। पद १० में उद्धरण व्य. १६ : १३ से है, जहां विषय "पराए देवताओं के पीछे हो लेना" है। शैतान की इस बात को मान लेना शैतान की बंदना करना होता, परन्तु धर्मशास्त्र का कहना है कि बंदना और सेवा, या उपासना, केवल परमेश्वर की होनी चाहिए। एक राजनीतिक ख्रिस्त होना परमेश्वर की इच्छा नहीं थी। इस में परमेश्वर के प्रति यीशु की निष्ठा परखी गई। स्वर्गदूतों के द्वारा परमेश्वर की उपस्थिति से यीशु को सामर्थ्य प्राप्त हुई।

उपरोक्त विवरण के संबंध में मुख्यतः तीन मान्यताएँ हैं: (i) कि यह वर्णन एक कल्पित रचना है, जिससे इस तथ्य का स्पष्टीकरण किया जा सके कि यीशु ने उक्त तीन पद्धतियों को क्यों नहीं स्वीकार किया। इस वर्णन की रचना प्रारंभिक प्रचारकार्य की प्रक्रिया में हुई होगी। (ii) कि सब कुछ वास्तव में ऐसा ही हुआ जैसा वर्णित है, और उसके ब्योरे यीशु से ही ज्ञात हुए। (iii) कि यीशु से ज्ञात हुआ कि उसको प्रलोभन दिया गया था, और इन तीन विशेष बातों के संबंध में दिया गया था। उस जानकारी के आधार पर यह वर्णन रूढ़ शैली के अनुसार अंकित है और उसका आधुनिक रूप परंपरागत है। यीशु में एक आंतरिक संघर्ष हुआ, जो यहां नाटकीय रूप में प्रस्तुत है। मत्ती और लूका के वर्णनों में भिन्नताएं हैं, परन्तु मौलिक रूप से वे एक ही हैं। कदाचित् मरकुस में इस लंबे वर्णन का संक्षेप है। हमारे विचार में उपरोक्त (iii) स्वीकार्य है।

यह प्रलोभन यीशु के वास्तविक मानवत्व के अनुकूल है (मरकुस की व्याख्या को देखिए)। इस वर्णन में हम स्पष्ट रूप से देखते हैं कि यीशु हमारे समान परखा गया और उस नैतिक और आत्मिक संघर्ष में विजेता प्रमाणित हुआ। इस में वह हमारा आदर्श और सहायक है।

(घ) गलील में यीशु के कार्य का प्रारंभ ४ : १२-१७ (मर. १ : १४, १५)

मर. १ : १४, १५ की व्याख्या को पढ़िए। **मत्त. ४ : १२** मर. १ : १४ पू के समान है। मत्ती मर. १ : १४उ को सम्मिलित नहीं करता, और मत्त. ४ : १७ में मर. १ : १५ का संक्षेप है। **मत्त. ४ : १३-१६** केवल इस सुसमाचार में है। मत्ती की प्रथा यह है कि प्रत्येक घटना के लिए यह पुराना नियम की भविष्यवाणी को ढूंढ़ता है, अतः यहां यीशु के आगमन और कार्य के संबंध में वह ४ : १५ और १६ में यश. ९ : १, २ को प्रस्तुत करता है। यह उद्धरण पद १३ का आधार भी है। उद्धरण इब्रानी मूल पाठ से कुछ भिन्न और सेप. से बहुत भिन्न है, परंतु उस में सेप. के शब्दों का प्रयोग किया गया है। इब्रानी और सेप. के शब्दों का मत्ती के अभिप्राय से अनुकूलन किया गया है। यह एक "सूत्र उद्धरण" है (१ : २३ की व्याख्या को देखिए)। इस उद्धरण का अभिप्राय यह प्रकट करना है कि ख्रिस्त ने अपना कार्य गलील में क्यों किया? कारण यह है कि यह पुराना नियम में निर्धारित है। जबूलून और नपताली इस्राएल के दो गोत्रों के नाम हैं जिनके प्रदेश उस क्षेत्र में थे जो कालांतर में गलील प्रांत बन गया, देखिए "बाइबल मानचित्रावली" नक्शा ४ (छोटा नक्शा)। "झील के मार्ग से" के स्थान पर "साग

के पथ पर" (हि. सं.) अच्छा है। यशायाह में इसका अर्थ भूमध्य सागर है, परन्तु मत्ती उसे गलील की झील पर लागू करता है। यूनानी शब्द का अर्थ "सागर" और "झील" दोनों हो सकता है। मत्ती की व्याख्या के अनुसार यीशु वह ज्योति है जो इस अंधेरे प्रदेश में उत्पन्न हुई। यीशु के काल में गलील की अधिकांश जनसंख्या अयहूदियों की थी। यशायाह में यह अंधकार इस लिए था कि यह प्रदेश अश्शूर के अधीन था। ज्योति एक ऐसे राजा के राज्यारोहण के द्वारा होगी जो दाऊद के समान एक प्रतापी राज्य स्थापित करेगा। यह भविष्यवाणी शाब्दिक अर्थों में पूरी नहीं हुई, परन्तु गहरे अर्थों में वह यीशु में पूरी हो गई।

(च) **चार शिष्यों का बुलाया जाना ४ : १८-२२** (मर. १ : १६-२०)

(छ) **गलील में यीशु के कार्य-विवरण का सारांश ४ : २३-२५** (मर. १ : ३९; ३ : ७-१०)

(च) में मत्ती मरकुस के समान है, परन्तु कहीं कहीं वह शाब्दिक परिवर्तन करता है, और वह "शमौन" के साथ "जो पतरस कहलाता है" शब्दों को जोड़ता है। मरकुस शमौन का पतरस कहलाना मर. ३ : १६ में अंकित करता है। याकूब और यूहन्ना के उल्लेख से पहले मत्ती "और दो भाइयों", और उसके पश्चात् "और अपने पिता जब्दी" शब्दों को जोड़ता है। अंत में वह नौकरों का उल्लेख नहीं करता। ये परिवर्तन महत्वपूर्ण नहीं हैं।

(छ) मत्ती मरकुस १ : २१-२८ को, जो एक अशुद्ध आत्मा को निकालने के विषय में है, अपने सुसमाचार में सम्मिलित नहीं करता। उसके स्थान पर वह इस परिच्छेद को जोड़ता है जिस में यीशु के प्रचार, शिक्षा, और स्वास्थ्य-दान का सारांश है। यह वृत्तांत-भाग और प्रवचन-भाग के बीच कड़ी स्वरूप है। इसके समान अगले प्रवचन-भाग की भूमिका के रूप में ९ : ३५ है, जिस में लगभग ४ : २३ के शब्द हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मत्ती ने मरकुस की छानबीन करके उस में से ऐसे वाक्यों और वाक्यांशों को चुन लिया है जो उसके अभिप्राय के अनुकूल थे, और उनको क्रमबद्ध किया। निम्न-लिखित स्थलों की परस्पर तुलना कीजिए : मत्त. ४ : २३ से मर. १ : ३९ और १ : १४; मत्त. ४ : २४ से मर. १ : २८; ६ : ३५ और ३ : १०; मत्त. ४ : २५ से मर. ३ : ७, ८।

यीशु ने अवश्य बहुत कुछ कहा और किया जो ब्योरेवर सुसमाचारों में अंकित नहीं है। इस सारांश में इन बातों और कार्यों की ओर संकेत है।

४ : २३—तुलना कीजिए ९ : ३५। "उनकी" शब्द से यहूदी अभिप्रेत हैं, यद्यपि उस काल में यहूदी लोग गलील में अल्पसंख्या में रहते थे। "राज्य" शब्द का अर्थ है, स्वर्ग का अथवा परमेश्वर का राज्य, जो यीशु के प्रचार का विशेष विषय था। इसके संबंध में ३ : २ की व्याख्या और मर. १ : १५ की व्याख्या को देखिए। "सभा" का अर्थ यहूदियों के सभाघर, अर्थात् आराधनालय हैं। इनके विषय में जानकारी 'भूमिका' पृ. १०७-११० या "बाइबल ज्ञानकोश, "सभाघर" से प्राप्त कीजिए। ४ :

२४ : सूरिया उस काल में एक रोमी प्रांत था जिस में पलिश्तीन देश भी सम्मिलित था। ऐसा प्रतीत होता है कि यहां पलिश्तीन के उत्तर की ओर का प्रदेश अभिप्रेत है। संभव है कि सूरिया-निवासियों और गलील-निवासियों में विशेष भेद किया गया है, क्योंकि पद २३ में "लोग" यूनानी शब्द "लाओस" का अनुवाद है, जिस से बहुधा परमेश्वर के निर्वाचित लोग अभिप्रेत होते हैं। पद २४ में "लोग" उस शब्द का अनुवाद नहीं है। ४ : २५ में पलिश्तीन देश सम्मिलित है। **दिकपुलिस** के संबंध में मर. ५ : २१ की व्याख्या को देखिए।

(२) प्रवचन : ५:१—७:२९ (पर्वत प्रवचन)

(क) भूमिका ५:१,२

मरकुस के क्रम का अनुसरण करते हुए मत्ती मर. १ : २१ तक पहुंच गया है। मर. १ : २१ में इस तथ्य का उल्लेख है कि यीशु सभा के घर में जाकर उपदेश करने लगा। यहां मत्ती यह वर्णन करता है कि यीशु का उपदेश कैसा होता था। इस पर्वत प्रवचन के अंत में (मत्त. ७ : २९) वही शब्द हैं जो मर. १ : २२ में पाए जाते हैं।

संभाव्यत: मत्ती ने स्वयं ५ : १, २ की रचना की। अध्यायों के विभाजन के कारण यह तथ्य ओझल हो जाता है कि ४ : २५ और ५ : १ में गहरा संबंध है। दोनों में भीड़ का उल्लेख है। लूका में यह प्रवचन, जो पर्वत पर नहीं, मैदान में (लू. ६ : १७, हि. सं.) हुआ, बारह शिष्यों के चयन के पश्चात् वर्णित है। संभव है कि पर्वत प्रतीकात्मक है, क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि इस वर्णन में मूसा और यीशु में समानता प्रकट की गई है। सीना पर्वत पर मूसा को व्यवस्था दी गई। इस पर्वत प्रवचन की बहुत बातों में यीशु की शिक्षा और मूसा की व्यवस्था में तुलना है। इस में यीशु यहूदी शिक्षकों (रब्बियों) की प्रथा के अनुसार बैठकर उपदेश देता है।

लूका का "मैदान प्रवचन" लू. ६ : २०-४९ में है। ६ : २४-२६, ३४, ३५ को छोड़कर यह समस्त सामग्री मत्ती के पर्वत प्रवचन में, या मत्ती रचित सुसमाचार में किसी अन्य स्थल पर पाई जाती है (लू. ६ : ३९=मत्ती १५ : १४; लू. ६ : ४०= मत्त. १० : २४, २५; लू. ६ : ४५=मत्त. १२ : ३५)। यह सामग्री मत्त. ५ और ७ अध्यायों में सम्मिलित है। मत्ती के प्रवचन की कुछ सामग्री लूका के ११, १२, १३, १४ और १६ अध्यायों में पाई जाती है। सामान्य रूप से यह माना जाता है कि मत्ती और लूका के पास एक उभयनिष्ठ स्रोत था जिसका प्रयोग दोनों ने अपने अपने अभिप्राय के अनुसार किया। लूका में मत्ती की केवल एक तिहाई सामग्री सम्मिलित है।

उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि पर्वत प्रवचन एक ही प्रवचन नहीं है, जो किसी एक अवसर पर किया गया। वह यीशु के उपदेशों का संग्रह है जिसको मत्ती ने विभिन्न स्रोतों से संकलित किया। वह मत्ती के अन्य प्रवचन-भागों के समान है, अर्थात् ९ : ३५–१० : ३४; १३ : १-५२; १८ : १-३५, २४ : १–२५ : ४६। हम इस प्रवचन को केवल पूर्ण सुसमाचार के संदर्भ में समझ सकते हैं। यह प्रवचन मर. १ : २२= मत्त. ७ : २९ का स्पष्टीकरण है। संभव है कि मत्ती का अभिप्राय यह था कि यह प्रव-

चन पुराना नियम में व्यवस्था के अनुरूप समझा जाए, तु. नि. २७ : ७, ८। यीशु नए इस्राएल के साथ एक नई वाचा बांधने आया। "यह वाचा का मेरा लोहू है, जो बहुतों के लिए पापों की क्षमा के निमित्त बहाया जाता है" (मत्त. २६ : २८)। इस प्रवचन में व्यवस्था और यीशु के शब्दों में विषमता प्रकट की गई है, ५ : १७-२०, २१ और २२, २७ और २८, ३१ और ३२, ३३ और ३४, ३८ और ३९, ४३ और ४४; ७ : २८, २९। इस प्रवचन में स्वर्ग के राज्य को भी महत्व दिया गया है, ३ : २; ४ : १७, २३। पर्वत प्रवचन में इस राज्य का जीवन प्रस्तुत किया गया है, अतः इस शिक्षा को ख्रिस्त के जीवन, मृत्यु और पुनरुत्थान के मान से ही समझना चाहिए। वह केवल नैतिक सिद्धांतों का समूह नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि बहुधा इस प्रवचन में यीशु अपने चुने हुए शिष्यों को संबोधित करता है। ५ : १ इस विचार का समर्थन करता है, परन्तु ७ : २८, २९ में संकेत है कि यह शिक्षा जनता के लिए थी। विद्वानों की सामान्य मान्यता यह है कि अब हम नहीं जान सकते कि भिन्न कथनों का वास्तविक संदर्भ क्या था, परन्तु हम यह मान सकते हैं कि यह उपदेश उन सब लोगों पर लागू है जो शुद्ध मन से यीशु के अनुयायी होना चाहते हैं। केवल ऐसे लोग उसे ग्रहण कर सकते हैं।

(ख) धन्य वचन ५:३-१२ (तु. लू ६:२०-२३)

लूका में केवल चार धन्य वचन हैं (मत्ती में नौ हैं)। लूका में ये धन्य वचन मध्यम पुरुष में हैं, मत्ती में वे अधिकतर अन्य पुरुष में हैं, केवल पद ११ में मध्यम पुरुष है। लूका में वास्तविक दरिद्रता और भूख का उल्लेख है, परन्तु मत्ती में इन बातों का आत्मिक पक्ष प्रकट किया गया है। लूका में सामाजिक उद्धार पर बल दिया गया है। "धन्य है" शब्द इब्रानी से हैं, वे बहुधा भजनों और प्रज्ञा साहित्य में पाए जाते हैं, उदाहरणार्थ भ. १ : १।

५ : ३=लू. ६ : २०—**मन के दीन, दीनात्मा**(हिं. सं.)वे हैं जो अपने को दीन-हीन समझते हैं (बुल्के)। लूका में इस प्रकार है, "धन्य हो तुम, जो दीन हो"। साधारण मान्यता यह है कि मत्ती में इस कथन का वास्तविक अर्थ व्यक्त किया गया है। यीशु का अर्थ यह नहीं था कि दरिद्र होना, खाने पीने, पहिनने की वस्तुओं का अभाव होना, आदि, अच्छा है। यहूदियों के साहित्य में बहुधा दीनों का उल्लेख है, जहां इब्रानी शब्द "आनी" का प्रयोग किया गया है (जैसे भ. ९ : १८; १० : ९; ३४ : ६)। इस शब्द में यह विचार निहित है कि ऐसे लोग धर्मात्मा, धर्मपरायण भी हैं। अतः वे दीनात्मा हैं, वे जानते हैं कि हम पूर्ण रूप से परमेश्वर पर निर्भर हैं। ऐसे व्यक्ति में स्वार्थ, अहंकार, आदि के लिए कोई स्थान नहीं है, इस लिए वह धन्य है। **"स्वर्ग का राज्य"** का स्पष्टीकरण ३ : २ और मर. १ : १५ की व्याख्या में किया गया है। अन्य धन्य वचनों में क्रियाएं भविष्यकालिक हैं, अतः इस में भी भविष्य की ओर संकेत है। स्वर्ग का राज्य ऐसे लोगों का है, वे अब भी परमेश्वर की उपस्थिति का अनुभव करते हैं, और उसे अपने हृदयों में राज्य करने देते हैं, परन्तु इस राज्य की परिपूर्णता भविष्य में है।

५ : ४—लूका में नहीं है। "शोक करना" का यूनानी मूल शब्द सेप. में

मृतकों के लिए विलाप करने के लिए, और अपने और अन्य लोगों के पापों के कारण शोक करने के लिए प्रयुक्त है, उदाहरणार्थ यश. ६१ : २। यहूदी लोगों को शोक का गहरा अनुभव था क्योंकि उनका देश अधिकतर दासत्व में रहता था। कदाचित् यहां मौलिक अर्थ अपने पाप, अर्थात् परमेश्वर की आज्ञा भंग करने के कारण शोक करना है। ऐसे लोग शांति पाएंगे, या हिं. सं. के अनुसार, जो अधिक अच्छा अनुवाद है, उन्हें सांत्वना प्राप्त होगी।

५ : ५—लूका में नहीं है। यह पद ३ के समान है। कुछ हस्तलेखों में वह पद ३ के पश्चात् ही आता है, परन्तु संभाव्यतः ये हस्तलेख प्रामाणिक नहीं हैं। इस में भ. ३७ : ११ के शब्द उद्धृत हैं, "नम्र लोग पृथ्वी के अधिकारी होंगे"। इस भजन में "पृथ्वी के अधिकारी" होने का अर्थ यह है कि वे इस जीवन में समृद्ध होकर दुराचारियों पर विजयमान होंगे। परन्तु यहां यह अधिकतर रो. ८ : १७ के समान है, जिसके अनुसार ख्रिस्त पर विश्वास करनेवाला ख्रिस्त का "संगी वारिस" (हिं. सं. "ख्रिस्त के सह-अधिकारी") है। इसका अर्थ यह नहीं है कि इस जीवन में वे भौतिक रूप से समृद्ध होंगे, वरन् यह कि वे परमेश्वर की उपस्थिति को जानेंगे, और अंत में पूर्ण रूप से उस में प्रवेश करेंगे। यह स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करने के अनुकूल है, और नम्र लोग वही हैं जो धर्मात्मा हैं।

५ : ६=लू. ६ : २१—विद्वानों की सामान्य मान्यता के अनुसार इसका मूल रूप इस प्रकार है, "धन्य हैं वे जो भूखे हैं, क्योंकि वे तृप्त होंगे", जो लूका के कथन के समान है। मान्य तर्क प्रस्तुत किए गए हैं कि "धर्म के" और "प्यासे" शब्द जोड़े गए हैं। परन्तु "धर्म के" (हिं. सं. "धार्मिकता के") शब्द इस कथन का वास्तविक अर्थ ठीक से व्यक्त करते हैं। भूख और प्यास लगने का अर्थ एक तीव्र आकांक्षा होना है। वे लोग आध्यात्मिक रूप से तृप्त होंगे जो "धार्मिकता", अर्थात् परमेश्वर की इच्छा की पूर्ति की तीव्र आकांक्षा करते हैं। इस मौलिक अर्थ के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि ऐसी आकांक्षा का प्रभाव इस जीवन पर होता है, उस से सामाजिक न्याय स्थापित करने की अभिलाषा भी उत्पन्न होती है।

५ : ७—लूका में नहीं है। तुलना, ६ : १४, १५, १८ : २१-२५ से कीजिए। कहा जा सकता है कि यह एक नैतिक और आत्मिक नियम है। अर्थ यह है कि परमेश्वर उन पर दया करेगा। यह नहीं कहा जा सकता कि मनुष्य उन पर दया करेंगे। कभी कभी इसके विपरीत अनुभव होता है। वह व्यक्ति जो निर्दय है स्वयं दया को ग्रहण करने के योग्य नहीं है, वह दया को समझता ही नहीं। यह कर्म के सिद्धांत का सत्य पक्ष है।

५ : ८—लूका में नहीं है। **मन शुद्ध :** अंतःकरण निर्मल (हिं. सं.), हृदय निर्मल (बुल्के)। इन में से हिं. सं. का अनुवाद अच्छा है। इसकी तुलना भ. २४ : ४; ५१ : १०; ७३ : १ से कीजिए। इस कथन का संबंध समस्त जीवन के मौलिक अभिप्राय से है। अपना अंतःकरण निर्मल रखना परमेश्वर की उपस्थिति में होना,

उसको जानना है। उसको देखने का यही अर्थ है। यह विचार भी युगांत-संबंधी है, परन्तु पूर्ण रूप से नहीं। **"परमेश्वर को देखना"** इस संसार में आरंभ होता है। पूरा ज्ञान भविष्य में प्राप्त होगा (१ कुर. १३ : १२)।

५ : ९ भी लूका में नहीं है। तुलना कीजिए ५ : ४४, ४५। वे लोग अभिप्रेत हैं जो अन्य लोगों में मेल कराते हैं, आदि। परमेश्वर के पुत्र होना परमेश्वर के समान होना है। परमेश्वर स्वयं महान मेल करानेवाला है। वह वास्तविक "शांति-स्थापक" (हिं. सं.) है। अतः जो व्यक्ति शांति-स्थापक है वह परमेश्वर के समान और धन्य है।

५ : १० लूका में नहीं है। वे लोग अभिप्रेत हैं जो परमेश्वर की आज्ञा का पालन करने के कारण, यीशु की आज्ञाओं को मानने के कारण, सताए जाते हैं। "धर्म के कारण" का यह अर्थ है। इस कथन में यह विचार निहित है कि जो व्यक्ति इस प्रकार आज्ञापालन करता है उसका सताया जाना निश्चित है। यीशु का यह अनुभव था। इस कथन में पुरस्कार वही है जो पद ३ में है। मत्ती की एक विशेषता यह है कि कभी कभी किसी अंश के अंत में वही बात आती है जो उसके आरंभ में है।

५ : ११, १२=लूका ६ : २२, २३ है, परन्तु बहुत शाब्दिक अन्तर है। ये पद पद १० के विषय को जारी रखते हैं, परन्तु उन में, लूका के समान, मध्यम पुरुष का प्रयोग किया गया है। संभवतः "झूठ बोल बोलकर" मूल पाठ में नहीं था, वह अनेक हस्त-लेखों में नहीं पाया जाता। परन्तु अर्थ यही है। "मेरे कारण" पद १० के "धर्म के कारण" के तुल्य है, परन्तु इस पद में यीशु के साथ एक व्यक्तिगत संबंध का विचार निहित है। यही ख्रिस्तियों पर अत्याचार करने का मुख्य कारण हुआ। संभवतः परवर्ती काल के अत्याचार का प्रभाव इस कथन पर हुआ है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि यीशु ने स्वयं ऐसी शिक्षा नहीं दी। आनंदित और मग्न होने का कारण वह पुरस्कार है जो मिलेगा। यहां "स्वर्ग में" यहूदियों का मुहाविरा है, जो "परमेश्वर के पास" के तुल्य है, क्योंकि स्वर्ग में परमेश्वर का सिंहासन माना जाता था और यहूदियों को परमेश्वर का नाम लेना अच्छा नहीं लगता था। पुराना नियम में यिर्मयाह और आमोस के संबंध में लिखा है कि वे सताए गए, और यशायाह के विषय में भी इस प्रकार की परंपरा है। नबियों के समान ख्रिस्तियों को भी स्थिर और दृढ़ रहने की सामर्थ्य प्रदान की जाती है।

(ग) नमक और ज्योति ५ : १३-१६ (तु. मर. ९ : ५०; ४ : २१; लू. १४ : ३४, ३५; ११ : ३३)

लूका में नमक और ज्योति के रूपक पृथक संदर्भों में पाए जाते हैं जो मत्ती के संदर्भ से भी भिन्न हैं। नमक का उल्लेख लू. १४ : ३४, ३५ में और ज्योति का उल्लेख लू. ११ : ३३ में है। ऐसे कथन मर. ९ : ५० (नमक) और ४ : २१ (ज्योति) में भी हैं, जिन से ज्ञात होता है कि ये बातें Q में और मरकुस में भी सम्मिलित थीं। लूका में ज्योति का कथन दो बार पाया जाता है : एक ११ : ३३ में और दूसरा लू. ८ : १६= मर. ४ : २१ में। इन स्थलों में ये कथन दृष्टांतों का स्पष्टीकरण करने के संदर्भ में सम्मिलित किए गए हैं। यह तथ्य, कि ऐसे कथन सुसमाचारों में भिन्न प्रसंगों में पाए जाते

हैं, प्रकट करता है कि ख्रिस्ती प्रचारकों और शिक्षकों ने कभी कभी यीशु के कथनों का प्रयोग अपने अपने अभिप्राय के अनुसार किया, अतः ऐसे कथनों का वास्तविक संदर्भ अज्ञात है। संभाव्यतः सुसमाचारों के संकलन-कर्ताओं ने भी अपने अपने उद्देश्य के अनुसार इनका प्रयोग किया। इस कारण वे संकलन-कर्ता मात्र नहीं वरन् सृजनात्मक रचयिता थे (मर. ४ : २१, २२ की व्याख्या को देखिए)। इस परिच्छेद में केवल मत्ती मध्यम पुरुष का प्रयोग करता है। पद १४-१६ में उस ने चार पृथक कथनों को, अर्थात् १४ पू, १४उ, १५ और १६ के कथनों को जोड़ा है। इनमें से केवल १५ मरकुस और लूका में है, शेष पद केवल मत्ती में पाए जाते हैं।

मर. ६ : ५० और ४ : २१ की व्याख्या को पढ़िए। **५ : १३**–इस में ख्रिस्ती लोग संबोधित किए गए हैं। नमक से भोजन स्वादिष्ट किया जाता है, और नमक का प्रयोग खाद्य पदार्थ का परिरक्षण करने में किया जाता है। इस प्रकार चाहिए कि ख्रिस्तियों के जीवन संसार में स्वाद उत्पन्न करें और उस में भलाई का परिरक्षण करें। रब्बियों के मुहाविरे में नमक बुद्धिमानी का प्रतीक था। उस यूनानी शब्द (मोरैनो) का शाब्दिक अर्थ, जिसका अनुवाद "स्वाद बिगड़ जाए" किया गया है, "मूर्ख होना" है। अतः संभव है कि नमक होने में यह भी निहित है कि ख्रिस्ती लोग वे हैं जिन्हें प्रज्ञा, ईश्वरीय बुद्धि, प्राप्त है। शेष बातें मरकुस की व्याख्या में देखिए। **५ : १४**–यहां भी मध्यम पुरुष केवल मत्ती में है। ज्योति का रूपक साधारण था, तु. यश. ४२ : ६, ७; ४९ : ६ (दुःखी दास); ६० : १, २ (इस्राएल); यू. १ : ४, ५। ख्रिस्तियों को ख्रिस्त से ही ज्योति प्राप्त होती है। **५ : १५** - मर. ४ : २१ की व्याख्या को देखिए। परन्तु वहां यह बात दृष्टांतों के संबंध में, यहां सामान्य रूप से ख्रिस्ती व्यक्ति के जीवन की ज्योति के संबंध में है। पैमाने का अर्थ इस स्थल की पद-टिप्पणी में बताया गया है। **५ : १६** केवल मत्ती में है। ख्रिस्ती के भले कामों के द्वारा उसके जीवन की ज्योति प्रकट होती है। भले काम उस ज्योति का अनिवार्य फल हैं। इन से ख्रिस्ती अपनी प्रशंसा नहीं, परमेश्वर की स्तुति कराता है। अहंकार और घमंड के लिए कुछ स्थान नहीं है। इस पद में "भले" यूनानी शब्द "कलाँस" का अनुवाद है, जिसमें "आकर्षक" का अर्थ निहित है। ऐसे काम अन्य लोगों को परमेश्वर की ओर आकर्षित करते हैं।

(घ) व्यवस्था के विषय में शिक्षा ५ : १७-२० (लू. १६ : १७)

पद १८ को छोड़, जो लू. १६ : १७ में भी है, ये पद केवल मत्ती में पाए जाते हैं। **५ : १७-"व्यवस्था और भविष्यवक्ता"** यहूदियों के धर्मशास्त्र के लिए मुहाविरा था। इस पद में "लोप करने नहीं, परंतु पूरा करने आया हूं" शब्द भी सम्मिलित हैं, जैसे हिं. सं., ध. ग्र. और बुल्के में हैं। यह स्पष्ट है कि यीशु शाब्दिक अर्थों में समस्त व्यवस्था को, अर्थात् आनुष्ठानिक और नैतिक व्यवस्था को पूरा करने नहीं आया, क्योंकि उस ने इसी कारण से फरीसियों को फटकारा कि वे इस व्यवस्था के पूर्ण पालन करने का प्रयत्न करते थे। अर्थ यह है कि यीशु व्यवस्था के मौलिक अभिप्राय को पूरा करने आया, अर्थात् कि मनुष्य परमेश्वर के साथ मेल रखे। इब्र. ७ : १८; ८ : १३; १० : ९ जैसे पदों और इनके संदर्भों से ज्ञात

होता है कि ख्रिस्ती मानते थे कि कुछ अर्थों में व्यवस्था लोप हो गई है। यीशु विशेष रूप से फरीसियों की मौखिक व्यवस्था का विरोध करता था (मर. ७ : १-२३ की व्याख्या को पढ़िए)। ५ : १८—**सच कहता हूं** मूल शब्द "आमेन" का अनुवाद है, जो तीस बार इस सुसमाचार में पाया जाता है। इसके प्रयोग के द्वारा किसी कथन पर बल दिया जाता है। "जब तक आकाश और पृथ्वी टल न जाएं" का अर्थ है, "सदा के लिए"। यदि यह वास्तव में यीशु का कथन है तो उसको शाब्दिक रूप से नहीं, लाक्षणिक रूप से समझना चाहिए, अर्थात् कि व्यवस्था के मौलिक अभिप्राय का पूरा होना अवश्य है। ५ : १९—यदि **छोटी से छोटी आज्ञाओं** का अर्थ लैव्यव्यवस्था जैसे विधि नियम हैं तो यह यीशु का कथन नहीं हो सकता, क्योंकि यह यीशु की शिक्षा के अनुकूल नहीं है। यदि यह एक प्रामाणिक कथन है तो इसको भी आलंकारिक रूप से समझना चाहिए। **स्वर्ग के राज्य में छोटा या बड़ा कहलाने** का अर्थ यह है कि युगांत में, मृत्यु के पश्चात् की दशा में, श्रेणियां होंगी, सब एक जैसे नहीं होंगे, सब को एक ही पुरस्कार प्राप्त नहीं होगा। यद्यपि स्वर्ग का राज्य कुछ अंशों में इस जीवन में भी स्थापित है, तो भी इस स्थल में युगांत-संबंधी पक्ष का वर्णन है। ५ : २०—सब **शास्त्री फरीसी** नहीं होते थे, परन्तु बहुधा इनका उल्लेख एक साथ होता है। उनकी "धार्मिकता" संपूर्ण व्यवस्था-पालन थी, जिसका चित्रण अगले परिच्छेद में किया गया है। यीशु का अर्थ यह है कि इस प्रकार का व्यवस्था-पालन अपर्याप्त है, जैसे पौलुस को अनुभव हुआ (रो. ७ अध्याय)। यहूदी विद्वानों की मान्यता है कि ऐसा कथन न्यायसंगत नहीं है, क्योंकि वह पक्षपातपूर्ण है। निस्संदेह ऐसे फरीसी थे जिनके नैतिक और आत्मिक जीवन उच्च कोटि के थे, और जो नम्र और निष्कपट थे। परन्तु अधिकतर ख्रिस्ती विद्वानों की मान्यता यह है कि सामान्य रूप से फरीसियों का सही चित्रण नया नियम में किया गया है।

अनेक ख्रिस्ती विद्वान मानते हैं कि कम से कम पद १८ और १९ यीशु की शिक्षा नहीं हो सकते, बल्कि इन में हम लेखक के काल के उस वाद विवाद का प्रतिबिंब देखते हैं जो ख्रिस्तियों और यहूदियों में होता था। यदि इन पदों का शाब्दिक अर्थ लिया जाए तो इस मान्यता को स्वीकार करना पड़ेगा, कि ये पद यीशु की शिक्षा नहीं हैं। संभव है कि उक्त वाद विवाद का प्रभाव इन पदों पर हुआ, तो भी मौलिक रूप से ये कथन यीशु के ही हैं।

(च) व्यवस्था का पुनःप्रतिपादन ५:२१-४८

(i) **हत्या और क्रोध ५ : २१-२६** (लू. १२ : ५७-५९)

५ : २१-२४ केवल मत्ती में है। पद २५, २६ लू. १२ : ५७-५९ में हैं, परन्तु लूका के शब्द बहुत भिन्न हैं। लूका में प्रसंग भी भिन्न हैं। ६ : २५, २६ का इस अंश के शेष भाग के साथ संबंध केवल इसलिए है कि दोनों में मेल का विचार प्रस्तुत है।

५ : २१—"पूर्वकाल के लोग" का अर्थ वे लोग हैं जिनको व्यवस्था दी गई। "हत्या न करना" शब्द नि. २० : १३ और व्य. ५ : १७ से उद्धृत हैं। इस पद के शेष शब्द

जो इस उद्धरण से लेकर पद के अंत तक हैं पुराना नियम से उद्धृत नहीं हैं, परन्तु ऐसा विचार नि. २१ : १२; लै. २४ : १७ और व्य. १७ : ८-१३ में पाया जाता है। "कचहरी" एक यूनानी शब्द (क्रिसिस) का अनुवाद है जिसका शाब्दिक अर्थ "न्याय" है। इस पद में इसका अर्थ स्थानीय न्यायालय है। अनेक विद्वानों की मान्यता के अनुसार पद २२ में इस शब्द का अर्थ परमेश्वर का न्याय है। ५ : २२–क्रोध वह आवेग है जो हत्या के मूल में है। "भाई" का अर्थ संभाव्यत: साधारण है, अर्थात् मानव, परन्तु अनेक विद्वान मानते हैं कि विशेष रूप से ख्रिस्ती भाई अभिप्रेत है। "कचहरी" को परमेश्वर का न्याय मानने का कारण यह है कि कचहरी में क्रोध करने के कारण दंड नहीं मिलता। हिन्दी अनुवादों और सामान्य व्याख्या के अनुसार इस पद में तीन चरण पाए जाते हैं जो महत्व में क्रमानुसार बढ़ते जाते हैं : क्रोध करना (दंड=कचहरी का), भाई को निकम्मा कहना (दंड=महासभा का) और भाई को "अरे मूर्ख" कहना (दंड= नरक की आग का)। "निकम्मा" एक शब्द "राका" का अनुवाद है जिसका अर्थ संभाव्यत: "बुद्धिहीन", "बुद्धू" है, अर्थात् वह लगभग "मूर्ख" का समानार्थक शब्द है। उपरोक्त क्रम में यह कठिनाई भी है कि क्रोध करने के लिए कचहरी का दंड उपयुक्त नहीं है। अत: कदाचित् अनेक विद्वानों की यह मान्यता स्वीकार्य है कि पद २२ में "निकम्मा" कहने के विषय में कथन यीशु का नहीं है वरन् उन बातों में सम्मिलित है जो पूर्वकाल के लोगों से कही गईं। यदि यह ठीक है तो यीशु कहता है कि "निकम्मा" या "मूर्ख" कहनेवाला केवल महासभा के दंड के योग्य नहीं, वह नरक की आग के दंड के योग्य है। क्रोध करनेवाला परमेश्वर के न्याय के योग्य होगा। इन कथनों का मौलिक अर्थ स्पष्ट है : परमेश्वर केवल क्रिया को नहीं देखता, वह अंतःकरण को भी जांचता है, मौलिक अभिप्राय को परखता है।

५ : २३,, २४—यहां यरूशलेम के मंदिर में भेंट अर्पण करने का विचार है। यीशु यहूदी लोगों को संबोधित करता है। हिं. सं. का अनुवाद ठीक है : "वहां तुम्हें स्मरण हो कि मेरा भाई मुझ से किसी कारण अप्रसन्न है" (भाई को "मुझ से कोई शिकायत है"–बुल्के)। सारांश यह है कि भेंट अर्पण करने से पहले अपने भाई के साथ मेल करना आवश्यक है। जब तक मानव के साथ मेल नहीं है तब तक परमेश्वर के साथ भी मेल होना असंभव है (तु. १ यू. ४ : २०)।

५ : २५, २६—ऐसा प्रतीत होता है कि ये पद केवल "मेल" के विषय के कारण यहां जोड़े गए हैं। यह समझा जाता है कि वह व्यक्ति जो संबोधित किया जाता है सचमुच दंडनीय है। यह अच्छा है कि वह समझौता कर ले (बुल्के)। पद २६ से ज्ञात होता है कि मत्ती के मन में अंतिम न्याय का विचार था। यह ऐसा ही विचार है जो पद २३, २४ में भी है। लूका में यह अंश युगांत-संबंधी संदर्भ में है।

(ii) **व्यभिचार और बुरी अभिलाषा** ५ : २७-३० (मर. ९ : ४३-४७)

पद २७, २८ केवल मत्ती में हैं। पद २९, ३० मर. ९ : ४३-४७ के समान हैं, और संभाव्यत: मत्ती ने इन्हें वहां से उद्धृत किया।

५ : २७—"व्यभिचार न करना" नि. २० : १४ और व्य. ५ : १८ से उद्धृत है। यूनानी शब्द मैख्यूओ का अर्थ वास्तव में व्यभिचार नहीं, परस्त्रीगमन है, परन्तु यहां इसका अर्थ अधिक विस्तृत किया गया है। यह तथ्य ५ : २८ से स्पष्ट है। ऐसे ही कथन यहूदियों के रब्बियों के लेखों में भी पाए जाते थे। धर्मपरायण रब्बी भी इस सिद्धांत को मानते थे, और दसवीं आज्ञा में (नि. २० : १७; व्य. ५ : २१) इस सिद्धांत की ओर संकेत है। यीशु इसी सिद्धांत पर बल देता है। ५ : २९, ३० मर. ९ : ४३-४७ के समान है। मरकुस के उस स्थल की व्याख्या को पढ़िए। मरकुस के ये पद मत्त. १८ : ८, ९ में भी, मरकुस के क्रम के अनुसार, सम्मिलित किए गए हैं। मत्त. ५ : २९, ३० में यह पद मरकुस के क्रम के विपरीत है, और दूसरा कथन, पांव के संबंध में, छोड़ा गया है। कदाचित यहां आंख का उल्लेख इस कारण पहले है कि मत्ती ने इस कथन को पद २८ के विषय के अनुकूल किया है। मरकुस में इन कथनों का प्रसंग भिन्न है। इन पदों में, और पद २२ में भी, नरक एक शब्द (गेएनान) का अनुवाद है जिसका स्पष्टीकरण मर. ९ : ४३-४७ की व्याख्या में किया गया है। यह वह शब्द है जिस से "जहन्नम" शब्द बना है। इस प्रसंग में मत्ती का अभिप्राय यह है कि पाठक इस कथन को स्त्री के संबंध में अभिलाषा करने पर लागू करें।

(iii) **विवाह विच्छेद ५ : ३१, ३२** (मर. १० : ११, १२; लू. १६ : १८)

उपरोक्त अन्य स्थलों में, और मत्त. १९ : ९ में भी, इसके समान शिक्षा है। केवल इस अंश में व्य. २४ : १ उद्धृत है। इस उद्धरण के शब्द इब्रानी और सेप. के मूल पाठ से बहुत भिन्न हैं। वास्तव में यह उद्धरण नहीं वरन् व्य. २४ : १ से निकाला हुआ निष्कर्ष है। इस अंश का पर्याप्त स्पष्टीकरण मर. १० : १०-१२ की व्याख्या में किया गया है। उसको पढ़िए।

(iv) **शपथ ५ : ३३-३७**

यह अंश केवल मत्ती में है, परन्तु इस शिक्षा का सारांश या. ५ : १२ में है। ५ : ३३ में लै. १९ : १२; गि. ३० : २; और व्य. २३ : २१ जैसे स्थलों का विचार है, परन्तु उद्धरण नहीं है। ५ : ३४, ३५ में यश. ६६ : १ के शब्द पाए जाते हैं। यीशु पूर्ण रूप से शपथ खाने का निषेध करता है। संभाव्यत: कारण यह है कि यहूदी लोग शपथ खाने पर बहुत बल देते थे। पुराना नियम में शपथ खाने का बहुत उल्लेख है (उदाहरणार्थ गि. ३० : २; व्य. २३ : २१, २२), और मिशनाह (रब्बियों की शिक्षा का संग्रह जो लगभग ई. स. २०० में संकलित हुआ) का एक परिच्छेद इसके संबंध में है। व्यावहारिक रूप से शपथ खाने से अनेक बुराइयां उत्पन्न होती थीं। वह व्यक्ति जिसका अंत:करण शुद्ध है शपथ खाने की आवश्यकता का अनुभव नहीं करता। ५ : ३५ में "महाराजा" का अर्थ परमेश्वर है। अत: पद ३४ और ३५ का आधार यह विचार है कि यदि कोई किसी प्रकार की शपथ खाए और उसे पूरा न करे तो वह परमेश्वर की निंदा करता है और दंडनीय है। सामान्य रूप से कलीसिया मानती चली आई है कि न्यायिक शपथ खाना उचित है, और कि यीशु का अभिप्राय इसका निषेध करना नहीं

था। कारण यह है कि यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि इस अंश में शपथ खाना पूर्ण रूप से निषिद्ध है तथापि नया नियम में संकेत मिलते हैं कि ख्रिस्तियों ने इस कथन को इस प्रकार नहीं समझा, देखिए २ कुर. १ : २३; गल. १ : २०; मत्त. २६ : ६३। मौलिक रूप से शपथ खाने की आवश्यकता बुराई से उत्पन्न होती है। अतः अच्छा यह है कि हम शपथ न खाएं। तुम्हारी "हां" का अर्थ हो "हां" और "नहीं" का अर्थ हो "नहीं" (पद ३७, हिं. सं.)। यह अनुवाद या. ५ : १२ के अनुसार है, और सही अर्थ को व्यक्त करता है। जब लोग इस प्रकार स्पष्ट बोलते हैं तब शपथ खाने की आवश्यकता नहीं होती। शपथ खाने के संबंध में २३ : १६-२२ की व्याख्या को भी देखिए। संभव है कि, अनेक टीकाकारों की मान्यता के अनुसार, "बुराई" के स्थान पर "दुष्ट", अर्थात् शैतान, होना चाहिए। यही शब्द ५ : ३९; ६ : १३; और १३ : ३८ में भी पाया जाता है, जहां यह जानना कठिन है कि बुराई अभिप्रेत है या दुष्ट।

(v) **प्रतिकार ५ : ३८-४२** (लू. ६ : २९, ३०)

५ : ३८, ३९पू और ४१ लूका में नहीं पाए जाते। संभव है कि वे मत्ती के विशेष स्रोत से हैं, परन्तु अनेक विद्वानों की मान्यता के अनुसार यह पूर्ण अंश Q में से है, और मत्ती और लूका के पास Q के भिन्न पाठ थे।

५ : ३८—"आंख के बदले आंख, दांत के बदले दांत" शब्दशः (सेप. के अनुसार) नि. २१ : २४; लै. २४ : २० और व्य. १९ : २१ से उद्धृत है। साधारण रूप से माना जाता है कि ऐसे नियमों का अभिप्राय दंड को सीमित करना था, कि अधिक बदला न लिया जाए। यदि यह सच है तो यीशु इस मौलिक अभिप्राय के अनुरूप शिक्षा देकर अभिप्राय को विकसित करता है। ५ : ३९—"बुरे" या "दुष्ट" (हिं. सं. और बुल्के) "बुराई" या "दुष्टता" भी हो सकता है, जैसे अनेक अंग्रेजी अनुवादों में है। सब हिन्दी अनुवादों और उर्दू में भी "बुरे" और "दुष्ट" है। संभाव्यतः यह ठीक है। इसका अर्थ है, "दुष्ट व्यक्ति"—इसी पद में एक ऐसे व्यक्ति का उल्लेख है। कदाचित् "दाहिने" गाल का कोई विशेष महत्व नहीं है, परन्तु यह भी संभव है कि उसका उल्लेख इस लिए है कि उस गाल पर थप्पड़ मारने के लिए दाहिने हाथ के पृष्ठभाग का प्रयोग करना पड़ेगा, और यहूदियों में यह बड़ा अपमान माना जाता था। इस शिक्षा पर आचरण करना कठिन है, परन्तु यह असंभव नहीं है। परमेश्वर के अनुग्रह की आवश्यकता है। ५ : ४०—यूनानी शब्दों के अर्थ हैं, नीचे और ऊपर के कपड़े, अतः हिं. सं. का अनुवाद अच्छा है, "कुरता" और "अंगरखा"। मत्ती में कुरते का उल्लेख पहले है, क्योंकि नालिश का वर्णन हो रहा है, और अंगरखे का मूल्य अधिक है। लूका में डाका पड़ने की कल्पना है, अतः पहले अंगरखे का उल्लेख है, क्योंकि अंगरखा पहले उतारा जाता है। ५ : ४१ **बेगार**—यीशु के काल में कोई रोमी सैनिक किसी भी व्यक्ति को बेगार में ले सकता था। **बेगारी** की प्रथा ईरान में आरंभ हुई, जहां संदेशहरों को अधिकार था कि घोड़ों और मनुष्यों को फारसी राज्य के प्रसिद्ध डाक के प्रबंध के संबंध में बेगार में लें। बेगार में लिया हुआ व्यक्ति विवश होता था। यीशु का कथन है कि ऐसा काम भी करो, और

दुगुना करो। जो व्यक्ति आनंद से यह कर सकता है, विजय उसकी है। ५ : ४२ में रुपया देने, और ब्याज पर रुपया उधार देने का भी उल्लेख है। यीशु ने इस पद में ऐसी परिस्थिति के लिए मार्गदर्शन नहीं किया जब इन सिद्धांतों पर आचरण करने के फल-स्वरूप सामाजिक बुराइयां उत्पन्न होती हैं। हम जानते हैं कि अंधाधुंध देने से लेने वाला बिगड़ जाता और पक्का भिखारी बन जाता है। हमें इस बात का विचार अवश्य करना चाहिए कि लोग न बिगड़ें, परंतु सतर्क रहना चाहिये कि ऐसा करने में हम यीशु के मौलिक सिद्धांत का उल्लंघन न करें।

बहुधा यह माना गया है कि यीशु की इस शिक्षा का अभिप्राय यह था कि दुष्ट व्यक्ति प्रेम के व्यवहार से लज्जित होगा, और पछताएगा। परन्तु इस विचार की ओर कोई संकेत नहीं किया गया है। यीशु ने स्वयं इन सिद्धांतों के अनुसार आचरण किया, फिर भी विरोधी पछताए नहीं, उसे मार डाला। अतः इस शिक्षा में मौलिक बात दुष्ट व्यक्ति का परिवर्तन नहीं वरन् संबोधित व्यक्ति की अभिवृत्ति है। हानि पहुंचाने के स्थान पर हानि उठाने के लिए तैयार रहना चाहिए (तु. १ कुर. ६ : ७)। व्यावहारिक रूप से प्रत्येक व्यक्ति को किसी विशेष अवसर पर परिस्थिति के अनुसार जांचना पड़ता है कि कहां तक पूर्ण रूप से, शाब्दिक रूप से, इस शिक्षा का पालन अन्य लोगों को हानि या लाभ पहुंचाएगा।

(vi) **शत्रु से प्रेम करना ५ : ४३-४८** (लू. ६ : २७, २८)

मत्ती Q के कुछ पदों को छोड़ता है जो लूका में सम्मिलित हैं। मत्त. ५ : ४३ केवल मत्ती में है।

५ : ४३—"अपने पड़ोसी से प्रेम रखना" लै. १९ : १८ से उद्धृत है। साधारण मान्यता है कि उस पद में "पड़ोसी" का अर्थ सह-यहूदी है, परन्तु वर्तमान काल के अनेक यहूदी विद्वान कहते हैं कि यह विचार गलत है। उनका दावा है कि यीशु के काल में यहूदी रब्बी भी इस नियम को विशाल अर्थों में समझते थे। इस पद में "अपने समान" शब्द, जो लै. १९ : १८ में हैं, नहीं पाए जाते, परन्तु वे अन्य स्थलों में जहां लै. का यही पद प्रस्तुत है, पाए जाते हैं, अर्थात् मत्त. १९ : १९; २२ : ३९; रो. १२ : ९; गल. ५ : १४ और या. २ : ८। "और अपने बैरी से बैर" (हिं. सं. का अनुवाद "और अपने शत्रु से द्वेष रखना" अच्छा है) शब्द पुराना नियम में कहीं नहीं मिलते। ख्रिस्ती विद्वानों की सामान्य मान्यता यह है कि ये शब्द पुराना नियम के अनेक स्थलों के निहितार्थ को व्यक्त करते हैं जहां इस्राएलियों को किसी से बैर रखने को, या उन्हें नष्ट करने को कहा गया है, जैसे व्य. २३ : ३-६; २५ : १९; नहे. १३ : १, २; नि. १७ : १४; भ. १३९ : १९-२१। यह भी संभव है ये शब्द यीशु के नहीं थे वरन् मौखिक परंपरा में जोड़े गए। पुराना नियम में ऐसे स्थल भी हैं जहां शत्रु के साथ भलाई करने की ओर संकेत है, जैसे अय. ३१ : २९; भ. ७ : ४, ५; ३५ : १२-१४; नी. २४ : २९। अतः यहां भी यीशु पुराना नियम के निहितार्थ को स्पष्ट करता है। "प्रेम" यूनानी शब्द "अगापे" का अनुवाद है। ऐसा प्रेम केवल आवेग नहीं है वरन् निस्वार्थ होकर हार्दिक रूप

से अन्य व्यक्ति का कल्याण चाहना है। सतानेवाले के लिए प्रार्थना करना अपरिवर्तित मानव स्वभाव के विरुद्ध है।

५ : ४५—परमेश्वर की संतान होना मुहाविरा है जिसका अर्थ परमेश्वर के समान होना, उसके गुण रखना है। जैसे परमेश्वर का कल्याण सब पर, बुरे या भले, समान रूप से बिना पक्षपात होता है, वैसे ही ख्रिस्ती को भी होना चाहिए। ५ : ४६—यीशु की शिक्षा में बहुधा "फल" का उल्लेख है। पद ४५ में बैरी से प्रेम रखने का फल वर्णित है। मौलिक रूप से यीशु ने यह सिखाया कि निस्स्वार्थ होकर अपने को अर्पण करना और दूसरों की सेवा करना चाहिए (उदाहरणार्थ मर. ८ : ३४)। उसकी शिक्षा के अनुसार फल काम या सेवा आदि के अनुकूल होता है। काम या सेवा फल प्राप्ति के अभिप्राय से नहीं की जाती। फल मनुष्य की क्रिया या प्रतिक्रिया का अनिवार्य परिणाम है। कर लेने वाले घूस लेने के कारण कुख्यात थे। ५ : ४७—"भाई" का अर्थ यहां सह-यहूदी है। यीशु यह बात यहूदियों के दृष्टिकोण से कहता है। यह उसका अपना दृष्टिकोण नहीं था। प्रेम जाति आदि के भेद को नहीं मानता, पक्षपात नहीं करता। ५ : ४८ स्वर्गिक पिता के समान होना (हिं. सं.) परमेश्वर की संतान होने के तुल्य है (पद ४५)। सिद्धता या पूर्णता इस प्रकार है कि वे परमेश्वर के समान सब लोगों से प्रेम रखें, चाहे लोग अच्छे हों या बुरे।

(छ) धर्मकार्य ६:१-१८

(i) दान ६:१-४

यह अंश केवल मत्ती में है। ६ : १ इस पूरे परिच्छेद अर्थात् ६ : १-१८ की भूमिका है। दान, प्रार्थना और उपवास यहूदियों में तीन मुख्य धर्मकार्य माने जाते थे, जिन पर बहुत बल दिया जाता था। इन बातों से हमें ज्ञात होता है कि उस काल में अनेक यहूदी लोग कपट से धर्मकार्य करते थे। कदाचित् तुरही बजाना मुहाविरा है, जिसका अर्थ दिखावे के लिए, लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए, ऐसा कार्य करना है। ऐसे लोगों का फल बड़ाई ही है। दाहिने और बाएं हाथ के कथन का अर्थ यह है कि अपनी भलाई पर ध्यान नहीं देना चाहिए। संभव है कि पद ४ के अंत में अनुवाद इस प्रकार होना चाहिए, "तुम्हारा पिता, जो गुप्त कार्य देखता है—"। हमारा कोई भी कार्य परमेश्वर से छिपा नहीं रहता। प्रतिफल के संबंध में ५ : ४६ की व्याख्या को पढ़िए।

(ii) प्रार्थना, गुप्त प्रार्थना, प्रभु की प्रार्थना ६:५-१५ (लू. ११ : २-४)

६ : ५-८ केवल मत्ती में है। पिछले अंश के समान यहां भी यीशु कपटियों को फटकारता है, जो धर्मकार्य इस कारण करते हैं कि लोग उन्हें देखें। सभा का अर्थ सभागृह है, जहां यहूदी लोग आराधना के समान, नियुक्त समय पर किसी भी स्थान पर नमाज़ पढ़ सकते थे। ६ : ६ में "अपनी कोठरी में जा' शब्द यश. २६ : २० (सेप.) से उद्धृत हैं, परन्तु उस स्थल के विषय से इस स्थल के विषय का कोई संबंध नहीं है। कुछ समानता २ रा. ४ : ३३ (सेप.) से भी है, जहां एलीशा द्वार बंद करके प्रार्थना करता है।

"गुप्त में देखने" के संबंध में पद ४ की व्याख्या को पढ़िए। ६ : ७—बक बक करने का अर्थ कदाचित् मंत्रों को दोहराना है। ६ : ८—प्रार्थना का यह अभिप्राय नहीं है कि हम परमेश्वर को जानकारी दें, क्योंकि वह स्वयं सब कुछ जानता है। प्रार्थना का अभिप्राय यह है कि हम परमेश्वर की उपस्थिति का अनुभव करें और उसकी इच्छा को जानें। इस अंश का अर्थ यह नहीं है कि यीशु सामूहिक आराधना के विरुद्ध था। वह पाखंड के विरुद्ध था, और चाहता था कि प्रार्थना निष्कपट हो।

६ : ९-१३—प्रभु की प्रार्थना लू. ११ : २-४ में भी, संक्षिप्त रूप में, पाई जाती है। अनेक विद्वानों की मान्यता है कि इस प्रार्थना का मूल रूप लूका में है, और मत्ती ने उस में वृद्धि की है, परन्तु संभाव्यत: दोनों रूपों में ही वृद्धि है। यह प्रार्थना लगभग इसी रूप में दूसरी शताब्दी ईसवी के लेख "दिदखे" में भी पाई जाती है, जहां यह आदेश है कि वह तीन बार प्रति दिन दोहराई जाए। परन्तु संभाव्यत: यीशु ने यह प्रार्थना जपने के लिए नहीं वरन् आदर्श के रूप में प्रस्तुत की। ६ : ९—यीशु परमेश्वर को संबोधित करते समय अरामी शब्द "अब्बा" का प्रयोग करता था (मर. १४ : ३६ की व्याख्या पढ़िए), जिस से बच्चे अपने पिता को संबोधित करते थे। यहूदी लोग साधारणत: प्रार्थना में इस शब्द का प्रयोग नहीं करते थे। "तू जो स्वर्ग में है" शब्द संभाव्यत: इस प्रार्थना के कलीसियाई प्रयोग की प्रक्रिया में जोड़े गए। स्वर्ग परमेश्वर का निवास स्थान माना जाता था, जिस के उल्लेख से परमेश्वर का लोकातीत होना व्यक्त किया जाता था। यहूदी लोग और अन्य धर्मों के लोग भी कभी-कभी परमेश्वर को पिता कहते थे। जब यीशु ऐसा कहता है तो वह एक विशेष आत्मीयता को प्रकट करता है। "हमारे" शब्द से एक विशेष सहभागिता की ओर संकेत है। यहूदियों के मुहाविरे के अनुसार किसी व्यक्ति का नाम उसके स्वभाव का प्रतीक है। परमेश्वर के नाम को पवित्र मानना परमेश्वर का आदर करना और उसको अपने जीवन में अग्रिम स्थान देना है। ६ : १०—परमेश्वर के राज्य के दो पक्ष हैं, वर्तमान पक्ष और भावी पक्ष। इस विषय पर मर. १ : १५ की व्याख्या को पढ़िए। संभव है कि "तेरी इच्छा···पृथ्वी पर भी हो" शब्द इस प्रार्थना के प्रयोग की प्रक्रिया में जोड़े गए। ये शब्द "राज्य के आने" का अर्थ स्पष्ट करते हैं। इस पद के चार यूनानी शब्द (तेरी इच्छा पूरी हो) वही हैं जो गतसमने की प्रार्थना में भी पाए जाते हैं (मत्त. २६ : ४२)। इस में भी उपरोक्त दो पक्ष संभव हैं। जहां परमेश्वर की इच्छा पूरी की जाती है वहां उसका राज्य स्थापित है। ६ : ११ से ज्ञात होता है कि भौतिक वस्तुओं के संबंध में भी प्रार्थना करनी चाहिए। हम उस यूनानी शब्द ("अपिऊसियस) का सही अर्थ नहीं जानते जिसका अनुवाद "दिन भर की" किया गया है। इस प्रार्थना को छोड़ वह शब्द यूनानी साहित्य में कहीं और नहीं मिलता। एक प्राचीन हस्तलेख के अंश के प्रबन्ध में दावा किया गया कि उस में यह शब्द है परन्तु यह दावा गलत प्रमाणित हुआ है। संभव है कि इस शब्द का अर्थ "कल की", या "यथा आवश्यकता" हो। पर इस पद का मौलिक अर्थ स्पष्ट है, अर्थात् कि आहार का दाता परमेश्वर है और हमें उस से मांगना चाहिए।

६ : १२–हिं. सं. में "अपराध" के स्थान पर "ऋणी" है। यूनानी शब्द (अफेलेमा) का शाब्दिक अर्थ निस्संदेह यही है, पर यहां अवश्य लाक्षणिक अर्थ, अर्थात् "अपराध", ठीक है। ऐसी प्रार्थना करने से पूर्व उस पर बड़े ध्यान से सोचना आवश्यक है। देखिए पद १४, १५ की व्याख्या। **६ : १३**–प्रार्थना यह है कि परमेश्वर हमें ऐसी परिस्थिति में न लाए जिस से हम परीक्षा में पड़ें। अनेक टीकाकारों की मान्यता है कि इस में उस परखने के समय की ओर संकेत है जो बहुत यहूदियों के विचार के अनुसार युगांत से पहले आनेवाला है। परन्तु संभाव्यतः सामान्य अर्थों में परीक्षा अभिप्रेत है। "हमें बुराई से बचा" लूका में नहीं है, अतः संभव है कि ये शब्द इस प्रार्थना से जोड़े गए। "बुराई" के यूनानी मूल शब्द का अर्थ "बुरे" अर्थात् "दुष्ट" या शैतान, भी संभव है, परन्तु अधिकांश विद्वान इस स्थल पर "बुराई" को ठीक अनुवाद मानते हैं। पद १३ उ, के शब्द "क्योंकि राज्य----आमीन" सर्वश्रेष्ठ हस्तलेखों में नहीं हैं, इस कारण वे मूलपाठ का भाग नहीं माने जाते। ऐसे शब्द बहुधा यहूदियों की प्रार्थनाओं में पाए जाते हैं। यहां पर ये शब्द बहुत उपयुक्त हैं।

६ : १४, १५ की तुलना मत्त. १८ : २३-३५, अक्षमाशील दास के दृष्टांत, विशेषकर पद ३५ से कीजिए। तुलना मर. ११ : २५ और उसकी व्याख्या से भी कीजिए। अक्षमाशील व्यक्ति क्षमा को नहीं समझ सकता। वह स्वयं क्षमा करने को तैयार नहीं है, इस कारण वह क्षमा ग्रहण करने में भी असमर्थ है। परन्तु मौलिक तथ्य यह है कि परमेश्वर ऐसे व्यक्ति को क्षमा करने के लिए तैयार नहीं है।

(iii) उपवास ६ : ६-१८

यह अंश केवल मत्ती में है। इसका रूप पद १, २ और ५, ६ के समान है। मत्ती ९ : १४, १५ और ११ : १८, १९ से हमें ज्ञात होता है कि यीशु उपवास करने पर बल नहीं देता था। यहां वह मान लेता है कि लोग, यहूदी होते हुए, उपवास करेंगे, और उन्हें मना नहीं करता। यहूदियों की परंपरा में उपवास को बहुत महत्त्व दिया जाता था। इस अंश का भी सार यह है कि अन्तःकरण शुद्ध हो। "मुंह बनाए रखते" के स्थान पर बुल्के का अनुवाद अच्छा है, "अपना मुंह मलिन कर लेते हैं"। सिर पर तेल मलना आनन्द मनाने का प्रतीक था।

(ज) पूर्ण आत्मसमर्पण - सच्चा धन, प्रकाश और अंधकार, चिंता-उन्मूलन ६ : १९-३४ (लू. १२ : ३३, ३४; ११ : ३४-३६; १६ : १३; १२ : २२-३१)

ये अंश लूका में भिन्न स्थलों में पाए जाते हैं। मत्ती और लूका की भिन्नताओं पर लूका की टीका में अधिक ध्यान दिया जाएगा।

६ : १९-२१ में दो प्रकार के धन में विषमता प्रकट की गई है।" काई" के मूल यूनानी शब्द (ब्रोसिस) का शाब्दिक अर्थ "खा जाना" है, अतः संभव है कि इस शब्द का अर्थ भी "कीड़ा" हो। पहले शब्द "कीड़ा" का अर्थ पतंगा है, दूसरा कोई अन्य खानेवाला कीड़ा हो सकता है, संभवतः घुन। चाहे कीड़ा हो या काई, इतना निश्चित

है कि ये कपड़ा, लकड़ी, धातु आदि को खाकर बिगाड़ते हैं। संसार का भौतिक पदार्थ सदा रहनेवाला नहीं है। स्वर्ग में का धन स्वयं परमेश्वर और उसकी सहभागिता है। जब हमारा ध्यान उस पर लगा रहता है तब हमारा वास्तविक धन सुरक्षित है।

६ : २२-२४ स्पष्ट नहीं है। मत्ती ने इसे किसी विशेष अभिप्राय से इस प्रसंग में जोड़ा होगा। संभाव्यत: कारण यह है कि "निर्मल" (हिं. सं. "ठीक", बुल्के "अच्छी") के यूनानी मूल शब्द (हप्लूस) का अर्थ "उदार" भी हो सकता है। इस प्रकार इस अंश में और संदर्भ में अनुकूलता है। उदार व्यक्ति ज्योति में है, पर वह जिसकी आंख "बुरी" है, अर्थात् वह जो कंजूस है, अंधेरे में है। **६ : २४**–वह व्यक्ति जिसकी आंख ठीक, अर्थात् उदार नहीं है दो स्वामियों की सेवा करने का प्रयत्न कर रहा है, धन और परमेश्वर की सेवा। उसकी आंख "बुरी" है। लू. ११ : ३४-३६ और १६ : १३ में इन पदों के प्रसंग भिन्न हैं।

६ : २५-३१–यह परिच्छेद लूका १२ : २२-३४ में भी पाया जाता है। इन दो स्थलों के यूनानी मूल पाठ में (लूका और मत्ती) बहुत शाब्दिक समानता है। **६ : २५** में "प्राण" के स्थान पर "जीवन" (हि. सं.) या "जीवन-निर्वाह" (बुल्के, ध. ग्र.) ठीक है। इन पदों में यीशु यह नहीं कहता कि जीवन-निर्वाह का कोई प्रबंध नहीं करना चाहिए। वह उसके संबंध में चिंता करने का निषेध करता है। वह यह भी नहीं कहता कि भोजन, वस्त्र आदि अनावश्यक हैं। मौलिक तथ्य यह है कि परमेश्वर स्वयं इन आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रबंध करता है। वह पक्षियों को देता है, और "क्या तुम उन से अधिक मूल्य नहीं रखते ? "। यह शिक्षा रब्बियों की सर्वश्रेष्ठ शिक्षा के समान है। हमें इस शिक्षा को यीशु के जीवन, मृत्यु और पुनरुत्थान के संदर्भ में देखना चाहिए। पुनरुत्थित यीशु की सहायता से ही हम ऐसे आदेशों का पालन कर सकते हैं। **६ : २७** का अनुवाद दो प्रकार से हो सकता है। हिं. सं. की पद-टिप्पणी इस प्रकार है, "अपने शरीर की लंबाई एक हाथ और बढ़ा सकता है ?"। ध. ग्र. का अनुवाद भी ऐसा है। हि. प्र. और हि. सं. दोनों अनुवाद ठीक हैं। सारांश यह है कि चिंता करने से कुछ नहीं बनता। **६ : २८-३०**–**सोसन** एक फूल है। हम ठीक से नहीं जानते कि कौन-सा फूल अभिप्रेत है, अत: हि. सं. का अनुवाद "वन-पुष्प" या बुल्के का "खेत के फूल" ठीक है। वैभव की दृष्टि से सुलैमान सब से प्रसिद्ध यहूदी राजा था। मानव की तुलना में सुंदर फूल "मैदान की घास" के समान हैं, परन्तु परमेश्वर उनके लिए प्रबंध करता है, अत: परमेश्वर पर आवश्यक आहार और वस्त्र के लिए भरोसा न रखना अविश्वास है। **६ : ३२** में यह विचार निहित है कि अन्यजाति के लोग इन वस्तुओं के संबंध में चिंता करते हैं, परन्तु सच्चे यहूदियों को, या ख्रिस्तियों को ऐसा नहीं करना चाहिए। परमेश्वर हमारी आवश्यकताओं को जानता है, अत: उस पर विश्वास करना चाहिए। **६ : ३३** में सारांश है। **परमेश्वर के राज्य की खोज करने** का अर्थ यह है कि मैं परमेश्वर को अवसर दूं कि वह अपना पूर्ण अधिकार मेरे जीवन पर स्थापित करे और कि मैं उसके प्रति सम्पूर्ण आत्मसमर्पण करूं। कदाचित् मत्ती ने "धार्मिकता" शब्द को जोड़ा। वह लूका १२ : ३१ में नहीं है। **पर-**

मेश्वर की धार्मिकता उस जीवन में पाई जाती है जिसमें परमेश्वर का राज्य स्थापित है। ६:३४—बहुत लोग "कल" की चिंता करके शारीरिक और आत्मिक रूप से अपना सर्वनाश करते हैं। इस पद के अंत में दो कथन हैं जो कुछ समान रूप में रब्बियों के लेखों में भी पाए जाते हैं। संभाव्यतः ये व्यंग्यात्मक कहावतें हैं।

(झ) दूसरों पर दोष लगाना ७ : १-६ (मर. ४ : २४; लू. ६ : ३७, ३८, ४१, ४२)

इस अंश में मत्ती का वर्णन लूका की तुलना में संक्षिप्त है।

७ : १ , २—जो व्यक्ति अन्य मनुष्य पर दोष लगाता है उस पर परमेश्वर दोष लगाएगा। विशेष रूप से परमेश्वर का न्याय युगांत-संबंधी है। पद २ उत्तरार्द्ध मर. ४ : २४ में भी पाया जाता है। यही सिद्धांत क्षमा के संबंध में ६ : १४, १५ में व्यक्त किया गया है। तुलना भ. १८ : २५, २६ से कीजिए। ऐसी शिक्षा रब्बियों के साहित्य में साधारण रूप से मिलती है। **७ : ३-५** में यीशु इन सिद्धांत को एक सजीव उदाहरण से स्पष्ट करता है। अन्य लोगों के दुर्गुणों को पहचानने की अपेक्षा अपने दुर्गुणों को पहचानना और मानना कठिन है। इस प्रकार हम में से अधिकांश लोग कपटी प्रमाणित होते हैं। जब आंख में कुछ लग जाता है तब हम ठीक से नहीं देख सकते। आंख का उल्लेख ५ : २९, ३८; ६ : २२, २३ में हुआ है, और ५ : ८ में परमेश्वर को देखने का उल्लेख है। तिनका और लट्ठा की तुलना १८ : २३-३५ के दृष्टांत के दो ऋणियों की तुलना के समान है। यहां भी मौलिक विषय क्षमा है। केवल वह व्यक्ति जिसको ख्रिस्त द्वारा जीवन-परिवर्तन का अनुभव हुआ है, इस प्रकार क्षमाशील बनकर जी सकता है।

७ : ६ का संदर्भ से संबंध स्पष्ट नहीं है। हम नहीं जानते कि इस कथन का वास्तविक संदर्भ क्या है, अतः उसका अर्थ ठीक से नहीं जान सकते। इसमें मनुष्य "कुत्ते" और "सुअर" कहे गए हैं। यहूदियों और अन्य लोगों में भी इन शब्दों को मानव पर लागू करना बड़ा अपमान माना जाता था और है। अंतिम वाक्य उलटा है—सूअर रौंदते और कुत्ते फाड़ते हैं। कदाचित् अर्थ यह है कि सुसमाचार का संदेश ऐसे लोगों के सामने नहीं सुनाना चाहिए जो उसका महत्व नहीं समझेंगे। अनेक टीकाकार मानते हैं कि यीशु ने ऐसी बात नहीं कही होगी, अतः संभवतः यह परंपरा में जोड़ा गया या परिवर्तित हुआ।

(ट) प्रार्थना के संबंध में प्रतिज्ञा, मांगो, ढूंढ़ो, खटखटाओ ७ : ७-१२ (लू. ११ : ९-१३; ६ : ३१)

मत्ती और लूका में बहुत शाब्दिक समानता है। लूका में प्रसंग प्रार्थना संबंधित शिक्षा है। यह प्रसंग बहुत उपयुक्त है।

७ : ७, ८—कदाचित् इन पदों का संबंध प्रभु की प्रार्थना से है। **मांगना, ढूंढ़ना** और **खटखटाना** सब प्रार्थना करने के लिए रूपक हैं। इन पदों का अभिप्राय इस तथ्य को प्रकट करना है कि परमेश्वर अवश्य प्रार्थना को सुनता है। रब्बियों के लेखों में

ऐसे ही रूपकों का प्रयोग किया गया है। **७ : ९-११**—रोटी और पत्थर तथा मछली और सांप के रूपकों में समानता है। यह स्पष्ट है कि कोई पिता ऐसा कार्य नहीं करेगा जो इन उदाहरणों में वर्णित है। मनुष्य, परमेश्वर की तुलना में, बुरे होते हैं, तो भी वे अपने पुत्रों को अच्छी वस्तुएं देते हैं। अवश्य स्वर्गिक पिता और भी अधिक देना जानता है। यह शिक्षा बहुत सरल और स्पष्ट है। फिर भी कितने लोग व्यावहारिक रूप से उसे नहीं मानते। कारण यह है कि उसको मानने और कार्यान्वित करने के लिए पूर्ण विश्वास आवश्यक है। इन पदों की तुलना मर. ११ : २४; यू. १४ : १३, १४; १५ : ७; १६ : २३, २४; या. १ : ५; १ यू. ३ : २२; ५ : १४, १५ से कीजिए।

७ : १२—सुवर्ण नियम। प्रसंग के साथ इसका संबंध स्पष्ट नहीं है। लूका में यह कथन "मैदान प्रवचन" में शत्रु से प्रेम रखने और लोगों को देने के संबंध में है। रब्बियों के लेखों में इस कथन का निषेधात्मक रूप मिलता है, सकारात्मक रूप नहीं। यीशु केवल यह नहीं कहता कि ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए जो हम चाहते हैं कि अन्य लोग हमारे साथ न करें। वह कुछ करने को कहता है। यह एक अत्यंत सहज नियम है, परंतु इसके पालन का प्रभाव बहुत व्यापक और गहरा है। इस पद का दूसरा भाग, जो विशेषकर यहूदियों के लिए है, लूका में नहीं है। यह नियम यहूदियों के धर्मशास्त्र का सारांश है।

(ठ) संकीर्ण फाटक, झूठे नबी—वृक्ष और फल, कथन और कर्म ७ : १३-२३

(लू. १३ : २४; ६ : ४३-४४, ४६; १३ : २६, २७)

७ : १३, १४— लूका में इसका रूप भिन्न है। वहां यीशु इस प्रश्न का उत्तर देता है कि "क्या उद्धार पानेवाले थोड़े हैं ?"। मत्ती में यह आत्मसमर्पण के संबंध में है। **दो मार्गों** की शिक्षा पुराना नियम और अन्य साहित्य में पाई जाती है, देखिए व्य. ११ : २६; ३० : १५ क.; यि. २१ : ८; दिदखे १ : १। यूहन्ना रचित सुसमाचार में यीशु मार्ग (१४ : ४ क्र.), द्वार (१९ : ७, ९), और जीवन (५ : २६; ११ : २५; १४ : ६) कहा गया है। यही तीन शब्द इन दो पदों में भी हैं। हि. सं. से ज्ञात होता है कि अनेक प्राचीन हस्तलेखों में "फाटक" शब्द केवल पद १३ पू में है। अतः हि. सं. में अनुवाद इस प्रकार है, "विशाल और सरल है वह मार्ग ", और "संकीर्ण और कठिन है वह मार्ग"'"। मौलिक अर्थ में कोई अंतर नहीं है। दो संभावनाएँ स्पष्टतः प्रस्तुत हैं। प्रत्येक व्यक्ति को चुनना है कि वह कौन सा मार्ग लेगा।

७ : १५-२०—पद १६-२० का सार लू. ६ : ४३, ४४ में है, जहां वह साधारण रूप से मनुष्य के संबंध में है। **७ : १५**—कलीसिया में **नबी** होते थे। वे प्रचारक और शिक्षक होते थे (१ कुर. १२ : १० आदि)। जैसे दो मार्ग होते हैं वैसे ही दो प्रकार के शिक्षक भी हैं। ये ख्रिस्ती हैं (भेड़ें) परन्तु कपटी हैं (भेड़िए)। वे मार्ग चलनेवालों को पथभ्रष्ट करते हैं। इनसे सावधान रहने के लिए उन्हें जांचना, परखना पड़ता है (पर दोष न लगाएं !)। भेड़ों (भ. ७८ : ५२; ८० : १; १०० : ३; यू. १० अध्याय आदि) और भेड़ियों (सप. ३ : ३; मत्त. १० : १६; यू. १० : १२; प्रे. १० : २९)

के रूपक धर्मशास्त्र में बहुधा पाए जाते हैं। ७ : १६-२०—ये पद मत्त. १२ : ३३-३५ में भी, जो लूका के उपरोक्त स्थल के समान है, पाए जाते हैं। पद १८ शब्दश: मत्त. ३ : १० और लू. ३ : ९ में भी हैं, जहां बोलनेवाला यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाला है। ऐसा प्रतीत होता है कि मत्ती ने इन शब्दों को वहां से यहाँ अंतरित किया है। पद १५ केवल मत्ती में है। उसमें लेखक के काल की कलीसिया की परिस्थिति प्रतिबिंबित है, जब ऐसे शिक्षक विद्यमान थे। मत्ती ने इस पद को यहां जोड़ा, अत: रूपक अचानक बदलता है। पेड़ों और फलों का रूपक बहुत सजीव है। पद २१ से ज्ञात होता है कि फल का अर्थ शब्द नहीं, कर्म है। केवल वह व्यक्ति जिसका अंत:करण शुद्ध है और जो परमेश्वर की इच्छा को पूरा करने के मार्ग में चल रहा है, अच्छा फल ला सकता है, अर्थात् अपने कामों से परमेश्वर को प्रसन्न कर सकता है।

७ : २१-२३—पद २१ लू. ६ : ४६ में है, परन्तु पद २२, २३ का समान स्थल अन्य प्रसंग में लू. १३ : २६, २७ में है। इस अंश का सारांश यह है कि स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करनेवाले वे हैं, जो स्वर्गिक पिता की इच्छा पर चलते हैं। संभाव्यत: यीशु के जीवनकाल में शिष्य उसको 'प्रभु' नहीं वरन् "रब्बी", "गुरुजी" कहते थे। परंपरा में यह "प्रभु" में परिवर्तित हुआ होगा। तो भी इस अंश का मौलिक अर्थ बना रहता है—अपने जीवन पर यीशु का अधिकार मानने का प्रमाण शब्दों से नहीं, कर्मों से दिया जाता है। "उस दिन" का अर्थ है, न्याय का दिन (यश. १० : २०; हो. १ : ५; आ. ९ : ११; मत्त. २४ : ३६; आदि)। "तेरे नाम से भविष्यवाणी" शब्द यि. १४ : १४ में पाए जाते हैं, जहां संदर्भ झूठी नबूवत करना है। बड़े बड़े काम और आश्चर्य-कर्म करना भी सच्चा शिष्य होने का प्रमाण नहीं है। पद २३ में "कभी नहीं जाना" का अर्थ यह है कि यीशु ने उनको अपना शिष्य कभी नहीं माना। स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करने की एक ही शर्त है, अर्थात् परमेश्वर की इच्छा पर चलना।

७ : २४-२७—लू. ६ : ४७-४९ में बहुत शाब्दिक अंतर है, परन्तु अर्थ वही है। यहां भी "सुनने" और "चलने" का विषय है (तुलना कीजिए १३ : १८-२३; २१ : २८-३२; २३ : १-३; २५ : ३१-४६)। इस जीवन में दुख, क्लेश और संकट होते हैं (वर्षा, बाढ़, आंधी), परन्तु वह व्यक्ति जो यीशु के वचन पर चलता है, इनमें दृढ़ रह सकता है। इस प्रकार न्याय के दिन भी वह सुरक्षित रहेगा। यीशु के वचन पर चलने-वाला बुद्धिमान कहा गया है, तुलना कीजिए २५ : २, जहां पांच कुंआरियां "समझदार" कही गई हैं। यूनानी शब्द (फ्रनिमस) जो यहां है, वहां भी है (हिं. सं. "बुद्धिमती)।

७ : २८-२९—पद २८ पू. में वे शब्द हैं जो मत्ती के पांचों प्रवचनों के अंत में लगभग इसी रूप में पाए जाते हैं, अर्थात् इस पद में, और ११ : १; १३ : ५३; १९ : १ और २६ : १ में। "भीड़ उसके उपदेश से" शब्दों से लेकर पद २९ के अंत तक मर. १ : २२ से उद्धृत है। केवल "भीड़" और "उनके" शब्द यहां जोड़े गए हैं। मर. १ : २१-२८ की व्याख्या को पढ़िए। मत्ती ने इस कथन के आधार पर इस प्रवचन को (अध्याय ५-७) संकलित किया। इस स्थल पर ये शब्द बहुत उपयुक्त हैं।

३. दूसरा भाग ८ : १-१० : ४२

(१) **वृत्तांत** ८ : १-९ : ३४ (अधिकतर विविध लोगों को स्वस्थ करना)

रूप-रेखा ३ (१) का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि इस वृत्तांत-भाग में मत्ती ने अधिकतर मरकुस में से अपनी सामग्री ली है, परन्तु मरकुस के क्रम के अनुसार नहीं। उसने मरकुस के भिन्न स्थलों से सामर्थ्य के कार्यों (अधिकतर स्व स्थ्य-दान) के वर्णनों को एकत्रित करके उनको कुछ अन्य सामग्री के साथ जोड़ा। वह यीशु की शिक्षा के उदाहरण दे चुका है। ४ : ३५ में यीशु के कार्यों का उल्लेख है। यहां उन कार्यों के कुछ उदाहरण दिए गए हैं। मत्ती ने मरकुस के वर्णनों को संक्षिप्त किया है। इस भाग में दस आश्चर्य-कर्मों का वर्णन है। आश्चर्य-कर्मों के तीन समूह हैं, ८ : १-१७; ८ : २३-९ : ८; और ९ : १४-३४। बीच में यीशु के प्रति निष्ठा के संबंध में दो वर्णन हैं, ८ : १८-२२ और ९ : ९-१७।

(क) कोढ़ी को स्वस्थ करना ८ : १-४ (मर. १ : ४०-४५)

८ : १ मत्ती की रचना है। वह पर्वत प्रवचन और इस वृत्तांत-भाग के बीच की कड़ी है। मत्ती ने मर. १ : ४१, ४३ और ४५ को अपने सुसमाचार में सम्मिलित नहीं किया है। इन पदों में यीशु के भावों का वर्णन और इस तथ्य का उल्लेख भी है कि उस कोढ़ी ने यीशु के आदेश का उल्लंघन करके बाहर जाकर उसका प्रचार किया। संभाव्यत: पद २ में "प्रभु" के स्थान पर "महोदय" पढ़ना चाहिए। यूनानी शब्द "कूरियस" का यह अर्थ भी है, और यहां यह अर्थ उपयुक्त है। संभव है कि मत्ती ने इस भाग को इस सामर्थ्य के कार्य से इस कारण आरंभ किया कि इसमें व्यवस्था-पालन करने का आदेश है (पद ४)। पर्वत-प्रवचन में व्यवस्था के प्रति यीशु की अभिवृत्ति व्यक्त की गई है। अत: इसका इस स्थल पर आना बहुत उपयुक्त है। मत्ती ने अपना सुसमाचार यहूदियों के लिए लिखा।

शेष व्याख्या मर. १ : ४०-४५ की टीका में है। उसको अवश्य पढ़िए।

(ख) शतपति के सेवक को स्वस्थ करना ८ : ५-१३
(लू. ७ : १-१०; १३ : २८, २९)

मत्ती और लूका के वर्णनों में बहुत अंतर है, परन्तु महत्वपूर्ण पदों, अर्थात् मत्त. ८ : ८उ–१० और लू. ७ : ६उ–९ में ऐसी शाब्दिक समानता है कि उन्हें एक ही स्रोत से मानना तर्कसंगत है। पिछले अंश के समान मत्ती ने इसको भी संक्षिप्त किया है।

८ : ५—कफरनहूम के संबंध में मर. १ : २१ की व्याख्या को पढ़िए। **शतपति** (सूबेदार) एक सहस्र सैनिकों का अधिकारी होता था। यह मनुष्य अयहूदी था। इस वर्ण को यहां सम्मिलित करने से मत्ती प्रकट यह करता है कि यीशु केवल यहूदी जाति को उद्धार देने नहीं आया। **८ : ६** में भी संभवत: "प्रभु" के स्थान पर "महोदय" ठीक है। "झोले के मारे" का अर्थ "पक्षाघात से पीड़ित" (हिं. सं.) है। **८ : ७**—यूनानी

में "मैं" शब्द पर बल दिया गया है। संभव है कि यह एक प्रश्न है—"**क्या मैं** आकर उसे चंगा करूं ?"। अन्यजाति व्यक्ति के घर में यहूदी के प्रवेश करने की प्रथा नहीं थी। यीशु जानता था कि यह शतपति इस प्रथा से परिचित था (पद ८, ९)। वास्तव में यीशु उसके घर नहीं गया। इस शतपति को पूर्ण विश्वास था कि यीशु, दूर से भी, उसके सेवक को स्वस्थ कर सकता था। **८ : १०** के यूनानी मूल पाठ में पाठांतर है। संभाव्यतः हिं. सं. का अनुवाद ठीक है, "मैंने इस्राएल में भी ऐसा विश्वास किसी में नहीं पाया"। इस्राएल में ऐसा विश्वास होना चाहिए था। यीशु का वास्तविक मनुष्यत्व इस तथ्य से प्रकट है कि उस ने अचंभा किया। इस वर्णन का अंत **८ : १३** में पाया जाता है (पद ११ और १२ अन्य स्थल से प्रक्षिप्त किए गए हैं)। ९ : २९ और १५ : २८ में भी विश्वास के संबंध में ऐसे कथन हैं। "उसी घड़ी" शब्द ९ : २२; १५ : २८ और १७ : १८ में भी पाए जाते हैं। इनमें कुछ संदेह नहीं है कि यीशु इस प्रकार लोगों को स्वस्थ करता था। शर्त केवल विश्वास करना थी।

८ : ११, १२—ये पद लूका में एक अन्य संदर्भ में पाए जाते हैं। "स्वर्ग के राज्य में बैठना" एक युगांत-संबंधी मुहाविरा है। संकेत उस युगांत-संबंधी भोज की ओर है जिसका उल्लेख २६ : २९ (मर. १४ : २५); लू. २९ : ३०; हनोक ६२ : १३-१६; २ बारूक २९ : ३-८ और २ एस्द्रास ६ : ४९-५२ (यहूदियों के प्रकाशनात्मक लेख जो धर्मशास्त्र में नहीं हैं) में हैं। यह परमेश्वर के राज्य के लिए एक रूपक है। मत्ती २२ : १-१४; २५ : १० को भी देखिए। "राज्य के पुत्र" का अर्थ यहूदी लोग है। पद १२ के अंतिम शब्द १३ : ४२, ५०; २२ : १३; २४ : ५१ और २५ : ३० में भी पाए जाते हैं। यीशु के काल में ये शब्द नरक के संबंध में प्रचलित थे। इस अंश की शिक्षा यह है कि कोई व्यक्ति यहूदी होने के कारण ही परमेश्वर के राज्य में प्रवेश नहीं करेगा। अन्यजाति भी उसमें प्रवेश कर सकते हैं। प्राचीन काल की कलीसिया के लिए यह तथ्य सीखना अत्यन्त आवश्यक था (दे. प्रे. १५ अध्याय)।

(ग) अनेक लोगों को स्वस्थ करना ८ : १४-१७ (मर. १ : २९-३४)

(घ) शिष्य बनने की उत्सुकता ८ : १८-२२ (लू. ९ : ५७-६०)

८ : १४-१७ के संबंध में मर. १ : २९-३४ की व्याख्या को पढ़िए। मत्ती ने अब तक मर. १ : २९-३४ का प्रयोग नहीं किया है। यहां वह उस स्थल के पहले भाग को संक्षिप्त रूप में सम्मिलित करता है। मत्ती का एक अभिप्राय यह प्रकट करना है कि यीशु के कामों में नबियों की भविष्यवाणियों की पूर्ति है, अतः वह पद १७ में यश. ५३ : ४ से उद्धृत शब्दों को जोड़ता है। यह उद्धरण सेप. के अनुसार नहीं, अधिकतर इब्रानी मूल पाठ के अनुसार है। मत्ती इस बात को यहां यीशु की मृत्यु पर लागू नहीं करता, परन्तु केवल उसके स्वास्थ्य-दान के कामों के संबंध में प्रस्तुत करता है। पद १६ में मत्ती के अनुसार यीशु ने आत्माओं को "अपने वचन से" निकाला। ये शब्द मरकुस में नहीं हैं। इन शब्दों के द्वारा मत्ती यीशु के अधिकार पर बल देता है।

८ : १८-२२—लूका में यह अंश एक और कथन के साथ बहत्तर शिष्यों को भेजने के वर्णन से पहले आता है। वह संदर्भ अधिक उपयुक्त है। ऐसा प्रतीत होता है कि पद १८ मर. ४ : ३५ पर आधारित है। इन पदों में "यीशु के पीछे आना" (१९, २२) कड़ी के शब्द हैं। लूका में "किसी ने" (५७) और "दूसरे से" (५९) के स्थान पर मत्ती में "एक शास्त्री" (१९) और "एक और चेले ने" (२१) शब्द हैं। कदाचित् यह शास्त्री शिष्य भी था परन्तु वह साधारण अर्थों में शिष्य था, बारह में से एक नहीं था। "हे गुरु" (१९) और "हे प्रभु" (२१) शब्द आदर व्यक्त करते हैं। संभाव्यतः इन कथनों का वास्तविक संदर्भ वह है जो लूका में है। यीशु कफरनहूम को छोड़कर यरूशलेम की यात्रा आरम्भ करनेवाला था। सचमुच उसे सिर रखने को भी स्थान नहीं था। यह पहली बार है कि "मनुष्य का पुत्र" पदवी का प्रयोग मत्ती में किया गया है। इस पदवी का स्पष्टीकरण मर. २ : १० की व्याख्या में पढ़िए। यह स्पष्ट नहीं है कि पद २१, २२ में "पिता को गाड़ने" और "मुरदों को अपने मुरदे गाड़ने देना" का क्या अर्थ है। संभव है कि इस व्यक्ति का पिता, वृद्ध होने के कारण, मरने पर था, और वह ठहरना चाहता था कि उसके मर जाने पर वह पुत्र का कर्तव्य पूरा करे। यह भी संभव है कि पद २२ का अर्थ यह है कि जो आत्मिक रूप से मुरदा हैं उन्हें मुरदों को गाड़ने दो। मौलिक अर्थ स्पष्ट है, अर्थात् यह कि यीशु अपने शिष्यों से संपूर्ण निष्ठा और आत्मसमर्पण की मांग करता है। उन्हें उस पर विश्वास करते हुए उसका अनुसरण करने के लिए तैयार होना है (तुलना १२ : ४८, ४९; १९ : २९)।

(च) आंधी को शांत करना ८ : २३-२७ (मर. ४ : ३५-४१)

मरकुस के उपरोक्त स्थल की टीका को पढ़िए। यह सामर्थ्य के कार्यों के दूसरे समूह का पहला वर्णन है। मत्ती मर. ४ : ३५ का प्रयोग ८ : १८ में कर चुका है। इस आश्चर्य-कर्म में प्रकृति पर यीशु का अधिकार प्रकट किया गया है। यहां भी मत्ती ने मरकुस के वर्णन को कुछ संक्षिप्त किया है। पद २३ में यीशु पहल करके नाव पर चढ़ जाता है। उसके शिष्य उसका अनुसरण करते हैं—तुलना कीजिए मरकुस ४ : ३६। शिष्य यीशु को साथ ले चले। इसी प्रकार यीशु को संबोधित करते समय मत्ती के अनुसार शिष्य उसे "प्रभु" कहते हैं। मरकुस में "हे गुरु" और लूका में "स्वामी" है। मरकुस के अनुसार (पद ३८) यीशु से शिष्यों के शब्दों में कुछ फटकार का तत्व है, जिसे मत्ती निकाल देता है, "हे प्रभु, हमें बचा....."। पद २७ में "वे लोग" होना चाहिए (हिं. सं.)। शिष्य अभिप्रेत हैं।

(छ) भूतग्रसितों को स्वस्थ करना ८ : २८-३४ (मर. ५ : १-२०)

मरकुस के उपरोक्त स्थल की व्याख्या को पढ़िए। मत्ती ने मरकुस के वर्णन को संक्षिप्त करके उसके बहुत से ब्योरे निकाल दिए हैं। मत्ती के सर्वश्रेष्ठ हेतलेखों में स्थान "गदरेनियों का देश" बताया गया है। इस पर मर. ५ : १ की व्याख्या को पढ़िए। इस वर्णन में मत्ती एक भूत-ग्रसित मनुष्य के स्थान पर दो का उल्लेख करता है। ९ :

२७ और २० : ३० में भी दो अंधों और २१ : २-७ में दो गदहों के वर्णन हैं, जहां मरकुस में एक एक है। दो होने के कारण हम नहीं जानते। अनेक टीकाकारों के विचार के अनुसार यहां दो होने का कारण यह है कि मत्ती ने उस अशुद्ध आत्मा-ग्रसित मनुष्य का वर्णन अपने सुसमाचार में सम्मिलित नहीं किया है जो मर. १ : २३-२६ में है। परन्तु इसकी ओर कोई स्पष्ट संकेत नहीं है। पद २९ के शब्द मर. ५ : ७ से भिन्न और कुछ अंशों में मर. १ : २४ के समान हैं। "समय से पहले" का अर्थ न्याय का दिन है जब, यहूदियों की मान्यता के अनुसार, अशुद्ध आत्माएँ नरक में डाली जाएंगी। मत्ती स्पष्ट शब्दों में इस तथ्य का उल्लेख नहीं करता कि ये मनुष्य स्वस्थ हो गए। मरकुस में इसका स्पष्ट वर्णन है।

(ज) अर्धांगी को स्वस्थ करना ९ : १-८ (मर. २ : १-१२)

मरकुस २ : १-१२ की व्याख्या को पढ़िए। मर. २ : १-१२ को भी मत्ती ने बहुत संक्षिप्त किया है। उसने छत के खोले जाने के वर्णन को निकाल दिया है। भीड़ और चार मनुष्यों का उल्लेख भी नहीं है।

९ : १—"अपने नगर" का अर्थ कफरनहूम है, जिसे यीशु ने अपने कार्य का केंद्र बनाया था—मर. १ : २१ की व्याख्या को पढ़िए। नाव, या पार चलने का उल्लेख ८ : १८, २३, २८ में हुआ है। यह उल्लेख ८ : १८-२२; ८ : २३-२७ और ८ : २८ क्र. अंशों की कड़ी है। अंत में (पद ८) मत्ती, मरकुस के वर्णन को बदलकर, लिखता है कि लोग डर गए (मरकुस और लूका "चकित हुए", परन्तु लूका में यूनानी शब्द मरकुस के शब्द से भिन्न है। लूका में भी वर्णित है कि वे बहुत डर गए) और कि परमेश्वर ने "मनुष्यों को ऐसा अधिकार दिया है"। यीशु "मनुष्य" था, परंतु संभाव्यतः उस समय की ओर संकेत है जब प्रेरितों को भी पाप क्षमा करने का अधिकार दिया जाएगा, देखिए १६ : ९; १८ : १८; यू. २० : २३।

(झ) मत्ती का बुलाया जाना ९ : ९-१३ (मर. २ : १४-१७)

(ट) उपवास का प्रश्न ९ : १४-१७ (मर. २ : १८-२२)

९ : ९-१३—मर. २ : १४-१७ की व्याख्या को पढ़िए। मत्ती में कर लेनेवाले का नाम लेवी नहीं, मत्ती बताया गया है। मरकुस और लूका में वह लेवी है। मत्ती इस वर्णन को संक्षिप्त करता है, परन्तु मत्ती पद १३ पू मरकुस में नहीं है। संभव है कि मौखिक परंपरा में यह विचार प्रचलित हो गया कि लेवी मत्ती था। परन्तु उसके दो नाम होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। अतः हम नहीं जानते कि सचमुच लेवी और मत्ती एक ही व्यक्ति के दो नाम थे या किसी कारण से इस सुसमाचार में लेवी का नाम मत्ती में परिवर्तित हुआ। इस अंश में ऐसी शाब्दिक समानता है कि अवश्य मत्ती ने इसे मरकुस में से लिया। पद १३उ का उद्धरण हो. ६ : ६ से है। वह इब्रानी मूल पाठ के अनुसार है। "तुम जाकर इसका अर्थ सीख लो" शब्दों का प्रयोग सामान्य रूप से रब्बियों के

वाद-विवाद में होता था। इस उद्धरण का अभिप्राय बलिदानों का विरोध करना नहीं वरन् दया करने की आवश्यकता पर बल देना था।

९ : १४-१७—मरकुस २ : १८-२२ की व्याख्या को पढ़िए। यह अंश भी मत्ती में संक्षिप्त है।

९ : १४ में मत्ती, वर्णन के रूप को बदलकर, लिखता है कि प्रश्न पूछनेवाले यूहन्ना के शिष्य थे। इससे वह यह प्रकट करता है कि यूहन्ना और उसके शिष्य, फरीसियों के समान, पुराने प्रबंध अर्थात् व्यवस्था के थे। यीशु द्वारा नया प्रबंध आरंभ हुआ है। **९ : १५** में मरकुस के "उपवास कर सकते हैं ?" के स्थान पर मत्ती में "शोक कर सकते हैं ?" है। कारण यह है कि उपवास विशेष रूप से शोक की अभिव्यक्ति है। शेष बातों का स्पष्टीकरण मरकुस की व्याख्या में किया गया है।

(ठ) अधिकारी की पुत्री का और उस स्त्री का, जिसने यीशु के वस्त्र को स्पर्श किया, स्वस्थ होना ९ : १८-२६ (मर. ५ : २१-४३)

(ड) दो अंधों और एक गूंगे को स्वास्थ्य-दान ९ : २७-३४
(तु. मर. १० : ४६-५२; ८ : २२-२६; ३ : २२; लू. ११ : १४, १५)

इस भाग के ये अंतिम तीन सामर्थ्य के कार्य परमेश्वर के राज्य के संस्थापन के प्रतीक हैं। पद २१ और २२ में "चंगी हो जाऊंगी" और चंगी हो गई" यूनानी क्रिया-रूपी शब्द "सोत्सेन" के अनुवाद हैं, जिसका अर्थ "उद्धार करना" भी है। इस तथ्य का संबंध १० : ७, ८ से है, जहां यीशु का आदेश है कि शिष्य प्रचार करें और लोगों को चंगा करें।

९ : १८-२६ मर. ५ : २१-४३ का संक्षेप है। ऐसा प्रतीत होता है कि मत्ती ने केवल इस वर्णन को संक्षिप्त करने के अभिप्राय से मरकुस की बहुत सामग्री को स्थान नहीं दिया। मरकुस की व्याख्या को पढ़िए।

९ : १८ पू जो कड़ी के रूप में है, मत्ती की रचना है। मरकुस में "आराधनालय के सरदारों में से एक "के स्थान पर मत्ती में" एक सरदार" है। मत्ती के पाठक यहूदी थे, अतः उन्होंने समझ लिया होगा कि यह व्यक्ति आराधनालय का अधिकारी था। मत्ती के अनुसार लड़की "अभी मरी है"। मरकुस के अनुसार स्त्री के स्वस्थ हो जाने के पश्चात् यीशु को संदेश मिलता है कि लड़की मर गई है। **९ : १९** में मत्ती ने "अपने चेलों समेत" शब्दों को जोड़ा है, और९:२० में "के आंचल" शब्द (हिं. सं. "के सिरे", बुल्के "का पल्ला") मत्ती और लू. ८ : ४४ में पाए जाते हैं। **९ : २२** में वर्णित है कि स्त्री "उसी घड़ी चंगी हो गई", जो मरकुस के वर्णन की अपेक्षा अधिक निश्चित शब्द हैं। **९ : २३** में बांसली बजानेवालों का उल्लेख है जो मरकुस में नहीं है। ये व्यावसायिक संगीतज्ञ थे जिनको विलाप के समय बुलाना यहूदियों की प्रथा थी। अंत में मरकुस और लूका के अनुसार यीशु ने आज्ञा दी कि कोई इस घटना का समाचार न सुनने पाए, परंतु मत्ती

के अनुसार "इस बात की चर्चा उस सारे देश में फैल गई"। संभव है कि दोनों बातें सत्य हों।

मत्ती ने इस वर्णन में से सब अनावश्यक ब्योरों को निकाल दिया है कि विवरण का सारांश ही प्रस्तुत किया जाए। सामग्री को छांटने में कोई विशेष धर्मविश्वास-संबंधी अभिप्राय नहीं प्रतीत होता है।

६ : २७-३१—यह अंश केवल इस सुसमाचार में है, परन्तु कुछ समानता मर. १० : ४६-५२ (मत्त. २० : २९-३४) और मर. ८ : २२-२६ से है। संभव है कि इस प्रकार की मौखिक परंपरा प्रचलित थी जो मत्ती को मिली। अनेक टीकाकारों की मान्यता के अनुसार मत्ती ने स्वयं इसको और अगले अंश को मरकुस के उपरोक्त स्थलों के आधार पर रचा। कदाचित् मत्ती ने इसमें और अगले अंश में यश. ३५ : ४-६ की पूर्ति को देखा। **६ : २७**—"दाऊद की संतान" की व्याख्या मर. १० : ४७ की टीका में देखिए। "घर" का अर्थ संभाव्यत: कफरनहूम का वह घर है जहां यीशु रहा करता था। यहां भी विश्वास करने पर बल दिया गया है (तु. मर. १० : ५) और यीशु उनकी आँखें छूता है (तु. मर. ८ : २५)। **६ : ३०**—मरकुस के विपरीत मत्ती में यीशु बिरले ही किसी को मौन रहने की चेतावनी देता है (८ : ४; १२ : १६; १६ : २०; १७ : ९)।

६ : ३२-३४—यह भी केवल मत्ती में है। कदाचित् यह मर. ३ : २२ (मत्त. १२ : २२-२४) लू. ११ : १४, १५) पर आधारित है। इसकी लू. ११ : १४, १५ से बहुत समानता है। संभाव्यत: यह Q में से है। इस भाग के अंत में भीड़ और फरीसियों की प्रतिक्रियाओं में विषमता प्रकट की गई है। "दुष्टात्माओं के सरदार" के संबंध में मर. ३ : २२ की व्याख्या को पढ़िए।

(२) प्रवचन ९ : ३५-१० : ४२

(क) प्रवचन की भूमिका - जनसमूह पर करुणा, बारह शिष्यों का चयन ९ : ३५-३८, १० : १-४

(मर. ६ : ६, ७, ३४; ३ : १६-१९; लू. १० : २)

इस अंश में मत्ती ने अनेक स्थलों से सामग्री लेकर उसे १० : ५-४२ के प्रवचन की भूमिका के रूप में प्रस्तुत किया है।

९ : ३६ पू मर. ६ : ६ पर आधारित है, और ९ : ३६ उ वही है जो मत्त. ४ : २३ में भी है। इन दो स्थलों की व्याख्या को पढ़िए। ९ : ३६ मर. ६ : ३६ के समान है—उसकी व्याख्या को देखिए। इसके अतिरिक्त भेड़ों के संबंध में शब्द १ रा. २२ : १७; २ इ. १८ : १६; यहे. ३४ : ५; ज. १० : २ में पाए जाते हैं। **९ : ३७** लू. १० : २ में भी पाया जाता है—वह Q में से है। पक्के खेत के रूपक का प्रयोग योए. ३ : १३ में किया गया है। इसका अर्थ यह है कि वह समय आया है जब लोग परमेश्वर के राज्य

में प्रवेश करने के लिए बुलाए जा रहे हैं। शिष्य और अन्य खिस्ती लोग इस फसल कटाई में कार्य करने के लिए बुलाए जाते हैं। खेत का स्वामी परमेश्वर है। उससे प्रार्थना करना है कि वह और भी लोगों को सुसमाचार-प्रचार के लिए तैयार करे।

१० : १ की समानता मर. ६ : ७ और ३ : १४; १५ से भी है। मत्ती मानता था कि पाठक जानते थे कि बारह शिष्य चुने गए थे, अतः यहां वह इस तथ्य का उल्लेख नहीं करता। मरकुस के उपरोक्त स्थलों की व्याख्या पढ़िए। १० : २—"प्रेरित" शब्द का प्रयोग मत्ती में केवल यहां किया गया है। इस प्रकार मरकुस में वह केवल ६ : ३० में पाया जाता है। मर. ६ : ३० की व्याख्या को पढ़िए, जहां इस शब्द का स्पष्टीकरण किया गया है। बारह शिष्यों की सूची के संबंध में मर. ३ : १६-१९ की व्याख्या को पढ़िए।

(ख) प्रेरितों का भेजा जाना १० : ५-१५
(मर. ६ : ८-११; लू. ९ : २-५; १० : ४-१२)

इस समस्त प्रवचन में मत्ती ने अपनी सामग्री को मरकुस, Q और अपने विशेष स्रोत से लेकर संकलित किया है। उसका अभिप्राय केवल ऐतिहासिक बातें लिखना नहीं वरन् अपने काल की कलीसिया को शिक्षा देना था। अधिकतर यहां भी वह मरकुस के क्रम का अनुसरण करता है, परंतु आवश्यकता के अनुसार उसे बदलता भी है।

१० : ५ पू मर. ६ : ७, ८ के समान है। **१० : ५उ–८** मत्ती के विशेष स्रोत में से है। यहां यह स्पष्ट आदेश है कि वे केवल यहूदियों में प्रचार करें। यहूदी लोग सामरियों का तिरस्कार करते थे। परंतु इस आदेश का अभिप्राय यह था कि पहले यहूदियों में सुसमाचार-प्रचार किया जाए, क्योंकि परमेश्वर उनके द्वारा अन्यजातियों को अपना प्रकाश देना चाहता था (यश. ४२ :६, ७; ४९ : ६, ७)। मत्त. २८ : ६-२० से हमें ज्ञात होता है कि उस कलीसिया में जिसका सदस्य होते हुए मत्ती ने अपना सुसमाचार लिखा इस आदेश का पालन नहीं होता था। संभाव्यतः मत्ती की मान्यता यह थी कि अपने पार्थिव जीवन में यीशु केवल यहूदियों में अपना कार्य करता था। २८ : १६-२० से पहले क्रूस और पुनरुत्थान का वर्णन है। इससे पूर्व केवल मत्त. ८ : ११-१२, २८-३४; १५ : २१-२८ में संकेत पाया जाता है कि यीशु ने अन्यजातियों में कार्य किया, परंतु ये तो संकेत ही हैं। **१० : ६** की तुलना ९ : ३६ और उसकी व्याख्या से कीजिए। **१० : ७, ८ पू** में यीशु के तीन कार्यों में से, अर्थात् शिक्षा देना, प्रचार करना और स्वस्थ करना (४ : २३; ९ : ३५), दो का उल्लेख है (प्रचार करना और स्वस्थ करना)। स्वर्ग के राज्य के संबंध में ३ : २ और मर. १ : १५ की व्याख्या को पढ़िए। सामर्थ्य के कार्य जिनका उल्लेख पद ८ में है, राज्य के संस्थापन के चिह्न हैं। ये सब वही कार्य हैं जो यीशु करता था। पौलुस मानता था कि प्रेरित सामर्थ्य के कार्य करेगा (२ कुर. १२ : १२), और प्रे. ९ : ३६ क्र. और २० : ७ क्रा. मरे हुओं को जिलाने के वर्णन हैं। तो भी संभव है कि यहां पर इन शब्दों का अर्थ आत्मिक रूप से मरे हुओं को सत्य जीवन दिलाना है (तुलना इफ. २ : १, २)। **१० ८ उ** का अर्थ यह है कि स्वस्थ करने का वरदान बिना मूल्य

मिला, अतः सुसमाचार-प्रचार और स्वस्थ करने के लिए रुपया नहीं लेना चाहिए। ऐसे कार्यों के लिए पारिश्रमिक का प्रश्न कलीसिया के लिए एक समस्या बन गया, देखिए २ कुर. ११:७; १ कुर. ९ अध्याय; १ तीम. ५ : १८; दिदखे १३। आतिथ्य-सत्कार करने का आदेश नया नियम में बहुधा पाया जाता है, उदाहरणार्थ रो. १२ : १३; १ तीम. ३ : २; तीत. १ : ८, इब्र. १३ : २; १ पत. ४ : ९।

१० : ९, १० मर. ६ : ८-९ से लिया गया है---उसकी व्याख्या को पढ़िए। पद १० के अंत में (तु. लू. १० : ७) यह माना गया है कि उन्हें भोजन स्वीकार करना चाहिए। उक्त वस्तुओं को ले जाने के निषेध का अभिप्राय यह था कि वे संपूर्ण रूप से परमेश्वर पर निर्भर रहना सीखें। **१० : ११-१३**---पद ११ मर. ६ : १० के समान है। उसकी व्याख्या को पढ़िए। मत्ती में ही यह शर्त है कि वे किसी योग्य व्यक्ति के यहां ठहरें। "योग्य" का अर्थ संभाव्यतः यह है कि वह व्यक्ति उन्हें अपने घर में ठहराने को तैयार है। इस अध्याय में "योग्य" कड़ी का शब्द है (यूनानी में)। यह पद १०, ११, १३ (दो बार), ३७, ३८ में पाया जाता है। पद १२ में "आशिष देना" का अर्थ संभाव्यतः "सलाम कहना", अर्थात् शांति की आशिष देना है (हिं. सं.)। "शालोम" (सलाम) अरामी में सामान्य अभिवादन था। **१० : १४-१५**--पद १४ मर. ६ : ११ से लिया गया और पद १५ Q में से है (लू. १० : १२)। मर. ६ : ११ की व्याख्या को देखिए। मत्ती ने "कि उन पर गवाही दो" शब्दों को, जो मरकुस में हैं, सम्मिलित नहीं किया। सदोम और अमोरा (उ. १९ अध्याय, यहू. ७) दुराचार के लिए और न्याय की चेतावनी होने के कारण लोकप्रसिद्ध थे। यह कथन नगर के संबंध में है, व्यक्तियों के संबंध में नहीं। यीशु और उसके संदेश को अस्वीकार करना बड़ा पाप है।

(ग) आगामी उत्पीड़न १० : १६--२५ (मर. १३ : ९-१३)

१० : १६ पू की तुलना ७ : १५ से कीजिए। १६ उ में उ. ३ : १ (सेप.) की ओर संकेत है, क्योंकि वही यूनानी शब्द दोनों में प्रयुक्त हुए हैं। शिष्यों की बुद्धिमानी में चालाकी न हो, वे निष्कपट (बुल्के) हों। इस शब्द में ये अर्थ निहित हैं। **कपोत** (कबूतर नहीं) इस प्रकार सरल और निष्कपट माना जाता है। इस पद की तुलना फिलि. २ : १५ से कीजिए।

१० : १७-२२ मर. १३ : ९-१३ से लिया गया है, अतः मत्ती के समान स्थल, अर्थात् २४ : ९-१४ में मरकुस के ये पद नहीं पाए जाते। यहां मत्ती इन कथनों को इस प्रवचन में सम्मिलित करके उन्हें अपने काल की कलीसिया पर लागू करता है। इस संबंध में मर. १३ : ९-१३ की व्याख्या को पढ़िए। **१० : १८** में हाकिम और राजा अन्यजाति थे, या अन्यजाति शासक के अधीन थे। इस प्रकार अन्यजाति के सामने प्रेरितों और कलीसिया के प्रचारकों के लाए जाने के द्वारा सामान्य रूप से उनके सामने साक्षी दी जाती थी। अन्यजातियों के संबंध में यह बात केवल मत्ती में है। **१० : २०** में मरकुस के "पवित्र आत्मा" के स्थान पर "तुम्हारे पिता का आत्मा" है। "पिता" पर-

मेश्वर है। समस्त नया नियम में यह मुहाविरा केवल इस स्थल पर पाया जाता है। **सुसमाचार-प्रचार और पवित्र आत्मा** के परस्पर संबंध के विषय में लू. २४ : ४६-४९, प्रे. १ : ८; २ : ४; १ कुर. १२ : ८; १ पत. १ : १२ को देखिए। यहां विशेष रूप से प्रचार नहीं, शिक्षा देने का विचार है।

१० : २३-२५—पद २३ और २५ उ और कहीं नहीं पाए जाते, वे मत्ती के विशेष स्रोत में से हैं। पद २५ पू लू. ६ : ४० के समान है। **१० : २३—भाग जाने** का अभिप्राय यह है कि वे अन्य स्थान में जाकर प्रचार कर सकें। पौलुस ने ऐसा किया (प्रे. १४ : ५, ६, १९-२०; १७ : ५-१०, १३-१४)। इस पद में **मनुष्य का पुत्र** यीशु ही है। यह कथन प्रकट करता है कि यीशु को विश्वास था कि युगांत शीघ्र ही होने वाला है। **१० : २४** का अर्थ यह है कि शिष्य को वही क्लेश, संकट आदि सहना पड़ेगा जो उसका गुरु सहता है। **१० : २५** पू का अनुवाद हिं. सं. में अधिक स्पष्ट है, "शिष्य का अपने गुरु के सदृश और दास का अपने स्वामी के सदृश होना ही बहुत है"। इसका स्पष्टीकरण पद २५ उ में है। मूल पाठ में, और हिं. सं. में भी, "शैतान" "बालजबूल" है। इस शब्द का अर्थ मर. ३ : २२ की व्याख्या में बताया गया है।

(घ) भय का उपचार, ख्रिस्त को मान लेना १० : २६-३३

(लू. १२ : २-९; मर. ४ : २२; ८ : ३८)

यह अंश Q में से है। यह लूका में भी पाया जाता है।

१० : २६—इस पद के समान मर. ४ : २२ भी है, जो दृष्टान्तों के सम्बन्ध में है। इस अंश में तीन बार (पद २६, २८, ३१) **न डरने** का आदेश है। न डरने का कारण यह नहीं है कि उनको कुछ हानि नहीं पहुंच सकती वरन् यह कि चाहे कुछ भी हो जाए वे परमेश्वर पिता के हाथों में सुरक्षित हैं। इस पद का संकेत पिछले अंश की ओर है, जिसमें सताए जाने का वर्णन है, परंतु अगले पदों से भी उसका संबंध है। "न कुछ छिपा. . .जाना न जाएगा"—इन शब्दों का संबंध पद २७ से प्रतीत होता है। "जो मैं. . .कहता हूं" का अर्थ वह शिक्षा है जो यीशु उन्हें एकांत में देता है। यह शिक्षा जानी जाएगी। उन्हें निडर होकर उन बातों का प्रचार करना है। **१० : २८**—इस पद से स्पष्ट ज्ञात होता है कि यीशु ने यह प्रतिज्ञा नहीं की कि उसके अनुयायी दुःख-संकट से बचेंगे। वे दुःख, संकट इत्यादि में सुरक्षित रखे जाएंगे परंतु मरने तक की नौबत आ सकती है। शारीरिक मृत्यु से नहीं डरना चाहिए। वह जो नरक में नष्ट कर सकता है, परमेश्वर है, शैतान नहीं। शैतान को ऐसा अधिकार प्राप्त नहीं है। मनुष्यों से नहीं वरन् परमेश्वर से डरना चाहिए। नया नियम में शैतान से डरने को नहीं, उसका विरोध करने को कहा गया है (१ पत. ५ : ९; इफ. ६ : ११)

१० : २९—३१—दो उदाहरणों से इस तथ्य पर बल दिया गया है कि डरने की आवश्यकता नहीं है। गौरैया एक सबसे सस्ती खाने की वस्तु थी। चाहे परिस्थिति कुछ भी हो, परमेश्वर उन लोगों को संभालता है जो उसके भक्त हैं। **१० : ३२, ३३**—

पद ३२ के आरंभ में एक छोटा सा शब्द है जिसका अनुवाद हि. प्र. में नहीं किया गया, परंतु वह हिं. सं. में है, "अस्तु जो मनुष्यों के सम्मुख. . ."। यह शब्द "अस्तु" प्रकट करता है कि यीशु को मान लेने या उससे इनकार करने का अर्थ उसकी साक्षी देना या न देना है, जिसका वर्णन इस अंश के पिछले पदों में हुआ है। न्याय के दिन यीशु ऐसे लोगों को मानेगा या नहीं मानेगा। संभाव्यतः अर्थ यह भी है कि वे न्यायालय में सताए जाते समय भी यीशु को मान लेते हैं। मत्ती के काल में संभव था कि ख्रिस्ती होने के कारण किसी पर मुकद्दमा किया जाए। पद ३३ के समान मर. ८ : ३८ है, परंतु भिन्नताएं भी हैं। इन दो पदों में एक प्रकार का नियम व्यक्त किया गया है। लोग अपने वास्तविक रूप में परमेश्वर के सामने प्रकट किए जाते हैं।

(च) शांति नहीं परंतु तलवार १० : ३४-३९

(लू. १२ : ५१-५३; १४ : २६, २७; १७ : २३; मर. ८ : ३४, ३५)

१० : ३४-३६ में उस कथन का संक्षेप है जो लू. १२ : ५१-५३ में पाया जाता है। पद ३५, ३६ मी. ७ : ६ पर आधारित हैं। मीका अपने काल (आठवीं शताब्दी ई. पू. का उत्तरार्द्ध) के दुर्गुणों का वर्णन करता है। मत्ती और लूका के अनुसार यीशु मीका के शब्दों का प्रयोग करके प्रकट करता है कि यीशु के प्रति निष्ठा के आधार पर लोगों में विरोध हो जाएगा। यह वह विरोध है जो अंधकार और ज्योति में अनिवार्य रूप से होता है। निस्संदेह अन्य लोगों के साथ शांति रखना एक ख्रिस्तीय गुण है, परंतु यदि ऐसा करने से दुराचार में भागी होना पड़े तो सच्चे ख्रिस्ती के लिए यह असंभव हो जाता है। यीशु के प्रति निष्ठा के आधार पर विभाजन होना अनिवार्य है। यहां पर "**तलवार**" शब्द का प्रयोग प्रतीकात्मक है—तलवार बैर का प्रतीक है। यीशु ऐसा विभाजन नहीं चाहता परंतु मानव स्वभाव के हठीलेपन के कारण ऐसा हो जाता है।

१० : ३७-३९—पद ३७, ३८ लू. १४ : २६, २७ और पद ३९ लू. १७ : ३३ में पाए जाते हैं। पद ३९ की तुलना मर. ८ : ३४, ३५=मत्त. १६ : २४, २५=लू. ९ : २३, २४ और यू. १२ : २५ से कीजिए। **१० : ३७** में यीशु का कथन बहुत स्पष्ट है। यीशु के अनुयायी के लिए यह अत्यावश्यक है कि वह यीशु को ही अपने जीवन में अग्रिम स्थान दे। लूका में यह कथन और भी अधिक सुस्पष्ट है—लूका की टीका में देखिए। **पद ३८, ३९** के संबंध में मर. ८ : ३४, ३५ की व्याख्या को पढ़िए। संभाव्यतः उन सब स्थलों का आधार, जहां यह शिक्षा पाई जाती है, यीशु का एक ही कथन है। यहां शाब्दिक रूप में कुछ भिन्नता है, परंतु मौलिक अर्थ एक ही है।

(छ) प्रतिफल १० : ४०-४२ (मर. ९ : ३७, ४१; लू. १० : १६)

इस प्रवचन के अंत में ये कथन उन लोगों पर लागू हैं जो ख्रिस्तीय प्रचारकों की सेवा करते हैं। **१० : ४०** मर. ९ : ३७ के समान है। यू. १२ : ४४, ४५ और १३ : २०. से भी तुलना कीजिए। यहां इसका अर्थ वे लोग हैं जो उपरोक्त प्रचारकों का आतिथ्य-

सत्कार करते हैं। **१० : ४१** केवल मत्ती में है। संभव है कि साधारण अर्थों में यीशु ने शिष्यों को "नबी" (हि. प्र. भविष्यवक्ता") कहा, परंतु संभाव्यत: इस में कालांतर के ख्रिस्तीय नबियों का विचार है, जो सुसमाचार के लेखक के समय होते थे (जैसे १ कुर. १२ : २८)। **१० : ४२** मर. ९ : ४१ के समान है। यहां "छोटों" से अभिप्रेत शिष्य हैं। **पुरस्कार** या प्रतिफल का उल्लेख इस अंश में तीन बार हुआ है। यह शब्द मत्ती में ५ : २२, ६ : १, २, ५, १६ में भी पाया जाता है। पुरस्कार की प्रतिज्ञा प्रोत्साहन देने के अभिप्राय से नहीं की जाती है कि मानो उसी के कारण भला कार्य करना चाहिए। मौलिक रूप से पुरस्कार इस तथ्य का निश्चय है कि हमने परमेश्वर की इच्छा की पूर्ति की है।

४. तीसरा भाग ११ : १—१३ : ५२

(१) वृत्तांत और वाद-विवाद ११ : १-१२ : ५०

अधिकतर मत्ती के वृत्तांत भागों में वृत्तांत ही होता है, परंतु इस भाग में अन्य सामग्री भी काफी है। रूपरेखा को देखिए, जिससे उपरोक्त तथ्य प्रकट हो जाता है। रूपरेखा से यह भी ज्ञात होता है कि अध्याय ११ में मरकुस की कोई बात नहीं है, वे सब Q या मत्ती के निजी स्रोत में से हैं। अध्याय १२ फिर मरकुस, Q और मत्ती के निजी स्रोत का मिश्रण है। इस समस्त भाग का मुख्य विषय विश्वास और अविश्वास है। यह तथ्य आरंभ में प्रकट किया जाता है। संभव है कि यूहन्ना कुछ अविश्वास व्यक्त करता है (११ : ३), और यीशु कहता है, "धन्य है वह जो मेरे कारण ठोकर न खाए।" यहां बुल्के का अनुवाद ठीक अर्थ व्यक्त करता है, "जिसका विश्वास मुझ पर से नहीं उठ जाता है"। इस भाग में ऐसी घटनाएं और कथन चुने गए हैं जो यहूदियों के अविश्वास को प्रकट करते हैं। १२ : १८ और २२ में अन्यजातियों का उल्लेख है। इस भाग से आरम्भ करके यह दिखाया जाता है कि इस्राएल को छोड़कर परमेश्वर एक नया इस्राएलतैयार कर रहा है जिसमें अन्यजातियां भी सम्मिलित होंगी।

(क) संक्रांति-सूत्र, यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाले का प्रश्न, यूहन्ना का चित्रण ११ : १-१५ (लू. ७ : १८-२८; १६ : १६)

११ : २ ११ लू. ८ : १८-२८ के बराबर है। वह Q में से है। मत्ती ने उसे कुछ संक्षिप्त किया है। ११ : १२, १३ लू. १६ : १६ के समान है, परंतु ११ : १४, १५ केवल मत्ती में हैं। इस स्थल में मत्ती और लूका में बहुत शाब्दिक समानता है।

११ : २-६—इसमें कोई संकेत नहीं है कि यूहन्ना ने संदेह करने के कारण यह प्रश्न पूछा। संभव है कि यीशु के बपतिस्मे के समय वह पूर्ण रूप से नहीं पहचान सका कि यीशु कौन था। अनेक विद्वान ३ : १४, १५ की ऐतिहासिकता पर संदेह करते हैं। यह भी संभव है कि ३ : १४, १५ एक ऐसे स्रोत में से था जो Q परंपरा से अपरिचित था। यदि यह ठीक है तो संभवत: यूहन्ना ने बड़ी आशा से यह प्रश्न पूछा। परंतु मत्ती की रुचि यूहन्ना में कम, यीशु में अधिक थी। मुख्य बात यह है कि यीशु के

कार्य प्रकट करते हैं कि वह कौन है। "मसीह" (ख्रिस्त) शब्द यहां एक पदवी है, जैसे १ : १७; २ : ४; १६ : १६, २०; २२ : ४२; २३ : १०; २४ : ५, २३ और २६:६३ में भी है। **११ : ३** में "आनेवाला" का अर्थ ख्रिस्त प्रतीत होता है, परंतु कोई प्रमाण नहीं मिलता कि यह शब्द एक प्रचलित पदवी था। ३ : ११ से तुलना कीजिए और भ. ११८ : २६ को देखिए। **११ : ५** में उन कामों का उल्लेख है जिनका वर्णन ८ और ९ अध्यायों में किया गया है। इस सूची के शब्द यश. २९ : १८, १९; ३५ : ५, ६; ४२ : १८; और ६१ : १ से उद्धृत हैं। इन सबका चरम बिंदु है, "कंगालों को सुसमाचार सुनाया जाता है" (यश. ६१ : १)। सामर्थ्य के कार्य राज्य के प्रचार के चिह्न हैं। **११ : ६**—इस अंश की व्याख्या का आरंभ देखिए। यहां अर्थ विश्वास के प्रति ठोकर खाना है—"जो मेरे विषय में भ्रम में नहीं पड़ता' (हिं. सं.)।

११ : ७-११—इसमें और लू. ७ : २४-२८ में बहुत शाब्दिक समानता है। उस जंगल में जहां यूहन्ना रहा करता था, सरकंडे बहुत होते थे, परंतु ये देखने योग्य नहीं थे। हिलते हुए सरकंडे का अर्थ संभाव्यतः ढुलमुल व्यक्ति है। यूहन्ना ऐसा नहीं था, न ही वह कोमल वस्त्र धारण किए हुए व्यक्ति था, ३ : ४ को देखिए। उसके वस्त्र से ही पता चलता था कि वह नबी था। यूहन्ना भविष्यवक्ता से अधिक था, क्योंकि उसमें भविष्यवाणियां पूरी होने लगी थीं (पद ९))। **११ : १०** में मत्ती इस तथ्य के प्रमाण के लिए मल. ३ : १ को प्रस्तुत करता है। यह पद यशायाह के उद्धरण के साथ मर. १ : २ में पाया जाता है, परंतु मत्ती ने ३ : ३ में, जहां वह मरकुस का अनुसरण करता है, इसको छोड़ दिया। मर. १ : २ की व्याख्या को देखिए। **११ : ११** में यूहन्ना और "स्वर्ग के राज्य में छोटे से छोटे" में विषमता प्रकट की गई है। अनेक टीकाकार मानते हैं कि "स्वर्ग का राज्य" का भावी पहलू अभिप्रेत है, परंतु इस मान्यता में यह विचार निहित है कि यूहन्ना उस राज्य में प्रवेश नहीं करेगा। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि इसका अर्थ यह है कि यूहन्ना, पुराने प्रबंध का नबी होने के नाते, उस नवजीवन से परिचित नहीं था जो ख्रिस्त पर विश्वास करनेवाला, चाहे वह कितना ही साधारण व्यक्ति क्यों न हो, जानता है। ऐसा व्यक्ति स्वर्ग के राज्य में जीते जी प्रवेश कर चुका है।

११ : १२-१५—पद १२ लू. १६ : १६ में है। १३-१५ केवल मत्ती में हैं। ११ : १२ का अर्थ स्पष्ट नहीं है। संभव अर्थ इस प्रकार हैं : (i) धर्मी लोग बड़े प्रयत्न और कष्ट से राज्य में प्रवेश करते हैं। (ii) उन क्रांतिकारी यहूदियों का वर्णन है जो बलपूर्वक परमेश्वर के राज्य की स्थापना करना चाहते थे, जैसे जेलोतेस दल। (iii) विरोधी प्रयत्न करते हैं कि राज्य स्थापित न होने पाए। (iv) परमेश्वर का राज्य बलपूर्वक विजयी होता है। इनमें से (i) प्रसंग के अनुकूल है। हिं. सं. का अनुवाद, "यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाले के दिनों से अब तक स्वर्ग-राज्य में बलपूर्वक प्रवेश हो रहा है, बल प्रयोग करनेवाले उस पर अधिकार कर रहे हैं", और बुल्के का अनुवाद, "योहन बपतिस्मा के समय से आज तक लोग स्वर्गराज्य के लिए बहुत प्रयत्न कर रहे हैं, वह उस पर अधिकार प्राप्त करते हैं", इस प्रकार हैं। फिर भी हमें पूर्ण निश्चय नहीं हो सकता

कि उपरोक्त संभव अर्थों में से कौन सा ठीक है। यह नहीं कहा जा सकता है कि सुसमाचार का विरोध नहीं होता था। परंतु यह सच है कि राज्य में प्रवेश बलपूर्वक होता है। वह प्रवेश करनेवाले के जीवन को उलटा पुलटा कर देता है। ११ : १३, १४—यूहन्ना के काल तक तैयारी का समय था। एलिय्याह के सम्बन्ध में मर. ६ : १५; ६ : ११-१३ की व्याख्या को देखिए। १७ : १२, १३ में भी कहा गया है कि यूहन्ना एलिय्याह है। वह एलिय्याह का सा नबी था। इस स्थल में इसका महत्व यह है कि लोगों की मान्यता थी कि ख्रिस्त के काल से पूर्व ही एलिय्याह लौटेगा।

(ख) समकालीन लोगों की आलोचना, अविश्वासी नगर ११ : १६-२४
(तु. लू. ७ : ३१-३५; १० : १३-१५)

इस स्थल में मत्ती और लूका में बहुत शाब्दिक समानता है।

११ : १७-१६—इसमें बच्चों के खेल की उपमा है। ये बच्चे आपस में झगड़ा करते हैं क्योंकि उनमें से अनेक विवाद का खेल, परंतु दूसरे मृतक-क्रिया का खेल खेलना चाहते हैं। यह भी संभव है कि बच्चों के शब्द झगड़े के न हों वरन् ऐसे शब्द जो वे अपने खेल में दोहराते हैं। यीशु का अर्थ यह है कि यहूदी लोग यूहन्ना से और यीशु से भी अप्रसन्न थे, यद्यपि यीशु और यूहन्ना में विषमता थी। यूहन्ना सन्यासी था, परंतु यीशु साधारण सामाजिक जीवन में भागी होता था (उदाहरणार्थ ८ : १५; ९ : १०; २६ : ६; लू. ७ : ३६; १० : ३८ क्र.; १४ : १; १५ : २), तो भी लोगों ने दोनों को अस्वीकार किया। "इस समय के लोग" (पद १६) का अर्थ यीशु के समकालीन यहूदी है। ११ : १९ में संभाव्यतः "मनुष्य का पुत्र" "मैं" के समानार्थक शब्द हैं। इस पद के अंतिम वाक्य का अर्थ स्पष्ट नहीं है। सबसे सरल व्याख्या यह है कि परमेश्वर का ज्ञान, जो परमेश्वर स्वयं है, यूहन्ना और यीशु के कामों के द्वारा सत्य प्रमाणित होता है, देखिए बुल्के का अनुवाद, "किंतु ईश्वर का विधान परिणामों द्वारा उचित प्रमाणित हुआ है"। लूका में "कामों" के स्थान पर "संतानों" है। लू. ७ : ३५ की व्याख्या को देखिए।

११ : २०-२४—पद २० और २४ केवल मत्ती में हैं। पद २२, २३ लगभग शब्दशः लू. १० : १३-१५ के समान हैं। लूका में यह अंश बहत्तर को भेजने के प्रसंग में है।

११ : २० यह पद मत्ती की अपनी रचना है और ११ : १६-१९ तथा ११ : २२-२३ अंशों के बीच कड़ी स्वरूप है। इस अंश में तीन बार "सामर्थ्य के कार्यों" का उल्लेख है (२०, २१, २३)। ये परमेश्वर की सामर्थ्य के प्रकटीकरण थे, अतः देखनेवालों को उनमें परमेश्वर का हाथ पहचानना चाहिए था। **११ : २१**—खुराजीन लगभग तीन किलोमीटर कफरनहूम के उत्तर की ओर स्थित था। इस नगर का उल्लेख केवल इस स्थल और लूका के समान स्थल में पाया जाता है। बैतसैदा का उल्लेख मर. ६ : ४५ और ८ : २२ में है। वह गलील की झील पर उस स्थान से लगभग डेढ़ किलोमीटर

पूर्व की ओर स्थित था जहां यरदन नदी झील में ओझल हो जाती है। सूर और सैदा फिनीके लोगों के प्रसिद्ध प्राचीन नगर थे, जिनके विरुद्ध नबुवतें की गईं, जैसे आ. १ : ९; यश. २३; योए. ३ : ४, आदि (देखिए "बाइबल ज्ञान-कोश, "सोर" और "सीदोन")। टाट और राख विलाप और पश्चाताप के चिह्न माने जाते थे (योन. ३ : ६)। **११ : २३—कफरनहूम** का उल्लेख ४ : १३; ८ : ५; ९ : १ और १७ : २४ में भी है। वह यीशु के कार्य का केन्द्र था। इस पद के शब्द यश. १४ : १३ और १५ से उद्धृत हैं, परन्तु उनका अनुकूलन इस अंश की सामग्री से किया गया है। यशायाह में वे पद बाबुल के सम्बन्ध में लिखे गए। **११ : १४** में और १० : १५ में समानता है—१० : १५ की व्याख्या को देखिए। **सूर, सैदा** और **सदोम** दुराचार के प्रतीक माने जाते थे, परन्तु यीशु का कहना है कि उन नगरों की दशा, जहां उस ने सामर्थ्य के काम किए जिनको उन्हों ने पहचाना नहीं, उन प्राचीन नगरों की दशा से अधिक बुरी थी। कफरनहूम का पाप अहंकार बताया गया है। न्याय के दिन ये सब नगर उचित दंड पाएंगे।

(ग) पिता को धन्यवाद, पिता और पुत्र, बोझ से दबे हुओं को आश्वासन
११ : २५-३० (लू. १० : २१, २२)

इस अंश में भी मत्ती और लूका के वर्णन एकसे हैं, परंतु पद २८-३० केवल मत्ती में हैं।

११ : २५—"उसी समय" का अर्थ ज्ञात नहीं हो सकता क्योंकि मत्ती और लूका के संदर्भ भिन्न हैं, और हम नहीं जानते कि Q में इस कथन का संदर्भ क्या था। "प्रभु मैं तेरा धन्यवाद करता हूँ" शब्द सी. ५१ : १ के समान हैं, और "स्वर्ग और पृथ्वी के प्रभु" शब्दशः तो. ७ : १८ के समान है। ये दो पुस्तकें सीरख और तोबित अपक्रिफा, अर्थात् ज्ञानवर्धक ग्रंथ में हैं। इस संदर्भ में "इन बातों को" का अर्थ यीशु के सामर्थ्य के कार्यों का महत्व है, परंतु यह संभव है कि वास्तविक संदर्भ यह नहीं है, और इन शब्दों का तात्पर्य इससे अधिक विस्तृत हो, उदाहरणार्थ संपूर्ण सुसमाचार। यीशु का धन्यवाद इस कारण नहीं है कि परमेश्वर का ज्ञान बुद्धिमानों से गुप्त है, परंतु इस कारण कि वह "बालकों", अर्थात् साधारण लोगों पर प्रकट है। तुलना कीजिए यश. २९ : १४, जिसका उद्धरण १ कुर. १ : १९ में है। **११ : २७**—ऐसे कथन यूहन्ना रचित सुसमाचार में पाए जाते हैं, उदाहरणार्थ यू. ७ : २९; १० : १४, १५। अतः अनेक विद्वानों की मान्यता है कि यह कथन यीशु का नहीं है, वरन् कलीसिया की रचना है। यह अधिक संभव है कि यीशु का अपना कथन इस प्रकार था, परंतु कलीसिया ने उसे यही शाब्दिक रूप दिया। "सब कुछ" का अर्थ परमेश्वर और सृष्टि का पूर्ण ज्ञान है। यीशु अनुभव करता था कि पिता ने यह ज्ञान मुझे सौंप दिया है। इसका अर्थ आत्मिक ज्ञान है, आधुनिक विज्ञान नहीं। "सौंप देना" का शाब्दिक अर्थ ज्ञान अथवा एक परंपरा को सौंपना है। यीशु को, मनुष्य होते हुए, परमेश्वर का ऐसा ज्ञान प्राप्त था जैसा किसी अन्य व्यक्ति को नहीं। वह इस ज्ञान को दूसरों पर प्रकट कर सकता है।

११ : २८-३०—इस में मज़दूर आदि जैसे लोगों का वर्णन नहीं है। "जूआ"

और "बोझ" का अर्थ व्यवस्था-पालन की मांग है। २३ : ४ को भी देखिए। रो. ७ अध्याय से हमें ज्ञात होता है कि पौलुस इसे कैसा बोझ अनुभव करता था। यीशु उन सबको बुलाता है जो अपने प्रयत्न और किसी प्रकार के व्यवस्था-पालन से उद्धार प्राप्त करने की धुन में हैं। व्यवस्था आदि का जूआ कड़ा है, यीशु का जूआ है सहज। व्यवस्था का बोझ भारी है, यीशु का बोझ है हलका। कारण यह है कि अपनी शिक्षा के साथ यीशु स्वयं को भी देता है—"मेरे पास आओ"। **११ : २८** की तुलना यिर. ३१ : २५ से कीजिए। **११ : २९** के शब्द, "तुम अपने मन में विश्राम पाओगे" यि. ६ : १६ से उद्धृत हैं। कितने ख्रिस्ती लोग भी ख्रिस्त के अनुसरण को एक "धर्म" या "व्यवस्था" समझकर बोझ से दबे हुए हैं, क्योंकि वे अनुभव करते हैं कि यीशु की मांगें पूरी करना असंभव है। कारण यह है कि उन्होंने ख्रिस्त की उपस्थिति का अनुभव नहीं किया है, केवल उसकी शिक्षा पर चलने का प्रयत्न कर रहे हैं। वे "उसके पास" नहीं आए हैं।

(घ) **सबत पालन का प्रश्न १२ : १-८** (मर. २ : २३-२८)

इस अंश की मुख्य व्याख्या मर. २ : २३-२८ की टीका में की गई है। उसको पढ़िए। मत्ती ने थोड़े से शाब्दिक परिवर्तन करके मरकुस का अनुसरण किया है। उस ने मर. २ : २६ में अबियातार के ग़लत उल्लेख को छोड़ा है, और मरकुस के पद २७ को भी सम्मिलित नहीं किया। लूका ने भी इन दो स्थलों को छोड़ा है।

मत्ती ने ५ : १७ में लिखा, "यह न समझो कि मैं व्यवस्था या भविष्यवक्ताओं को लोप करने आया हूं"। इस अंश में इस सिद्धांत का एक उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। मत्ती ने १२ : ५-७ को इस वर्णन में जोड़ लिया है। **दाऊद** का वर्णन (पद ३, ४) १ शमूएल २१ : १-६ में है, जिसे यहूदी लोग नबियों की पुस्तकों में गिनते थे। **१२ : ५** का संकेत गि. २८ : ९, १० की ओर है, और **१२ : ४** में लै. २४ : ५-७ का संकेत है। ये दोनों स्थल व्यवस्था में हैं। इनमें वर्णित है कि याजक सबत के दिन काम करते थे; फिर भी वे निर्दोष रहते थे। याजक मंदिर की सेवा करते थे, परंतु यीशु मंदिर से भी महान है। यहूदी लोग मंदिर की महानता को बहुत मानते थे (पद ६)। इसकी तुलना १२ : ४१, ४२ से कीजिए। **१२ : ७** में इस सिद्धांत के समर्थन के लिए हो. ६ : ६ से उद्धरण प्रस्तुत है जो शब्दशः सेप. के अनुसार है। इसका उल्लेख ९ : १३ में भी हुआ है। दया व्यवस्था और नबियों की पूर्ति है (७ : १२; २२ : ३४-४०)। ऐसा प्रतीत होता है कि मत्ती ने भिन्न स्थलों से पद ५-७ के कथनों को लेकर उनको इस अंश में सम्मिलित किया है।

(च) **सूखे हाथवाले को स्वास्थ्य-दान और सबत पालन १२ : ९-१४** (मर. ३ : १-६; लू. १४ : ५)

मरकुस के उपरोक्त स्थल की व्याख्या पढ़िए। इस अंश में भी सबत-पालन का प्रश्न है। मत्ती ने मर. ३ : ३ को और ४ उ और ५ पू के प्रश्नों को निकाल दिया है। उसने पद ११, १२, जो मरकुस में नहीं है, जोड़ लिए हैं। ये पद लू. १४ : ५ के

समान हैं, परंतु काफी शाब्दिक भिन्नता है। इन लुप्तियों और इस संयोजन के कारण मत्ती ने अनेक अन्य शाब्दिक परिवर्तन भी किए हैं। उसके अनुसार फरीसियों ने (पद १४ से ऐसा प्रतीत होता है कि पूछनेवाले फरीसी थे) यीशु से प्रश्न पूछा। मरकुस के अनुसार वे "उसकी घात में लगे हुए थे"। **१२ : ११, १२** में ऐसा तर्क है जैसे रब्बियों के लेखों में पाए जाते थे। इन तर्कों में प्रश्न प्रतिप्रश्न होता था। रब्बियों के लेखों में संकेत हैं कि इस प्रकार पशुओं को सबत के दिन बचाना उचित माना जाता था।

(छ) परमेश्वर का सेवक १२ : १५-२१ (मर. ३ : ७, १०, १२)

इस अंश में मत्ती ने मर. ३ : ७-१२ का सारांश लिखकर उस में यश. ४२ : १-४ को जोड़ा है। पद १५ और १६ मर. ३ : ७, १० और १२ से लिए गए हैं।

१२ : १५ में मत्ती प्रकट करता है कि जब विरोध होने लगा (पद १४) तब यीशु अलग हो गया। वह मरकुस के इस विचार का अनुसरण करता है कि यीशु नहीं चाहता था कि उसका यश फैल जाए (मर. १ : १५ की व्याख्या को देखिए)। ऐसा आदेश मत्ती के चार अन्य स्थलों में भी पाया जाता है, अर्थात् ८ : ४; ९ : ३०; १६ : २०; १७ : ९। **१२ : १७** में मत्ती का उद्धरण-सूत्र है (१ : २२ की टिप्पणी को देखिए)। **१२ : १८-२१** में मत्ती का सबसे लम्बा उद्धरण है। वह यश. ४२ : १-४ से उद्धृत है। यह उद्धरण न इब्रानी न सेप. के मूलपाठ से लिया गया है, वरन् अनेक प्राचीन पाठों का मिश्रण है। हिन्दी पुराना नियम में यश. ४२ : १-४, और मत्ती के इस स्थल की तुलना कीजिए, तो यह तथ्य स्पष्ट हो जाएगा। इसके संबंध में दो मुख्य मान्यताएं हैं : (i) कि मत्ती ने स्वयं अनेक पाठों का प्रयोग करके उनको ऐसे मिलाया कि इस उद्धरण को अपने अभिप्राय के अनुसार बनाए। (ii) कि मत्ती को वह इस मिश्रित रूप में मिला और उसने उसका प्रयोग किया, क्योंकि वह उसके अभिप्राय के अनुकूल था। उसका अभिप्राय यह प्रकट करना प्रतीत होता है कि यीशु ने नम्रता और शांति से अपना कार्य किया (पद १५, १६)। यशायाह में यह स्थल "दु:खी दास" के वर्णनों में से एक है, जिनको कलीसिया ने यीशु पर लागू किया। ३ : १७ और मर. १ : ९-११ की व्याख्या को पढ़िए।

१२ : १८—**अन्यजातियों** के संबंध में १० : १८ को देखिए। पद २८ में वर्णित है कि यीशु के कार्य पवित्र आत्मा द्वारा किए जाते थे। **१२ : १९**—"न झगड़ा करेगा" शब्द न इब्रानी में हैं न सेप. में। चाहे मत्ती ने मूल शब्द को बदलकर इस वाक्य का अनुकूलन अपने अभिप्राय से किया या वह उसको ऐसे परिवर्तित रूप में मिला, संभाव्यतः इस संदर्भ में "न झगड़ा करेगा" का अर्थ यह है कि यीशु इस समय फरीसियों के साथ वाद-विवाद नहीं करेगा। **१२ : २०** भी यीशु की नम्रता और करुणा को व्यक्त करता है।

(ज) यीशु और बालजबूल १२ : २२-३२ (मर. ३: २०-३०; लू. ११ : १४-२३; १२ : १०)

. यह अंश मर. ३ : २०-३० पर आधारित है, परंतु मत्ती में कुछ सामग्री है जो

लूका में भी है परंतु मरकुस में नहीं है। उन स्थलों में जो तीनों सुसमाचारों में हैं कहीं कहीं मत्ती और लूका में समानता है, परंतु दोनों मरकुस से भिन्न हैं। कदाचित् इस वर्णन का अधिक भाग Q में था।

मर. ३ : २०-३० की व्याख्या को पढ़िए।

१२ : २२-२४—इसमें से पद २२-२४ पू मरकुस में नहीं हैं। इस घटना में और ९ : ३२-३४ में बहुत समानता है। उसकी व्याख्या को पढ़िए। ९ : ३२-३४ में वर्णित मनुष्य केवल गूंगा था। इस अंश में लोगों का एक प्रश्न है जो ९ : ३२-३४ में नहीं है, "यह दाऊद-पुत्र तो नहीं है ?" (हिं. सं.)। "दाऊद-पुत्र" का उल्लेख ९ : २७ में भी हुआ है। उसका स्पष्टीकरण मर. १० : ४६ की टीका में किया गया है। "शैतान"="बालजबूल" के लिए १० : ३५ और मर. ३ : २२ की व्याख्या को देखिए।

१२ : २५ पू Q से है, वह मरकुस में नहीं है। **१२ : २७, २८** भी Q में से हैं। "तुम्हारे वंश" (हिं. सं. "तुम्हारे पुत्र" अधिक सटीक है) का अर्थ है, "तुम्हारे शिष्य", अर्थात् यहूदी अपदूप-निरासक, ओझा। यदि इनसे पूछा जाता तो वे कहते कि हम परमेश्वर की सहायता से भूत निकालते हैं। इस प्रकार वे फरीसियों के न्यायकर्त्ता होते। परमेश्वर का आत्मा ही है जो यीशु में काम करके दुष्टात्माओं को निकालता था (आत्मा का उल्लेख १ : २०; ३ : १६; ४ : १; १० : २०; और १२ : १८ में भी देखिए)। यीशु का अपदूत-निरासन प्रकट करता है कि परमेश्वर राज्य कर रहा है, उसका राज्य स्थापित हो रहा है। यहां मत्ती ने "स्वर्ग-राज्य" नहीं, "परमेश्वर का राज्य" लिखा है। इस प्रकार १९ : २४; २१ : ३१, ४३ में भी है। कदाचित् इस पद में कारण यह है कि परमेश्वर के राज्य और शैतान के राज्य (पद २६) में विषमता प्रकट करना अभिप्रेत है। परमेश्वर के राज्य के संबंध में मर. १ : १५ की व्याख्या को पढ़िए।

१२ : २९ की टीका के लिये देखिए मर. ३ : २७ की व्याख्या। **१२ : ३०** भी Q में से है। कद चित् यह कथन किसी अन्य प्रसंग से Q में जोड़ा गया। यहां इसका संकेत उन लोगों की ओर है जो यह कहकर कि यीशु के कार्य शैतान के कार्य थे उनमें बाधा डाल रहे थे। यह कथन विपरीत रूप में मरकुस ९ : ४० में हैं। इस पद की टीका के लिये मर. ९ : ४० की टीका देखिए। **१२ : ३२** भी Q में से है (**१२ : ३१** मरकुस से है—ये पद एक ही बात को दोहराते हैं)। "मनुष्य का पुत्र" का अर्थ यीशु स्वयं है। कदाचित् इस कथन का अर्थ यह है कि पार्थिव यीशु के विरुद्ध कुछ कहना क्षमा हो सकता है, क्योंकि कहनेवाला नहीं जानता कि क्या कर रहा है, परंतु पवित्र आत्मा के विरुद्ध कुछ कहने का अर्थ यह है कि वह जान बूझकर परमेश्वर का विरोध कर रहा है। १२ : ३१, ३२ की टीका के लिये देखिए मत्ती ३ : २८-३० की व्याख्या।

(झ) भलाई और बुराई की कसौटी १२ : ३३-३७ (लू. ६ : ४३-४५)

१२ : ३३, ३५ लूका के उपरोक्त स्थल के समान हैं। पद ३४, ३६ और ३७

लूका में नहीं हैं। यहां मत्ती ने अनेक कथनों को एकलित किया है, जिनके वास्तविक प्रसंग भिन्न रहे होंगे।

१२ : ३३ का अनुवाद बुल्के में अच्छा है, "या तो पेड़ को अच्छा मानो और उसके फल को भी, या पेड़ को बुरा मानो और उसके फल को भी"। यह पद और पद ३५, ७ : १६-२० के समान है। उस स्थल की व्याख्या को पढ़िए। १२ : ३४ पू ३ : ७ के समान है, जहां बोलनेवाला यूहन्ना बततिस्मा देनेवाला है। २३ : ३३ में भी यीशु शास्त्रियों और फरीसियों को इस प्रकार संबोधित करता है। यहां इसका संबंध पिछले अंश से है, जहां फरीसी यीशु के कार्यों को शैतान के कार्य कहते हैं। उनके शब्दों से पता चलता है कि उनके मन में क्या है। १२ : ३५ के मूल पाठ में "मन" शब्द नहीं है— "उत्तम मनुष्य अपने उत्तम कोष से उत्तम वस्तुएं निकालता है...." (हिं. सं.)। परंतु अर्थ तो 'मन का कोष' ही है। १२ : ३६ और ३७ केवल मत्ती में हैं। पद ३६ में "बात" यूनानी शब्द "रेमा' का अनुवाद है, परंतु पद ३७ में मूल यूनानी शब्द "लॉगस" है, अतः संभवतः ये दो पद भिन्न स्रोतों से हैं। "निकम्मी बात" ऐसी बात है जैसी पद २४ में फरीसियों की बात है। "लेखा" न्याय के दिन दिया जाएगा। "निर्दोष ठहराया जाना" उस शब्द का अनुवाद है (दिखैयाओ) जो पौलुस के पत्रों में "धर्मी गिना जाना" से अनूदित है, परन्तु यहां इसका सरल अर्थ न्याय के दिन निर्दोष ठहराया जाना ही है। १६ : २७ में यीशु का कथन है कि मनुष्य का पुत्र "हर एक को उसके कामों के अनुसार प्रतिफल देगा"। २५ : ३१-४६ को भी देखिए। अध्याय ७ में इस तथ्य पर बल दिया गया है कि कथन और कर्म में अनुकूलन होना अत्यावश्यक है। "निकम्मी बातें" एक प्रकार के कर्म हैं।

(ट) चिह्न की मांग १२ : ३८-४२ लू. ११ : २६-३२)

यह अंश Q में से है। मत्ती के पद ३८ और ४० लूका से भिन्न हैं, परंतु मत्ती के पद ४१, ४२ और लूका के पद ३१, ३२ में बहुत शाब्दिक समानता है। मत्ती के ये दो पद लूका के क्रम के विपरीत है। मर. ८ : ११, १२=मत्त. १६ : १, २, ४ में यही विषय पाया जाता है। उसकी व्याख्या को पढ़िए।

१२ : ३८—केवल मत्ती शास्त्रियों और फरीसियों का उल्लेख करता है। इस पद की तुलना १ कुर. १ : २२, २३ से कीजिए। सहदर्शी सुसमाचारों में यीशु के सामर्थ्य के कार्य "चिह्न" नहीं कहे गए हैं। इस विषय पर मर. ८ : ११, १२ की व्याख्या को पढ़िए। १२ : ३९—"व्यभिचारी" का अर्थ यह है कि वे परमेश्वर के प्रति विश्वास-घाती हैं। पुराना नियम में बहुधा परमेश्वर और इस्राएल में पति पत्नी का सा संबंध माना जाता है, उदाहरणार्थ हो. ३ : १। लू. ११ : ३०, ३२ से यह स्पष्ट है कि "चिह्न" यूनुस का प्रचार था, जैसे मत्ती के पद ४१ में भी वर्णित है। "इस युग के लोगों" और नीनवे के लोगों में दो बातों के प्रति विषमता है, (i) नीनवे के लोगों ने यूनुस के प्रचार के फलस्वरूप पश्चाताप किया, परंतु यीशु के समकालीन यहूदियों ने ऐसा नहीं किया।

(ii) नीनवे के लोगों ने परमेश्वर के आदेश के अनुसार आचरण किया, परंतु यहूदियों ने यीशु की शिक्षा का विरोध किया। इसी प्रकार १२ : ४२ में भी है। "दक्षिण देश की रानी" का अर्थ शीबा की रानी है (१ रा. १० : १)। शीबा देश अरब देश के दक्षिण-पश्चिम में स्थित था, जहां वर्तमान में यमन देश है। यह रानी सुलैमान के पास आई, परंतु "इस युग के लोग" यीशु के पास नहीं आते ("आने" का अर्थ यहां विश्वास करना है)। वह दूर से आई परंतु लोग यीशु को नहीं मानते, यद्यपि वह निकट है। इन दो पदों में ये शब्द हैं कि "यहां वह है जो यूनुस (सुलैमान) से भी महान है"। संभव है कि इसका अर्थ यीशु स्वयं है, परंतु यूनानी विशेषण नपुंसक लिंग है, अतः संभाव्यतः वह जो महान है परमेश्वर का वह प्रबंध है जो यीशु द्वारा होता है। यीशु में यूनुस के प्रचार और सुलैमान के ज्ञान से बहुत अधिक विशिष्टताएं हैं। उपरोक्त व्याख्या से यह प्रकट है कि १२ : ४० इस अंश से असंगत सा प्रतीत होता है। वह लूका में नहीं है। यद्यपि वह सब प्राचीन प्रतियों में है तो भी अधिकांश विद्वान मानते हैं कि वह यीशु का कथन नहीं वरन् मत्ती की रचना है। उसमें यह त्रुटि भी है कि यीशु तीन रात नहीं, केवल दो रात "पृथ्वी" में रहा।

यीशु ने पूर्ण रूप से उन लोगों की इस मांग को अस्वीकार किया कि वह अपने आपको सच्चा प्रमाणित करने के लिए आश्चर्यकर्म करे। यह ऐसा प्रलोभन था जैसा मत्ती ४ : ५, ६ में वर्णित है।

(ठ) अशुद्ध आत्मा का लौटना १२ : ४३—४५ (लू. ११ : २४-२६)

(ड) यीशु के वास्तविक नातेदार १२ : ४६—५० (मर. ३ : ३१-३५)

१२ : ४३—४५ लगभग शब्दशः लूका के वर्णनके समान है। संभव है कि यीशु ने सामान्य रूप से अपदूत-निरासन के संबंध में ये शब्द कहे, परन्तु मत्ती और लूका के प्रसंगों में अवश्य इसका अर्थ यह है कि जब तक अशुद्ध आत्मा-ग्रसित व्यक्ति, स्वस्थ होने के पश्चात्, अपने मन में यीशु प्रदत नवजीवन को प्राप्त नहीं करता तब तक यह खतरा रहता है कि उसकी दशा पहले से भी बुरी हो जाए। मत्ती में इसका संबंध इस अध्याय की पिछली बातों से है। इस अंश में जो विचार अशुद्ध आत्माओं के संबंध में व्यक्त किए गए हैं वे उस काल के यहूदियों में प्रचलित थे। १२ : ४५ का अंतिम वाक्य केवल मत्ती में है। कदाचित् ये शब्द मत्ती के हैं, जिनके द्वारा वह इस अंश का अनुकूलन संदर्भ से करता है।

१२ : ४६—५०—मर. ३ : ३१-३५ की व्याख्या को पढ़िए।

इस अंश में मत्ती ने अधिकतर मरकुस का अनुसरण किया है। संभव है कि पद ४७ इसमें नहीं होना चाहिए क्योंकि वह अनेक हस्तलेखों में नहीं पाया जाता। वह मरकुस के पद ३ : ३२ के समान है। मत्ती ने पद४७ में एकपरिवर्तन किया है। उस ने "अपने चेलों की ओर हाथ बढ़ाकर" लिखा, जहां मरकुस में है, "उन पर जो आस

पास थे दृष्टि करके"। मत्ती के अनुसार केवल शिष्य यीशु के वास्तविक नातेदार हैं। यही हैं जो "उसके पीछे हो लिए" हैं।

(२) प्रवचन दृष्टांत १३ : १–५२

मत्ती ने मर. ४ अध्याय के आधार पर, और अपनी निजी सामग्री का प्रयोग भी करके, इस अध्याय में परमेश्वर के राज्य के संबंध में सात दृष्टांतों को, अनेक दृष्टांतों की व्याख्या को, और दृष्टांतों के अर्थ और अभिप्राय के संबंध में कुछ कथनों को, संकलित किया है। पिछले भाग में यहूदियों के अगुओं के साथ वाद-विवाद हुआ है, और यीशु के प्रति निष्ठा का महत्व प्रकट किया गया है। अब परमेश्वर के राज्य का स्पष्टीकरण इन दष्टांतों के द्वारा प्रस्तुत है।

दृष्टांतों के संबंध में मर. ४ : १-३५ की व्याख्या के आरंभ में दी गई टिप्पणी को अवश्य पढ़िए।

(क) तीसरे प्रवचन-भाग की भूमिका, बीज बोनेवाले का दृष्टांत १३ : १—९ (मर. ४ : १-९)

(ख) दृष्टांतों का अभिप्राय १३ : १०-१७ (मर ४ : १०-१२, २५; लू. १० : २३, २४)

(ग) बीज बोनेवाले के दृष्टांत की व्याख्या १३ : १८-२३ (मर. ४ : १३-२०

उपरोक्त (क) और (ग) की व्याख्या मरकुस की टीका में पढ़िए। मत्ती में थोड़ा ही अंतर है। उसने इन अंशों में मरकुस का अनुसरण किया है। उसने पद १ में अपने संपादकीय शब्द "उसी दिन" जोड़े हैं। इस प्रकार पद १ और २ इस प्रवचन की भूमिका का काम देते हैं। (ग) अंश में मत्ती ने मरकुस के वर्णन में केवल यह परिवर्तन किया है कि बहुवचन के स्थान पर उसे एकवचन में वर्णित किया है।

(ख) अंश पर (१३ : १०-१७) हमें अधिक ध्यान देना पड़ेगा क्योंकि यहां मत्ती और मरकुस में कुछ अंतर है। मरकुस की व्याख्या (४ : १०-१२, २५) को भी पढ़िए। मत्ती के पद १०, ११, १३ मर. ४ : १०-१२ के अनुरूप हैं, मत्ती का पद १२ मर. ४ : २४ से लिया गया है और मत्त. २५ : २९ लू. १९ : २६ में भी पाया जाता है। पद १४, १५ में मत्ती ने यश. ६ : ९, १० का पूर्ण उद्धरण ठीक ठीक सेप. के अनुसार प्रस्तुत किया है। पद १६, १७ Q में से हैं।

मरकुस की अपेक्षा मत्ती में यह और भी अधिक स्पष्ट है कि शिष्यों में और अन्य लोगों में विषमता प्रकट की गई है। १३ : १० में मत्ती ने "शिष्यों" का उल्लेख किया है, जो मरकुस में नहीं है। उसने उनका प्रश्न भी परिवर्तित किया है, कि यह स्पष्ट हो जाए कि यीशु का कथन सब दृष्टांतों के संबंध में है, "तू उनसे दृष्टांतों में क्यों बातें करता है?" (तु. मर. ४ : १०)। १३ : ११ की तुलना भी मर. ४ : ११ और उसकी व्याख्या से कीजिए। मत्ती में "की समझ" शब्द हैं, और "भेद, अथवा

"रहस्य" बहुवचन में है। इस पद के अंत में "पर उनको नहीं" शब्द जोड़े गए हैं। इन परिशिष्टों से भी शिष्यों और अन्य लोगों की उपरोक्त विषमता पर बल दिया गया है। १३:१२ में मर. ४ : २५ को इस अंश में जोड़ने का भी यही अभिप्राय है। फिर, जैसे मरकुस की व्याख्या में प्रकट किया गया है, १३ : १३ में एक मौलिक परिवर्तन है। मरकुस में कहा गया है कि यीशु दृष्टांतों का प्रयोग इस अभिप्राय से करता है कि लोग न समझें, परंतु मत्ती के अनुसार वह इस कारण उनका प्रयोग करता है कि बिना दृष्टांत के लोग नहीं समझते। फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि इन दोनों सुसमाचारों का मौलिक विचार एक ही है, अर्थात् यह कि साधारण लोग यीशु के दृष्टांतों को नहीं समझते थे। वास्तव में यशायाह में भी परमेश्वर का अभिप्राय यह नहीं था कि यशायाह के प्रचार के फलस्वरूप श्रोता न समझें, तो भी परिणाम ऐसा ही होता था। मत्ती प्रकट करता है कि यह बात यीशु के प्रचार के संबंध में भी पूरी होती है। मरकुस की व्याख्या में यह मत प्रस्तुत किया गया है कि सुसमाचारों के रचयिताओं ने सोचा कि यीशु ने इस अभिप्राय से दृष्टांतों द्वारा शिक्षा दी कि श्रोता न समझें, परंतु यह असंभव है कि उसका ऐसा अभिप्राय था।

१३ : १६, १७ का कथन लू. १०:२३,२४ में भी है, परंतु वह अन्य प्रसंग में है। हम उसका वास्तविक प्रसंग नहीं जानते। यह भी उपरोक्त विचार का समर्थन करता है कि शिष्यों पर वह ज्ञान प्रकट किया गया जिसको अन्य लोगों ने नहीं पहचाना। लूका में "धर्मियों" के स्थान पर "राजाओं" है। मत्ती "धर्मी" शब्द का अधिक प्रयोग करता है, देखिए १० : ४१; २३ : २९। वह युग आ गया था जिसकी प्रतीक्षा यहूदी लोग बहुत काल से करते रहे थे, परंतु उन्होंने उसको नहीं पहचाना। शिष्य धन्य थे, क्योंकि उन्हों ने उसको पहचाना।

(घ) गेहूं और जंगली बीज का दृष्टांत १३ : २४-३०

१३ : १० से ज्ञात होता है कि मत्ती के अनुसार यीशु ने दृष्टांतों द्वारा शिक्षा देने की आवश्यकता और बीज बोनेवाले के दृष्टांत का अर्थ केवल शिष्यों को समझा दिया, परंतु १३ : ३४ से पता चलता है कि ये तीन दृष्टाँत जो पद २४-३३ में वर्णित हैं, मत्ती के अनुसार "लोगों से" कहे गए।

यह दृष्टांत केवल मत्ती में है। मत्ती मरकुस ४ : २६ क्र. के दृष्टान्त को सम्मिलित नहीं करता। इस दृष्टान्त पर ध्यान देते समय पद ३६-४३ में इसके स्पष्टीकरण को मन में स्थान न दिया जाए, क्योंकि आगे यह प्रकट किया जाएगा कि वह स्पष्टीकरण यीशु की ओर से नहीं हो सकता। उसमें दृष्टांत का मौलिक अर्थ ठीक से नहीं बताया गया है।

१३: २४ के पहले शब्द मत्ती का एक सूत्र हैं। वास्तव में स्वर्ग का राज्य "उस मनुष्य के समान" नहीं वरन् इस पूर्ण स्थिति के समान है जो यहां वर्णित है। "उस मनुष्य के समान" मुहाविरा ही है। "जंगली बीज" (२५) एक पौधा है जो गेहूं के

समान है, परंतु उसके दाने कड़ुए और कुछ विषैले से हैं। साधारणतः किसान कटनी से पहले इसको खेत में से निकालते थे, कभी-कभी कई बार। वह एकत्रित किया जाता, सुखाया जाता, और ईंधन के लिए काम में लिया जाता था। यीशु का अभिप्राय यह था कि यह दृष्टांत एक ही प्रमुख तथ्य को प्रकट करे। कदाचित् यह प्रश्न पूछा गया था कि जब इस्राएल में दुराचारी लोग होते हैं तो उसमें स्वर्ग का राज्य किस प्रकार स्थापित हो सकता है? इस दृष्टान्त की शिक्षा यह है कि हमारा काम दुराचारियों को निकालना नहीं है। धैर्य रखना चाहिए, परमेश्वर स्वयं न्याय करेगा, और गेहूं (राज्य के लोग) बढ़ जाएगा। फसल अवश्य होगी। इसमें और बीज बोनेवाले के दृष्टांत में समानता है। कलीसिया की व्याख्या पद ३६-४३ में पाई जाती है—उसकी टीका पढ़िए।

(च) राई के बीज और खमीर के दृष्टांत और भविष्यवाणी
(मर. ४ ३०-३४; लू. १३-२०, २१)

राई के बीज का दृष्टांत तीनों सहदर्शी सुसमाचारों में है, परंतु मत्ती और लूका के वर्णनों में कुछ शाब्दिक समानता है जहां मरकुस का वर्णन भिन्न है। कदाचित् यह दृष्टांत Q में खमीर के दृष्टांत के साथ ही था, जो मरकुस में नहीं है। यदि यह अनुमान ठीक है तो मत्ती ने मरकुस और Q के वर्णनों का मिश्रण किया। राई के बीज के दृष्टांत का स्पष्टीकरण मरकुस की टीका में पढ़िए। खमीर के दृष्टांत का अर्थ भी यही है कि बहुत आटे में (लगभग पंद्रह किलो) थोड़ा सा खमीर फैल जाता है और उसको प्रभावित करता है। १३ : ३४, ३५—पद ३४ मर. ४ : ३३, ३४ का संक्षेप है। मरकुस में यह दृष्टांत के वर्णन का अंत है। मत्ती इसका अनुकूलन करके अपने दृष्टांत-संबंधी वर्णन के बीच में उसके साथ पुराना नियम का एक उद्धरण जोड़ता है कि यह प्रमाणित हो कि यीशु, दृष्टांतों द्वारा शिक्षा देने में, भविष्यवाणियों को पूरा कर रहा था। पद ३५ के आरंभ में मत्ती का उद्धरण-सूत्र है। उद्धरण भ. ७८ : २ से है। इसमें इब्रानी और सेप. के पाठों का मिश्रण है—पहली पंक्ति शब्दशः सेप. के अनुसार है, पर दूसरी पंक्ति नहीं। यहां इसका अर्थ यह है कि यीशु दृष्टांतों द्वारा ऐसे रहस्यों को प्रकट करता है जो पहले गुप्त थे। वह स्वर्ग के राज्य की स्थापना कर रहा है। यह तथ्य रोचक है कि यहां भजन की बात भविष्यवाणी कही गई है।

(छ) जंगली बीज के दृष्टांत की व्याख्या १३:३६-४३

यह अंश भी केवल मत्ती में है। जर्मन विद्वान यिर्मियास (द पैरबल्स ऑफ जीसस, ६४-६५) ने चार मुख्य कारण प्रस्तुत किए है कि हमें इसे यीशु का नहीं वरन् मत्ती का स्पष्टीकरण मानना पड़ता है : (i) यह स्पष्टीकरण इस दृष्टांत की प्रमुख शिक्षा की उपेक्षा करता है, अर्थात् राज्य की फसल के सम्बन्ध में धैर्य रखना। (ii) उसमें कुछ शब्द हैं जिनका प्रयोग यीशु ने नहीं किया होगा। (iii) इसमें कुछ ऐसे कथन हैं जो यीशु की शिक्षा से असंगत हैं। (iv) छत्तीस ऐसे शब्द इस अंश में पाए जाते हैं जो मत्ती के विशिष्ट शब्द हैं, जिससे स्पष्ट है कि यह उसकी रचना है। इन तर्कों के ब्योरों

का उल्लेख करने का स्थान नहीं है। ये ब्योरे अधिकतर यूनानी और अरामी भाषाओं से संबंधित हैं। उक्त पुस्तक में तर्क बहुत ब्योरेवर प्रस्तुत हैं।

यह स्पष्टीकरण अत्यधिक अन्योक्तिमूलक भी है (मर. ४ : १-३५ की टिप्पणी को देखिए)। इससे हम जान सकते हैं कि मत्ती के काल की कलीसिया ने इस दृष्टांत का अर्थ कैसे समझा। १३ : ३६ में वर्णित है कि यीशु ने ये बातें शिष्यों से कहीं, "लोगों" से नहीं। में १३ : ३८ "संसार", "राज्य", "दुष्ट" उन शब्दों के उदाहरण हैं (अरामी में) जिनका प्रयोग यीशु ने नहीं किया होगा। "राज्य की संतान" का अर्थ यीशु के अनुयायी है। मत्ती ने दृष्टांत के अर्थ को विस्तार दिया है—क्षेत्र संसार है। इस प्रकार, इसे अन्योक्ति मानकर उसने बताया है कि बैरी शैतान है, कटनी जगत का अंत है, जंगली दानों का जलाया जाना जगत के अंत का प्रतीक है। इस अंश के अंतिम पदों में युगांत-संबंधी तत्व बहुत विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया गया है। "जगत का अंत" मत्ती के विशिष्ट शब्द हैं। जैसे १३ : २४-३० की व्याख्या में कहा गया है, इस दृष्टांत का एक ही विशेष बिंदु है, अन्य ब्योरों का कम महत्व है, वे उस प्रमुख बिंदु की पृष्ठभूमि हैं। इस स्पष्टीकरण में मत्ती ने इस दृष्टांत को कलीसिया की परिस्थिति पर लागू किया है। १३ : ४२ में "रोना और दांत पीसना" शब्द मत्ती में ८ : १२; १३ : ५०; २२ : १३; २४ : ५१; और २५ : ३० में भी पाए जाते हैं। अन्यत्र ये शब्द केवल लू. १३ : ३८ में हैं। संभाव्यत: मत्ती ने इहें स्वयं अनेक स्थलों में जोड़ा है। यह एक रूपक है जिससे उस मनुष्य की यातना व्यक्त की जाती है जो परमेश्वर के राज्य से वंचित है। १३ : ४३ और दा. १२ : ३ में कुछ शाब्दिक समानता है।

(ज) गुप्त निधि, बहुमूल्य मोती, और जाल के दृष्टांत, नई और पुरानी वस्तुएं १३ : ४५-५२

१३ : ४४-४३—गुप्त निधि और बहुमूल्य मोती के दृष्टांतों का अर्थ एक ही है। ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्त निधि उस मनुष्य को संयोग से मिलती है, परंतु मोती का मिलना उस व्यापारी की खोज के फलस्वरूप है। संभव है कि खेत मोल लेने में वह मनुष्य बेईमानी कर रहा था, परन्तु इस तथ्य का दृष्टांत के अभिप्राय से कोई सम्बन्ध नहीं है, तु. लू. १६ : १ क्र., जहां भंडारी बेईमान है। पलिश्तीन देश में इस प्रकार निधि को भूमि में छिपाना साधारण बात थी, विशेषकर युद्ध के समय। स्पष्ट अर्थ दोनों दृष्टांतों का यह है कि स्वर्ग का राज्य अमूल्य है, जिसको प्राप्त करने के लिए अपना सब कुछ देने के लिए तैयार होना पड़ता है। वास्तविक धन तो स्वर्ग का राज्य ही है, तुलना कीजिए ६ : १९-२१; १९ : २१। उस राज्य को प्राप्त करने के लिये संपूर्ण आत्म-समर्पण करना अनिवार्य है।

१३ : ४७-५०—जाल का दृष्टांत जंगली बीज के दृष्टांत के समान है। यह एक ऐसा दृश्य है जो प्रतिदिन गलील की झील के तट पर देखा जा सकता था। जैसे "हर प्रकार की मछलियां जाल में आती हैं वैसे स्वर्ग के राज्य में सब प्रकार के मनुष्य

प्रवेश करने का प्रयत्न करते हैं। इसका अर्थ यह हो सकता है कि सब जातियों के लोग उसमें प्रवेश करते हैं, न केवल यहूदी। अच्छे और बुरे भी प्रविष्ट होना चाहते हैं। संभाव्यत: दृष्टांत में केवल पद ४७, ४८ थे। यहां भी कलीसिया को उस प्रश्न का उत्तर मिला कि कलीसिया में बुरे लोग क्यों होते हैं? यह नहीं हो सकता कि अच्छी ही मछलियां जाल में घिर आएं। ऐसे ही यह असंभव है कि केवल अच्छे लोग कलीसिया के सदस्य हो जाएं। परंतु मुख्य तथ्य यह है कि मछलियां आती हैं। कलीसिया में अच्छों और बुरों को अलग करना हमारा काम नहीं है। न्यायकर्ता परमेश्वर ही है।

१३ : ५१ ५२—यह प्रश्न शिष्यों से पूछा जाता है (पद ३६)। शास्त्री यहूदियों की व्यवस्था के विशेषज्ञ होते थे। "चेला" के यूनानी मूल शब्द (**मथेतेस**) का अर्थ वह व्यक्ति है जो सीखता है। यहां उस शब्द से संबंधित क्रिया-रूप प्रयुक्त है। स्वर्ग के राज्य का चेला होना स्वर्ग के राज्य का रहस्य सीख लेना है। इस रहस्य का स्पष्टीकरण उपरोक्त दृष्टांतों से किया गया है। संभाव्यत: 'नई और पुरानी वस्तुएं" व्यवस्था (पुराना नियम) और सुसमाचार की शिक्षाएं हैं। मत्ती ने स्पष्ट प्रकट किया है कि यीशु व्यवस्था को लोप करने नहीं, पूर्ण करने आया था (५ : १७ क्र.)।

५. चौथा भाग १३ : ५३—१८ : ३५

इस स्थल से सुसमाचार के अंत तक मत्ती जहां जहां मरकुस की सामग्री का प्रयोग करता है वहां मरकुस के क्रम का अनुसरण भी करता है। १३ : ५३—१८ : ९ लगभग सब मरकुस में से लिया गया है। केवल १४ : २८-३१, ३३ और १७ : २४-२७ मरकुस में से नहीं हैं। ये अंश मत्ती के निजी स्रोत में से हैं। मत्ती ने इस भाग में मर. ६ : १—९ : ४८ का प्रयोग किया है। उसने मरकुस के वर्णनों में बहुत परिवर्तन नहीं किए हैं। अधिकतर उसने उन्हें संक्षिप्त किया है। अत: हम इस भाग में पाठकों को मरकुस की टीका के संकेत देंगे। जहां मत्ती और मरकुस में अंतर है वहां अधिक व्याख्या की जाएगी।

(१) वृत्तांत तथा वाद-विवाद १३ : ५३—१७ : २७

(क) नासरत में यीशु का अस्वीकरण १३ : ५३-५८ (मर. ६ : १-६)

(ख) यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाले की मृत्यु १४ : १-१२ (मर. ६ : १४-३०)

१३ : ५३-५८ में मत्ती ने मरकुस के वर्णन को कुछ संक्षिप्त किया है। मर. ६ : १-६ की व्याख्या को पढ़िए, जहां मत्ती की अनेक विशेष बातों का उल्लेख भी है। १३ : ५३ में मत्ती का वह सूत्र है जो उसके प्रत्येक प्रवचन-भाग के पश्चात् आता है (देखिए ७ : २८ की व्याख्या)। अत: इस पद में मत्ती मरकुस के वर्णन को परिवर्तित करता है। सबसे बड़ा परिवर्तन यीशु के बढ़ई का पुत्र होने और उसकी माता का नाम मरियम होने के संबंध में है—इस पर मरकुस की व्याख्या को देखिए। मत्ती में यीशु के भाइयों के नामों का क्रम मरकुस के क्रम से भिन्न है, और जहां मरकुस में "योसेस"

है वहां मत्ती में "यूसुफ" लिखा है। कदाचित् ये एक ही नाम के भिन्न रूप हैं। अपनी प्रथा के अनुसार मत्ती ने मरकुस की बातों की उग्रता को घटाया है, कि यीशु वहां कोई सामर्थ्य का काम न कर सका। यीशु के परिवार का उल्लेख १२ : ४६-५० में भी हुआ है। मत्ती में यह अंतिम बार है कि यीशु के आराधनालय में शिक्षा देने का वर्णन है।

१४ : १-१२ इसके संबंध में मर. ६ : १४-२९ की टीका को पढ़िए। मत्ती ने मरकुस के वर्णन को बहुत संक्षिप्त किया है। उसने कोई मौलिक परिवर्तन नहीं किया, अधिकतर ब्योरे की बातों को निकाल दिया है। **१४ : १** में "चौथाई देश के राजा" का उल्लेख है, जिसका कुछ स्पष्टीकरण मरकुस की टीका में है। इस पद में मत्ती ने बताया है कि हेरोदेस यूहन्ना को मार डालना चाहता था परंतु लोगों से डरता था। मरकुस के अनुसार (६ : १९) हेरोदेस नहीं, हेरोदियास थी जो उसे मार डालना चाहती थी। कदाचित् मत्ती ने पद ५ उ के शब्द "क्योंकि वे उसे भविष्यवक्ता जानते थे", मर. ११ : ३२=मत्त. २१ : २६ से यहां जोड़ लिए। मर. ६ : ३० में वर्णित है कि प्रेरित, जो प्रचार आदि करने के लिए भेजे गए थे, लौट आए, और जो कुछ इन्होंने सिखाया और किया था, वह यीशु को बताया। मत्ती में इसके स्थान पर (पद १२ उ) केवल यह है कि चेलों ने "जाकर यीशु को समाचार दिया"—परंतु यह समाचार यीशु की मृत्यु का था। इस प्रकार मत्ती ने मरकुस के शब्दों का अपने वर्णन से अनुकूलन किया।

(ग) पांच सहस्र को भोजन कराना १४ : १३-२१ (मर. ६ : ३२-४४)

(घ) सागर पर चलना, रोगियों को स्वास्थ्य-दान १४ : २२-३६
(मर. ६ : ४५-५६)

१४ : १३-२१—यह अंश मर. ६ : ३२-४४ का संक्षेप है। इसका स्पष्टीकरण मरकुस की टीका में पढ़िए। अधिकतर मत्ती की लुप्तियां महत्वपूर्ण नहीं हैं, उनका अभिप्राय केवल संक्षेप करना है। पद १४ में उसने मरकुस ६ : ३४ के इन शब्दों को स्थान नहीं दिया कि "इस्राएली लोग उन भेड़ों के समान थे जिनका कोई रखवाला न हो", क्योंकि वह कथन मत्त. ९ : ३६ में लिया गया है।

१४ : १४ के अंत में "वह उन्हें बहुत बातें सिखाने लगा" (मर. ६ : ३४) के स्थान पर मत्ती ने "उसने उनके बीमारों को चंगा किया" लिखा (लू. ९ : ११ भी इसके समान है, परंतु काफी शाब्दिक अंतर है)। कदाचित् मत्ती ने यह सोचा कि तरस खाने की उपयुक्त प्रतिक्रिया स्वास्थ्य-दान है। **१४ : १८** के शब्द केवल मत्ती में हैं। अंत में उस ने "स्त्रियों और बालकों को छोड़कर" शब्द (पद २२) जोड़ लिए हैं।

१४ : २२-३६—इसके संबंध में मर. ६ : ४५-५६ की टीका को पढ़िए। पद २२ में मत्ती ने "बैतसैदा को" शब्दों को निकाल दिया है। भौगोलिक रूप से मत्ती का वर्णन मरकुस के वर्णन से भी अधिक अस्पष्ट है। मत्ती में केवल इस पद में और २६ : ३६ क्र. (गतसमने) में वर्णित है कि यीशु ने प्रार्थना की। पद २३ उ और २४ में मत्ती ने मनुष्य के वर्णन में शाब्दिक परिवर्तन किए हैं, परंतु वे परिवर्तन महत्वपूर्ण नहीं

हैं। पद २५ में उसने "और उनसे आगे निकल जाना चाहते थे" शब्दों को स्थान नहीं दिया जो मरकुस के वर्णन में हैं।

१४ : २८-३३ अधिकतर केवल मत्ती में पाया जाता है, परंतु पद ३२ मर. ६ : ५१ पू के समान है। अधिकांश टीकाकारों की मान्यता है कि यह एक ऐतिहासिक घटना नहीं वरन् मत्ती की रचना है। परंतु यह मानना कठिन है कि इसका कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है। निस्संदेह इसका अभिप्राय मौलिक रूप से शिक्षात्मक है। टीकाकारों में सहमति है कि इसमें पतरस के स्वभाव का सही चित्रण है। यह भी द्रष्टव्य है कि मत्ती पतरस की दुर्बलता को छिपाने का प्रयत्न नहीं करता। यीशु सदा उन लोगों के निमंत्रित करता है जो उसके पास आना चाहते हैं (पद २९)। १४ : ३० की तुलना २६ : ६९-७५ से कीजिए, जहां पतरस इसी प्रकार डरता है। इस अंश में यह शिक्षा है कि जब हम अपनी आंखें यीशु पर से हटा लेते हैं और जीवन की कठिनाइयों, कष्टों आदि पर ध्यान देने लगते हैं तो डूबने लगते हैं। हम पतरस के समान अल्पविश्वासी हो जाते हैं, परंतु यीशु अपना हाथ बढ़ाकर हमारी सहायता करता है। १४ : ३३ में मत्ती शिष्यों की स्वीकृति को जोड़ता है, जो मरकुस में नहीं है, "सचमुच तू परमेश्वर का पुत्र है"। "अल्पविश्वासी" मत्ती का एक विशिष्ट शब्द है (दे. ६ : ३०; ८ : २६; १६ : ८; १७ : २०)।

१४ : ३४-३६ में मर. ६ : ५३-५६ का संक्षेप ही है—मर. ६ : ५३-५६ की व्याख्या को पढ़िए। मत्ती ने उस यात्रा का वर्णन नहीं किया है जो मरकुस के पद ५५, ५६ में निहित है।

(च) परंपरा पालन का प्रश्न १५ : १-२० (मर. ७ : १-२३)

इस अंश का कुछ विस्तृत स्पष्टीकरण मरकुस की टीका में किया गया है। उसका अध्ययन कीजिए।

मत्ती ने मर. ७ : ३ और ४ को सम्मिलित नहीं किया है, क्योंकि उनमें अयूहदी लोगों के लिए स्पष्टीकरण किया गया है, परंतु मत्ती के पाठक यहूदी थे। मत्ती के पद ४=मरकुस के पद १० में "मूसा" के स्थान पर "परमेश्वर" है। वह जो मूसा ने कहा परमेश्वर की ओर से था। जैसे मरकुस की टीका में वर्णित है, मत्ती मरकुस के ८-१३ पदों को यशायाह के उद्धरण से पहले सम्मिलित करता है। यह क्रम अधिक तर्कसंगत है। पद ५ में (=मर. ७ : ११) "कुरबान" शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है, केवल उसका अर्थ बताया गया है, "भेंट चढ़ाई जा चुकी" (हिं. सं. "अर्पित हो चुका")। पद ५ उ और ६ में मत्ती ने मर. ७ : १२ और १३ का संक्षेप लिखा है।

१५ : १२-१४ मरकुस में नहीं हैं। ये पद मत्ती के निजी स्रोत में से हैं। इस अंश की टीका के अंत में उन पर ध्यान दिया जाएगा। मरकुस के पद १७ में शिष्य उपरोक्त बातों के संबंध में प्रश्न पूछते हैं परंतु पद १५ में मत्ती लिखता है कि प्रश्न पूछनेवाला पतरस था। पद १७ में मत्ती ने मरकुस के पद १९ उ को सम्मिलित नहीं

किया, "यह कहकर उसने सब भोजन वस्तुओं को शुद्ध ठहराया"। कदाचित् मत्ती इस तथ्य को ऐसे स्पष्ट शब्दों में व्यक्त नहीं करना चाहता था। मर. ७ : २१, २२ की सूची में तेरह दुर्गुण हैं, परंतु मत्ती के १५ : १९ में केवल सात हैं। मत्ती में एक है (झूठी गवाही) जो मरकुस में नहीं है। मत्ती ने "कुचिंता" के पश्चात् शेष छः दुर्गुणों को दस आज्ञाओं में से ६-९ का क्रम दिया है, जो इस प्रकार है (अंकों द्वारा आज्ञाओं के संकेत हैं), ६ : हत्या; ७ : परस्त्रीगमन और व्यभिचार; ८ : चोरी; ९ : झूठी गवाही और निंदा। ये छः दुर्गुण मात्र नहीं, दंडनीय अपराध भी थे। मत्ती ने यहां विधि-संबंधी पक्ष पर बल दिया है। मरकुस पद २३ में आंतरिक नैतिक पक्ष पर बल दिया गया है, परंतु पद २० में मत्ती ने पद १९ के विधि-संबंधी पक्ष से इसका अनुकूलन किया है।

१५ : १२-१४—मत्ती ने इन पदों को यहां जोड़ लिया है। वे वर्णन के प्रवाह में बाधा डालते हैं। पद १३ के दो संभव अर्थ हैं : (i) कि यहूदियों की परंपरा, विशेषकर भोजन आदि विषयक परंपराएं, उखाड़ी जाएंगी। (ii) कि फरीसी उखाड़े जाएंगे। इस पद के अर्थ में ये दोनों अर्थ भी निहित हो सकते हैं। पद १४ स्पष्टतः फरीसियों के संबंध में है। ऐसा कथन लू. ६ : ३९ में भी है, अतः संभवतः यह कथन Q में से लिया गया। फरीसी २३ : १६ में भी "अंधे अगुवे" कहे गए हैं। तुलना कीजिए रो. २ : १९।

(छ) अन्यजाति की बालिका को स्वस्थ करना, रोगियों को स्वास्थ्य-दान
१५ : २२-३१ (मर. ७ : २४-३०; तु. मर. ७ : ३१-३७)

१५ : २२-२८ मर. ७ : २४-३० के समान है, परंतु बड़ी भिन्नताएं भी हैं। मुख्य स्पष्टीकरण के लिए मरकुस की टीका को पढ़िए। संभव है कि, अनेक टीकाकारों की मान्यता के अनुसार, मत्ती ने यहां भी केवल मरकुस के वर्णन को परिवर्तित किया। परन्तु हमें ऐसा प्रतीत होता है कि उसे यह वर्णन किसी अन्य स्रोत से मिला और उसने उसे मरकुस के वर्णन से सम्मिश्रित किया है।

मत्ती में पांच प्रमुख भिन्नताएं हैं : (i) मरकुस के अनुसार (पद २४) यीशु अकेला था, मत्ती में (पद २३) शिष्य उसके साथ थे। (ii) मरकुस में (पद २६) स्त्री "यूनानी और सूरू फिनीकी जाति की थी"; मत्ती में (पद २२) वह "कनानी" थी। (iii) मत्ती में (पद २२), परंतु मरकुस में नहीं, स्त्री यीशु को संबोधित करते हुए उसे "दाऊद का पुत्र" कहती है। (iv) मत्ती में (पद २८) और मरकुस में (पद २९) यीशु के अंतिम कथन पूर्ण रूप से भिन्न हैं। (v) मत्ती के पद २३, २४ मरकुस में नहीं हैं।

१५ : २२ में यह स्त्री "कनानी" कहलाती है। कनान पलिश्तीन देश का पुराना नाम था। वे सब लोग जो इस्राएलियों के आने से पहले उस देश में वास करते थे कनानी कहलाते थे। फीनीकी लोग इनमें से एक जाति थे। मरकुस का "सूरूफिनीकी" अधिक सटीक है। संभवतः मत्ती इस तथ्य पर बल देना चाहता था कि यीशु ने एक

अन्यजाति स्त्री की सहायता की। जब इस्राएली लोग कनान देश में प्रवेश कर रहे थे तब कनानी उनके शत्रु थे। "दाऊद की संतान" (दाऊद का पुत्र) के संबंध में १ : १ और मर. १० : ४७ की टीका को पढ़िए। **१५ : २४** का कथन १० : ६ में भी पाया जाता है, उसकी व्याख्या को पढ़िए। इस स्थल में इस कथन से यहूदी के संकीर्ण दृष्टिकोण और उस स्त्री के विश्वास में विषमता प्रकट की गई है। स्त्री का विश्वास परखा जाता है। **१५ : २८** में मत्ती के अनुसार यीशु स्त्री के विश्वास के कारण उसकी प्रशंसा करता है। यही बात वास्तव में मर. ७ : २९ में भी निहित है।

१५ : २९-३१—मर. ७ : ३१-३७ में इस स्थल पर एक चक्करदार यात्रा और गूंगे मनुष्य को स्वस्थ करने का वर्णन है। मत्ती उस यात्रा का संक्षिप्त उल्लेख करके गूंगे के स्वास्थ्य-दान के वर्णन को छोड़कर केवल यीशु के कार्यों का साधारण वर्णन करता है। संभव है कि **१५ : ३०** यश. ३५ : ५, ६ पर आधारित हो। केवल यह बताया गया है कि वह कार्य गलील की झील के पास हुआ। संभाव्यत: ये लोग अन्यजातीय थे। क्योंकि लिखा है कि इन्हों ने इस्राएल के परमेश्वर की बड़ाई की (पद ३१)।

(ज) चार सहस्र को भोजन कराना १५ : ३२-३९ (मर. ८ : १-१०)

इस अंश में और मर. ८ : १-१० में भिन्नता बहुत थोड़ी है। मरकुस की टीका को पढ़िए। पांच सहस्र को भोजन कराने के वर्णन के समान यहां भी मत्ती ने (पद ३८) "स्त्रियों और बालकों को छोड़" शब्दों को जोड़ा है। पद ३९ में, मरकुस के "दलमनूता" के स्थान पर मत्ती ने "मगदन" लिखा है। ये दोनों स्थान अज्ञात हैं।

मरकुस की टीका में कहा गया है कि संभवत: भोजन कराने के सामर्थ्य के दो कार्यों के वर्णन (पांच सहस्र को और चार सहस्र को) का कारण यह है कि पहला वर्णन यहूदियों को और दूसरा वर्णन अयहूदियों को आत्मिक रूप से तृप्त करने के लाक्षणिक वर्णन हैं। मत्ती में इस विचार का समर्थन इस प्रकार मिलता है कि इससे पहले ही (पद ३१ की व्याख्या को देखिए) यीशु अन्यजातियों में सामर्थ्य के कार्य करता है। और उससे पूर्व कनानी (अन्यजाति) स्त्री की पुत्री को स्वास्थ्य-दान का वर्णन है।

(झ) चिह्न-दान की प्रार्थना अस्वीकार १६ : १-४ (मर. ८ : ११-१३)

(ट) फरीसियों और सदूकियों के खमीर (शिक्षा) से चेतावनी १६ : ५-१२ (मर. ८ : १४-२१)

१६ : १-४—इस पर मर. ८ : ११-१३ और मत्त. १२ : ३८-४२ की व्याख्या पढ़िए। १६ : १, २ पू और ४ लगभग १२ : ३८, ३९ के समान हैं। इस स्थल में मत्ती ने सदूकियों का उल्लेख भी किया है (पद ६ और ११ को भी देखिए—मरकुस में हेरोदेस का उल्लेख है)। १६ : २ उ, ३ मरकुस में, और मत्ती के अनेक प्राचीन हस्तलेखों में भी, नहीं है। वे लूका १२ : ५५-५६ के समान हैं, परंतु कुछ अंतर भी है। विद्वानों की मान्यता है कि लूका में यह कथन पलिश्तीन के जलवायु के अधिक अनुकूल है। न तो मत्ती से न लूका से इस कथन के वास्तविक प्रसंग का पता चलता है। यहां वह असंगत प्रतीत

होता है, परंतु मत्ती का स्पष्ट अभिप्राय यह प्रकट करना है कि फरीसी और सदूकी यीशु के कार्यों का महत्व नहीं पहचानते थे, क्योंकि ये कार्य "समयों के चिह्न" थे।

१६ : ५-१२—इसके संबंध में मर. ८ : १४-२१ की व्याख्या को पढ़िए। मत्ती ने इस वर्णन को संक्षिप्त किया है, परंतु उसमें पद ११ उ और १२ को जोड़ लिया है। पद ५ में उसने मरकुस की यह बात छोड़ दी है कि उनके पास एक ही रोटी थी। पद ६ में "हेरोदेस" के स्थान पर "सदूकियों" है। यह परिवर्तन आवश्यक था। क्योंकि मत्ती के अनुसार "खमीर" का अर्थ "शिक्षा" था, और हेरोदेस ने शिक्षा नहीं दी। पद ८ में मत्ती का विशिष्ट शब्द "अल्पविश्वासियो" है। उसने पद ८-१० में अधिक संक्षेप किया है। जैसे मरकुस की टीका में स्पष्ट किया गया है, मरकुस में "खमीर" का अर्थ प्रकट नहीं है। **१६ : ११, १२** में मत्ती उसका स्पष्टीकरण करता है। कम से कम मत्ती ने सोचा कि यीशु के कथन का अर्थ यही था। फरीसियों और सदूकियों की शिक्षाएं बहुत बातों में एक दूसरे से भिन्न थीं (बाइबल ज्ञानकोश में देखिए)। मरकुस के वर्णन के अंत में केवल यह प्रश्न है, "क्या तुम अब तक नहीं समझते?" अध्याय २३ में मत्ती ने स्पष्ट प्रकट किया है कि फरीसियों की शिक्षा कैसी थी।

(ठ) पतरस का यीशु को ख्रिस्त स्वीकार करना १६ : १३-२०
(मर. ८ : २७-३०)

मत्ती मर. ८ : २२-२६ को सम्मिलित नहीं करता। इसके तीन संभव कारण प्रस्तुत किए गए हैं : (i) यीशु इसमें थूक का प्रयोग करता है। (ii) यीशु उस अंधे से प्रश्न पूछता है। (iii) अंधा धीरे धीरे देखने लगता है, तत्क्षण नहीं।

१६ : १३-१६—इस अंश के संबंध में मर. ८ : २७-३० की व्याख्या को पढ़िए। इसमें मत्ती मरकुस का अनुसरण करता है। **१६ : १३** में "मुझे" के स्थान पर (मर. ८ : २७) मत्ती ने "मनुष्य का पुत्र" लिखा है। यहां यह पदवी नहीं वरन् केवल "मुझे" के तुल्य है। **१६ : १४** के अंत में उसने "यिर्मयाह" शब्द जोड़ा है, और **१६ : १६** में वह पतरस को "शमौन पतरस" कहता है। वह पतरस की स्वीकृति को भी बढ़ाकर उसमें "जीवते परमेश्वर का पुत्र" शब्दों को जोड़ता है। **१६ : १७-१९** केवल मत्ती में पाया जाता है।

उपरोक्त परिवर्तनों में से केवल अंतिम महत्वपूर्ण है। मरकुस की टीका में यह प्रकट किया गया है कि यद्यपि पतरस ने स्वीकार किया कि यीशु प्रतिज्ञात ख्रिस्त है, तथापि ख्रिस्त के प्रति उसकी कल्पना पूर्ण रूप से भ्रांत थी। मत्ती भी इसमें मरकुस का अनुसरण करता है (पद २१-२३), परंतु इस स्वीकरण में वे जोड़े हुए शब्द, और पद १७-१९, पतरस के इस भ्रांत विचार से असंगत हैं। इस मान्यता का कारण यह है कि पद १७-१९ में पतरस की प्रशंसा की जाती है, और वह धन्य कहा जाता है क्योंकि परमेश्वर ने उस पर यह सत्य प्रकट किया है कि ख्रिस्त यीशु ही है, और कि वह परमेश्वर-पुत्र है। फिर तत्क्षण वह अपने भ्रांत विचार के कारण शैतान कहा जाता है! यीशु

परमेश्वर-पुत्र माना जाता था (मर. १ : १ की टीका को देखिए), परन्तु संभाव्यतः पतरस के ये शब्द इस अवसर पर नहीं कहे गए। अनेक विद्वानों की मान्यता है कि कदाचित् "जीवते परमेश्वर का पुत्र" शब्द पतरस की एक अन्य स्वीकृति से सम्बन्धित हैं (तु. लू. २२ : ३१ क.; यू. ६ : ६६ क.)। परमेश्वर-पुत्र, या पुत्र का उल्लेख निम्नलिखित स्थलों में है : २ : १५; ३ : १७; ४ : ३, ६; ८ : २९; ११ : २७ (३ बार); १४ : ३३; १६ : १६; १७ : ५; २१ : २८ क. (दृष्टांत); २४ : ३६; २६ : ६३; २७ : ४०, ४३, ४५; २८ : १९।

१६ : १७—पतरस का वास्तविक नाम शमौन था। नया नियम में यह अधिकतर एक यूनानी नाम है, परन्तु उसके समान इब्रानी रूप का प्रयोग भी कहीं कहीं किया गया है। "मांस और लोहू" का अर्थ मनुष्य है। यीशु कहता है कि पतरस ने इस तथ्य को, कि यीशु परमेश्वर का ख्रिस्त और उसका पुत्र है, अपनी मानव बुद्धि से नहीं परन्तु परमेश्वर की प्रेरणा से पहचाना। १६ : १८—"पतरस" के अर्थ के सम्बन्ध में मर. ३ : १६ की व्याख्या को पढ़िए। ऐसा प्रतीत होता है कि मरकुस के अनुसार यह नाम इस समय से पहले दिया गया। यू. १ : ४२ के अनुसार आरम्भ में ही यीशु ने शमौन को पतरस कहा, परन्तु संभाव्यतः यह ऐतिहासिक दृष्टि से ठीक नहीं है। यदि मत्त. १६ : १७-१९ किसी अन्य अवसर से सम्बन्धित है (ऊपर देखिए) तो कदाचित् वह अवसर अन्तिम भोज है (कुल्लमन्न)। यहां प्रमुख बात इस नाम का अर्थ और उसका महत्व है। यीशु ने शमौन को कैफा (अरामी शब्द) कहा, जिसका यूनानी अनुवाद "पतरस" किया गया। दोनों शब्दों का अर्थ "पत्थर" या "चट्टान" है। अतः यीशु मानो यह कहता है कि "तू चट्टान है, और इस चट्टान पर मैं अपनी कलीसिया बनाऊंगा"। जहां तक हम जानते हैं इस से पूर्व "पतरस" किसी का नाम नहीं रहा था। शमौन वह चट्टान है जिस पर यीशु अपनी कलीसिया बनाएगा। (स्मरण कीजिए कि ७ : २४, २५ में भी चट्टान का वर्णन हैं)। रोमन काथलिक कलीसिया मानती है कि पतरस रोम का पहला बिशप था, और कि वह इन अर्थों में चट्टान है कि वह सार्वलौकिक कलीसिया का परमाध्यक्ष था। इसके पश्चात् पतरस के उत्तराधिकारियों को यह पद प्राप्त हुआ, और कालांतर में वे पोप कहलाते रहे हैं। रोमन काथलिक कलीसिया की यह मान्यता है कि प्रैरितिक उत्तराधिकार पतरस से लेकर आज तक एक अटूट अनुक्रम के द्वारा हम तक पहुंचा है। अन्य कलीसियाएं यह बात नहीं मानतीं, अतः यह स्थल बहुत वाद-विवाद का कारण रहा है, और उसकी विविध व्याख्याएं प्रस्तुत की गई हैं। इन व्याख्याओं पर विद्वानों की कलीसिया संबंधी निष्ठा का प्रभाव पड़ा है। अधिकतर प्रोटेस्टैंट कलीसियाओं की मान्यता यह रही है कि चट्टान जिस पर कलीसिया आधारित है पतरस स्वयं नहीं परंतु पतरस की यह स्वीकृति है कि ख्रिस्त यीशु ही है, या पतरस का विश्वास है। परंतु इस पद में यह नहीं कहा गया है। चट्टान पतरस है, और उस चट्टान, अर्थात् पतरस स्वयं पर यीशु कलीसिया बनाएगा। सचमुच प्रैरितिक कलीसिया में पतरस को प्रमुख

स्थान प्राप्त था। शिष्यों की सूचियों में उसका नाम प्रथम है, और बहुधा वह सब शिष्यों का प्रवक्ता है। प्रेरितों के कार्य के पहले अध्यायों में वह यरूशलेम की कलीसिया का अगुआ है, आदि। परंतु इस पद में कोई संकेत नहीं है कि वह एक अटूट अनुक्रम में पहला अध्यक्ष है। वह अपने काल की कलीसिया का अगुआ था। यह कलीसिया प्रैरितिक थी, अतः पतरस उन अर्थों में चट्टान था जिन अर्थों में कोई अन्य व्यक्ति नहीं हो सकता।

अधोलोक एक शब्द ("हादेस") का अनुवाद है जिसका अर्थ है वह लोक जहां, साधारण मान्यता के अनुसार, सब मृतक लोग, अच्छे और बुरे, जाते हैं। वह दंड का स्थान नहीं माना जाता था अतः मानो वह मृत्यु का प्रतीक है। यीशु ख्रिस्त के पुनरुत्थान के कारण मृत्यु उन लोगों पर विजयी नहीं होगी जो कलीसिया में सुरक्षित हैं— उसके फाटक उनको निगल नहीं सकेंगे (या उनको निकलने से नहीं रोक सकेंगे)।

"**कलीसिया**" शब्द सुसमाचारों में केवल इस पद में और १८ : १७ में पाया जाता है। बहुत विद्वानों का दावा है कि यह यीशु का कथन नहीं हो सकता क्योंकि यह असंभव है कि उसने "कलीसिया" शब्द का प्रयोग किया। आधुनिक युग में अनेक विद्वान मानते हैं कि संभवतः यीशु ने यह बात कही, क्योंकि यूनानी शब्द "एक्लेसिया" उस अरामी शब्द का अनुवाद है जो यीशु बोला (अनेक अरामी शब्द संभव हैं, परंतु निम्न-लिखित बात सब पर लागू है)। उस शब्द का अर्थ "इस्राएली लोगों का समुदाय" था, और यीशु का अभिप्राय एक नए इस्राएल की स्थापना करना था।

१६ : १९—यीशु ने इन अर्थों में पतरस को परमेश्वर के राज्य की कुंजियां दीं कि वह राज्य यीशु के जीवन और सेवाकार्य के द्वारा स्थापित हो गया था, और पतरस उस राज्य का प्रचारक था। "बांधना' और "खोलना" रब्बियों के पारिभाषिक शब्द थे। रब्बियों के प्रयोग के अनुसार इसके दो संभव अर्थ हैं : (i) "निषेध करना" और "अनुमति देना", अर्थात् नियम बनाना। (ii) "दंडनीय ठहराना" और "क्षमा करना"। संभव है कि दोनों अर्थ अभिप्रेत हों। इसका अर्थ यह है कि प्रैरितिक कलीसिया में पतरस को इन दो प्रकार का अधिकार दिया गया। ऐसा अधिकार १८ : १८ के अनुसार सब शिष्यों को सौंपा गया।

(ड) यीशु के दुःखभोग और मृत्यु की पहली भविष्यवाणी, क्रूस के मार्ग का स्पष्टीकरण १६ : २१-२८—(मर. ८ : ३१-९ : १)

इस अंश का स्पष्टीकरण मरकुस की टीका में किया गया है—उसको पढ़िए।

१६ : २१-२३—पद २१ में मत्ती ने "मनुष्य का पुत्र" शब्द, जो मरकुस में हैं, छोड़ दिए हैं। उसने सोचा होगा कि यहां ये शब्द "मुझे" के तुल्य हैं (मरकुस की टीका को देखिए)। मत्ती ने "कि यरूशलेम को जाऊं" शब्दों को जोड़ा है। ये शब्द मरकुस के वर्णन में निहित हैं पर स्पष्ट नहीं हैं। इस प्रकार के अन्य छोटे परिवर्तन हैं।

पद २२ में मत्ती ने पतरस की आपत्ति के शब्द बताए हैं, जो मरकुस में नहीं हैं। और पद २३ में "तू मेरे लिए ठोकर का कारण" शब्दों को जोड़ा है।

१६ : २४-२८—इसमें भी मत्ती के परिवर्तन महत्वपूर्ण नहीं हैं। **१६ : २४** में केवल शिष्यों का उल्लेख है—मरकुस में यीशु भीड़ को भी संबोधित करता है। इस पद की तुलना १० : ३८, ३९ और लू. १४ : २७; १६ : ३३ से कीजिए। **१६ : २४** और **२५** लगभग मरकुस के वर्णन के समान हैं। मत्ती ने मरकुस के पद ३८ पू. को छोड़ दिया है, कदाचित् इस कारण कि ऐसा ही कथन १० : ३३ में सम्मिलित किया गया है। **१६ : २८** में मत्ती ने "मनुष्य के पुत्र को उसके राज्य में आते हुए" लिखा है। मरकुस में इस प्रकार है, "परमेश्वर के राज्य को सामर्थ्य सहित आया हुआ"। जैसे मरकुस की टीका में कहा गया है, संभाव्यत: इन में कोई विशेष अंतर नहीं है।

(ढ) यीशु क रूपांतर १७ : १-१३ (मर. ९ : २-१३)

इस अंश की व्याख्या मर. ९ : २-१३ की टीका में पढ़िए। उस व्याख्या में मत्ती और मरकुस के वर्णनों की कुछ भिन्नताओं का उल्लेख किया गया है। इनके अतिरिक्त अनेक अन्य भिन्नताएं भी हैं। मुख्यत: ये भिन्नताएं हैं : कि यीशु का मुंह चमका (पद २); मरकुस का पद ६, कि शिष्य डर गए, आकाशवाणी के पश्चात् परिवर्तित रूप में पद ६ में पाया जाता है; कि यीशु अभी बोल ही रहा था (पद ५)। १७ : ६ और ७ केवल मत्ती में हैं। पद ९ में मत्ती ने साक्षात्कथन का प्रयोग किया है। इस पद में पर्वत पर का अनुभव "दर्शन" कहा गया है (हिं. सं., ध. ग्र., वुल्के। यह अनुवाद ठीक है)। मत्ती ने मरकुस के पद १० को छोड़ा है, जिस में शिष्यों के चुप रहने और जी उठने के संबंध में प्रश्न पूछने का उल्लेख है। पद १३ केवल मत्ती में है।

१७ : २ में "उसका मुंह सूर्य की नाईं चमका" शब्दों की तुलना १३ : ४३ और प्रक. १ : १३ क्र. से कीजिए। "मुंह चमकने" की दृष्टि से यीशु और मूसा में समानता प्रकट की गई है (दे. नि. ३४ : २९ क्र.)। पद ४ में मत्ती ने मरकुस के "रब्बी" के स्थान पर "प्रभु" लिखा है, जो अधिक सार्थक शब्द है। निस्संदेह मत्ती ने पद ५ में "जिस से मैं प्रसन्न हूं" शब्द ३ : १७ से लेकर यहां जोड़े हैं। यूनानी मूल पाठ में दोनों स्थलों में शब्द वही हैं। ९ : ६ और ७ में मत्ती ने मरकुस के ९ : ६ का स्पष्टीकरण किया है। इस वर्णन के अनुसार शिष्यों में डर की भावना, और यीशु की ओर से सांत्वना इस समस्त अनुभव के अंत में होती है।

१७ : ९-१३ में ऐसा प्रतीत होता है कि मत्ती के परिवर्तनों का अभिप्राय मरकुस के इस अंश की अस्पष्टता को दूर करना है। पद ९ के पश्चात् मत्ती ने अपने वर्णन में शिष्यों के उस प्रश्न को छोड़ा (मरकुस ९ : १०) कि जी उठने का क्या अर्थ है। मत्ती एलिय्याह के उल्लेख को, जो मरकुस में मनुष्य के पुत्र के दुख उठाने के वर्णन के कारण दो भागों में विभाजित है, एक बना देता है, और फिर स्पष्ट शब्दों में लिखता है कि जिस प्रकार लोगों ने यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाले को दु:ख दिया उसी प्रकार वे मनुष्य के पुत्र

के साथ व्यवहार करेंगे। यह बात पद १३ में, जो मत्ती का संपादकीय परिशिष्ट है, स्पष्ट की गई है।

(त) अशुद्ध आत्मा-ग्रसित बालक को स्वस्थ करना, मृत्यु की दूसरी भविष्य-वाणी १७ : १४-२३ (मर. ९ : १४-२३)

इस अंश की व्याख्या मर. ९ : १४-३२ की टीका में पाई जाती है। मत्ती ने इस अंश को, विशेषकर पद १४-२१ को, बहुत संक्षिप्त किया है। लूका ने भी ऐसा किया है। मरकुस के वर्णन में अनेक बातें दोहराई गई हैं। मत्ती के अनुसार लड़के का पिता घुटने टेकता है, और "गुरु" (मरकुस में) के स्थान पर यीशु को "प्रभु" कहता है। मत्ती में बालक के रोग का वह सजीव विवरण नहीं है जो मरकुस में है, परंतु मत्ती उस रोग का सही नाम, अर्थात् मिरगी, बताता है। वह यीशु के साथ बालक के पिता का वार्तालाप वर्णित नहीं करता (मर. ९ : २०-२५ पू.)। पद २० मरकुस के वर्णन से भिन्न है। यूनानी मूल पाठ में एक छोटा पद है जो हि. प्र. में सम्मिलित नहीं किया गया। वह पद २१ है, और इस कारण कि वह अधिकांश श्रेष्ठ हस्तलेखों में नहीं है वह छोड़ा गया। परंतु हिं. सं. में वह पद २१ है (पद-टिप्पणी भी देखिए)। हि. प्र. में पदों के अंकों का अनुकूलन किया गया है। छोड़ा हुआ पद है, "यह वर्ग प्रार्थना और उपवास के बिना नहीं निकल सकता" (हिं. सं.)। यह मर. ९ : २९ से यहां जोड़ा गया होगा।

ऐसा प्रतीत होता है कि मत्ती केवल इस घटना का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत करना चाहता था, कि विश्वास की आवश्यकता पर बल दे। अतः उस ने इस अभिप्राय को सामने रखते हुए अनावश्यक ब्योरों को मरकुस के वर्णन में से निकालकर अपने वर्णन के अंत में विश्वास के विषय में यीशु के एक कथन को जोड़ा जो भिन्न रूपों में लू. १७ : ७ (जो इस पद के समान है), और मर. ११ : २२, २३=मत्त. २१ : २१ में भी पाया जाता है। राई के दाने का उल्लेख १३ : २१ क्र. में हो चुका है। "पहाड़ को हटाना" यहूदियों की कहावत थी—मर. ११ : २२, २३ की व्याख्या पढ़िए।

१७ : २२, २३ में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया गया है। मत्ती ने इसको भी संक्षिप्त किया है। विशेषकर उस ने मरकुस की यह बात छोड़ी है कि शिष्यों ने इस कथन को नहीं समझा। इस में "पकड़वाया जाना" वही यूनानी शब्द (परदिदोमी) है जो मरकुस में भी है—मरकुस की व्याख्या को देखिए।

(थ) मंदिर के कर का भुगतान १७ : २४-२७

वह अंश केवल मत्ती में है। १७ : २४ के पहले शब्द, कि वे कफरनहूम में पहुंचे, मर. ९ : ३३ से लिए गए हैं। प्रत्येक यहूदी पुरुष को जिसकी आयु बीस वर्ष या अधिक थी, मंदिर को वार्षिक कर देना पड़ता था। यह केवल मंदिर के लिए था। यह अन्य करों से पूर्ण रूप से भिन्न था। इस वर्णन में एक प्रकार की उपमा है। जिस प्रकार "पृथ्वी के राजाओं" के पुत्र, अर्थात् उनके राज्यों के नागरिक, कर नहीं देते (आधुनिक राष्ट्रों की कर की विधियां बहुत भिन्न हैं !) उसी प्रकार यह आवश्यक है कि परमेश्वर

के राज्य में उसके पुत्रों से, विशेषकर यीशु से, कर की मांग न की जाए ("पुत्र बच गए" पद २६)। तो भी १७ : २७ में एक मौलिक सिद्धांत व्यक्त किया गया है—"इसलिए कि हम ठोकर न खिलाएं", कर देना चाहिए। इसकी तुलना १ कुर. ८ : १३; ९ : १२ से कीजिए।

१७ : २७ में कठिनाई यह है कि यीशु की ऐसी प्रथा प्रतीत होती है कि वह अपने हित के लिए आश्चर्यकर्म नहीं करता था। यदि इस प्रकार का आश्चर्यकर्म होता तो वह इसलिए होता कि कर देने का रुपया मिले। यह तथ्य द्रष्टव्य है कि यह वर्णित नहीं है कि पतरस ने ऐसा किया। अनेक टीकाकारों की यह मान्यता है कि यीशु का अर्थ यह था कि पतरस जाकर मछली पकड़े और उसकी प्राप्ति में से कर दे। यह संभव है कि यीशु ने कोई ऐसी बात कही, और यह बात परंपरा में चमत्कार में परिवर्तित हुई। मत्ती के काल में मंदिर नष्ट हो चुका था (यह ई. स. ७० में हुआ)। उसके विध्वंस के पश्चात् भी रोमी शासक यहूदियों से यह कर लेते रहे। संभाव्यतः मत्ती के काल में ऐसा कर देना या न देना ख्रिस्तियों के लिए तीव्र प्रश्न हो गया था, अतः इस अंश के द्वारा उनका मार्गदर्शन हुआ।

(२) प्रवचन १८ : १-३५

इस चौथे प्रवचन के आरम्भ में मत्ती मरकुस की सामग्री का क्रमानुसार प्रयोग करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसका अभिप्राय व्यावहारिक बातों में कलीसिया का मार्गदर्शन करना है। वह Q और अपने निजी स्रोत में से भी सामग्री जोड़ देता है। इस से पूर्व वृत्तांत और वाद-विवाद के द्वारा कलीसिया की स्थापना और फरीसियों की परंपरा से कलीसिया की स्वतंत्रता का वर्णन है। अ बबताया जाता है कि कलीसिया में उसके सदस्यों का परस्पर संबंध कैसा होना चाहिए।

(क) विनम्रता की शिक्षा, ठोकर खिलाने का पाप, भटकी हुई भेड़ १८ : १-१४ (मर. ९ : ३३-३७; १० : १५; ९ : ४२-४७; लू. १७ : १; १५ : ३-७)

इस अंश के संबंध में मरकुस के उपरोक्त स्थलों की व्याख्या को पढ़िए, जहां वर्णित है कि मरकुस ने अनेक सूचक शब्दों के द्वारा अपनी सामग्री को संकलित किया है।

१८ : १-५ में मत्ती ने मर. ९ : ३३-३७ का संक्षेप लिखा है, जिस में शिष्यों के वाद-विवाद का वर्णन नहीं है—वे केवल यीशु से प्रश्न पूछते हैं। पद ३ में मत्ती ने मर. १० : १५ को जोड़ दिया है। इन पदों के समान अनेक अन्य पद सुसमाचारों में पाए जाते हैं, जो मरकुस की टीका में बताए गए हैं। उनका अध्ययन भी करना चाहिए। पद ४ केवल मत्ती में है। वह मत्ती २३ : १२=लू. १४ : ११, और लू. १८ : १४ के समान है। मरकुस के समान मत्ती की दृष्टि में भी बालक नम्रता का प्रतीक है।

१८ : ६-९ के प्रत्येक पद में "ठोकर" या "ठोकर खिलाने" का उल्लेख है।

इसके अर्थ के संबंध में मरकुस की टीका को पढ़िए। पद ७ लू. १७ : १ के समान है, अत: वह यहां Q से जोड़ा गया है। इसमें तीन बार "ठोकर" शब्द है। "ठोकरों का लगना अवश्य है" का अर्थ यह नहीं है कि वे परमेश्वर की इच्छा से होती हैं, परन्तु केवल यह कि मानव स्वभाव ऐसा है कि ठोकर अवश्य होंगी ("प्रलोभन तो होंगे", हिं. सं.)। तुलना कीजिए १ कुर. ११ : १९। वह व्यक्ति जो दूसरे से पाप कराता (ठोकर खिलाता, या प्रलोभन दिलाता) है उत्तरदायी है, अत: उस पर हाय। पद ८ में "अनंत आग" मर. ९ : ४४ के "नरक" के समानार्थक शब्द हैं—उस पद की व्याख्या को पढ़िए। मत्ती मरकुस के वर्णन को संक्षिप्त करके हाथ और पांव का उल्लेख एक साथ करता है। १८ : १० में (हिं. सं. पद ९, यूनानी पाठ के अनुसार) "जीवन में प्रवेश करने" का उल्लेख है। मरकुस में "परमेश्वर के राज्य में प्रवेश करना" है। अर्थ एक ही है।

१८ : ११-१४—पद १२, १३ में लू. १५ : ३-७ का संक्षेप है। **१८ : ११** और १४ केवल इस स्थल पर पाए जाते हैं। वे मत्ती के निजी स्रोत में से हैं। यूनानी मूल पाठ में एक और पद अनेक निम्न कोटि के हस्तलेखों में पाया जाता है, जो हिं. सं. में पद ११ है : "क्योंकि मानव-पुत्र खोए हुओं को बचाने आया है"—पद-टिप्पणी को भी देखिए। यह पद इस कारण निकाला गया है कि अधिकांश विद्वानों की मान्यता के अनुसार वह प्रामाणिक नहीं है। वह लू. १९ : १० के समान है।

१८ : ११ में भी संभाव्यत: "छोटों" का अर्थ नम्र विश्वासी है। यहूदियों की मान्यता थी कि राष्ट्रों (दा. १० : १३, २०) और व्यक्तियों (उ. ४८ : १६; प्रे. १२ : १५। मृतक सागर के लेखों में भी इनका उल्लेख है) के स्वर्ग-दूत होते हैं। "स्वर्गिक पिता का मुंह देखने" का अर्थ यह है कि उन्हें परमेश्वर के पास पहुंच प्राप्त है। इसका अर्थ यह है कि परमेश्वर उन "छोटों" की रक्षा करता है। **१८ : २१, १३** में मत्ती ने इस दृष्टांत का सारांश प्रस्तुत किया है। वह मनुष्य इस कारण आनंदित है कि उसकी खोई हुई भेड़ मिल गई। खोई हुई वस्तु का मिलना सदा बड़े आनंद का कारण होता है—यह एक सामान्य अनुभव है। १८ : १४ में मत्ती अपने शब्दों में प्रसंग के अनुकूल इस दृष्टांत का अर्थ बताता है। कलीसिया में एक दूसरे के हित का विचार करना चाहिए, क्योंकि परमेश्वर स्वयं लोगों को बचाना चाहता है।

(ख) अपराधियों के प्रति व्यवहार १८ : १५-२० (लू. १७ : ३)

१८ : १५ लू. १७ : ३ के समान है। इस अंश का शेष भाग केवल मत्ती में है। इन पदों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि वे किसी स्थापित कलीसिया के लिए लिखे गए हैं। इस रूप में वे यीशु के कथन नहीं हो सकते क्योंकि यीशु के काल में कलीसिया एक सुव्यवस्थित समुदाय नहीं थी। यह अंश यीशु के कथनों पर आधारित है, परंतु हम उन कथनों को ठीक ठीक नहीं जान सकते।

१८ : १५-१७ के समान आदेश कुमरान पंथ (मृतक सागर के समुदाय) की "आचार-व्यवहार की नियमावली", ५ : २५—६ : १ में भी पाए जाते हैं। यहां "भाई"

का अर्थ ख्रिस्ती व्यक्ति है। "पा लिया" का अर्थ "बचा लिया" (बुल्के) है। पिछले अंश में यह शिक्षा है कि परमेश्वर लोगों को बचाना चाहता है। अनुशासन करने में कलीसिया का भी यही अभिप्राय होना चाहिए। तुलना कीजिए लै. १९ : १७, १८, जिसका संकेत ५ : ५३; १९ : १९; २२ : ३९ में भी है। १८ : १६ व्य. १९ : १५ पर आधारित है, परंतु यहां न्यायालय का नहीं वरन् व्यक्तिगत वार्तालाप का विचार है। १८ : १७ विशेषकर यीशु के दृष्टिकोण के विपरीत प्रतीत होता है, तुलना कीजिए ८ : ११, १२; ९ : १०, ११; १० : ३; ११ : १९ ; २ : ३१, ३२; लू. १८ : १०-१४। ऐसा प्रतीत होता है कि मत्ती के काल में "अन्यजाति और कर लेनेवाला" का अर्थ असमसीही था। ऐसे लोग पुराने इस्राएल में भागी नहीं समझे जाते थे। अब नया इस्राएल है, अतः ये उन लोगों के प्रतीक हैं जो इस नए इस्राएल में भागी नहीं हैं। संभवतः यहां इसका अर्थ यह है कि ऐसे व्यक्ति का निष्कासन हो।

१८ : १८ की तुलना १६ : १९ से करके उस पद की व्याख्या को पढ़िए। संभव है कि यहां "बांधने" का अर्थ निष्कासन हो। वह अधिकार जो १६ : १९ के अनुसार पतरस को दिया गया यहां स्थानिक कलीसिया को सौंपा जाता है। इसके समान एक कथन यू. २० : २३ में भी है। इसी बात के संबंध में १८ : १९ भी है। संभवतः यह यीशु का एक अलग कथन था, परंतु इस संदर्भ में उसका अर्थ यह है कि कलीसियाई अनुशासन के संबंध में ऐसी प्रार्थना सुन ली जाएगी। इस प्रकार १८ : २० भी है। कलीसिया के निर्णयों में यीशु उपस्थित होता है। यदि उपरोक्त सब आदेशों को मान लिया जाए तो संभव है कि कलीसिया में झगड़े न बढ़ने पाएं। इस अंश में धैर्य रखने और प्रार्थना के द्वारा निर्णय करने का परामर्श दिया गया है। प्रार्थना "एक मन होकर" की जाती है, और दो या तीन "यीशु के नाम" से एकत्रित होते हैं। इसका अर्थ यह है कि एकत्रित होने में वे यीशु का सा भाव और और अभिवृत्ति रखते हैं। ऐसी बातों का निर्णय करने में ख्रिस्त अपनी कलीसिया का साथ देता है। इसकी तुलना १ कुर. ५ : १-८ से कीजिए।

(ग) अक्षमाशील दास का दृष्टांत १८ : २१-३५ (लू. १७ : ४)

१८ : २१, २२ लू. १७ : ४ के समान है। उपरोक्त स्थल में यह संभावना प्रस्तुत है कि कभी कभी कलीसिया का कर्तव्य किसी को दंड देना है। यह प्रश्न उठता है कि व्यक्तिगत रूप से ख्रिस्ती जन की क्या अभिवृत्ति होनी चाहिए ? संभवतः Q में इस कथन का वह रूप था जो लूका में है, और मत्ती ने उसका अनुकूलन किया है। यहां भी "भाई" ख्रिस्ती भाई है। शिक्षा यह मिलती है कि "सात बार के सत्तर गुने तक" क्षमा करनी चाहिए, अर्थात् क्षमा असीम होनी चाहिए। हिं० सं० में इसका अनुवाद "सात से सत्तर गुने तक" है। यूनानी मूल पाठ स्पष्ट नहीं है; संभाव्यतः "सतहत्तर बार" होना चाहिए। उ. ४ : २४ में, बदला लेने के संबंध में, सतहत्तर बार का उल्लेख है। सही अंक महत्वपूर्ण नहीं है। मौलिक अर्थ असीम क्षमा है।

१८ : २३-३५—संभाव्यत: मत्ती को यह दृष्टांत किसी अन्य स्रोत से प्राप्त हुआ और उसने स्वयं उसको यहां जोड़ा। वास्तव में यह दृष्टांत यीशु के उपरोक्त कथन का स्पष्टीकरण नहीं करता कि क्षमा असीम होनी चाहिए। उसकी मौलिक शिक्षा वही है जो ६ : १२, १४, १५ में पाई जाती है। इस दृष्टांत में पहला दास एक राज्यपाल सा प्रतीत होता है क्योंकि इसका ऋण बहुत बड़ा, कई करोड़ रुपया, था। वह इतना बड़ा ऋण नहीं चुका सकता था, अत: वह जीवन भर बंदीगृह में रह जाता। एक महत्वपूर्ण शब्द **१८ : २७** में है, "तरस खाकर" (इसमें ईश्वरीय स्वभाव का चित्रण है)। न केवल दास मुक्त कर दिया गया, उसका ऋण भी क्षमा हुआ। दूसरे दास का ऋण छोटा ही था परंतु निर्दय दास ने उसे अवसर तक नहीं दिया। दूसरे दास के शब्द वही हैं जो पहला दास अपने स्वामी से बोला (पद २६, २६), परंतु उपरोक्त दास अक्षमाशील प्रमाणित हुआ। **१८ : ३२-३५** में उस सिद्धांत का स्पष्टीकरण है जो ६ : १५ में पाया जाता है। पद ३५ और ६ : १५ में बहुत समानता है। पद ३४ में "दंड देनेवालों" का शाब्दिक अर्थ "यंत्रणा देनेवालों" है। बंदीगृह में यंत्रणा देना साधारण बात थी। यह संभाव्यत: नरक में डाले हुए लोगों का प्रतीक है। अंतिम पद में "मन से" ("हृदय से" ठीक है, जैसे हिं. सं. और बुल्के में है) शब्द महत्वपूर्ण हैं। औपचारिक रूप से कहना कि "मैं आपको क्षमा करता हूँ" व्यर्थ है। वास्तविक क्षमा बहुत गंभीर होती है। परमेश्वर की क्षमा का प्रतीक वह अत्यंत बड़ा ऋण है जो चुका दिया गया। इस प्रकार हमारा क्षमा करना भी असीम होना चाहिए।

६. पांचवां भाग १९ : १—२५ : ४६

(१) वृत्तांत तथा वाद-विवाद १९ : १—२३ : ३९

इस भाग में १९ : १—२२ : ४६ अधिकतर मरकुस के वर्णन पर आधारित है। निम्न-लिखित स्थल मत्ती के विशेष स्रोत में से हैं: १९ : १०-१२; २० : १-१६; २१ : १४-१६, २८-३२, ४३; २२ : १-१४। अध्याय २३ अधिकतर मत्ती के विशेष स्रोत में से है, परंतु इसमें कुछ सामग्री Q में से भी है। इन अध्यायों में हम यीशु को यरूशलेम जाते हुए देखते हैं। १९ : १ में वर्णित है कि वह "यहूदियों के देश में यरदन के पार आया"।

(क) विवाह-विच्छेद के संबंध में शिक्षा १९ : १-१२ (मर. : १० १-१२)

१९ : १-९ के संबंध में मर. १० : १-१२ की व्याख्या को पढ़िए। इन पदों की लगभग पूर्ण व्याख्या उसमें की गई है। विशेष रूप से उसमें मत्ती के परिशिष्ट, "व्यभि-चार को छोड़ और किसी कारण से" पर ध्यान दिया गया है। इसके अतिरिक्त मत्ती ने इन नौ पदों में मौलिक परिवर्तन नहीं किए। **१९ : १** में वह सूत्र है जो प्रत्येक प्रवचन के पश्चात् ही आता है (७ : २८; ११ : १; १३ : ५३; २६ : १)। फिर मत्ती ने मर. १० : १ का अनुकूलन किया है। **१९ : २** में, जहां मरकुस के अनुसार भीड़ यीशु के पास एकत्रित हो गई मत्ती ने लिखा कि भीड़ उसके पीछे हो ली, और मरकुस के "उप-देश देने" के स्थान पर कहता है कि "उसने उन्हें चंगा किया"। ऐसा प्रतीत होता है कि

मत्ती नहीं कहना चाहता था कि यीशु ने भीड़ों को शिक्षा दी (१३ : १ और १४ : १४ में भी उसने मरकुस की यह बात अपने वर्णन में से निकाल दी है कि यीशु ने भीड़ को शिक्षा दी) ।

१६ : ३ में मत्ती का कहना है कि फरीसियों ने यह प्रश्न "उसकी परीक्षा करने के लिए" पूछा। यह मरकुस में नहीं है। इस पद में "हर एक कारण" ("किसी भी कारण से", बुल्के) शब्द भी जोड़े गए हैं। मत्ती ने मरकुस के क्रम को बदलकर पहले उत्पत्ति का उद्धरण, फिर व्यवस्थाविवरण का उद्धरण और मूसा का उल्लेख प्रस्तुत किया है। यह क्रम अधिक तर्कसंगत है। ऐसा करने में उसने अन्य बातों का अनुकूलन भी किया है। उसने पद ६ में मरकुस के पद १० का अनुकूलन किया है, और मरकुस के पद १२ को छोड़ दिया है। मर. १० : १२ रोमी विधि के अनुसार है—यहूदी स्त्री अपने पति को नहीं त्याग सकती थी।

१६ : १०-१२ केवल मत्ती में पाया जाता है। संभव है कि इस अंश का प्रसंग भिन्न था, परंतु यहां उसका संबंध फरीसियों के प्रश्न (पद ३) और यीशु के स्पष्टीकरण से है। शिष्य कहते हैं कि यदि पति-पत्नी का ऐसा संबंध होना चाहिए जो यीशु ने अभी बताया है, अर्थात् कि केवल व्यभिचार के कारण विवाह-विच्छेद विहित है, तब विवाह न करना अच्छा है (दु:ख-पूर्ण विवाह-संबंध को सहना अच्छा नहीं है। यहूदी लोगों की साधारण मान्यता यह थी कि विवाह करना कर्तव्य है (उ. १ : २८), और फरीसियों के लिए वह अनिवार्य था। ब्रह्मचर्य-पालन की प्रथा केवल एसेनी (कुमरान) पंथ जैसे यहूदियों में प्रचलित थी। **१६ :११** में "वचन" (हिं. सं. "शिक्षा", बुल्के और ध. ग्र. "बात") संभाव्यत: पद १० में शिष्यों का कथन या पद १२ में यीशु का कथन है। केवल वे लोग ब्रह्मचारी हो सकते हैं जिनको परमेश्वर विशेष अनुग्रह अथवा शक्ति दे। **१६ : १२ में तीन प्रकार के नपुंसक** का उल्लेख है, प्रथम वे जो शारीरिक दुर्बलता के कारण नपुंसक हैं, द्वितीय वे जिनको मनुष्य बधिया करते हैं, तृतीय वे जो स्वेच्छा से ब्रह्मचारी हैं। यह स्पष्ट है कि यहां ब्रह्मचर्य को ख्रिस्तीय जीवन में अग्रिम स्थान नहीं दिया गया है, परंतु वह उन लोगों के लिए ठीक है जो अनुभव करते हैं कि उनके लिए यह परमेश्वर की इच्छा है। वे स्वर्ग-राज्य के निमित्त ऐसा करते हैं।

(ख) बालकों को आशीर्वाद १६ : १३-१५ (मर. १० : १३-१६)

(ग) धनवान् युवक, धन और शाश्वत् जीवन १६ : १६-३० (मर. १० : १७-३१; लू. २२ : २८-३०)

१६ : १३-१५ में मर. १० : १३-१६ का संक्षेप है—उसकी व्याख्या को पढ़िए। मत्ती ने मर. १० : १५ का प्रयोग १८ : ३ में किया, इस कारण वह उसे यहां छोड़ देता है। वह अपनी प्रथानुसार इस बात को भी सम्मिलित नहीं करता (मर. पद १४) कि "यीशु क्रुद्ध हुआ"।

१६ : १६-३०—मौलिक रूप से यह अंश भी मरकुस के वर्णन के समान है। मर-

कुस की व्याख्या को पढ़िए। निम्न-लिखित पंक्तियों में महत्वपूर्ण परिवर्तनों पर ध्यान दिया गया है।

१९ : १६ में उस मनुष्य का प्रश्न यह है कि "मैं कौन सा भला काम करूं ?"। मरकुस में प्रश्न इस प्रकार है, "मैं क्या करूं ?"। उस मनुष्य के मन में कर्म द्वारा अनंत जीवन को कमाने का विचार था। **१९ : १७** में मत्ती एक मौलिक परिवर्तन करता है, जिस पर मर. १० : १७, १८ की टीका में कुछ ध्यान दिया गया है। "तू मुझ से भलाई के विषय में क्यों पूछता है ?" शब्दों में गलतफहमी होने का डर नहीं है। मरकुस की टीका में यह प्रकट किया गया है कि मरकुस में यह कथा बहुत भिन्न और कठिन है, "तू मुझे उत्तम क्यों कहता है ?"। मत्ती के परिवर्तन के कारण यीशु का उत्तर असंगत सा हो जाता है। १९ : १८ में मत्ती के अनुसार यह मनुष्य प्रश्न पूछता है, "कौन सी आज्ञाएं ?", जो मरकुस में नहीं है। मत्ती में "छल न करना" नहीं है (मरकुस की टीका को देखिए), परंतु १९ : १९ में वह इस आज्ञा को सम्मिलित करता है जिसे हम "आज्ञाओं का सारांश" कहते हैं (देखिए रो. १३ : ९)। यह मरकुस में नहीं है। मत्ती ने स्वयं इसे यहां जोड़ा होगा। यह २२ : ३९ में भी है।

१९ : २० में इस मनुष्य को "युवक" (मूल यूनानी में नयानिस्कस) कहा गया है, जो मरकुस में नहीं है। संभाव्यतः यह "लड़कपन से" (मूल यूनानी में नयातेतस) के स्थान पर है। मूल यूनानी शब्दों में शाब्दिक संबंध है। मत्ती इस बात को भी छोड़ता है कि यीशु ने उससे प्रेम किया, और ये शब्द जोड़ता है, "यदि तू सिद्ध होना चाहता है" (यदि तू पूर्ण होना चाहे", हिं. सं.)। यहां "पूर्ण होने" का अर्थ अनंत जीवन की प्राप्ति है। **१९ : २४** में "परमेश्वर का राज्य" शब्द हैं, जो मत्ती में बहुत कम पाए जाते हैं (साधारणतः वह "स्वर्ग-राज्य" लिखता है)। इस पद में यीशु के शब्द (हिन्दी अनुवाद में) शब्दशः वे हैं जो मर. १० : २५ में है, परंतु यूनानी में कम से कम पांच भिन्नताएं हैं। तो भी अनुवाद ठीक है। मत्ती ने शाब्दिक परिवर्तन किए हैं। **१९ : २७** में मत्ती ने वे शब्द जोड़े हैं जो मरकुस में निहित हैं, "तो हमें क्या मिलेगा ?"। १९ : २८ को मत्ती ने यहां जोड़ा है। लू. २२ : १८-३० इसके समान है, परंतु इतना अंतर भी है कि कदाचित् यह Q में से नहीं है। "नई उत्पत्ति", "नई सृष्टि" (हि. सं.) या "नया युग" (ध. ग्र.) है—इनमें से अंतिम अनुवाद अच्छा है। यह वह युग है जब परमेश्वर का राज्य पूर्ण होगा और उसकी इच्छा पूरी हो जाएगी। ख्रिस्त (मानव-पुत्र) का शासन पूर्ण हो जाएगा (सिंहासन पर बैठने का यही अर्थ है)। "जो मेरे पीछे हो लिए हो" शब्द पद २७ में पतरस के शब्दों की ओर संकेत करते हैं। "इस्राएल के बारह गोत्र" का अर्थ कलीसिया है, जो नया इस्राएल है। पुराना इस्राएल बहुत काल से "बारह गोत्र" नहीं रहा था। यहां "न्याय करने" का अर्थ "राज्य करना" है। शिष्य सब कुछ त्यागकर यीशु का अनुसरण करते हैं और फलस्वरूप उनको परमेश्वर के राज्य में अधिकार प्राप्त होगा। १९ : २९ में मत्ती ने उन सब शब्दों को छोड़ दिया है जिनमें वर्तमान में संपत्ति मिलने की प्रतिज्ञा है। मत्ती में पद २८-३० पूर्णतः युगांत-संबंधी हैं।

(घ) दाख उद्यान के श्रमिक २० : १-१६

यह दृष्टांत केवल मत्ती में है। १९ : ३० और २२ : १६ समान पद हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मत्ती ने इस दृष्टांत को इन पदों में व्यक्त सिद्धांत का स्पष्टीकरण करने के लिए यहां किसी अन्य स्रोत से सम्मिलित किया है। तो भी वास्तव में इस दृष्टांत में यह शिक्षा नहीं मिलती कि अंतिम प्रथम होंगे और प्रथम अंतिम।

२० : १—"किसी मनुष्य के समान" का अर्थ यह है कि स्वर्ग-राज्य इस समस्त परिस्थिति के समान है जो इस दृष्टांत में वर्णित है।२० : २—एक दीनार एक दिन की मजदूरी था। पहले श्रमिकों के पश्चात् अन्य लोगों के साथ मज़दूरी नहीं ठहराई गई। पद ६ में यह संभावना है कि ये श्रमिक आलसी थे, या वे देर में पहुंचे थे, इस कारण वे नहीं लगाए गए। ऐसे प्रश्न नहीं पूछे गए। २० : ८ में "स्वामी" यूनानी शब्द "किरियस" का अनुवाद है, जिसका अर्थ "प्रभु" है, और जो सेप. में "याहवे" का अनुवाद है। संभवत: "पिछलों से लेकर पहलों तक" का अर्थ केवल यह है कि सब बुलाए जाएं, कोई न छोड़ा जाए। २० : १२ में संभाव्यत: "पिछलों" फरीसियों की ओर संकेत है, और "भार" व्यवस्था का भार है, जिसे परीसी उठाए रहते थे (तु. प्रे. १५ : २८; मत्ती ११ : २८ और व्याख्या)।

२० : १४, १५ में दृष्टांत का अर्थ प्रकट किया गया है। वास्तविक स्वामी परमेश्वर है, जिसको पूर्ण अधिकार प्राप्त है। परमेश्वर उदार और अनुग्रहमय है, वह जो कुछ चाहता है कर सकता है। वह दयासागर है, अत: वह मनुष्यों को उनकी योग्यता के अनुसार नहीं परंतु उनकी आवश्यकता के अनुसार देता है। वह उस स्वामी के समान भला है, अत: वह उन लोगों को भी अपने राज्य में प्रविष्ट करता है जिन्हें संसार के लोग अयोग्य समझते हैं। इस प्रकार यीशु ने कहा था कि कर लेनेवाले और वेश्या पहले परमेश्वर के राज्य में प्रवेश करेंगे (२१ : ३१)। परमेश्वर सर्वशक्तिमान है, उसको पूर्ण अधिकार प्राप्त है। उसके दान मानव योग्यता से नहीं कमाए जा सकते, परंतु वह दीन लोगों को योग्य बनाता है। वे लोग उसके राज्य में प्रवेश कर सकते हैं जो नम्र हैं, और अपनी निरुपाय अवस्था से परिचित हैं। अत: २० : १६ केवल इन अर्थों में लागू है कि परमेश्वर सब लोगों को समान दृष्टि से देखता है (सबको एक दीनार मिला)। कोई प्रथम या अंतिम नहीं, सब समान हैं।

(च) यीशु की मृत्यु की तीसरी भविष्यवाणी २० : १७-१९
(मर. १० : ३२-३४)

(छ) यीशु और जबदी के पुत्र, यथार्थ बड़प्पन २० : २२-२८
(मर. १० : ३५-४५)

(ज) दो अंधों को दृष्टिदान २० : २९ : २९-३४ (मर. १० : ४६-५२)

२० : १७-१९ के संबंध में मर. १० : ३२-३४ की टीका को पढ़िए। इस अंश को भी मत्ती ने संक्षिप्त किया है। उसने शिष्यों के आश्चर्य और भय का उल्लेख नहीं किया

है, जो मर. १० : ३२ में है, और मर. १० : ३४ में से थूकने के उल्लेख को निकाल दिया। इसका कारण स्पष्ट नहीं है, क्योंकि मत्त. २७ : ३० में यह अन्य ब्योरों के साथ वर्णित है। केवल एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह है कि मत्ती "क्रूस पर चढ़ाएं" लिखता है। मरकुस और लूका में केवल "घात करेंगे" है। केवल मत्ती में वर्णित है कि यीशु ने अपनी मृत्यु के संबंध में विशेष क्रूस का उल्लेख किया।

२० : २०-२८—मरकुस १० : ३५-४५ की व्याख्या को पढ़िए। मत्ती में मुख्य परिवर्तन यह है कि उसके अनुसार याकूब और यूहन्ना की माता उनके निमित्त प्रभु से निवेदन करती है। इस पूरे अंश में मत्ती इन शिष्यों के नाम नहीं लेता। ऐसा प्रतीत होता है कि वह उनके नाम की रक्षा करना चाहता था। परंतु पद २२ में वह उन्हें संबोधित करता है और वे उत्तर देते हैं। एक अन्य अनुमान यह है कि मत्ती इस कारण यह नहीं लिखना चाहता था कि इन दो भाइयों ने स्वयं ऐसा निवेदन किया कि ऐसा करने में वे पतरस का अनादर करते, क्योंकि यीशु ने पतरस को अग्रिम स्थान दिया था। ऐतिहासिक दृष्टि से मरकुस के वर्णन को प्रामाणिक मानना चाहिए। मत्ती ने मर. १० : ३९ में से बपतिस्मा के उल्लेख को छोड़ा है। २० : २३ में उसने "मेरे पिता की ओर से" शब्दों को जोड़कर इस बात को अधिक स्पष्ट किया है।

२० : २९-३४—मरकुस में एक अंधे के वर्णन के स्थान पर दो अंधों का उल्लेख होने पर ८ : २८-३४ की व्याख्या को देखिए। इस स्थल के संबंध में एक टीकाकार का सुझाव यह है कि कदाचित् ये दो अंधे उन दो भाइयों, याकूब और यूहन्ना की ओर संकेत करते हैं। वे भी आत्मिक रूप से अंधे थे। २० : ३१ में ये अंधे यीशु को "प्रभु" कहते हैं, जो मरकुस में नहीं है। २० : ३२ में मर. १० : ४९, ५० का संक्षेप ही है। २० : ३४ पू. मर. १० : ५२ पू. से पूर्ण रूप से भिन्न है। इसमें वह यूनानी शब्द (ऑम्मा) है जिसका अनुवाद "आंखें" है। नया नियम में यह शब्द केवल यहां और मर. ८ : २३ में पाया जाता है, अतः अनुमान लगाया गया है कि कदाचित् लिखते समय मत्ती के मन में वह पद था। मत्ती ने मर. ८ : २२-२६ को अपने सुसमाचार में सम्मिलित नहीं किया है।

(झ) यरूशलेम में यीशु का प्रवेश २१ : १-११ (मर. ११ : १-११ पू.)

इस अंश की व्याख्या मरकुस की टीका में पढ़िए।

२१ : १ में मत्ती मरकुस के वर्णन में से बैतनिय्याह का उल्लेख निकाल देता है। **२१ : २** और ३ में अनेक महत्वहीन परिवर्तन हैं। बड़ा परिवर्तन यह है कि गदही और उसका बच्चा दोनों का उल्लेख है। इस अंश के शेष भाग का अनुकूलन इस तथ्य की दृष्टि से किया गया है। **२१ : ४ और ५** में यश. ६२ : ११ ("सिय्योन की बेटी से कहो") और ज. ९ : ९ के उद्धरण हैं, जो मरकुस में नहीं हैं। **२१ : ६** में मरकुस के पद ४-६ का संक्षेप है—सब ब्योरे निकाल दिए गए हैं। २१ : ९ में मत्ती ने "दाउद के संतान" शब्दों को जोड़ा है। **२१ : १०** और ११ केवल मत्ती में हैं।

ज. १४ : ४ और अन्य स्थलों से ज्ञात होता है कि यहूदियों के मनों में ख्रिस्त के आने की आशा से जैतून पर्वत का एक विशेष संबंध था। निस्संदेह मत्ती ने जकर्याह के उद्धरण के प्रभाव से दो गदहों का उल्लेख किया है। ज. ९ : ९ में हिन्दी अनुवाद ऐसा है, "गदहे पर वरन् गदही के बच्चे पर चढ़ा हुआ आएगा"। इब्रानी मूल पाठ में वह शब्द जिसका अनुवाद "वरन्" किया गया है "और" है। यहां उसका अर्थ "अर्थात्" है। परंतु हिन्दी अनुवाद ठीक है, क्योंकि यह एक मुहाविरा है। इसमें केवल एक गदहे का उल्लेख है, परंतु मत्ती ने सोचा कि दो हैं, अतः उसने यह परिवर्तन किया, कि प्रकट हो कि यह भविष्यवाणी ठीक ठीक पूरी हुई। मत्ती से पहले पुराना नियम के यूनानी अनुवाद में भी यह गलती की गई थी।

२१ : ९ में "दाऊद के संतान" शब्द यीशु के राजा होने पर बल देते हैं। यही शब्द ("दाऊद के संतान को होशाना") पद १५ में भी पाए जाते हैं। इन शब्दों को छोड़ भ. ११८ : २६ का उद्धरण ऐसा ही है जैसा मरकुस में है। पद १०, ११ से ज्ञात होता है कि यीशु के संबंध में साधारण मान्यता यह थी कि वह भविष्यवक्ता था।

(ट) यीशु मंदिर में २१ : १२-१७ (मर. ११ : १५-१७; ११ : ११ उ०)

मर. ११ : १५-१७ की व्याख्या को पढ़िए।

मर. ११ : ११ के अनुसार यीशु यरूशलेम में प्रविष्ट हुआ और फिर मंदिर में "सब वस्तुओं को देखकर बारहों के साथ बैतनिय्याह गया क्योंकि सांझ हो गई थी"। मत्ती ने मरकुस के क्रम को बदल दिया है। उसके अनुसार उसी दिन यीशु ने मंदिर का परिष्कार किया और फिर बैतनिय्याह गया (२१ : १७)। इसके पश्चात् मत्ती में फल-रहित अंजीर के वृक्ष की घटना सब एक ही दिन में हुई। मरकुस के अनुसार यीशु ने बीच में एक रात यरूशलेम से बाहर, संभाव्यतः बैतनिय्याह में, काटी (मर. ११ : १९, २०)।

हस्तलेखों की साक्षी है कि **२१ : १२** के आरंभ में "परमेश्वर के" शब्द नहीं होने चाहिए। ये शब्द मरकुस में भी नहीं हैं। मत्ती ने मरकुस की यह बात छोड़ दी है कि यीशु ने किसी को "मंदिर में से होकर बरतन लेकर आने जाने न दिया"। **२१ : १३** में मत्ती ने यश. ५६ : ७ के उद्धरण में से "सब जातियों के लिए" शब्दों को छोड़ दिया है। ये शब्द मरकुस में हैं। वास्तव में ये शब्द इस संदर्भ में अप्रासंगिक हैं क्योंकि यीशु के उन लोगों को फटकारने का कारण यह था कि उनके व्यापार के शोर ओ गुल के कारण प्रार्थना करना असंभव था। २१ : १४-२७ केवल मत्ती में हैं।

२१ : १४-१७ – मत्ती ने इन पदों को यहां जोड़ा है। अनेक विद्वानों की यह मान्यता है कि मत्ती ने स्वयं इनको लिखा, वे उसे किसी स्रोत से नहीं मिले। संभवतः २१ : १४ में २ श. ५ : ३-८ की ओर संकेत है, क्योंकि वहां पद ८ में लिखा है कि "इससे यह कहावत चली कि अंधे और लंगड़े भवन में आने न पाएंगे"। सेप. में "प्रभु के भवन में" है, जिसका अर्थ "मंदिर में" है। कदाचित् दाऊद राजा और यीशु राजा में विषमता

प्रकट की गई है—यीशु अंधों और लंगड़ों को न केवल आने देता वरन् स्वस्थ भी करता था। **२१ : १५**—२ : ४ के पश्चात् इस पद तक महायाजकों और शास्त्रियों का उल्लेख केवल १६ : २१ और २० : १८ में हुआ है, जहां यीशु की मृत्यु की भविष्यवाणियां हैं। अनेक विद्वानों की मान्यता है कि बालकों को मंदिर में आने की अनुमति नहीं हुई होगी, परंतु यह असंभव प्रतीत नहीं होता, क्योंकि यह एक असाधारण अवसर था। बालकों के शब्द वे हैं जो पद ९ में हैं। २१ : १६ में भ. ८ : २ का उद्धरण सेप. के अनुसार है, जो इब्रानी (और हिन्दी) में ऐसा भिन्न है कि अर्थ में भी अंतर है। तो भी इब्रानी में वह अर्थ निहित है जो सेप. में है। संभवतः यीशु ने मर. ८ : ३ का प्रयोग किया और परंपरा में इसको सेप. का रूप दिया गया। यहां, ११ : २५ के समान, यहूदियों के धर्मसंबंधी अधिकारियों और "बालकों", अर्थात् उन साधारण लोगों में जो यीशु के शिष्य बने, विषमता प्रकट की गई है।

(ठ) फल-रहित अंजीर का वृक्ष २१ : १८-२२
(मर. ११ : १२-१४, २०-२४)

(ड) यीशु के अधिकार का प्रश्न, दो पुत्रों का दृष्टांत २१ : २३-३२
(मर. ११ : २७-३३; लू. ७ : २९, ३०)

२१ : १८-२२—इसके संबंध में मर. ११ : १२-१४, २०-२४ की व्याख्या को पढ़िए। उस व्याख्या में मत्ती के वर्णन के संबंध में भी कुछ जानकारी है। मत्ती ने मरकुस के वर्णन को संक्षिप्त करके इस घटना को इस प्रकार वर्णित किया है कि मानो वह एक ही दिन प्रातःकाल में हुई। वे बातें जो मरकुस की टीका में लिखी गई हैं मत्ती के वर्णन पर भी लागू हैं। परंतु मत्ती का संक्षेप ऐसा है कि उसमें विश्वास और प्रार्थना के प्रभाव पर अधिक बल दिया गया है। पद २१ की तुलना १७ : २० से कीजिए।

२१ : २३-३२—इसमें यीशु के अधिकार के प्रश्न का वर्णन (पद २३-२७) लगभग पूर्ण रूप से मरकुस के वर्णन के अनुसार है। मत्ती के परिवर्तन महत्वहीन हैं। मरकुस ११ : २७-३३ की टीका में पर्याप्त व्याख्या है। उसको पढ़िए।

दो पुत्रों का दृष्टांत (२१ : २८-३२) केवल मत्ती में है। २१ : २९-३१ में हस्त-लेखों में पाठभेद है : (i) वह मूल पाठ है जिससे हि. प्र. का अनुवाद किया गया। (ii) अनेक हस्तलेखों में इन दो पुत्रों और उनके उत्तरों का क्रम हि. प्र. के विपरीत है। हि. सं., ध. ग्र. और बुल्के के अनुवाद ऐसे हैं। इन दो क्रमों में अर्थ एक ही है, अर्थात् वह पुत्र जिसने कहा कि "नहीं जाऊंगा" परंतु बाद में गया पिता की इच्छा को पूरा करता है। (iii) कुछ हस्तलेखों के अनुसार इसके विपरीत है, अर्थात् "हां" कहनेवाला पर न जानेवाला पिता की इच्छा पूरी करनेवाला कहा गया है। अधिकांश विद्वान (iii) को ठीक नहीं मानते।

यह स्पष्ट है कि वह पुत्र जिसने "जी हां, जाता हूं" कहा परंतु गया नहीं धर्म

के नेताओं का प्रतीक है। यहां मत्ती दृष्टांतों द्वारा प्रकट करने लगता है कि यीशु ने धर्म के नेताओं का विरोध किया। इसकी तुलना ७ : २१ और १२ : ५० से कीजिए, जहां इस दृष्टांत के समान शिक्षा पाई जाती है। इन सब में स्वीकारोक्ति की तुलना में कार्य करने पर बल दिया गया है। २१ : ३१—महसूल लेनेवाले और वेश्या वे लोग थे जिन्हें इन नेताओं की दृष्टि में परमेश्वर के राज्य में प्रवेश करने की आशा कभी नहीं हो सकती थी। परंतु उन्होंने यूहन्ना के प्रचार पर पश्चाताप किया (पद ३२), जो उचित प्रतिक्रिया थी। न तो यूहन्ना के प्रचार का न अन्य पापियों के पश्चाताप का प्रभाव उन नेताओं पर हुआ। पद ३२ की तुलना लू. ७ : २९, ३० से कीजिए।

(ढ) दाख के उद्यान का दृष्टांत २१ : ३३-४६ (मर. १२ : १-१२)

मर. १२ : १-१२ की व्याख्या में मत्ती के वर्णन की अनेक विशेषताएं प्रकट की गई हैं। उन पर ध्यान दीजिए। उनके अतिरिक्त कुछ अन्य भिन्नताएं भी हैं। **१८ : ३५** में मत्ती लिखता है कि "किसी को मार डाला" (कदाचित् यह ५ से है) और "किसी को पत्थरवाह किया", जो मरकुस में नहीं है। संभाव्यत: मत्ती ने इस दृष्टांत का अनुकूलन इस्राएल के इतिहास से करने का प्रयत्न किया है। यदि "दास" नबी हैं तो उनके दो समूह वे हैं जिन्हें यहूदी "पहले नबी" (यहोशू से २ राजा तक की पुस्तकें) और "पिछले नबी" (दानिय्येल को छोड़ यशायाह से मलाकी) मानते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि मत्त. **२१ : ३४-३६** में मर. १२ : २-५ का संक्षेप ही है। **२१ : ३७** में किसी कारण से मत्ती ने "प्रिय" शब्द को छोड़ा है (मरकुस के पद ६ में "प्रिय पुत्र" है—टीका को देखिए)। पद ३९ में मत्ती ने मरकुस के पद ८ के क्रम को परिवर्तित किया है, कि किसानों ने पहले पुत्र को निकाल दिया, फिर उसे मार डाला। कदाचित् इस परिवर्तन का कारण यह है कि यीशु, अर्थात् पुत्र, यरूशलेम से बाहर क्रूसित हुआ। शेष व्याख्या मरकुस की टीका में है। वह व्याख्या इस वर्णन पर भी लागू है।

२१ : ४३ उ., ४५ केवल मत्ती में हैं। (२१ : ४४ संभाव्यत: प्रामाणिक नहीं है; मरकुस की टीका में देखिए)। **२१ : ४३** में (और पद ३१ में भी) मत्ती ने फिर (१२ : २८, १९ : २४ को भी देखिए) "परमेश्वर का राज्य" लिखा है, कदाचित् इस कारण कि "स्वर्ग के राज्य" की अपेक्षा इसमें एक व्यक्तिगत संबंध का विचार निहित है। वह "जाति" जिसको राज्य दिया जाएगा नया इस्राएल, अर्थात् कलीसिया, है। कलीसिया के लोगों में राज्य का फल, अर्थात् परमेश्वर की इच्छा की पूर्ति, प्रकट हैं, नहीं तो वह कलीसिया नहीं कहला सकती। **२१ : ४५**—यीशु के यरूशलेम में प्रवेश करने के पश्चात् यह फरीसियों का पहला उल्लेख है। पद २३ में महायाजकों और पुरनियों का उल्लेख है। **२१ : ४६** में "क्योंकि वे उसे भविष्यवक्ता जानते थे" केवल मत्ती में है।

(त) विवाह-भोज का दृष्टांत २२ : १-१४ (लू. १४ : १५-२४)

यद्यपि इस दृष्टांत में और लू. १४ : १५-२४ के दृष्टांत में बहुत भिन्नता है

तथापि अधिकांश विद्वानों की मान्यता के अनुसार वे मौलिक रूप से एक हैं। संभाव्यतः दोनों वर्णन यीशु के एक ही दृष्टांत पर आधारित हैं, और मत्ती की तुलना में लूका में परिवर्तन किए गए हैं। उदाहरणार्थ लूका में एक मनुष्य बड़ा भोज करता है परंतु मत्ती में एक राजा विवाह-भोज करता है। दोनों में अन्योक्तिमूलक तत्व हैं परंतु मत्ती में ऐसे तत्व अधिक हैं। साधारतः विद्वान मानते हैं कि यह जानना कठिन है कि कौन सी बातें वृद्धियां हैं और कौन सी बातें यीशु के मूल दृष्टांत में सम्मिलित थीं।

इस दृष्टांत की मुख्य शिक्षा वही है जो पिछले अंश, अर्थात् दाख के उद्यान के दृष्टांत की है। राजा परमेश्वर है जो अपने स्वर्गिक राज्य में यहूदी लोगों को निमंत्रित करता है। यहां भी दासों के दो समूह भेजे जाते हैं, जो संभाव्यतः पहले और पिछले नबियों का प्रतीक हैं (२१ : ३४, ३६ की व्याख्या को देखिए)। निमंत्रित लोग यहूदी जाति हैं। वे लोग जो चौराहों में मिलते हैं अन्यजातीय लोग हैं। इस्राएल परमेश्वर के निमंत्रण को अस्वीकार करता है, इस कारण अन्य लोगों को अवसर दिया जाता है। प्रत्येक प्रकार के लोग भोज में आते हैं, "क्या बुरे क्या भले" (पद १०), जिससे कर लेनेवालों, पापियों आदि की ओर संकेत है।

२२ : ६, ७ में विशेष अन्योक्तिमूलक तत्व हैं। जैसे ऊपर कहा गया है **दास** नबियों का प्रतीक हैं। २२ : ७ में ई. स. ७० में रोमियों के हाथ यरूशलेम के विध्वंस की ओर स्पष्ट संकेत है। यह असंभव तो नहीं परंतु असंभाव्य है कि यीशु ने एक दृष्टांत में ऐसा स्पष्ट संकेत किया हो। यह दृष्टांत एक ऐसी कहानी है जो असंभाताओं से पूर्ण है। यह असंभव प्रतीत होता है कि जो कुछ उसमें वर्णित है वह सब एक दिन में हुआ हो। भोज तैयार था, परंतु इससे पहले कि लोग उसे खाने के लिए एकत्रित हुए सेना ने जाकर नगर को नष्ट किया ! परंतु अन्योक्ति में ऐसे तत्वों को महत्व नहीं दिया जाता।

संभवतः यीशु के मूल दृष्टांत की शिक्षा यह थी कि इस्राएल ने परमेश्वर के निमंत्रण को, कि वे उसके राज्य में प्रवेश करें, अस्वीकार किया, अतः अन्य लोग, जिनका तिरस्कार यहूदी करते थे, निमंत्रित हुए।

यह भी एक साधारण मान्यता है कि २२ : ११-१४ वास्तव में इस दृष्टांत का भाग नहीं वरन् संभाव्यतः एक पृथक दृष्टांत था जो यहां जोड़ा गया है। यह आशा नहीं की जा सकती थी कि ऐसे लोग जो सड़कों पर से भोज में लाए गए थे विशेष विवाह-वस्त्र पहने आएं। यह दृष्टांत भी अन्योक्तिमूलक है। उसमें न्याय-दिवस का चित्रण है। राजा परमेश्वर है, भोज शाश्वत् जीवन है। विवाह-वस्त्र सदाचार और सत्कर्म का प्रतीक है, जिसके बिना कोई व्यक्ति परमेश्वर के राज्य या शाश्वत् जीवन में प्रवेश नहीं कर सकता। नया नियम में ख्रिस्त को "पहिनने" (रो. १३ : १४; गल. ३ : २७), और "नए मनुष्यत्व को पहिनने" (इफ. ४ : २४; कुल. ३ : १०) के विचार पाए जाते हैं। अंधकार (पद १३) का अर्थ नरक है। "रोना और दांत पीसना" शब्द ८ : १२; १३ : ४२; २४ : ५१ और २५ : ३० में पाए जाते हैं। ८ : १२ की व्याख्या को देखिए। २२ :

१४ का अर्थ यह है कि थोड़े से ही लोग हैं जो परमेश्वर के निमंत्रण की उचित प्रतिक्रिया करते हैं।

संभव है कि यह दृष्टांत इस अभिप्राय से जोड़ा गया कि प्रकट हो कि परमेश्वर के राज्य और कलीसिया में धार्मिकता की मांग है। विवाह-भोज की शिक्षा यह है कि परमेश्वर लोगों को अपने राज्य में प्रवेश करने के लिए निमंत्रित करता है, परंतु प्रवेश करने की कोई शर्त नहीं बताई गई है। यह भी संभव है कि सुसमाचार की रचना के काल की कलीसिया की परिस्थिति इसमें प्रतिबिंबित हो—नैतिक बातों में अनुशासन की आवश्यकता थी, क्योंकि कलीसिया में ऐसे लोग प्रविष्ट हुए जिनके पास "विवाह-वस्त्र", अर्थात् धार्मिकता, सदाचार, नहीं था।

(थ) **कैसर को कर देने का प्रश्न २२ : १५-२२** (मर. १२ : १३-१७)
(द) **पुनरुत्थान के संबंध में एक प्रश्न २२ : २३-३३** (मर. १२ : १८-२७)
(ध) **प्रमुख आज्ञा २२ : ३४-४०** (मर. १२ : २८-३१)
(न) **दाऊद-पुत्र ख्रिस्त २२ : ४१-४६** (मर. १२ : ३५-३७)

इन चार अंशों में मत्ती ने मरकुस के वर्णन में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन या परि-वर्धन नहीं किया है। उनकी व्याख्या के लिए मरकुस की टीका को पढ़िए। आगे मुख्य परिवर्तनों पर ध्यान दिया गया है।

२२: १५-२२—पद १५, १६ में मत्ती के अनुसार फरीसियों ने अपने शिष्यों और हेरोदियों को भेजा। शेष पदों में मत्ती ने अनेक शाब्दिक और वाक्यों के क्रम के परिवर्तन किए हैं, परंतु अर्थ में कोई अंतर नहीं है। पद २२ उ., "और उसे छोड़कर चले गए" मर. १२ : १२ उ. से है। मत्ती ने इसे २१ : ३३-४६ में छोड़ दिया था।

२२ : २३-३३—इस अंश में भी मत्ती के परिवर्तन महत्वहीन हैं। पद ३१ में, जहां मरकुस में "क्या तुमने, मूसा की पुस्तक में, झाड़ी की कथा में नहीं पढ़ा. . ." है। मत्ती ने लिखा, "क्या तुमने यह वचन पढ़ा जो परमेश्वर ने तुम से कहा. . ."। कदाचित् मत्ती इस तथ्य पर बल देना चाहता था कि यह कथन परमेश्वर की ओर से था।

२२ : ३४-४०—मत्ती का वर्णन बहुत संक्षिप्त है। उसने मर. १२ : ३२-३४ को निकाल दिया है। पद ३४ और ३५ मरकुस से कुछ भिन्न हैं। मत्ती फिर फरीसियों का उल्लेख करता है—यह मरकुस में नहीं है। मरकुस के अनुसार एक शास्त्री ने यह प्रश्न पूछा। मत्ती के अनुसार फरीसियों ने एक व्यवस्थापक को भेजा। इस स्थल को छोड़ "व्यवस्थापक" शब्द केवल लूका में पाया जाता है (वह तीत. ३ : ९, १३ में अन्य अर्थों में है)। इसका अर्थ "शास्त्री" के समान है। संभव है कि मत्ती के पास भी वह स्रोत था जिस पर लूका १० : २५-२८ आधारित है। इस अंश पर लूका की टीका में देखिए।

२२ : ४१-४६---यद्यपि इस अंश में पद ४१ और पद ४६ मरकुस से भिन्न हैं तथापि पूर्ण अंश मौलिक रूप से मरकुस के समान है। यहां भी मत्ती के अनुसार यीशु यह प्रश्न फरीसियों से पूछता है। मरकुस के अनुसार प्रश्न उस समय पूछा गया जब यीशु मंदिर में उपदेश दे रहा था, परंतु इस बात का कोई संकेत नहीं है कि वह किससे पूछा गया। पद ४६ उ. मर. १२ : ३४ उ. से लिया गया है, जिसे मत्ती ने अपने तदनुरूपी स्थल अर्थात् २२ : ३४-४० में सम्मिलित नहीं किया था।

(प) फरीसियों के संबंध में चेतावनी २३ : १-१२
(मर. १२ : ३७ उ.-३९; लू. ११ : ४३, ४६)

यहां मत्ती का वर्णन मरकुस के एक छोटे अंश पर आधारित है जिसमें शास्त्रियों के विरुद्ध चेतावनी है। इसमें मत्ती ने Q और अपने निजी स्रोत की सामग्री को भी जोड़ा है। यीशु के काल के इतिहास के विशेषज्ञ, विशेष रूप से यहूदी विद्वान, दावा करते हैं कि फरीसियों का जो चित्रण इस अध्याय में है वह ऐतिहासिक रूप से ठीक नहीं है क्योंकि उस काल के फरीसियों के संबंध में ऐसा सामान्यीकरण नहीं किया जा सकता। अनेक ख्रिस्ती विद्वानों की मान्यता है कि इस अध्याय में संभाव्यतः यीशु की शिक्षा और उस शिक्षा में कलीसिया के परिवर्तनों और परिवर्धनों का सम्मिश्रण है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यीशु ने फरीसियों की भर्त्सना की—सब सहदर्शी सुसमाचारों में इस तथ्य की साक्षी प्रचुरता से है। मत्ती के काल की कलीसिया और फरीसियों में भी काफी वाद-विवाद हुआ, जिसमें यीशु के कथनों का प्रयोग किया गया। इस वाद-विवाद का प्रभाव अवश्य उन कथनों के रूप पर पड़ा होगा। पर्वतीय प्रवचन के समान यह प्रवचन भी पृथक कथनों का समूह है जिसे मत्ती ने क्रमबद्ध करके संकलित किया है।

२३ : २ में "मूसा की गद्दी" वह कुरसी थी जिसमें बैठकर उपदेशक आराधनालय में उपदेश देता था। यहूदी लोग मानते थे कि ऐसे उपदेशक को, जब वह शास्त्री होता था, मूसा का-सा अधिकार होता था। उनकी यह मान्यता भी थी कि मौखिक परंपरा मूसा की व्यवस्था में निहित थी। यीशु की ऐसी मान्यता नहीं थी (५ : ३३-३७; १५ : १-११)। २३ : ३ में फरीसियों पर कपट का दोष लगाया गया है। सब फरीसी ऐसे नहीं होते थे। यदि "वे तुमसे जो कुछ कहें" का अर्थ वह संपूर्ण मौखिक परंपरा है जिसे फरीसी मानते थे तो यह यीशु का कथन नहीं हो सकता---उपरोक्त उद्धरणों को देखिए। संभव है कि यीशु ने फरीसियों की शिक्षा के मौलिक अभिप्राय का उल्लेख किया, और यह समस्त कथन ख्रिस्तीय परंपरा में परिवर्तित हुआ। २३ : ४—यह बोझ फरीसियों की परंपरा था, जिसकी मांगों को पूरा करने का अवकाश साधारण व्यक्ति के पास नहीं होता था। "बांधने" के संबंध में १६ : १९ और १८ : १८ में भी देखिए। ११ : ३० में फरीसियों के बोझ की विषमता में यीशु के बोझ का उल्लेख है। २३ : ५ में आडंबर के दोष की अभिव्यक्ति आरंभ होती है। यहूदियों की **तावीजें** (नि. १३ : ९, १६; व्य. ६ : ८; ११ : १८) चमड़े से बनी होती थीं, और माथे और कलाई

पर बांधी जाती थीं। इनमें चर्मपत्र पर लिखे हुए ये स्थल होते थे, नि. १३ : १-१०; १३ : ११-१६; व्य. ६ : ४-९; ११ : १३-२१ (बाइबल ज्ञानकोश में "तावीज़" देखिए)। "कोरें" (हिं. सं. "झालर") का अर्थ संभाव्यतः "झब्बे" (बुल्के) है। प्रत्येक यहूदी को ऊपर के वस्त्र के चारों कोनों पर झब्बे (झालर) लगाने का आदेश था (नि. १५ : ३८)। अनेक फरीसी अपनी भक्ति को प्रकट करने के अभिप्राय से बड़ी तावीज़ें और झब्बे लगाते थे।

२३ : ६, ७—सभागृह में मुख्य आसन सबके सामने होते थे। उनमें बैठने वाले समुदाय की ओर अभिमुख होते थे। "रब्बी" बड़े आदर का शब्द था, जिसका मूल अर्थ "महान" है। २३ : ८ और १० समानार्थक हैं। ये कलीसियाई कथन, या परिवर्तित रूप में यीशु के कथन हैं। यीशु ने उस समय खुल्मखुल्ला (पद १ को देखिए) अपने को "मसीह" नहीं कहा होगा। पद ८ में "तुम" शब्द पर बल दिया गया है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि यद्यपि यह अंश फरीसियों के विरुद्ध लिखा गया तथापि कलीसिया में भी कपट और आडंबर होने का खतरा था। "गुरु" (पद ८) और "स्वामी" (पद १०) के यूनानी मूल शब्द (दिदस्कलस, कथेगेतेस) समानार्थक हैं। पद १० में 'कथेगेतेस' शब्द का हिं. सं. में "नेता" और बुल्के में "आचार्य" शब्द अनुवाद किया गया है। २३ : ९ में किसी को "पिता" कहने का अर्थ उसको बड़ा पद और आदर देना है।

२३ : ११-१२ में वह मौलिक सिद्धांत व्यक्त है जो भिन्न रूपों में मत्त. २० : २६, २७=मर. १० : ४३, ४४=लू. २२ : २६; मत्त. १८ : १-५=मर. ९ : ३३-३७=लू. ९ : ४६-४८ में पाया जाता है। पद १२ लू. १४ : ११ और १८ : १४ में भी पाया जाता है। कलीसिया को आरंभ से ही इस शिक्षा की बड़ी आवश्यकता थी।

(फ) फरीसियों पर सात धिक्कार २३ : १३-३६
(मर. १२ : ४०; लू. ११ : ५२, ३९-४२, ४४, ४७-५१)

उपरोक्त उद्धरणों से ज्ञात होता है कि इस अंश में भी मत्ती ने अपनी सामग्री अधिकतर Q और अपने निजी स्रोत से ली है। मत्ती में, और लूका में भी, "तुम पर हाय" शब्द सात बार आते हैं, परंतु इन धिक्कारों में इन दो सुसमाचारों में कुछ अंतर है। लूका की टीका में देखिए। सात का अंक एक विशेष अंक माना जाता था।

२३ : १३—पहला "हाय"—२३ : १४ सर्वश्रेष्ठ हस्तलेखों में नहीं है, अतः वह हि. प्र. में सम्मिलित नहीं किया गया है। हिं. सं. में उसके संबंध में पद-टिप्पणी है। वह संभाव्यतः मर. १२ : ४० से यहां जोड़ा गया। शास्त्री और फरीसी साधारण लोगों पर व्यवस्था-पालन (उनकी परंपरा) का बोझ बांधकर उनके लिए स्वर्ग के राज्य के द्वार बंद करते थे (२३ : ४)। मत्ती के काल में वे ख्रिस्तियों का विरोध भी करते थे।

२३ : १५—दूसरा "हाय"—प्रसिद्ध यहूदी रब्बी हिल्लेल के अनुयायी अन्य लोगों को अपने मत में लाने का प्रयत्न करते थे। ऐसे लोग बपतिस्मा पाने, खतना

कराने और मंदिर में दान चढ़ाने से पूर्ण रूप से यहूदी बनते थे। "दूना नारकीय" का अर्थ यह है कि ऐसे लोग यहूदी धर्म के लिये उन अगुओं से भी, या पहले से भी (कुछ प्रतियों में "अपने से" शब्द नहीं है) अधिक कट्टर होते हैं।

२३ : १६-२२ —तीसरा "हाय"—शपथ लेने के संबंध में यीशु की शिक्षा ५ : ३३-३७ में है। किसी प्रकार से भी शपथ नहीं लेनी चाहिए। इन पदों में फरीसियों और शास्त्रियों के धर्माधर्मविवेक के उदाहरण प्रस्तुत हैं। रब्बियों के लेखों में उन मान्यताओं का उल्लेख नहीं मिलता जो इन पदों में वर्णित हैं, परंतु हम नया नियम की साक्षी मान सकते हैं। २३ : १६-२० में सार की बात यह है कि शपथ लेने के संबंध में ये अगुए सूक्ष्म नियम बनाते थे जो निरर्थक थे। शपथ लेने का अभिप्राय शपथ लेनेवाले को बांधना था। परंतु ये अगुए कहते थे कि कुछ शपथों से लोग बंध जाते हैं, परंतु अन्य शपथों से वे नहीं बंधते और महत्वहीन वस्तु की शपथ बांधनेवाली थी। २३ : २१-२३ में तर्क विपरीत है—मंदिर परमेश्वर का प्रतीक है, अतः उसकी शपथ लेना परमेश्वर की शपथ लेना है। इसी प्रकार स्वर्ग की शपथ भी है। ऐसे नियम बनाने में इनका अभिप्राय अच्छा था। वे स्वयं साधारण लोगों को शपथ लेने से रोकने का प्रयत्न करते थे, परंतु इसमें असफल रहकर उन्होंने ऐसे नियम बनाए जिनसे लोग सबसे पवित्र वस्तुओं की शपथ न लें। यीशु उनका उपहास करके कहता है कि इसमें भी वे असफल रहे हैं।

२३ : २३, २४—चौथा "हाय"—लै. २७ : ३० और व्य. १४ : २२, २३ में उपज का दसवां अंश देने की आज्ञा है। फरीसियों ने इसमें छोटे छोटे पौधों को भी सम्मिलित किया। मिशनाह में सौंफ और जीरे का दसवां अंश देने की आज्ञा है। "विश्वास" के स्थान पर "ईमानदारी" (बुल्के) अधिक ठीक है। यूनानी शब्द (पिस्तिस) का अर्थ ईमानदारी, विश्वस्तता, भी है। दोष यह है कि गौण बातों की धुन में इन अगुओं ने महत्वपूर्ण बातों की उपेक्षा की। २३ : २४ से उपरोक्त तथ्य पर अतिशयोक्ति के द्वारा बल दिया गया है। मच्छर और ऊंट दोनों अशुद्ध माने जाते थे। उन्हें खाना निषिद्ध था। यहूदी लोग दाखरस को छानते थे, कहीं ऐसा न हो कि अनजाने वे किसी अशुद्ध वस्तु को निगल जाएं। मच्छर और ऊंट यहां गौण और महत्वपूर्ण नियमों के प्रतीक हैं।

२३ : २५, २६—पांचवां "हाय"—पिछले अंश की शिक्षा इसमें भी है। वास्तव में फरीसी पात्रों को भीतर से भी मांजते थे। यथार्थ विषमता इन पात्रों और शास्त्रियों और फरीसियों के मनों से, जहां अशुद्धता थी, बताई गई है।

२३ : २७, २८—छठा "हाय"—यहूदियों की मान्यता थी कि कबर को स्पर्श करने से मनुष्य अशुद्ध हो जाता है, अतः वे कबरों को चूने से पोतते थे। इस प्रकार कबरें देखने में सुंदर होती थीं, परंतु उनके अंदर अशुद्धता थी। शिक्षा वही है जो उपरोक्त स्थलों की है।

२३ : २९-३६—सातवां "हाय"—इस अंश की अधिक सामग्री लू. ११ : ४७-५१ में भी है। ये कबरें भारत में पीरों के मकबरों और संतों के स्मारकों के समान थीं। यहूदी भी उनकी रक्षा करते थे। २३ : ३१—"नबी घातकों की संतान" (हिं. सं.) का अर्थ यह है कि शास्त्री और फरीसी उन घातकों के वंशज हैं, पर यह विचार भी निहित है कि वास्तव में वे उनके सदृश भी हैं—इब्रानी मुहाविरे में "संतान" का यह अर्थ है। २३ : ३२ से प्रकाशनात्मक बातें, अध्याय २४ की तैयारी में, आरंभ हो जाती हैं। व्यंग्यात्मक रूप से उन लोगों से कहा जाता है कि जो कुकर्म उनके पूर्वजों ने आरंभ किया था वे उसे पूरा करें। २३ : ३३ के संबंध में ३ : ७; १२ : ३४ की व्याख्या को देखिए। २३ : ३४ का संबंध भविष्य से है। इसमें ख्रिस्तीय नबियों, ज्ञानियों और शास्त्रियों का उल्लेख है। इसके शब्द-रूप से पता चलता है कि उस पर कलीसियाई परंपरा का प्रभाव है, परंतु संभाव्यतः वह यीशु के कथन पर आधारित है। यहूदी स्वयं क्रूस का दंड नहीं देते थे, अतः इसका अर्थ यह है कि वे किसी को रोमियों के साथ क्रूस के दंड के लिए सौंप देंगे। इन बातों की तुलना १० : १७, २३ से कीजिए। ई. स. ७० में, मंदिर के विध्वंस के पश्चात् ऐसी दशा हो गई। २३ : ३५—हाबिल की हत्या सबसे पहली हत्या मानी जाती थी। जकरयाह के संबंध में साधारण विचार यह है कि यह वह व्यक्ति है जिसकी हत्या का वर्णन २ इ. २४ : २०-२२ में है। २ इतिहास इब्रानी धर्मशास्त्र की अंतिम पुस्तक है, अतः यह धर्मशास्त्र की अंतिम हत्या मानी जा सकती थी। परंतु उस जकरयाह के पिता का नाम यहोयादा था। अतः संभव है कि इस पद में यीशु के एक कथन का अनुकूलन ई. स. ७० के पश्चात् के काल से किया गया है। योसेपस ("यहूदियों का युद्ध", ४ : ५ : ४) एक व्यक्ति जकरयाह, बारूक के पुत्र, का वर्णन करता है जिसकी हत्या जेलोतेस पंथियों ने ई. स. ७० में, यरूशलेम की घेराबंदी के समय, मंदिर में की। संभवतः यहां उसका उल्लेख है। "जिसे तुमने मार डाला (था)" शब्द इसका समर्थन करते हैं, क्योंकि इन शब्दों का संकेत श्रोताओं या पाठकों की ओर है। पद ३६ अध्याय २४ की ओर संकेत करता है। सचमुच ई. स. ६६-७० में और उसके पश्चात् यहूदियों को बहुत क्लेश सहना पड़ा।

२३ : ३७-३९—यह अंश लगभग शब्दशः लू. १३ : ३४, ३५ में भी है, परंतु वहां उसका संदर्भ पूर्ण रूप से भिन्न है। अतः हम नहीं जानते कि यह किस समय का कथन है। २३ : ३७ में यरूशलेम के लिए यीशु की आकांक्षा व्यक्त है। यरूशलेम यहूदी धर्म केंद्र और यहूदी जाति का प्रतीक था। उपरोक्त जकरयाह पत्थरों से मारा गया। "बालकों" का अर्थ यहूदी लोग है। जैसे मुर्गी अपने बच्चों की रक्षा करती है, वैसे ही यीशु उन लोगों की रक्षा कर सकता था परंतु उन्होंने उसे अस्वीकार किया। २३ : ३८ में १ रा. ९ : ७, ८; यि. १२ : ७ और २२ : ५ के शब्दों का संकेत है। यहां "घर" का अर्थ न केवल मंदिर वरन् यरूशलेम नगर भी है। पद ३९ में "धन्य है वह जो प्रभु के नाम से आता है" शब्द भ. ११८ : २६ से उद्धृत हैं। इसका संकेत यीशु के पुनरागमन की ओर है। केवल इस स्थल पर मत्ती और लूका में थोड़ा सा

शाब्दिक अंतर है। "अब से" शब्द लूका में नहीं हैं। ये शब्द २६ : २९, ६४ (यूनानी मूल पाठ) में भी हैं। तीनों स्थलों में उनका संकेत होनेवाले युगांत की ओर है। लूका में इस पद के शब्दों का संकेत यीशु के यरूशलेम में प्रवेश करने की ओर है।

(२) प्रवचन २४ : १—२५ : ४६

२४ : १-३६ में मत्ती ने अधिकतर मरकुस १३ : १-३२ का अनुसरण किया है। २४ : ४२ भी मर. १३ : ३५ के समान है। परंतु अध्याय २४ का शेष भाग और अध्याय २५ की सामग्री Q और मत्ती के निजी स्रोत से ली गई है।

(क) मंदिर का विनाश, विपत्तियों का प्रारंभ २४ : १-४
(मर. १३ : १-१०, १३)

२४ : १-८—इस अंश की व्याख्या मरकुस की टीका में पढ़िए। मत्ती ने मरकुस के वर्णन को थोड़ा ही परिवर्तित किया है। **२४ : १** में मर. १३ : १ का अनुकूलन किया गया है। **२४ : ३** में मत्ती सब शिष्यों का उल्लेख करता है; मरकुस में केवल चार शिष्य उल्लिखित हैं। पद ५ में मरकुस के "मैं वही हूं" के स्थान पर मत्ती "मैं मसीह हूं" लिखता है।

२४ : ३ में "तेरे आने" (यूनानी "परूसिया") और "जगत का अंत" या "युगांत" (हिं. सं.) दोनों मत्ती के विशेष मुहाविरे हैं। "परूसिया" शब्द २४ : ३, २७, ३७, और ३९ में, और "युगांत" शब्द १३ : ३९, ४०, ४९ और २८ : २० में पाए जाते हैं। "आना" (परूसिया) यीशु के पुनरागमन के लिए एक पारिभाषिक शब्द बन गया, परंतु उसका शाब्दिक अर्थ केवल "आना" ही है। सुसमाचारों में यह शब्द केवल मत्ती के उपरोक्त स्थलों में पाया जाता है, परंतु उसका अधिक प्रयोग नया नियम के पत्रों में किया गया है, उदाहरणार्थ १ कुर. १५ : २३; १ थिस. २ : १९; या. ५ : ७, ८। २४ : ५ में मत्ती ने अर्थ को स्पष्ट करने के अभिप्राय से लिखा है कि झूठा दावा करनेवाले कहेंगे कि "मैं मसीह हूं", अर्थात् प्रतिज्ञात ख्रिस्त जिसकी प्रतीक्षा यहूदी लोग कर रहे थे।

२४ : ९-१४ में मत्ती ने मरकुस का अनुसरण किया है। उसने मर. १३ : ९-१२ की अधिक सामग्री को अपने १० : १७-२१ में सम्मिलित किया था, अतः उसे यहां सम्मिलित नहीं करता। मत्त. २४ : ९ पू. में मर. १३ : ९ पू. का, और मत्त. २४ : ९ उ. में मर. १३ : १३ का प्रयोग किया गया है। मत्त. २४ : १०-१२ अधिकतर मत्ती के निजी स्रोत में से है। मत्त. २४ : १३ मर. १३ : १३ उ. के, और मत्त. २४ : १४ मर. १३ : १० के समान है।

२४ : ९ में मरकुस के उपरोक्त पदों का अनुकूलन किया गया है, क्योंकि मरकुस की अधिक सामग्री इस स्थल में छोड़ दी गई है। संभव है कि पद १०-१२ पर मत्ती के काल की परिस्थिति का प्रभाव हुआ। ये बातें होने लगी थीं। **२४ : ११** की तुलना

प्रे. २० : ३० और १ थिस. २ : १८, १६ से कीजिए। २४ : १२—इस परिस्थिति में जब धोखा, शत्रुता आदि कलीसिया में है, तो लोगों का परस्पर प्रेम ठंडा हो जाता है। पद १४ में मर. १३ : १० बढ़ाया गया है। इसमें बहुत स्पष्टतः बताया गया है कि सुसमाचार का प्रचार सब जातियों में किया जाएगा। यहां मत्ती की उदारता प्रकट है।

(ख) उजाड़नेवाली घृणित वस्तु २४ : १५-२८
(मर. १३ : १४-२३; लू. १७ : २३, २४, ३७)

इस अंश में २४ : १५-२५ मर. १३ : १४-२३ के समान हैं—उस स्थल की टीका पढ़िए। मत्ती के परिवर्तन महत्वपूर्ण नहीं हैं। २४ : १५ में उसने मरकुस के शब्द "जहां उचित नहीं" का स्पष्टीकरण करके "पवित्र स्थान में" लिखा है, जिसका अर्थ "मंदिर में" है। यह ई. स. ७० में मंदिर के विध्वंस की ओर स्पष्ट संकेत है। २४ : २० में मत्ती ने "या सबत के दिन" शब्द जोड़े हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मत्ती की कलीसिया में सबत-पालन की प्रथा थी, अतः उसने ये शब्द जोड़े। २४ : २२ में उसने मरकुस की क्रिया को भविष्यत्काल में परिवर्तित करके "वे दिन घटाए जाएंगे" लिखा है, जिससे ज्ञात होता है कि जब ये शब्द कहे गए तब उनका संकेत भविष्य की ओर था। अन्य छोटे परिवर्तन साहित्यिक शैली-संबंधी प्रतीत होते हैं।

२४ : २६-२८ मरकुस में नहीं है। ये पद Q में से हैं, और लू. १७ : २३, २४, ३७ में पाए जाते हैं, जहां संदर्भ भिन्न है। लूका में बहुत शाब्दिक अंतर भी है। ख्रिस्त का पुनरागमन यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाले के आने, या कुमरान के पंथियों के समान "जंगल", अर्थात् "निर्जन प्रदेश" (हिं. सं.) में नहीं होगा, न ही वह किसी गुप्त स्थान में होगा। वह बिजली के समान अचानक सब पर प्रकट होगा। पद २७ में "मनुष्य का पुत्र" का अर्थ ख्रिस्त ही है। २४ : २८ में संभाव्यतः एक सामान्य मुहाविरा है। यहां मत्ती निश्चित को व्यक्त करता है। शव के पास गिद्धों का एकत्रित होना अनिवार्य है। इसी प्रकार ख्रिस्त का पुनरागमन अवश्य होगा।

(ग) मानव-पुत्र का आगमन, अंजीर के वृक्ष का दृष्टांत २४ : २९-३५
(मर. २३ : २४-३१)

इस अंश में मत्ती ने मरकुस के वर्णन में बहुत थोड़े परिवर्तन किए हैं। मरकुस की टीका को पढ़िए। २४ : ३० में मत्ती ने "मनुष्य के पुत्र का चिह्न आकाश में दिखाई देगा, और तब पृथ्वी के सब कुलों के लोग छाती पीटेंगे" शब्दों को जोड़ा है। इस परिवर्धन के पहले भाग में पद ३ के प्रश्न का उत्तर है, "तेरे आने का क्या चिह्न होगा?"। ऐसा प्रतीत होता है कि वह चिह्न मानव-पुत्र स्वयं है। पृथ्वी के लोगों के शोक मनाने (छाती पीटेंगे) का उल्लेख ज. १२ : १० क्र. पर आधारित है। जकर्याह में किसी अज्ञात व्यक्ति के लिए शोक मनाने का उल्लेख है। यहां शोक मनाने का कारण संभाव्यतः यह है कि लोगों ने मानव-पुत्र को अस्वीकार किया था। २४ : ३१ में "तुरही के बड़े शब्द के साथ" शब्द भी मत्ती का परिवर्धन हैं जो यश. २७ : १३ से उद्धृत हैं। तुरही का रूपक प्रकाश-

नात्मक साहित्य में घोषणा करने के लिए प्रयुक्त होता है (देखिए १ कुर. १५ : ५२; १ थिस. ४ : १६; प्र. ८)।

(घ) जागरूकता की आवश्यकता २४ : ३६-४४
(मर. १३ : ३२, ३५; लू. १७ : २६, २७, ३४, ३५; १२ : ३६, ४०)

२४ : ३६ मर. १३ : ३२ के समान है। उसकी व्याख्या को देखिए। इसके पश्चात् मत्ती ने मर. १३ : ३५ को छोड़ दिया है, कदाचित् इस कारण कि मत्ती २५ : १४, १५ उ. कुछ अंशों में इन पदों के अनुरूप हैं।

२४ : ३७-४१ में से है। यही सामग्री थोड़े से भिन्न रूप में लू. १७ : २६, २७, ३६ में भी पाई जाती है। **नूह** और **जल-प्रलय** का वर्णन उ. अध्याय ६-८ में पाया जाता है। नूह को जल-प्रलय के आने का पता लगा, परंतु अन्य लोग नहीं जानते थे, अतः जब प्रलय आया तो वे तैयार नहीं थे। जल-प्रलय अचानक आया। इसी प्रकार मनुष्य के पुत्र का आना भी होगा। मत्त. २४ : ३७, ३९ में "आना" "परूसिया" शब्द का अनुवाद है (२४ : ३ की व्याख्या को देखिए)। ये बातें लूका में नहीं हैं। **२४ : ४०, ४१** में ये लोग अपने दैनिक कार्यों में लगे हैं कि अचानक उनमें से एक परमेश्वर के राज्य में (संभाव्यतः यह अर्थ है) ले लिया जाता है, दूसरा छोड़ दिया जाता है। यह प्रकट नहीं किया गया है कि यह विभाजन किस आधार पर किया जाता है, परंतु जागते रहने की चेतावनी (पद ४२) को दृष्टि में रखते हुए हम कह सकते हैं कि "ले लिया जाना" इस पर निर्भर है कि परमेश्वर की मांगों के प्रति किसी व्यक्ति की क्या प्रति-क्रिया है।

२४ : ४२-४४—पद ४२ मर. १३ : ३३, ३५ के समान है। पद ४३, ४४ लू. १२ : ३९, ४० में हैं। यहां "प्रभु" का अर्थ ख्रिस्त है। चोर के आने का रूपक १ थिस. ५ : २ क्र.; २ पत. ३ : १० में भी पाया जाता है। जागते रहने और तैयार रहने का अर्थ अपना ख्रिस्तीय आचरण ऐसा रखना है कि परमेश्वर उससे प्रसन्न हो। इसमें नैतिकता का विचार निहित है।

(च) विश्वासपात्र दास और दुष्ट दास का दृष्टांत २४ : ४५-५१
(लू. १२ : ४२-४६)

यह अंश कुछ शाब्दिक परिवर्तनों को छोड़ लूका के अनुरूपी स्थल के समान है। इसमें पाठकों के सामने दो विकल्प रखे गए हैं। ऐसे ही विकल्प अध्याय २५ के दृष्टांतों में भी हैं। इस दृष्टांत में भी आचरण, विशेष रूप से विश्वस्तता पर, बल दिया गया है। **२४ : ४७** में इस निष्ठा का प्रतिफल और भी अधिक उत्तरदायित्व को संभालना बताया गया है। **२४ : ४८**—२ पत. ३ : ४ से हमें ज्ञात होता है कि कुछ ख्रिस्ती लोग प्रभु के पुनरागमन के संबंध में प्रतीति नहीं करते थे। इन दुष्ट दासों को उनके दुराचार के कारण दंड मिलता है। अर्थ यह है कि पुनरागमन भी ऐसा होगा। मत्ती ने ही इस

अंश का अंतिम वाक्य जोड़ा होगा, ८ : १२; २२ : १३; २५ : ३० को देखिए। "भारी ताड़ना देकर" का शाब्दिक अर्थ "उसके टुकड़े टुकड़े कर डालेगा" (हिं. सं.) है। दंड बहुत कड़ा है। ऐसे दास कपटी हैं, क्योंकि वे एक विशेष काम के लिए लगाए जाते हैं, परंतु उसकी उपेक्षा करके बुराई करते हैं। अनेक विद्वानों की मान्यता है कि यह दृष्टांत वास्तव में फरीसियों के संबंध में कहा गया होगा।

(छ) दस कुमारियों का दृष्टांत २५ : १-१३

यह दृष्टांत केवल मत्ती में है, परंतु उसकी तुलना लू. १२ : ३५, ३६ से कीजिए, जहां ऐसी ही परिस्थिति का वर्णन संक्षेप में है। पद १२ लू. १३ : २५ के समान है।

मत्ती में यह दृष्टांत एक ऐसे प्रसंग में है जहां मुख्य विषय यीशु का पुनरागमन है, अतः मत्ती ने समझा होगा कि इस दृष्टांत की शिक्षा भी पुनरागमन-संबंधी है। इस प्रकार, संदर्भ के अन्य अंशों के समान, इसकी मुख्य शिक्षा उस आगमन के लिए तैयार रहने के विषय में है। पद ५ का संकेत पुनरागमन होने में देर होने की ओर है, और दुलह का आना प्रभु का पुनरागमन है। पद १३ में "उस दिन" का स्पष्ट अर्थ मनुष्य के पुत्र के आने का दिन है।

वर्तमान में, नवीन अन्वेषण के आधार पर, बहुत विद्वानों की मान्यता है कि वास्तव में यीशु ने यह दृष्टांत पुनरागमन के संबंध में नहीं वरन् अपने उपदेश के संकटकाल और निर्णायात्मक क्षण, अर्थात् स्वर्ग के राज्य के संस्थापन के संबंध में कहा। यह संस्थापन यीशु के पहली बार संसार में आने से हुआ। मत्ती ने स्वयं पद १३ को जोड़ा होगा। २५ : १ में स्पष्ट कहा गया है कि यह दृष्टांत स्वर्ग के राज्य के संबंध में है। वास्तव में राज्य उन कुमारियों के समान नहीं वरन् इस दृष्टांत की समस्त स्थिति के समान है। संभव है कि २५ : ५ इस दृष्टांत में आरंभ से सम्मिलित था, परंतु उसका कोई विशेष प्रतीकात्मक अर्थ नहीं है, क्योंकि यह एक अन्योक्ति नहीं वरन् एक दृष्टांत है। इसकी शिक्षा यह है कि स्वर्ग के राज्य के जीवन के लिए तैयारी की आवश्यकता है। बुद्धिमानी तैयारी करने में पाई जाती है। २५ : २ की तुलना ७ : २४ क्र. से कीजिए, जहां बुद्धिमान और निर्बुद्धि मनुष्यों का वर्णन घर बनाने के संबंध में है। इस दृष्टांत में मूर्ख कुमारियों की भूल यह थी कि वे तेल पर्याप्त मात्रा में नहीं लाई थीं। तेल मन-परिवर्तन का प्रतीक है, अतः स्वर्ग के राज्य की तैयारी में मन-परिवर्तन करना अनिवार्य है। पद १३ हमें स्मरण दिलाता है कि हमें संकटकाल और निर्णयात्मक क्षण के लिए सदा तैयार रहना है। इस प्रकार यह दृष्टांत हम पर भी लागू है। हमारी तैयारी परमेश्वर की इच्छा को पहचानने और उसे पूरा करने में है।

(ज) तोड़ों (तलंतों) का दृष्टांत २५ : १४-३०

सामान्य मान्यता यह है कि मत्ती और लूका में यह वर्णन एक ही मूल दृष्टांत पर आधारित है, परंतु कलीसियाओं की परंपरा में यह परिवर्तित हुआ, अतः मत्ती और

लूका में इसके दो भिन्न रूप हैं। यह भी माना जाता है कि मत्ती में इसका रूप अधिक मौलिक है।

मत्ती में यह दृष्टांत भी पुनरागमन-संबंधी है। यह तथ्य २५ : १४ में "क्योंकि" शब्द से स्पष्ट है। संभाव्यतः इस दृष्टांत का संबंध भी यीशु के श्रोताओं की स्थिति के साथ था। इसमें प्रमुख तथ्य यह है कि एक व्यक्ति ने अपने तलंत को दबाकर उसका प्रयोग नहीं किया। यीशु के श्रोताओं में से वे लोग जिन पर यीशु परमेश्वर के वरदानों का उचित प्रयोग न करने का दोष लगाता था फरीसी थे। अतः संभवतः यह दृष्टांत उनके विरुद्ध कहा गया। परंपरा में इस दृष्टांत का अनुकूलन कलीसिया की परिस्थिति से किया गया, और मत्ती ने उसे पुनरागमन के संबंध में अपने सुसमाचार में सम्मिलित किया।

२५ : १४ में उस व्यक्ति का परदेश चला जाना कहानी में इस कारण है कि कुछ अवधि की आवश्यकता थी जिसमें दास परखे जाएं। मत्ती में प्रसंग की मांग है कि उसका चला जाना यीशु के स्वर्गारोहण का प्रतीक माना जाए, जिसके पश्चात् उसका पुनरागमन होगा। **२५ : १५**—"तोड़ा" एक सहस्र रुपया की थैली थी जिसका प्रयोग पूर्वकाल में किया जाता था। ह्वि. सं. में "तलंत" है, जो मूल यूनानी शब्द है। तलंत एक बड़ी रकम थी। उसका मूल्य भिन्न स्थानों और समयों में भिन्न होता था। यह शब्द नया नियम में केवल १८ : २४ में और यहां पाया जाता है। जब यीशु ने यह दृष्टांत बताया तब "तलंत" का अर्थ संभाव्यतः परमेश्वर का ज्ञान था जो यहूदी धर्म-नेताओं को सौंपा गया था। **२५ : १८** में तलंत को भूमि में छिपाना उन नेताओं की ओर संकेत है जो जनता के व्यवस्था-पालन में बाधाएं अटकाते थे। पूर्वकाल में रुपया को भूमि में छिपाना साधारण प्रथा थी। मत्ती में तलंत वे आत्मिक दान हैं जो ख्रिस्त द्वारा हमें प्राप्त हैं। उनका उचित प्रयोग करने से ख्रिस्ती व्यक्ति उन्नति करता जाता है, और अधिक आत्मिक दान "कमाता" है। स्वामी का लौट आना, जो मूल दृष्टांत में केवल दासों को परखने के लिए है, और नेताओं के परमेश्वर से परखे जाने का प्रतीक था। मत्ती में ख्रिस्त के पुनरागमन का प्रतीक है। **२५ : २१ और २३** में, २४ : ४७ के समान, विश्वस्तता का प्रतिफल अधिक उत्तरदायित्व का पात्र बनना है। **२५ : २४** से ऐसा प्रतीत होता है कि इस बात का संकेत है कि परमेश्वर के संबंध में यहूदी नेताओं का विचार गलत था। **२५ : २८** में यह तथ्य व्यक्त है कि वह व्यक्ति जो आत्मिक दानों का प्रयोग नहीं करता उन्हें खो बैठता है। २५ : २९ मत्त. १३ : १२=मर. ४ : २५=लू. ८ : १८ के समान है। संभाव्यतः मत्ती ने स्वयं उसे यहां जोड़ा। इस प्रकार भी उसने इस दृष्टांत को युगांत से संबद्ध किया है। पद ३० का भी यही परिणाम है। **२५ : ३०** उ. के शब्द १३ : ४२, पू.; २२-१३; २४ : ५१ में भी पाए जाते हैं।

इस दृष्टांत की मुख्य शिक्षा यह है कि जिस अनुपात से परमेश्वर हमें वरदान देता है उसी अनुपात से वह उन वरदानों का फल हमारे जीवनों में देखना चाहता है। एक लेखा का दिन होगा जब हमें उसके सामने अपने उत्तरदायित्व का लेखा देना होगा।

(झ) अंतिम न्याय के संबंध में दृष्टांत २५ : ३१-४६

यह अंश केवल मत्ती में है। अधिकांश विद्वानों की मान्यता के अनुसार यीशु ने ही यह दृष्टांत या रूपक सुनाया, यद्यपि संरचना-काल में उसमें अनेक परिवर्तन किए गए होंगे। यह दृष्टांत इस प्रवचन-भाग की पराकाष्ठा है। इससे पहले अध्याय २३ में यीशु फरीसियों की भर्त्सना करता है, और २३ : ३, ४ में उन पर यह दोष लगाया गया है कि "वे कहते तो हैं पर करते नहीं"। अध्याय २४ में तैयार रहने का प्रबोधन है। इस अंश में बताया जाता है कि वह तैयारी कैसी होनी चाहिए। इसकी मौलिक शिक्षा इस सुसमाचार के अन्य स्थलों में भी मिलती है, जैसे ५ : २०; ७ : २०; १६ : २७।

इसमें अंतिम न्याय का चित्रण किया गया है। यह प्रकट किया गया है कि मानव-पुत्र वही है जो सिंहासन पर बैठकर न्याय करता है। "सब जातियां" (**पद ३२**) के अर्थ में समस्त मानव-जाति सम्मिलित है। अनेक विद्वानों की मान्यता के अनुसार इससे केवल वे लोग अभिप्रेत हैं जो ख्रिस्ती नहीं हैं, परंतु यह अधिक संभव प्रतीत होता है कि इसमें ख्रिस्ती और अख्रिस्ती सब ही सम्मिलित हैं। भारत के समान पलिश्तीन में भी भेड़ें और बकरियां इकट्ठी चाराई जाती थीं। यहां भेड़ें धर्मात्माओं का और बकरियों दुष्टों का प्रतीक हैं। दाहनी ओर सौभाग्य का प्रतीक माना जाता था। **२५ : ३४** में **राजा** का अर्थ यीशु है, तुलना कीजिए २ : २; २१ : ५; २७ : ११, २९, ३७, ४२। ५ : ३ में भी राज्य के अधिकारी होने का उल्लेख है—उसकी टीका को देखिए। यह राज्य संसार की उत्पत्ति से है, क्योंकि परमेश्वर सदा राज्य करता रहा है।

२५ : ३५-४४ में ऐसे सत्कर्मों का वर्णन है जो कोई भी व्यक्ति कर सकता है। उनके लिए केवल निस्स्वार्थ भाव और प्रेम की आवश्यकता है। कसौटी यह है कि हमने ऐसे कार्य किए हैं या नहीं किए हैं। इन पदों में मानव की मौलिक आवश्यकताओं का उल्लेख है। न केवल व्यक्तिगत रूप से वरन् सामूहिक रूप से भी यह मांग है कि हम इन आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रबंध करें। **२५ : ३७-३९** से ज्ञात होता है कि उक्त लोगों के मन में यह विचार कभी नहीं आया था कि जो कुछ हम कर रहे हैं ख्रिस्त के निमित्त कर रहे हैं। उनके हृदयों में प्रेम उमड़ रहा था, इस कारण आवश्यकता होने पर उनसे अनायास उचित प्रतिक्रिया हुई। **२५ : ४०** के प्रसिद्ध शब्द अत्यंत प्रभावशाली हैं। इसमें यीशु स्वयं को संसार के दरिद्र नगण्य लोगों के साथ एक घोषित करता है। वह समस्त मानव-जाति का प्रतिनिधि है। अनेक टीकाकारों की मान्यता के अनुसार "भाई" का अर्थ ख्रिस्ती व्यक्ति है परंतु यहअधिकसंभव है कि उससे संसार का कोई भी मुहताज जन अभिप्रेत है। यह व्याख्या पद ३२ में "सब जातियां" शब्दों से संगत है।

इसी प्रकार बाईं ओर वालों का यह अपराध था कि उनमें वह प्रेमभाव नहीं था जो उन्हें ऐसे सत्कर्म करने पर विवश करता। इसके लिए वे स्वयं उत्तरदायी थे। **२५ : ४१** के कठोर शब्द प्रतीकात्मक हैं। ऐसे शब्द १३ : ४०, ४२, ५०; १८ : ८ में भी हैं।

इस संबंध में १८ : ८ और मर. ६ : ४४ की व्याख्या को पढ़िए। यहूदियों की मान्यता के अनुसार शैतान एक स्वर्गदूत था जिसने आज्ञाभंग किया। उसके पतन के पश्चात् अन्य स्वर्गदूत उसके सहभागी हो गए। पद ३४ और पद ४१ में अनुकूलता है। संभव है कि "जगत के आदि से" शब्द पद ४१ में भी समझे जाते हैं। दोनों पदों में बल इस तथ्य पर दिया गया है कि प्रतिफल परमेश्वर की ओर से निर्धारित है, यह उसका अटल प्रबंध है। परमेश्वर स्वयं प्रेम है, वह किसी को हानि नहीं पहुंचाना चाहता। परंतु यदि वास्तव में मानव-जाति को इच्छा-स्वातंत्र्य प्राप्त है, और मनुष्य नैतिक और आत्मिक रूप से उत्तर-दायी है तो अनिवार्य रूप से उसको अपने अपराध का परिणाम भुगतना पड़ेगा। यह व्याख्या पद ४६ पर भी लागू है। संभव है कि ये पद परंपरा-काल में या संकलन-कर्त्ता द्वारा जोड़े गए हैं। दृष्टांत का मौलिक अर्थ बहुत ही स्पष्ट है। वह १६ : २७ में भी व्यक्त है, "उस समय वह हर एक को उसके कामों के अनुसार प्रतिफल देगा"। यह शिक्षा उस सिद्धांत के प्रतिकूल नहीं है कि हमारा उद्धार परमेश्वर के अनुग्रह से ख्रिस्त पर विश्वास करने के द्वारा होता है। स्वयं पौलुस ने, जो उस सिद्धांत का महान समर्थक था, इस प्रकार लिखा, "क्योंकि ख्रिस्त के न्यायासन के संमुख हम सबकी वास्तविकता प्रकट हो जाएगी कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में किए भले अथवा बुरे कर्मों का प्रतिफल मिल सके" (२ कुर. ५ : १०, हिं. सं.)।

७, यीशु के दुखभोग तथा पुनरुत्थान के वर्णन २६ : १—२८ : २०

इन अध्यायों में मत्ती मरकुस का अनुसरण करता है। उसका कोई अन्य स्रोत नहीं है। कहीं कहीं वह प्रचलित मौखिक परंपरा में से कुछ बातें जोड़ता है, उदाहरणार्थ २६ : ५२-५४; २७ : ३-१०। कहीं कहीं वह वर्णन का अनुकूलन पुराने नियम की बातों से करता है, जैसे २६ : १५, ५४; २७ : ३४, ४३ (इनकी व्याख्या को देखिए)।

(१) यीशु की हत्या के लिए षड्यंत्र, बैतनिय्याह में गंधरस से अभ्यंजन, यहूदा का विश्वासघात २६ : १-१६ (मर. १४ : १-११)

मुख्य व्याख्या के लिए मर १४ : १-११ की टीका को देखिए।

२६ : १ ५— पद १ में प्रवचन की समाप्ति का सूत्र है (७ : २७ की व्याख्या को देखिए)। पद २ में मरकुस का वर्णन साक्षात्कथन में परिवर्तित किया गया है। यह परिवर्तन संपादकीय है, क्योंकि यहां अंतिम प्रवचन और दुखभोग का संक्रांति-स्थल है। **२६ : ३**—केवल मत्ती बताता है कि "महायाजक और प्रजा के पुरनिए" महा-याजक काइफा के महल (वास्तव में अर्थ यही है) में एकत्रित हुए। मरकुस और लूका में पुरनियों का नहीं, शास्त्रियों का उल्लेख है। कदाचित् मत्ती प्रकट करना चाहता था कि यह महासभा की नियमित बैठक थी। इस पद के शब्द कुछ अंशों में भ. २ : २ के समान हैं। इस भजन के लिये यह माना जाता था कि वह प्रतिज्ञात मसीह के संबंध में है। यीशु की मृत्यु के संबंध में भ. २ : १, २ प्रे. ४ : २५, २६ में उद्धृत हैं।

२६ : ६-१३ में मत्ती ने कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया है। उसके परिवर्तन संक्षेप करने के अभिप्राय से हैं। मरकुस की टीका को पढ़िए।

२६ : १४-१६—पद १५ में मरकुस का वर्णन साक्षात्कथन में परिवर्तित किया गया है ताकि "उन्होंने उसको तीस चांदी के सिक्के तोलकर दिए" शब्द, जो ज. ११ : १२ से उद्धृत हैं, सम्मिलित किए जाएं। इससे भी मत्ती प्रकट करना चाहता था कि यीशु की मृत्यु भविष्यवाणी के अनुसार हुई। २१ : ५; २४ : ३, ३०, ३१; २६ : २८ और २७ : ९ में भी जकर्याह के अंतिम अध्यायों के संकेत अथवा उद्धरण पाए जाते हैं। संभवतः मत्ती को इस रकम के विषय में जानकारी नहीं थी, उसने केवल जकर्याह के इस वर्णन के आधार पर यह लिखा।

(२) फसह की तैयारी, यहूदा के विश्वासघात का संकेत २६ : १७-२५
(मर. १४ : १२-२१)

(३) प्रभुभोज की स्थापना २६ : २६-३० (मर. १४ : २२-२६)

२६ : १७-२५ में मत्ती ने मरकुस के वर्णन को संक्षिप्त किया है। कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं है। मरकुस के अनुसार केवल दो शिष्य तैयारी करने के लिए भेजे जाते हैं, परंतु मत्ती में इसका उल्लेख नहीं है। यह १८ में मत्ती ने "मेरा समय निकट है" शब्दों को जोड़ा है। "समय" का अर्थ विशेष संकटकाल है। इस पद से स्पष्ट ज्ञात होता है कि, मरकुस के समान, मत्ती की यह मान्यता थी कि अंतिम भोज फसह का भोज था। इस पर मर. १४ : १४ की व्याख्या को ध्यानपूर्वक पढ़िए।

२३ : २०-२५ में केवल दो द्रष्टव्य परिवर्तन हैं। पद २२ में मत्ती ने लिखा, "प्रभु, मैं तो नहीं हूं ?" (हिं. सं.)। मरकुस में "प्रभु" शब्द नहीं है। पद २५ केवल मत्ती में है। इसमें यहूदा यीशु को संबोधित करते हुए उसे "गुरु" (हिं. सं. हिं. प्र. में "रब्बी") कहता है। संभवतः यह कारण है कि मत्ती ने पद २२ में, शिष्यों के कथन में, अधिक सार्थक शब्द "प्रभु" को जोड़ा। मत्ती ने अन्य स्थलों के वाक्यों को जोड़कर पद २५ को रचा, "उसका पकड़वानेवाला, यहूदा (१० : ४), "क्या वह मैं हूं ?" (२६ : २२), "रब्बी" (२६ : ४९), और "तू कह चुका" (२६ : ६४)। इन अनुकूल स्थलों के यूनानी मूल पाठ में पूर्ण समानता है। इस पद से मत्ती प्रकट करता है कि यीशु को अपनी मृत्यु के ब्योरों के संबंध में पूर्वज्ञान था।

२६ : २६-३०—इन पदों में ऐसा प्रतीत होता है कि जो छोटे परिवर्तन किए गए हैं उनका अभिप्राय अर्थ को अधिक स्पष्ट करना ही है, अतः मुख्य व्याख्या के लिए मरकुस की टीका को देखिए। **२६: २६** में मत्ती ने "यीशु" और "खाओ" शब्दों को जोड़ा है। **२६ : २७** में "और उन सबने उसमें से पिया" (मर. १४ : २३) के स्थान पर उसने "तुम सब उसमें से पियो" लिखा। यह कथन और पद २६ में "खाओ" प्रकट करते हैं कि मत्ती में इस अंश के रूप पर आराधना में उसके प्रयोग का प्रभाव हुआ है। **२६ : २८** में "पापों की क्षमा के निमित्त" शब्द जोड़े गए हैं। मत्ती ने ये शब्द ३ : २

में से छोड़े, भले ही वे मरकुस और लूका के अनुकूल स्थलों में हैं (मर. १ : ४; लू. ३ : ३)। संभव है कि ये शब्द भी उपासना-संबंधी प्रयोग के कारण यहां जोड़े गए। ये शब्द यीशु की मृत्यु के बलि-संबंधी पक्ष पर बल देते हैं। २६ : २९ में दो शब्द जोड़े गए हैं जिनकी हि. प्र. में उपेक्षा की गई है। हिं. सं. इस प्रकार है, "दाख का रस अब से लेकर उस दिन तक नहीं पिऊंगा. . . ."। छोड़े हुए शब्द "अब से लेकर" हैं। इन शब्दों से ज्ञात होता है कि मत्ती के विचार के अनुसार उस समय और पुनरागमन के समय में कुछ मध्यावधि आवश्यक थी। इस पद के अंत में "परमेश्वर के राज्य" के स्थान पर "मेरे पिता के राज्य" है। २६ : ३० के विषय में मर. १४ : २६ की टीका देखिए।

(४) पतरस के अस्वीकरण की भविष्यवाणी, गतसमने में प्राणपीड़ा २६ : ३१-४६ (मर. १४ : २७-४२)

मर. १४ : २७-४२ की व्याख्या को पढ़िए।

२६ : ३१-३५—मत्ती के परिवर्तन महत्वहीन हैं। २६ : ३१ में उसने "आज ही रात को मेरे विषय में" शब्दों को जोड़ा है, जिससे यह बात अधिक स्पष्ट की गई है। इस प्रकार उसने २६ : ३३ में "तेरे विषय में" शब्दों को जोड़ा है, और उसका वाक्य "कभी भी ठोकर न खाऊंगा" मरकुस के वर्णन की अपेक्षा (पद २९) सबल है। मरकुस के पद ३० में मुर्ग के "दो बार" बांग देने का उल्लेख है, परंतु मत्ती इस ब्योरे को छोड़ देता है।

२६ : ३६-४६—यहां भी मत्ती का वर्णन मुख्यतः मरकुस के समान है। पद ३६ में "याकूब और यूहन्ना" के स्थान पर उसने "जबदी के दोनों पुत्र" लिखा है। अपनी प्रथानुसार उसने यीशु के भावावेश को कम करके दिखाया है। "बहुत ही अधीर" के स्थान पर "उदास" है। २६ : ३८ के शब्द "मेरा जी बहुत उदास है" भ. ४२ : ५ से उद्धृत हैं। मरकुस में भी यह उद्धरण है, परंतु उसकी टीका में इसका उल्लेख नहीं किया गया। इस पद के अंत में "मेरे साथ" शब्द केवल मत्ती में हैं। मत्ती ने २६ : ३९ में से मरकुस के पद ३५ के कुछ शब्द छोड़े हैं, क्योंकि वही शब्द इसी पद में यीशु की प्रार्थना में हैं। इस प्रार्थना में मत्ती ने मर. १४ : ३६ के शब्द "तुझ से सब कुछ हो सकता है" परिवर्तित करके "यदि हो सके" लिखा है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने मरकुस में लिखित शब्दों को अनुपयुक्त समझा। २६ : ४२ में मत्ती यीशु की प्रार्थना लिखता है। जो मरकुस में नहीं है। संभाव्यतः मत्ती ने स्वयं, पद ३९ और प्रभु की प्रार्थना (६ : १०) के शब्दों का प्रयोग करके, इसको रचा। इससे वह इस तथ्य पर बल देता है कि यीशु इस संकट के समय पर अपने पिता की इच्छा की पूर्ति करने पर दृढ़प्रतिज्ञ था। २६ : ४३ में से मत्ती ने मरकुस पद ४० उ. को छोड़ा है, "और नहीं जानते थे कि उसे क्या उत्तर दें"। २६ : ४४ मरकुस में नहीं है। मत्ती ने इसे मरकुस १४ : ३९ के आधार पर रचा।

(५) यीशु का बंदी होना २६ : ४७-५३ (मर. १४ : ४३-५६)

मर. १४ : ४३-५६ की व्याख्या को पढ़िए।

२६ : ४७ में मत्ती ने "बड़ी" और "लोगों के" शब्दों को जोड़ा है। उसने "शास्त्रियों" शब्द को, जो मरकुस में है, छोड़ दिया है। २६ : ४८ में मरकुस के पद ४४ के शब्द "यत्न से ले जाना" नहीं हैं। २६ : ४९ में मत्ती ने "नमस्कार" शब्द को जोड़ा है। २६ : ५० पू. केवल मत्ती में है। संभाव्यतः हि. प्र. का अनुवाद ठीक है। हि. सं. का अनुवाद भी इसके समान है, परंतु पद-टिप्पणी में एक वैकल्पिक अनुवाद प्रस्तुत है, "तुम क्या करने आए हो ?"। ठीक अनुवाद के संबंध में पूर्ण निश्चय असंभव है, क्योंकि यूनानी वाक्यांश बहुत संक्षिप्त और अस्पष्ट है। २६ : ५१ में मत्ती "यीशु के साथियों में से एक" लिखकर स्पष्ट करता है कि यह व्यक्ति शिष्यों में से एक था। यू. १८ : १० में वर्णित है कि यह पतरस था। २६ : ५२-५४ केवल मत्ती में हैं। पद ५२ में यीशु का कथन है। तुलना कीजिए ५ : ३९-४२। यीशु अपने प्रतिपादित प्रेम-सिद्धांत के अनुसार आचरण करना चाहता था। संभव है कि मत्ती ने २६ : ५३ और ५४ को रचा। यह असंभाव्य प्रतीत होता है कि यीशु, प्रेम-सिद्धांत को मानने के बावजूद अपनी रक्षा के लिए सेना को बुलाने का विचार करता। "पवित्र शास्त्र की बात" ज. १३ : ७ की ओर संकेत है, जो २६ : ३१ में उद्धृत है। कलीसिया ने जकर्याह की बात की पूर्ति यीशु की मृत्यु में देखी। २६ : ५५ में मत्ती "उसी घड़ी" शब्द जोड़ता है, और "भीड़ से कहा" शब्दों से मरकुस के अर्थ को अधिक स्पष्ट करता है। इस प्रकार के छोटे परिवर्तन पद ५६ में भी हैं।

(६) महापुरोहित के संमुख यीशु का विचार, पतरस की अस्वीकृति २६ : ५७-७५ (मर. १४ : ५३-७२)

मर. १४ : ५३-७२ की व्याख्या को पढ़िए।

२६ : ५७ में मत्ती काइफा का नाम लेता है, जो मरकुस में नहीं है। वह केवल शास्त्रियों और पुरनियों (धर्मवृद्धों) का उल्लेख करता है, महायाजकों का नहीं, भले ही मरकुस में उनका उल्लेख है। परंतु २६ : ५९ में महायाजक उल्लिखित हैं। पद ४८ में मत्ती ने "आग तापने लगा" शब्दों को छोड़ दिया है, और "अंत देखने को" शब्दों को जोड़ा है। पतरस को आशा नहीं थी कि इस कार्रवाई से कोई अच्छा परिणाम निकल सकता था। उसका विचार था कि सब पर पानी फिर गया था। २६ : ६२ में मत्ती ने इन शब्दों को जोड़ा है : "मैं तुझे जीवते परमेश्वर की शपथ देता हूं. . .तो हम से कह दे"। २६ : ६४ में उसने मरकुस के स्पष्ट शब्द "हां मैं हूं" परिवर्तित करके "तू ने आप ही कह दिया" लिखा है। संभाव्यतः इसका अर्थ वही है जो मरकुस में व्यक्त है। २६ : ६५ में मत्ती ने "उसने परमेश्वर की निंदा की है" शब्दों को जोड़ा है। २६ : ६७ में उसने मरकुस के पद ६५ के शब्द "और उसका मूंह ढांपने" छोड़े हैं। पद ६८ के शब्द परिवर्तित किए गए हैं (मरकुस पद ६५ उ) और "हे मसीह" शब्द जोड़े गए हैं। मत्ती में मरकुस का वाक्य, "और प्यादों ने उसे लेकर थप्पड़ मारे" एक प्रश्न बनता है, "किसने तुझे मारा ?"। लूका में भी ऐसा ही है। २६ : ६९ में भी (पद ५८ से तुलना

कीजिए) मत्ती ने पतरस के आग तापने का उल्लेख छोड़ा। "उस नासरी" के स्थान पर उसने "यीशु गलीली" लिखा है। संभाव्यतः मत्ती ने पद ७३ की तैयारी में यह परिवर्तन किया—उस पद में उसने "गलीली" शब्द को छोड़ा है (मर. पद ७०)। वह "नासरी" शब्द का प्रयोग पद ७१ में करता है।

२६ : ७१—मरकुस के अनुसार (पद ६९) वही लौंडी दूसरी बार पतरस से बोली, परंतु मत्ती के अनुसार वह "दूसरी" थी। लू. २२ : ५८ के शब्द "हे मनुष्य मैं नहीं हूं" से ज्ञात होता है कि लूका के अनुसार एक मनुष्य ने दूसरी बार पतरस से यह बात की। २६ : ७२ मरकुस के १४ : ७० से सबल है, "शपथ खाकर. . .कि मैं इस मनुष्य को नहीं जानता" मत्ती के जोड़े हुए शब्द हैं। २६ : ७३—मरकुस १४ : ७० में पतरस को गलीली कहा गया है। मत्ती ने इसके स्थान पर स्पष्टीकरण करके लिखा, "क्योंकि तेरी बोली तेरा भेद खोल देती है"। गलीलियों का उच्चारण सरलता से पहचाना जा सकता था। पद ७४ और ७५ में मत्ती ने "दूसरी बार" और "दो बार" शब्दों को छोड़ दिया है (२६ : ३४ की व्याख्या को पढ़िए)। पद ७५ के अंत में मत्ती ने शब्द "फूट फूटकर" जोड़े, जो लूका में भी हैं (मरकुस १४ : ७२ की व्याख्या को पढ़िए)।

(७) यीशु पिलातुस के संमुख, यहूदा इस्करियोती की मृत्यु २७ : १-१० (मर. १५ : १)

२७ : १, २ में मत्ती ने मरकुस का अनुसरण किया है। मरकुस की टीका को पढ़िए। मत्ती यहां "महासभा" शब्द का प्रयोग नहीं करता, और यह बात जोड़ता है कि उनका अभिप्राय यीशु को मार डालना था। यह पहली बार है कि मत्ती में पिलातुस का उल्लेख है। पिलातुस ई. स. २६-३६ यहूदिया का रोमी राज्यपाल रहा (नया नियम की पृष्ठभूमि" पृ. ५०)।

२७ : ३-१०—प्रे. १ : १८, १९ में भी यहूदा की मृत्यु का वर्णन है, जो इससे भिन्न है। दोनों वर्णनों में इन तथ्यों के संबंध में सहमति है कि यहूदा बुरी तरह मरा, और कि उस रुपया से जो उसे यीशु को पकड़वाने के लिए दिया गया एक खेत मोल लिया गया जो "लोहू का खेत" कहलाता था। संभाव्यतः मत्ती का अभिप्राय इस घटना की जानकारी प्रस्तुत करना नहीं वरन् यह प्रकट करना था कि यहूदा की मृत्यु में भी भविष्यवाणी की पूर्ति हुई। २७ : ३ में ऐसा प्रतीत होता है कि यह घटना यीशु के दोषी ठहराए जाने के पश्चात् ही हुई। मत्ती का वर्णन प्रेरितों के काम पुस्तक के वर्णन की अपेक्षा अधिक मानने योग्य प्रतीत होता है, परंतु इस वर्णन पर भविष्यवाणी का प्रभाव हुआ है। यहूदा ने पहचान लिया कि उसने बहुत बड़ा पाप किया था। २७ : ४ में "निर्दोषी को घात के लिए" मूल पाठ में "निर्दोष रक्त" (हिं. सं.) है। हम नहीं जानते कि यीशु को पकड़वाने में यहूदा का क्या अभिप्राय था परंतु यह स्पष्ट है कि इस समय उसको ज्ञात हुआ कि इस समस्त परिस्थिति में उस ने बड़ी गलती की थी।

संभवतः उस ने नहीं सोचा था कि वास्तव में यीशु की हत्या होगी। २७ : ५ का अर्थ कदाचित् यह है कि यहूदा ने वह रुपया मंदिर के कोष में डाल दिया। यह विचार ज. ११ : १३ के सही अनुवाद पर आधारित है, "मैं ने वे चांदी के तीस शेकेल लिए और उन्हें मंदिर के कोष में फेंक दिया" (ध. ग्र.)। इस स्थल पर हि. प्र. में "कुम्हार के आगे फेंक दिया" है, परंतु विद्वानों की सामान्य मान्यता है कि इब्रानी मूल पाठ परिवर्तित हुआ है, और उपरोक्त अनुवाद ठीक है।

यहूदा का आत्महत्या करना, प्रेरितों के काम के वर्णन की अपेक्षा, अधिक संभाव्य प्रतीत होता है। २७ : ६ उपरोक्त मत का समर्थन करता है, कि यहूदा ने यह रुपया कोष में डाला। महायाजकों ने उसे निकाला। २७ : ७-१० ज. ११ : १२, १३ पर आधारित हैं। निस्संदेह एक खेत था जो "लोहू का खेत" कहलाता था। संभाव्यतः मत्ती को यह वर्णन मौखिक परंपरा से ज्ञात हुआ। इस परंपरा में जकर्याह से उद्धृत शब्द गलती से यिर्मयाह के बताए गए हैं। परंतु इन पदों में यि. ३२ : ६-९ और १८ : २ क्र. की ओर संकेत है, क्योंकि इन में एक खेत मोल लेने का, और कुम्हार का उल्लेख है। यह एक जटिल समस्या है, परंतु ऐसा प्रतीत होता है कि यह खेत पहले से "रक्त क्षेत्र" (हिं. सं.) कहलाता था, और महायाजकों ने इस रुपया से इस खेत को मोल लिया। ख्रिस्तियों ने धर्मशास्त्र में जकर्याह और यिर्मयाह के उपरोक्त स्थलों को ढूंढ़ निकाला, और उनके आधार पर यह खेत "कुम्हार का खेत" कहलाया। २७ : ९ उ. और १० के अधिकांश शब्द जकर्याह और यिर्मयाह से उद्धृत हैं।

(८) पिलातुस के संमुख यीशु २७ : ११-२६ (मर. १५ : २-१५)

इस अंश में मत्ती ने मरकुस का अनुसरण किया है, परंतु कहीं कहीं ऐसे परिवर्तन किए, और अपनी कुछ अन्य सामग्री भी जोड़ी है, जिस से मरकुस की अपेक्षा यह और भी प्रत्यक्ष किया जाए कि यहूदी लोग, विशेषकर उनके धर्म-नेता, यीशु की मृत्यु के उत्तरदायी थे। इस तथ्य पर अधिक बल दिया गया है कि पिलातुस का उत्तरदायित्व उतना नहीं था जितना यहूदियों का था संभव है कि रोम के शासन में रहते हुए यह मत्ती के काल के ख्रिस्तियों के लिए आवश्यक था कि वे प्रकट करें कि कलीसिया और रोमी शासन में अनबन नहीं थी। लूका और यूहन्ना रचित सुसमाचारों में यह झुकाव और भी सुस्पष्ट है। अनेक टीकाकारों की मान्यता है कि वास्तव में यह दृष्टिकोण ऐतिहासिक रूप से असत्य है, और उत्तरदायित्व पिलातुस का था। परंतु हम नया नियम की साक्षी की उपेक्षा इस प्रकार नहीं कर सकते। मान लिया कि कुछ पक्षपात है, और कि इस बात के प्रति कदाचित् सुसमाचारों का दृष्टिकोण पूर्ण रूप से निष्पक्ष और संतुलित नहीं है तो भी स्वीकार करना पड़ता है कि मौलिक रूप से उस समय के यहूदी धर्म-नेताओं ने यीशु की हत्या करवाई। पिलातुस भी उत्तरदायी था, परंतु वह मानो उन नेताओं के हाथ में कठपुतली सा था।

२७ : ११-१४—"जब यीशु हाकिम के सामने खड़ा था" शब्द जोड़े हुए हैं, क्योंकि मत्ती ने मरकुस के ढांचे में यहूदा की मृत्यु का वर्णन सम्मिलित किया। यहां और अनेक अन्य स्थलों में "पिलातुस" के स्थान पर "हाकिम" है। पद १२ में मत्ती ने यह बात जोड़ी है कि यीशु मौन रहा। अन्य परिवर्तन महत्वहीन हैं।

२७ : १५-२६—काफी शाब्दिक परिवर्तन हैं जो महत्वहीन हैं। पद १६ में मरकुस पद ६ का यह तथ्य छोड़ा गया है कि बरअब्बा विद्रोही था। कतिपय प्रतियों में इस विद्रोही का नाम यीशु बरअब्बा लिखा गया है। संभाव्यतः यह ठीक है (मर. १४ : ७ की व्याख्या को देखिए)। २७ : १७=मर. २४ : ६, पद २०=मर. १४ : ११ और पद २१ में, जो मरकुस में नहीं है, मत्ती के अनुसार पिलातुस ने यहूदियों के सामने दो स्पष्ट विकल्पों को रखा–यीशु या बरब्बा। वास्तव में यहूदियों को दो "यीशुओं" में चुनना था, वह जो बरअब्बा कहलाता था, और वह जो ख्रिस्त कहलाता था (पद १७)। संभवतः बरअब्बा उत्साही देशभक्त था न कि घृणित डाकू। २७ : १९ केवल मत्ती में है। यह सामग्री मत्ती को मौखिक परंपरा से प्राप्त हुई होगी। यह पद भी पिलातुस के उत्तरदायित्व को घटाने के अभिप्राय से सम्मिलित किया गया होगा। अनेक टीकाकार इसकी ऐतिहासिकता पर संदेह करते हैं। पद २० में यहूदियों का चुनाव भी अधिक स्पष्ट व्यक्त है—"और यीशु को नाश कराएं" शब्द जोड़े गए हैं। २७ : २२ में "जिसे तुम यहूदियों का राजा कहते हो" (मरकुस पद १२) के स्थान पर "यीशु को जो मसीह कहलाता है" लिखा है। संभाव्यतः इसका अभिप्राय इन दो विकल्पों को प्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत करना है। मरकुस के रूप की ऐतिहासिकता अधिक प्रतीत होती है। इस पद और अगले पद में "इसे क्रूस पर चढ़ा दे" के स्थान पर "वह क्रूस पर चढ़ाया जाए" है। कदाचित् इस परिवर्तन का अभिप्राय यह प्रकट करना है कि उत्तरदायित्व यहूदियों का है।

२७ : २४, २५ केवल मत्ती में हैं। वर्तमान काल में अधिक टीकाकारों की मान्यता है कि **हाथ धोने की घटना** ऐतिहासिक नहीं हो सकती। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतीकात्मक रूप से हाथ धोना यहूदियों की प्रथा थी, अन्य जातियों की नहीं। यह भी असंभाव्य है कि पिलातुस जैसा रोमी शासक अपने को इस प्रकार असमर्थ और विवश मान ले। अनेक टीकाकारों का विचार है कि यहूदी भी यह नहीं कह सकते थे कि "इसका लोहू हम पर और हमारी संतान पर हो"। इस पद में "लोगों" एक शब्द (लाऑस) का अनुवाद है जिस का अर्थ यहां पर यहूदी जाति है। संभव है कि यह यहूदियों का कहना नहीं वरन् ख्रिस्तियों का उन पर अभियोग है। स्थान स्थान और समय समय पर संसार के इतिहास में ख्रिस्तियों ने यहूदियों को बहुत सताया है, जिसका एक कारण यह है कि वे सब यहूदियों पर यीशु की हत्या के उत्तरदायित्व का अभियोग लगाते रहे। नया नियम हमें ऐसा करने की अनुमति नहीं देता (रो. अध्याय ९-११ को पढ़िए)।

(९) सैनिक यीशु का उपहास करते हैं, क्रूस २७ : २७-४४ (मर. १५ : १६-३२)

२७ : २७-३१ में मत्ती मरकुस का अनुसरण करता है। मत्ती में जो भिन्नताएं हैं उनका वर्णन मरकुस की टीका में किया गया है।

२७ : ३२-४४—मरकुस की टीका को पढ़िए। उस में मत्ती के परिवर्तन भी वर्णित हैं। २७ : ३४ में "मुर्र" के स्थान पर "पित्त" इस कारण है कि मत्ती प्रकट करना चाहता था कि यह भी भविष्यवाणी की पूर्ति थी। भ. ६८ : २१ के सप्तति अनुवाद में यही शब्द पाया जाता है ("ख़ॉले"=पित्त)। "पित्त पीने को दिया" सब शब्द भजन के इस पद में हैं। २७ : ३६ अन्य सुसमाचारों में नहीं है। इस स्थल पर मत्ती और लूका दोनों ने क्रूसीकरण के समय का उल्लेख छोड़ दिया है। यह सुझाव प्रस्तुत किया गया है कि पहरा देने का वर्णन संभवतः इस कारण किया गया है कि कहीं कालांतर में कोई व्यक्ति दावा करे कि यीशु का शव उसकी मृत्यु से पहले क्रूस पर से उतारा गया। दूसरी शताब्दी के एक ज्ञानवादी पंथ का दावा था कि शमौन कुरेनी यीशु के स्थान पर क्रूसित हुआ। २७ : ३७ में मत्ती ने "उसके सिर के ऊपर" और "यीशु" शब्दों को जोड़ा है। २७ : ४० की अनेक प्राचीन प्रतियों में एक छोटा शब्द है जो संभवतः मूल पाठ में भी था ("कै")। "धर्म ग्रंथ" अनुवाद में यह शब्द सम्मिलित है, "यदि तू ईश्वर का पुत्र है तो अपने को बचा, क्रूस पर से नीचे उतर"। मत्ती के जोड़े हुए शब्द "यदि तू परमेश्वर का पुत्र है" नहीं हैं जो यीशु के प्रलोभन के समय शैतान ने कहे थे (४ : ३, ६)। मत्ती प्रकट करता है कि यीशु की मृत्यु से पहले ही इन लोगों के द्वारा फिर उसका प्रलोभन हुआ। २७ : ४० में मत्ती ने "मसीह" शब्द को छोड़ा है, जो मरकुस में "इस्राएल का राजा" से पहले है। २७ : ४२ में, जो केवल मत्ती में है, भ. २२ : ८ के शब्द उद्धृत हैं (पद ३९ में इसी भजन के पद ७ का उद्धरण है)। यह भी वही प्रलोभन है। परमेश्वर का पुत्र होने के संबंध में २६ : ६४ को देखिए। "अब उसे छुड़ा ले" और "मैं परमेश्वर का पुत्र हूं" शब्दों में अपक्रिफा की पुस्तक "सुलैमान का प्रज्ञा-ग्रंथ" २ : १८-२० की ओर संकेत है। कदाचित् यह पद मत्ती को किसी धर्मशास्त्र-संबंधी प्रमाण-संग्रह से प्राप्त हुआ।

(१०) यीशु की मृत्यु २७ : ४५-५६ (मर. १५ : ३३-४१)

इस अंश में अधिकतर मत्ती के परिवर्तन महत्वहीन हैं। पद ५१ उ.-५३ केवल मत्ती में हैं। मर. १५ : ३३-४१ की व्याख्या को पढ़िए।

२७ : ४६ में मत्ती ने यह ब्योरा जोड़ा कि समय तीसरे पहर "के लगभग" था। यीशु के शब्दों में जो अंतर मत्ती और मरकुस में है उसका कारण मरकुस की टीका में बताया गया है। २७ : ४८ और ४९ में मत्ती के अनुसार पास खड़े लोगों में से एक व्यक्ति ने स्पंज चुसाया, अन्य लोगों ने एलिय्याह के संबंध में बात कही। मरकुस में एक ही मनुष्य का उल्लेख है। २७ : ५१उ-५३ में सामान्य मान्यता के अनुसार ख्रिस्तीय दंतकथा

है। भूकंप परमेश्वर की उपस्थिति और सामर्थ्य का चिन्ह माना जाता था (म. ६८ : ८)। "सोए हुए पवित्र लोग" का अर्थ यहूदी संत, शहीद आदि हैं। यहूदियों का विश्वास था कि ऐसे लोग युगांत में जी उठेंगे। उनकी एक मान्यता यह थी कि यह पुनरुत्थान यरूशलेम में होगा और कि जैतून पर्वत फटकर दो टुकड़े हो जाएगा। बीच में से मृतक निकल आएंगे। इन पदों में प्रमुख तथ्य यह है कि संतों का पुनरुत्थान यीशु के पुनरुत्थान के पश्चात् हुआ—"मसीह...जो सो गए हैं उन में पहला फल हुआ" (१ कुर. १५ : २०)। पद ५४ में मत्ती ने "और जो उसके साथ पहरा दे रहे थे" शब्दों को जोड़ा। ऊपर पद ३६ की टिप्पणी इस बात पर भी लागू है। मत्ती ने इस तथ्य को भी जोड़ा है कि वे "अत्यंत डर गए"। २७ : ५६ में पाठांतर है। संभाव्यतः मत्ती ने वह लिखा जो अनेक प्राचीन हस्तलेखों में है, अर्थात् "योसेस" नहीं वरन् "यूसुफ" (बुल्के के अनुवाद में ऐसा है)। ये एक ही नाम के दो रूप हैं। मरकुस के "शलोमी" शब्द के स्थान पर मत्ती ने "जबदी के पुत्रों की माता" लिखा है।

(११) कबर में रखा जाना, कबर पर पहरा २७ : ५७-६६ (मर. १५ : ४२-४६)

मर. १५ : ४२-४६ की व्याख्या को पढ़िए।

२७ : ५७-६१—**२७ : ५७** में मरकुस के पद ४२ का संक्षेप ही है—तैयारी के दिन का उल्लेख नहीं है। इसी पद में मत्ती ने मरकुस के पद ४३ को परिवर्तित किया है। मरकुस के अनुसार यूसुफ "परिषद का प्रतिष्ठित सदस्य" था (हिं. सं.)। संभव है कि मत्ती ने यूनानी शब्द "यूस्खेमोन" का अर्थ "धनवान्" लिया। "यूस्खेमोन" वह शब्द है जिसका अनुवाद "प्रतिष्ठित" किया गया है, परंतु उसका एक अर्थ "धनवान्" भी है। मरकुस के अनुसार यूसुफ "परमेश्वर के राज्य की बाट जोहता था", परंतु मत्ती उसे "आप ही यीशु का चेला" बताता है (यू. १९ : ३८ से तुलना कीजिए)। मत्ती ने मरकुस के पद ४४ को छोड़ा है, जिस में सूबेदार के आश्चर्य की अभिव्यक्ति है कि यीशु इतने शीघ्र मर गया। **२७ : ६०** में मत्ती ने यह बात जोड़ी कि यह यूसुफ की "अपनी नई कबर" थी, और कि पत्थर बड़ा था। **२७ : ६१** में मरकुस के पद ४७ के शब्द परिवर्तित हैं। मरकुस ने लिखा कि स्त्रियां "देख रही थीं, कि वह कहां रखा गया है"। मत्ती में लिखा है कि वे "कबर के सामने बैठी थीं", जिसका अर्थ यह है कि वे भी एक प्रकार का पहरा दे रही थीं। यीशु का शव कोई नहीं ले जा सकता था।

२७ : ६२-६६ केवल मत्ती में है, यह वर्णन मानो **२८ : ११-१५** की घटना की तैयारी है। विद्वानों की साधारण मान्यता है कि यह भी दंतकथा है। कालांतर में यह दोष लगाया गया था कि यीशु के अनुयायी यीशु के शव को कबर से उठाकर ले गए। **२७ : ६२** में "तैयारी के दिन के बाद का दिन" विचित्र सा वाक्य प्रतीत होता है। इसका अर्थ सबत का दिन है। कदाचित् मत्ती ने ये शब्द (तैयारी का दिन) इस कारण यहां जोड़े कि उस ने पद ५७ में से उनको छोड़ा था (मरकुस पद ४२)। **२७ : ६४** में "पहला

धोखा" लोगों का यीशु को ख्रिस्त मान लेना है, "पिछला धोखा" उनका यीशु के पुनरुत्थान पर विश्वास करना है। पद ६५ में बुल्के का अनुवाद अधिक ठीक है, "पहरा ले जाइए और जैसा उचित समझें, सुरक्षा का प्रबंध कीजिए"। इसका अर्थ यह है कि पिलातुस ने उन्हें रोमी सैनिकों का पहरा दे दिया। अप्रामाणिक ग्रंथ "पतरस का सुसमाचार" में यह वर्णन और भी अधिक बढ़ाया गया है। यह असंभाव्य प्रतीत होता है कि यहूदियों के धर्म-नेता सबत के दिन इस प्रकार का काम करते। ऐसा करना सबत का उल्लंघन करना था।

(१२) पुनरुत्थान २८ : १-१० (मर. १६ : १-८)

मर. १६ : १-८ की व्याख्या को पढ़िए। उस में मत्ती की भिन्नताएं वर्णित हैं।

मत्ती ने **२७ : ६६** में लिखा कि कबर के सामने के पत्थर पर मुहर लगाई गई थी, अतः उसे यहां इस तथ्य से मरकुस के वर्णन का अनुकूलन करना पड़ा। यह कारण है कि वह सुगंधित वस्तुओं का उल्लेख छोड़ देता है। **२८ : २-४** केवल मत्ती में हैं। उस ने मर. १६ : ३-५ पू. को छोड़ा है, और उनके स्थान पर ये पद जोड़े हैं। मरकुस में उल्लिखित "जवान" मत्ती में स्वर्गदूत है। संभाव्यतः मरकुस में भी यह अर्थ निहित है। परंतु अधिक टीकाकार इस अंश के अनेक ब्योरों को, उदाहरणार्थ भूकंप, पौराणिक मानते हैं (२७ : ५१ उ.–५३ की व्याख्या को देखिए)। **२८ : ५-८** में मत्ती फिर मरकुस का अनुकरण करता है। **२८ : ५** में "चकित मत हो" के स्थान पर मत्ती ने "मत डरो" लिखा। **२८ : ६** में उसने "अपने कथन के अनुसार" शब्द जोड़े हैं, जिन में १२ : ४०; १६ : २१; १७ : ९ और २६ : ३२ की ओर संकेत है। यही शब्द मर १६ : ७ के अंत में हैं। मत्ती ने अपने अनुरूपी पद में (७) इसको परिवर्तित करके लिखा है कि स्वर्गदूत ने कहा, "मैं ने तुम से कह दिया"। **२८ : ८** मरकुस के पद ८ से बहुत भिन्न है। इसके संबंध में मरकुस की टीका को पढ़िए। सामान्य रूप से यह माना जाता है कि इन पदों में मत्ती और मरकुस में असंगति है, क्योंकि मरकुस के अनुसार "उन्हों ने किसी से कुछ नहीं कहा, क्योंकि डरती थीं", परंतु मत्ती के अनुसार वे "उसके चेलों को समाचार देने के लिए दौड़ गईं"। हमको निश्चय नहीं हो सकता कि यह मरकुस रचित सुसमाचार की समाप्ति थी या नहीं (मरकुस की टीका को पढ़िए)। संभवतः मरकुस का अर्थ यह था कि स्त्रियों ने उस समय उस स्थान पर किसी से बात नहीं की, फिर भी शिष्यों को बताने के लिए गईं। परंतु मत्ती ने यह बात भी जोड़ी है स्त्रियां बड़े आनंद के साथ गईं, जो मरकुस के वर्णन के अनुकूल नहीं है।

२७ : ९, १० केवल मत्ती में है। यहां भी गलील को चलने का उल्लेख है, अतः संभवतः यह पद ५-७ की घटना का एक वैकल्पिक वर्णन है जो मत्ती को मौखिक परंपरा से मिला। इस में नई बात यह है कि इन्हों ने यीशु की वंदना की (हिं. सं.)। यही बात पद १७ में भी है। यहां शिष्य "मेरे भाई" कहे गए हैं (तुलना कीजिए १२ : ४; रो ८ : २९; इब्र. २ : १२)।

(१३) पहरेदार बैठाए जाते हैं, शिष्यों को यीशु का दर्शन और आदेश २८ : ११-२०

ये अंश केवल मत्ती में पाए जाते हैं।

२८ : ११-१५ का संबंध २७ : ६२-६६ से है। उसकी टीका को देखिए। मत्ती के काल में यह कहानी प्रचलित थी कि यीशु के शिष्य रात को यीशु के शव को ले गए थे, इस कारण से कबर रिक्त थी। इस अंश में मुख्य तथ्य यह है कि कबर रिक्त थी, और ज्ञात होता है कि यहूदी और ख्रिस्ती दोनों इस तथ्य को मानते थे। कदाचित् यहूदियों की उपरोक्त कहानी के आधार पर यह परंपरा ख्रिस्तियों में प्रचलित हो गई कि यहूदियों ने सैनिकों को घूस दी। अनेक विद्वानों की मान्यता है कि रोमी सैनिकों का इस प्रकार महायाजकों के पास जाना असंभाव्य है। मत्ती ने इस अंश को धर्म-प्रमाण के संबंध में रचा होगा। भले ही इस वर्णन के अनेक ब्योरे पौराणिक हों तो भी रिक्त कबर का मूल तथ्य स्पष्ट और असंदिग्ध है।

२८ : १६-२०—इस अंश के संबंध में मर. १६ : ७ की व्याख्या को पढ़िए। उस में वर्णित है कि मत्ती और मरकुस के अनुसार गलील में, परंतु लूका और यूहन्ना के अनुसार यरूशलेम में यीशु के दर्शन देने का वर्णन है। यह एक बहुत जटिल समस्या है जिसका ब्योरेवर विवरण यहां नहीं हो सकता। कोई तर्कसंगत कारण नहीं है कि यीशु ने यरूशलेम और गलील दोनों में दर्शन न दिया हो।

दर्शन इस प्रकार हैं, (i) संभाव्यत: यरूशलेम या उसके परिप्रदेश में : स्त्रियों को (मत्त. २८ : ९, १०); मरियम मगदलीनी को (यू. २० : ११-१८); पतरस को (१ कुर. १५ : ५, लू. २४ : ३४); इम्माऊस के मार्ग में दो शिष्यों को (लू. २४ : १३-३१); ग्यारह शिष्यों को (लू. २४ : ३८-४९; यू. २० : १९-२३=१ कुर. १५ : ५१; यू. २० : २४-२९; प्रे. १ : ६-९=१ कुर. १५ : ७ ?)।

(ii) गलील में : ग्यारह शिष्यों को (मत्त. २८ : १८-२०, तुलना मर. १६ : ७; यू. २१ : १-१४)।

(iii) जिन में किसी स्थान का उल्लेख या संकेत नहीं है : पांच सौ से अधिक भाइयों को (१ कुर. १५ : ६); याकूब को (१ कुर. १५ : ५)।

संभव है कि यीशु के पुनरुत्थान और पहले दर्शनों के पश्चात् शिष्य गलील चले गए, भले ही यह सुझाव लू. २४ : ४९ से असंगत सा है। मौलिक कठिनाई यह है कि, यूहन्ना २१ को छोड़, मत्ती और मरकुस की साक्षी सब गलील के पक्ष में है, लूका और यूहन्ना की साक्षी सब यरूशलेम के पक्ष में है। यदि वास्तव में यीशु दोनों स्थानों में दर्शन देता तो अपेक्षा होती कि कम से कम एक सुसमाचार में दोनों स्थानों का उल्लेख या संकेत होता (सामान्य मान्यता के अनुसार यूहन्ना २१ अध्याय कालांतर में जोड़ा गया)। इस कठिनाई के कारण अनेक विद्वानों की मान्यता है कि सुसमाचारों के रचयिताओं ने यरू-

शलेम और गलील का वर्णन प्रतीकात्मक रूप से किया है, और भौगोलिक रूप से यीशु के दर्शन के वर्णन अनैतिहासिक हैं।

इस समस्या का समाधान नहीं मिलता। अवश्य लाक्षणिक अर्थ उपस्थित है—निम्न-लिखित व्याख्या को देखिए। तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि यीशु का दोनों स्थानों में दर्शन देना असंभव है। मत्ती के इन पदों में यह आदेश है कि शिष्य अन्यजातियों को शिष्य बनाएं। यदि वास्तव में पुनरुत्थित ख्रिस्त ने यह कहा तो यह समझ में नहीं आता कि कालांतर में शिष्यों ने क्यों नहीं समझा कि सुसमाचार अन्यजातियों के लिए भी है? (प्रे. १०; ११ : १-१८; १५)। हम यह मान सकते हैं कि मत्ती के ये पद कलीसिया के अनुभव पर आधारित हैं। पुनरुत्थित ख्रिस्त ने स्वयं कलीसिया पर ये तथ्य प्रकट किए।

२८ : १६—संभाव्यत: यह पर्वत प्रतीकात्मक है। यह कल्पना की गई है कि यीशु मूसा के समान है, जिस ने व्यवस्था दी, परंतु यीशु उस से महान है (५ : १ और उसकी व्याख्या को देखिए)। **२८ : १७**—यू. २० : २४-२९ को देखिए, जहां थोमा के संदेह का वर्णन है। यहां हिं. सं. का अनुवाद अच्छा है, कि "शिष्यों ने यीशु की वंदना की"। **२८ : १८ और १९** में दा. ७ : १४ की पूर्ति है। पद १८ के शब्द इस स्थल की ओर संकेत करते हैं। "इसलिए" शब्द महत्वपूर्ण हैं। इस कारण कि मृत्यु और पुनरुत्थान के द्वारा उसको संपूर्ण अधिकार प्राप्त है यीशु के शिष्य निर्भीकता से समस्त संसार में उसका प्रचार कर सकते हैं। अब यीशु की सेवा १५ : २४ के समान सीमित नहीं है। यद्यपि यह मानना कठिन है कि यीशु ने पुनरुत्थान के पश्चात् ही यह बात कही तो भी हम इसे यीशु का वास्तविक आदेश मान सकते हैं। पौलुस को प्रत्यक्ष रूप से अन्यजातियों में सुसमाचार-प्रचार करने का निर्देश दिया गया (प्रे. ९ : १५; २२ : २१; २६ : १७, १८)। केवल इस पद में वर्णित है कि यीशु ने बपतिस्मा देने की आज्ञा दी। यूहन्ना रचित सुसमाचार में वर्णित है कि यीशु के शिष्य बपतिस्मा देते थे (यू. ३ : ५, २६; ४ : १, २—देखिए "यूहन्ना रचित सुसमाचार की टीका", रॉबिन्सन)। त्रिएक सूत्र नया नियम में केवल इस स्थल पर है। तुलना कीजिए २ कुर. १३ : १३। इस स्थल में कलीसिया की प्रथा वर्णित है। नया नियम में यीशु मसीह या प्रभु यीशु के नाम बपतिस्मा लेने का वर्णन है (जैसे प्रे. २ : ३८; ८ : १६)। **२८ : २०**—१० : १, ७ और ८ में शिष्यों को स्वस्थ करने और प्रचार करने की आज्ञा दी गई। अब, अंत में, शिक्षा देने (सिखाने) का उल्लेख है। नव-विश्वासियों को शिक्षा देना महत्वपूर्ण था, अत: सुसमाचार के अंत में उस पर बल दिया गया है। "मैं ने तुम्हें आज्ञा दी है" शब्दों में यह विचार निहित है कि यीशु द्वितीय मूसा था, जिस ने परमेश्वर की अंतिम आज्ञाएं दीं (तुलना कीजिए ५ : १७-४८)। "युगांत पर्यन्त" (हिं. सं.) मत्ती का विशेष निजी कथन है, जो केवल उसके सुसमाचार में पाया जाता है। जब तक वर्तमान युग है, अर्थात् इस पार्थिव जीवन में, यीशु सदा सर्वदा हमारा साथ देता है।

अध्याय २

मरकुस रचित सुसमाचार

निर्देश—पाठकों को 'नया नियम की भूमिका' अध्याय नौ (पृष्ठ ७८-८३) और अध्याय ग्यारह (पृष्ठ ६४-१०५) का अध्ययन करना चाहिए। इन अध्यायों में सहदर्शी सुसमाचारों और मरकुस रचित सूसमाचार की सामान्य भूमिका प्रस्तुत की गई है।

सहदर्शी सूसमाचारों के संबंध में आज अनेक विचारधाराएं प्रचलित हैं जिनका वर्णन उपरोक्त पुस्तक में नहीं है। रूप-आलोचना ने इस तथ्य को प्रकट किया है कि सहदर्शी सुसमाचारों में ऐसे छोटे छोटे अंशों के संकलन हैं जो कुछ समय तक मौखिक परंपरा के रूप में प्रचलित रहे। (अधिक विद्वान इसको रूप-आलोचना का एक सकारात्मक परिणाम स्वीकार करते हैं।) इन अंशों के विविध रूपों की रचना कलीसिया के शिक्षा एवं प्रचार कार्य के द्वारा हुई। रूप-आलोचकों ने इन अंशों को विभिन्न वर्गों में विभाजित किया है और उन वर्गों को नाम भी दिए हैं। सहदर्शी सुसमाचारों की अधिक विषय-सामग्री इन वर्गों के अंशों से निर्मित है। आधुनिक अनुसंधान ने प्रकट किया है कि इन अंशों का संकलन इस प्रकार से हुआ कि साहित्य और धर्मविज्ञान की दृष्टि से ये पूर्ण संगठित लेख बन गए हैं। इन लेखों को हम सुसमाचार कहते हैं। इन लेखों के लेखकों के अपने अपने विशेष अभिप्राय थे। इस प्रकार का अनुसंधान करनेवाले संपादन-आलोचक कहलाते हैं। संपादन-आलोचकों का कथन है कि सुसमाचारों के लेखक संपादक मात्र नहीं बल्कि सर्जनात्मक रचयिता थे। ऐसी विचारधाराओं से प्रभावित होकर अनेक विद्वानों की मान्यता है कि मरकुस रचित सुसमाचार में एक विशेष स्थानीय कलीसिया का धर्मविज्ञान व्यक्त है। उनका यह भी विचार है कि उस कलीसिया ने इस सुसमाचार के अधिक वर्णनों और कथनों की रचना की। अतः इस में ऐतिहासिक तत्व कम मिलता है। इस कारण ऐतिहासिक यीशु नासरी के जीवन और कार्य का स्पष्ट चित्रण करना असंभव है।

अन्य विद्वानों की मान्यता है कि यद्यपि उपरोक्त विचारधाराएं कुछ अंशों में मानने योग्य हैं तथापि इस सुसमाचार के कथन और वर्णन अधिकतर विश्वसनीय हैं, अर्थात् वे 'ऐतिहासिक' हैं। ऐसे विद्वान यह मानने को तैयार हैं कि समाज का प्रभाव सुसमाचार के विवरण के विचारों और शब्दों पर पड़ा है, परंतु वे इस दावे से सहमत

नहीं हैं कि इस सुसमाचार के आधार पर ऐतिहासिक यीशु का चित्रण नहीं हो सकता। उनकी यह मान्यता है कि यद्यपि सुसमाचार के बहुत से ब्यौरे कालक्रमानुसार वर्णित नहीं हैं तो भी उस में यीशु के सेवाकार्य की साधारण रूपरेखा मिलती है। इसके विपरीत संपादन-आलोचकों की निश्चित मान्यता है कि इस सुसमाचार में कोई कालक्रम नहीं है वरन् उसका क्रम धर्मविज्ञान-संबंधी सिद्धांतों के अनुसार है।

यह टीका इस दृष्टिकोण से लिखी गई है कि हमें विश्वास है कि इस सुसमाचार के द्वारा हम ऐतिहासिक यीशु का परिचय प्राप्त कर सकते हैं। निस्संदेह यह सुसमाचार उस समय लिखा गया जब सुसमाचार का बहुत प्रसार हो चुका था, और अधिकांश ख्रिस्ती 'ऐतिहासिक यीशु' को नहीं वरन् 'विश्वास के ख्रिस्त' को जानते थे। तो भी हमें यह निश्चय हो सकता है कि कलीसिया की परंपरा में, जिस पर यह सुसमाचार आधारित है, सामान्य रूप से यीशु के कार्यों और कथनों की स्मृति विश्वसनीय है। साथ ही यह मान्यता भी स्वीकार्य है कि रचयिता का मुख्य अभिप्राय इतिहास लिखना नहीं वरन् सुसमाचार को घोषित करना था। संभवतः इस सुसमाचार में वे घटनाएं तथा कथन सम्मिलित हैं जिनको कलीसिया महत्वपूर्ण समझती थी, परंतु न तो कलीसियाई परंपरा में इतनी अप्रामाणिक सामग्री मिलाई गई है, और न सुसमाचार के रचयिता ने इतनी अप्रामाणिक सामग्री जोड़ी है कि ऐतिहासिक यीशु का चित्रण न पहचान सकें। तीनों सहदर्शी सुसमाचारों की परस्पर तुलना करने से यह प्रकट है कि परंपरागत वर्णनों में परिवर्तन हुए, उदाहरणार्थ मत्त. ८ : २८-३४ और मर. ५ : १-२० की तुलना कीजिए। अतः संभाव्यतः ऐसे स्थलों में भी परिवर्तन हुए होंगे जहां किसी प्रकार की तुलना संभव नहीं है। फिर भी हम कह सकते हैं कि वह परंपरा जो हमको इस सुसमाचार के द्वारा संचारित की गई है अधिकतर विश्वासयोग्य है। इस में 'ऐतिहासिक' यीशु नासरी और पुनरुत्थित ख्रिस्त एक ही व्यक्ति है, और उस व्यक्ति का सीमित परंतु स्पष्ट चित्रण मिलता है।

सूचना : इस सुसमाचार के विषय में अधिक जानकारी के लिए देखिए : 'मरकुस रचित सुसमाचार - टीका', लेखक पादरी जेफ्री जे. पॉल, अनुवादक पादरी हेरी मिरचूलाल, मसीही आध्यात्मिक शिक्षामाला क्रमांक १६। इस टीका में उस टीका का संकेत है, 'पॉल टीका'।

मरकुस रचित सुसमाचार की रूपरेखा

१. **भूमिका १ : १-१३**
   (१) यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाला १ : १-८
   (२) यीशु का बपतिस्मा १ : ९-११
   (३) यीशु की परीक्षा १ : १२, १३

२. **गलील में सेवा तथा विरोध १ : १४-३ : ६**
   (१) गलील में सेवा १ : १४-४५
      (क) गलील में प्रचार १ : १४, ४५

(ख) पहले शिष्यों की आवाहन १ : १६-२०
(ग) कफरनहूम में अशुद्ध आत्मा का निकाला जाना १ : २१-२८
(घ) पतरस की सास को स्वस्थ करना १ : २९-३१
(च) बहुत लोगों को स्वस्थ करना १ : ३२-३४
(छ) कफरनहूम को छोड़ना, गलील में भ्रमण १ : ३५-३९
(ज) एक कोढ़ी को शुद्ध करना १ : ४०-४५

(२) शास्त्रियों का विरोध २ : १-३ : ६

(क) अर्धांगी को स्वस्थ करना २ : १-१२
(ख) लेवी का बुलाया जाना, पापियों तथा कर लेनेवालों के साथ भोजन करने का प्रश्न २ : १३-१७
(ग) उपवास का प्रश्न, कोरा कपड़ा, पुराना चर्मपात्र २ : १८-२२
(घ) सबत के दिन का प्रश्न २ : २३-२८
(च) सूखे हाथवाले मनुष्य को स्वस्थ करना (सबत के दिन) ३ : १-६

३. गलील में शिक्षा तथा कार्य ३ : ७—६ : १३

(१) जनसमूह के लिए यीशु का आकर्षण, बारह शिष्यों को आवाहन ३ : ७-१९ पू

(क) यीशु का आकर्षण, बहुत लोगों को स्वस्थ करना ३ : ७-१२
(ख) बारह शिष्यों का आवाहन ३ : १३-१९ पू

(२) यीशु पर अभियोग ३ : १९उ ३५

(क) यीशु के कुटुंबी, बालजबूल के विषय में कथन, तथा अन्य कथन ३ : १९- उ-३०
(ख) यीशु के सच्चे नातेदार ३ : ३१-३५

(३) दृष्टांतों के द्वारा शिक्षा ४ : १-३४

(क) बीज बोनेवाले का दृष्टांत ४ : १-९
(ख) दृष्टांतों का अभिप्राय ४ : १०-१२
(ग) बीज बोनेवाले के दृष्टांत की व्याख्या ४ : १३-२०
(घ) दृष्टांतों से संबंधित विविध कथन ४ : २१-२५
(च) उगते और बढ़ते हुए बीज का दृष्टांत ४ : २६-२९
(छ) राई के बीज का दृष्टांत ४ : ३०-३२
(ज) यीशु की शिक्षा में दृष्टांतों का स्थान ४ : ३३-३४

(४) आश्चर्यकर्मों का समूह ४ : ३५-५ : ४३

(क) आंधी को शांत करना ४ : ३५-४१

(ख) गिरासेन के अशुद्ध आत्मा-ग्रस्त को स्वस्थ करना ५ : १-२०

(ग) याईर की पुत्री और रक्तस्राव से पीड़ित स्त्री ५ : २१-४३

(५) नासरत में यीशु का अस्वीकरण, शिष्यों का भेजा जाना ६ : १-१३

(क) नासरत में यीशु का अस्वीकरण ६ : १-६

(ख) शिष्यों का भेजा जाना ६ : ७-१३

४. गलील से परे यीशु की सेवा ६ : १४—८ : २६

(१) यीशु के विषय में हेरोदेस का विचार, यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाले की मृत्यु ६ : १४-२९ (मत्त. १४ : १-१२; लू. ९ : ७ ९)

(२) अन्य आश्चर्यकर्म ६ : ३०-५६

(क) शिष्यों का लौटना, पांच सहस्र को भोजन कराना ६ : ३०-४४

(ख) यीशु का सागर पर चलना ६ : ४५-५२

(ग) गन्नेसरत में रोगियों को स्वस्थ करना ६ : ५३-५६

(३) परंपरा पालन का प्रश्न ७ : १-२३

(४) अतिरिक्त आश्चर्यकर्म ७ : २४—८ : २६

(क) सूरुफिनीकी स्त्री की बालिका को स्वस्थ करना ७ : २४-३०

(ख) बहरे और गूँगे को स्वस्थ करना ७ : ३१-३७

(ग) चार सहस्र को भोजन कराना ८ : १-१०

(घ) चिन्ह की मांग ८ : ११-१३

(च) फरीसियों और हेरोदेस का खमीर ८ : १४-२१

(छ) बैतसैदा में अंधे को दृष्टिदान ८ : २२-२६

५. यरूशलेम का मार्ग ८ : २७—१० : ५२

(१) यीशु का ख्रिस्त स्वीकृत होना और उसका दुःख-भोग ८ : २७—९ : २९

(क) कैसरिया फिलिप्पी में पतरस की स्वीकृति, और दुःखभोग तथा पुनरुत्थान की प्रथम भविष्यवाणी ८ : २७-३३

(ख) यीशु का अनुसरण करने का अर्थ ८ : ३४-९ : १

(ग) यीशु का रूपांतरण ९ : २-८

(घ) यीशु के जी उठने का अर्थ, एलिय्याह ९ : ९-१३

(च) अशुद्ध आत्मा-ग्रस्त बालक को स्वस्थ करना ९ : १४-२९

(२) गलील में भ्रमण ९ : ३०-५०

(क) दुःख भोग और पुनरुत्थान की द्वितीय भविष्यवाणी ९ : ३०-३२

(ख) वास्तविक बड़ापन ९ : ३३-३७

(ग) उदार विचार ९ : ३८-४१

(घ) दूसरों को फंसानेवालों के लिए चेतावनी ९ : ४२-५०

(३) यरूशलेम का मार्ग १० : १-५२

(क) तलाक का प्रश्न १० : १-१२
(ख) बालकों को आशीर्वाद १० : १३-१६
(ग) धनवान और शाश्वत जीवन १० : १७-२२
(घ) धन की जोखिम १० : २३-३१
(च) दुःखभोग और पुनरुत्थान की तीसरी भविष्यवाणी १० : ३२-३४
(छ) यूहन्ना और याकूब का निवेदन, महान कौन है १० : ३५-४५
(ज) अंधे बरतिमाई को दृष्टिदान १० : ४६-५२

६. यरूशलेम में ११ : १–१३ : ३७

(१) यरूशलेम में प्रवेश, प्रतीक और क्रिया के द्वारा शिक्षा ११ : १-२६

(क) यीशु का यरूशलेम में प्रवेश करना ११ : १-११
(ख) फल रहित अंजीर का पेड़ ११ : १२-१४
(ग) मंदिर से बिक्री करनेवालों का निष्कासन ११ : १५-१९
(घ) सूखे अंजीर के पेड़ से शिक्षा ११ : २०-२६

(२) यीशु विरोधियों को उत्तर देता है ११ : २७–१२ : ४४

(क) यीशु के अधिकार का प्रश्न ११ : २७-३३
(ख) दाख उद्यान का दृष्टांत १२ : १-१२
(ग) कैसर को कर १२ : १२-१७
(घ) पुनरुत्थान के संबंध में प्रश्न १२ : १८-२७
(च) प्रमुख आज्ञा १२ : २८-३४
(छ) मसीह, दाऊद का पुत्र १२ : ३४-३७ पू
(ज) शास्त्रियों के विरुद्ध चेतावनी १२ : ३७ उ-४०
(झ) दरिद्र विधवा की दमड़ी १२ : ४१-४४

(३) प्रकाशनात्मक प्रवचन १३ : १-३७

(क) मंदिर के विनाश की भविष्यवाणी १३ : २४
(ख) प्रभु के आगमन के चिन्ह १३ : ५८
(ग) विपत्तियों का प्रारंभ १३ : ९-१३
(घ) उजाड़नेवाली घृणित वस्तु १३ : १४-२३
(च) मानव पुत्र का आगमन १३ : २४-२७
(छ) जागते रहने के संबंध में कथन तथा दृष्टांत १३ : २८-३७

७. क्रूस तथा पुनरुत्थान का वर्णन १४ : १–१६ : २०

(१) क्रूस से पूर्व की घटनाएं १४ : १-५२

(क) यीशु की हत्या के लिए षडयंत्र १४ : १, २

(ख) बैतनय्याह में सुगंधित द्रव्य द्वारा अभ्यंजन १४ : ३-९
(ग) यहूदा का विश्वासघात १४ : १०, ११
(घ) फसह की तैयारी १४ : १२-१६
(च) यहूदा के विश्वासघात का संकेत १४ : १७-२१
(छ) अंतिम भोज १४ : २२-२५
(ज) शिष्यों की निर्बलता और पतरस के अस्वीकरण की भविष्यवाणी १४ : २६-३१
(झ) गतसमने में प्राणपीड़ा १४ : ३२-४२
(ट) यीशु का बंदी होना १४ : ४३-५२

(२) यीशु का विचार, क्रूसीकरण और दफन १४ : ५३—१५ : ४६
(क) महापुरोहित के संमुख यीशु का विचार १४ : ५३-६५
(ख) पतरस की अस्वीकृति १४ : ६६-७२
(ग) पिलातुस के संमुख यीशु का विचार १५ : १-१५
(घ) सैनिकों द्वारा उपहास १५ : १६-२०
(च) क्रूस १५ : २१-३२
(छ) यीशु की मृत्यु १५ : ३३-४१
(ज) यीशु का दफन १५ : ४२-४७

(३) पुनरुत्थान १६ : १-२०
(क) स्त्रियां, रिक्त कबर, और स्वर्गदूत १६ : १-८
(ख) परिशिष्ट : मरियम मगदलीनी, दो यात्रियों तथा ग्यारह शिष्यों को दर्शन । स्वर्गारोहण १६ : ९-२०

टीका

१. भूमिका १ : १-१३

(१) यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाला १ : १-८ (मत्त. ३ : १-६; लू. ३ : १-६)

१ : १ के संबंध में तीन मान्यताएं रखी जाती हैं : (क) यह इस समस्त सुसमाचार का शीर्षक है। (ख) वह पद २-१३ (अथवा २-८) की भूमिका है। (ग) यह केवल पद २ और ३ के उद्धरणों से संबंधित है (हिं. सं. में यह तीसरी मान्यता स्पष्ट व्यक्त की गई है)। 'आरंभ' शब्द के कारण हमको उपरोक्त मान्यताओं में से (ख) सही प्रतीत होती है। यहां 'सुसमाचार' शब्द का अर्थ एक लेख नहीं वरन् ख्रिस्तीय शुभ संदेश है। अनेक प्राचीन हस्तलेखों में 'परमेश्वर के पुत्र' शब्द नहीं मिलते, तो भी अधिक टीकाकार उनको मूल शब्द मानते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि यीशु का परमेश्वर का पुत्र होना इस सुसमाचार का एक विशेष विचार है, देखिए १ : ११; ३ : ११; ८ : ३८; ९ : ७; १२ : ६; १३ : ३२; १४ : ३६, ६१; १५ : ३९। 'यीशु', जो यहूदी लोगों

में साधारण नाम था, उसका व्यक्तिगत नाम था, परंतु 'ख्रिस्त' (मसीह) एक पदवी थी, जिसका शाब्दिक अर्थ है, अभिषिक्त। 'ख्रिस्त' शब्द यूनानी भाषा से, और 'मसीह' शब्द इब्रानी भाषा से है। दोनों का एक ही अर्थ है। यीशु के काल से पहले ही यहूदी लोग बहुत समय से बड़े उत्साह के साथ एक विशेष अभिषिक्त व्यक्ति की प्रतीक्षा करते रहे थे। वे मानते थे कि वह हमको, हमारे देश को और हमारे जाति को छुटकारा देगा। हम आगे चलकर देखेंगे कि ख्रिस्त कौन और कैसा है और कि ख्रिस्त के संबंध में यहूदियों के विचार और यीशु के विचार में बहुत अंतर था।

यीशु के **परमेश्वर का पुत्र** होने का अर्थ समझने के लिए पृष्ठभूमि पुराना नियम है। इस्राएल जाति (हो. ११ : १; नि. ४ : २२) और राजा (२ श. ७ : १४; भ. २ : ७; ८९ : २६) परमेश्वर के पुत्र कहे गए हैं। उनके और परमेश्वर के परस्पर संबंध में विशेष तत्व आज्ञापालन और प्रतिनिधित्व थे। इस सुसमाचार में 'परमेश्वर का पुत्र' शब्दों का अर्थ अधिक सार्थक और गंभीर है। वह एक दिव्य व्यक्ति था जो मानव रूप में प्रकट हुआ। उस में परमेश्वर की सामर्थ्य थी, जिस से वह लोगों को स्वास्थ्य और उद्धार प्रदान करता था। कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता कि यीशु के काल से पहले यहूदी लोग ख्रिस्त और परमेश्वर-पुत्र को एक ही व्यक्ति मानते थे। यीशु में वे एक हो गए।

यद्यपि **१ : २** में केवल यशायाह का उल्लेख है तथापि इस पद में उद्धरण यशायाह से नहीं वरन् मलाकी ३ : १ से है। इस उद्धरण के पहले भाग में नि. २३ : २० का मिश्रण भी है। **१ : ३** में उद्धरण यशायाह ४० : ३ से है। अनेक विद्वानों की मान्यता है कि मलाकी का उद्धरण मूल हस्तलेख में नहीं था। वह मत्ती और लूका में इस स्थल पर नहीं पाया जाता, परंतु मरकुस की सब प्रतियों में है। मलाकी ३ : १ शब्दशः मत्त. ११ : १० और लू. ७ : २७ में भी उद्धृत है, जहां प्रसंग भिन्न है। मत्ती और लूका दोनों बताते हैं कि यूहन्ना जंगल (निर्जन प्रदेश) में प्रचार करता था (मत्त. ३ : १, ६; लू. ३ : २, ३)। मलाकी में दूत यहोवा (परमेश्वर) के आगे जाकर शुद्ध करने का तथा न्याय का काम करता है। वह इस्राएल की आराधना को शुद्ध करता है। यशायाह ४० : ३ में परमेश्वर का शब्द है जो बाबुल में यहूदी निर्वासित लोगों को सुनाई देता है। मूल प्रसंग की उपेक्षा करके ये दो उद्धरण यूहन्ना पर लागू किए गए हैं। पुराना नियम में 'प्रभु' परमेश्वर है, परंतु यहां वह यीशु है। इन बातों का अर्थ यह है कि यूहन्ना यीशु से पहले आया ताकि उसके प्रचार और उसके कार्य के लिए तैयारी करे। इस प्रकार से पुराना नियम का मुख्य अभिप्राय पूर्ण हो गया। 'जंगल' शब्द का अर्थ भौगोलिक मात्र नहीं है, उस में मानव की उजाड़ आत्मिक परिस्थिति की ओर भी संकेत है। **१ : ४**— बपतिस्मा देने में यूहन्ना ने एक नई प्रथा को आरंभ नहीं किया, यहूदी लोग उन विजातीय लोगों को बपतिस्मा देते थे जो नव-यहूदी होना चाहते थे। परंतु यूहन्ना यहूदियों को बपतिस्मा देता था। जल शुद्धिकरण का एक सार्वभौमिक प्रतीक है। यूहन्ना के बप-

तिस्मा में नैतिक तत्व महत्वपूर्ण था। "मनफिराव" यूनानी मूल शब्द का शाब्दिक अर्थ है (हिं. सं. हृदय-परिवर्तन), परंतु इसकी पृष्ठभूमि में पुराना नियम का एक शब्द (शूम) है जिसका अर्थ 'मुड़ना' है, अर्थात् जिस दिशा में जा रहे हो उसको बदलकर विपरीत दिशा में चलने लग जाना। ऐसा करना एक आमूल जीवन-परिवर्तन का अनुभव करना है। पुराना नियम से यहूदी लोग इस विचार से भली भांति परिचित थे। यहूदियों की मान्यता थी कि पापों की क्षमा हृदय-परिवर्तन पर निर्भर है, परंतु यह मान्यता विशेष रूप से एक मौलिक ख्रिस्तीय सिद्धांत है। 'क्षमा' के यूनानी मूल शब्द का अर्थ है, छोड़ देना। यूहन्ना आनेवाले ख्रिस्त के लिये तैयारी कर रहा था, जिसके द्वारा पूर्ण क्षमा संभव हुई।

'सब रहनेवाले' शब्दों में अतिशयोक्ति है परंतु अनुचित नहीं है (१ : ५)। इसका अर्थ यह है कि यह एक बहुत बड़ा आंदोलन था। **१ : ६—ऊंट के रोम** का वस्त्र बहुत खुरखुरा होता है। वह मानो तपस्या का प्रतीक है। २ राजा के अनुसार एलिय्याह चमड़े का पटुका कमर में बांधता था। लै. ११ : २२ के अनुसार टिड्डियां खाना अनुमत था। यूहन्ना के प्रचार का वर्णन बहुत संक्षेप में है। इसका अधिक विस्तृत वर्णन मत्त. ३ : ७-१० और लू. ३ : ७-९, १७ में पाया जाता है। **१ : ७** क्या 'मेरे बाद वह आनेवाला है' शब्दों में यीशु की ओर स्पष्ट संकेत है? संभव है कि यूहन्ना जानता था कि एक आनेवाला है, परन्तु यह नहीं जानता था कि वह कौन है (तुलना कीजिए लू. ७ : १८-२०)। मूलतः परमेश्वर ही शक्तिमान है। यूहन्ना इतना जानता था कि यह आनेवाला पुरुष परमेश्वर की सामर्थ्य सहित आएगा। **१ : ८** मत्ती और लूका में यह कथन एक ऐसे अंश में है जो Q से उद्धृत है। इस अंश में मत्ती और लूका ने लिखा है कि "वह तुम्हें पवित्र आत्मा और आग से बपतिस्मा देगा"। अनेक विद्वानों की यह मान्यता है कि यूहन्ना ने कहा कि "वह तुम्हें आग से बपतिस्मा देगा", और कि "आग" का अर्थ न्याय-संबंधी आग है, जिसका परिणाम विनाश है। मत्ती और लूका में इस से अगले पद में उस आग का उल्लेख है "जो बुझने की नहीं", जिस में भूसा (पापमय जीवन) नष्ट होता है। इस मान्यता के अनुसार कालांतर में ख्रिस्तियों ने इस कथन में यह व्याख्या की बात जोड़ी कि वह पवित्र आत्मा की आग है। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि संभाव्यतः यूहन्ना का कथन ऐसा था जैसा मरकुस में लिखा है, और परंपरा में इसकी यह व्याख्या हुई कि पवित्र आत्मा का बपतिस्मा पवित्र करनेवाली आग के समान है। पवित्र आत्मा का उल्लेख मरकुस और Q में है, परन्तु आग का उल्लेख केवल Q में है। यदि यह विचार ठीक है तो इस कथन का अर्थ यह है कि यीशु के द्वारा लोग पवित्र आत्मा के प्रभाव से पवित्र किए जाएंगे। यूहन्ना के जल के बपतिस्मे से एक नैतिक परिवर्तन उत्पन्न होता था। यीशु द्वारा पवित्र आत्मा का बपतिस्मा इस से अधिक प्रभावशाली है। बपतिस्मे में मौलिक तत्व पवित्रीकरण है, अतः ख्रिस्तीय बपतिस्मा और पवित्र आत्मा में सदा एक गहरा संबंध माना गया है।

(२) यीशु का बपतिस्मा १ : ९-११

तीनों सुसमाचारों के वर्णनों में थोड़ा ही अंतर है, जिस पर पाठकों को ध्यान देना चाहिए। मत्ती क्रियाओं को मध्यम पुरुष से अन्य पुरुष में परिवर्तित करता है। केवल मत्ती में ही वर्णित है कि यूहन्ना आपत्ति करता है (मत्त. ३ : १४, १५)। जिस समय मत्ती का सुसमाचार लिखा गया उस समय यह प्रश्न उठा था कि यीशु को हृदय-परिवर्तन का बपतिस्मा लेने की क्या आवश्यकता थी ? यीशु को स्वयं हृदय-परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं थी। उसके बपतिस्मे में संभाव्यतः दो मुख्य तत्व हैं : (क) अपने सेवाकार्य के लिए आत्मसमर्पण। (ख) पापी लोगों के साथ यीशु का एकीकरण। इन बातों का स्पष्ट उल्लेख नहीं है, अतः अनेक टीकाकार (विशेषकर रूप-आलोचक और संपादन-आलोचक) कहते हैं कि वे अनुमान मात्र हैं और विश्वासयोग्य नहीं हैं, परंतु हमारी समझ में ये तर्कसंगत अनुमान हैं। ख्रिस्तीय परंपरा में कबूतर पवित्र आत्मा का प्रतीक बन गया। संभाव्यतः इस विचार की पृष्ठभूमि उ. १ : २ है : 'परमेश्वर का आत्मा जल के ऊपर मंडलाता था', मानो वह एक पक्षी के समान था। आकाशवाणी में भ. २ : ७ और यश. ४२ : १ का मिश्रण है, परन्तु ये शब्दशः किसी अनुवाद के अनुसार नहीं हैं। मरकुस के अनुसार ये शब्द यीशु से कहे गए। इस प्रकार से यीशु को निश्चय दिलाया गया कि यहूदियों के दो विचार, अर्थात् परमेश्वर-पुत्र, और यहोवा का दुःखी दास, उसी में पूरे हो गए। यहूदी इनको एक नहीं मानते थे, परन्तु यीशु में वे एक हो गए। संभाव्यतः यीशु ही था जिसने सब से पहले इस तथ्य को पहचाना। यहूदी मानते थे कि भ. २ में आनेवाले ख्रिस्त का वर्णन है, परन्तु यश. ४२ : १ के संबंध में उनकी ऐसी मान्यता नहीं थी। 'प्रिय' का मूल यूनानी शब्द 'एकलौता' के अर्थ में भी प्रयुक्त होता था। यद्यपि यीशु परमेश्वर-पुत्र था तथापि उस ने मानव के निमित्त दुःखी दास विषयक यशायाह के कथन पूरे किए (यश. ४२ : १-४, ४९ : १-६; ५० : ४-९; ५२ : १३–५३ : १२)।

(३) यीशु की परीक्षा १ : १२, १३ (मत्त. ४ : १-११, लू. ४ : १-१३)

मरकुस और मत्ती में इस अंश में और पिछले अंश में गहरा संबंध है, परन्तु लूका उनके बीच में यीशु की वंशावली को जोड़ देता है। 'तुरंत' शब्द का प्रयोग मरकुस की शैली की एक विशेषता है, जिसका शाब्दिक अर्थ अधिकतर नहीं लेना चाहिए, परन्तु कदाचित इस स्थल में वास्तव में अर्थ यह है कि यीशु की परीक्षा उसके बपतिस्मे के पश्चात् ही हुई। 'भेजा' के यूनानी मूल शब्द में बलपूर्वक भेजने का विचार निहित है, पवित्र आत्मा ने उसे 'जाने को बाध्य किया' (हिं. सं.)। यीशु का जाना परमेश्वर की इच्छानुसार था। यहां 'जंगल की ओर' शब्दों में यीशु की परीक्षा की परिस्थिति की ओर संकेत है। मरकुस का वर्णन अत्यंत संक्षिप्त है, हम नहीं जानते कि वह Q (कूयः अर्थात् मत्ती और लूका के वे वर्णन जो मरकुस में नहीं हैं देखिए 'भूमिका' पृष्ठ ८१-८२) के वर्णन से परिचित था अथवा नहीं। ध्यान दीजिए कि इस स्थल में मरकुस यीशु के उपवास करने का उल्लेख भी नहीं करता, परन्तु मत्ती तथा लूका में यह वर्णित है। धर्मशास्त्र में

चालीस की संख्या को विशेष स्थान प्राप्त है (नि. ३४ : २८, मूसा का, और १ रा. १९ : ८, एलिय्याह का उपवास करना)। हम इसको एक परंपरागत संख्या कह सकते हैं। 'शैतान' का शाब्दिक अर्थ 'विरोधी' है। यह एक इब्रानी शब्द है। यीशु की परीक्षा वास्तविक थी, काल्पनिक नहीं, उस से उसकी यथार्थ मानवता प्रकट होती है। तुलना कीजिए इब्रा. ४ : १५; ५ : ८। केवल मरकुस वन पशुओं का उल्लेख करता है, जिस से यीशु के अकेलापन पर बल दिया जाता है। इनके संबंध में दो विचार प्रस्तुत किए गए हैं, (क) कि वन पशु शैतान के सहायक माने जाते थे (जिसके लिए दोनों नियमों के अंतरिम काल के यहूदी साहित्य में कुछ साक्षी मिलती है) और (ख) कि उन्हों ने यीशु को मित्रता दिखाई। परन्तु ये विचार अनुमान मात्र हैं। इस वर्णन में महत्वपूर्ण बात यह है कि यीशु के बपतिस्मे के पश्चात् ही, जो संभाव्यतः एक गहरा और सार्थक अनुभव था, उसकी परीक्षा हुई। हमारे आत्मिक जीवन में भी ऐसे अनुभव होते हैं।

२. गलील में सेवा तथा विरोध १ : १४-३ : ६

(१) गलील में सेवा १ : १४-४५

(क) गलील में प्रचार १ : १४-१५

(मत्त. ४ : १२-१७; लू. ४ : १६-२०)

यह स्पष्ट है कि मरकुस में हमें ख्रिस्तीय परंपरा के चुने हुए अंश मिलते हैं। संभवतः यीशु की परीक्षा और उसके गलील में सेवाकार्य के अंतरिम काल में काफी समय बीत गया, जिस में, यूहन्ना रचित सुसमाचार की प्रारंभिक बातों के अनुसार, यरूशलेम में सेवाकार्य हुआ। यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाले की मृत्यु का वर्णन ६ : १४-२९ में पाया जाता है। १ : १४ में से 'के राज्य' शब्दों को काटना चाहिए, क्योंकि वे सर्वश्रेष्ठ हस्तलेखों में नहीं हैं। यीशु 'परमेश्वर के सुसमाचार का प्रचार करने लगा' (हिं. सं.)। संभाव्यतः 'परमेश्वर का सुसमाचार' का अर्थ वह सुसमाचार है जो परमेश्वर की ओर से है, अर्थात् वह संदेश जो यीशु के द्वारा दिया गया है। १ : १५ में उस संदेश का संक्षेप प्रस्तुत है। अनेक आलोचकों की मान्यता है कि इस पद के शब्द सुसमाचार के रचयिता के काल के हैं, क्योंकि सुसमाचार में यीशु की मृत्यु, पुनरुत्थान और स्वर्गारोहण का वर्णन भी सम्मिलित है। परंतु यदि हम 'सुसमाचार' को उसके शाब्दिक अर्थों में लें तो यह शब्द यीशु के उपदेश पर लागू किया जा सकता है। 'समय' यूनानी शब्द 'केरॉस' का अनुवाद है, जिसमें विशेष निर्धारित और निर्णायक समय का अर्थ निहित है। यहां इसका अर्थ यह है कि वह समय आया है जब परमेश्वर की ओर से इस्राएल को दी गई प्रतिज्ञाएं ख्रिस्त द्वारा पूरी होंगी।

यहूदी लोग मानते रहे कि परमेश्वर राज्य करता रहा है, परन्तु उसका राज्य गुप्त है, बहुत लोग परमेश्वर के अधिकार को नहीं मानते। यीशु मानव हृदय में परमेश्वर का राज्य स्थापित करने आया, और वे लोग जो सच्चा विश्वास करते हैं उस राज्य में प्रवेश करते हैं। राज्य में प्रवेश करने का अर्थ यह है कि परमेश्वर की इच्छा उनके

जीवनों में पूरी होने लगती है। फिर भी उस राज्य की परिपूर्णता भविष्य में है। इस विषय पर अधिक जानकारी के लिए देखिए पाल टीका पृष्ठ ६१-६५। 'मन फिराओ' का स्पष्टीकरण पद ४ की व्याख्या में किया गया है।

(ख) पहले शिष्यों को आवाहन १ : १६-२०
(मत्त. ४ : १८-२०; तुलना लू. ५ : १-११)

संभाव्यत: यह अंश पतरस के संस्मरण पर आधारित है। इसका वर्तमान संक्षिप्त रूप प्रचार करने और शिक्षा देने में रचा गया होगा। यू. १ : ३५-४२ में संकेत है कि पतरस और अंद्रियास ने इस से पहले यीशु का परिचय प्राप्त किया था। यीशु के पीछे चलना उसके अनुयायी बनने के लिए साधारण मुहाविरा है। बार बार यीशु लोगों को आवाहन देता था कि वे उसके पीछे हो लें, उदाहरणार्थ मर. ८ : ३४। स्वाभाविक रूप से वह उन से कहता है कि 'तुमको मनुष्यों के मछवे बनाऊंगा'। उनका काम मछलियां पकड़ना था, परन्तु अब से लेकर वे मनुष्यों को परमेश्वर के राज्य में प्रवेश कराएंगे। इसकी तुलना मत्त. १३ : ४७-५० से कीजिए। 'छोड़कर' शब्द पद १८ और २० में सार्थक है। इन मनुष्यों का जीवन-परिवर्तन आरंभ हो गया था, जिस में प्रारंभिक बात यह थी कि उन्हों ने अपने पिछले जीवन को छोड़ा। जबदी के पास मजदूर थे, जिस से पता चलता है कि वह दरिद्र नहीं था। यह विचारनीय तथ्य है कि यीशु ने अपने विशेष शिष्यों को धर्म के अधिकारियों और अगुओं में से नहीं वरन् साधारण जनता में से चुन लिया।

(ग) कफरनहूम में अशुद्ध आत्मा का निकाला जाना १ : २१-२८
(लू. ४ : ३१-३७)

मरकुस के **१ : २४ और २५** पद लूका में शब्दश:उद्धृत हैं। यह मरकुस में कफरनहूम का पहला उल्लेख है। कफरनहूम नगर व्यापार का एक केंद्र था। यह दमिश्क को जानेवाले राजपथ पर स्थित था। **सबत** यहूदियों के सप्ताह का सातवां दिन, अर्थात् शनिवार था। इसका अर्थ विश्राम दिन है, जब विशेष आराधनाएं भी होती थीं। यहूदियों के सभा के घर ऐसे प्रत्येक स्थान में हो सकते थे जहां कम से कम दस पुरुष आराधना के लिए एकत्र हो सकते थे। ये उन सब देशों में भी पाए जाते थे जहां यहूदी लोग प्रवासी थे। इन में और मंदिर में भेद करना चाहिए। यहूदियों का केवल एक मंदिर था जो यरूशलेम में था। उस में बलिदान चढ़ाए जाते थे और याजक और लेवी सेवा करते थे। **सभा के घरों में बलि** चढ़ाने का प्रबंध नहीं था। याजक सभाघर की आराधनाओं का प्रबंध नहीं करते थे। साधारण लोग उन आराधनाओं में भाग लेते थे। सभा के घर (आराधनालय) की अधिक जानकारी के लिए देखिए 'नया नियम की पृष्ठभूमि' पृष्ठ १०७-११०। आराधनालय का सरदार किसी को उपदेश देने के लिए निमंत्रित कर सकता था। शास्त्रियों के विषय में 'नया नियम की पृष्ठभूमि' पृष्ठ ११९-१२२ को देखिए। शास्त्री यहूदियों की व्यवस्था की सब बातों में निपुण थे। वे 'रब्बी'

कहलाते थे, और नया नियम में यीशु को भी कहीं कहीं रब्बी कहा गया है, उदाहरणार्थ मर: ९ : ५। यीशु को शास्त्री का प्रशिक्षण प्राप्त नहीं था, परन्तु वह भली भांति धर्म-शास्त्र से परिचित था। लोगों ने पहचाना कि उसकी शिक्षा में एक ऐसा अधिकार था जो शास्त्रियों की शिक्षा में नहीं था। शास्त्री व्यवस्था की सूक्ष्म बातों पर वाद-विवाद करते थे, यीशु परमेश्वर की ओर से बोलता था। यीशु में और शास्त्रियों में यह मौलिक अंतर था। इस सुसमाचार में यीशु की शिक्षा पर बहुत बल दिया गया है (२ : १३; ४ : १; ६ : २, ६, ३४; आदि, कुल सोलह बार), परन्तु इस शिक्षा के ब्यौरों का विस्तृत विवरण नहीं मिलता।

वर्तमान भारत के समान उस काल के यहूदी आत्माओं, भूतों आदि को मानते थे। सुसमाचारों में महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि उन में सब लौकिक और अलौकिक प्राणियों पर यीशु का अधिकार स्पष्ट प्रकट किया गया है। नया नियम में अपदूतों, दानवों आदि के लिए 'अशुद्ध आत्मा' या 'दुष्टात्मा' ' साधारण यहूदी मुहाविरा था। कदाचित रीति के अनुसार यह मनुष्य अशुद्ध था। १ : २४ में सर्वनाम और क्रियाएं बहुवचन हैं, कदाचित इस कारण कि उस मनुष्य का व्यक्तित्व विभाजित था। 'परमेश्वर का पवित्र जन' आनेवाले ख्रिस्त के लिए कोई विशेष पदवी नहीं थी। कदाचित मरकुस इन शब्दों को ख्रिस्त के लिये पदवी समझता था। यीशु ने झाड़ फूंक की पद्धति का प्रयोग नहीं किया, परन्तु उस आत्मा को स्पष्ट आज्ञा दी। सुसमाचार की एक विशेषता यह है कि उसके अनुसार यीशु ने बार बार उसके आश्चर्यकर्मों के संबंध में मौन रहने का आदेश दिया। यीशु ने यह आदेश दुष्टात्माओं (१ : २५, ३४; ३ : १२) और लोगों (१ : ४५; ५ : ४३; ७ : ३६; ८ : २६) और शिष्यों को (८ : ३०; ९ : ९) दिया। मौन रहने का आदेश देने के तथ्य को "मसीह विषयक रहस्य" का नाम दिया गया है। अनेक विद्वानों की मान्यता है कि यीशु ने स्वयं ऐसा आदेश नहीं दिया, वरन् यह लेखक की सूझ है। परन्तु इस तथ्य को अस्वीकार करने का कोई तर्कसंगत कारण नहीं है कि ऐतिहासिक यीशु वास्तव में अपने ख्रिस्त होने को गुप्त रखना चाहता था। निस्संदेह यीशु ने बहुत लोगों में से 'दुष्टआत्माएं निकालीं'। वर्तमान जानकारी की दृष्टि से ये लोग मनोविकृत थे (१ : २६)। सुसमाचारों में बहुधा इस बात का उल्लेख है कि लोग यीशु के कार्यों और उसकी शिक्षा से आश्चर्य चकित हुए। यहां ऐसा प्रतीत होता है कि यह कार्य और उपदेश भी दोनों आश्चर्य के कारण थे। संभाव्यत: 'अधिकार के साथ' शब्द अशुद्ध आत्माओं को आज्ञा देने से नहीं वरन् उपदेश देने से संबंधित है, जैसे 'धर्म ग्रंथ' अनुवाद में है : "यह क्या है ? नई शिक्षा, और वह भी अधिकार के साथ"। यह वही बात है जो १ : २२ में भी है। मौन रहने के आदेश के होते हुए भी यीशु का यश प्रसारित होता गया।

(घ) पतरस की सास को स्वस्थ करना १ : २९-३१

(मत्ती ८ : १४, १५; लू. ४ : ३८, ३९)

यह एक सामर्थ के कार्य का वर्णन है जो संभाव्यत: पतरस का संस्मरण है।

यू. १ : ४४ के अनुसार अंद्रियास और पतरस बैतसैदा के थे। संभाव्यत: वे बैतसैदा के थे और कफरनहूम में भी उनका घर था। ऐसा प्रतीत होता है कि वह घर गलील में यीशु के कार्य का केंद्र बन गया। १ कुर. ९ : ५ में उल्लेख है कि पतरस के पत्नी थी। इस सामर्थ्य के कार्य में द्रष्टव्य बात यह है कि यीशु के स्पर्श और उसके शब्द से स्वास्थ्य-दान होता है, जिस से उसकी शक्ति और उसका अधिकार प्रकट होता है। 'सेवा टहल' का अर्थ संभाव्यत: यह है कि उस ने उनके लिए भोजन तैयार किया।

(च) बहुत लोगों को स्वस्थ करना १ : ३२-३४
(मत्त. ८ : १६, १७; लू. ४ : ४०, ४१)

यह घटना भी संभाव्यत: पतरस के संस्मरण से है। यह घटना एक दिन के अंत में है, जिसका आरंभ १ : २१ में है, मानो यह पूर्ण अंश यीशु के सेवाकाल का एक उदाहरण है। यीशु के पूर्ण सेवाकार्य का वर्णन उपलब्ध नहीं है। यह सब्त का दिन था। अत: लोग रोगियों को संध्या से पहले नहीं लाए। यहूदी लोग दिन का आरंभ सूर्यास्त से गिनते थे। सब्त का दिन सूर्यास्त होने पर पूरा हो गया। सब्त के दिन लोगों को स्वस्थ होने के लिए लाना अवैध था। संभाव्यत: 'सारा नगर' अत्युक्ति है परंतु स्वाभाविक कथन है। यद्यपि नया नियम में ऐसे लोगों को, जिनको हम रोगी कहते हैं, अनेक स्थलों पर अशुद्ध आत्मा ग्रसित कहा गया है तो भी यहां (१ : ३२ और ३४) अशुद्ध आत्मा ग्रसितों और रोगियों में भेद किया गया है। इस संक्षिप्त वर्णन से हमें ज्ञात होता है कि यीशु ने चंगाई के कार्यों में बहुत समय व्यय किया होगा।

(छ) कफरनहूम को छोड़ना, गलील में भ्रमण १ : ३५-३९
(लू. ४ : ४२, ४३)

इस सुसमाचार में केवल यहां, ६ : ४६ और १४ : ३२-४१ (गतसमने) में यीशु के प्रार्थना करने का वर्णन है। यीशु की प्रार्थना का सब से अधिक उल्लेख लूका में है, परंतु इस स्थल में लूका उसका उल्लेख नहीं करता, तो भी प्रसंग में यह निहित है कि **यीशु ने प्रार्थना की**। यीशु प्रार्थना करने की आवश्यकता अनुभव करता था, जिस से **उसकी मानवता प्रकट** होती है। इस में वह हमारा आदर्श भी है। शमौन के साथी संभाव्यतत: अन्द्रियास, यूहन्ना और याकूब थे। उन्होंने इस बात की चिंता नहीं की कि यीशु प्रार्थना करने के लिए अकेला रहना चाहता था और वे उसकी खोज में गए। "सब लोग" जो उसे ढूंढ़ रहे थे कफरनहूम के लोग थे। यीशु ने अपने उत्तर में यद्यपि इस बात पर बल दिया कि वह प्रचार का काम करना चाहता था, और यह प्रचार विशाल क्षेत्र में करना चाहता था, तो भी १ : ३९ में दुष्टात्माओं को निकालने का उल्लेख है। "मैं इसी लिए निकला हूं" का अर्थ यह है कि वह कफरनहूम से निकला ताकि अन्य स्थानों में जाकर प्रचार करे, अथवा यह कि वह परमेश्वर की ओर से भेजा गया, जैसे लू. ४ : ४३ में है। संभवत: दोनों अर्थ अभिप्रेत हैं, क्योंकि दोनों सच हैं। यह द्रष्टव्य है कि यीशु बराबर आराधनालयों में जाकर प्रचार करता था।

(ज) कोढ़ी को शुद्ध करना १ : ४०-४५
(मत्त. ८ : १-४; लू. ५ : १२-१६)

"घुटने टेककर" शब्द अनेक हस्तलेखों में नहीं हैं, परन्तु वे मत्ती और लूका में हैं, और संभाव्यत : मूल प्रति में थे। यहां 'शुद्ध कर सकता है" शब्दों का अर्थ रीति अनुसार शुद्ध करना नहीं है, वरन् स्वस्थ करना है। कोढ़ी के शब्दों से ज्ञात होता है कि उसे विश्वास था कि यीशु उसे स्वस्थ कर सकता था। लै. १३ से हमें विदित होता है कि यहूदियों में कोढ़ शब्द का अर्थ बहुत व्यापक था। इस शब्द में ऐसे रोग सम्मिलित थे जो कोढ़ नहीं हैं। अछूत होने के कारण कोढ़ियों की दशा अत्यंत दयनीय थी। दो चार हस्तलेखों में "तरस खाकर" के स्थान पर "क्रुद्ध होकर" है (हिं. सं. पद-टिप्पणी)। अधिकांश टीकाकार "क्रुद्ध होकर" ठीक मानते हैं क्योंकि यह असंभव प्रतीत होता है कि कोई लिपिक "तरस खाकर", को "क्रुद्ध होकर" में बदल दे। यह अधिक संभव है कि "क्रुद्ध होकर" के बदले "तरस खाकर" रखा गया हो। इसके अतिरिक्त मत्ती और लूका में दोनों ही भाव नहीं है, जिस से प्रतीत होता है कि मूल में "क्रुद्ध होकर" था। यदि "क्रुद्ध होकर" ठीक मान लिया जाए तो संभाव्यतः अर्थ यह है कि यीशु का क्रोध संसार की दुष्टता के प्रति था जिससे उस मनुष्य का दयनीय दशा हुई। स्वयं मानव होते हुए यीशु ने एक अछूत को स्पर्श करके बहुत साहस प्रकट किया। ऐसा करना निषिद्ध था। उन शब्दों में, जो कोढ़ी से कहे गए, सब मानव-जाति के लिए परमेश्वर का मूल अभिप्राय व्यक्त किया गया है, "मैं चाहता हूं तू शुद्ध हो जा"। मर. ७ : ३३; ८ : २२,(तुलना १० : १३) में यीशु के लोगों को स्पर्श करने, और ३ : १०; ५ : २७, २८, ३०, ३१; ६ : ५६ में लोगों के उसे स्पर्श करने का उल्लेख है।

१ : ४३ में "कड़ी चेतावनी देते हुए" (बुल्के) यूनानी शब्द का अर्थ ठीक व्यक्त करता है। एक अन्य संभव अर्थ हिं. सं. में पाया जाता है, "भावावेश में आकर"। संभव है कि "विदा किया" में भी कठोरता प्रकट की गई है (निकाल दिया) परन्तु यह अनिवार्य रूप से उस शब्द का अर्थ नहीं है। इन संकेतों से पता चलता है कि यीशु सच-मुच दुष्टता का सामना करते हुए भावावेश में आता था। १:४४ में "कुछ मत कहना" या मौन रहने के संबंध में १ : २५ की व्याख्या को देखिए। इस पद के शेष भाग से ज्ञात होता है कि विधि संबंधी बातों में यीशु मूसा की व्यवस्था के अनुसार आचरण करता था। "कि उन पर गवाही हो" के स्थान पर हिं. सं. अच्छा है, "उनके प्रमाण के लिए", अर्थात् इस तथ्य के प्रमाण के लिए कि वह स्वस्थ हो गया है। इस मनुष्य ने यीशु का कहना कि "कुछ मत कहना" न माना, और न मानने का परिणाम इस पद में व्यक्त है।

(२) शास्त्रियों का विरोध २ : १—३ : ६

इस खंड के पांच पृथक अंश हैं। प्रत्येक अंश में यीशु के प्रति शास्त्रियों या फरीसियों या दोनों का विरोध प्रकट किया गया है। विद्वानों की सामान्य मान्यता यह है कि न तो यह खंड न ये पृथक अंश कालक्रमानुसार हैं। संभाव्यतः यह खंड मौखिक

परंपरा में इस कारण से रचा गया कि उसके सब अंशों का एक मुख्य विषय है, अर्थात् यीशु के प्रति शत्रुता।

(क) अर्धांगी को स्वस्थ करना २ : १-१२—

(मत्त. ९ : १-८; लू. ५ : १७-२६)

रूप-आलोचकों ने इस तथ्य पर ध्यान दिया है कि यदि २ : ६-७ इस परिच्छेद में से काटे जाएं तो एक पूर्ण संबद्ध वर्णन रह जाता है। उनका दावा है कि २ : ६-१० किसी वाद-विवाद संबंधित वर्णन में से लिए गए और इस में मिलाए गए हैं, परंतु उनके तर्क प्रभावशाली नहीं हैं। यह असंभव नहीं है कि घटना और वाद-विवाद इसी प्रकार हुए। संभवतः परंपरा के संचारण में उसका शाब्दिक रूप परिवर्तित हुआ, परंतु हम मान सकते हैं कि इस स्वास्थ्य-दान के संबंध में क्षमा करने का प्रश्न उठा। मत्ती इस वर्णन को संक्षिप्त करता है, लूका शब्दों और शैली को परिवर्तित करता है।

इस अंश में और पिछले अंश में विशेष संबंध नहीं है। यह नहीं बताया गया है कि वे किस घर में थे। संभाव्यतः वह घर पतरस और अंद्रियास का था। छत ऐसी रही होगी जैसी भारत के बहुत घरों की होती है - उसे खोलना कठिन नहीं था। छत खोलने से लोगों का यह विश्वास प्रकट हो गया कि यीशु स्वस्थ करने के लिए समर्थ है। "उनका विश्वास" (२ : ५) शब्दों में उस अर्धांगी का विश्वास भी सम्मिलित है। यीशु के शब्दों से ज्ञात होता है कि उस ने उस अर्धांगी के पापों और उसके रोग में संबंध पहचाना। यीशु की यह मान्यता नहीं थी कि रोग रोगी के पाप के कारण ही होता है (यू. ९ : २, ३)। हम जानते हैं कि अनेक रोग मनः शारीरिक हैं - कदाचित यह ऐसा रोग था। २ : ६ में शास्त्रियों के विचार करने का उल्लेख है। संभवतः उन्हों ने अपने विचार व्यक्त भी किए। यहूदियों का विश्वास था कि पाप क्षमा करना परमेश्वर के ही अधिकार में था (नि. ३४ : ६-७; भ. १०३ : ३; १३० : ४; यश. ४३ : २५; ४४ : २२; ४८ : ९-११)। अतः शास्त्रियों के विचार अनुसार यीशु, मानव मात्र होते हुए, इस अधिकार को अपनाकर परमेश्वर की निंदा कर रहा था। सुसमाचारों में बहुधा इसका उल्लेख है कि यीशु अंतर्दृष्टि से जानता था कि मनुष्यों के मनों में क्या है। यह अंतर्दृष्टि अनिवार्य रूप से अलौकिक नहीं थी। सहज (२ : ९) यह कहना है कि "तेरे पाप क्षमा हुए", क्योंकि यह आवश्यक नहीं है कि ऐसे कथन का कोई दृश्य प्रभाव प्रकट हो। यह कहना कि "उठ. . .चल फिर" अर्थात तुझे स्वास्थ्य-दान दिया जाता है सरल नहीं है, कारण कि सब लोग देख सकते हैं कि स्वास्थ्य-दान हुआ है या नहीं। २ : १०, ११ में यह निहित है कि क्षमा और स्वास्थ्य-दान परस्पर संबद्ध हैं। कभी कभी क्षमा प्राप्त करने के परिणामस्वरूप स्वास्थ्य भी प्राप्त होता है। यहां मनुष्य का पुत्र यीशु स्वयं है। अनेक टीकाकारों का विचार यह है कि इस पद और २ : २८ में "मनुष्य का पुत्र" का अर्थ केवल साधारण रूप से मनुष्य है, यद्यपि संभाव्यतः मरकुस उसे इन पदों में भी यीशु की पदवी मानता था। परन्तु यदि यहां केवल "मनुष्य" अभिप्रेत है तो इस पद की सार्थकता नहीं रह जाती। निम्न लिखित टिप्पणी से ज्ञात होगा कि

"मनुष्य का पुत्र" के आरामी मूल शब्दों का मौलिक अर्थ "मानव-जाति" था, परन्तु अधिक संभव है कि यहां यह पदवी है।

टिप्पणी : मनुष्य का पुत्र

सुसमाचारों में यीशु विशेष रूप से स्वयं को मनुष्य का पुत्र (हिं. सं. मानव-पुत्र) कहता है। यह पदवी सुसमाचारों में लगभग सत्तर बार मिलती है। केवल यीशु ही इसका प्रयोग करता है। शेष नया नियम में वह केवल प्रे. ७ : ५३ में मिलती है, जहां स्तिफनुस इसका प्रयोग करता है। सुसमाचारों में उसका प्रयोग तीन प्रकार से किया गया है : (क) ऐसे स्थलों में जहां यीशु अपने वर्तमान कार्यों का उल्लेख करता है, जैसे मर. २ : २८; १४ : ४१; मत्त. ८ : २०; १२ : ३२ आदि। इस अर्थ में वह सह-दर्शी सुसमाचारों के चारों स्रोतों में पाया जाता है। (ख) ऐसे स्थलों में जहां यीशु के दुःखों और पुनरुत्थान का वर्णन है, जैसे मर. ८ : ३१; ९ : १२, ३१; १० : ३३, ४५; १४ : २१; लू. १७ : २५। (ग) युगांत-संबंधी स्थलों में, जहां यीशु की भावी महिमा और विजय का वर्णन है, जैसे मर. ८ : ३८; ९ : ९, १३, २६; १४ : ६२; मत्त. १२ : ४०; १९ : २८; लू. १७ : २२। यह भी चारों स्रोतों में पाया जाता है। साधारणतः रूप-आलोचक और संपादन-आलोचक इनके संबंध में यह मानते हैं कि केवल (ग) में यीशु के प्रामाणिक कथन मिलते हैं, (क) और (ख) के कथन कलीसिया द्वारा रचे गए हैं। उनकी यह मान्यता भी है कि (ग) के कथनों में यीशु अपना नहीं वरन् एक अन्य व्यक्ति का उल्लेख करता है, जिसे वह मानव-पुत्र कहता है। इन मान्यताओं का संतोषजनक प्रमाण नहीं मिलता, अतः हम मानते हैं कि उपरोक्त तीनों प्रकार से यीशु ने स्वयं इस पदवी को अपनाया; ये कथन "समुदाय की रचना" नहीं हैं, जैसे उक्त आलोचकों का विचार है।

इस पदवी की पृष्ठभूमि दा. ७ : १३ में, "मनुष्य के संतान सा कोई आकाश के बादलों समेत आ रहा था", प्रथम हनोक (ईथियोपीय) के ३७-७१ अध्यायों में, जो "हनोक के दृष्टांत" कहलाते हैं और लगभग ई. पू. १६३-६३ में लिखे गए, और द्वितीय (चतुर्थ) एज्रा में जो पहली शताब्दी ईसवी का एक प्रकाशन ग्रंथ है, मिलती है। "प्रथम हनोक" और "द्वितीय एज्रा" पुस्तकों का वर्णन "नया नियम की पृष्ठभूमि" पृष्ठ १५८-१५९ और १४० में है। इन लेखों में मनुष्य का पुत्र आनेवाला ख्रिस्त है। दानिय्येल ७ : १३ और १८ को साथ मिलाने से पता चलता है कि उस पुस्तक में मानव-पुत्र न केवल एक व्यक्ति वरन् एक समुदाय भी है, अतः अनेक विद्वानों की मान्यता है कि यीशु का भी अभिप्राय यह था कि इस पदवी के द्वारा वह न केवल अपनी वरन् कलीसिया की ओर भी संकेत करे।

उपरोक्त पुस्तकों में मानव-पुत्र एक अलौकिक प्राणी है। अतः लोगों का साधारण विचार कि, "परमेश्वर के पुत्र" की विषमता में, इस पदवी से यीशु की मानवता व्यक्त की गई है ठीक नहीं है। इसके विपरीत मानो गुप्त रूप से यीशु ने स्वयं को मानव-पुत्र

कहकर ख्रिस्त होने का दावा किया। वे विद्वान जिनकी यह मान्यता है कि वास्तव में यीशु ने स्वयं इस पदवी का प्रयोग किया यह भी मानते हैं कि यीशु ने ही मानव-पुत्र और परमेश्वर के दुःखी दास (यश. ४२, ४९ आदि अध्याय) को एकीकृत किया, उदाहरणार्थ मर. १० : ४५ में। "मानव पुत्र" के मूल शब्द आरामी हैं, और आरामी भाषा में वे एक मुहाविरा हैं जिनका अर्थ है, "मनुष्य"। परन्तु उपरोक्त लेखों और नया नियम में इन शब्दों का विशेष अर्थ है। नया नियम में इस पदवी के भिन्न पक्ष हैं जो व्याख्या में प्रकट किए गए हैं।

इस पदवी पर देखिए पॉल टीका पृष्ठ ५८-६१, बाइबल ज्ञान कोश पृष्ठ ३७२-३७३।

(ख) लेवी का बुलाया जाना। पापियों तथा कर लेनेवालों के साथ भोजन करने का प्रश्न २ : १३-१७

(मत्त. ९ : ९-१७; लू. ५ : २७-३२)

यह एक सूक्ति प्रधान कथा[१] (Pronouncement story) है। संभाव्यत: लेवी कफरनहूम की चुंगी पर छोटे पद का कर्मचारी था। यह नगर हेरोदेस अंतिपास के प्रदेश में स्थित था, परन्तु हेरोदेस राजा रोम के सम्राट के अधीन था। राजपथ पर स्थित होने के कारण कफरनहूम में काफ़ी यातायात था। लेवी पर यीशु के आकर्षण का प्रभाव हुआ। मत्ती के समांतर वर्णन में यह कर लेनेवाला मत्ती कहा गया है, परन्तु लूका में वह लेवी है। मर. ३ : १८ में, बारह शिष्यों की सूची में, मत्ती का नाम आता है, और एक याकूब "हलफई का पुत्र", कहा गया है, अत: २ : १४ में भी कई हस्तलेखों में लेवी के स्थान पर याकूब का नाम है। बारह शिष्यों की किसी भी सूची में लेवी का नाम नहीं है। संभाव्यत: मरकुस ने विश्वस्तता से वही लिखा जो उसके स्रोत में था, अर्थात् कि यीशु ने लेवी को, जो बारह विशेष शिष्यों में सम्मिलित नहीं था, व्यक्तिगत रूप से बुलाया। संभव है कि उस समय जब मरकुस अपना सुसमाचार संकलित कर रहा था लोग ठीक से बारह शिष्यों के नाम नहीं जानते थे। इस पर ३ : १३-१९ की व्याख्या को देखिए। २ : १५ में लेवी की प्रतिक्रिया की तुलना १ : १८-२० से कीजिए। मूल यूनानी में यह स्पष्ट नहीं है कि यह भोजन कहां हुआ। हिं. सं. में यह स्पष्ट किया गया है : "वह लेवी के घर में भोजन करने बैठे"। परन्तु अनेक टीकाकारों का विचार है कि यीशु ने यह भोजन दिया। लूका स्पष्ट लिखता है कि वह लेवी के घर में था, अत: संभाव्यत: यह ठीक है। "पापी" कदाचित शाब्दिक

---

[१] "सूक्ति-प्रधान कथा" रूप-आलोचना के पारिभाषिक शब्द है। यह एक ऐसी कथा है जिसमें वृत्तांत भाग बहुत संक्षिप्त है। इसका महत्वपूर्ण भाग एक सार्थक कथन या सूक्ति है, जिसको प्रस्तुत करने के कारण यह कथा परंपरा में सम्मिलित की गई।

अर्थों में नहीं है, परन्तु वे लोग अभिप्रेत हैं जो "देश के लोग" (इब्रानी "एम हा-आरेत्स") कहलाते थे। ये साधारण लोग थे जो अपने धंधों में लगे रहने के कारण व्यवस्था की मांगों को पूरा नहीं कर सकते थे। इन में वास्तविक पापी भी सम्मिलित थे। २ : १६ में "फरीसी दल के शास्त्री" (हिं. सं.) अधिक सही मूल पाठ के अनुसार है। इस से ज्ञात होता है कि सब शास्त्री फरीसी नहीं होते थे। २ : १६ संभाव्यत: एक प्रश्न है, "यह कर लेनेवालों और पापियों के साथ क्यों खाते पीते हैं ?" (हिं. सं.)।

फरीसियों का पहला उल्लेख दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व का है, परन्तु विद्वानों का विचार है कि उनका प्रारंभ उस से पहले हुआ। कदाचित उनका संबंध हसीदीम दल से था जो मकाबियों के काल में यहूदी धर्म के उत्साही संरक्षक थे। "फरीसी" का शाब्दिक अर्थ संभाव्यत: "पृथक किया हुआ" है। वे ऐसे धर्मनिष्ठ थे कि वे दूसरे लोगों से अलग रहते थे। ये न केवल लिखित व्यवस्था को, जिस में हमारा संपूर्ण पुराना नियम सम्मिलित है परन्तु अपनी मौखिक परंपरागत व्यवस्था को भी मानते थे। यह वह परंपरा है जो मर. ३ : ७ में "पुरनियों की रीति" (हि. प्र.) या "प्राचीन पुरुषों की परंपरा" (हिं. सं.) कही गई है। फरीसी प्रयत्नशील थे कि यहूदी धर्म शुद्ध रहे, उस में अन्य धर्मों का मिश्रण न होने पाए। फिर भी फरीसियों पर भी मृत्यु के पश्चात् जीवन, दूतों और अपदूतों, और पुनरुत्थान जैसे विषयों में अन्यधर्मों का प्रभाव पड़ा। इन बातों के प्रति फरीसियों और सदूकियों में विरोध था (देखिए प्रे. २३ : ६-९)। सदूकी न तो मौखिक परंपरा और न ही दूतों, अपदूतों, पुनरुत्थान आदि को मानते थे। धर्मशास्त्र में से वे केवल पंचग्रंथ (पहली पांच पुस्तकों) को मानते थे। इस विषय पर "पृष्ठभूमि" पृष्ठ ११६-११८ और बाइबल ज्ञान कोश पृष्ठ ३०४ को देखिए।

२ : १७ में संभाव्यत: धर्मी शब्द व्यंग्यात्मक है। उसका अर्थ है, वे लोग जो अपने आप को धर्मी समझते हैं। यह अर्थ संपादन-आलोचकों के इस विचार की अपेक्षा सही है कि 'धर्मी' का अर्थ शाब्दिक रूप से धर्मी है, अत: यह यीशु का कथन नहीं वरन ख्रिस्तीय समुदाय की रचना है। क्योंकि वास्तव में बहुत "धर्मी" लोग ख्रिस्ती नहीं बने। संभव है कि परंपरा के मौखिक संचारण के समय यीशु के शब्दों में कि "मैं पापियों को बुलाने आया हूं" ये शब्द कि "मैं धर्मियों को नहीं" मिलाए गए हों। यहां ख्रिस्तीय धर्म का मौलिक तथ्य व्यक्त किया गया है। यीशु यह नहीं कहता कि "अपने आप को शुद्ध करो, तब मेरे पास आओ", वरन् यह कि "शुद्ध होने के लिए मेरे पास आओ"। लूका ५ : ३२ में यह इस प्रकार है, "पापियों को मन फिराने के लिए बुलाने आया हूं"। मरकुस में मन फिराव का उल्लेख नहीं है, परन्तु यही अर्थ निहित है। तो भी यीशु न केवल मन फिराव वरन् परमेश्वर के राज्य में प्रविष्ट होने के लिए लोगों को बुलाता है।

(ग) उपवास का प्रश्न। कोरा कपड़ा। पुराना चर्मपात्र २ : १८-२२
(मत्त. ९ : १४-१७; लू. ५ : ३३-३९)

इस में और पिछले अंश में समय की दृष्टि से कोई संबंध नहीं है। २ : १८ में

"उपवास कर रहे थे" (हिं. सं.) होना चाहिए। इस पद के शेष भाग में हि. प्र. ठीक है, केवल प्रश्न चिन्ह पद के अन्त में होना चाहिए। संभव है कि यूहन्ना के शिष्य यूहन्ना की मृत्यु के कारण उपवास कर रहे थे, परन्तु इसका कोई उल्लेख नहीं है। यह दृष्टांत स्पष्ट रूप से यीशु की मृत्यु की ओर संकेत करता है, यह मसीह विषयक है। दूल्हा के अलग किए जाने का अर्थ क्रूस है। यीशु स्वयं दूल्हा है। इस विचार की पृष्ठभूमि पुराना नियम में मिलती है, जहां परमेश्वर और उसके लोगों का परस्पर संबंध दूल्हा-दुल्हिन के रूपक में व्यक्त किया गया है, उदाहरणार्थ, हो. २ : १६, २०; यश. ५४ : ५, ६; ६२ : ४, ५; यि. २ : २; यूहे. १६ : ८। नया नियम के कई अन्य स्थलों में भी इस रूपक का प्रयोग किया गया है, उदाहरणार्थ, यू. ३ : २६; २ कुर. ११ : २; इफ. ५ : ३२, प्रक. १६ : ७; २१ : २। इस दृष्टांत की मुख्य शिक्षा यह है कि उपवास एक रीति मात्र नहीं होना चाहिए जो विशेष निर्धारित समयों पर पूरी की जाए वरन् वह किसी विशेष अभिप्राय से होना चाहिए। यह प्रश्न उठता है कि क्या यीशु ने अपने सेवाकार्य की इस प्रारंभिक अवस्था में अपनी मृत्यु की भविष्यवाणी की ? उत्तर में हम यह कह सकते हैं कि यह अंश संभाव्यतः कालक्रमानुसार सुसमाचार में सम्मिलित नहीं किया गया है।

अनेक टीकाकारों की मान्यता है कि **२ : १६उ-२०** कलीसिया की रचना हैं। इसके कारण निम्न-लिखित हैं : (क) इस में अन्योक्ति है, परन्तु यीशु के दृष्टांतों में अनयोक्ति नहीं होती। (ख) दृष्टांत के पहले भाग और उसके दूसरे भाग में विरोध है। पहला भाग उपवास करने के विरुद्ध है। दूल्हा का बरातियों के साथ रहने का अर्थ केवल यह है कि ख्रिस्ती लोग मसीह विषयक राज्य में प्रवेश करके आनंद विभोर हो गए हैं, अतः वे उपवास नहीं कर सकते। इस कारण से दूल्हा का उन से अलग किया जाना एक असंगत विचार है क्योंकि मसीह विषयक राज्य में शोक नहीं होता। इन आलोचकों का दावा है कि कालांतर में कलीसिया में उपवास करने की प्रथा आरंभ हो गई और उसे उचित सिद्ध करने के अभिप्राय से कलीसिया ने २ : १६उ और २० की बातों को रचा। उपरोक्त (क) के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि हम नहीं कह सकते कि दृष्टांत में कुछ भी अन्योक्ति होना असंभव है। (ख) के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि "अब तक दूल्हा बरातियों के साथ रहता है" परमेश्वर के राज्य में प्रवेश करने के लिए मुहाविरा नहीं वरन् यीशु की ओर संकेत है, इस लिए वह शेष पदों से असंगत नहीं है। इस दृष्टांत की मुख्य शिक्षा यह है कि उपवास रीति अनुसार नहीं वरन् उचित समय पर विशेष अभिप्राय से होना चाहिए।

२ : २१ और २२ संभाव्यतः इस दृष्टांत से पृथक कथन थे जो मौखिक परंपरा में संयुक्त हो गए, या जिनको मरकुस ने मिलाया। इनका अर्थ यह है कि यीशु के द्वारा ऐसा नव-जीवन मानव-जाति को प्राप्त है जो धर्म की पुरानी संस्थाओं में समा नहीं सकता। ये दो उदाहरण स्पष्ट हैं। व्यवस्था के मुख्य अभिप्राय को पूरा करने में यीशु उसकी सीमाओं से परे भी बढ़ता है। हमें प्रत्येक काल में इस प्रकार अपनी संस्थाओं को

जांचना चाहिये। हम नहीं जानते कि ये दो कथन किस प्रसंग में कहे गए, अतः यह भी ज्ञात नहीं है कि उनका संबंध किस विषय विशेष से था।

(घ) सबत के दिन का प्रश्न २ : २३-२८
(मत्त. १२ : १-८; लू. ६ : १-५)

यह प्रारंभिक कलीसिया में बहुत व्यावहारिक प्रश्न था। संभवतः इसका संबंध उस वाद-विवाद से था जो यहूदियों के साथ सबत (शनिवार) के स्थान पर इतवार को (प्रभुवार) मानने के कारण हुआ। बालें तोड़ना चोरी नहीं थी, वह व्य. २३ : २५ के अनुसार अनुमत था, परंतु सबत के दिन ऐसा करना अर्थात् लुनना, एक काम गिना जाता था। मिशनाह में ३९ प्रकार के काम बताए गए हैं जिनको सबत के दिन करने का निषेध था। इन में लुनना और पीसना सम्मिलित हैं। दाऊद का संकेत १ श. २१ : १-६ से है। उस वर्णन में और इस में कुछ अंतर है, विशेषकर इस बात में कि अबियातार नहीं, वरन् उसका पिता अहीमेलेक उस समय महायाजक था। भेंट की रोटी (अर्पित की हुई रोटी, हिं. सं.) वह थी जिसका वर्णन लै. २४ : ५-९ में है। सबत के दिन बालें तोड़ने और भूखे होने के कारण निषिद्ध वस्तु खाने में पूर्ण साम्य नहीं है। अनेक आलोचकों का विचार है कि उपरोक्त असंगति के कारण दाऊद विषयक कथन का संबंध आरंभ में २ : २३ और २४ से नहीं था, परन्तु हमें ऐसा प्रतीत होता है कि सच-मुच यह एक ही वर्णन, और एक ही घटना का वर्णन है। इसका मुख्य बिंदु यह है कि मनुष्य रीतियों और विधियों के दास नहीं हैं।

विद्वानों में २ : २७ और २८ के विषय में सहमति नहीं है। अनेकों का विचार यह है कि दोनों पद यीशु के कथन नहीं वरन् कलीसिया की रचना हैं। अन्य हैं जिनकी यह मान्यता है कि २ : २७ में यीशु का कथन है, परन्तु २ : २८ में नहीं, वह मरकुस की व्याख्या है। एक तर्क वह है जो हम ने २ : १० के संबंध में देखा है कि अपने सेवाकार्य की इस प्रारंभिक अवस्था में यीशु ने "मानव-पुत्र" पदवी का प्रयोग नहीं किया होगा। परंतु हम ने देखा है कि यह वर्णन संभाव्यतः कालक्रमानुसार नहीं है, अतः हम जानते नहीं कि यह किस समय कहा गया। हम निश्चय के साथ नहीं कह सकते कि यीशु ने स्वयं २ : २७ और २८ पदों की बातें नहीं कहीं। इतना स्पष्ट है कि मरकुस की यह शिक्षा है कि, मानव पुत्र होने के कारण, यीशु व्यवस्था से श्रेष्ठ है, और कि मनुष्यों पर सबत पालन का बोझ इस प्रकार नहीं लादा जाना चाहिए कि उनकी स्वतंत्रता जाती रहे। हमारा विचार है कि यह संभाव्यतः यीशु की अपनी शिक्षा है।

(च) सूखे हाथवाले मनुष्य को स्वस्थ करना (सबत के दिन) ३ : १-६
(मत्त. १२ : ९-१४; लू. ६ : ६-११)

यह एक सूक्ति-प्रधान कथा है, जिसका अभिप्राय सबत के विषय में यीशु की शिक्षा को प्रस्तुत करना है। यह सामर्थ्य का कार्य नहीं गिना जाता क्योंकि उस में प्रमुख तत्व स्वास्थ्य-दान नहीं वरन् शिक्षा है। ३ : २ में यह नहीं बताया गया है कि "वे" कौन

थे परंतु पद ६ से ज्ञात है कि वे फरीसी थे। लू. ६ : २ में, आरंभ में ही, वे फरीसी कहे गए हैं। सबत के दिन किसी को स्वस्थ करना तब ही वैध था जब उसके मर जाने की आशंका थी। सुसमाचारों में सात बार यीशु के सबत के दिन किसी को स्वस्थ करने का वर्णन है। इस वर्णन में जान का कोई खतरा नहीं है। मुख्य प्रश्न पद ४ में मिलता है। इसके दो संभव अर्थ हैं : (क) कि यीशु भलाई कर रहा था परन्तु फरीसी उसकी ताक में रहने के कारण बुराई कर रहे थे। (ख) कि स्वस्थ करने में यीशु भलाई कर रहा था, अतः यदि वह स्वस्थ न करता तो यह बुराई होती। इन में से (क) अधिक संभव प्रतीत होता है। ३ : ५ में फिर यीशु के क्रोध का उल्लेख है, जिसको, और मन की कठोरता के उल्लेख को भी, मत्ती और लूका ने अपने वर्णनों में से निकाल दिया है। यहां यह नहीं लिखा है कि उस ने उस मनुष्य को छुआ, परन्तु संभव है कि ऐसा हुआ। लेखक को कुछ संदेह नहीं था कि यीशु इस प्रकार लोगों को स्वस्थ कर सकता था।

अनेक टीकाकारों की मान्यता के अनुसार ३ : ६ इस समस्त परिच्छेद, अर्थात् २ : १-३ : ६ की समाप्ति है, और यह तर्कसंगत प्रतीत होता है, विशेषकर यदि हम इस परिच्छेद को कालक्रमानुसार न मानें। **हेरोदी** किसी धर्म संबंधी दल का नाम नहीं है। विद्वानों का साधारण विचार यह है कि ये वे लोग थे जो हेरादेस अंतिपास और हेरादेस-वंशियों का समर्थन करते थे, अर्थात् यह एक राजनीतिक दल था। उन में और फरीसियों में केवल इस बात में समानता थी कि वे यीशु का विरोध कर रहे थे। देखिए पॉल टीका पृष्ठ १३१, बाइबल ज्ञान कोश पृष्ठ ५७४।

३. गलील में शिक्षा तथा कार्य ३ : ७—६ : १३

(१) जन समूह के लिए यीशु का आकर्षण। बारह शिष्यों को आवाहन ३ : ७-१६

(क) यीशु का आकर्षण। बहुत लोगों को स्वस्थ करना ३ : ७-१२
(मत्त. १२-१५-२१; लू. ६ : १७-१६)

मत्ती और लूका ने इस अंश का प्रयोग बड़ी स्वतन्त्रता के साथ किया है। वे इसे संक्षिप्त करते हैं। यह एक मध्यवर्ती अंश है जिस से पिछले और अगले परिच्छेद संबंधित किए गए हैं। इसके विषय में टीकाकारों का सामान्य विचार यह है कि यह संपादकीय रचना'* है और परंपरा पर आधारित है। कुछ प्राचीन प्रतियों में "उससे पीछे हो ली" शब्द नहीं हैं, जिसके परिणामस्वरूप गलील के लोग अन्य उक्त स्थानों के लोगों के साथ उस "बड़ी भीड़" में सम्मिलित थे जो "उसके पीछे आई" (३ : ८)। हिं. सं. का अनुवाद इसी प्रकार से है। यदि यह ठीक है तो दो प्रकार के लोगों का उल्लेख नहीं, अर्थात्

* संपादकीय रचना : इस सुसमाचार का संपादक मरकुस था। अधिकतर उसकी सामग्री परंपरागत थी परंतु उसने उस सामग्री को संकलित करके एक सुसमाचार की रचना की। ऐसा करने में उसने कहीं कहीं कुछ अंश और वाक्य स्वयं लिखे। वर्तमान आलोचक ऐसे अंशों और वाक्यों को 'संपादकीय रचना' कहते हैं।

गलील के लोगों का और अन्य स्थानों के लोगों का, वरन् एक ही प्रकार के लोगों का उल्लेख है। ३ : ७-८ में सामरिया और दिकपुलिस (दशनगर) को छोड़ सब निकट-वर्ती प्रदेशों का उल्लेख है। अनेक विद्वानों का यह विचार है कि ये लोग केवल यहूदी थे, क्योंकि जिनके नाम इस सूची में नहीं हैं वे विजातियों के प्रदेश थे। परन्तु सूर और सैदा भी विजातियों के प्रदेश थे। इन प्रदेशों को मान चित्र में देखना चहिए। संभव है कि अधिक लोग जो आए यहूदी थे, परंतु कुछ विजातीय लोग भी थे। कदाचित नौका (हि. सं.) का उल्लेख ४ : १ की तैयारी स्वरूप है। ३ : १०, ११ से ज्ञात होता है कि स्वस्थ करने के कार्य के कारण यीशु सर्वप्रिय हो गया था। उसे छूने के संबंध में १ : ४१ की व्याख्या को देखिए। "अशुद्ध आत्मा" की व्याख्या के लिए १ : २३ की टीका को देखिए। यहां अशुद्ध आत्माएं यीशु की सामर्थ्य को मान लेती हैं - परमेश्वर के पुत्र में परमेश्वर के गुण हैं। "परमेश्वर के पुत्र" पदवी के लिए १ : १ की व्याख्या को देखिए। इसका अर्थ यह नहीं है कि अशुद्ध आत्मा ग्रस्त लोगों को "परमेश्वर का पुत्र" शब्दों की धर्मवैज्ञानिक गहराई का पूर्ण बोध प्राप्त था। वे व्यावहारिक रूप से यीशु का ईश्वरत्व पहचानते थे।

(ख) बारह शिष्यों को आवाहन ३ : १३-१९

(मत्त. १० : १-४; लू. ६ : १२-१६)

यहां किसी विशेष पर्वत का उल्लेख नहीं है, अत: कदाचित इसका अर्थ यह है कि यीशु पर्वतीय प्रदेश में गया। ऐसा प्रतीत होता है कि महत्वपूर्ण निर्णय करने से पहले वह एकांत में जाया करता था। लूका कहता है कि इस अवसर पर वह रात भर प्रार्थना करता रहा। मूल यूनानी में इस तथ्य पर बल दिया गया है कि उस ने उन लोगों को बुलाया जिन्हें वह स्वयं चाहता था। बारह की संख्या लाक्षणिक है। पूरे इस्राएल के बारह गोत्र थे, अत: इस नियुक्ति में यह विचार निहित है कि जो कलीसिया बनने को है वह नया इस्राएल होगी। ख्रिस्तीय कलीसिया इस्राएल से की हुई प्रतिज्ञाओं, और उस से अपेक्षित उत्तरदायित्व दोनों की उत्तराधिकारी है। इस नियुक्ति के अभिप्रायों पर ध्यान देना चाहिए क्योंकि वे अब भी महत्वपूर्ण हैं : (क) कि वे उसके साथ रहें। यीशु के साथ रहने से ही उसका कार्य करने के लिए सामर्थ्य और प्रेरणा प्राप्त हो सकती है। (ख) दुष्टात्माओं को निकालने का अधिकार रखें। इस में स्वास्थ्य-दान सम्मिलित है, परन्तु इस आदेश का अभिप्राय इस से कहीं अधिक विस्तृत है। उनको प्रत्येक प्रकार की बुराई का विरोध करने में यीशु का साथ देना था। "भेजे" शब्द भी महत्वपूर्ण है। कुछ प्राचीन हस्तलेखों में "और उन्हें प्रेरित कहा" शब्द "नियुक्त किया" के पश्चात् ही आते हैं, परन्तु अधिक विद्वान इन शब्दों को प्रामाणिक मूल पाठ में सम्मिलित नहीं मानते। "प्रेरित" के मूल यूनानी शब्द का अर्थ "भेजा हुआ" है।

बारह शिष्यों की सूची पर ध्यान देने में सुविधा के लिए वे चार सूचियां निम्न-लिखित हैं जो नया नियम में मिलती हैं :

मरकुस ३ : १६-१९	मत्ती १० : २-४	लूका ६ : १४-१६	प्रेरितों के काम १:१३
शमौन जिसका नाम उस ने पतरस रखा	शमौन जो पतरस कहलाता है	शमौन जिसका नाम उस ने पतरस भी रखा	
याकूब	अंद्रियास	अंद्रियास	यूहन्ना
यूहन्ना	याकूब	याकूब	याकूब
अंद्रियास	यूहन्ना	यूहन्ना	अंद्रियास
फिलिप्पुस	फिलिप्पुस	फिलिप्पुस	फिलिप्पुस
बरतुलमै	बरतुलमै	बरतुलमै	थोमा
मत्ती	थोमा	थोमा	बरतुलमै
थोमा	मत्ती	मत्ती	मत्ती
हलफई का पुत्र याकूब	हलफई का पुत्र याकूब	हलफई का पुत्र याकूब	हलफई का पुत्र याकूब
तद्दी*	तद्दै*	शमौन जो जेलोतेस कहलाता है	शमौन जेलोतेस
शमौन कनानी	शमौन कनानी	याकूब का बेटा यहूदा	याकूब का पुत्र यहूदा
यहूदा इस्करियोती	यहूदा इस्करियोती	यहूदा इस्करियोती	

* यूनानी मूल पाठ में दोनों स्थलों में यह नाम एकही है। किसी भूल से हिं. प्र. और हिं. सं. दोनों में मत्ती और मरकुस में यह अंतर है।

इन सब सूचियों में प्रेरितों के काम में यहूदा इस्करियोती के नाम को छोड़कर सब नाम विद्यमान हैं। प्रेरितों के काम में यहूदा इस्करियोती का नाम इसलिये नहीं है कि वह मर चुका था; और जहां मरकुस और मत्ती में तद्दी है वहां लूका और प्रेरितों के काम में याकूब का पुत्र यहूदा है। इसका कारण हमें ज्ञात नहीं है। हम ने २ : १४ की व्याख्या करते हुए देखा कि लेवी का नाम इन सूचियों में नहीं है, परन्तु मत्ती का नाम चारों में है। यहां याकूब हलफई का पुत्र कहलाता है, जिसकी तुलना मर. २ : १४, और मत्त. ९ : ९ से कीजिए। इन समस्याओं के समाधान के लिए विद्वानों का पहले यह विचार था कि कदाचित तद्दी और यहूदा (याकूब का पुत्र) एक ही व्यक्ति के दो नाम थे, और कि संभवतः मत्ती और लेवी एक ही व्यक्ति थे, परन्तु इन अनुमानों का प्रमाण नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि जिस समय सुसमाचार लिखे गए उस समय बारह शिष्यों की संपूर्ण सूची के विषय में निश्चय नहीं था।

यह तथ्य द्रष्टव्य है कि सब सूचियां तीन अंशों में विभक्त हो सकती हैं, जिन में प्रेरितों के काम की सूची को छोड़ चार चार नाम हैं। प्रत्येक अंश का पहला नाम वही

है, अर्थात् पतरस, फिलिप्पुस और हलफई का पुत्र याकूब। पहले, दूसरे और तीसरे अंशों में चारों सूचियों में वही नाम आते हैं, भले ही उनके क्रम में अंतर है।

"पतरस" का शाब्दिक अर्थ "चट्टान" है। पौलुस १ कुर. और गल. में उसको "कैफा" कहता है। कैफा एक आरामी शब्द है जिसका अर्थ चट्टान है, और इस अर्थ का यूनानी शब्द वह है जिस से "पतरस" नाम बन गया। इसी प्रकार शमौन को मरकुस और मत्ती में "कनानी" परंतु लूका और प्रेरितों के काम में "जेलोतेस" कहा गया है। "कनानी" आरामी शब्द और "जेलोतेस" यूनानी शब्द है। दोनों का अर्थ है, "उत्साही"। यह ऐसे लोगों का नाम था जो यहूदियों की राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए बहुत उत्साही थे। संभाव्यत: शमौन यीशु का शिष्य हो जाने से पहले इस दल का सदस्य था। यह ज्ञात नहीं है कि "इस्करियोती" का क्या अर्थ है। सामान्य अनुमान यह है कि वह "करिय्योथ का मनुष्य" था। यहो. १५ : २५ में करिय्योथेस्रोन एक नगर का नाम है जो हेब्रोन से लग भग १९ किलोमीटर दक्षिण की ओर स्थित था। यदि यह ठीक है तो बारह शिष्यों में से केवल यहूदा इस्करियोती गलीली नहीं था। परन्तु स्मरण रहना चाहिए कि यह अनुमान मात्र है। इन बारह शिष्यों में से अधिक के विषय में हमें बहुत कम जानकारी है।

(२) यीशु पर अभियोग ३ : २०-३५

(क) यीशु के कुटुंबी। बालजबूल के विषय में कथन तथा अन्य कथन ३ : २०-३०
(मत्त. १२ : २२-३२; लू. ११ : १४-२३)

यह भी कुछ कुछ सूक्ति-प्रधान कथा के रूप में है। ऐसा प्रतीत होता है कि लूका का वर्णन अधिकतर Q के अनुसार है, और मत्ती में मरकुस और Q का सम्मिश्रण है। इन दो सुसमाचारों में इन कथनों का संबंध एक दुष्टात्मा ग्रस्त मनुष्य को स्वस्थ करने के वर्णन से है जो मत्ती के अनुसार अंधा और गूंगा और लूका के अनुसार गूंगा था। ३ : २० में ऐसी भीड़ का वर्णन है जैसी मत्ती २ : ४ में वर्णित है। यीशु के कुटुंबी वही लोग होंगे जिनका उल्लेख ३ : ३१-३५ में है। यह स्पष्ट है कि उन्हों ने उसके कार्य और उसके अभिप्राय को नहीं समझा था। "पकड़ना" एक सबल यूनानी शब्द का अनुवाद है। "उसका चित्त ठिकाने नहीं" हिं. सं. में स्पष्ट है, "उसका मस्तिष्क विकृत हो गया", जिस से अनुमान हो सकता है कि वे किस सीमा तक उसको समझने में असफल थे। उस काल में किसी मनुष्य के लिये ऐसा कहना उसे दुष्टात्मा ग्रस्त कहने के बराबर था। अधिक टीकाकार इस अंश को ३ : ३१-३५ से संबंधित मानते हैं, जिसका अर्थ यह है कि यीशु की माता भी उन लोगों में सम्मिलित थी जिनका विचार था कि यीशु को मनोविकृति थी।

यरूशलेम के शास्त्री (३ : २२) स्थानिक शास्त्रियों से बड़े अधिकारी थे। हि. प्र. की पद-टिप्पणी और हिं. सं. में "शैतान" के स्थान पर "बालजबूल" शब्द है जो मूल पाठ में है। संभाव्यत: इसका शाब्दिक अर्थ "भवन का स्वामी" है, परन्तु यह निश्चित

नहीं है। अनेक टीकाकारों की मान्यता है कि बालजबूल एक दुष्टात्मा विशेष का नाम था, शैतान का नहीं, और कि ३ : २२ में ये दो अलग प्राणी हैं, परन्तु सामान्य मान्यता यह है कि बालजबूल और दुष्टात्माओं का सरदार शैतान ही है। मत्ती और लूका में ये एक माने गए हैं। कुछ भी हो, मुख्य अर्थ स्पष्ट है - उनका अभियोग यह था कि यीशु अपना काम शैतान की सहायता से करता था। यहां जो "दृष्टांत" कहे गए हैं वे दृष्टांत नहीं, सामान्य उदाहरण प्रतीत होते हैं। यीशु शास्त्रियों के अभियोग को तर्कों से असत्य प्रमाणित करता है। मुख्य तर्क यह है कि यदि उनका अभियोग सत्य है तो शैतान अपने अभिप्राय के विरुद्ध कार्य करता है, और इस प्रकार अपने ही विनाश का प्रबंध करता है, क्योंकि यीशु दुष्टात्माओं का विरोध कर रहा था, और दुष्टात्माएं शैतान की समर्थक थीं। यीशु वह मनुष्य है जो बलवान् (शैतान) को बांधकर उसके घर को लूटता है। यहाँ "बलवंत" उसी मूल यूनानी शब्द का अनुवाद है जो १ : ७ में "आक्रमण" से अनूदित है।

३ : २८-३० को ३ : ३० के विचार की दृष्टि से देखना चाहिए। यहां विशेष पाप भलाई के कार्यों को बुराई की शक्ति पर आरोपित करना है, मानो यह कहना है कि भलाई का उत्पादक बुराई है। ऐसा करना जान बूझकर परमेश्वर का विरोध करना है, मानो यह कहना है कि यीशु के कार्य शैतान के कार्य हैं। यहां "पवित्र आत्मा" का प्रयोग पूर्ण ख्रिस्तीय अर्थों में नहीं है, वरन् यहूदी विचारधारा के अनुरूप है। वह परमेश्वर की शक्ति है जो विश्व में व्याप्त और विशेष रूप से कुछ व्यक्तियों को प्राप्त है। "मनुष्यों की संतान" का अर्थ "मानव-जाति" है, जैसे हिं. सं. में अनुवाद किया गया है। मत्त. १२ : ३१ में भी "मनुष्य की संतान" (मानव-जाति) है, परन्तु Q के कथन, अर्थात् मत्त. १२ : ३२; लू. १२ : १० में "मनुष्य का पुत्र" (हिं. सं. मानव-पुत्र) है। ऐसा प्रतीत होता है कि मूल कथन "मानव जाति" (हिं. सं.) है, जो मरकुस में है, और परंपरा के संचारण के समय वह "मानव-पुत्र" में परिवर्तित हो गया। यदि यह अनुमान ठीक है तो इस कथन को समझना कठिन नहीं है।

(ख) यीशु के सच्चे नातेदार ३ : ३१-३५
(मत्त. १२ : ४६-५०; लू. ८ : १९-२१)

यह सूक्ति-प्रधान कथा का एक अच्छा उदाहरण है, जिस में से अनावश्यक ब्योरे काटे गए हैं ताकि सारवस्तु पर बल दिया जाए। ३ : ३२ में कुछ प्राचीन प्रतियों में "और बहनें" शब्द हैं, परन्तु संभाव्यतः ये मूल में नहीं थे। यीशु की बहनों का उल्लेख ६ : ३ में है। वह भीड़ जो यीशु के आस पास थी यीशु के शिष्यों की भीड़ थी। स्मरण रहे कि यीशु के केवल बारह शिष्य ही नहीं थे। इस अंश का सार ३ : ३३उ और ३४ में है, जहां यीशु स्पष्ट करता है कि वास्तविक रिश्ता क्या है। इसका अर्थ यह नहीं है कि जितने वहां बैठे थे वे सब पूर्ण रूप से परमेश्वर की इच्छा पर चल रहे थे, परन्तु यह कि उन्हों ने उसके प्रति आत्म-समर्पण कर दिया था। होना चाहिए कि कलीसिया

एक ऐसा परिवार हो। कलीसिया की कसौटी परमेश्वर की इच्छा के अनुसार आचरण है (तुलना कीजिए मर. १२ : २६-३१; यू. ७ : १७)।

यीशु के भाइयों के विषय में तीन मान्यताएं हैं : (क) कि वे उसके सगे भाई, यूसुफ और मरियम की संतान थे। (ख) कि वे यूसुफ और उसकी पहली पत्नी की संतान थे। (ग) कि वे यीशु के मौसेरे भाई थे। इन में से (ख) और (ग) का मुख्य अभिप्राय मरियम के अनंत कौमार्य के विचार की सुरक्षा करना है। (ग) का कोई आधार नहीं है, और उसके विरुद्ध निर्णायक आपत्तियां प्रस्तुत की गई हैं। (ख) एक बहुत प्राचीन विचार है जिसको अनेक प्राचीन धर्माचार्यों ने स्वीकार कर लिया। (क) भी एक प्राचीन विचार है, और यह यूनानी शब्द "भाई" का स्वाभाविक अर्थ है। अतः अधिक प्रोटेस्टेंट टीकाकार इसको सही मानते हैं। हमारे विचार में इसको स्वीकार करना तर्कसंगत है।

(३) दृष्टांतों के द्वारा शिक्षा ४ : १-३४

इस परिच्छेद का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि वह संमिश्रित है, और कि पद १ और २ संपादकीय रचना हैं और परंपरा पर आधारित हैं। समय का कोई संकेत नहीं है। नाव के संबंध में ३ : ६ और उसकी व्याख्या को देखिए। "दृष्टांत" यूनानी शब्द "परबले" (Parabole), (अंग्रेजी Parable) का अनुवाद है, जिसका अर्थ दृष्टांत, कहावत, सूक्ति या पहेली हो सकता है। प्राचीन काल से लेकर पिछली शताब्दी तक टीकाकार यीशु के दृष्टांतों की व्याख्या करते हुए उनको अन्योक्ति के रूप में प्रस्तुत करते आए हैं, अर्थात् किसी दृष्टांत के सब ब्योरों के विशेष अर्थ काल्पनिक रूप से बताए गए हैं। वर्तमान काल के अनुसंधान के फलस्वरूप अब अधिकांश विद्वान मानते हैं कि यीशु के दृष्टांत अन्योक्तियां नहीं हैं, वरन् प्रत्येक दृष्टांत का एक ही मुख्य उद्देश्य या अर्थ होता है, और यह विचार भ्रांत है कि दृष्टांत का प्रत्येक ब्योरा किसी अन्य तथ्य का प्रतीक है, जैसे अन्योक्ति में होता है। अन्योक्ति के रूप में दृष्टांतों की व्याख्या नया नियम में भी मिलती है, उदाहरणार्थ इस अध्याय के १३-२० पदों में। कालांतर में विचित्र अन्योक्ति पूर्वक व्याख्याएं प्रस्तुत की गईं। यीशु के दृष्टांत विविध प्रकार के हैं। उसके अनेक दृष्टांत, उदाहरणार्थ मर. ७ : १५, जो पद १७ में दृष्टांत कहा गया है, उदाहरण मात्र हैं। उसके अन्य दृष्टांत कहानियां हैं। यह दावा करना उचित नहीं है कि अन्योक्ति का तत्व कभी भी यीशु के दृष्टांतों में नहीं है, उदाहरणार्थ मर. १२ : १-६, दाख उद्यान और दुष्ट कृषकों के दृष्टांत में ही कुछ अन्योक्ति उपस्थित है, परंतु अधिकतर यह तत्व यीशु के दृष्टांतों में अल्पतम है।

इस परिच्छेद के संग्रथित होने के संकेत ४ : १०-११ में पाए जाते हैं। ४ : १० के प्रश्न के दो उत्तर हैं, एक पद ११ और १२ में, दूसरा ४ : १३-२० में। ४ : २ में यूनानी शब्द "परबले" का अर्थ "दृष्टांत" है, परंतु ऐसा प्रतीत होता है कि पद १० में उसका अर्थ "पहेली" है। पद १० में यह शब्द बहुवचन में है, परंतु पद १३ में यह एकवचन

में है, जिस से ज्ञात होता है कि वास्तव में शिष्यों का प्रश्न विशेष बीज बोनेवाले के दृष्टांत के संबंध में था। ४ : ३३ का अर्थ यह है कि दृष्टांतों का उद्देश्य किसी बात के अर्थ को स्पष्ट करना था, परन्तु ४ : ११, १२ के अनुसार दृष्टांत रहस्यमय हैं, जिस से श्रोता अर्थ को न समझें। कदाचित अर्थ यह है कि दृष्टांतों का अभिप्राय स्पष्ट करना तो था, परन्तु उनके लिए जो परमेश्वर की इच्छा का विरोध करना चाहते हैं वे रहस्यमय हैं, क्योंकि ऐसे लोग आत्मिक तथ्यों को नहीं समझ सकते (तुलना कीजिए १ कुर. २ : १४-१६)। ऐसा प्रतीत होता है कि पद ११ और १२ किसी अन्य प्रसंग से यहां मिलाए गए हैं। इस पर आगे विचार किया जाएगा।

(क) बीज बोनेवाले का दृष्टांत ४ : १-९
(मत्त. १३ : १-९; लू. ८ : ४-८)

४ : १ और २ का उल्लेख ऊपर किया गया है। इस तथ्य पर ध्यान देना चाहिए कि इस दृष्टांत में एक प्रकार का बीज और तीन प्रकार की भूमि का वर्णन है। भूमि की ऐसी स्थिति भारत में भी होती है, इसकी व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। यहां "पत्थरीली भूमि" का अर्थ वह भूमि नहीं है जहां मिट्टी और पत्थरों का मिश्रण है, बरन् वह जहां मिट्टी के एक छिछले स्तर के नीचे चट्टान है। बहुधा किसी अच्छे खेत में या उसके आस पास पगडंडी या पत्थरीली भूमि या झाड़ियां होती हैं, विशेष रूप से पलिश्तीन जैसे पर्वतीय देश में। जब इस प्रकार के देश में बीज बोया जाता है तो स्वाभाविक परि-णाम वही होता है जो यहां वर्णित है। यदि हम ४ : १३-२० में वर्णित व्याख्या को मन में न रखते हुए इस दृष्टांत को पढ़ते हैं तो स्वाभाविक रूप से यह विचार उत्पन्न होता है कि मुख्यतः बीज और उस से उत्पन्न उपज को महत्व दिया गया है। यीशु के जीवन और उसकी शिक्षा के संदर्भ में यीशु स्वयं बोनेवाला है, और बीज उसका संदेश है। मुख्य तथ्य यह है कि यद्यपि कहीं कहीं बीज जड़ नहीं पकड़ता या पौधे दबा दिए जाते हैं तथापि अंत में उपज अच्छी होती है। परमेश्वर का राज्य लोगों के हृदयों में स्थापित हो जाता है। ऐसी शिक्षा शिष्यों को प्रोत्साहित कर सकती थी। मरकुस में यह दृष्टांत एक ऐसे परिच्छेद के पश्चात् ही आता है जहां विरोध और विरोधियों का वर्णन है।

(ख) दृष्टांतों का अभिप्राय ४ : १०-१२
(मत्त, १३ : १०-१५; लू. ८ : ९, १०)

अनेक विद्वानों की यह मान्यता है कि इस अंश की वाक्यरचना में ऐसे संकेत मिलते हैं जिनसे विदित होता है कि यह किसी अन्य प्रसंग से मिलाया गया है। कदाचित कारण यह है कि ४ : ११ में "दृष्टांतों" का उल्लेख है, यद्यपि यहां यूनानी शब्द का अर्थ "पहेली" है, जैसे हिं. सं. में अनुवाद किया गया है : "उनके लिए जो बाहर हैं प्रत्येक बात पहेली है" (पद-टिप्पणी को भी देखिए)। ४ : १० में शब्द "इन" यूनानी मूल में नहीं है, अतः वह हिं. सं. में भी नहीं है। इसका अर्थ यह है कि शिष्यों ने साधारण रूप से दृष्टांतों के विषय में पूछा। यहां यीशु के साथ केवल कुछ विशेष शिष्य हैं, वह

भीड़ नहीं जिसका उल्लेख ४ : १ और २ में है। फिर ४ : ३३ में साधारण लोगों का उल्लेख है, परन्तु ४ : ३४ के अंत में केवल "निज चेलों" का उल्लेख है। ऐसा प्रतीत होता है कि यहां और पद ११ में "बाहरवालों" की विषमता में एक विशेष समूह का उल्लेख है। "भेद" शब्द का प्रयोग उन अर्थों में किया गया है जो पौलुस के पत्रों में पाया जाता है, उदाहरणार्थ कुल. १ : २६। यहां हेलेनीवादियों के रहस्यवादी पंथों की ओर संकेत नहीं है, वरन् यह ख्रिस्त-संबंधी परमेश्वर का वह रहस्य है जो अब प्रकट किया गया है, क्योंकि यीशु के आगमन से रहस्य का प्रकटीकरण हो गया है। "की समझ" शब्द यूनानी मूल पाठ में नहीं हैं, अतः हिं. सं. का अनुवाद ठीक है : "परमेश्वर के राज्य का रहस्य तुम्हें प्रदान किया गया है"। ४ : १२ में यश. ६ : ९, १० से उद्धरण है जो न तो इब्रानी न सप्तति अनुवाद वरन् तरगुम (आरामी अनुवाद जो आराधनालयों में इब्रानी के साथ साथ पढ़ा जाता था) के अनुसार है। यहां स्पष्टतः इसका अर्थ यह है कि दृष्टांतों या पहेलियों का उद्देश्य यह है कि श्रोता उनका अर्थ न समझें। इस में और ४ : ३३ में विरोध है, क्योंकि पद ३३ में यह विचार निहित है कि दृष्टांतों की शिक्षा में केवल ऐसी बातें थीं जिन्हें लोग समझ सकते थे। साधारणतः लोगों का यह विचार है कि यह असंभव है कि यीशु ने अपने दृष्टांतों के संबंध में यह बात इस रूप में कही हो, अतः इस समस्या का सब से अच्छा समाधान यह मानना प्रतीत होता है कि इस कथन का वास्तविक प्रसंग अन्य था, जो हम अब नहीं जानते, और कि मरकुस ने उसको यहां इस लिए मिलाया कि उस में "परबले" शब्द है। कदाचित यीशु ने यशायाह का यह उद्धरण अपने पूरे संदेश के संबंध में प्रस्तुत किया हो, और ऐसे समय प्रस्तुत किया जब उस ने देखा कि लोग उस संदेश को अस्वीकार कर रहे थे। "बाहरवालों" या ऐसे लोगों के लिए जो आत्मसमर्पण नहीं करना चाहते, यीशु का संदेश "पहेली" है, वह गुप्त है। इस प्रकार यह कथन यीशु और उसके श्रोताओं की वास्तविक परिस्थिति पर लागू था। अर्थ यह नहीं है कि परमेश्वर की इच्छा यह है कि मानव-जाति उसके संदेश को न समझे। यह तथ्य द्रष्टव्य है कि मत्ती ने इसको परिवर्तित करके लिखा, "मैं इस लिए उन से दृष्टांतों में बातें करता हूं कि वे देखते हुए नहीं देखते, और सुनते हुए नहीं सुनते, और नहीं समझते"। इसके पश्चात् वह यशायाह का पूरा उद्धरण प्रस्तुत करता है। हमारे विचार में उपरोक्त स्पष्टीकरण स्वीकार्य है, परन्तु अनेक टीकाकारों की यह मान्यता है कि इस अंश में यीशु का कथन नहीं वरन् कलीसिया की रचना है। पर हमें ऐसा प्रतीत होता है कि दृष्टांतों के संबंध में यह मरकुस का अपना विचार था।

(ग) बीज बोनेवाले के दृष्टांत की व्याख्या ४ : १३-२०

(मत्त. १३ : १८-२३; लू. ८ : ११-१५)।

यद्यपि ४ : १० में "दृष्टांत" बहुवचन में है तथापि संभाव्यतः शिष्यों ने यह प्रश्न विशेष बीज बोनेवाले के दृष्टांत के संबंध में पूछा। लू. ८ : ९ में यह प्रश्न स्पष्टतः इसी दृष्टांत के विषय में है। प्रश्न का उत्तर ४ : १३ में आरंभ होता है, जहां "यह दृष्टांत" शब्द मिलते हैं। इस अंश में प्रश्न का उत्तर पद ११, १२ से भिन्न है, और वह

में है, जिस से ज्ञात होता है कि वास्तव में शिष्यों का प्रश्न विशेष बीज बोनेवाले के दृष्टांत के संबंध में था। ४ : ३३ का अर्थ यह है कि दृष्टांतों का उद्देश्य किसी बात के अर्थ को स्पष्ट करना था, परन्तु ४ : ११, १२ के अनुसार दृष्टांत रहस्यमय हैं, जिस से श्रोता अर्थ को न समझें। कदाचित अर्थ यह है कि दृष्टांतों का अभिप्राय स्पष्ट करना तो था, परन्तु उनके लिए जो परमेश्वर की इच्छा का विरोध करना चाहते हैं वे रहस्यमय हैं, क्योंकि ऐसे लोग आत्मिक तथ्यों को नहीं समझ सकते (तुलना कीजिए १ कुर. २ : १४-१६)। ऐसा प्रतीत होता है कि पद ११ और १२ किसी अन्य प्रसंग से यहां मिलाए गए हैं। इस पर आगे विचार किया जाएगा।

(क) बीज बोनेवाले का दृष्टांत ४ : १-६
(मत्त. १३ : १-६; लू. ८ : ४-८)

४ : १ और २ का उल्लेख ऊपर किया गया है। इस तथ्य पर ध्यान देना चाहिए कि इस दृष्टांत में एक प्रकार का बीज और तीन प्रकार की भूमि का वर्णन है। भूमि की ऐसी स्थिति भारत में भी होती है, इसकी व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। यहां "पत्थरीली भूमि" का अर्थ वह भूमि नहीं है जहां मिट्टी और पत्थरों का मिश्रण है, वरन् वह जहां मिट्टी के एक छिछले स्तर के नीचे चट्टान है। बहुधा किसी अच्छे खेत में या उसके आस पास पगडंडी या पत्थरीली भूमि या झाड़ियां होती हैं, विशेष रूप से पलिश्तीन जैसे पर्वतीय देश में। जब इस प्रकार के देश में बीज बोया जाता है तो स्वाभाविक परिणाम वही होता है जो यहां वर्णित है। यदि हम ४ : १३-२० में वर्णित व्याख्या को मन में न रखते हुए इस दृष्टांत को पढ़ते हैं तो स्वाभाविक रूप से यह विचार उत्पन्न होता है कि मुख्यत: बीज और उस से उत्पन्न उपज को महत्व दिया गया है। यीशु के जीवन और उसकी शिक्षा के संदर्भ में यीशु स्वयं बोनेवाला है, और बीज उसका संदेश है। मुख्य तथ्य यह है कि यद्यपि कहीं कहीं बीज जड़ नहीं पकड़ता या पौधे दबा दिए जाते हैं तथापि अंत में उपज अच्छी होती है। परमेश्वर का राज्य लोगों के हृदयों में स्थापित हो जाता है। ऐसी शिक्षा शिष्यों को प्रोत्साहित कर सकती थी। मरकुस में यह दृष्टांत एक ऐसे परिच्छेद के पश्चात् ही आता है जहां विरोध और विरोधियों का वर्णन है।

(ख) दृष्टांतों का अभिप्राय ४ : १०-१२
(मत्त, १३ : १०-१५; लू. ८ : ६, १०)

अनेक विद्वानों की यह मान्यता है कि इस अंश की वाक्यरचना में ऐसे संकेत मिलते हैं जिनसे विदित होता है कि यह किसी अन्य प्रसंग से मिलाया गया है। कदाचित कारण यह है कि ४ : ११ में "दृष्टांतों" का उल्लेख है, यद्यपि यहां यूनानी शब्द का अर्थ "पहेली" है, जैसे हिं. सं. में अनुवाद किया गया है : "उनके लिए जो बाहर हैं प्रत्येक बात पहेली है" (पद-टिप्पणी को भी देखिए)। ४ : १० में शब्द "इन" यूनानी मूल में नहीं है, अत: वह हिं. सं. में भी नहीं है। इसका अर्थ यह है कि शिष्यों ने साधारण रूप से दृष्टांतों के विषय में पूछा। यहां यीशु के साथ केवल कुछ विशेष शिष्य हैं, वह

भीड़ नहीं जिसका उल्लेख ४ : १ और २ में है। फिर ४ : ३३ में साधारण लोगों का उल्लेख है, परन्तु ४ : ३४ के अंत में केवल "निज चेलों" का उल्लेख है। ऐसा प्रतीत होता है कि यहां और पद ११ में "बाहरवालों" की विषमता में एक विशेष समूह का उल्लेख है। "भेद" शब्द का प्रयोग उन अर्थों में किया गया है जो पौलुस के पत्रों में पाया जाता है, उदाहरणार्थ कुल. १ : २६। यहां हेलेनीवादियों के रहस्यवादी पंथों की ओर संकेत नहीं है, वरन् यह ख्रिस्त-संबंधी परमेश्वर का वह रहस्य है जो अब प्रकट किया गया है, क्योंकि यीशु के आगमन से रहस्य का प्रकटीकरण हो गया है। "की समझ" शब्द यूनानी मूल पाठ में नहीं हैं, अतः हिं. सं. का अनुवाद ठीक है : "परमेश्वर के राज्य का रहस्य तुम्हें प्रदान किया गया है"। ४ : १२ में यश. ६ : ९, १० से उद्धरण है जो न तो इब्रानी न सप्तति अनुवाद वरन् तरगुम (आरामी अनुवाद जो आराधनालयों में इब्रानी के साथ साथ पढ़ा जाता था) के अनुसार है। यहां स्पष्टतः इसका अर्थ यह है कि दृष्टांतों या पहेलियों का उद्देश्य यह है कि श्रोता उनका अर्थ न समझें। इस में और ४ : ३३ में विरोध है, क्योंकि पद ३३ में यह विचार निहित है कि दृष्टांतों की शिक्षा में केवल ऐसी बातें थीं जिन्हें लोग समझ सकते थे। साधारणतः लोगों का यह विचार है कि यह असंभव है कि यीशु ने अपने दृष्टांतों के संबंध में यह बात इस रूप में कही हो, अतः इस समस्या का सब से अच्छा समाधान यह मानना प्रतीत होता है कि इस कथन का वास्तविक प्रसंग अन्य था, जो हम अब नहीं जानते, और कि मरकुस ने उसको यहां इस लिए मिलाया कि उस में "परबले" शब्द है। कदाचित यीशु ने यशायाह का यह उद्धरण अपने पूरे संदेश के संबंध में प्रस्तुत किया हो, और ऐसे समय प्रस्तुत किया जब उस ने देखा कि लोग उस संदेश को अस्वीकार कर रहे थे। "बाहरवालों" या ऐसे लोगों के लिए जो आत्मसमर्पण नहीं करना चाहते, यीशु का संदेश "पहेली" है, वह गुप्त है। इस प्रकार यह कथन यीशु और उसके श्रोताओं की वास्तविक परिस्थिति पर लागू था। अर्थ यह नहीं है कि परमेश्वर की इच्छा यह है कि मानव-जाति उसके संदेश को न समझे। यह तथ्य द्रष्टव्य है कि मत्ती ने इसको परिवर्तित करके लिखा, '"मैं इस लिए उन से दृष्टांतों में बातें करता हूं कि वे देखते हुए नहीं देखते, और सुनते हुए नहीं सुनते, और नहीं समझते"। इसके पश्चात् वह यशायाह का पूरा उद्धरण प्रस्तुत करता है। हमारे विचार में उपरोक्त स्पष्टीकरण स्वीकार्य है, परन्तु अनेक टीकाकारों की यह मान्यता है कि इस अंश में यीशु का कथन नहीं वरन् कलीसिया की रचना है। पर हमें ऐसा प्रतीत होता है कि दृष्टांतों के संबंध में यह मरकुस का अपना विचार था।

(ग) बीज बोनेवाले के दृष्टांत की व्याख्या ४ : १३-२०

(मत्त. १३ : १८-२३; लू. ८ : ११-१५)।

यद्यपि ४ : १० में "दृष्टांत" बहुवचन में है तथापि संभाव्यतः शिष्यों ने यह प्रश्न विशेष बीज बोनेवाले के दृष्टांत के संबंध में पूछा। लू. ८ : ९ में यह प्रश्न स्पष्टतः इसी दृष्टांत के विषय में है। प्रश्न का उत्तर ४ : १३ में आरंभ होता है, जहां "यह दृष्टांत" शब्द मिलते हैं। इस अंश में प्रश्न का उत्तर पद ११, १२ से भिन्न है, और वह

अन्योक्ति-पूर्वक भी है, जिस से अनेक व्याख्याता अनुमान लगाते हैं कि यहां यीशु का अपना स्पष्टीकरण नहीं वरन् कलीसिया की व्याख्या है। प्रचार करने और शिक्षा देने में इस दृष्टांत का प्रयोग किया जाता था, और साथ ही यह व्याख्या भी प्रस्तुत की जाती थी। परन्तु यह भी संभव है कि वह यीशु की अपनी व्याख्या पर आधारित है। ४ : ९ में संकेत है कि उस ने श्रोताओं से आत्मपरीक्षा की मांग की, अत: संभवत: उसका उद्देश्य यह था कि वे अपने आपको परखें कि वे किस प्रकार की भूमि के अनुकूल हैं और अपनी प्रतिक्रिया पर ध्यान करें। फिर इस व्याख्या के संचारण में अन्योक्ति के ब्योरे, जैसे शैतान, जड़ न रखना, क्लेश और उपद्रव, संसार की चिंता आदि मिलाए गए। जैसे ऊपर कहा गया है यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि यीशु के दृष्टांतों में अन्योक्ति का कोई भी तत्व नहीं था, इस कारण यहां संभवत: यीशु के प्रामाणिक कथन और कलीसिया की रचना का मिश्रण है। इस अंश में कई शब्दों का प्रयोग किया गया है जो सहदर्शी सुसमाचारों में अन्यत्र नहीं पाए जाते, जिसके कारण अनेक विद्वान भाषा शैली के आधार पर ही इसको कलीसिया की रचना मानते हैं।

कदाचित यह मुख्यत: यीशु की शिक्षा है, जिस में कलीसिया की बातों का मिश्रण है। इस में यह स्पष्ट शिक्षा है कि प्रत्येक व्यक्ति को यीशु के इस दृष्टांत की दृष्टि में आत्मपरीक्षा करनी चाहिए, कि उसकी प्रतिक्रिया क्या है। यदि यह व्याख्या स्वीकार की जाए तो संभव है कि बोनेवाला कोई ख्रिस्ती प्रचारक होगा। यदि हम ख्रिस्ती लोग शैतान को सब बीज उठाने दें तो पूरा दोष उस पर नहीं लगा सकते, हमारा भी दोष है कि हमारे हृदय की भूमि सख्त है। प्रत्येक मनुष्य उत्तरदायी है कि वह किस प्रकार की भूमि के अनुकूल बनता है। परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि इस दृष्टांत की मुख्य शिक्षा वह है जो ४ : १-९ की व्याख्या में बताई गई है, अर्थात् यह कि सब बाधाओं के होते हुए भी बीज अवश्य फल देता है, परमेश्वर का राज्य स्थापित हो रहा है।

(घ) दृष्टांतों से संबंधित विविध कथन ४ : २१-२५
(मत्त. १३ : १२; लू. ८ : १६-१८)

इस अंश की विषय-सामग्री Q में भी भिन्न भिन्न प्रसंगों में पाई जाती है। वह इस प्रकार है : ४ : २१=मत्त. ५ : १५=लू. ११ : ३३, ४ : २२=मत्त. १० : २६ =लू. १२ : २, ४ : २४=मत्त. ७ : २=लू. ६ : ३८, ४ : २५=मत्त. १३ : १२= लू. ८ : १८उ (तु. मत्त. २५ : २९=लू. १९ : २६)। इन में से मत्त. ७ : २ और २५ : २९ मत्ती और लूका में एक ही प्रसंग में आते हैं परन्तु अन्य पद इन दो सुसमाचारों में भिन्न भिन्न प्रसंगों में हैं। अनेक विद्वानों की मान्यता के अनुसार मरकुस को यह सामग्री Q से मिली, परन्तु अन्य विद्वानों का विचार यह है कि उसके पास कोई अलग स्रोत था। मरकुस ने इस को दृष्टांतों के विषय पर लागू किया है। ४ : २१ और २२ का प्रसंग मत्ती और लूका में वह नहीं है जो मरकुस में है, और उनके प्रसंग भी एक दूसरे से भिन्न हैं। इस में हम स्पष्ट देखते हैं कि सुसमाचारों के रचयिताओं ने किस

प्रकार अपनी सामग्री का प्रयोग किया है। हम नहीं जानते कि यीशु ने किन संदर्भों में ये बातें कहीं। इस अंश में इनका अर्थ यह है कि दृष्टांतों की बातें गुप्त और रहस्यमय भले ही हों (४ : ११, १२) तो भी अंततः वे प्रकट हो जाती हैं। परमेश्वर का अभिप्राय छिपाना नहीं वरन् प्रकट करना है। ४ : २३ में यह तथ्य स्पष्टतः व्यक्त है। ४ : २४, २५ का अर्थ यह है कि जिस अनुपात से कोई मनुष्य यीशु की शिक्षा के प्रति ग्रहणशील है और आत्मिक अंतर्दृष्टि का प्रयोग करने को तैयार है, उसी अनुपात से उसको उस शिक्षा से कुछ प्राप्त होगा। जो व्यक्ति परमेश्वर की इच्छा का अनुकरण करने को तैयार है वह शिक्षा को ग्रहण करेगा और उसको समझेगा (तुलना कीजिए यू. ७ : : १७)।

(च) उगते और बढ़ते हुए बीज का दृष्टांत ४ : २६-२९

(यह केवल मरकुस में है)

वर्तमान टीकाकारों में लगभग सहमति है कि इस दृष्टांत का अर्थ यह नहीं है कि परमेश्वर का राज्य धीरे धीरे स्थापित होता है, वरन् यह कि राज्य को स्थापित करनेवाला परमेश्वर स्वयं है, उसकी संस्थापना निश्चित है, और उचित समय पर परमेश्वर अपने लोगों को उस में सम्मिलित करता है। "आप से आप" शब्द (हिं. सं. अपने आप) महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि वे इस तथ्य को स्पष्ट व्यक्त करते हैं कि यह परमेश्वर का ही कार्य है। मनुष्य भूमि को तैयार करता और बीज बोता है (या यह भी संभव है कि परमेश्वर बोनेवाला समझा जाए) परन्तु परमेश्वर ही उपज उपजाता है (तुलना कीजिए १ कुर. ३ : ६, ७)। ४ : २९ योए. ३ : १३ पर आधारित है, अतः वह युगांत-संबंधी है, परन्तु यह विचार निहित है कि युगांत आरंभ हो गया है, कटनी हो रही है, और लोग परमेश्वर के राज्य में प्रविष्ट किए जा रहे हैं। अतः यह प्रोत्साहन तथा धैर्य का दृष्टांत है।

(छ) राई के बीज का दृष्टांत ४ : ३०-३२

(मत्त. १३ : ३१; लू. १३ : १८, १९)

राई का बीज वास्तव में सब से छोटा बीज नहीं है, परन्तु वह किसी बहुत छोटी वस्तु के लिए मुहाविरा था। राई एक ऐसी झाड़ी का बीज था जो गलील में ३-४ मीटर की ऊंचाई तक पहुंचती थी। इस दृष्टांत में राज्य के विकास पर बल दिया जाता है, जिस से शिष्य प्रोत्साहित हो सकते हैं। राज्य का बीज बोया गया था और उसका बढ़ना निश्चित था। संभवतः यह अर्थ भी निहित है कि राज्य उस समय तक विकास करता रहता है जब तक सब जातियां उसमें सम्मिलित नहीं हो जातीं। संभव है कि इस में दा. ४ : १२ और २१ की ओर संकेत है। राजा नबूकदनेस्सर स्वप्न में एक पेड़ देखता है जिस में पक्षी बसेरा करते हैं। पक्षी उन जातियों का प्रतीक हैं जो नबूकदनेस्सर के अधीन होने को थीं। इसी प्रकार सब जातियों के लोग परमेश्वर के राज्य में प्रवेश करेंगे। यीशु के आगमन से ही यह प्रक्रिया आरंभ हो गई।

(ज) यीशु की शिक्षा में दृष्टांतों का स्थान ४ : ३३-३४
(मत्त. १४ : ३४, ३५)

इन पदों से स्पष्ट प्रकट किया गया है कि यीशु की शिक्षा का बहुत थोड़ा भाग हमारे पास है। इस अंश से यह भी ज्ञात होता है कि यीशु साधारण लोगों को अधिकतर दृष्टांतों के द्वारा शिक्षा देता था। "उनकी समझ के अनुसार" शब्दों से विदित है कि दृष्टांतों के द्वारा शिक्षा देने का मुख्य अभिप्राय शिक्षा का स्पष्टीकरण करना था। इस संबंध में ४ : ११ और १२ की व्याख्या को देखिए। परंतु ऐसा प्रतीत होता है कि ४ : ३४उ में दृष्टांतों के विषय में वही विचार है जो पद ११ और १२ में है, अर्थात् यह कि दृष्टांतों की शिक्षा रहस्यमय थी और साधारण लोगों की समझ में नहीं आती थी। यीशु अपने विशेष शिष्यों को एकांत में शिक्षा देता था।

(४) आश्चर्यकर्मों का समूह ४ : ३५-५ : ४३

रूपरेखा देखने से पता चलता है कि इस अंश में चार आश्चर्यकर्मों का वर्णन है। ये वर्णन सजीव और कुछ ब्योरेवर हैं। ये वर्णन हैं : झील पर आंधी आना, गिरासेनी अशुद्ध आत्मा-ग्रस्त मनुष्य को स्वास्थ्य-दान, याईर की पुत्री का जिलाया जाना, और रक्तस्राव से पीड़ित स्त्री को स्वास्थ्य-दान।

(क) आंधी को शांत करना ४ : ३५-४१
(मत्त. ८ : २३-२७; लू. ८ : २२-२५)

मत्ती और लूका ने इस वर्णन के कुछ ब्योरों को निकाल दिया है। इनके वर्णन ऐसे सजीव नहीं हैं जैसा मरकुस का वर्णन है। यीशु को संबोधित करने में तीनों सु-समाचारों में भिन्न शब्दों का प्रयोग किया गया है (मत्त. "प्रभु", मर. "गुरु", लू. "स्वामी")। "उसी दिन जब सांझ हुई" शब्द संभाव्यत: प्रसंग से संबंधित नहीं हैं, वरन् मरकुस के स्रोत में थे। अत: अर्थ यह नहीं है कि यह घटना उसी दिन हुई जब उपरोक्त दृष्टांत कहे गए। वे दृष्टांत भी भिन्न अवसरों पर कहे गए होंगे। ऐसी आंधियां गलील की झील पर आया करती हैं, जिस प्रकार कश्मीर की झील दल पर आती हैं। इस चित्र में सोते हुए यीशु की शांति, और शिष्यों की व्याकुलता में स्पष्ट विषमता प्रकट की गई है। जिस प्रकार १ : २५ के अनुसार यीशु ने अशुद्ध आत्मा को डांटा था उसी प्रकार वह अब आंधी को डांटता है। दोनों स्थलों में एक ही शब्द का प्रयोग किया गया है ("चुप रह", "थम जा")। एक ही शक्ति से अशुद्ध आत्मा और आंधी वश में लाई जाती हैं। "प्राकृतिक" और "आत्मिक" का कोई भेद नहीं माना गया है। जिस प्रकार के विश्वास की मांग यीशु शिष्यों से करता है उस प्रकार का विश्वास उन में नहीं पाया जाता। शिष्य पहले आंधी से डरते हैं, परंतु आंधी के शांत हो जाने पर उन पर ईश्वरीय भय छा जाता है।

इस वर्णन की पृष्ठभूमि में पुराना नियम के कई विचार पाए जाते हैं : (क) समद्र आदि परमेश्वर के अधिकार में हैं, उदाहरणार्थ भ,. ८९ : ८, ९; ९३ : ३, ४;

१०६ : ८, ६। (ख) गहरा जल, बाढ़ आदि दुष्टता के प्रतीक हैं, उदाहरणार्थ भ. ६६ : १, २, १४, १५; १८ : ६। (ग) परमेश्वर पर पूरा भरोसा रखना, उदाहरणार्थ यश. ४३ : २; भ. ४६ : १-३।

आधुनिक काल विज्ञान का युग है। इस युग में अनेक लोग अनुभव करते हैं कि नया नियम के "प्रकृति-संबंधी' आश्चर्यकर्म सत्य नहीं हो सकते, उदाहरणार्थ यह वर्णन, मृतकों को जिलाने के वर्णन आदि, क्योंकि इन वर्णनों के अनुसार यीशु को प्राकृतिक नियमों पर अधिकार था। अतः ऐसे लोग इन वर्णनों की प्राकृतिक व्याख्या करके उन में से ईश्वरीय तत्व को निकाल देते हैं। उदाहरणार्थ अनेक टीकाकारों का विचार है कि इस अंश में (मर. ४ : ३५-४१) यीशु शांति पूर्वक सो गया, परंतु शिष्य बहुत घबरा गए। उसी समय संयोग से आंधी शांत हो गई। कालांतर में परंपरा प्रचलित हो गई कि यीशु ने आंधी को डांटा था, यद्यपि वास्तव में ऐसा नहीं हुआ। इस प्रकार ऐसी घटनाओं में कोई अलौकिक तत्व नहीं था। परंतु यह स्पष्ट है कि सुसमाचारों के रचयिताओं ने इन बातों को इस प्रकार नहीं समझा था। उस काल के ख्रिस्तियों का विचार था कि ये वास्तव में आश्चर्यकर्म थे। यदि हम उनके समान मानते हैं कि यीशु परमेश्वर-पुत्र है, परमेश्वर का वास्तविक अवतार है, तो यह भी मानना कि ऐसे व्यक्ति को, परमेश्वर के समान, प्रकृति पर अधिकार है बुद्धि से असंगत नहीं है। कदाचित हम तर्कणा से इस रहस्य को न समझ सकें परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि वह सच नहीं है। यीशु के व्यक्तित्व के संबंध में यह वही दृष्टिकोण है जो पौलुस के पत्रों (उदाहरणार्थ कुल. २ : ६, १०) और अन्य स्थलों में पाया जाता है।

कलीसिया में प्रचलित परंपरा के द्वारा जीवन की जोखिमों, तूफानों, संकटों आदि में दृढ़ता और विश्वास की स्थिरता को बनाए रखने के लिए इन वर्णनों का प्रयोग किया जाता था। प्रत्येक परिस्थिति में यीशु के शब्द हमारे कानों में गूंजते हैं, "तुम क्यों डरते हो ?"। इन में यह मौलिक प्रश्न भी सामने आता है, "क्या तुम्हें अब तक विश्वास नहीं ?"। "विश्वास" का अर्थ केवल परमेश्वर पर विश्वास नहीं वरन् ख्रिस्त पर भी विश्वास है, कि वह परमेश्वर का देहधारी रूप और उसकी सामर्थ्य और अधिकार से संपन्न है। इस प्रकार हम में से प्रत्येक को इस प्रश्न का सामना करना पड़ता है।

(ख) गिरासेन के अशुद्ध-आत्मा-ग्रस्त को स्वस्थ करना ५ : १-२०
(मत्त. ८ : २८-३४; लू. ८ : २६-३६)

इस वर्णन में और पूर्वोक्त वर्णन में समान रूप से दृष्टता की शक्ति पर परमेश्वर का अधिकार प्रकट किया गया है, अतः लेखक ने उन्हें यहां एकत्रित किया है। मरकुस और लूका में स्थान "गिरासेनियों का देश", परंतु मत्ती में "गदरेनियों का देश" कहा गया है, और मरकुस के कुछ हस्तलेखों में "गर्गसेनियों का देश" है। गिरासा गलील की झील से लगभग ४८ और गदरा लगभग ६.५ किलोमीटर की दूरी पर दक्षिण-पूर्व की ओर स्थित थे। एक संभावना यह है कि झील के तट तक "गिरासेनियों का प्रदेश"

कहलाता था। दूसरा अनुमान यह है कि संभाव्यतः यह स्थान आधुनिक खिरसा था जो कफरनहूम के सामने झील के तट पर स्थित है। वहां कगार, खंडहर और पुरानी कब्रें हैं। इस प्रदेश में अधिकतर अयहूदी रहते थे।

यहां मत्ती ने मरकुस के वर्णन को बहुत संक्षिप्त किया है, परंतु सूअरों का वर्णन उस में सम्मिलित है। लूका ने मरकुस के वर्णन को कम परिवर्तित किया है। इस वर्णन में अशुद्ध-आत्मा-ग्रस्त मनुष्य की घोर मनोविकृति पर बल दिया गया है। इस में अशुद्ध आत्माओं आदि के विषय में कुछ लोक-प्रचलित विचार हैं, परन्तु वर्णन के ब्योरे सजीव हैं, पागल मनुष्य का सही चित्रण है। यह साधारण मान्यता थी कि अपदूत ऐसे स्थानों में रहते हैं। अपदूत-ग्रस्त व्यक्ति स्वयं के संबंध में कभी एकवचन में, कभी बहुवचन में बोलता है, अतः वह अपने आप को "सेना" (५ : ९) कहता है। यह यूनानी शब्द "लेगियोन" का अनुवाद है। लेगियोन में ४०००-६००० सैनिक होते थे। वह मनुष्य अनुभव करता था कि बहुत अशुद्ध आत्माएं उसको सता रही थीं। उस ने बहुधा अपने देश में रोमी सेनाओं को देखा होगा, और कदाचित उनके अत्याचार का अनुभव भी किया। पद ६ और ७ से ज्ञात होता है कि ऐसे लोग यीशु का अधिकार पहचानते थे। "परमप्रधान परमेश्वर" शब्द पुराना नियम में अधिकतर अयहूदियों द्वारा प्रयुक्त होते हैं। इस मनुष्य ने पहचान लिया कि यीशु में एक सामर्थ्य उपस्थित थी जो बुराई का विरोध कर रही थी। यह एक सामान्य विचार था कि अशुद्ध आत्मा का नाम जानने से उस पर अधिकार प्राप्त होता था। स्मरण रहे कि यहूदी लोग सूअर को अशुद्ध पशु मानते थे।

५ : ११-१४ इस वर्णन के मुख्य अभिप्राय के लिए महत्वपूर्ण नहीं हैं, अतः अनेक टीकाकार उन्हें वर्णन का वास्तविक भाग नहीं मानते। परंतु **५ : १६** में भी इसी घटना की ओर संकेत है। अशुद्ध आत्माओं का सूअरों में प्रवेश करना इस तथ्य का प्रमाण था कि वे उस मनुष्य में से निकल गई थीं। अशुद्ध आत्माओं के अस्तित्व के संबंध में वर्तमान में भिन्न प्रकार के विचार हैं। संभव है कि इस वर्णन में प्रचलित मान्यताओं के अनुसार यह घटना समझाई गई है, और कि वास्तव में उस व्यक्ति के व्यवहार और चिल्लाने के कारण सूअर डर गए और इस प्रकार नष्ट हुए। ऐसा विचार बुद्धि-संगत प्रतीत होता है। यदि हम मान भी लें कि यीशु ने सच-मुच आत्माओं को सूअरों में प्रवेश करने की अनुमति दी तो भी यह आपत्ति कि उस ने सूअरों पर अत्याचार किया सबल नहीं है। उस ने एक मनुष्य को बचाया। **५ : १५ लोग डर गए**, इस कारण कि जो कुछ हुआ वह उनके अनुभव और उनकी समझ से परे था। "कपड़े पहने", "सचेत" और "बैठे" शब्दों से उस मनुष्य का आमूल परिवर्तन प्रकट किया गया है। लोग चाहते थे कि यीशु चला जाए ताकि उनकी और भी अधिक हानि न हो। यीशु ने जो अधिकार अशुद्ध आत्माओं पर दिखाया उस से वे डर गए थे। संभाव्यतः उनको आशंका थी कि उसके कारण उन्हें और भी हानि उठानी पड़ेगी। वे यीशु की दया और प्रेम को नहीं पहचानते थे, न ही उन्हें उस अशुद्ध आत्मा-ग्रस्त की चिंता थी। इनकी विषमता में यह मनुष्य यीशु के साथ

रहना चाहता था (५ : १८), परंतु यीशु ने उसे आदेश दिया कि वह जाकर अपने लोगों को बताए कि प्रभु, अर्थात् परमेश्वर ने उसके लिए कैसे बड़े काम किए थे। उसको इस बात की साक्षी देनी थी। यह यीशु के साधारण आदेश के विपरीत था, कि लोग उसके कार्यों के संबंध में मौन रहें (१ : २, ४४; ३ : १२; ५ : ४३; ७ : ३६; ८ : २६)। यहां हमें यह शिक्षा प्राप्त है कि साक्षी देना आवश्यक है; जो कुछ परमेश्वर हमारे बीच में कर रहा है उसे घोषित करना चाहिए, विशेष रूप से अपने लोगों में, अपने परिवार से आरंभ करके। यह मनुष्य अयहूदियों के प्रदेश का था, कदाचित इसी कारण से उसे ऐसा आदेश दिया गया। **दिकपुलिस** यरदन पार का प्रदेश था जहां कई हेलेनी संस्कृति के नगर स्थित थे। इन में से कुछ का निर्माण महान सिकंदर के काल के पश्चात् ही हुआ। इन नगरों के लोग यहूदी धर्म और संस्कृति को अस्वीकार करते थे। ये स्वाधीन नगर थे, परन्तु अपनी रक्षा के लिए वे संघबद्ध हो जाते थे। "दिकपुलिस" शब्द का अर्थ "दशनगर" (हिं. सं.) है। कभी कभी ये वास्तव में दस होते थे परंतु भिन्न समयों में उनकी संख्या बदलती थी।

(ग) याईर की पुत्री और रक्तस्राव से पीड़ित स्त्री ५ : २१-४३
(मत्त. ९ : १८-२६; लू. ८ : ४०-५६)

यहां भी मत्ती का वर्णन बहुत संक्षिप्त है, और वह आरंभ से ही मृतक को जिलाने का वर्णन है। अनेक आलोचकों की मान्यता है कि इस स्थल में दो अलग घटनाओं का वर्णन है जिनको या तो मरकुस ने जोड़ा या वे मौखिक परंपरा में जोड़ी गईं। परन्तु हमारे विचार में घटनाओं का वही क्रम हुआ जो वर्णन में है। दो वर्णनों के जोड़े जाने के संकेत नहीं मिलते।

आराधनालय का सरदार एक साधारण अयाजक होता था, जिसका कार्य आराधनालय की आराधना का प्रबंध करना होता था। वह पदाधिकारी था, इस कारण उसका इस प्रकार नम्रतापूर्वक यीशु के सामने आकर उसकी सामर्थ्य और प्रभुता को मान लेना अत्यंत सार्थक था। उसकी पुत्री "मरने पर" थी (मत्ती के अनुसार वह मर चुकी थी)। उसको यीशु पर पूरा विश्वास था कि वह स्वस्थ कर सकता था। यीशु सदा ऐसे सत्कर्मों के लिए तत्पर होता था - "तब वह उसके साथ चला"। इस में भी वह हमारा आदर्श है। मत्ती **मर. ५ : २५, २६** को अपने वर्णन में सम्मिलित नहीं करता, और लूका, जो वैद्य कहलाता है (कुल. ४ : १४) उन्हें परिवर्तित करके वैद्यों पर दोषारोपण को काट देता है। यह स्त्री व्यवस्था के अनुसार अशुद्ध थी (लै. १५ : २५)। कदाचित यह कारण है कि वह केवल यीशु के वस्त्र को छू लेती है (५ : २८)। प्रे. १९ : १२; ५ : १५ से तुलना कीजिए। इस से स्त्री के विश्वास की ठोस अभिव्यक्ति हुई। **५ : २८ और ३४** में "चंगी हो जाऊंगी" और "चंगा किया है" एक ही यूनानी शब्द के अनुवाद हैं, जिसका अर्थ "उद्धार करना" भी है, अतः यहां विश्वास के द्वारा उद्धार प्राप्त करने की ओर स्पष्ट संकेत है—"तेरे विश्वास ने तुझे बचाया है"।

५ : ३० से ऐसा प्रतीत होता है कि जो शक्ति यीशु में थी वह यीशु के जानने के बिना प्रयुक्त हो सकती थी, तो भी वह यंत्रवत् नहीं वरन् व्यक्तिगत रूप से क्रियाशील होती थी, वह जादू-टोना नहीं थी। सामर्थ्य उस में से निकलने से यह तथ्य प्रकट हो जाता है कि यीशु के सत्कर्मों के लिए उसे स्वयं को व्यय करना पड़ता था। अपने विश्वास के द्वारा स्त्री यीशु की शक्ति से संबद्ध हो गई। हम जानते हैं कि एक प्रकार का संवेद है जो बिना ज्ञानेंद्रियों के प्राप्त होता है, अतः इस प्रकार स्त्री का यीशु की शक्ति का अनुभव करना बुद्धि से असंगत विचार नहीं है। यीशु का प्रश्न, "मेरा वस्त्र किस ने छूआ?" वास्तविक प्रश्न है, जिसको उस ने जानने के अभिप्राय से पूछा। ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्री ने इस सरल अभिप्राय को नहीं पहचाना, क्योंकि वह "डरती और कांपती हुई आई"। जैसे ऊपर कहा गया है, इस वर्णन के महत्वपूर्ण और सार्थक शब्द ५:३४ में पाए जाते हैं।

५ : ३६ में जिस शब्द का अनुवाद "अनसुनी करके" (हिं. सं. "ध्यान न दिया") किया गया है, उसका दूसरा अर्थ है, "संयोग से सुनकर", जो यहां उपयुक्त जान पड़ता है। इस पद में भी विश्वास पर बल दिया गया है—"केवल विश्वास रख"। ५ : ३७ इन विशेष शिष्यों का उल्लेख ९ : २ और १४ : ३३ में भी है। ऐसे अवसर पर रोना चिल्लाना आदि औपचारिक और प्रथानुसार होता था, वेतन-भोगी मातम करनेवाले रखे जाते थे। ५ : ३९ ("उस से कहा" के स्थान पर "उन से कहा" होना चाहिए)। अनेक व्याख्याता "लड़की मरी नहीं परंतु सो रही है" शब्दों को कठिन समझते हैं, क्योंकि उनका ठीक अर्थ स्पष्ट नहीं है। संभाव्यतः अर्थ यह है कि यद्यपि लड़की मर गई है, और उसका "सोना" चिरनिद्रा है, तो भी यीशु उसे उस निद्रा से जगाएगा। मत्ती और लूका के वर्णनों से स्पष्ट है कि उन्होंने इसको मृतक को जिलाने का आश्चर्यकर्म माना (लू. ८ : ५३, "यह जानकर कि मर गई है")। निश्चय यह ख्रिस्त द्वारा पुनरुत्थान की ओर संकेत है। लोगों का यीशु का उपहास करना भी इस व्याख्या का समर्थन करता है। "तलीता कूमी" शब्द (४१) वे आरामी शब्द हैं जो यीशु बोला और परंपरा में इस रूप में प्रचलित हो गए। इस प्रकार अरामी शब्द ३ : ७; ७ : ११, ३४; ९ :९, १०; १४ : ३६; १५ : २२, ३४ में भी पाए जाते हैं। यीशु के मृतकों को जिलाने के वर्णन लू. ७ : ११-१७ और यू. ११ : १-४६ में भी मिलते हैं। यह भी द्रष्टव्य है कि मत्ती ११ : ४-६ और लू. ७ : २२, २३ में "मुर्दे जिलाए जाते हैं" शब्द हैं, यद्यपि ये शब्द पुराना नियम के उन स्थलों में नहीं पाए जाते जिन की ओर इन पदों में संकेत है। यहां उपरोक्त बातें लागू हैं, जो प्रकृति-संबंधी आश्चर्यकर्मों के संबंध में लिखी गई हैं (४ : ३५-४१ की व्याख्या में)।

(५) नासरत में यीशु का अस्वीकरण। शिष्यों का भेजा जाना ६ : १-१३

(क) नासरत में यीशु का अस्वीकरण ६ : १-६

(मत्त. १३ : ५४-५८; लू. ४ : १६-३०)

इस अंश में मत्ती अधिकतर मरकुस का अनुसरण करता है, परंतु वह मरकुस के "बढ़ई" शब्द (६ : ३) को "बढ़ई का बेटा" में परिवर्तित करता है (मत्त. १३ : ५५)।

लूका का वर्णन दूसरे प्रसंग में और भिन्न भी है। उस में मरकुस ६ के केवल १, २, ३पू और ४पू पद सम्मिलित हैं, परंतु अन्य सामग्री भी मिलाई गई है। विद्वानों का साधारण विचार है कि मरकुस में प्रसंग अधिक ठीक है। मत्ती और मरकुस में "अपने देश में" शब्द हैं, परंतु नासरत का नाम नहीं है - वह लूका में है। यह माना जाता है कि मत्ती और मरकुस में भी नासरत अभिप्रेत है। आराधनालय का सरदार किसी को आराधना में उपदेश देने के लिए निमंत्रित कर सकता था। लोग नहीं मान सकते थे कि एक स्थानीय मनुष्य जिस से वे भली भांति परिचित थे, ऐसा महान हो सकता था जैसा यीशु प्रतीत होता था। उन्हों ने उसकी प्रज्ञा को पहचान लिया और उसके आश्चर्यकर्मों का यश सुन लिया था। मुख्य तथ्य ६ : ३ में पाया जाता है। केवल इस स्थल में यीशु बढ़ई कहा गया है, और यहां भी पाठभेद है। बहुत से उत्तम हस्तलेखों में "बढ़ई" के स्थान पर "बढ़ई का पुत्र" है, जैसा मत्ती में भी है। अधिक टीकाकार और अनुवादक "बढ़ई" को ठीक समझते हैं, परंतु पूर्ण निश्चय के साथ नहीं कहा जा सकता। यीशु के भाइयों और बहिनों के विषय में ३ : ३२ की व्याख्या को देखिए। ६ : ३ का भाव अनादरपूर्ण है। यीशु केवल बढ़ई और बढ़ई का पुत्र है, जिसका वास्तविक आदर नहीं हो सकता। "मरियम का पुत्र" शब्द यहूदियों के मुहाविरे के अनुसार नहीं है, क्योंकि वे किसी को उसकी माता का नहीं, वरन् उसके पिता का पुत्र कहते थे। इस कारण से अनेक व्याख्याताओं की मान्यता है कि इस संबंध में मत्त. १३ : ५५ अधिक ठीक है, "क्या यह बढ़ई का बेटा नहीं ? और क्या उसकी माता का नाम मरियम और उसके भाइयों के नाम याकूब और यूसुफ और शमौन और यहूदा नहीं ?" इस घनिष्ट परिचय के कारण नासारत के लोग यीशु को नगण्य समझते थे, "उन्हों ने उसके विषय में ठोकर खाई", वे उस पर विश्वास नहीं कर सके क्योंकि उनके लिए यह मानना कठिन था कि हमारे उपनगर का लड़का ऐसा महान हो सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि ६ : ४ एक साधारण कहावत है। वह भिन्न रूपों में यू. ४ : ४४, मत्त. १३ : ५७ और उसके समान पदों में पाई जाती है। ६ : ५ में मरकुस के सरल और स्पष्ट वर्णन पर ध्यान देना चाहिए। इस से ज्ञात होता है कि यीशु के सामर्थ्य के कार्य न केवल उसके आत्मिक बल पर वरन् लोगों की प्रतिक्रिया पर भी निर्भर होते थे। ६ : ६ में यीशु की मानवता प्रकट होती है, क्योंकि उसका आश्चर्य करना इस तथ्य का प्रमाण है कि वह नहीं जानता था कि लोग इस प्रकार अविश्वास प्रकट करेंगे।

(ख) शिष्यों का भेजा जाना ६ : ७-१३

(मत्त. १० : १-१५; लू. ९ : १-६; लू. १० : १-१२ से भी तुलना कीजिए, जहां सत्तर के भेजे जाने का वर्णन है)

मत्ती के वर्णन के बीच में बारह शिष्यों के चुने जाने का वर्णन सम्मिलित किया गया है। केवल मरकुस के अनुसार शिष्य दो दो करके भेजे जाते हैं। संभाव्यतः अनेक विद्वानों की यह मान्यता ठीक है कि लूका १० : १-१२ एक ऐतिहासिक वर्णन नहीं परंतु अन्य विवरणों की सामग्री का सम्मिश्रण है, और कि सत्तर संख्या का प्रयोग

लाक्षणिक है। सत्तर पूर्णता का लक्षण है। इन वर्णनों में उन वस्तुओं की सूचियों में भी अंतर है जिनको साथ ले जाने का निषेध है। मरकुस के अनुसार लाठी ले जाना चाहिए, परंतु मत्ती और लूका में यह निषिद्ध है। जूती पहिनना मरकुस में उचित परंतु मत्ती में निषिद्ध है। लूका में जूती का उल्लेख नहीं है। परंतु मुख्य अभिप्राय सब में एक ही है, अर्थात् कि यात्रा के लिए वे अपने साथ न्यूनतम सामान ले जाएं, साधुओं के सदृश जीवन व्यतीत करें। मत्ती की सूची अधिक कड़ी है, अतः कुछ विद्वानों की मान्यता है कि मूल सूची यही है, और मरकुस ने उसे पाठकों की परिस्थिति में अनुकूल परिवर्तित किया है। इस परिच्छेद से ज्ञात होता है कि यीशु शिष्यों द्वारा प्रचार को अत्यावश्यक समझता था। ६ : १० यहूदियों का आतिथ्य-सत्कार सुप्रसिद्ध था। यदि शिष्य घर घर जाकर रहते तो खतरा था कि वे अधिक समृद्ध लोगों के भवनों में ठहरना पसंद करें, और इस प्रकार संदेश को हानि पहुंचे। ६ : ११ यहूदियों की यह प्रथा थी कि विदेश से पलिश्तीन को लौटते समय सीमा पर वे अपने पैरों की धूल झाड़ते थे। "कि उन पर गवाही हो" का अर्थ है, उन्हें चेतावनी देने के लिए (बुल्के का अनुवाद ऐसा है)। इन शब्दों का अभिप्राय श्रोताओं या पाठकों में उत्तरदायित्व का भाव उत्पन्न करना है। हमें नहीं बताया गया है कि उनके प्रचार का संदेश क्या था। संभाव्यतः वही था जिसका प्रचार यीशु भी करता था, अर्थात् कि परमेश्वर का राज्य निकट आ गया, इसलिए मन-परिवर्तन करना चाहिए। यह तथ्य ध्यान में रखना चाहिये कि ख्रिस्त की मृत्यु और पुनरुत्थान से पहले वह पूरा सुसमाचार-प्रचार असंभव था जो इन घटनाओं के पश्चात् हुआ। यह प्रचार तैयारी के रूप में था। यीशु के स्वास्थ्य-दान के कार्य प्रकट करते थे कि परमेश्वर के राज्य की स्थापना हो रही थी। "तेल मलकर" का उल्लेख यीशु के कार्यों के संबंध में नहीं हुआ है। तेल मलना साधारण इलाज माना जाता था, परन्तु यहां यह अर्थ नहीं है। यहां तेल परमेश्वर के स्वास्थ्यजनक सामर्थ्य का साधन समझा गया है। इस प्रकार कलीसिया में तेल का प्रयोग करने की प्रथा आरंभ हो गई, जो वर्तमान में भी अनेक कलीसियाओं में प्रचलित है। तुलना कीजिए याकूब ५ : १४, १५।

अनेक विद्वानों की मान्यता है कि यह वर्णन अनैतिहासिक है, परन्तु अन्य विद्वान इसे बहुत प्रामाणिक मानते हैं, क्योंकि यह सुसमाचारों के चार मुख्य स्रोतों में, अर्थात् मरकुस, Q, M, और L में पाया जाता है। यह मत अधिक स्वीकार्य प्रतीत होता है। इस घटना के काल की ओर कोई संकेत नहीं किया गया है। इस वर्णन में जो आदेश हैं वे उस काल के अनुकूल हैं, और कदाचित ब्यौरे सहित सब कालों के लिये उपयुक्त न हों। तो भी इन आदेशों की मुख्य बातें, अर्थात् सुसमाचार प्रचार की नितांत आवश्यकता और स्वास्थ्यदान चिरंतन हैं।

४. गलील से परे यीशु की सेवा ६ : १४-८ : २६

(१) यीशु के विषय में हेरोदेस का विचार। यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाले की मृत्यु ६ : १४-२९ (मत्त. १४ : १-१२; लू. ९ : ७-९)

लूका में यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाले की मृत्यु का वर्णन नहीं है। टीकाकारों का

सामान्य विचार है कि मरकुस में इसको सम्मिलित करने का अभिप्राय केवल यह है कि बारह शिष्यों के भेजे जाने और उनके लौटने के अंतरिम समय और स्थान को भरा जाए।

इस में हेरोदेस अंतिपास का वर्णन है, जो महान हेरोदेस का पुत्र और ४ ई. पू. से ३९ ई. स. तक गलील और पिरीया (यरदन पार) का शासक था। वास्तव में वह राजा नहीं था। सही शब्द का प्रयोग मत्त १४ : १ में किया गया है, "चौथाई देश का राजा" (हि. प्र.) या "राज्यपाल" (हिं. सं.)। तो भी संभवतः स्थानीय प्रथा के अनुसार वह सामान्यतः राजा कहलाता था। उसकी प्रतिक्रिया से पता चलता है कि यूहन्ना के संबंध में उसका अंतःकरण उसको कष्ट दे रहा था। यह पूर्णतः संभव है कि उस ने सोचा कि यूहन्ना पुनरुत्थित हुआ। ६ : १४ से ऐसा प्रतीत होता है कि यूहन्ना की मृत्यु से पहले यीशु का यश प्रसारित नहीं हुआ, परन्तु मत्त. ११ : ३२ क्र. और लू. ७ : १८ क्र. से तुलना कीजिए। यहूदियों की साधारण आशा थी कि मल. ४ : ५ के अनुसार ख्रिस्त के आगमन से पूर्व एलिय्याह लौटेगा।

६ : १७ में अंतिपास के भाई फिलिप्पुस का उल्लेख है। वास्तव में उसका भाई फिलिप्पुस गलील के उत्तर-पूर्व के प्रदेश का राज्यपाल था। हेरोदियास नहीं, वरन् हेरोदियास की पुत्री शलोमी जिस ने इस वर्णन के अनुसार नृत्य किया उसकी पत्नी थी। हेरोदियास अंतिपास के एक अन्य भाई की पत्नी थी जो रोम में रहता था। यहां मरकुस ने त्रुटि की है, या संभव है कि दो सौतेले भाइयों का नाम फिलिप्पुस था। हेरोदेस-वंशियों का परस्पर संबंध कुछ उलझा हुआ है। हेरोदेस महान की दस पत्नियां थीं। हेरोदियास उसकी पोती थी। हेरोदेस अंतिपास ने अपनी पत्नी को, जो नबाती (अरब) राजा की पुत्री थी, त्यागकर अपने भाई की पत्नी हेरोदियास को अपना लिया। दोनों में परस्पर आकर्षण था। अतः यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि जब यूहन्ना ने इस अनुचित कार्य के कारण अंतिपास की भर्त्सना की तब हेरोदियास इसको नहीं सह सकी (६ : १७-१९)। हेरोदेस अंतिपास का वर्णन "नया नियम की पृष्ठभूमि" पृष्ठ ४३-४५ में है। योसेपस, यहूदी इतिहास लेखक, अपनी पुस्तक "यहूदियों की प्राचीन परंपरा" (१८ : ५ : १, २) में अंतिपास के हेरोदियास को अपनाने और यूहन्ना की मृत्यु के वर्णनों को सम्मिलित करता है, परन्तु इन दो घटनाओं में कोई संबंध प्रकट नहीं करता। वह लिखता है कि अंतिपास ने मकैरुस में, जो मृतक सागर के पूर्वी तट के निकट स्थित था, यूहन्ना का सिर कटवाया, इस कारण कि उसको आशंका थी कि यूहन्ना, जो जनता को बहुत प्रभावित कर रहा था, विद्रोह करेगा। संभाव्यतः यह उसी घटना का एक भिन्न वर्णन है जो मरकुस में भी है। यद्यपि इन दो वर्णनों में अंतर है तो भी वे असंगत नहीं हैं। निस्संदेह दो भिन्न अभिप्राय बताए गए हैं, परन्तु दोनों सच हो सकते हैं। मरकुस किसी स्थान का उल्लेख नहीं करता। मकैरुस गलील से दूर था, परन्तु यह अंतिपास के प्रदेश में स्थित था, और यह असंभव नहीं है कि अंतिपास ने वहां अपने जन्म दिन का भोज किया। अनेक टीकाकारों की मान्यता है कि हेरोदेस की पुत्री जैसी राजकुमारी इस प्रकार न नाचती, क्योंकि ऐसा नृत्य अश्लील माना जाता था। परन्तु

इस तथ्य के अनेक साक्ष्य मिलते हैं कि हेरोदेस-वंशियों का आचरण नैतिक रूप से निकृष्ट था, अतः मरकुस का वर्णन किसी प्रकार से असंभव नहीं है। यह भी स्वाभाविक बात है कि अंतिपास, भोज की रंगरलियों और मद्य से प्रभावित होकर, इस प्रकार की मूर्खता-पूर्ण प्रतिज्ञा करे। वह लड़की की मां से व्याकुल हो जाता है, क्योंकि यूहन्ना के संबंध में वह दोचित्ता है। उसकी अभिवृत्ति का एक पक्ष मरकुस में, दूसरा पक्ष योसेपस में प्रकट किया गया है। मरकुस में भी दूसरे पक्ष की ओर संकेत है - वह यूहन्ना से डरता था (६ : २०)।

यह मनोवैज्ञानिक रूप से एक सच्चा वर्णन प्रतीत होता है। जहां तक हम हेरोदेस के स्वभाव से परिचित हैं यह वर्णन उसके स्वभाव के अनुकूल है। यीशु ने उसे "वह लोमड़ी" कहा था (लू. १३ : ३२)। हेरोदेस का चित्रण भी यथार्थ प्रतीत होता है।

(२) अतिरिक्त आश्चर्यकर्म ६ : ३०-५६

(क) शिष्यों का लौटना। पांच सहस्र को भोजन कराना ६ : ३०-३४

(मत्त. १४ : १२-२१; लू. ९ : १०-१७; यू. ६ : १-१३)

इस परिच्छेद और अगले परिच्छेद के संबंध में ४ : ३५-४१ की व्याख्या को पढ़िए। जो कुछ "प्रकृति-संबंधी" आश्चर्यकर्मों के विषय में कहा गया है वह इन दो वर्णनों पर भी लागू है। केवल इस सामर्थ्य के कार्य का वर्णन चारों सुसमाचारों में पाया जाता है। यदि हम इसको और ८ : १-१० को एक ही घटना के भिन्न वर्णन मानें तो सुसमाचारों में यह घटना छः बार वर्णित है (लूका में चार सहस्र को भोजन कराने का वर्णन नहीं है)। संभव है कि यह परिच्छेद पतरस के संस्मरण पर आधारित है।

वर्तमान में अधिकांश विद्वानों की मान्यता है कि उपरोक्त दो स्थलों में एक ही घटना के दो वर्णन हैं। इस मान्यता के विरुद्ध ये तर्क हैं : (i) मरकुस के वर्णनों से स्पष्टतः ज्ञात होता है कि मरकुस इन्हें दो पृथक घटनाएं मानता था। (ii) सब संख्याओं में अंतर है, जो इस प्रकार है :

	६ : ३०-४४	८ : १-१०
जनसमूह की संख्या	५०००	४०००
रोटियां	५	७
मछलियां	२	कुछ
टोकरियां	१२	७

(iii) इन दो वर्णनों में भिन्न यूनानी शब्दों का अनुवाद है, और यह अंतर ८ : १९ और २० में भी पाया जाता है, जहां दो पृथक घटनाओं में भेद किया गया है।

उपरोक्त तथ्य इस मान्यता के समर्थन में प्रस्तुत किए जा सकते हैं कि वास्तव में ये दो पृथक घटनाएं थीं। इस मान्यता के विरुद्ध निम्न-लिखित तर्क दिए जाते हैं : (i) यद्यपि यह असंभव नहीं है कि यीशु ने दो बार एक ही प्रकार का सामर्थ्य का कार्य किया तो भी यह असंभाव्य प्रतीत होता है कि उस ने थोड़े ही समय की अवधि में ऐसा

किया। (ii) क्या यह संभव है कि पांच सहस्र के तृप्त किए जाने को देखने के पश्चात् शिष्य वह प्रश्न पूछते जो ८ : ४ में वर्णित है, "यहां जंगल में इतनी रोटी कोई कहां से लाए कि वे तृप्त हों ?" ? इस समस्या के संबंध में निश्चय नहीं हो सकता, परन्तु हमें ऐसा प्रतीत होता है कि यह एक ही घटना है, और ८ : १८-२१ की रचना मौखिक परंपरा में हुई, क्योंकि लोग इनको दो भिन्न घटनाएं मानते थे।

यहां शिष्य "प्रेरित" कहे गए हैं, जिसका शाब्दिक अर्थ है, "भेजे हुए"। शीघ्र ही यह कलीसिया में एक पारिभाषिक शब्द हो गया (यूनानी "अपोस्तलस", जिस से अंग्रेजी शब्द Apostle बना)। परन्तु नया नियम में इसका प्रयोग केवल बारह शिष्यों के लिए ही नहीं किया गया। पौलुस स्वयं को प्रेरित कहा करता था। प्रे. १४ : १४ आदि में बरनबास और पौलुस, और रो. १६ : ७ में अन्द्रुनिकुस और यूनियास प्रेरित कहे गए हैं। जिस अंश पर हम ध्यान दे रहे हैं उस में अधिकतर उसका शाब्दिक अर्थ समझ लेना चाहिए, परन्तु निस्संदेह मरकुस के पाठकों के लिए वह इस से अधिक सार्थक था। वह स्थान जहां प्रेरित भ्रमण करने के पश्चात् एकत्रित हुए नहीं बताया गया। संभाव्यतः वह कफरनहूम था। यीशु को विश्राम और शांति की आवश्यकता का अनुभव हुआ, और वह जानता था कि शिष्यों को भी इनकी आवश्यकता थी। ६ : ३१ जैसे स्थलों से हमें ज्ञात होता है कि यीशु बहुधा कार्य करने में व्यस्त रहता था। अनेक टीकाकारों का विचार है कि इस अंश के ब्योरे रचयिता की कल्पना से रचे गए हैं ताकि वह आध्यात्मिक तथ्यों को प्रस्तुत कर सके। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि ये ब्योरे मुख्यतः ऐतिहासिक तथ्यों का सारांश हैं। निस्संदेह यह विचित्र सी बात है कि यीशु और उसके शिष्य नौका में चले, यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि वे अधिक शीघ्रता से स्थल-मार्ग से पहुंच सकते थे। यह भी अस्पष्ट है कि वे कहां गए। ऐसा प्रतीत होता है कि मरकुस उत्तरी पलिश्तीन के भूगोल और स्थल-आकृति से सुपरिचित नहीं था। हमें इन प्रश्नों के उत्तर नहीं मिलते, परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि हम इस वर्णन को अनैतिहासिक मानने को बाध्य हों। यीशु ने लोगों पर तरस खाया (६ : ३४), इस कारण नहीं कि वे भूखे थे, परन्तु इस कारण कि वे नेता-रहित थे। उद्धरण गि. २७ : १७ से है, जहां मूसा परमेश्वर से बिनती करता है कि वह इस्राएलियों के लिए एक नेता को नियुक्त करे, "जिस से यहोवा की मंडली बिना चरवाहा की भेड़ बकरियों के समान न रहे"। यहां यीशु इस्राएल के लोगों को फिर उसी परिस्थिति में देखता है। मरकुस यहां केवल शिक्षा देने का उल्लेख करता है, परन्तु लूका के अनुसार यीशु स्वास्थ्य-दान भी करता है। मत्ती में केवल स्वास्थ्य-दान का वर्णन है। **६ : ३५ और ३६** से प्रकट होता है कि शिष्य किस कदर यीशु को समझने में असफल रहे - उन्हों ने सोचा कि यीशु इस परिस्थिति को नहीं निपटा सकता। ६ : ३७ में वह उत्तरदायित्व उन पर लादता है, और उनका उत्तर कुछ अनादरपूर्ण है, इस लिए मत्ती उस उत्तर को अपने वर्णन में सम्मिलित नहीं करता, और लूका उसकी उग्रता को कम करता है। यीशु उनको सिखा रहा था कि इस स्थिति में भी वह लोगों की आवश्यकता को पूरा कर सकता था।

६ : ३७ में हि. प्र. में त्रुटि है। यूनानी में सौ नहीं, दो सौ दीनार की रोटियों का उल्लेख है। हि. सं. को भी देखिए। मत्त. २० : २ में एक दीनार एक दिन की मजदूरी बताया गया है। अनेक टीकाकार कहते हैं कि **६ : ३६ और ४०** अत्यंत सजीव और यथार्थ हैं, मानो वे प्रत्यक्ष-दर्शी की साक्षी पर आधारित हैं। हरी घास बसंत की ओर संकेत करती है, क्योंकि पलिश्तीन में केवल बसंत ऋतु में हरी घास होती है। **६ : ४१** की तुलना १४ : २२ से करना चाहिए। कई शब्द हैं जो दोनों पदों में पाए जाते हैं : (१४ : २२ के रूप कोष्ठक में हैं) रोटियां (रोटी), धन्यवाद किया (आशिष मांगकर), तोड़कर (तोड़ी), देता गया (दी)। दोनों में वही शब्द भिन्न रूपों में प्रयुक्त हुए हैं। १४ : २२ में अंतिम भोज का वर्णन है, अतः उन्हीं शब्दों का प्रयोग ६ : ४१ में करके मरकुस प्रकट करता है कि उसकी समझ में जनसमूह को भोजन कराना उस अंतिम भोज और प्रभु भोज की ओर संकेत करता है। इस घटना की यह व्याख्या यूहन्ना रचित सुसमाचार में और भी स्पष्ट व्यक्त की गई है। संभवतः कलीसिया में प्रभु भोज को मानते समयइस घटना का प्रयोग उपदेश देने में किया जाता था, और जब सुसमाचार लिखे गए तब इस का प्रभाव उन पर हुआ। **६ : ४२-४४** स्पष्ट प्रकट करते हैं कि यह एक चमत्कार माना गया। इन पदों की शिक्षा यह है कि यीशु मनुष्यों की आवश्यकताओं को प्रचुरता से पूरा करता है।

इस परिच्छेद की पृष्ठभूमि पुराना नियम है : नि. १६ (मन्ना), १ रा. १७ : ८-१६ (एलिय्याह और विधवा); २ रा. ४ : ४२-४४ (एलीशा और जव की रोटियां)। यह वर्णन युगांत में विश्वासियों की परिस्थिति की ओर भी संकेत करता है, जो धर्म-शास्त्र में कहीं कहीं "मसीह-संबंधी भोज" के रूप में प्रस्तुत की गई है। उदाहरण के लिए यश. २५ : ६-८; लू. १३ : २९; १४ : १५-२४=मत्त. २२ : १-१४; आदि। अनेक टीकाकारों की मान्यता है कि मरकुस की अभिप्राय इस वर्णन के द्वारा यह दिखाना था कि यीशु यहूदियों को तृप्त करता है, और चार सहस्र को भोजन कराने के वर्णन से कि वह अयहूदियों की आवश्यकताओं को भी पूरा करता है। उनके तर्कों का एक उदाहरण यह है कि पहले वर्णन में "टोकरी" के मूल यूनानी शब्द का अर्थ एक ऐसी टोकरी है जिसका प्रयोग यहूदी करते थे और दूसरे वर्णन में एक अन्य शब्द का प्रयोग किया, गया है। हमारी दृष्टि में तर्क कायल करनेवाला तर्क नहीं हैं। फिर भी यह व्याख्या धर्माचार्यों के काल से प्रचलित है।

(ख) यीशु का सागर पर चलना ६ : ४५-५२

(मत्त. १४ : २२-३३; यू. ६ : १५-२१)

लूका ने मरकुस ६ : ४५-८ : २६ को अपने सुसमाचार में सम्मिलित नहीं किया। कदाचित कारण यह है कि प्राचीन काल के कुण्डल पत्रों पर सामग्री सीमित मात्रा में लिखी जा सकती थी। यह भी संभव है कि यह खंड कुछ अंशों में ६ : ३०-४४ को दोहराता है। मत्ती पतरस के पानी पर चलने का प्रयत्न करने का वर्णन सम्मिलित करता है। सहदर्शी सुसमाचारों में और यूहन्ना में भी इस घटना का संबंध जन-समूह

को भोजन कराने के वर्णन से स्पष्ट है। मरकुस के अनुसार शिष्यों का अभिप्राय बैत-सैदा जाने का था, परन्तु यूहन्ना के अनुसार वे कफरनहूम जाना चाहते थे। लू. ९ : १० के अनुसार भोजन कराने की घटना बैतसैदा के निकट हुई। भौगोलिक रूप से ये वर्णन स्पष्ट नहीं हैं। ६ : ५३ के अनुसार वे वास्तव में गन्नेसरत पर उतरे। यू. ६ : १५ से हमें ज्ञात होता है कि इस अवसर पर लोग यीशु को राजा बनाना चाहते थे। कदाचित यह कारण है कि यीशु ने शिष्यों को नौका पर चढ़ने को बाध्य किया। यीशु अपनी प्रथानुसार एकांत में प्रार्थना करने जाना चाहता था। ६ : ४७ में "जब सांझ हुई" की तुलना ६ : ३५ से कीजिए - लोगों को भोजन कराने से पहले "दिन बहुत ढल गया" था। बीच में बहुत समय नहीं बीता। ६ : ४८ **रात का चौथा पहर** रोमी गणना के अनुसार है, क्योंकि यहूदी रात को तीन पहरों में बांटते थे। यह लगभग तीन बजे था। इस हिसाब से शिष्य रात भर खेते रहे थे, अतः बहुत थक गए होंगे। हवा उनके विरुद्ध थी। ये उन लोगों का प्रतीक हैं जो जीवन की कठिनाइयों में विरुद्ध प्रयत्न करते करते थके हुए हैं। यीशु उनके पास आकर उनको आश्वासन देता और उनकी सहायता करता है। उन यूनानी शब्दों का अर्थ जिनका अनुवाद "झील पर चलते हुए" किया गया है यह भी हो सकता है कि यह झील के किनारे चल रहा था। यू. २१ : १ में स्पष्ट रूप से इन्हीं यूनानी शब्दों का यही अर्थ है। परन्तु ६ : ४७ में "भूमि पर" शब्दों में ऐसे ही शब्द-विन्यास का प्रयोग किया गया है। प्रत्यक्ष रूप से मरकुस की दृष्टि में यह पानी पर चलने का चमत्कार था। यद्यपि हम पूर्ण रूप से इसको नहीं समझ सकते फिर भी मान सकते हैं कि यीशु परमेश्वर-पुत्र ने, मानव होते हुए भी, वह किया जो कोई अन्य मनुष्य नहीं कर सकता। सिद्ध पुरुष वही है।

इस पद में "आगे निकल जाना चाहता था" शब्द कुछ कठिन हैं। अर्थ यह प्रतीत होता है कि वह आगे निकला जा रहा था। हिं. सं. का अनुवाद इस प्रकार है, "वह उनके समीप से निकले जा रहे थे"। कारण नहीं बताया गया है, और अनुमान लगाना व्यर्थ है। ६ : ४९ प्रकट करता है कि मरकुस के अनुसार यीशु के रूप-रंग में अलौकिक तत्व था। मरकुस का अभिप्राय यह है कि पाठक ६ : ५० के शब्दों को अपनी परिस्थिति पर लागू करें। यीशु सदा सर्वदा उपस्थित है और हमारी परिस्थिति को जानता है, अतः हमें डरने की आवश्यकता नहीं है। ६ : ५१ का पाठ भी स्पष्ट है - ज्यों ही यीशु नौका पर चढ़ जाता है त्यों ही वायु थम जाती है। यह पद और अगला पद प्रकट करते हैं कि शिष्यों ने यीशु के वास्तविक व्यक्तित्व को नहीं पहचाना था। अनेक विद्वानों की मान्यता के अनुसार यह बात ऐतिहासिक नहीं वरन् लेखक की कल्पित रचना है, जो "मसीह विषयक रहस्य" से संबंधित है। उनका यह विचार है कि शिष्य ऐसे मंद बुद्धि नहीं हो सकते थे, परन्तु यदि उनकी ख्रिस्त-संबंधी विचार-धारा बहुत अपूर्ण थी तो हमारे विचार में यह असंभव नहीं है। यहां मत्ती मरकुस की बातों को पूर्ण रूप से परिवर्तित करके लिखता है कि शिष्यों ने यीशु को दंडवत करके परमेश्वर-पुत्र मान लिया। यह मरकुस के वर्णन से असंगत है।

(ग) गन्नेसरत में रोगियों को स्वस्थ करना ६ : ५३-५६
(मत्त. १४ : ३४-३६)

पिछले अंश में आरंभ में बताया गया कि वे बैतसैदा जाना चाहते थे, परन्तु किसी कारण से वे उतरे गन्नेसरत पर, जो कफरनहूम से दक्षिण की ओर स्थित एक उपजाऊ मैदान था जहां जनसंख्या बहुत थी। यह मैदान लग भग डेढ़ किलोमीटर चौड़ा और साढ़े चार किलोमीटर लंबा था। विद्वानों में सामान्य सहमति है कि यह अंश मरकुस की अपनी रचना है। इस में ब्योरेवर वर्णन नहीं वरन् सामान्य वर्णन है। जैसे ऊपर कहा गया है, ऐसा प्रतीत होता है कि मरकुस उत्तर पलिश्तीन के भूगोल से सुपरिचित नहीं था। यह अंश १ : ३२-३४ और ३ : १०-१२ के समान है। वस्त्र को छूने के संबंध में ५ : २७ से तुलना कीजिए। ऐसे वर्णनों से ज्ञात हो जाता है कि यीशु के बहुत कार्य सुसमाचारों में वर्णित नहीं हैं।

(३) परंपरा पालन का प्रश्न ७ : १-२३
(मत्त. १५ : १-२०)

इस अंश में मत्ती मरकुस के क्रम को परिवर्तित करके यशायाह का उद्धरण कुरबान विषयक वर्णन के पश्चात् सम्मिलित करता है, और मत्त. १५ : १२-१४ मत्ती के विशेष स्रोत से जोड़े गए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रसंग से इस अंश का कोई विशेष संबंध नहीं है। समय और स्थान का कोई उल्लेख नहीं है। अयहूदी पाठकों के लिए मरकुस कई बातों का स्पष्टीकरण करता है, उदाहरणार्थ ७ : ३, ४, ११। यह एक ऐसा वर्णन है जिस में कई पृथक बातें मिलाई गई हैं। संभवतः यह वर्णन मरकुस को इसी रूप में मिला, अर्थात् उसका सम्मिश्रण मौखिक परंपरा की रचना के समय हुआ था। हम इसे तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं।

७ : १-८ : ७ : २ हिं. सं. में अधिक स्पष्ट है : "अशुद्ध, अर्थात् बिना धुले हाथों से भोजन कर रहे हैं"। ७ : ३ में "सब" शब्द में अत्युक्ति है, क्योंकि हमें ज्ञात है कि शाब्दिक अर्थों में सब यहूदी ऐसा नहीं करते थे। यह एक साधारण प्रथा थी। अनेक विद्वानों का दावा है कि केवल याजक ऐसा शुद्धिकरण करते थे, परंतु संभव है कि साधारण यहूदी भी ऐसा ही करते थे। मरकुस की साक्षी तलमूद की साक्षी से कम प्रामाणिक नहीं है। "पुरनियों की रीति" (हिं. सं. "प्रचीन पुरुषों की परंपरा") यहूदियों की वह मौखिक परंपरा है जो व्यवस्था के स्पष्टीकरण के लिए रची गई। फरीसी इसका पूरा पालन करते थे, परंतु सदूकी उसको नहीं मानते थे। यह मौखिक परंपरा कालांतर में मिशनाह और फिर तलमूद में संकलित की गई, परंतु यीशु के काल में यह मौखिक ही थी। यीशु इसको "मनुष्यों की रीति" (हिं. सं. "मनुष्यों की परंपरा") कहता है (७ : ८)। उसकी दृष्टि में लिखित व्यवस्था परमेश्वर की ओर से, परंतु यह मौखिक परंपरा मनुष्यों की ओर से थी। "भली भांति" एक यूनानी शब्द का अनुवाद है जिसका शाब्दिक अर्थ "मुक्के से" है। हिं. सं. में इसका अनुवाद "विधि के अनुसार" है, और

पद टिप्पणी दी गई है, "मूल भाषा में शब्द 'पुग्मे' है, जिसके अनेक प्रस्तावित अर्थ विचारणीय हैं, जैसे-कुहनी, मुट्ठी, हथेली के बीच का भाग, आदि"। वास्तव में विद्वान नहीं जानते कि इसका अर्थ क्या है। संभाव्यतः वह मुसलमानों के वुज़ू के समान यथाविधि हाथ धोने की रीति थी। ७ : ४ के पहले भाग का अर्थ यह भी हो सकता है कि जो खाद्य पदार्थ बाजार से लाया जाता है वे उस में से कुछ नहीं खाते जब तक वह न धोया जाए - "आकर" शब्द यूनानी मूल में नहीं है। हि. प्र. के पाठ और उसके पद-टिप्पणी में दो भिन्न यूनानी शब्दों के अनुवाद हैं। यूनानी मूल में पाठभेद है। "स्नान करना" यूनानी शब्द 'बपतिद्ज़ेन" का अनुवाद है, जिस से "बपतिस्मा" शब्द बना है, परन्तु यहां उसका प्रयोग साधारण अर्थों में है। ७ : ३ और ४ का अभिप्राय अयहूदी पाठकों के लिए यहूदियों के अनुष्ठानों का स्पष्टीकरण करना है। ७ : ६ में उद्धरण यश. २६ : १३ से है। विशेष रूप से अंतिम पंक्ति में इस पद के शब्द यशायाह के इब्रानी मूल पाठ से भिन्न हैं। इस पद में और सप्तति अनुवाद में थोड़ा ही अंतर है। इस कारण अनेक टीकाकारों की मान्यता है कि यीशु ने स्वयं यशायाह के इस पद को प्रस्तुत नहीं किया। फिर भी इस पद की इब्रानी और उसका हिन्दी अनुवाद भी यहां ठीक से लागू हैं। मूल तथ्य यह है कि मौखिक परंपरा मनुष्यों से रची गई, वह प्रामाणिक नहीं है। सारांश ७ : ८ में है। पलिश्तीन की प्राचीन कलीसिया में यह एक महत्वपूर्ण विषय था, जिसके संबंध में कलीसिया और आराधनालय में तनाव होता था। संभाव्यतः यह उस कलीसिया के लिए भी एक समस्या थी, जिसके लिए मरकुस ने इस सुसमाचार को लिखा।

७ : ९-१३ में "परमेश्वर की आज्ञा टालने" का एक उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। यह स्पष्ट है कि मूल रूप से यीशु यहूदी व्यवस्था का आदर और पालन करता था। ७ : १० में पांचवीं आज्ञा प्रस्तुत है, जिसका पहला भाग नि. २० : १२ और व्य. ५ : १६ से और दूसरा भाग नि. २१ : १७ से उद्धृत है। "कुरबान" शब्द (उर्दू में भी कुरबान) का अर्थ वह पशु आदि है जो परमेश्वर के सामने चढ़ाया जाता है। वह संकल्प अथवा अर्पित (हिं. सं.) था। इस शब्द का प्रयोग इस प्रकार से भी किया जाता था कि कोई व्यक्ति किसी वस्तु अथवा संपत्ति को परमेश्वर के लिए अर्पित (कुरबान) करके उसे साधारण प्रयोग से अलग कर सकता था, और यद्यपि वह उसे मंदिर में या याजक को नहीं देता था तो भी कह सकता था कि कोई अन्य व्यक्ति उसका प्रयोग नहीं कर सकता क्योंकि वह "कुरबान" है। वर्तमान यहूदी विद्वानों का दावा है कि रब्बी यह शिक्षा नहीं देते थे कि इस परिस्थिति में मौखिक परंपरा को व्यवस्था से अधिक मानना चाहिए। मिशनाह में साक्षी है कि वास्तव में इस विषय पर यीशु और रब्बियों की शिक्षा में सहमति है। परंतु मिशनाह का लिखित रूप मरकुस रचित सुसमाचार के बहुत पश्चात् के काल का है, और प्रचलित प्रथाओं के संबंध में मरकुस उतना ही प्रामाणिक है जितना तलमूद। संभाव्यतः यीशु के काल में ऐसे यहूदी शिक्षक थे जो इस प्रकार की शिक्षा देते थे, जिसके विरुद्ध यीशु इस अंश में बोलता है। "कुरबान" शब्द का प्रयोग एक शपथ के रूप में भी किया जाता था। संभवतः यहां भी उसका यही अर्थ है। ७ :

११ के आरंभ में "तुम" शब्द पर बल दिया गया है। ये लोग मनुष्य-रचित विधियों को मानने से पांचवीं आज्ञा का उल्लंघन कर रहे थे।

७ : १४-२३ यीशु के युग के संदर्भ में, और हमारी वर्तमान परिस्थिति में भी ७ : १५ अत्यंत क्रांतिकारी है, क्योंकि वह साधारण प्रथाओं के विरुद्ध है। ७ : १६ इस कारण कोष्ठक में है कि वह सर्वश्रेष्ठ हस्तलेखों में नहीं है। ७ : १७ में "दृष्टांत" का अर्थ पहेली सा है। यूनानी शब्द का यह अर्थ भी होता है। शिष्यों के प्रश्न के संबंध में यीशु के उत्तर का सारांश और स्पष्टीकरण ७ : १९ के अंत में मिलता है। इसका अर्थ यह है कि जो भेद शुद्ध और अशुद्ध भोजनों में यहूदियों की व्यवस्था में किया गया है (उदाहरणार्थ लै. ११ अध्याय की विधियां) उसको नहीं मानना चाहिए। ७ : २० पद। १५ के उत्तरार्द्ध से संबंधित है और उसका स्पष्टीकरण है। संभवत: ७ : २०-२३ मौखिक परंपरा के समय मिलाए गए थे, जब यह सामग्री उपदेश और शिक्षण में प्रयुक्त की जा रही थी। इन पदों में ब्योरेवर इस तथ्य का स्पष्टीकरण है कि मूल रूप से शुद्धता और अशुद्धता आंतरिक हैं। गुणों की ऐसी सूचियां गल. ५ : १९ क्र. और कुल. ३ : ५ क्र. आदि में पाई जाती हैं। हि. प्र. और हि. सं. में थोड़ा सा अंतर है। "द्वेष के काम" "दुष्टता" से अच्छा है। "कुदृष्टि" शाब्दिक अनुवाद है, परन्तु यहां संभाव्यत: इस शब्द का अर्थ 'ईर्ष्या" (हि. सं.) है। फिर भी "कुदृष्टि" एक साधारण विचार है और यह अर्थ यहां असंभव नहीं है। आज तक बहुत लोग, जिन में अनेक ख्रिस्ती भी सम्मिलित हैं, बाह्य अनुष्ठानों, प्रथाओं, धर्मक्रियाओं आदि के द्वारा वास्तविक शुद्धता को प्राप्त करने का प्रयत्न करके परमेश्वर को प्रसन्न करना चाहते हैं। उनके लिए ये पद शिक्षाप्रद हैं।

(४) अतिरिक्त आश्चर्यकर्म ७ : २४-८ : २६

(क) सूरुफिनीकी स्त्री की बालिका को स्वस्थ करना ७ : २४-३०
(मत्त. १५ : २१-२८)

यहां मरकुस की तुलना में मत्ती का वर्णन अधिक पूर्ण है। विद्वानों की साधारण मान्यता यह है कि उसके पास यह सामग्री एक अन्य स्रोत में भी थी और उस ने इस को और मरकुस को सम्मिश्रित किया। मत्ती में यह स्त्री कनानी, अर्थात् प्राचीन कनान देश की जाति की, कही गई है। इस सुसमाचार में बताया गया है कि स्त्री के विश्वास के कारण उसकी पुत्री स्वस्थ हो गई। स्त्री यीशु को दाऊद का पुत्र कहती है।

"सूर और सैदा के देशों में", हि. सं. में अधिक ठीक है, "सूर की सीमा में"— यहां यूनानी में पाठभेद है। संभाव्यत: "और सैदा" शब्द मत्ती १५ : २१ से यूनानी पाठ में मिलाए गए। अनेक सर्वश्रेष्ठ हस्तलेखों में ये शब्द मरकुस में नहीं पाए जाते। सूर गलील से उत्तर-पश्चिम की ओर स्थित एक प्राचीन प्रसिद्ध बंदरगाह था। सूर के प्रदेश की सीमा सूर नगर से दूर थी। कोई संकेत नहीं है कि यीशु कितनी दूर उस प्रदेश में प्रविष्ट हुआ, न ही वहां जाने का अभिप्राय प्रकट किया गया है। "वह चाहता था कि कोई न जाने" शब्दों से ऐसा प्रतीत होता है कि वह कुछ समय एकांत में रहना चाहता

था। स्त्री के साथ यीशु के वार्तालाप के कारण इस चमत्कार का वर्णन सुसमाचार में सम्मिलित किया गया है। यीशु यहूदियों के प्रदेश से बाहर चला गया। स्त्री सूरु-फिनीकी थी। सूर बंदरगाह प्राचीन काल से फिनीकी लोगों का केन्द्र था, जहां से वे रोम सागर पर स्थित देशों में जलयानों द्वारा व्यापार करते थे। 'यूनानी' का अर्थ यह है कि वह यूनानी भाषी और हेलेनी संस्कृति से प्रभावित थी। वर्णन का सार ७ : २७-२९ में पाया जाता है। इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि कभी कभी यहूदी लोग अयहूदियों को कुत्ते कहते थे। वर्तमान भारत के समान वहां भी ऐसा कहना निरादर करना था। इस पद में यूनानी शब्द अल्पार्थक रूप में है, और उसका अर्थ छोटा पालतू कुत्ता है, अतः ख्रिस्तीय टीकाकार कहते हैं कि इस में प्यार का स्वर है। यहूदी अलोचक इस व्याख्या को नहीं मानते, फिर भी संभवतः वह सत्य है। अधिक संभाव्य यह प्रतीत होता है कि यीशु ने उस बात को ऐसे स्वर से कहा कि स्त्री को पता चला कि वह यहूदियों के साधारण विचार को व्यक्त कर रहा था, अपने विचार को नहीं। यदि यह सच है तो यीशु मानो स्त्री के विश्वास को परख रहा था। "लड़के" का अर्थ यहूदी लोग हैं, जिनका विश्वास था कि हम परमेश्वर के मनोनीत लोग हैं। स्त्री बड़ी बुद्धिमानी से उत्तर देती है, जो उसके विश्वास का प्रमाण भी है।

अनेक टीकाकारों की मान्यता है कि इन पदों में संकेत तक भी नहीं है कि यीशु ने इस अवसर पर अहूदियों में अपने कार्य को आरंभ किया, वरन् इसके विपरीत स्त्री मान लेती है कि यहूदी लोग लड़कों के समान और हम कुत्तों के समान हैं। इस विचार का समर्थन मत्ती १५ : २४ में है : "इस्राएल की खोई हुई भेड़ों को छोड़ मैं किसी के पास नहीं भेजा गया"। इस व्याख्या के अनुसार यह अवश्य था कि पहले यहूदियों को अवसर दिया जाए, और यीशु ने स्वयं अयहूदियों में प्रचार करने का प्रयत्न नहीं किया। यह माना जाता था कि यीशु परमेश्वर की योजना के अनुसार कार्य करके केवल यहूदियों के पास गया, उद्धार का संदेश पहले उनको मिलना था - देखिए रो. १ : १६; यू. ४ : २२; प्रे. ३ : २६; १३ : ४६; यश. २ : २-४; ६० : १ क्र.; ४९ : ६। यह सच है, परन्तु इन उद्धरणों में यह भी माना गया है कि यद्यपि सुसमाचार पहले यहूदियों के लिए है तो भी यह उनके द्वारा अयहूदियों के लिए भी है, मानो समान रूप से सब के लिए है। यीशु न केवल इस अवसर पर परन्तु गिरासेनी मनुष्य में से दुष्टात्माओं को निकालते समय भी अयहूदियों के प्रदेश में गया। सूरुफिनीकी स्त्री की पुत्री को स्वस्थ करने में उस ने प्रकट किया कि उद्धार की प्राप्ति की शर्त जाति नहीं, विश्वास है। कालांतर में कलीसिया ने इस उदार दृष्टिकोण को अपनाया।

(ख) बहरे और हकले को स्वस्थ करना ७ : ३१-३७
(केवल मरकुस में है)

७ : ३१ में पाठभेद है, अतः हिं. सं. का अनुवाद भिन्न है। वह अधिक ठीक है,

"सूर के प्रदेश लौटने से पर वह,सिदोन के मार्ग से 'दशनगर' की सीमा में होते हुए, गलील सागर के तट पर पहुंचे"। संभाव्यतः यह पद मरकुस की अपनी रचना है। इस प्रकार ७ : ३७ भी सामान्य कथन है, जिस में इस अंश का सारांश प्रस्तुत है। इन दो पदों के समान मत्त. १५ : २९ और ३१ हैं। अनेक टीकाकारों की मान्यता है कि यीशु की इस यात्रा का स्थान-वर्णन सच नहीं हो सकता। यदि उसका अभिप्राय सीधे गलील जाने का था तो यह मत बुद्धिसंगत है। सिदोन सूर से दशनगर (दिकपुलिस) जाने के मार्ग में नहीं है, वह उसकी विपरीत दिशा में है। मानचित्र को देखने से पता चलता है कि दशनगर सूर से दक्षिण-पूर्व की ओर, और सिदोन उसके उत्तर की ओर स्थित था। परन्तु यह बहुत संभव है कि यीशु एकांत में रहने के अभिप्राय से, या किसी और कारण से गलील को सीधे मार्ग से नहीं जाना चाहता था। इस यात्रा के ब्योरों को अनैतिहासिक मानने का कोई कारण नहीं है।

विद्वान हमको बताते हैं कि कानों में उंगलियां रखना जैसी क्रियाएं यूनानी और यहूदी चिकित्सकों में साधारण रूप से प्रचलित थीं। थूक साधारणतः एक स्वास्थ्य-दायक साधन माना जाता था, (तु. मर. ८ : २२-२६; यू. ९ : १-७)। इसका प्रमाण प्राचीन काल के इतिहासकारों के लेखों में पाया जाता है। अतः यीशु ने सामान्य साधनों का प्रयोग किया, कदाचित इस उद्देश्य से कि लोग विश्वास करना शुरू करें। जादू टोना में भी मंत्रों के साथ थूक का प्रयोग दुष्टात्माओं को निकालने के लिए किया जाता था, परन्तु यीशु के कार्यों में जादू का कोई भाग नहीं था। "आह भरी" शब्द प्रकट करते हैं कि यीशु पूरी शक्ति लगाकर और आत्मबलिदान के साथ ऐसा कार्य करता था। "इप्फतह" एक अरामी शब्द है जो यीशु बोला, जिसका अर्थ मरकुस अयहूदी पाठकों के लिए स्पष्ट करता है। अनेक टीकाकारों का यह विचार है कि ७ : ३६ ऐतिहासिक नहीं है वरन् लेखक ने इस विचार के समर्थन में लिखा कि यीशु अपने ख्रिस्त होने को गुप्त रखना चाहता था। हम इस मान्यता को मानकर चल रहे हैं कि यीशु ने वास्तव में ऐसी बातें कहीं और वह स्वयं "ख्रिस्त-विषयक रहस्य" का स्रोत हैं। ७ : ३२ में "हकला" एक यूनानी शब्द का अनुवाद है जो साहित्य में बहुत कम पाया जाता है। नया नियम में वह केवल इस स्थल पर, और पुराना नियम (सप्तति अनुवाद) में केवल यश. ३५ : ६ में मिलता है। अतः संभाव्यतः यशायाह या उद्धरण मरकुस के मन में था। यह तथ्य इस अनुमान का समर्थन करता है कि ७ : ३७ की पृष्ठभूमि यश. ३५ : ५, ६ है। यीशु ख्रिस्त-विषयक भविष्यवाणी को पूरा करता है।

यह चमत्कार ६ : ३०—७ : ३७ के परिच्छेद के अंत में है। इस में और अंधे को दृष्टिदान के चमत्कार में जो ८ : २२-२६ में है समानता है। इन वर्णनों के पश्चात् ही पतरस का यीशु को ख्रिस्त मानने का वर्णन है। ख्रिस्त मनुष्यों को आध्यात्मिक दृष्टि और श्रवणशक्ति प्रदान करता है। कदाचित लेखक का अभिप्राय था कि ये दो चमत्कार इस तथ्य के प्रतीक हों। ८ : १८ में यीशु शिष्यों के अंधेपन और बहरेपन का उल्लेख करता है।

(ग) चार सहस्र को भोजन कराना ८ : १-१०
(मत्त. १५ : ३२-३९)

इस अंश के विषय में कुछ साधारण बातें ६ : ३०-४४ की व्याख्या के आरंभ में बताई गई हैं। वहां यह बताया गया है कि चाहे इन दो वर्णनों में दो अलग घटनाओं के वर्णन हैं या ये एक ही घटना के दो भिन्न वर्णन हैं, इस में संदेह नहीं है कि मरकुस इन्हें दो पृथक घटनाएं मानता था। इसके प्रमाण में ८ : १ ("फिर") और ८ : १८-२१ को देखिए। ६ : ३०-४४ की व्याख्या के अंत में यह भी बताया गया है कि अनेक टीकाकारों की मान्यता के अनुसार पहला वर्णन यहूदियों को और दूसरा वर्णन अयहूदियों को आत्मिक रूप से तृप्त करने के अभिप्राय की ओर संकेत करता है। यह मान्यता उस तथ्य के अनुकूल है कि सुसमाचारों के संकलनकर्ताओं और उन से पहले ख्रिस्तीय प्रचारकों और शिक्षकों ने ऐसी घटनाओं के वर्णनों को प्रचार और शिक्षण के कार्य में प्रयुक्त किया।

८ : १-३ में लोगों की भूख पर बल दिया गया है। इसकी तुलना ६ : ३४ से कीजिए, जहां यीशु की दया का उल्लेख लोगों की भूख से नहीं वरन् उनको शिक्षा देने से संबंधित है। **८ : ४ और ५** की तुलना ६ : ३७-३८ से करना चाहिए, क्योंकि ये एक दूसरे के समान हैं। पहली घटना की व्याख्या में ८ : ४ की कठिनता का उल्लेख हो चुका है। ऐसा प्रतीत होता है कि पांच हजार को खिलाने के महान आश्चर्यकर्म को देखने के पश्चात् शिष्य इस प्रकार का प्रश्न नहीं पूछ सकते थे। यह एक ऐसा प्रश्न है जो शिक्षा देने के संबंध में परंपरा में मिलाया जा सकता था। ६ : ४१ और ८ : ६ में "धन्यवाद करके" दो भिन्न यूनानी शब्दों का अनुवाद है। **८ : ६** में वह शब्द है जिस से "यूकरिस्त" शब्द बना है, जिसका प्रयोग बहुधा प्रभु भोज के लिए किया जाता है। **८ : ७** में वही शब्द प्रयुक्त है जो **६** : ४१ में है। हिं. सं. में इन दो शब्दों में भेद किया गया है, "धन्य-वाद करके" (८ : ६ और) "आशिष मांगकर" (८ : ७)। यहां पर, यू. ६ : ११ के समान, मछलियां गौण समझी जाती हैं। छठे अध्याय में मछलियों का उल्लेख रोटियों के साथ साथ है। यदि ये वास्तव में एक घटना के दो भिन्न वर्णन हैं तो संभवतः संख्याओं में जो अंतर है वह प्रतीकात्मक है। परंतु यह स्पष्ट नहीं है कि वे किन बातों के प्रतीक हैं, और इस संबंध में उन टीकाकारों का स्पष्टीकरण जिन्हों ने संख्याओं को प्रतीकात्मक मान लिया है दूर की सूझ प्रतीत होता है। दलमनूता प्रदेश अज्ञात है।

(घ) चिन्ह की मांग ८ : ११-१३ (मत्त. १६ : १-४
तुलना मत्त. १२ : ३८, ३९; लू. ११ : १६, २९; १२ : ५४-५६)

उपरोक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि यह न केवल मरकुस में वरन् Q में भी पाया जाता था। साधारण मान्यता यह है कि यह एक ऐतिहासिक घटना के आधार पर मरकुस की रचना है। इस घटना का समय और स्थान अज्ञात हैं। यह यहां विषय के अनुसार जोड़ी गई है। यदि यह माना जाए कि प्रसंग से इसका संबंध ऐतिहासिक रूप से है तो स्पष्टतः फरीसी उन आश्चर्यकर्मों को जो यीशु ने अभी किए थे "चिन्ह"

नहीं समझते थे। "चिन्ह" एक महान कार्य था जिसके द्वारा परमेश्वर की सामर्थ्य प्रकट की जाती थी। इस अंश की पृष्ठभूमि पुराना नियम में वे चिन्ह हैं जो मिस्र देश से निकलते समय और निर्जन स्थान में भ्रमण करने के समय इस्राएलियों को दिखाए गए थे। इस अंश का अभिप्राय यह प्रकट करना है कि चिन्हों के संबंध में यीशु का क्या विचार था। यह स्पष्ट बताया गया है कि फरीसियों का अभिप्राय यीशु को जांचना (हिं. सं. "परीक्षा करना") था। यीशु बड़े स्पष्ट शब्दों में इन्कार करता है - कोई चिन्ह नहीं मिलेगा। सहदर्शी सुसमाचारों में "चिन्ह" शब्द केवल बुरे अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। यीशु के चमत्कार चिन्ह नहीं वरन् "सामर्थ्य के कार्य" कहे जाते हैं। परंतु यूहन्ना में वे चिन्ह कहलाते हैं। कदाचित यूहन्ना रचित सुसमाचार ऐसे प्रसंग में और ऐसे समय लिखा गया जब इस शब्द के प्रयोग से भ्रांत विचार उत्पन्न होने का डर नहीं था। इस स्थल में मत्ती (दोनों उद्धरणों में) और लूका में यह लिखा है कि यूनुस के चिन्ह को छोड़ उन्हें कोई चिन्ह नहीं दिया जाएगा।

(च) फरीसियों और हेरोदेस का खमीर ८ : १४-२१
(मत्त. १६ : ५-१२; लू. १२ : १)

अनेक विद्वानों की मान्यता के अनुसार मरकुस ने इस अंश को भी स्वयं रचा। इसका अध्ययन संदर्भ सहित करना चाहिए। इस से पहले लोगों को भोजन कराने का वर्णन, और उसके पश्चात् अंधे को धीरे धीरे दृष्टि देने का आश्चर्यकर्म है। तब वह वर्णन है जिस में पतरस, मानो सब शिष्यों की ओर से, यीशु को ख्रिस्त मान लेता है। इन पदों में यीशु आश्चर्य व्यक्त करता है कि शिष्यों ने नहीं पहचाना कि वह कौन था। यदि ८ : १-१० और ६ : ३० क्र. वास्तव में एक ही घटना के दो भिन्न वर्णन हैं (देखिए ६ : ३० क्र. की व्याख्या) तो ८ : १८-२१, विशेष रूप से पद १६ और २०, ऐतिहासिक नहीं हो सकते, वे या तो संकलनकर्ता की रचना हैं या परंपरा के निर्माण के समय रचे गए। टीकाकारों में सामान्य सहमति है कि ८ : १५ यीशु का ऐतिहासिक कथन है, परंतु अनेक टीकाकार उसको इस अंश का अभिन्न अंग, और दूसरे उसे प्रसंग से असंबंधित मानते हैं। उपरोक्त विद्वानों का यह मत इस लिए है कि इस पद का कोई स्पष्टीकरण नहीं है, न ही इस अंश के शेष भाग में उसका कोई उल्लेख है। लू. १२ : १ में यह कथन एक अन्य संदर्भ में सम्मिलित है, और फरीसियों का खमीर उनका कपट है। लूका में केवल फरीसियों का उल्लेख है। मत्त. १६ : १२ के अनुसार खमीर फरीसियों और सदूकियों की शिक्षा था। रब्बियों के लेखों में खमीर कहीं कहीं मानव स्वभाव में दुष्टता की ओर झुकाव का प्रतीक है। यहां इसका अर्थ फरीसियों की झूठी शिक्षा और कपट-पूर्ण धर्मनिष्ठा है। कदाचित हेरोदेस के दुराचार की ओर संकेत है। कुछ हस्तलेखों में "हेरोदेस" के स्थान पर "हेरोदियों" शब्द आया है। यदि यह ठीक है तो राजनीतिक बातों में उलझना अभिप्रेत होगा।

शिष्यों को रोटी की चिंता थी (८ : १६) - तुलना कीजिए मत्त. ६ : २५ क्र.।

उन्होंने जनसमूह को भोजन कराने के अर्थ और महत्व को नहीं पहचाना था। यदि ८ : १५ इस अंश का वास्तविक भाग है तो संभव है कि वह ऐसे हठपूर्ण अंधेपन के विरुद्ध कहा गया जो सत्य को पहचानना चाहता ही नहीं। इस अंश के शेष पद शिष्यों की मंदता के संबंध में हैं। ८ : १८ के शब्द और विचार यि. ५ : २१; यहे. १२ : २ (तुलना यश. ६ : ९) के सप्तति अनुवाद पर आधारित हैं। यद्यपि यीशु के साथ शिष्यों का बहुत गहरा व्यक्तिगत संबंध रहा था, और उन्हों ने उसके कथनों को सुना और उसके कार्यों को देखा, तथापि उन्हों ने उसके वास्तविक व्यक्तित्व को नहीं पहचाना था। शिष्य केवल अपनी वर्तमान आवश्यकता का विचार कर सकते थे। यीशु चाहता था कि वे उसको पहचानकर और उस पर पूरा भरोसा और विश्वास करके अपनी चिंता को उस पर डाल दें। यह हमारे लिए अत्यंत शिक्षाप्रद है।

(छ) बैतसैदा में अंधे को दृष्टिदान ८ : २२-२६
(मत्त. और लू. में नहीं है)

मरकुस ने इनको अपने सुसमाचारों में इस कारण सम्मिलित किया है कि इस तथ्य को स्पष्ट करे कि यीशु शिष्यों के अंधेपन का इलाज कर सकता है। इस में और बहरे और हकले मनुष्य को स्वस्थ करने के वर्णन में (७ : ३१-३७) बहुत समानता है। दोनों में लोग एक व्यक्ति को स्वस्थ होने के लिए लाते हैं, यीशु उसको अलग ले जाता है, थूक का प्रयोग करता है, उस व्यक्ति को स्पर्श करता है, और इलाज हो जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों में वह व्यक्ति धीरे धीरे स्वस्थ होता है। यीशु अंधे की आंखों पर दो बार हाथ रखता है (८ : २५)। इस अंश में "देखने" के लिए तीन भिन्न यूनानी क्रियाओं का प्रयोग किया गया है, जिन में से दो पद २५ में हैं - "ध्यान से देखा——साफ साफ देखने लगा" (हि. सं. में "यत्नपूर्वक देखा——दूर स्थित वस्तु भी स्पष्ट दिखाई पड़ने लगी")। इस से यह स्पष्ट है कि उसके स्वस्थ हो जाने में कुछ समय लगा। कदाचित इसी कारण मत्ती और लूका ने इस वर्णन को छोड़ दिया। ८ : २६ को समझना कुछ कठिन है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह मनुष्य किसी अन्य गांव का था, क्योंकि उसे घर जाने की, परंतु इस गांव में न जाने की आज्ञा मिलती है। यहां पाठभेद भी है, कुछ हस्तलेखों में "इस गांव के भीतर पांव भी न रखना" के स्थान पर "गांव में किसी को न बताना" है। यह बात द्रष्टव्य है कि यह वर्णन पतरस की स्वीकृति से पहले ही आता है। कुछ अंशों में शिष्यों की आंखें खुलनेवाली हैं। यीशु आत्मिक दृष्टि प्रदान कर सकता है।

५. यरूशलेम का मार्ग ८ : २७—१० : ५२

(१) यीशु का ख्रिस्त स्वीकृत होना और उसका दुःखभोग ८ : २७—९ : २७

(क) कैसरिया फिलिप्पी में पतरस की स्वीकृति ८ : २७-३३
(मत्त. १६ : १३-२३; लू. ९ : १८-२२)

इस स्थल पर लूका ने वर्णन को संक्षिप्त कर दिया है। वह किसी स्थान का

उल्लेख नहीं करता। मत्ती अधिकतर मरकुस का अनुसरण करता है, परंतु १६ : १७-१९ को भी, जो कलीसिया के पतरस ("पत्थर") पर आधारित होने के विषय में है, जोड़ देता है। यीशु के शब्द तीनों सुसमाचारों में कुछ भिन्न हैं, "तू मसीह है" (मरकुस), "परमेश्वर का मसीह" (लूका), "तू जीवते परमेश्वर का पुत्र मसीह है" (मत्ती)। टीकाकार साधारणत: मानते हैं कि यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण वर्णन है। अनेक विद्वान इसे इस सुसमाचार के पहले भाग की समाप्ति, दूसरे विद्वान उसके पिछले भाग का आरंभ मान लेते हैं, क्योंकि वास्तव में यह घटना निर्णायक है। अनेक टीका-कारों की मान्यता के अनुसार मरकुस ने अपने अभिप्राय को पूरा करने के लिए एक ऐतिहासिक घटना का प्रयोग किया है। उसका अभिप्राय यह प्रकट करना था कि यीशु अपने ख्रिस्त होने को गुप्त रखना चाहता था, और कि उस ने शिष्यों को भी उसके विषय में स्पष्ट नहीं बताया। धीरे धीरे वे इस तथ्य को पहचानने लगे। यह समस्त प्रक्रिया रचयिता की कल्पित रचना है। इसके विपरीत हमें यह अधिक संभव प्रतीत होता है कि सचमुच यह घटना, और उसका समय और स्थान मूलत: ऐसे ही हैं जैसे यहां वर्णित हैं। इसके पश्चात् यीशु के दु:ख-भोग और मृत्यु की अन्य भविष्यवाणियां हैं (९ : ३१; १० : ३३, ३४)। यह पूर्णत: संभव है कि यीशु ने इस प्रकार कई बार अपनी मृत्यु की भविष्यवाणी की। इन भविष्यवाणियों का शाब्दिक रूप निस्संदेह मौखिक परंपरा के समय रचा गया, परंतु तत्वत: वे यीशु के कथन हैं। इस परिच्छेद से आरंभ कर आगे के वर्णनों में "मनुष्य का पुत्र" पद का प्रयोग पहले से अधिक पाया जाता है; स्वास्थ्य-दान के आश्चर्यकर्म कम हैं; और "अंतिम सप्ताह" के वर्णन की तैयारी हो रही है। ११ : १ से अंतिम सप्ताह का ही वर्णन है।

८ : २७ कैसरिया फिलिप्पी गलील की झील से लगभग ४० किलोमीटर उत्तर की ओर स्थित था। उस स्थान पर पुराना नगर पनेयास स्थित था। हेरोदेस फिलिप्पुस ने, जो यीशु के जीवनकाल में गलील से पूर्व के प्रदेशों का राज्यपाल था, इसका नए सिरे से निर्माण करवाकर उसे तिबरियस सम्राट के लिए कैसरिया नाम दिया। इस कारण वह कैसरिया फिलिप्पी कहलाता है ताकि उस में और कैसरिया बंदरगाह में भेद किया जाए। हम अनुमान लगा सकते हैं कि यीशु जांचना चाहता था कि शिष्यों ने कहां तक उसके व्यक्तित्व को पहचाना था। निस्संदेह उन्हों ने आपस में इस विषय पर वार्तालाप किया था। पतरस की स्वीकृति आकस्मिक नहीं हुई। ८ : २८ की तुलना तुलना ६ : १४, १५ से कीजिए। ८ : २९ में "तुम" और "तू" शब्दों पर बल दिया गया है। यीशु विशेष रूप से शिष्यों के संबंध में जानना चाहता था कि वे उसे क्या समझते थे। इस प्रकार यही प्रश्न हम सब से व्यक्तिगत रूप से पूछा जाता है। पतरस के उत्तर में यह निहित है कि प्रतिज्ञात ख्रिस्त तू ही है, कोई अन्य व्यक्ति नहीं। "ख्रिस्त" या "मसीह" के स्पष्टीकरण के लिए १ : १ की व्याख्या को देखिए। पतरस की स्वी-कृति को समझने के लिए स्मरण करना चाहिए कि ख्रिस्त के संबंध में यहूदी लोगों का परंपरागत विचार यह था कि वह एक अलौकिक व्यक्ति होगा जो उनको राजनीतिक

स्वतंत्रता दिलाकर पुनः दाऊद के राज्य को स्थापित करेगा। यीशु के काल में यहूदी रोमी साम्राज्य के अधीन थे, अतः उनकी आशा थी कि ख्रिस्त उनको रोमियों से छुटकारा देगा। इसके अतिरिक्त साधारण लोग प्रकाशनात्मक साहित्य और विचारों से प्रभावित थे, जिस में आनेवाले ख्रिस्त के विषय में अनेक विभिन्न विचारधाराएं थीं। बहुधा उसे एक अलौकिक प्रतिशोधी व्यक्ति माना जाता था जो इस्राएल के शत्रुओं को नष्ट करेगा। सुसमाचारों को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि यीशु खुल्लम-खुल्ला ख्रिस्त नहीं कहलाना चाहता था। यह ८ : ३० से स्पष्ट है। अनेक विद्वान इसको अनैतिहासिक मानते हैं, परंतु कोई कारण नहीं है कि हम ऐसा विचार करें। संभाव्यतः यदि यीशु "ख्रिस्त" पदवी को अपना लेता तो इस से गलतफहमी हो जाती क्योंकि तब यहूदी लोग अपने ख्रिस्त-संबंधी विचारों के अनुसार उस से यह आशा करते कि वह राजनीतिक रूप से उनकी सहायता करे। यह "ख्रिस्त-संबंधी रहस्य" मरकुस का कल्पित विचार ही नहीं, वह एक ऐतिहासिक तथ्य प्रतीत होता है। ८ : ३१ में फिर "मनुष्य का पुत्र" शब्द आए हैं - २ : १० की टिप्पणी को देखिए। यह वह पदवी है जिसका प्रयोग यीशु स्वयं अपने संबंध में करता था। सुसमाचार के इस दूसरे भाग में इसका अधिक प्रयोग किया गया है। परंतु संभव है कि इस पद में इसका अर्थ केवल "मेरे लिए" हो। ख्रिस्त के दुःख-भोग के संबंध में साक्ष्य मिलता है कि यहूदी लोग साधारणतः नहीं मानते थे कि आनेवाला ख्रिस्त दुःख सहेगा। वे यश. ५३ को भी उस पर लागू नहीं करते थे। कहीं कहीं यहूदियों के अप्रामाणिक साहित्य में एक दुःख-भोगी ख्रिस्त का वर्णन है, और अन्य स्थलों में वर्णित है कि ख्रिस्त मर जाएगा, और पुनरुत्थित होगा, परंतु ऐसे ख्रिस्त का वर्णन नहीं है जो दुःख सहेगा और मर भी जाएगा। संभाव्यतः ख्रिस्त के संबंध में शिष्यों के विचार अपने काल के विचारों के अनुरूप थे। ऊपर इस मान्यता की ओर संकेत किया गया है कि ८ : ३१; ९ : ३१; और १० : ३३, ३४ ऐतिहासिक नहीं, कलीसिया की रचना हैं, और यह विचार अस्वीकार किया गया है। संभाव्यतः कुछ ब्योरे, विशेषकर १० : ३४ में, जैसे "ठट्ठों में उड़ाएंगे", "थूकेंगे" आदि कालांतर में मिलाए गए होंगे। परन्तु मूल भविष्यवाणी यीशु की होगी। इस प्रकार यीशु ने शिष्यों को आनेवाली घटनाओं के लिए तैयार करने का प्रयत्न किया। "अवश्य है" का अर्थ यह है कि यह उसके लिए परमेश्वर की इच्छा है। मरकुस में "तीन दिन के बाद" के स्थान पर मत्ती ने "तीसरे दिन" लिखा। कदाचित वह इसको अधिक सटीक करना चाहता था, परंतु अनेक विद्वानों का दावा है कि ये शब्द 'तीन दिन के बाद' और 'तीसरे दिन' यहूदियों के मुहाविरे में समानार्थक शब्द हैं। पुरनिए, महायाजक और शास्त्री महासभा के अधिकारी थे। महायाजक एक ही होता था परंतु जब इस शब्द का प्रयोग बहुवचन में किया जाता था तब उस में गत समय के महायाजक और महायाजक-वंशी लोग भी सम्मिलित किए जाते थे।

पतरस ने यीशु को इस कारण से **झिड़क दिया** (८ : ३२) कि उसके विचार के अनुसार भी एक दुःखभोगी ख्रिस्त की कल्पना संभव नहीं है। पतरस के शब्द अनादर-

पूर्ण प्रतीत होते हैं। ८ : ३०, ३२, और ३३ में एक ही यूनानी शब्द का प्रयोग किया गया है (चिताकर, झिड़कने लगा, झिड़ककर)। मत्ती में पतरस के शब्द परिवर्तित रूप में हैं। पतरस कदापि नहीं चाहता था कि ख्रिस्त दुःख सहे, क्योंकि उस ने यह सोचा होगा कि दुःखभोगी ख्रिस्त ख्रिस्त ही नहीं है। ८ : ३३ में पतरस के झिड़के जाने से अन्य शिष्यों को भी चेतावनी मिलती है - "चेलों की ओर देखकर"। इस अवसर पर भी, १ : १२, १३ के समान, शैतान ने यीशु की परीक्षा की। इस पद का उत्तरार्द्ध हिं. सं. में अच्छा है : "तेरी भावना परमेश्वर की सी नहीं वरन् मनुष्यों की सी है"।

(ख) यीशु का अनुसरण करने का अर्थ ८ : ३४-९ : १
(मत्त. १६ : २४-२८; लू. ९ : २३-२७)

८ : ३५ की तुलना मत्त. १० : ३८, ३९ और लूका १४ : २७ और १७ : ३३ से, और ८ : ३७ की तुलना मत्त. १० : ३३ और लू. १२ : ९ से करने से ज्ञात होता है कि ये कथन Q में भी पाए जाते थे। अतः संभाव्यतः यह यीशु के कथनों का संग्रह है जो मरकुस को इसी रूप में मिला या उस ने स्वयं विषयानुसार संग्रहीत किया। ये भिन्न भिन्न समयों पर कहे गए होंगे। अपने आप का परित्याग करना और अपना क्रूस उठाना समानार्थक उपवाक्य हैं। क्रूस अपराधियों के लिए रोमियों का साधारण दंड था, इस लिए लोग उस से भली भांति परिचित थे। वे जानते थे कि जिन को क्रूस का दंड दिया जाता था उन्हें अपने क्रूस का एक भाग उठाकर चलना पड़ता था। इस कारण यद्यपि उस समय यीशु क्रूस पर नहीं चढ़ाया गया था तो भी अनेक विद्वानों की यह मान्यता कि 'यह असंभव है कि यीशु ने ये शब्द कहे' ठीक नहीं है। जब यीशु ने यह कहा और जब मरकुस का सुसमाचार लिखा गया तो संभव था कि शाब्दिक रूप से ख्रिस्त के निमित्त क्रूस का दंड मिले। उसके लिए मरने को तैयार होना चाहिए। परंतु, जैसे ऊपर संकेत किया गया है, मौलिक रूप से क्रूस उठाना अपने आप का परित्याग करना है (तुलना कीजिए २ कुर. ५ : १५)। यीशु का अनुसरण करने का यही अर्थ है। ८ : ३५ भी शाब्दिक अर्थों में कहा गया होगा, और इस सुसमाचार की रचना के समय ख्रिस्ती लोगों के सामने यीशु के कारण अर्थात् ख्रिस्ती होने के कारण, प्राण खो बैठने का खतरा था। मौलिक बात यह है कि किसी व्यक्ति के जीवन में क्या अग्र स्थान स्वयं को या ख्रिस्त को प्राप्त है? यह एक प्रकार का आध्यात्मिक नियम है। संभव है कि "और सुसमाचार के लिए" शब्द परंपरा में मिलाए गए, या रचयिता ने उन्हें मिलाया हो। **८ : ३६ और ३७** पद ३५ की पुष्टि करते हैं। ८ : ३८ ख्रिस्त के **पुनरागमन** के संबंध में है - हम "मनुष्य के पुत्र का आना" इन अर्थों में समझते हैं। विद्वानों में मतभेद है कि इस पद में "मनुष्य का पुत्र" केवल मुहाविरा है जो "मैं" के तुल्य है, या उससे कोई अन्य दिव्य व्यक्ति अभिप्रेत है। एक और सुझाव यह है कि यीशु इस पदवी का प्रयोग करके अपनी भावी स्थिति की ओर संकेत करता है। किसी अन्य व्यक्ति की कल्पना करने की आवश्यकता नहीं है। Q के समान स्थलों में "मैं" शब्द का प्रयोग किया गया है (मत्त. १० : ३३; लू. १२ : ९)। यीशु यहां अपना

ही उल्लेख करता है। "व्यभिचारी" की पृष्ठभूमि पुराना नियम में है, उदाहरणार्थ हो. २ : २ क्र.; यश. १ : ४; यहे १६ : ३२ क्र.। उसका अर्थ परमेश्वर के प्रति विश्वासघात है। यह एक अत्यंत गंभीर चेतावनी है।

९ : १ नया नियम का एक सब से कठिन पद है। उसके विषय में प्रतिभा-संपन्न विद्वानों में भी मतभेद है। उसकी सब से सरल व्याख्या यह है कि "परमेश्वर का राज्य सामर्थ्य सहित आया हुआ" का अर्थ युगांत और ख्रिस्त का पुनरागमन है। मत्ती में (१६ : २८) "मनुष्य के पुत्र को उसके राज्य में" का अर्थ यही प्रतीत होता है। लूका में केवल "परमेश्वर के राज्य को न देख लें" है। उपरोक्त व्याख्या में कठिनाई यह है कि यदि यह ठीक है तो यीशु ने अपने पुनरागमन, आदि के समय के संबंध में त्रुटि की। इस कारण अनेक टीकाकारों की मान्यता है कि "राज्य सामर्थ्य सहित आया हुआ" का अर्थ यीशु का पुनरुत्थान, पवित्र आत्मा का उतर आना और कलीसिया की वृद्धि है। प्राचीन काल से एक और विचार प्रचलित है, कि यीशु के रूपांतर की ओर से संकेत है, जिसका वर्णन इसके पश्चात् ही आता है। यह स्पष्ट है कि यीशु ने कहा कि इसी समय के श्रोताओं में से कुछ ऐसे हैं जो परमेश्वर के राज्य के सामर्थ्य सहित आने से पहले नहीं मरेंगे - शारीरिक मृत्यु अभिप्रेत है। उपरोक्त सब व्याख्याओं में कठिनाइयां हैं, जिनके ब्योरेवार वर्णन के लिए स्थान नहीं है। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि कदाचित पहला विचार मूल पाठ के स्पष्ट अर्थ के अनुसार है। इसके स्पष्टीकरण में यह सोचना पड़ता है कि अपने पुनरागमन के समय के विषय में ठीक से न जानना यीशु की वास्तविक मानवता की सीमाबद्धता के कारण था।

(ग) यीशु का रूपांतरण ९ : २-८

(मत्त. १७ : १-८; लू. ९ : २८-३६)

मत्ती और लूका में इस घटना संबंधी समान वर्णन हैं। दोनों वर्णनों कई बातों में अंतर है। छः दिन के स्थान पर लूका में आठ दिन है। ये दोनों सुसमाचार मरकुस के ९:३ को संक्षिप्त करते हैं। साथ ही लूका ९:३१-३३ पूर्वार्द्ध अतिरिक्त पद हैं। तीनों सुसमाचारों में पतरस यीशु को संबोधित करने में भिन्न शब्दों का प्रयोग करता है; "प्रभु" (मत्त.) "रब्बी" (मर.), और "स्वामी" (लू.)। मर ९:७ में "मेरा प्रिय पुत्र" के पश्चात् मत्ती "जिस से मैं प्रसन्न हूं" शब्द जोड़ देता है। लूका में "प्रिय" के स्थान पर "चुना हुआ" है।

साधारण परंपरा के अनुसार यह "ऊंचा पहाड़" ताबोर पर्वत था, जो नासरत से थोड़ी दूर पूर्व की ओर स्थित था और लगभग ३०० मीटर ऊंचा है। इस कारण से आधुनिक काल के अधिकांश टीकाकारों की मान्यता है कि संभाव्यत: हेर्मोन पर्वत अभिप्रेत है, जो कैसरिया फिलिप्पी के निकट और लगभग ३००० मीटर ऊंचा है। परंतु अनेक विद्वानों की यह मान्यता ठीक हो सकती है कि मरकुस स्वयं नहीं जानता था कि यह पर्वत कौन सा था। हेर्मोन के निकट अन्य चोटियां भी हैं। निस्संदेह मरकुस के वर्णन में पर्वत परमेश्वर की उपस्थिति का प्रतीक है। मूसा और एलिय्याह व्यवस्था और नबियों के प्रतीक हैं, जो साक्षी देते हैं कि ख्रिस्त दुःख सहेगा। लूका ९ : ३१ के अनुसार उन्हों ने यीशु के मरने (हिं. सं. "निर्गमन") के विषय में वार्तालाप किया। मूसा और एलिय्याह का वहां होना प्रमाण देता है कि यीशु प्रतिज्ञात ख्रिस्त है, क्योंकि

यह स्पष्ट है कि मल. ४ : ५, ६ के लिखे जाने के समय से एलिय्याह का फिर आना ख्रिस्त के आगमन से संबंधित माना जाता था। मूसा के फिर आने के संबंध में केवल परवर्ती साक्षी है, परंतु व्य. १८ : १५ में, जिसको मृतक सागर का पंथ महत्व देता था, इस स्थल की ओर संकेत है। संभाव्यतः मूसा और एलिय्याह का अदृश्य हो जाना इस तथ्य का बोधक है कि अब यीशु ही है जिस में पुराना नियम की प्रतिज्ञाएं पूरी होती हैं।

इस वर्णन को पूर्ण रूप से ऐतिहासिक मानने के अतिरिक्त इसके संबंध में मुख्यतः तीन मान्यताएं रही हैं : (i) कि वह पूर्ण रूप से अनैतिहासिक और प्रतीकात्मक है। (ii) कि वह एक वस्तुवादी (Objective) दृश्य की नहीं, वरन् दिव्य दर्शन-अनुभूति की ऐतिहासिक घटना का वर्णन है। (iii) कि वह यीशु के पुनरुत्थान के पश्चात् के समय से संबंधित एक वर्णन है जो यहां परिवर्तित रूप में मिलाया गया है। साधारणतः विद्वान मानते हैं कि उपरोक्त (iii) मान्यता गलत प्रमाणित हो चुकी है, क्योंकि इस वर्णन में पुनरुत्थान के समय से संबंधित वर्णनों की विशेषताएं नहीं हैं। इस वर्णन में संकेत हैं कि वह एक ऐतिहासिक घटना पर आधारित है, अतः उपरोक्त विचारों में से (ii) स्वीकार्य प्रतीत होता है। यह जानना कठिन है कि यह यीशु के लिए और शिष्यों के लिए किस प्रकार का अनुभव था। मत्त. ७ : ९ में वह 'दर्शन" कहलाता है (हिं. सं. में। हि. प्र. में "जो कुछ तुम ने देखा है") यह विशेष रूप से शिष्यों के निमित्त हुआ, और उनके लिए यह अत्यंत महान और महिमापूर्ण अनुभव था। ९ : ५ और ६ में पतरस का अभिप्राय कदाचित् यह था कि वह नहीं चाहता था कि यह अनुभव समाप्त हो जाए। तंबू (मंडप) परमेश्वर की उपस्थिति का प्रतीक भी है। बहुधा धर्मशास्त्र में कहा गया है कि परमेश्वर मनुष्यों के साथ वास करता है। "वास करने" का शाब्दिक अर्थ "तंबू में रहना" है। पतरस अब तक यीशु को मूसा और एलिय्याह के समान ही मानता है, परन्तु आकाशवाणी से यह स्पष्ट किया जाता है कि वह उन से उत्तम है, वह अद्वितीय है, वह परमेश्वर-पुत्र है (देखिए १ : ११ और उसकी व्याख्या)। अब उसी का अनुसरण करना चाहिए, क्योंकि पुराना नियम का प्रकाशन उस में पूरा हो जाता है।

इस वर्णन में और नि. २४ के वर्णन में (मूसा का पर्वत पर परमेश्वर का दर्शन पाना) अनेक बातों में समानता है, अतः कुछ विद्वानों की मान्यता है कि यह उस वर्णन पर आधारित है। दोनों घटनाएं पर्वत पर घटित हुईं, छः दिन, छानेवाला मेघ, मूसा की उपस्थिति, मेघ में से वाणी, परिवर्तनकारी महिमा (नि. ३४ : २९-३५, जब मूसा पर्वत पर से उतरता है), और तंबू (नि. २५, २६) दोनों में पाए जाते हैं। परंतु भिन्नताएं भी हैं। हम यह नहीं मान सकते कि मरकुस में केवल एक कल्पित वर्णन है जो निर्गमन के उक्त स्थल पर आधारित है। इतना मानना उचित है कि निर्गमन के वर्णन का प्रभाव इस परिच्छेद के शब्दों पर हुआ है। यह शिष्यों के लिए एक अत्यंत गंभीर अनुभव था, जो संभाव्यतः पुनरुत्थान की ओर संकेत करता था। इस से यीशु के दुःखभोगी ख्रिस्त होने के विचार का समर्थन हुआ।

(घ) यीशु के जी उठने का अर्थ, एलिय्याह ९ : ९-१३
(मत्त. १७ : ९-१३)

अतिवादी (radical) आलोचकों की मान्यता के अनुसार यह परिच्छेद संयुक्त है, वह एक इकाई नहीं है। उनका विचार यह है कि ९ : ११ पर क्रमभंग है क्योंकि ९ : ११-१३ पद ९ और १० के अनुकूल नहीं हैं। हमारा विचार है कि हम इस परिच्छेद को एक इकाई मान सकते हैं। यीशु चाहता था कि अभी रूपांतर के विषय में कुछ न कहा जाए। यूनानी में ९ : १० के पहले शब्दों का अर्थ स्पष्ट नहीं है। हिं. सं. इस प्रकार है, "इन शब्दों को लेकर वे आपस में विवाद करने लगे कि—"। वे शब्द मनुष्य के पुत्र के पुनरुत्थान के विषय में थे, जिसको शिष्य नहीं समझ सके क्योंकि वे यह नहीं मान सकते थे कि यीशु मर जाएगा। यहूदी होने के नाते उनकी साधारण मान्यता थी कि पुनरुत्थान होगा, परंतु ख्रिस्त पर इसे लागू नहीं कर सकते थे क्योंकि उनका विचार था कि वह मरने का नहीं। ९ : ११ में उनकी आश्चर्य-भावना का वर्णन है कि क्या कारण था कि एलिय्याह, मल. ४ : ५, ६ के अनुसार, नहीं आया था। संभाव्यतः इसका संबंध रूपांतर के वर्णन में एलिय्याह के दिखाई देने से भी है। ९ : १२ में यीशु मान लेता है कि एलिय्याह का पहले आना आवश्यक है। "सब कुछ सुधारेगा" शब्दों से मलाकी की उपरोक्त भविष्यवाणी और उस पर आधारित यहूदियों की परंपरा की ओर संकेत होता है। यीशु शिष्यों को स्मरण दिलाता है कि पुनरुत्थान से पहले एक अधिक महत्वपूर्ण घटना घटित होगी, अर्थात् मानव पुत्र का दुःखभोग। एलिय्याह के आने के संबंध में यीशु की व्याख्या यह है कि यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाले में यह बात पूरी हो गई। मरकुस में यूहन्ना का नाम नहीं है, परंतु मत्त. १७ : १० में है।

(च) अशुद्ध आत्मा ग्रस्त बालक को स्वस्थ करना ९ : १४-२९
(मत्त. १७ : १४-२१; लू. ९ : ३७-४३पू)

मत्ती और लूका इस वर्णन में से पद २०उ-२५पू को निकालकर उसे बहुत संक्षिप्त करते हैं। संभाव्यतः वे सामग्री को कम करना चाहते थे। अतः उनके वर्णन ऐसे सजीव नहीं हैं जैसा मरकुस का वर्णन है। अनेक विद्वानों की मान्यता है कि यह वर्णन यहां ऐतिहासिक रूप से क्रमानुसार नहीं है, और कि ९ : १४ संपादकीय है। यदि रूपांतर कैसरिया फिलिप्पी के निकट हुआ तो शास्त्रियों का वहां होना असंभाव्य है। कदाचित यह घटना किसी अन्य समय और स्थान से संबंधित है। यह नहीं बताया गया है कि यह विवाद किस बात के संबंध में था, न यह कि लोग क्यों आश्चर्य कर रहे थे। ऐसा प्रतीत होता है कि विवाद इस कारण हुआ कि शिष्य उस बालक को स्वस्थ नहीं कर सके। बालक के रोग का वर्णन बहुत सजीव और ब्योरेवार है। मत्ती के अनुसार यह रोग मिर्गी थी, और मरकुस का वर्णन इसके अनुकूल है। ९ : १७ में "गूंगी आत्मा", परंतु ९ : २५ में "अशुद्ध आत्मा" और "गूंगी और बहरी आत्मा" का वर्णन है। इन शब्दों में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है। संभाव्यतः ९ : १९ के शब्द इस लिए कहे गए

कि शिष्य उस बालक को चंगा करने में असफल रहे। अनेक टीकाकार मानते हैं कि इन शब्दों के कहे जाने का कारण केवल यही नहीं था वरन् यीशु की वह समस्त परिस्थिति थी, जिस में उसकी होनेवाली मृत्यु भी सम्मिलित थी। इस पद के संबंध में अतिवादी आलोचकों का विचार यह है कि उसके शब्द औपचारिक और बनावटी हैं। संकलन-कर्ता ने स्वयं उन्हें जोड़ दिया। इन समालोचकों का यह विचार भी है कि ६ : २१ क्र. एक पृथक वर्णन था जो किसी अन्य स्रोत से लिया गया और यहां जोड़ा गया है। कारण यह कि ये पद और ६ : १४-२० असंगत हैं। अनेक विद्वानों को यह असंभाव्य प्रतीत होता है कि बालक के पिता के साथ यीशु इस प्रकार का वार्तालाप (६ : २१-२३) करता जब कि बालक तड़प रहा था। परंतु यह स्वाभाविक प्रतीत होता है, और संभाव्यत: बालक खतरे में नहीं था।

फिर भी इस वर्णन का केन्द्रीय स्थल ६ : २३, २४ है - "विश्वास करनेवाले के लिए सब कुछ हो सकता है"। ये शब्द विशेष रूप से पिता की परिस्थिति के संबंध में कहे गए, परंतु स्पष्टत: मरकुस का अभिप्राय यह था कि ये एक प्रकार का आध्यात्मिक नियम समझे जाएं जो सब परिस्थितियों पर लागू हो। विश्वास पहाड़ों को हटा सकता है। अनेक विद्वानों के विचार में इस पद में विश्वास पर, और ६ : २६ में प्रार्थना पर बल दिया जाना यह प्रमाणित करता है कि ये दो अलग वर्णन थे जो जोड़ दिए गए हैं। इस मत के समर्थन में वे मत्त. १७ : २० को प्रस्तुत करते हैं जो इसी वर्णन के अंत में आता है, परंतु मरकुस से भिन्न और Q में से उद्धृत है। इस में विश्वास पर बल दिया गया है। परंतु विश्वास और प्रार्थना में मौलिक अंतर नहीं है। यीशु स्वयं प्रार्थना किया करता था, अत: यह कहा जा सकता है कि उसकी आध्यात्मिक सामर्थ्य परमेश्वर के साथ सहभागिता से उत्पन्न हुई, जो प्रार्थना द्वारा बनी रहती थी। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि मर. ६ : २३ और २६ में ऐसी असंगति नहीं है जिसके कारण हम इनको भिन्न स्रोतों से उद्धृत मानने को बाध्य हों। ६ : २५ में भी असंगति की कठिनाई है कि "लोग दौड़कर भीड़ लगा रहे" हैं, यद्यपि ६ : १४ में कहा गया है कि बड़ी भीड़ लगी थी। क्या ये दो अलग भीड़ें थीं ? यह भी एक अलग स्रोत की ओर संकेत माना जाता है। संभव है कि यीशु भीड़ से कुछ अलग होकर बालक के पिता से वार्तालाप कर रहा था, और वही भीड़ जिसका उल्लेख ६ : १४ में हुआ उनकी ओर दौड़ी। मरकुस ने हमें सब ब्योरों की जानकारी नहीं दी है। यीशु अपने शब्द से बालक को स्वस्थ करता है। उसके शब्द में शक्ति है, यीशु सब परिस्थिति पर अधिकारी है। यह तथ्य द्रष्टव्य है कि ६ : २३ पिता के शब्द "यदि तू कर सकता है" संदेह प्रकट करते हैं कि यीशु ऐसा कार्य करने को समर्थ है या नहीं। परंतु यीशु का उत्तर पिता का उत्तरदायित्व प्रकट करता है। यीशु की सामर्थ्य के विषय में कोई संदेह नहीं है, अत: सब कुछ हमारे विश्वास पर निर्भर है। ऊपर संकेत किया गया है कि अनेक टीकाकार ६ : २८-२६ को पर्ववर्ती काल में जोड़े गए मानते हैं। परंतु यीशु बहुधा शिष्यों को एकांत में शिक्षा देता था, उनके प्रश्नों के उत्तर देता था। यह स्वाभाविक बात प्रतीत होती है कि इस अवसर पर ऐसा प्रश्न

पूछा जाए। प्रार्थना परमेश्वर के साथ सहभागिता स्थिर रखने का साधन है, और यह सहभागिता आध्यात्मिक सामर्थ्य का रहस्य है। स्पष्ट है कि मरकुस इस वर्णन के द्वारा यह शिक्षा पाठकों को देना चाहता था। कुछ पुराने अनुवादों में "प्रार्थना और उपवास" है, परंतु श्रेष्ठ हस्तलेखों में "और उपवास" शब्द नहीं हैं, और यह बात उपवास के संबंध में यीशु की शिक्षा के अनुकूल भी नहीं है।

(२) गलील में भ्रमण ९ : ३०-५०

(क) दु:खभोग और पुनरुत्थान की द्वितीय भविष्यवाणी ९ : ३०-३२
(मत्त. १७ : २२, २३; लू. ९ : ४३उ-४५)

इस यात्रा के वर्णन में शिक्षा का महत्व अधिक और स्थान-वर्णन का महत्व कम है। यीशु के दु:ख भोग और पुनरुत्थान की यह भविष्यवाणी ८ : ३१ और १० : ३३ की तुलना में कम ब्योरेवर है। इस में कोई नई बात नहीं है। अन्य भविष्यवाणियों के ब्योरों का संक्षेप इन शब्दों में व्यक्त किया गया है, "मनुष्यों के हाथ में पकड़वाया जाएगा"। यहां "पकड़वाया जाना" उसी यूनानी शब्द का अनुवाद है जिसका प्रयोग अध्याय १४ में यहूदा के उसे पकड़वाने में किया गया है। परंतु यहां इसका अर्थ न केवल यह, वरन् संभाव्यत: परमेश्वर का उसे मनुष्यों के हाथ में सौंप देना भी है। यीशु की मृत्यु परमेश्वर की योजना के अनुसार हुई। अनेक टीकाकारों का विचार है कि ये तीन भविष्यवाणियां मरकुस की रचना हैं, ऐतिहासिक नहीं हैं, परंतु अधिकतर यह स्वाभाविक बात मानी जाती है कि यीशु तीन बार (या इस से अधिक) अपनी मृत्यु के पूर्व, अपनी मृत्यु होने पर बल दे।

(ख) वास्तविक बड़प्पन ९ : ३३-३७
(मत्त १८ : १-५; लू. ९ : ४६-४८)

९ : ३३-५० में मरकुस ने यीशु के अनेक पृथक कथनों को संग्रहीत किया है। यद्यपि ये भिन्न अवसरों पर कहे गए होंगे, जिन से हम परिचित नहीं हैं, तथापि वे यहां इस दूसरी भविष्यवाणी के संबंध में सम्मिलित किए गए हैं, क्योंकि इन में क्रूस के सिद्धांत का स्पष्टीकरण है।

टीकाकार साधारणत: मानते हैं कि ९ : ३३-३७ का अंश एक इकाई नहीं वरन् भिन्न स्रोतों से बना है। इसके प्रमाण में निम्न लिखित बातें हैं : (i) मत्ती और मरकुस के अनुरूपी परिच्छेद असंगत हैं। मत्त. १८ : १, २ मर. ९ : ३४ और ३६ के समान हैं, परंतु मत्त. १८ : ३ और मर. ९ : ३७ भिन्न हैं। मत्त. १८ : ३ के समान मर. १० : १५ है, जो अन्य प्रसंग में है। मर. १० : १५ की तुलना मत्त. २३ : १२; लू. १४ : ११; १८ : १४ से भी कीजिए। साधारण मान्यता यह है कि मर. ९ : ३३-३६ के प्रसंग में मर. १० : १५ (=मत्त. १८ : ३) अधिक उपयुक्त है। मत्ती का १८ : ५पू मरकुस के ९ : ३७पू के समान है, परंतु मर. ९ : ३७उ के समान शब्द मत्ती में इस स्थल पर नहीं हैं। (ii) मर. ९ : ३७उ के समान शब्द मत्त. १० : ४० और लू. १० : १६ में बारह

शिष्यों और सत्तर शिष्यों के भेजे जाने के वर्णनों के संबंध में हैं। (iii) संदेह है कि कदाचित पद ३७ में "बालक" का अर्थ शाब्दिक नहीं है वरन् नम्र विश्वासी है, परंतु मरकुस ने शाब्दिक अर्थ लेकर उसे यहां शब्द-सादृश्य के कारण जोड़ दिया। इन तथ्यों से ज्ञात होता है कि इस अंश के पदों में ऐतिहासिक क्रमबद्धता नहीं है। तो भी वास्तविक नम्रता और महानता के संबंध में उपरोक्त उद्धरणों में से अधिकांश उद्धरण, जिनके साथ हम मर. १० : ४३, ४४=मत्त. २० : २६, २७ और लू. २२ : २६ को भी जोड़ सकते हैं, यह प्रमाणित करते हैं कि ये कथन यीशु के ही हैं, और कि प्राचीन कलीसिया ने उन्हें बहुत महत्व दिया। इस अंश की एक और असंगति यह है कि ९ : ३५ में यीशु बारह को बुलाता है, परंतु ९ : ३३ के अनुसार वे उपस्थित थे। इस समस्त परिच्छेद में ऐसे सूचक-शब्द हैं जिनके आधार पर ये अलग कथन संकलित किए गए हैं। इनका उल्लेख टीका में होगा। पहला सूचक शब्द "मेरे नाम से" है, जो ९ : ३७ और ३८ के बीच की कड़ी है।

उपरोक्त अंश की शिक्षा अत्यंत महत्वपूर्ण और गंभीर है। "हम में से बड़ा कौन है ?" ऐसा प्रश्न है जिस से मानव-जाति में फूट, ईर्ष्या, द्वेष, शत्रुता आदि उत्पन्न होती हैं। होना चाहिए कि इस प्रश्न के लिए कलीसिया में कोई स्थान न हो। यहां शिष्य प्रकट करते हैं कि वास्तव में उन्होंने यीशु की शिक्षा और उसके नमूने को नहीं समझा था। ९ : ३५ में संसार का मानदंड पलट दिया गया है। ९ : ३६, ३७ एक दूसरे से असंगत प्रतीत होते हैं (ऊपर देखिए)। ९ : ३७ में "बालक" का अर्थ विश्वासी है। वह ख्रिस्ती है, अतः उसको ग्रहण करना ख्रिस्त और परमेश्वर को ग्रहण करना है।

(ग) उदार विचार ९ : ३८-४१
(लू. ९ : ४९, ५०)

इस अंश का संबंध ९ : ३७ से केवल "तेरे नाम से" शब्दों के द्वारा है, परंतु विषय पूर्ण रूप से भिन्न है। यह स्मरणशक्ति की सहायता के लिये एक उपाय है जिससे लोग यीशु के वृत्तांत को कंठस्थ कर सकें। अनेक विद्वानों को यह असंभाव्य जान पड़ता है कि यीशु के जीवनकाल में कोई व्यक्ति उसके नाम से दुष्टात्माओं को निकालने का प्रयत्न करे, परंतु यह हमको पूर्ण रूप से संभव प्रतीत होता है। इसको कलीसिया की कल्पित रचना मानने की आवश्यकता नहीं है। स्मरण रहे कि नाम व्यक्ति की वास्तविकता का प्रतीक माना जाता था। फिर भी संभव था कि कोई इस तथ्य का विचार न करते हुए यों ही नाम का प्रयोग करे। ९ : ३९ का दृष्टिकोण बहुत उदार है, जिसके कारण अनेक टीकाकार उसको यीशु का कथन नहीं मानते। इस पद में भी "मेरे नाम से" शब्द हैं। इस सुसमाचार के रचनाकाल में यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न हुआ होगा जिसका उत्तर व्यावहारिक रूप से ख्रिस्तियों को देना पड़ा होगा। यह कथन यीशु का कथन था या नहीं, मरकुस उसे यीशु का कथन मानता था। क्या हमारी अभिवृत्ति इस

प्रकार उदार है? विद्वान हमें बताते हैं कि ९ : ४० में एक साधारण कहावत है। ऊपरी दृष्टि से ऐसा प्रतीत होता है कि इस में और मत्त. १२ : ३०=लू. ११ : २३ में विरोध है, परंतु वास्तव में दोनों कथन सत्य हैं। यीशु के पक्ष में या उसके विरुद्ध व्यक्त या अव्यक्त निर्णय करना अनिवार्य है।

यूनानी मूल पाठ में ९ : ४१ में भी "नाम" शब्द आता है। शाब्दिक अनुवाद है, "इस नाम से कि तुम ख्रिस्त के हो।" यह पद भी इस शाब्दिक सादृश्य के कारण यहां सम्मिलित किया गया है। लूका इसे छोड़ देता है और मत्ती में वह १० : २४, शिष्यों के प्रचार के लिए भेजे जाने के संबंध में है। इस प्रसंग में यह पद मत्ती की अपेक्षा अधिक उपयुक्त है। इसमें एक साधारण सिद्धांत है। इस में यह निहित है कि उक्त लोग पहचानते हैं कि "मसीह का" होने का क्या अर्थ है, और कि मसीह स्वयं कौन है। जैसे ऊपर कहा गया है, मत्ती के प्रसंग में (मत्त. १० : ४२) इस कथन का अध्ययन करना अधिक उपयुक्त है। यीशु ने स्वयं "ख्रिस्त" (मसीह) शब्द का प्रयोग नहीं किया होगा, क्योंकि हमें ज्ञात है कि वह अपने संबंध में इस शब्द को प्रयुक्त नहीं करता था। उस ने कदाचित "मेरे" कहा होगा।

(घ) दूसरों को फंसानेवालों के लिए चेतावनी ९ : ४२-५०
(मत्त. १८ : ६-९; ५ : १३; लू. १७ : १, २; १४ : ३४, ३५)

पिछले अंशों से ९ : ४२ के संबंध की कड़ी "छोटों में से एक" शब्द हैं, जो ९ : ३७ के "बालक" के समान हैं। परंतु ९ : ४२ में ये "छोटे" बालक नहीं वरन् नम्र दीन-हीन ख्रिस्ती लोग हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मरकुस इन में भेद नहीं कर सका, और केवल शाब्दिक समानता के आधार पर इसको यहां सम्मिलित किया। यह पद विश्वासियों के विश्वास को डावांडोल करने के विषय में है। "ठोकर खिलाने" का यही अर्थ है। ९ : ४३ में संबंध की कड़ी "ठोकर खिलाना" है, परंतु इस में और आगामी पदों में "ठोकर खिलाने" शब्द के अर्थ में कुछ अंतर है। ९ : ४३-४८ का एक ही विषय है। हाथ, पांव और आंख शरीर के अत्यंत महत्वपूर्ण अंग हैं, परंतु उनको खो देना नरक में (यूनानी "गेहेन्ना") डाले जाने से अच्छा है। ९ : ४४ हिन्दी पाठ में नहीं है। वह कुछ निम्न कोटि के यूनानी हस्तलेखों में पाया जाता है, और शब्दश: ९ : ४८ के समान है। इस प्रकार ९ : ४६ में इन यूनानी हस्तलेखों में ये ही शब्द पाए जाते हैं। इन पदों में "जीवन में प्रवेश करने" और "नरक में डाले जाने" में विषमता की गई है। "जीवन" का अर्थ वह वास्तविक जीवन है जो ख्रिस्त द्वारा परमेश्वर से संयुक्त होने से प्राप्त होता है। ९ : ४७ से ज्ञात होता है कि वह परमेश्वर के राज्य में प्रवेश करने के तुल्य है। अन्य स्थलों से, विशेष रूप से यूहन्ना रचित सुसमाचार से, यह स्पष्ट है कि यह जीवन, "अनंत जीवन", इस संसार में ही आरंभ होता है, यद्यपि उसकी पूर्ति भविष्य में है। परमेश्वर के राज्य में प्रवेश करने का अर्थ यह है कि व्यक्ति और समाज में परमेश्वर की इच्छा पूरी होने लगती है (प्रभु की प्रार्थना को देखिए)। "गेहेन्ना"

शब्द इब्रानी भाषा का है, जिसका अर्थ "हिन्नोम की घाटी" है। यह घाटी यरूशलेम के दक्षिण में स्थित थी जहां पहले मोलेक देवता के नाम से बच्चों की होमबलि की जाती थी (२ रा. २३ : १०; यि. ३२ : ३५)। कालांतर में यरूशलेम का कूड़ा-करकट वहां जलाया जाता था। आग जलती रहती थी परंतु कीड़े भी लगते थे (देखिए 'बाइबल मानचित्रा-वली' पृ. ५१)। यह घाटी नरक का प्रतीक हो गई। इस पद में आग का काम भस्म करना है। यीशु एक प्रचलित यहूदी मुहाविरे का प्रयोग कर रहा था। इस अंश में हाथ, पांव और आंख उन सब वस्तुओं, भावनाओं आदि के प्रतीक हैं जो कदाचित स्वयं अच्छी हैं, बुरी नहीं, परंतु वे परमेश्वर के प्रति हमारे संपूर्ण समर्पण में बाधक हैं। इनको अपने जीवन में से काटना है ताकि हम पूर्ण रूप से उसके हो जाएं। जो कुछ हमें पर-मेश्वर की इच्छा की पूर्ति करने से रोकता है उसको इस प्रकार काट डालना है। ऐसी वस्तु किसी अवयव में विगलन के समान है, जिस से समस्त शरीर के नष्ट हो जाने का खतरा रहता है। ९ : ४८ के शब्द लगभग शब्दशः यश. ६६ : २४ के सप्तति अनुवाद से उद्धृत हैं।

९ : ४९ में शाब्दिक कड़ी "आग" और ९ : ५० में "नमक" है। इन पदों में तीन पृथक कथन, जो भिन्न परिस्थितियों और समयों के हैं, पाए जाते हैं। ९ : ४९ का अर्थ स्पष्ट नहीं है। संभाव्यतः वह यह है कि जिस प्रकार यहूदियों के बलिदानों के लिए (लै. २ : १३; यहे. ४३ : २४) और खाने के लिए भी, नमक आवश्यक था, उसी प्रकार ख्रिस्ती व्यक्ति का जीवन आग से, अर्थात् पवित्रीकरण, और कदाचित सताए जाने से भी, स्वादिष्ट किया जाता है। ९ : ५० पू. नमक का सलोनापन वास्तव में नहीं जाता रहता, परंतु जब उस में अन्य पदार्थों का मिश्रण हो जाता है तो वह देखने में नमक दिखता है परंतु उसका स्वाद जाता रहता है। ९ : ५०उ में नमक ख्रिस्ती लोगों के मेल मिलाप का प्रतीक है, जो सुसमाचार के प्रभाव से बना रहता है।

(३) यरूशलेम का मार्ग १० : १-५२

(क) तलाक का प्रश्न १० : १-१२

(मत्त. १९ : १-१२) (तुलना मत्त. ५ : १३; लू. १६ : १८)

मत्ती मरकुस के १० : ३-५ का क्रम परिवर्तित करता है। वह अपने दूसरे पद में, जो मरकुस के १० : २ के समान है, "हर एक कारण से" शब्दों को जोड़ता है। मरकुस के पद ११ में (=मत्त. १९ : ९) वह "व्यभिचार को छोड़ और किसी कारण से" शब्दों को जोड़ता है।

१० : १ में स्थल वर्णन अस्पष्ट है, और यूनानी मूल में पाठभेद भी है, जिसके कारण हि. प्र. और हि. सं. में कुछ अंतर है। यीशु गलील से यरूशलेम की ओर जा रहा था और ऐसा प्रतीत होता है कि वह यरदन पार के प्रदेश में होकर गया। **१० : २-९** में एक सूक्ति प्रधान कथा है, जिसके साथ १० : १०-११ जोड़े गए हैं। **१० : २** अनेक हस्तलेखों में फरीसियों का उल्लेख नहीं है, प्रश्न करनेवाले संभा-

व्यतः भीड़ के लोग थे। १० : ३ आदि में "मूसा" का अर्थ यहूदियों की व्यवस्था है। १० : ४ में व्य. २४ : १ की ओर संकेत है, और उस पद के शब्दों का प्रयोग किया गया है। व्य. २४ : १ इस प्रकार है : "यदि कोई पुरुष किसी स्त्री को ब्याह ले, और उसके बाद उस में कुछ लज्जा की बात पाकर उस से अप्रसन्न हो तो उसके लिए त्यागपत्र लिख-कर और उसके हाथ में देकर उसको अपने घर में से निकाल दे"। इसका अभिप्राय ऐसी स्त्री की रक्षा करना था, ताकि वह फिर से विवाह कर सके। हिल्लेल और शम्मै दो प्रसिद्ध रब्बी थे जिनकी उस पद के संबंध में प्रतिकूल मान्यताएं थीं। हिल्लेल "लज्जा की बात" के विषय में बहुत उदार विचार रखता था, उदाहरणार्थ यदि किसी पुरुष की पत्नी भोजन ठीक से न बनाए, या कोई अन्य स्त्री पति को अधिक सुंदर लगे तो पति पत्नी को त्याग सकता था। परंतु शम्मै कहता था कि "लज्जा की बात" केवल व्यभि-चार है। १० : ५ में यीशु प्रकट करता है कि विवाह का स्तर इन विचारों से उत्तम होना चाहिए। १० : ४ में "आज्ञा" के स्थान पर "अनुमति" (हिं. सं.) ठीक है। यीशु के उत्तर से पता चलता है कि यहां "आज्ञा" का अर्थ अनुमति ही है। पत्नी को त्यागने की अनुमति एक अस्थायी नियम था। स्थायी और मौलिक सिद्धांत वह है जो १० : ६-८ में व्यक्त किया गया है। १० : ६ में "परमेश्वर ने—बनाया है" शब्द उ. १ : २७ से और पद ७ उ. २ : २४ से उद्धृत हैं। यह लगभग शब्दशः सप्तति अनुवाद के अनुसार है। "इस कारण" शब्द इस उद्धरण में सम्मिलित हैं, यद्यपि हिं. सं. में वे भूल से उद्धरण-चिन्हों के अंदर सम्मिलित नहीं किए गए हैं। "इस कारण" शब्दों का संकेत उत्पत्ति में हव्वा के आदम की पसली में से बनाई जाने की ओर है, परंतु यीशु ने उन्हें इस विषय पर लागू किया। इन बातों का सार १० : ९ में है। विवाह परमेश्वर की ओर से है, अतः वह स्थायी और अटूट है, विवाह-विच्छेद नहीं होना चाहिए। पौलुस इस सिद्धांत का उल्लेख १ कुर. ७ : १० में करता है। विद्वानों की साधारण मान्यता यह है कि यह एक कड़ा नियम या व्यवस्था नहीं वरन् एक मूल सिद्धांत है। ऐसी परि-स्थितियां होती हैं जब दो बुरी बातों में उस बुरी बात को जो कम बुरी हो, यहां विवाह-विच्छेद को, चुन लेना पड़ता है।

१० : १०-१२ का स्रोत भिन्न माना जाता है। इस सुसमाचार के कई स्थलों में उल्लेख है कि यीशु ने इस प्रकार एकांत में शिष्यों को शिक्षा दी - ४ : १०, ३४; ७ : १७; ९ : २८; १० : २३; १३ : ३। मरकुस ने स्वयं इस अंश को यहां जोड़ा होगा। संभव है कि ये बातें Q में से हैं, क्योंकि मत्त. ५ : ३२ और लू. १६ : १८ इनके समान हैं। यहां भी मरकुस के अनुसार यीशु ने पूर्ण रूप से त्याग देने के विरुद्ध शिक्षा दी, परंतु मत्ती में जो समान अंश है उसमें, अर्थात् मत्त. १९ : ९, और मत्त. ५ : ३२ में भी, "व्यभि-चार को छोड़ और किसी कारण से" शब्द जोड़े गए हैं। मत्ती और मरकुस में से कौन सा विवरण प्रामाणिक है, इस पर टीकाकारों में मतभेद है। मरकुस के अनुसार यीशु की यह शिक्षा थी कि आदर्शतः विवाह-विच्छेद पूर्ण रूप से नहीं होना चाहिए। मत्ती के अनुसार उस ने हिल्लेल के दृष्टिकोण के विरुद्ध शम्मै के दृष्टिकोण का समर्थन किया,

अर्थात् उस ने विवाह-विच्छेद के संबंध में ढीले दृष्टिकोण का विरोध व्यक्त किया। परंतु अनेक विद्वानों का यह दावा है कि वास्तव में मत्ती और मरकुस में अंतर इतना ही है कि जो मत्ती में स्पष्ट है वह मरकुस में निहित है, क्योंकि न केवल व्य. २४ : १ में विवाह-विच्छेद जो व्यभिचार के कारण है उचित बताया गया है वरन् व्य. २२ : २२ में ऐसे व्यभिचार के लिए दंड का वर्णन भी है। उक्त विद्वान समझते हैं कि यीशु ने इस व्यवस्था को माना होगा, इस लिए "व्यभिचार को छोड़" मरकुस के विवरण में भी निहित है। यीशु ने व्यवस्था का विरोध नहीं किया होगा। परंतु हम पूर्ण निश्चय के साथ नहीं कह सकते कि यीशु ने व्यवस्था के विरुद्ध शिक्षा नहीं दी होगी। ऐसा प्रतीत होता है कि व्य. २४ : १ में और उ. १ : २७ और २ : २४ में विषमता प्रकट करके उस ने व्यवस्था के एक स्थल से दूसरे स्थल का निराकरण किया। अधिकांश टीकाकार मानते हैं कि संभाव्यत: यीशु ने इस शिक्षा को उस निरुपाधि रूप में (Categoric) दिया होगा जो मरकुस में है। यदि यह सत्य है तो मत्ती में मिलाई हुई बात मौलिक है नहीं। साधारणत: टीकाकार मानते हैं कि मरकुस ने ही १० : १२ को स्वयं जोड़ा, अथवा यह कलीसिया की रचना है। कारण यह कि यहूदी लोगों में स्त्री पुरुष को नहीं त्याग सकती थी। रोमी विधि के अनुसार यह संभव था। संभव है कि कलीसिया ने रोमी प्रथाओं से यीशु की शिक्षा का अनुकूलन किया, परंतु यह भी पूर्ण रूप से असंभव नहीं है कि यीशु ने स्वयं अयहूदियों को दृष्टि में रखते हुए यह बात कही। इस पद में पाठभेद भी है, जिसके कारण अधिकांश विद्वान मानते हैं कि "छोड़कर" के स्थान पर १० : ११ के समान "त्यागकर" होना चाहिए। यदि "छोड़कर" ठीक है तो विवाह-विच्छेद का उल्लेख नहीं है। जैसे ऊपर कहा गया है इन पदों में विवाह-विच्छेद के संबंध में कोई "ख्रिस्तीय व्यवस्था" तो नहीं, किंतु एक मौलिक सिद्धांत है। साधारण मान्यता के अनुसार यह आदर्श है, कि ख्रिस्तीय विवाह अटूट होना चाहिए। परंतु जब परिस्थिति ऐसी हो जाती है कि पति पत्नी के एकत्रित रहने से अधिकतर हानि होती है, अथवा किसी प्रकार से विवाह में अत्याधिक बिगाड़ उत्पन्न हो जाता है तो यह सिद्धांत कठोरता से लागू नहीं होना चाहिए।

(ख) बालकों को आशीर्वाद १० : १३-१६

(मत्त. १९ : १३-१५; लू. १८ : १५-१७)

यह एक सूक्ति-प्रधान कथा है। मत्ती और लूका में भिन्नताएं ये हैं कि मरकुस का १० : १५ मत्त. १८ : ३ में एक अन्य प्रसंग में है (मर. ९ : ३३-३७ की व्याख्या को देखिए), और कि मत्ती और लूका दोनों ने "क्रुद्ध होकर" शब्दों को निकाल दिया है।

इस अंश में यह नहीं बताया गया कि शिष्यों ने क्यों बालकों को यीशु के पास लाने का निषेध किया। साधारणत: अनुमान लगाया जाता है कि वे यीशु को कष्ट से बचाना चाहते थे, परंतु यह अनुमान मात्र है। कुछ विद्वानों का यह विचार है कि इस में छोटे बालकों को बपतिस्मा देने की ओर संकेत है, परंतु यह संकेत बहुत अस्पष्ट है।

बालकों के प्रति यीशु की अभिवृत्ति और शिष्यों की अभिवृत्ति में स्पष्ट विषमता प्रकट की गई है। १० : १४ और १ : ४१ (पाठांतर में - उस पद की व्याख्या को देखिए) और ३ : ५ में समानता है, परंतु इस पद में और १ : ४१ एवं ३ : ५ में "क्रुद्ध" भिन्न यूनानी शब्दों का अनुवाद है, अतः इस पद में हिं. सं० का अनुवाद "रुष्ट" है। केवल इस स्थान पर यह शब्द यीशु पर लागू किया गया है। १० : १५ में यीशु का वास्तविक कथन माना जाता है, परंतु अनेक टीकाकारों की मान्यता है कि यह इस कथन का ठीक प्रसंग नहीं है (ऊपर देखिए)। इस कथन से प्रकट होता है कि मरकुस की दृष्टि में परमेश्वर के राज्य का और उसमें प्रवेश करने का संबंध न केवल वास्तविक बालकों के साथ वरन् उन लोगों के साथ भी है जिन में बच्चों की सी अभिवृत्ति पाई जाती है। इस में विशेष गुण अपनी निर्भरता को मान लेना और परमेश्वर से कुछ ले लेने के लिए तैयार होना है। १० : १६ में यीशु लोगों के निवेदन से (पद १३) कहीं अधिक कार्य करता है। यह परिच्छेद स्पष्ट प्रकट करता है कि यीशु बालकों से आनंदित होता था, वह बहुत से वयस्कों के समान उनको कंटक नहीं समझता था। वह बच्चों के साथ बात चीत करना जानता था क्योंकि वह उन से प्रेम करता था।

(ग) धनवान् और शाश्वत जीवन १० : १७-२२
(मत्त. १९ : १६-२२; लू. १८ : १८-२३)

यह एक सूक्ति-प्रधान कथा है, पर वह साधारण सूक्ति-प्रधान कथा से अधिक विकसित है। मत्ती और लूका इस वर्णन के सजीव ब्योरों को छोड़ देते हैं। मत्ती ने १० : १८ को भिन्न रूप दिया। अन्य बातों में मत्ती और लूका दोनों अधिकतर मरकुस के समान हैं। कुछ विद्वानों का विचार है कि १० : १७-२२; २३-२७ और २८-३१ तीन अलग वर्णन हैं जो यहां जोड़े गए हैं। इन में से अंतिम के संबंध में यह विचार संभवतः ठीक है, परंतु संभाव्यतः १७-२२ और २३-२७ में ऐतिहासिक क्रमबद्धता है। संभव है कि २८-३१ किसी अन्य अवसर से संबंधित हैं।

१० : २२ में बताया गया है कि यह मनुष्य धनवान् था। इसके अतिरिक्त मत्ती उसे जवान (१९ : २२) और लूका (१८ : १८) उसे सरदार, या अधिकारी (हिं. सं.) बताते हैं। मरकुस का वर्णन बहुत सजीव, और प्रत्यक्षदर्शी की साक्षी पर आधारित प्रतीत होता है। उस मनुष्य का दौड़ता हुआ आना उसकी उत्सुकता को प्रकट करता है। यहूदी लोग "अनंत जीवन" शब्दों को युगांत संबंधी मानते थे, इनके संबंध में उनका वह विचार नहीं था जो विशेषकर यूहन्ना रचित सुसमाचार में पाया जाता है, कि अनंत जीवन परमेश्वर के साथ वह संयोग है जो इस शारीरिक जीवन में आरंभ होकर युगांत में पूर्ण होता है। १० : १७, १८ में "उत्तम गुरु", "उत्तम" (हिं. सं. "सद्गुरु", "सत्") के विषय में यीशु के कथन का अर्थ यह नहीं है कि वह अपने आप को पापी मानता है, वरन् संभाव्यतः यह है कि वास्तव में "सत्" शब्द केवल परमेश्वर स्वयं पर लागू हो सकता है, किसी मनुष्य पर नहीं। संभवतः यह भी निहित है कि केवल

उस व्यक्ति को मुझे "सत्" कहना चाहिए जो मुझे परमेश्वर-पुत्र पहचानकर मानता है। अनेक टीकाकारों के विचार के अनुसार उस मनुष्य ने औपचारिक रूप से इन शब्दों का प्रयोग करके यीशु की चापलूसी की। कुछ भी हो, यीशु का अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि वास्तविक उत्तमता के संबंध में उस मनुष्य के विचार को विस्तृत और गंभीर कर दे। ऐसा प्रतीत होता है कि मत्ती को यह कथन अच्छा नहीं लगा, क्योंकि उस ने उसे इस प्रकार परिवर्तित किया, "तू मुझ से भलाई के विषय में क्यों पूछता है ?" (मत्त. १६ : १७)।

१० : १६ की तुलना लै. १८ : ५; व्य. ८ : १; और यहे. १८ : ८, ६ से कीजिए, जहां जीवित रहना परमेश्वर की आज्ञाओं का पालन करने पर निर्भर बताया गया है। यह यहूदी धर्म का एक मूल विचार है। इस पद में दस आज्ञाओं (नि. २० : १२-१६; व्य. ५ : १६-२०) में से वे आज्ञाएं प्रस्तुत की गई हैं जिनका संबंध मनुष्यों के पारस्परिक संबंध से है। "छल न करना" (हिं. सं. "ठग मत") इन दस आज्ञाओं में सम्मिलित नहीं है - साधारणतः वह दसवीं आज्ञा का संक्षेप माना जाता है। **१० : २०** में हिं. सं. का अनुवाद अधिक स्पष्ट है, "मैं अपनी बाल्यावस्था से ही इन सब का पालन करता आया हूं"। **१० : २१** में यीशु के शब्द "उन्हें प्यार किया" (हिं. सं.) संकेत करते हैं कि यीशु ने इस व्यक्ति में वास्तविक जीवन को प्राप्त करने की आकांक्षा पहचानी। परंतु साथ ही साथ यीशु ने उस बाधा को भी स्पष्ट पहचाना जो उस मनुष्य को उस जीवन की प्राप्ति से रोक रही थी। यीशु जानता है कि हमारे जीवनों में अग्रिम स्थान किस वस्तु को प्राप्त है। "तुझे स्वर्ग में धन मिलेगा" शब्द "मेरे पीछे हो ले" के पश्चात् आते हैं। कदाचित इस तथ्य का अर्थ यह है कि यीशु उस मनुष्य के "अनंत जीवन" संबंधी संकीर्ण विचार को विस्तृत कर रहा था, अर्थात् उस कथन में यह निहित है कि यह जीवन यहां इस संसार में आरंभ हो सकता है। यीशु हमारा संपूर्ण समर्पण चाहता है। यह व्यक्ति इस के लिए तैयार नहीं था। परमेश्वर की अपेक्षा उसकी संपत्ति उसे अधिक प्रिय थी। इस प्रकार हम में से प्रत्येक के लिए यह अनिवार्य है कि हम यीशु को अवसर दें कि वह उस "एक वस्तु का अभाव" प्रकट करे जो हमको उसके लिए संपूर्ण समर्पण से रोकती है।

(घ) धन की जोखिम १० : २३-३१

(मत्त. १६ : २३-३०; लू. १८ : २४-३०)

जैसे ऊपर कहा गया है, संभाव्यतः इसका संबंध उस धनवान् के वर्णन के साथ है जो पिछले अंश में है। यहां यह नहीं कहा गया है कि धनवान् का परमेश्वर के राज्य में प्रवेश करना असंभव है। वह अत्यंत कठिन है। परमेश्वर के राज्य में प्रवेश करना उसको अपने जीवन में अग्रिम स्थान देना है, ताकि वह हृदय और मन में पूर्ण राज्य करे। शिष्य इस कारण अचंभित हुए कि यहूदियों की साधारण मान्यता यह थी कि संपत्तिशाली होना परमेश्वर की कृपादृष्टि का प्रमाण है। कहीं कहीं इसके विपरीत

विचार भी व्यक्त किया जाता था, कि अन्यायी धनवान् दंड पाएंगे। १० : २४ में "जो धन पर भरोसा रखते हैं उनके लिए" शब्द अनेक उत्तम हस्तलेखों में नहीं पाए जाते, अतः संभाव्यतः ये शब्द प्रामाणिक नहीं हैं - वे हिं. सं. में नहीं हैं। १० : २५ का अर्थ शाब्दिक नहीं है, वह किसी अत्यंत कठिन कार्य की अभिव्यक्ति के लिए एक प्रचलित कहावत थी। उस कहावत की यहां उचित अत्युक्ति है। १० : २६ के शब्द "फिर किसका उद्धार हो सकता है ?" प्रकट करते हैं कि यीशु का उपरोक्त कथन न केवल धनवानों पर वरन् प्रत्येक प्रकार के लोगों पर लागू है। धनवान् होने की आकांक्षा सब मनुष्यों में पाई जाती है। १० : २७ में इस समस्या के समाधान का रहस्य प्रकट होता है। परमेश्वर यह कार्य करा सकता है जो स्वाभाविक रूप से मनुष्य के लिए असंभव है।

१० : २८-३१ का संबंध १० : २१ से प्रतीत होता है, जिस में संपत्ति को त्यागने का उल्लेख है। यूनानी मूल में "छोड़कर" का अर्थ यह है कि किसी समय विशेष पर उन्हों ने उसे त्याग दिया। "पीछे हो लिया" शब्दों के लिये जो मूल यूनानी शब्द हैं उनमें यह निहित है कि पीछे हो लेना एक लगातार क्रिया है। १० : २९ मसीही अनुभव यह प्रकट करता है कि ख्रिस्तीय समाज, अर्थात् कलीसिया, एक ऐसा समाज होना चाहिए जिसकी सहभागिता समस्त मानवीय संबंधों की सहभागिता से श्रेष्ठ है। "अब इस समय" शब्दों पर ध्यान देना चाहिए, परंतु उन पर अधिक बल देने से सावधान रहना चाहिए क्योंकि इस से लोभ उत्पन्न हो सकता है, और लोग संपत्ति को प्राप्त करने के अभिप्राय से "मसीही" बन सकते हैं। "और सुसमाचार के" शब्द (१० : २९) साधारणतः संपादकीय माने जाते हैं, क्योंकि यीशु ने संभाव्यतः ऐसा नहीं कहा होगा - "सुसमाचार" शब्द कालांतर में प्रचलित हो गया। इस पद और १० : ३० में स्पष्ट किया गया है कि कलीसिया में ख्रिस्तीय व्यक्ति एक बड़े समाज का सदस्य है जिसकी सहभागिता में उसको वास्तविक नातेदार मिलेंगे। वह एक बड़ा परिवार है। संभवतः "और परलोक में अनंत जीवन" शब्दों का अनुकूलन शाश्वत जीवन के प्रचलित विचार से किया गया है, अर्थात् कि वह केवल युगांत में मिलेगा। यह "जीवन" उस विचार से असंगत प्रतीत होता है जो मर. ९ : ४३, ४५; १० : १५ में व्यक्त किया गया है, इस कारण अनेक टीकाकार इन शब्दों को अप्रामाणिक मानते हैं। अनंत जीवन युगांत में परिपूर्ण होगा, परंतु अभी आरंभ हो जाता है। १० : ३१ मत्ती में भी इस प्रसंग में है, परंतु लूका में नहीं। यही कथन मत्त. २० : १६ में, दाख की बारी की मज़दूरों के दृष्टांत के अंत में, और लूका १३ : ३० में, Q के कथनों के समूह में भी पाया जाता है। उसका वास्तविक प्रसंग अज्ञात है। उसका साधारण अर्थ यह है कि संसार के मानदंड पलट दिए गए हैं। इस स्थल में यह कथन शिष्यों पर लागू हो सकता है - वह उनके प्रोत्साहन के लिए है क्योंकि वे सब कुछ छोड़कर यीशु के पीछे हो लिए हैं परंतु यह भी संभव है कि वह पतरस को चेतावनी देने के लिए है, कि वह स्वयं को "पहिला" (हिं. सं. "प्रथम") न समझे।

(च) दु:खभोग और पुनरुत्थान की तीसरी भविष्यवाणी १० : ३२-३४
(मत्त. २० : १७-१९; लू. १८ : ३०-४०)

यह यीशु के दु:खभोग की तीसरी भविष्यवाणी है (तुलना ८ : ३१; ९ : ३१)। यह अन्य दो से अधिक ब्योरेवार है, अतः सामान्य विचार यह है कि उसकी रचना पर परवर्ती घटनाओं, अर्थात् क्रूसीकरण आदि का प्रभाव हुआ है। अनेक टीकाकारों की मान्यता के अनुसार ये तीन कथन वास्तव में एक ही कथन के भिन्न रूप हैं और उनके संदर्भ मरकुस की कल्पित रचनाएं हैं। परंतु यह मत स्वीकार्य नहीं है कि यीशु ने केवल एक बार ऐसी भविष्यवाणी की। १० : ३२ में संभाव्यतः लोगों को दो समूहों का वर्णन है, जैसे हिं. सं. से स्पष्ट है, "शिष्य घबराए हुए थे, और पीछे आनेवाले भयभीत थे"। "शिष्य" शब्द यूनानी मूल पाठ में नहीं है, परंतु संभाव्यतः यही अभिप्रेत है। शिष्य 'वे बारह' होंगे, और दूसरे समूह में अन्य अनुयायी रहे होंगे। उनकी घबराहट और भय से स्पष्ट होता है कि जो कुछ यीशु कर रहा था उसकी गंभीरता का वे अनुभव कर रहे थे, यद्यपि वे उसको नहीं समझ सकते थे। यीशु का उनके आगे चलना उनके न समझने का प्रतीक है। १० : ३३, ३४ के ब्योरे वही हैं जो दु:खभोग के वर्णन में भी हैं, तुलना कीजिए १४ : ५३, पकड़वाया जाना; १४ : ६४ घात के लिए ठहराया जाना; १५ : १ रोमियों के हाथ सौंपना; १४ : ६५; १५ : १५; १६-२० ठट्ठों में उड़ाया जाना, थूकना, कोड़े मारना; १५ : २४-३७ घात करना; १६ : १-८ जी उठना। अतः ये पद दु:खभोग के इस वर्णन को सामने रखते हुए रचे गए होंगे। ऐसा प्रतीत होता है कि यीशु ने अपने मन में जान लिया कि यरूशलेम जाना अवश्य है, क्योंकि वह यहूदियों के धार्मिक अधिकार का केन्द्र था।

(छ) यूहन्ना और याकूब का निवेदन, महान कौन है ? १० : ३५-४५
(मत्त. २० : २०-२८ ; लू. २२ : २४-२७)

मरकुस के १० : २५-४० लूका में नहीं हैं, परंतु इस प्रकार के बपतिस्मे का उल्लेख लू. १२ : ५० में है। लू. २२ : २४-२७ का प्रसंग भिन्न है, और शब्दों में भी अंतर है। मत्ती के अनुसार यूहन्ना और याकूब नहीं किंतु उसकी माता यह निवेदन करती है।

अनेक टीकाकारों की मान्यता के अनुसार यह परिच्छेद एक इकाई नहीं है। साधारणतः १० : ३५-४० और ४१-४५ दो अलग अंश माने जाते हैं। यह विचार प्रस्तुत किया जाता है कि भिन्न भिन्न स्रोतों से ४१-४५ के कथन एकत्रित किए गए हैं। अनेक विद्वानों का मत यह है कि १० : ३८, ३९ और कदाचित पद ४० भी अन्य स्रोतों के लिए गए हैं। हमारे विचार में यह अंश (१० : ३५-४०) एक इकाई प्रतीत होता है, अतः ऐसा मानते हुए उसकी व्याख्या की जा रही है। संभव है कि १० : ४१-४५ यहां किसी अन्य प्रसंग से जोड़े गए हों। परंतु फिर भी मरकुस में उनका प्रसंग लू. २२ : २४-२७ के प्रसंग की तुलना में अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है, अतः संभवतः

इनका संबंध वास्तव में यूहन्ना और याकूब के निवेदन की घटना के साथ है। इस निवेदन में और ८ : ३१ के पश्चात् के वर्णन में समानता है, और दोनों स्थलों में वास्तविक महानता संबंधी कथन भी हैं। अनेक टीकाकार – रूप-आलोचक और संपादन-आलोचक - मानते हैं कि यह समानता ऐतिहासिक नहीं वरन् मरकुस का विन्यास है। उनके निकट पृथक कथन, जिनके वास्तविक प्रसंग हमें ज्ञात नहीं हैं, यहां विषयानुसार संग्रहीत हैं। यह संभव है, परंतु निश्चित नहीं है।

इन दो भाइयों का निवेदन आश्चर्यजनक है। "तेरी महिमा" के स्थान पर मत्ती में १० : २० "तेरे राज्य में" है। दोनों का अर्थ युगांत है, जिसे शिष्य शीघ्र होनेवाला मानते थे। संभाव्यतः उनका विचार यह था कि यीशु के (पुनः) आगमन के समय यह राज्य इस संसार में स्थापित हो जाएगा और उनको उस में उच्च पद मिलेंगे। वे कैसे मंद थे! उन्हों ने नहीं पहचाना कि उनकी आकांक्षा यीशु की शिक्षा के विपरीत थी। इन पदों में "कटोरा" और "बपतिस्मा" आ अर्थ यीशु का दुःखभोग है। 'कटोरा' का यह अर्थ यश. ५१ : १७ और यि. ४९ : १२ में पाया जाता है। 'बपतिस्मा' के लिए भ. ४२ : ७; ६९ : २; लू. १२ : ५० को देखिए। इन दो शिष्यों ने बड़े दावे के साथ कहा कि हम तेरे दुःखभोग में सहभागी होने को तैयार हैं, परंतु क्रूस के समय वे तैयार नहीं थे। हम जानते हैं कि कालांतर में याकूब शहीद हुआ (प्रे. १२ : २)। परवर्ती काल के कुछ प्रमाण हैं कि यूहन्ना भी याकूब के साथ मारा गया, परंतु ये प्रमाण विश्वसनीय नहीं है। इस कारण अनेक टीकाकारों की यह मान्यता उचित प्रतीत नहीं होती कि ये पद यहां इस कारण सम्मिलित किए गए कि यूहन्ना और याकूब उस समय शहीद हो चुके थे। कुछ विद्वानों का विचार है कि १० : ४० में परमेश्वर के पूर्वनिर्धारण का विचार निहित है, परंतु इन शदों को इस अर्थ में समझना आवश्यक नहीं है। मुख्य तथ्य यह है कि यीशु यहां परमेश्वर के परमाधिकार को मानता है। इस से यह परिणाम नहीं निकालना चाहिए कि विशेष स्थान अथवा पद पहले से निर्धारित हैं।

जो विद्वान १० : ३८-४० को जोड़े हुए पद मानते हैं वे कहते हैं कि पद ३७ और पद ४१ में निकट संबंध है, अतः उपरोक्त पदों के जोड़े जाने से पहले वे एक ही क्रम में थे। परंतु १० : ३८ : ४० के होतेमहुए भी यह निकट संबंध प्रकट है - क्रम में कोई बाधा नहीं जान पड़ती। १० : ४२-४४ में वास्तविक महानता के विषय में संसार के विचार और यथार्थ ख्रिस्तीय विचार में विषमता स्पष्ट प्रकट की गई है। "जो अन्य जातियों के हाकिम समझे जाते हैं" के स्थान पर "जो संसार के अधिपति माने जाते हैं" (बुल्के) अच्छा है, क्योंकि यहां यहूदियों की विषमता में अयहूदी अभिप्रेत नहीं हैं। "प्रभुता करते हैं" के स्थान पर "निरंकुश शासन करते हैं" (हिं. सं.) अधिक सार्थक है। नए इस्राएल, अर्थात् कलीसिया में अधिकार की पिपासा के लिए कोई स्थान नहीं होना चाहिए। फिर भी दुर्भाग्यवश यह पिपासा है। यीशु की यह शिक्षा अब भी अत्यंत आवश्यक है। १० : ४३ की तुलना ९ : ३५ से कीजिए। कहां प्रधान और कहां दास (१० : ४४)! इस कथन पर मनन चिंतन करना आवश्यक है। क्या

कलीसिया में सेवक की भावना या प्रधान की भावना अधिक है ? कलीसिया के संगठन में प्रधानों की आवश्यकता है, परंतु ऐसा प्रधान होने की शर्त सेवा की भावना होनी चाहिए। इसके विपरीत बहुधा कलीसिया संबंधी समितियों में महत्वाकांक्षा को अधिक स्थान प्राप्त है। सेवा की भावना की आवश्यकता का मूल कारण १० : ४५ में स्पष्ट किया गया है। स्मरण कीजिए कि "मानव-पुत्र" पदवी यीशु के ईश्वरत्व को व्यक्त करती है। यद्यपि यीशु दिव्य व्यक्ति था तथापि उसके कार्य में मूल तत्व था - सेवा करने की भावना। इस पद का अंतिम भाग हिं. सं. में अधिक ठीक है, "बहुतों के बदले उनकी मुक्ति के मूल्य में अपने प्राण देने आया"। इस में एक मुहाविरे का प्रयोग किया गया है। यह पूछना व्यर्थ है कि यह मूल्य किस को दिया गया। मुख्य तथ्य यह है कि यीशु की मृत्यु बहुतों के लिए अर्थात उनके निमित्त हुई। यह कैसे हुआ, यहां नहीं बताया गया है। "छुड़ौती" या मुक्ति का मूल्य" का शाब्दिक अर्थ "निष्क्रय" है, परंतु यहां यह भी मुहाविरा है। यह वह साधन है जिसके द्वारा कोई व्यक्ति स्वतंत्र किया जाता है। संभव है कि इन पदों में यश. ५३ : १०-१२ की ओर संकेत है। यीशु के साथ कलीसिया भी प्रभु का दास होने के लिए बुलाई गई है।

(ज) अंधे बरतिमाई को दृष्टिदान १० : ४६-५२

(मत्त. २० : २६-३४; लू. १८ : ३५-४३)

इस अंश में मत्ती और लूका ने अधिकतर मरकुस का अनुसरण किया है। उन्हों ने कुछ ब्योरों को, उदाहरणार्थ बरतिमाई के नाम को, निकाल दिया है। गिरासेनी मनुष्य के वर्णन के समान (मत्त. ८ : २८ क.) इस में भी मत्ती दो व्यक्तियों का वर्णन करता है। लूका के अनुसार यह घटना उस समय हुई जब वे यरीहो के पास पहुंचनेवाले थे।

यरीहो यरूशलेम से लगभग २४ किलोमीटर की दूरी पर, यरदन नदी से लगभग आठ किलोमीटर पश्चिम की ओर यरदन की घाटी में स्थित था। मरकुस साधारणतः किसी नाम की व्याख्या नाम के पश्चात् लिखता है, परंतु 'बरतिमाई' की व्याख्या पहले है, अतः अनेक टीकाकार उसे मूल पाठ में जोड़ी हुई टिप्पणी मानते हैं। ख्रिस्त के काल के पश्चात् के यहूदी साहित्य में "दाऊद की संतान" ख्रिस्त-विषयक पदवी मानी जाती थी। यीशु के समय से पहले के साहित्य में ये शब्द पदवी के रूप में केवल "सुलैमान के भजन" १७ : २१ में पाई जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि बरतिमाई के लिए उसका यही अर्थ था। लोगों ने फिर प्रयत्न किया कि यीशु को कष्ट न दिया जाए, और यीशु ने फिर उनके प्रयत्न पर पानी फेर दिया (१० : १३-१६ से तुलना कीजिए)। **१० : ५०** में "कपड़े फेंककर" का अर्थ कोई चादर जैसा कपड़ा है, या संभवतः वह कपड़ा है जो भीख डालने के लिए फैला हुआ था। ऐसा प्रतीत होता है यीशु ने उस मनुष्य की प्रतिक्रिया को जानने के लिए और उसे प्रोत्साहित करने के लिए प्रश्न पूछा - तुलना कीजिए ५ : ९, ३०; ६ : ३८; ९ : २१। बरतिमाई के उत्तर में "रब्बी" मूल पाठ

में "रब्बोनी" है, जो अधिक सार्थक है। इस से एक व्यक्तिगत संबंध प्रकट किया गया है। १० : ५२ की तुलना ५ : ३४ से कीजिए। १० : ५२ में "विश्वास", "मार्ग" और "पीछे हो लिया" सब सार्थक शब्द हैं। न केवल शारीरिक स्वास्थ्य यीशु से प्राप्त होता है वरन् आत्मिक रूप से भी उस पर विश्वास किया जाता है। "चंगा कर दिया" का शाब्दिक अर्थ "बचाया", अर्थात् "उद्धार किया" है। "मार्ग" ख्रिस्तीय धर्म के लिए प्रयुक्त होता था, और कई बार नया नियम में इन अर्थों में पाया जाता है। संभाव्यतः "पीछे हो लिया" का अर्थ यीशु का अनुयायी होना है। यहां ८ : २७-१० : ५२ खंड का अंत है। इस खंड में वर्णित है कि यीशु ने शिष्यों की आत्मिक आंखों को खोलने का प्रयत्न किया, और शिष्य होने के अर्थ का स्पष्टीकरण किया। ऐसा प्रतीत होता है कि मरकुस का अभिप्राय था कि यह घटना, यूहन्ना के अध्याय ९ के समान, लाक्षणिक रूप से समझी जाए। कदाचित इस में यश. ४२ : १८; ६१ : १ की ओर भी संकेत है।

६. यरूशलेम में ११ : १-१३ : ३७

(१) यरूशलेम में प्रवेश। प्रतीक और क्रिया के द्वारा शिक्षा ११ : १-२६

(क) यीशु का यरूशलेम में प्रवेश करना ११ : १-११

(मत्त. २१ : १-९; लू. १९ : २८-३८; तुलना यू. १२ : १२-१९)

११ : ११, १२ और १९, २० से पता लगता है कि ११ : १-१३ : ३७ में केवल तीन पृथक दिनों का वर्णन है। परंतु इन में से तीसरे दिन में उतनी घटनाएं नहीं हो सकती सकती थीं जितनी ११ : २०-१३ : ३७ में वर्णित हैं। अतः साधारणतः यह माना जाता है कि ११ : २७-१२; ४४ और अध्याय १३ सम्मिश्रित हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ११ : २७-१२ : ३७पू यीशु के विरोध संबंधी वर्णनों का समूह है जो मरकुस की रचना से पहले एकत्रित किए गए (२ : १-३ : ६ के समान)। यह वर्णन भिन्न भिन्न समयों की घटनाओं के विषय में होंगे। संभव है कि ११ : २७-३३ ऐतिहासिक रूप से इस प्रसंग में ठीक है। मत्ती और लूका मर. ११ : १-११ के वर्णन को कुछ संक्षिप्त करते हैं, परंतु मत्ती और यूहन्ना जक. ९ : ९ से उद्धरण प्रस्तुत करते हैं। लूका के वर्णन के अंत में पद ३७, ३८ मरकुस के वर्णन से बहुत भिन्न हैं।

बहुत टीकाकार मानते हैं कि मूलतः यह समस्त वर्णन ऐतिहासिक रूप से विश्वसनीय है और कि यह पतरस की परंपरा पर आधारित है। अन्य विद्वानों की मान्यता के अनुसार केवल ११ : ७-१० एक ऐतिहासिक घटना पर आधारित हैं, और अनेक विद्वान ऐसे हैं जो समस्त वर्णन को दंतकथा मानते हैं। हमारे विचार में यह मूल रूप से ऐतिहासिक है।

११ : १-६ बैतफगे एक गांव या खेड़ा था जो यरूशलेम के निकट स्थित था, परंतु उसका ठीक स्थान अज्ञात है। **बैतनिय्याह** भी यरूशलेम के समीप यरीहो के मार्ग में स्थित था। **जैतून पर्वत** यरूशलेम से पूर्व की ओर किद्रोन की घाटी से परे है। यद्यपि मरकुस जक. ९ : ९ से उद्धरण प्रस्तुत नहीं करता, तथापि उसकी ओर संकेत करता है, और

सप्तति अनुवाद के अनुसार उस पद में एक "नये" गदही के बच्चे का उल्लेख है। कदाचित् सप्तति अनुवाद के प्रभाव के कारण ये शब्द यहां जोड़े गए। यह विचार प्रचलित था कि ऐसे पवित्र कार्य के लिए एक ऐसे गदहे की आवश्यकता थी जिस पर कभी कोई नहीं बैठा था। ११ : ३ में "प्रभु" के संबंध में साधारण मान्यता यह है कि यीशु अभिप्रेत है परंतु यीशु के लिए इस सुसमाचार में "प्रभु" शब्द और कहीं नहीं मिलता, अतः अनेक टीकाकारों की मान्यता है कि गदहे के स्वामी का उल्लेख है। संभाव्यतः यीशु ने अपने संबंध में "प्रभु" शब्द का प्रयोग नहीं किया होगा, परंतु यह संभव है कि उस ने "मुझे" कहा, और परंपरा की रचना में यह "प्रभु" में परिवर्तित हुआ। स्वाभाविक रूप से प्रतीत होता है कि यीशु अभिप्रेत है। हि. प्र. की पद-टिप्पणी ठीक है, "शीघ्र उसे यहां लौटा देगा"। हिं. सं. का अनुवाद भी ऐसा ही है। ११ : ४ में "चौक में" की तुलना हिं. सं. से कीजिए, "सड़क के किनारे"।

११ : ७-१० : जैसे ऊपर संकेत किया गया है, अनेक विद्वान इन पदों को इस अंश का मूल ऐतिहासिक भाग मानते हैं। राजा शांति के समय गदहों पर चढ़कर और युद्ध के समय घोड़ों पर सवार होकर चलते थे। मरकुस इस वर्णन से इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि यीशु ऐसा ख्रिस्त होकर नहीं आया जिस की प्रतीक्षा यहूदी लोग कर रहे थे, अर्थात् एक योद्धा ख्रिस्त। मंडप पर्व और प्रष्ठिान पर्व (स्थापन पर्व, यू. १० : २२) के अवसरों पर डालियां हिलाई जाती थीं और "हल्लेल", अर्थात् स्तोत्र (भ. ११३-११८) दोहराया जाता था। फसह के पर्व में भी भ. ११८ का प्रयोग किया जाता था। यहां "होशाना, धन्य है वह जो प्रभु के नाम से आता है" शब्द भ. ११८ : २५, २६ से उद्धृत हैं। "होशाना" का शाब्दिक अर्थ है, "अभी बचाइए", या "कृपया बचाइए"। इन अर्थों में यह इब्रानी शब्द (जिस के अरामी रूप का लिप्यंतरण यहां यूनानी में है) २ श. १४ : ४ में ('राजा की दुहाई') और २ रा. ६ : २६ में ('हे राजा बचा') पाया जाता है। धीरे धीरे वह उल्लास या स्वागत की पुकार में परिवर्तित हुआ। भ. ११८ के बार बार दोहराए जाने के कारण सब यहूदी लोग भली भांति उस से परिचित थे। "हमा पिता दाऊद का राज्य जो आ रहा है" जैसे शब्द और कहीं नहीं पाए जाते हैं। कदाचित ये उपरोक्त उद्धरण की व्याख्या हैं। इस स्थल को छोड़ केवल प्रे. ४ : २५ में दाऊद "हमारा पिता" कहा गया है। एक टीकाकार ने लिखा है कि यह पूर्ण रूप से ख्रिस्त संबंधी कथन है।

अनेक विद्वानों की मान्यता है कि इन पदों में यीशु अपने आप को ख्रिस्त नहीं प्रकट कर रहा है। मरकुस और मत्ती के वर्णनों में अंतर है। मत्ती में जक. ९ : ९ से उद्धरण है, और मत्ती २१ : ९ में "दाऊद-पुत्र को होशाना" (हि. सं.) शब्द हैं, जो स्पष्टतः ख्रिस्त-संबंधी हैं। उक्त विद्वान कहते हैं कि मरकुस की बातें ऐसी स्पष्ट नहीं हैं, और कि "जो प्रभु के नाम से आता है" शब्द भी ख्रिस्त की ओर संकेत नहीं करते। परंतु मत्त. ११ : ३=लू. ७ : १९ में "आनेवाला" (जिस में उसी यूनानी शब्द का प्रयोग किया गया है) का अर्थ ख्रिस्त है। अतः हमारे विचार में यद्यपि मरकुस के वर्णन में यीशु

के ख्रिस्त होकर यरूशलेम में प्रवेश करने का ऐसा स्पष्ट वर्णन नहीं है जैसा मत्ती में है, तो भी मरकुस का अभिप्राय था कि यही समझा जाए। मत्ती ने मरकुस के वर्णन को विस्तार दिया है। संभव है कि ये "बहुत" लोग (११ : ८) जिन्होंने इस घटना में भाग लिया यरूशलेम निवासी नहीं वरन् यीशु के साथी थे। अनेक टीकाकारों का विचार है कि यदि यीशु यरूशलेम में प्रवेश करते समय ख्रिस्त माना जाता तो रोमी अधिकारियों को शीघ्र ही इसका पता लगता और वे उसको अवश्य पकड़ लेते। परंतु इस घटना के संकेत - भजन से उद्धरण, लोगों के जयजयकार, गदहे का प्रयोग आदि - ऐसे स्पष्ट नहीं थे कि रोमी उन्हें समझ सकते। देखनेवाले इसको एक प्रकार का धर्म-संबंधी जुलूस समझ लेते। सारांश यह है कि हमारे विचार में मरकुस का यह अभिप्राय था कि पढ़नेवाले समझें कि इस प्रकार प्रवेश करने में यीशु अपने आप को ख्रिस्त प्रकट कर रहा था। संभाव्यत: ऐतिहासिक रूप से यह घटना मूलत: इस प्रकार हुई, यद्यपि परंपरा के निर्माण में उनके शाब्दिक रूप पर ख्रिस्तीय समुदाय का प्रभाव हुआ होगा।

११ : ११ के अनुसार यीश ने यरूशलेम से बाहर जाकर रात काटी। मत्ती और लूका के अनुसार मंदिर का परिष्कार उसी दिन हुआ। यीशु ने मंदिर में "सब कुछ" देखा। मंदिर बहुत बड़ा था, अत: इस सर्वेक्षण में कुछ समय लग गया होगा। इस पद से ऐसा प्रतीत होता है कि यीशु का यरूशलेम में प्रवेश अधिक धूम धाम के साथ नहीं हुआ।

(ख) फल रहित अंजीर का पेड़ ११ : १२-१४
(मत्त. २१ : १८; १९)

यह वर्णन लूका में कदाचित् इस कारण नहीं है कि लू. १३ : ६-९ में अंजीर के पेड़ का दृष्टांत है। मत्ती इस वर्णन को संक्षिप्त करके बताता है कि अंजीर का पेड़ तुरन्त सूख गया।

परिश्तीन देश में अंजीर जून में पकते हैं। फल पत्तों के निकलने से पहले लगने लगते हैं। यदि उस समय तक जब पत्ते निकलते हैं कोई फल न लगा हो तो फिर फल न लगेंगे। मार्च-अप्रैल में फल पकना प्रायः असंभव है। इस पेड़ पर पत्ते थे। यदि उस पर फल लगा भी होगा तो खाने के योग्य न होता।

सामान्य मान्यता यह है कि यह अंश नया नियम के सब से कठिन स्थलों में से एक है। विशेष कठिनाई यह है कि यह क्रिया यीशु के आत्मिक और नैतिक स्तर के अनुकूल प्रतीत नहीं होती। फल ढूंढ़ने का कारण यह बताया गया है कि यीशु को भूख लगी। ऐसा प्रतीत होता है कि यीशु ने रुष्ट होकर पेड़ को सुखा दिया, यद्यपि पेड़ से उस ऋतु में फल होने ही आशा नहीं हो सकती थी। "कोई तेरा फल कभी न खाए" शब्द बहुत सबल हैं, और पतरस ने उन्हें शाप कहा (११ : २१)। अनेक टीकाकार इसे एक क्रियात्मक दृष्टांत मानते हैं। उनकी मान्यता है कि घटना उसी प्रकार से हुई

जैसी वर्णित है, और यीशु का अभिप्राय यह शिक्षा देना था कि इस्राएल उस फल रहित वृक्ष के समान था, अतः वह भी नष्ट होनेवाला था। परंतु यीशु की भूख का उल्लेख इस व्याख्या के विरुद्ध है।

हमारा विचार यह है कि यह मानना पड़ेगा कि जो कुछ घटित हुआ वह मौखिक परंपरा में ऐसा परिवर्तित हुआ कि अब हम उसे ठीक से नहीं जान सकते। एक संभावना यह है कि इस मार्ग में एक सूखा अंजीर का पेड़ था, और यीशु ने शिक्षा देने के लिये दृष्टांत रूप में उसका प्रयोग किया, और परंपरा में यह दृष्टांत चमत्कार में बदल गया। अनेक टीकाकारों की यह मान्यता है कि यह वर्णन लू १३ : ६-९, फल रहित अंजीर के पेड़ के दृष्टांत पर आधारित एक कल्पित शिक्षात्मक वर्णन है। इन बातों के संबंध में हम केवल अनुमान लगा सकते हैं। परंतु इस अंश की मूल शिक्षा स्पष्ट है, अर्थात् यह कि फल रहित जीवन सूख जाता है और परमेश्वर के काम का नहीं रहता। यह शिक्षा विशेष रूप से इस्राएल पर लागू थी, पर सब पर भी लागू है।

(ग) मंदिर से बिक्री करनेवालों का निष्कासन ११ : १५-१९

(मत्त. २१ : १२, १३; लू. १९ : ४५-४८; तुलना यू. २ : १३-१७)

मत्ती और लूका ने इसको काफी संक्षिप्त किया है। लूका ने विशेषकर सब ब्योरों को छोड़ दिया है। मत्ती और लूका दोनों ने मंदिर में होकर पात्र लेजाने के निषेध को निकाल दिया है। मत्ती में मरकुस ११ : १८, १९ भी नहीं हैं।

मरकुस या उसके स्रोत ने किसी उद्देश्य से इसको फल रहित वृक्ष के वर्णन के बीच में स्थान दिया है। उस वर्णन के समान यह भी इस्राएल की निष्फलता पर बल देता है। यहूदी लोगों में उनके मंदिर को बहुत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। उन का एक ही मंदिर था जहां बड़े बड़े पर्वों के अवसरों पर लोग दूर दूर से आते थे। केवल मंदिर में में ही बलिदान हो सकते थे। यह तीसरा मंदिर था, जिसका निर्माण महान हेरोदेस ने किया। इसके चार ओसारे थे जिन में से सब से बड़ा और बाहरी अन्यजातियों का ओसारा था। केवल इस ओसारे में ही अन्य जाति के लोगों को प्रवेश करने की अनुमति थी। संभाव्यतः इसी ओसारे में यह घटना हुई। कबूतर आदि बेचनेवाले और सर्राफ लोगों की सुविधा के लिए वहां उपस्थित थे। मंदिर का कर रोमी मुद्रा में नहीं, जो क्रय विक्रय के लिए सामान्य प्रयोग में आती थी, वरन् इब्रानी मुद्रा में देना पड़ता था, इस कारण सर्राफों की आवश्यकता थी। व्यवस्थानुसार यह अनिवार्य था कि बलि के पशु और पक्षियां निर्दोष हों, अतः प्रमाणित पशु और पक्षियां बेचने के लिए रखे जाते थे। बेचनेवाले इन्हें मंदिर के बाहर रखने के बजाय अन्यजातियों के ओसारे में बेच रहे थे। कुछ प्रमाण ऐसे मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि अनुचित लाभ भी उठाया जाता था। मिशनाह में भी, जो यीशु के काल के पश्चात् लिखा गया, मंदिर को आम रास्ता बनाना निषिद्ध था। संभव है कि यीशु के काल में भी यह निषेध था और कि पद १६ में यीशु उसी पर बल दे रहा था।

११ : १७ में उद्धरण यश. ५६ : ७ ("मेरा······कहलाएगा") और यिर. ७ : ११ ("डाकुओं की खोह") से हैं। इन में से पहले में संकेत है कि यह घटना अन्य-जातियों के ओसारे में हुई। यह ओसारा ऐसी बुरी दशा में था कि वह सब अन्यजातियों के लिए प्रार्थना का घर नहीं हो सकता था। इस वर्णन से स्पष्ट है कि यीशु मंदिर का बड़ा आदर करता था, परंतु वर्णन का महत्व उस से अधिक भी है। इस घटना के द्वारा गुप्त रूप से यीशु के ख्रिस्त होने का दावा किया गया। यहेजकेल के समय से (यहे. अध्याय ४०-४८) यहूदी लोग यह आशा रखते रहे कि आनेवाले ख्रिस्त के काल में मंदिर का नवीनीकरण होगा। संभाव्यत: इस घटना की पृष्ठभूमि मलाकी ३ : १, २ है, "प्रभु···अचानक अपने मंदिर में आ जाएगा" आदि। यह घटना उस आत्मिक जीवन के नवीनीकरण का प्रतीक है जिसको यीशु करने आया। सामान्य रूप से ११ : १८ संपादकीय माना जाता है। इस बार फरीसी नहीं, यहूदियों का अधिकारी-गण यीशु का विरोध करता है। सहदर्शी सुसमाचारों में रस्सियों के कोड़े (यू. २ : १५) का कोई उल्लेख नहीं है। यूहन्ना के शब्दों से भी यह नहीं कहा जा सकता कि यीशु ने लोगों पर बलप्रयोग किया। यूहन्ना में यीशु के शब्द भी भिन्न हैं। सामान्य रूप से माना जाता है कि यूहन्ना में और सहदर्शी सुसमाचारों में एक ही घटना का वर्णन है। परंतु यूहन्ना में यह घटना यीशु के सेवाकाल के आरंभ में, तथा सहदर्शी सुसमाचारों में उसके अंत में है। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि इस असंगति के संबंध में ऐतिहासिक रूप से यूहन्ना अधिक ठीक है, परंतु अधिकांश का विचार इसके विपरीत है।

(घ) सूखे अंजीर के पेड़ से शिक्षा ११ : २०-२६
(मत्त. २१ : २०-२२)

मत्ती के अनुसार यह समस्त घटना एक ही दिन संध्या के समय हुई, अत: वह इस तथ्य की दृष्टि से मरकुस के वर्णन का अनुकूलन करता है। मरकुस ११ : २३ की तुलना मत्त. १७ : २० और लूका १७ : ६ से भी कीजिए—ये एक ही कथन के भिन्न रूप प्रतीत होते हैं। मरकुस का पद २५ मत्ती में नहीं है, परंतु उसकी तुलना मत्त. ६ : १४ से कीजिए। मर. ११ : २६ इस कारण कोष्ठक में है कि वह प्रामाणिक नहीं है, हस्तलेखों की साक्षी उसके विरुद्ध है। ऐसा लगता है कि वह मत्ती ६ : १५ के आधार पर यहां जोड़ा गया है।

इस अंश में ११ : २०-२२ अंजीर के पेड़ के वर्णन से संबंधित हैं, परंतु पद २३-२५ किसी अन्य प्रसंग से यहां जोड़े गए हैं। पद २२ उनके बीच की कड़ी प्रतीत होती है, या संभवत: ११ : २२ को ११ : २३-२५ के साथ लेना चाहिए। इन पदों में पृथक कथन हैं। मरकुस इनको अंजीर के पेड़ के वर्णन के साथ मिलाता है, यद्यपि इनका विषय भिन्न है। वास्तव में ११ : १२-१४, २०, २१ की शिक्षा वह नहीं है जो ११ : २२ क. में है। मत्ती और लूका में मर. ११ : २३ के समान पद ऊपर बताए गए हैं। इनकी तुलना करके भिन्नताओं पर ध्यान देना चाहिए। इनकी तुलना १ कु. १३ : २ के साथ

सिया की रचना है। इसी प्रकार **१२ : ६** में **पुत्र** यीशु है। कुछ साक्षी मिलती है कि उस काल में "परमेश्वर-पुत्र" पदवी ख्रिस्त-संबंधी मानी जाती थी। संदेहवादी टीकाकारों की यह मान्यता है कि यीशु ऐसा स्पष्ट दावा स्वयं न करता, परंतु हमें ऐसा प्रतीत होता है कि उसका यह संकेत करना असंभव नहीं था। इस पद में "प्रिय" शब्द का अर्थ लगभग "एकलौता" है, अतः हिं. सं. की पद-टिप्पणी में "एकमात्र पुत्र" है। पुत्र यीशु है, और मीरास इस्राएल और उस से परमेश्वर की प्रतिज्ञाएं हैं। **१२ : ९ उ** की परंपरागत व्याख्या यह है कि "औरों" का अर्थ कलीसिया है। इस के संबंध में भी संदेह किया जाता है कि यह कलीसिया की रचना है, क्योंकि अन्य स्थलों में यीशु अपने प्रश्नों का उत्तर स्वयं नहीं देता। तो भी संभव है कि यीशु ने ऐसे ही शब्द कहे, परंतु स्पष्ट नहीं किया कि ये "और" कौन थे।

१२ : १०, ११ के शब्द भ. ११८ : २२, २३ से उद्धृत हैं। ये शब्द प्रे. ४ : ११; पत. २ : ७ में भी उद्धृत हैं। संभाव्यतः कलीसिया में ऐसे उद्धरणों के समूह प्रचलित थे। अधिक टीकाकारों की मान्यता के अनुसार ये पद मौखिक परंपरा में जोड़े गए, वे यीशु के नहीं हैं। अनेकों का विचार यह है कि वे यीशु के पुनरुत्थान की ओर संकेत करते हैं। कलीसिया मानती चली आई है कि कोने के सिरे का पत्थर यीशु है (तुलना कीजिए यश. २८ : १६; ८ : १४; इफ. २ : २०), अर्थात् वही है जिसके द्वारा कलीसिया का संगठन स्थिर रह सकता है। इस उद्धरण में यीशु के तिरस्कार और मृत्यु का अर्थ निहित है। **१२ : १२** यदि यीशु ने यह दृष्टांत उस रूप में कहा जो यहां वर्णित है तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि श्रोता पहचान गए कि वह उनकी ओर संकेत कर रहा था। इस अन्योक्तिमूलक दृष्टांत में यीशु के परमेश्वर-पुत्र होने और उसकी होनेवाली मृत्यु की ओर स्पष्ट संकेत हैं। हमारा विचार यह है कि यह प्रमाणित नहीं हुआ है कि यह दृष्टांत मौलिक रूप से यीशु का नहीं है।

(ग) कैसर का कर १२ : १३-१७
(मत्त. २२ : १५-२२; लू. २० : २०-२६)

इस अंश में मत्ती और लूका अधिकतर मरकुस का अनुसरण करते हैं, परंतु शब्दों में काफ़ी परिवर्तन करते हैं। केवल मरकुस में इस तथ्य की ओर संकेत है कि जिन्हों ने फ़रीसियों और हेरोदियों को भेजा वे यहूदियों के अधिकारी थे। यह भी एक सूक्ति-प्रधान कथा है, जिसके अंत में एक बहुत स्पष्ट सूक्ति है।

यदि इस अंश का प्रसंग ऐतिहासिक है तो "उन्हों ने······भेजा" यहूदियों के अधिकारियों की ओर संकेत है। अनेक टीकाकारों की मान्यता के अनुसार इसका वास्तविक प्रसंग भिन्न था। फ़रीसियों का वर्णन २ : ११ की व्याख्या में और हेरोदियों का स्पष्टीकरण ३ : ६ की व्याख्या में किया गया है।

१२ : १३ में हिं. सं. के अनुसार उन लोगों का अभिप्राय यह था "कि उसे शब्द-जाल में फंसाएं", जिस से पता चलता है कि **१२ : १४** में चापलूसी की बातें हैं। यीशु

के संबंध में निस्संदेह इस पद की सब बातें सच हैं, परंतु उनको कहने में फ़रीसियों की मंशा ठीक नहीं थी। "परमेश्वर के मार्ग" का अर्थ वह मार्ग है जो परमेश्वर हमारे लिए चाहता है। **१२ : १५-१६** "कैसर" प्रसिद्ध रोमी सेनापति यूलियस कैसर का व्यक्तिगत नाम था, पर कालांतर में वह सब रोमी सम्राटों की पदवी बन गया। इस काल में तिबिरियुस (जिसका उल्लेख लू. ३ : १ में है) सम्राट था। कैसर को कर देना प्रत्येक देशभक्त यहूदी को बहुत बुरा लगता था क्योंकि यह कर दासत्व का प्रतीक था। उस काल में यहूदिया और सामरिया का प्रदेश एक रोमी राज्यपाल के अधीन था, अतः कर रोमी मुद्राओं में दिया जाता था। एक दीनार एक दिन की मज़दूरी था (मत्त. २० : २)। उस पर सम्राट के सिर की छाप होती थी। यह कर सीधे सम्राट के राजकोष में दिया जाता था, जिस से यहूदी लोग दुखी होते थे। वे यहूदी लोग जो रोम के साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह करना चाहते थे, कर देना अस्वीकार करते थे। परंतु यहां फरीसियों और हेरोदियों की यथार्थ मंशा यह नहीं थी कि इस प्रश्न का सही उत्तर मिले वरन् यह थी कि यीशु को "शब्द-जाल में फंसाएं"।

यदि यीशु कहता कि कर देना चाहिए तो यह प्रमाणित होता कि वह वास्तविक देशभक्त नहीं था, अतः वह राष्ट्रीय नेता होने के योग्य नहीं था। यदि वह कहता कि नहीं देना चाहिए तो रोम से विद्रोही प्रमाणित होता। यीशु की बातों से ज्ञात है कि उसके और उसके शिष्यों के पास कर देने के पैसे नहीं थे। फरीसियों और हेरोदियों का कपट इस में था कि उनके पास यह मुद्रा थी, जिस से प्रमाणित हुआ कि वे उसका प्रयोग करते थे और इस प्रकार सम्राट के अधिकार को मानते थे। सम्राट की आकृति उस मुद्रा पर थी, इस लिए उन्हें मानना पड़ा कि वह सम्राट की थी। **१२ : १७** यीशु के उत्तर से ज्ञात होता है कि वह विद्रोहियों के पक्ष में नहीं था, जो कर देना अस्वीकार करते थे, परंतु यह भाव व्यक्त होता है कि राष्ट्र की उचित मांगों को पूरा करते हुए भी लोग परमेश्वर की सेवा कर सकते हैं। बहुधा राष्ट्र की मांगें धर्म की मांगों के विरुद्ध नहीं होतीं। राष्ट्र और धर्म में ऐसा अनिवार्य विभाजन नहीं है कि दोनों न माने जा सकें। परंतु कभी कभी ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होती है जब परमेश्वर के प्रति विश्वस्तता की मांग यह है कि राष्ट्र का विरोध किया जाए। उदाहरण के लिए ऐसी परिस्थिति उस समय थी जब "प्रकाशितवाक्य" पुस्तक लिखी गई। हिटलर के जर्मनी में भी यह परिस्थिति थी।

(घ) पुनरुत्थान के संबंध में प्रश्न १२ : १८-२७
(मत्त. २२ : २३-३३; लू. २० : २७-४०)

इस अंश में मत्ती कुछ शब्दों का परिवर्तन करते हुए अधिकतर मरकुस का अनुसरण करता है। लूका भी २० : २७-३४ तक ऐसा ही करता है, परंतु ऐसा प्रतीत होता है कि पद ३२-३६ लूका के विशेष स्रोत से लिए गए हैं। यह भी एक सूक्ति-प्रधान कथा है।

मरकुस में केवल इस स्थल पर **सदूकियों** का उल्लेख है (सदूकियों के लिए "पृष्ठभूमि" पृ. ११८-११९ को देखिए)। यह यहूदियों का रूढ़ीवादी पंथ था। उन बातों के अतिरिक्त जिन का उल्लेख इस स्थल में है वे स्वर्गदूतों और आत्माओं को नहीं मानते थे (प्रे. २३ : ८)। यद्यपि ये धर्मशास्त्र की अन्य पुस्तकों को अस्वीकृत नहीं करते थे तो भी वे अधिक मान्यता पंचग्रंथ (उत्पत्ति से व्यवस्थाविवरण तक) को देते थे, और उस पर अपना धर्म आधारित करते थे। ये लोग अधिकतर धनवान् और शिक्षित थे। वे उन मौखिक परंपराओं को जो फरीसी मानते थे, अस्वीकृत करते थे। वे मानव के इच्छा-स्वातंत्र्य को मानते थे। यहां उनका प्रश्न व्य. २५ : ५, ६ पर आधारित है, परंतु यह न तो इब्रानी न सप्तति अनुवाद से शब्दशः उद्धृत है। "मूसा ने लिखा है" का अर्थ यह है कि मूसा पंचग्रंथ का लेखक माना जाता था, और आरंभ में उसी के द्वारा व्यवस्था दी गई। सदूकी एक पूर्ण रूप से परिकल्पित उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। उनका भ्रामक विचार यह था कि पुनरुत्थान के पश्चात् का जीवन इस सांसारिक जीवन के समान है, कि परिस्थिति में कोई परिवर्तन नहीं है। संभवतः यह एक ऐसा प्रश्न था जिस पर ये लोग वाद-विवाद किया करते थे।

१२ : २४, २५ में यीशु का उत्तर अत्यंत खंडनात्मक है। सदूकियों को धर्म के अधिकारी होने के नाते भली भांति धर्मशास्त्र और परमेश्वर की सामर्थ्य से परिचित होना चाहिए था। इन पदों में उस विशेष प्रश्न का उत्तर मिलता है जो सदूकियों ने पूछा था। इसकी तुलना १ कुर. १५ : ३५ क्र. से कीजिए, जहां जी उठने के पश्चात् के जीवन का कुछ स्पष्टीकरण है। जी उठे हुए लोगों के विवाह न करने का वर्णन धर्मशास्त्र में नहीं वरन् यहूदियों के कुछ छद्मनाम लेखों में पाया जाता है, उदाहरणार्थ (हनोक १५:६, ७)। यीशु के शब्दों में संकेत है कि केवल धर्मपरायण लोग जी उठेंगे। यह विचार लूका के पद ३५ में और भी स्पष्ट व्यक्त किया गया है। इस अंश में इस प्रश्न का उत्तर दिया गया है कि मृतकों का पुनरुत्थान कैसा है। यहां इस तथ्य पर ध्यान नहीं दिया गया है, कि पुनरुत्थान सत्य है या नहीं।

१२ : २६ और २७ में इस तथ्य का प्रमाण दिया गया है कि पुनरुत्थान वास्तव में होता है। यथार्थ में सदूदियों का मूल प्रश्न यही था। यीशु "मूसा की पुस्तक" (पंचग्रंथ) में से इस कारण उदाहरण प्रस्तुत करता है कि सदूकी उसे विशेष मान्यता देते थे। "झाड़ी की कथा में" शब्दों का प्रयोग इस कारण है कि उस समय धर्मशास्त्र अध्यायों और पदों में विभाजित नहीं था। भिन्न भिन्न स्थल अपने अपने विषय से जाने जाते थे। रब्बी इस प्रकार के तर्कों का प्रयोग किया करते थे, अतः कदाचित यीशु ने जान बूझकर उनकी पद्धति को अपनाया। उद्धरण नि. ३ : ६ से है। अनेक टीकाकारों का विचार है कि निर्गमन में इसका अर्थ यह है कि जब अब्रहाम, इसहाक और याकूब जीवित थे तब परमेश्वर उनका परमेश्वर था। परंतु ऐसा प्रतीत होता है कि यीशु का अनुमान उचित है कि इस पद में यह विचार निहित है कि अब्रहाम, इसहाक और याकूब का परमेश्वर ऐसा परमेश्वर है जो चाहता है कि मनुष्य जीवित रहें, न कि

मर मिटें। इस आधार पर पुनरुत्थान के तथ्य को मान्यता दी जा सकती है। यीशु १२ : २७ में परमेश्वर के इस अभिप्राय को स्पष्ट व्यक्त करता है। परमेश्वर स्वयं जीवन का स्रोत है, और वह जीवन समाप्त नहीं होता। पंचग्रंथ के दृष्टिकोण से भी सदूकियों की विचारधारा भ्रामक थी।

(च) प्रमुख आज्ञा १२ : २८-३४
(मत्त. २२ : ३४-४०; तुलना लू. १० : २५-२८)

इस स्थल में लूका के वर्णन में और मत्ती तथा मरकुस के वर्णनों में इतना अंतर है कि संभाव्यतः यह अनुमान ठीक है कि लूका का स्रोत Q था, मरकुस नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि मत्ती ने Q और मरकुस के वर्णनों को सम्मिश्रित किया। मत्ती में फरीसी, मरकुस में शास्त्री, और लूका में व्यवस्थापक का उल्लेख है। लूका में प्रश्न पूर्णतः भिन्न है, "अनंत जीवन का वारिस होने के लिए मैं क्या करूं ?" तीनों सुसमाचारों में "अपनी सारी बुद्धि से" शब्द हैं, यद्यपि ये शब्द व्य. ६ : ५ के मूल इब्रानी पाठ में नहीं पाए जाते। मरकुस के अनुसार यह व्यक्ति अच्छी मंशा से यह प्रश्न पूछता है, परंतु मत्ती और लूका में प्रश्न यीशु की परीक्षा करने के लिए पूछा जाता है। मत्ती में "अपनी सारी शक्ति से" शब्द नहीं हैं।

रब्बी "हलकी" और "भारी" आज्ञाओं के विषय में विचार-विमर्श करते थे। वे समस्त व्यवस्था के सारांश को एक ही संक्षिप्त कथन में व्यक्त करने का प्रयत्न करते थे, परंतु उनका अभिप्राय यह नहीं था कि कुछ आज्ञाएं मौलिक ठहराई जाएं ताकि शेष आज्ञाएं अनावश्यक प्रमाणित हों। वे मानते रहे कि सब ही आज्ञाओं का पालन करना अनिवार्य है। यीशु के कथन में यह निहित है कि यही दो मुख्य आज्ञाएं पर्याप्त हैं। यीशु के उत्तर का पहला भाग व्य. ६ : ४, ५ से उद्धृत है, जिसको धर्मपरायण यहूदी प्रति दिन दोहराते थे। एकेश्वरवाद यहूदी धर्म का मूल सिद्धांत है। ऊपर बताया गया है कि "अपनी सारी बुद्धि से" शब्द इब्रानी मूल पाठ में नहीं हैं, परंतु ये सप्तति अनुवाद के एक हस्तलेख में "मन" में स्थान पर हैं। संभव है कि यीशु बुद्धि पर विशेष बल देना चाहता था, परंतु अधिक संभाव्य है कि संपूर्ण मन, प्राण, बुद्धि और शक्ति का अर्थ संपूर्ण व्यक्तित्व है न कि पृथक पृथक मनः शक्तियां।

दूसरा उद्धरण (१२ : ३१) लै. १९ : १८ से है। "पित्रों के अंतिम वचन" छद्मनाम लेख में संकेत है कि लेखक इन दो आज्ञाओं का विचार कर रहा था, परंतु यह लेख संभाव्यतः यीशु के काल के पश्चात् रचा गया। किसी अन्य प्राचीन साहित्य में ये दो आज्ञाएं, जो पुराना नियम के भिन्न स्थलों से उद्धृत हैं, नहीं जोड़ी गई हैं, अतः संभाव्यतः यीशु ने ही सब से पहले यह शिक्षा दी कि इन में गहरा पारस्परिक संबंध है। पुराना नियम में "पड़ोसी" का अर्थ यहूदी भाई था। संभवतः कालांतर में यहूदियों ने इस अर्थ को विस्तार देकर कम से कम पलिश्तीन में निवासी विदेशियों को भी इस में सम्मिलित किया। परंतु यीशु की शिक्षा में "पड़ोसी" का अर्थ असीम है, जैसे दयालु

सामरी के दृष्टांत से ज्ञात होता है (लू. १० : २५-३७)। ख्रिस्तीय शिक्षा में परमेश्वर और मनुष्य-जाति के प्रति उचित अभिवृत्ति का सारांश यही है। "समस्त व्यवस्था इस एक कथन में पूर्ण होती है कि "अपने पड़ोसी को अपने समान प्रेम कर'।" (गल. ५ : १४)। रो. १३ : ९ से भी तुलना कीजिए।

१२ : ३२-३४ में "और सारे प्राण" शब्द सर्वश्रेष्ठ हस्तलेखों में नहीं हैं, अतः ये हिं. सं. में भी नहीं हैं। शास्त्री के कथन का अर्थ यह नहीं था कि होम और बलिदान अनावश्यक हैं, वरन् यह कि यदि चढ़ानेवाला इस प्रकार परमेश्वर से प्रेम नहीं करता तो वे निरर्थक हैं। १२ : ३४ में संभाव्यत: परमेश्वर के राज्य का वर्तमान पक्ष अभिप्रेत है, मानो यह शास्त्री परमेश्वर के राज्य में प्रवेश करने के लिए लगभग तैयार था, अर्थात् उस ने पहचाना था कि परमेश्वर की इच्छा को पूर्ण करने के लिए क्या करना चाहिए।

(छ) मसीह, दाऊद का पुत्र १२ : ३५-३७पू
(मत्त. २२ : ४१-४६; लू. २० : ४१-४४)

लूका का वर्णन लगभग मरकुस के अनुसार है। मत्ती ने वर्णन को कुछ बढ़ाया है। मत्ती २२ : ४६ मरकुस १२ : ३४ के समान है। शास्त्रियों के कथन में, कि "मसीह दाऊद का पुत्र है" "मसीह" शब्द का अर्थ यीशु नहीं, वरन् प्रतिज्ञात ख्रिस्त है, जिसकी प्रतीक्षा यहूदी लोग कर रहे थे। मसीही लोग मानते थे, और मानते हैं, कि यीशु वही है। समकालीन यहूदियों का विचार था कि ख्रिस्त, दाऊद का पुत्र होने के नाते, फिर दाऊद का सा सांसारिक राज्य स्थापित करेगा। यह विचार कि आनेवाला ख्रिस्त (मसीह) दाऊद का वंशज होगा इन स्थलों में पाया जाता है : यश. ९ : २-७ (विशेषकर पद ७); ११ : १-९; यि. २३ : ५, ६; ३३ : १४-१८; यहे. ३४ : २३, २४; ३७ : २४; भ. ८९ : २०-३०। अत: अनेक टीकाकारों की यह मान्यता कि इस स्थल में यीशु दाऊद का पुत्र होने को अस्वीकृत करता है, असत्य प्रतीत होती है। मरकुस के काल की कलीसिया ने भी ऐसी अस्वीकृति नहीं की होगी, क्योंकि नया नियम में संकेत हैं कि कलीसिया यीशु को दाऊद का वंशज मानती थी, देखिए रो. १ : ३; २ तीम. २ : ८; मत्त. १ : १-१७; लू. ३ : २३-२८ (वंशावलियां), और वे स्थल जहां भिन्न व्यक्ति यीशु को "दाऊद के पुत्र" शब्दों से संबोधित करते हैं, मर. १० : ४७, ४८ (और मत्ती और लूका में समान स्थल); मत्त. ९ : २७; १२ : २३; १५ : २२; २१ : ९, १५।

१२ : ३६ में भ. ११० : १ से उद्धृत शब्द हैं, जो लगभग सप्तति अनुवाद के अनुसार हैं। हिन्दी बाइबल में, जो इब्रानी का अनुवाद है (पुराना नियम), यह इस प्रकार है : "मेरे प्रभु से यहोवा की यह वाणी है······", जिस से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि इस वाक्य में पहला "प्रभु" यहोवा, अर्थात् परमेश्वर है। यीशु, समकालीन यहूदियों के समान, मानता था कि दाऊद ने ही उन सब भजनों को लिखा जो उसके नाम से संबंधित हैं। आधुनिक काल के साहित्य-विश्लेषण ने प्रकट किया है कि कुछ भजन जो

दाऊद के नाम से संबंधित हैं उसकी अपनी रचनाएं नहीं हो सकते, वरन् उसके काल के पश्चात् लिखे गए होंगे (देखिए "पुराना नियम की भूमिका" पृ. १६२-१६४, १६८-१६६ - 'मसीह' के संबंध में)। भ. ११० एक ऐसा भजन है। यीशु का तर्क, जो रब्बियों की पद्धति के अनुरूप है, यह है कि इस भजन में लेखक (दाऊद) प्रतिज्ञात ख्रिस्त को "मेरा प्रभु" कहता है। यद्यपि तीसरी शताब्दी से पहले रब्बियों के साहित्य में भ. ११० के ख्रिस्त-संबंधी होने का कोई उल्लेख नहीं है तथापि साधारणत: ख्रिस्तीय विद्वान मानते हैं कि इस स्थल में (मर. १२ : ३६) यह निहित है कि यीशु के काल के रब्बी इस भजन को ख्रिस्त-संबंधी मानते थे। १२ : ३७ में यीशु के कथन का अर्थ कदाचित यह है कि जब दाऊद आनेवाले ख्रिस्त को 'प्रभु' कहता है तो ख्रिस्त दाऊद के पुत्र से कहीं बढ़कर भी है। यह मानना आवश्यक नहीं है कि यीशु दाऊद का वंशज होने को अस्वीकृत करता है, परंतु निस्संदेह इस संबंध में वह यहूदियों के इस विचार को अस्वीकृत करना चाहता था कि दाऊद का पुत्र होने के नाते वह एक विजयी योद्धा होगा। अनेक टीकाकारों की मान्यता है कि यह असंभव है कि यीशु, जो मरकुस के अनुसार अपने ख्रिस्त होने को गुप्त रखने का प्रयत्न किया करता था, इस प्रकार का स्पष्ट दावा करे, अत: वे इस अंश को पूर्णत: कलीसिया की कल्पित रचना मानते हैं। निस्संदेह इसके वर्तमान रूप पर ख्रिस्तीय समुदाय का प्रभाव पड़ा होगा, परंतु यह असंभव नहीं है कि अपने अंतिम दिनों में यीशु ने अपने मसीह होने की ओर इस प्रकार संकेत किया।

(ज) शास्त्रियों के विरुद्ध चेतावनी १२ : ३७उ-४०
(मत्त. २३ : १, ६, ७; लू. ११ : ४३; २० : ४६)

इस अंश में मरकुस का वर्णन संक्षिप्त है। मत्ती और लूका ने इसको Q और अन्य स्रोतों से उद्धृत सामग्री के साथ सम्मिश्रित किया है। मत्ती अध्याय २३ में शास्त्रियों और फरीसियों पर आक्रमण का सब से विस्तृत वर्णन है।

मरकुस और लूका में केवल शास्त्रियों का उल्लेख है। योसेपस के एक लेख में उल्लेख है कि ऐसे शास्त्री होते थे जैसे इस स्थल में वर्णित हैं ("यहूदियों की प्राचीन परंपरा" १७ : २-४)। उनके लंबे वस्त्र उनके पद को प्रकट करते थे। "मुख्य आसन" वे थे जो आराधनालय में सामने, वाचा के सन्दूक के पास, थे। वाचा के सन्दूक में पवित्र शास्त्र रखे जाते थे। ये आसन, और "भोजों में सम्मानित स्थान" (हिं. सं.) आदर के स्थान माने जाते थे। योसेपस ने यह भी लिखा कि फरीसी स्त्रियों को फुसलाते थे।

हम जानते हैं कि सब फरीसी ऐसे नहीं होते थे। संभव है कि इस अंश पर समकालीन ख्रिस्तीय समुदाय का प्रभाव हुआ, जब उन में और यहूदियों में बैरभाव था। इस में हमारे लिये चेतावनी है, क्योंकि कलीसिया के पदाधिकारियों के सामने भी कपटी होने की परीक्षा आती है।

(झ) दरिद्र विधवा की दमड़ी १२ : ४१-४४
(लू. २१ : १-४)

ऐसा प्रतीत होता है कि इस में और पिछले अंश में संबंध केवल "विधवा" शब्द के कारण है (१२ : ४०)। यह एक सूक्ति-प्रधान कथा है। संभाव्यतः यीशु मंदिर में उस स्थान में बैठा था जहां तेरह तुरही के आकार की दान मंजूषा थीं जो स्त्रियों के आंगन में रखी हुई थीं" (बाइबल ज्ञान कोष, "भण्डार")। इन मंजूषाओं में लोग वह दान डालते थे जो वे मंदिर की सेवा के लिए देना चाहते थे। "दमड़ी" और "अधेला" अब अप्रचलित मुद्राएं हैं, अतः हिं. सं. अधिक स्पष्ट है, "दो ताम्रमुद्राएं, जिनका मूल्य लगभग एक पैसा होता है, अर्पित कीं।" संभव है कि यीशु उस स्त्री से परिचित था। इस कथा का अर्थ स्पष्ट है। किसी दान का वास्तविक मूल्य इस तथ्य पर निर्भर है कि किस परिमाण में उस में जीवनदान या आत्मसमर्पण निहित है।

(३) प्रकाशनात्मक प्रवचन १३ : १-३७

इसको एक अखंड प्रवचन मानने में अनेक कठिनाइयां सामने आती हैं। अनेक विद्वानों की दृष्टि में १३ : २ और ४ में असंगति है। १३ : २ में मंदिर के विनाश का, परंतु पद ४ में युगांत का उल्लेख है। १३ : ५-८ और २४-२७ में प्रकाशनात्मक प्रतीक योजना का प्रयोग किया गया है, जो युगांत और ख्रिस्त के पुनरागमन से संबंधित हैं। १३ : ९-१३ में कुछ ऐसे कथन हैं जो विशेषकर बारह शिष्यों के सुसमाचार-प्रचार कार्य आदि के लिए भेजे जाने के संबंध में अन्य प्रसंगों में मत्ती और लूका में पाए जाते हैं। १३ : १४-२३ में एक ऐतिहासिक घटना की भविष्यवाणी (१४-१८) और युगांत-संबंधी कथनों (१९-२३) का सम्मिश्रण प्रतीत होता है। यदि १३ : ३० का स्पष्ट अर्थ स्वीकार किया जाए तो यीशु मानता था कि मेरी पीढ़ी के लोगों के जीवनकाल में युगांत होगा।

इन और अन्य कठिनाइयों के कारण इस अध्याय की रचना के संबंध में विविध परिकल्पनाएं प्रस्तुत की गई हैं। एक मुख्य परिकल्पना यह है कि इस अध्याय में यीशु के कथनों, एक यहूदी "लघु प्रकाशन ग्रंथ" और रचयिता की टिप्पणियों का मिश्रण है। इस मत के माननेवाले इस प्रकाशन ग्रंथ के सीमानिर्धारण के विषय में एकमत नहीं हैं, परंतु अधिकतर उन में सहमति है कि कम से कम मर. १३ : ७, ८, १४-२० और २४-२७ उस में से उद्धृत हैं। उन का तर्क यह है कि इन पदों में यहूदी प्रकाशन ग्रंथों की प्रचलित बातें पाई जाती हैं। इन स्थलों के अनेक शब्द दानिय्येल की पुस्तक में से उद्धृत हैं। परंतु वर्तमान में इस परिकल्पना को कम मान्यता दी जा रही है क्योंकि यह प्रमाणित हुआ है कि प्रकाशन ग्रंथों के अनेक विशिष्ट तत्व इस में नहीं हैं, और जब वे पद जो प्रकाशन ग्रंथ-संबंधी बताए जाते हैं इस अध्याय से अलग करके एकत्रित किए जाते हैं तो परिणामी लेख अपूर्ण और असंबद्ध है।

दूसरी परिकल्पना जिसको आजकल बहुत मान्यता दी जा रही है यह है कि यह

अध्याय सम्मिश्रित है, इसके वर्तमान रूप पर रचनाकाल की कलीसिया के सिद्धांत-संबंधी और शिक्षण-संबंधी अभिप्राय का प्रभाव हुआ है, और कि उस में यीशु के प्रामाणिक कथन जड़े हुए हैं, जिनका अनुकूलन रचनाकाल की परिस्थिति से किया गया है। कुछ अतिवादी समालोचक हैं जिनकी मान्यता है कि यीशु ने यह शिक्षा नहीं दी कि वह फिर आएगा, और कि यह अध्याय पूर्णतः यीशु की ओर से नहीं है।

अन्य विद्वानों ने यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि यह मान लेना कि यीशु ने अपने सेवाकाल के अंत में, क्रूसित होने से थोड़े समय पूर्व, इस प्रकार का प्रवचन दिया तर्कसंगत है। यह स्वीकार किया जाता है कि कदाचित यह पूर्ण प्रवचन इसी क्रमबद्ध रूप में एक ही समय प्रस्तुत नहीं किया गया, और कि संभव है कि संपादक ने अन्य प्रसंगों से यीशु के कथनों को इस में जोड़ा हो, अथवा मौखिक परंपरा में ये जोड़े गए हों। इनके शाब्दिक रूप में भी संभवतः परिवर्तन हुआ होगा, परंतु अधिकतर इस में यीशु के प्रामाणिक कथन हैं, और यह युगांत-संबंधी शिक्षा मूलतः यीशु की ही है। हम अधिकतर इस परिकल्पना को मान्यता देते हैं।

यह अध्याय निम्नलिखित भागों में विभाजित हो सकता है : १३ : १-४, ५-८, ९-१३, १४-२३ २४-२७, २८-३७।

(क) मंदिर के विनाश की भविष्यवाणी १३ : १-४
(मत्त. २४ : १-३; लू. २१ : ५-७)

यह वर्णन तीनों सुसमाचारों में समान है। लूका में जैतून पर्वत का उल्लेख नहीं है। मत्ती ने पद १ को परिवर्तित किया, और मरकुस के १३ : ४ में "ये सब बातें" की व्याख्या इस प्रकार की है, "तेरे आने और जगत के अंत का क्या चिह्न होगा?"। मत्ती और लूका में केवल पतरस, याकूब, यूहन्ना और अंद्रियास का उल्लेख नहीं है, वरन् माना जाता है कि सब शिष्य उपस्थित थे। यह एक सूक्ति-प्रधान कथा है।

१३ : १ इस अंश की और पिछले अंश की कड़ी है। कुछ टीकाकार इस पद को संपादकीय मानते हैं, परंतु यद्यपि शिष्यों ने मंदिर को बहुत बार देखा होगा तो भी उनका आश्चर्य स्वाभाविक था, क्योंकि संभाव्यतः यहूदियों का मंदिर उस काल में संसार का सब से शानदार भवन था। १३ : २ में मंदिर के विनाश की स्पष्ट भविष्यवाणी है। संभाव्यतः मरकुस ने ई. स. ६४-७० में इस सुसमाचार की रचना की। ई. स. ७० में रोमी सेना ने मंदिर को ध्वस्त किया। साधारण मान्यता यह है कि इस घटना से पहले इस सुसमाचार की रचना हुई। १३ : ३ में यह माना गया है कि यीशु और उसके शिष्य मंदिर को छोड़कर जैतून पर्वत को चले आए। मरकुस के अनुसार शिष्य बहुधा यीशु से एकांत में बात करते थे। यहां तीन मुख्य शिष्यों के साथ अंद्रियास भी सम्मिलित किया गया है। "ये बातें" (१३ : ४) का अर्थ मंदिर का विनाश है। अनेक टीकाकारों की मान्यता है कि "ये सब बातें" इस से असंगत होने के कारण प्रामाणिक नहीं वरन् संपादकीय है, क्योंकि ये शब्द आनेवाले पदों में युगांत के चिह्नों की ओर

संकेत करते हैं। परंतु यह संभव है कि शिष्यों का विचार यह था कि मंदिर का विनाश युगांत का आरंभ होगा, अतः वे ऐसा प्रश्न पूछ सकते थे। यदि यह अनुमान ठीक है तो मत्त. २४ : ३ का विचार मरकुस में भी निहित है, "तेरे आने का और जगत के अंत का क्या चिह्न होगा ?" (हिं. सं. "युगांत का चिह्न")। आनेवाले पदों में इन प्रश्नों का उत्तर है।

(ख) प्रभु के आगमन के चिह्न १३ : ५-८
(मत्त. २४ : ४-८; लू. २१ : ८-११)

मरकुस के **१३ : ६** के शब्द "मैं वही हूं" के स्थान पर मत्ती में "मैं मसीह हूं" है। इस अंश के अंत में मत्ती "अकाल पड़ेंगे" शब्दों को छोड़ देता है, और लूका "मरियां, आकाश में भयंकर बातें, बड़े बड़े चिह्न" शब्दों को जोड़ता है।

इस अंश और १३ : २४-२७ में समानता है, अतः अनेक टीकाकारों का विचार है कि वे पहले जुड़े हुए थे और संपादक ने अन्य बातों को बीच में मिला लिया। **१३ : ५** से ज्ञात होता है कि सुसमाचार के रचनाकाल में लोग इस संबंध में ख्रिस्तियों को पथभ्रष्ट कर रहे थे। जहां तक हमें ज्ञात है पहला व्यक्ति जिस ने ख्रिस्त होने का दावा किया बार कोखबा था, जिस ने ई. स. १३२ में यह दावा किया। परंतु उस से पहले अनेक राजनीतिक विद्रोही हुए थे, जैसे यहूदा गलीली और थियूदास (प्रे. ५ : ३६, ३७)। "मैं वही हूं" शब्दों का शाब्दिक अर्थ है, "मैं हूं"। यदि इसका अर्थ "मैं मसीह हूं" है, जैसे मत्ती ने लिखा है, तो "मेरे नाम से" का अर्थ यह है कि ऐसे लोग मसीह होने का दावा करते थे, यद्यपि यीशु को ही ऐसा दावा करने का अधिकार था। अनेक टीकाकार मानते हैं कि यह असंभव है कि यीशु ने ऐसे शब्द कहे, अतः वे "मेरे नाम से" के अन्य अर्थ निकालने का प्रयत्न करते हैं, या इन शब्दों को क्षेपक मानते हैं। हमारे विचार में उपरोक्त व्याख्या अधिक संतोष-जनक है।

१३ : ७, ८ में साधारण प्रतीक योजना है, जो "नबिया की भविष्यवाणी" और "हनोक की प्रथम पुस्तक" जैसे यहूदी छद्मनाम लेखों में पाई जाती है। ये भी पुराना नियम के ऐसे स्थलों पर आधारित हैं जहां दंडाज्ञा का वर्णन है, जैसे यश. ८ : २१ (भूख); १३ : १३ (भूकंप); १४ : ३० (अकाल); १९ : २ (युद्ध); यि. २३ : १९; यहे. ५ : १२; हो. २ : ६; ज. १४ : १४। इस सुसमाचार के पाठकों ने माना होगा कि यह उनके काल की घटनाओं का वर्णन है, क्योंकि इतिहास से हम सीखते हैं कि उस काल में ये सब घटनाएं घटित हो रही थीं। यहां मुख्य शिक्षा यह है कि लोग घबराकर यह न समझें कि युगांत का समय आ पहुंचा है (तुलना कीजिए २ थि. २ : २ क्र.)। उस समय से लेकर आज तक लोग इस प्रकार के मनमाने भविष्य कथन करते चले आ रहे हैं। १३ : ८ में "पीड़ाओं" शब्द का शाब्दिक अर्थ वह है जो हिं. सं. की पद-टिप्पणी में दिया गया है, "प्रसव-पीड़ा", अतः अनेक टीकाकारों की मान्यता है कि यहां "मसीह के आने की प्रसव-पीड़ाओं" का उल्लेख है, जो कालांतर में रब्बी मसीह के

युग के प्रारंभिक चिह्न मानते थे। परंतु यह संभव है कि यीशु इसका विचार नहीं कर रहा था वरन् उसकी बातें पुराना नियम पर आधारित हों, देखिए यश. २६ : १७; ६६ : ८; यि. २२ : २३; हो. १३ : १३; मी. १० : ९। "पीड़ाओं का आरंभ" में यह विचार निहित है कि कोई बात उत्पन्न होनेवाली है, अतः ये चिह्न यीशु के पुनरागमन और युगांत की ओर संकेत करते हैं।

(ग) विपत्तियों का प्रारंभ १३ : ९-१३
(मत्त. २४ : ९-१४; लू. २१ : १२-१९; तुलना मत्त. १० : १७-२२; लू. १२ : ११, १२)

शीर्षक में उल्लिखित उद्धरणों से पता चलता है कि इस अंश के अनेक कथन अन्य प्रसंगों में भी पाए जाते हैं, विशेषकर मरकुस १३ : ९पू-१३ मत्त. १० : १७-२२ में भी हैं, जहां यीशु के बारह शिष्यों को सुसमाचार-प्रचार आदि के लिए भेजने का वर्णन है। मत्ती ने इन शब्दों को मरकुस से उद्धृत करके अपने एक मिश्रित प्रवचन में सम्मिलित किया। मत्ती के २४ वें अध्याय में मरकुस के १३वें अध्याय का अनुरूपी वर्णन है। परंतु मत्ती २४ में मरकुस १३ : ९-१३ सम्मिलित नहीं है। मत्ती २४ : १०-१२ एक अन्य स्रोत से सम्मिलित किया गया है। मत्त. २४ : १४ में मरकुस १३ : १० परिवर्तित किया गया है। लूका के २१ : १३ और १५ पद मरकुस से बहुत भिन्न हैं, और लूका ने २१ : १८ को किसी अन्य स्रोत से लेकर जोड़ा है।

१३ : ९ में "महासभा" और "पंचायत" के स्थान पर हिं. सं. का "पंचायत" और "सभागृह" अधिक सटीक है। यहां यहूदियों के स्थानीय पंचायतों का वर्णन है, और सभागृहों का भी, जहां पंचायतें अपना कार्य करती थीं। "हाकिम" रोमी राज्यपाल थे, और राजा हेरोदेस अंतिपास, अग्रिप्पा जैसे यहूदी शासक थे जो रोमी सम्राट के अधीन होते थे। इस कथन के अनुसार शाऊल (पौलुस) ने ख्रिस्तियों को सताया, पतरस और याकूब बंदीगृह में डाले गए, याकूब जान से मारा गया (प्रे. १२) आदि। १३ : १० को अनेक टीकाकार एक अप्रामाणिक रचना मानते हैं। यहां इस मान्यता के तर्क प्रस्तुत करने के लिए स्थान नहीं है। हम १३ : १० को यीशु का प्रामाणिक कथन मानते हुए यह भी मानते हैं कि यीशु का यह अभिप्राय था कि सुसमाचार-प्रचार विजातियों में किया जाए। इस पद में यह निहित है कि युगांत निकट भविष्य में नहीं होगा। १३ : ११ से ज्ञात होता है कि यीशु को निश्चय था कि मेरे अनुयायी सताए जाएंगे। मरकुस में पवित्र आत्मा का बहुत कम उल्लेख है (१ : ८; ३ : २९; १२ : ३६)। संभाव्यतः यीशु ने इन शब्दों का ऐसा प्रयोग नहीं किया होगा जैसा इस पद में है, अतः मत्ती में इस कथन का मूल रूप होगा, "तुम्हारे पिता का आत्मा"। यहां लूका का वर्णन पूर्णतः भिन्न है। परंतु लूका १२ : १२ में एक समान कथन है जिस में पवित्र आत्मा का उल्लेख है। "चिंता न करना" का अर्थ यह नहीं है कि पास्तर को उपदेश की तैयारी नहीं करनी चाहिए। यहां एक विशेष परिस्थिति में चिंतित होने

का निषेध है। उपदेश की तैयारी में सोच विचार करना, प्रार्थना करना आदि से इसका कोई संबंध नहीं है। १३ : १२ का परिवर्तित रूप मत्त. १० : ३४, ३५ लू. १२ : ५२, ५३=Q में भी है। ये सब पद मी. ७ : ६ पर आधारित हैं। अनेक टीकाकारों की मान्यता है कि १३ : १३ में "मेरे नाम के कारण" शब्द यीशु के नहीं हो सकते क्योंकि वे परवर्त्ती काल के दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित करते हैं—तुलना कीजिए १ पत. ४ : १४। इन टीकाकारों का विचार यह भी है कि १३ : १२ पर ख्रिस्तीय समुदाय का प्रभाव हुआ है। निस्संदेह इस सुसमाचार के रचनाकाल में ऐसी परिस्थिति थी जो यहां वर्णित है, परंतु यह असंभव नहीं है कि यीशु जानता था कि परिस्थिति यही होगी। उस ने इसके संबंध में धोखा नहीं खाया, और अपने शिष्यों को भी स्पष्ट बताया। ऐसा प्रतीत होता है कि वह नहीं जानता था कि युगांत से पहले बहुत काल व्यतीत होगा। १३ : १३ में "अंत तक" का अर्थ संभाव्यत: युगांत तक नहीं वरन् उनके सताए जाने के अंत तक, या "जो पूर्ण रीति से स्थिर रहेगा" (हिं. सं.) है।

(घ) उजाड़नेवाली घृणित वस्तु १३ : १४-२३

(मत्त. २४ : १५-२२; लू. २१ : २०-२४)

इस अंश में मत्ती मरकुस का अनुसरण करता है। वह थोड़े से परिवर्तन करता है, २४ : १५ में दानिय्येल का उल्लेख है, और २४ : २० में (मरकुस १३ : १८) "या सब्त के दिन" शब्द जोड़ता है। लूका मरकुस से इतना भिन्न है कि अनेक विद्वानों की मान्यता है कि उस ने यहां मरकुस का नहीं, वरन् किसी अन्य स्रोत का प्रयोग किया।

१३ : १४ : "उजाड़नेवाली घृणित वस्तु" (हिं. सं. "विनाशकारी घृणित वस्तु") शब्द दा. ११ : २७; ११ : ३१; और १२ : ११ से उद्धृत हैं, दानिय्येल के इन स्थलों में 'घृणित वस्तु' से वह विजातीय अभिप्रेत है जिसको राजा अंतियाखस एपीफनेस ने ई. पू. १६८ में यहूदियों के मंदिर को होमबलि की बेदी पर रखा। इसका उल्लेख १ मक. १ : ५४ में भी है, "एक सौ पैंतालीसवें वर्ष में किसलेव के महीने के पंद्रवें दिन, राजा ने बलि वेदी पर एक वीभत्स एवं विध्वंस मूलक स्थापना करवाई" (ध. ग्र.)। इस से मंदिर का विनाश नहीं हुआ, किंतु वह अपवित्र किया गया। परंतु सुसमाचारों में इन शब्दों का संकेत अतीत की ओर नहीं वरन् भविष्य की ओर है, अत: इन शब्दों का कोई विशेष गुप्त अर्थ होगा। इस स्थल पर लूका का वर्णन पूर्णत: स्पष्ट है : "जब तुम यरूशलेम को सेनाओं से घिरा हुआ देखो"। यहां ई. स. ७० में आई हुई रोमी सेनाओं का उल्लेख है। संभव है कि यीशु ने यही कहा, और मरकुस ने, जो संभाव्यत: रोम में उन दिनों में लिख रहा था जब मसीहियों पर अत्याचार किया जा रहा था, इन अस्पष्ट शब्दों का प्रयोग किया ताकि अन्य लोग इस संकेत को न समझें और ख्रिस्ती लोग जोखिम में न पड़ें। कदाचित यह कारण है कि मरकुस ने स्वयं लिखा कि "पढ़ने वाला समझ ले"। इस प्रकार यह पूरा पद (१३ : १४) गुप्त है। "जहां उचित नहीं" का अर्थ यरूशलेम का मंदिर, विशेषकर उसकी वेदी, है। अनेक विद्वानों ने उपरोक्त व्याख्या पर आपत्ति की है कि दानिय्येल और मकबी की पुस्तकों में मंदिर के विध्वंस का नहीं

वरन् उसके अपवित्रीकरण का वर्णन है। परंतु यूनानी शब्द (एरेमोसिस) के दोनों अर्थ संभव हैं। निश्चय विध्वंस में अपवित्रीकरण भी सम्मिलित है। योसेपस के विवरण के अनुसार पिलातुस उकाब-रूपी झंडे, जिन पर सम्राट का प्रतिरूप था, यरूशलेम के अंदर लाया, परंतु यहूदियों ने भयंकर हलचल मचाई। जब पिलातुस ने देखा कि वे अपने नगर और मंदिर के निमित्त मर मिटने को तैयार हैं तो उसे उन झंडों को हटाना पड़ा। यहूदी इसको मंदिर का अपवित्रीकरण मानते थे, अतः मंदिर का विध्वंस इस से कहीं अधिक मंदिर का अपवित्रीकरण माना जाता।

१३ : १५-१८ का संकेत स्पष्टतः एक युद्ध-संबंधी परिस्थिति की ओर है, न कि युगांत की ओर। परंतु लूका में (२१ : १५-१८) ये पद छोड़ दिए गए हैं। वे लूका १७ : ३१ में, एक युगांत-संबंधी प्रसंग में, जोड़े गए हैं, अतः संभव है कि मरकुस ने इन पदों को यहां किसी असंबंधित परंपरा में से मिलाया हो। लूका की अपेक्षा ये बातें अधिक मरकुस के प्रसंग के अनुकूल हैं। **१३ : १५** का अर्थ यह है कि वह अपनी कुछ संपत्ति को लेजाने का प्रयत्न न करे वरन् नीचे उतरकर तत्क्षण भाग जाए। **१३ : १६** में गांव या उपनगर या नगर में निवासी व्यक्ति का उल्लेख है जो किसी अभिप्राय से खेत में निकला हो। **१३ : १७, १८** यीशु की दया को प्रकट करते हैं।

१३ : १९, २० में परिस्थिति परिवर्तित हो गई है। वह इतिहास-संबंधी नहीं वरन् युगांत-संबंधी है। इस लिए अनेक टीकाकार इन पदों को अप्रामणिक मानते हैं। १३ : १९ दा. १२ : १ पर आधारित है। उस में शामी (इब्रानी या अरामी) वाक्य-रचनाएं हैं जो मरकुस की शैली की विशेषताएं हैं। ई. सं. ७० में रोमी सेनाएं पांच महीने (अप्रैल से अगस्त तक) यरूशलेम के आसपास घेरा डाले रहीं, जिसके अंत में नगर नष्ट कर दिया गया। उन पांच महीनों में यहूदी लोगों को बहुत दुःख उठाना पड़ा और अकथनीय घटनाएं घटित हुईं। फिर भी "न फिर कभी होंगे" शब्दों में अत्युक्ति है क्योंकि हमने वर्तमान काल में इन से भी अधिक घोर नृशंसताएं देखी हैं। कुछ विद्वान यहूदियों के छद्मनाम लेखों में से उद्धरण प्रस्तुत करते हैं जिनको वे १३ : २० के समान कहते हैं, परंतु वास्तव में उन में पूरी समानता नहीं है। इस पद का अर्थ यह है कि परमेश्वर ने उस पीड़ा के दिनों को घटाया जिसका उल्लेख १३ : १९ में हुआ है। यदि ये दो पद यीशु के प्रामाणिक कथन हैं तो यीशु ने यरूशलेम के विनाश के विचार को बढ़ाकर उसका संबंध युगांत से किया। यह भी संभव है कि यहां यीशु के किसी युगांत-संबंधी कथन का अनुकूलन किया गया है, और इस में मरकुस या उस से पहले किसी संपादक का दृष्टिकोण पाया जाता है।

१३ : २१-२३ पद २१, २२ कुछ अंशों में पद ५ और ६ के समान हैं। इन पदों में चेतावनी है कि लोग ख्रिस्त के पुनरागमन के संबंध में भ्रम न करें। पद २१ के समान मत्त. २४ : २६=लू. १७ : २३=Q हैं। ये बातें इस सुसमाचार के रचनाकाल की परिस्थिति के अनुकूल हुई होंगी। वास्तव में वे प्रत्येक काल पर लागू हैं। इनकी तुलना २ थि. से कीजिए।

(च) मानव - पुत्र का आगमन १३ : २४-२७
(मत्त. २४ : २९-३१; लू. २१ : २५-२८)

यहां मत्ती मरकुस का अनुकरण करता है परंतु मत्ती पद ३०, और पद ३१ में "तुरही के बड़े शब्द" मरकुस में नहीं है। लूका ने मरकुस के कुछ भाग को अपने विशेष स्रोत के साथ सम्मिश्रित किया है।

इन पदों का और १३ : ५-८ का एक ही विषय है, अतः अनेक विद्वानों की मान्यता है कि पहले ये दो स्थल एक दूसरे से संबंधित थे, और बाद में अन्य सामग्री बीच में जोड़ी गई है। यह स्पष्ट नहीं है कि "उस क्लेश के बाद" से किस की ओर संकेत है, १३ : ५-८ की ओर या उन सब बातों की ओर जो १३ : २४ से पहले आती हैं। १३ : २४-२७ पुराना नियम के शब्दों और वाक्यों से पूर्ण हैं : १३ : २४ और २५ की तुलना यश. १३ : १०; ३४ : ४; यहे. ३२ : ७, ८, आ. ८ : ९; योए २ : १० से कीजिए। इनके अतिरिक्त ऐसी बातें यहूदियों के अप्रामाणिक लेखों और नया नियम में भी, विशेषकर प्रकाशन ग्रंथ में, पाई जाती हैं। १३ : २६ की तुलना दा. ७ : १३, १४ से और १३ : २७ की तुलना व्य. ३० : ४; ज. २ : ६,१० से कीजिए। इन सब स्थलों में ऐसी घटनाओं और परिस्थितियों का विवरण करने के लिए जिनकी सही कल्पना भी नहीं हो सकती, प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग किया गया है। यीशु ने इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग इस कारण किया कि उसके श्रोता उन से भली भांति परिचित थे। बार बार नबियों के लेखों में यह विचार पाया जाता है कि युगांत के समय परमेश्वर के मनोनीत लोग एकत्रित किये जाएंगे। अनेक टीकाकार मानते हैं कि ये कथन यीशु के सृजनात्मक मन के अनुरूप नहीं हैं। संभवतः इस अंश में प्रामाणिक कथन हैं जिनको परंपरा में नया रूप दिया गया है। "मनुष्य का पुत्र" के संबंध में ८ : ३८ (जो इसके समान है) की व्याख्या को देखिए। पुराना नियम में मेघ परमेश्वर का वाहन हैं (उदाहरणार्थ यश. १९ : १; भ. १८ : १२)। अतः मनुष्य का पुत्र एक दिव्य व्यक्ति है। इन पदों में मुख्य विचार यह है कि सब बातों की परिपूर्ति हो जाएगी और ख्रिस्त में परमेश्वर को विजय प्राप्त होगी (तुलना कीजिए ८ : ३८; ९ : १)। "चुने हुए" (मनोनीत) लोग वे हैं जिन्हों ने ख्रिस्त के आवाहन को सुन लिया है, और ख्रिस्त के हो गए हैं।

(छ) जागते रहने के संबंध में कथन तथा दृष्टांत १३ : २८-३७
(मत्त. २४ : ३२-३६; तुलना मत्त. २४ : ४२; २५ : १३-१५; लू. २१ : २९-३३; तुलना लू. १९ : १२, १३; १२ : ३८, ४०)

मत्त. २४ : ३२-३६ लगभग शब्दशः मरकुस के अनुसार है। लू. २१ : २९-३३, जिस में केवल मरकुस पद ३१ तक सम्मिलित है, कुछ परिवर्तित रूप में है। "वह निकट है" (मर. १३ : २९) के स्थान पर लूका में (पद २१ : ३१) इस प्रकार है, "परमेश्वर का राज्य निकट है"। मत्ती और लूका दोनों मरकुस के १३ : ३३-३७ को छोड़ते हैं, क्योंकि वे इसके समान सामग्री को अन्य स्थलों में सम्मिलित करते हैं।

मरकुस के इन पदों की बातें संभवतः विभिन्न प्रसंगों से यहां एकत्रित की गई हैं। अनेक सूचक शब्द कड़ी का काम देते हैं, जो इस प्रकार हैं : १३ : २९ और ३० में "इन बातों को होते देखो" और "सब बातें न हो लेंगी"। १३ : ३० और ३१ : "जाते न रहेंगे" और "कभी न टलेंगी" (यूनानी में दोनों के लिये एक ही शब्द है)। १३ : ३३, ३५ और ३७ : "जागते रहो"। १३ : २९ और ३४ "द्वार पर है" और "द्वारपाल"।

१३ : २८-२९ : पलिश्तीन देश में पतझड़ी पेड़ बहुत कम होते थे। अंजीर एक पतझड़ी पेड़ है। वहां अंजीर के पेड़ बहुत होते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि १३ : २९ में "इन बातों को" का अर्थ वे बातें नहीं हो सकता जिनका वर्णन १३ : २४-२७ में है क्योंकि इन दोनों स्थलों में युगांत का उल्लेख है। "इन बातों" से पद २४ से पहले की बातें अभिप्रेत होंगी। यह स्पष्ट नहीं है कि "वह निकट है वरन् द्वार पर है" शब्द किस की ओर संकेत करते हैं। लूका में "वह" के स्थान पर "परमेश्वर के राज्य" है। परमेश्वर के राज्य का युगांत-संबंधी पक्ष अभिप्रेत है। यह भी संभव है कि "वह" का अर्थ मनुष्य का पुत्र, या मनुष्य के पुत्र का आगमन है। इन भिन्न संभावनाओं में थोड़ा ही अंतर है, क्योंकि वे सब युगांत-संबंधी हैं। अनेक टीकाकार मानते हैं कि १३ : २८-२९ का वास्तविक प्रसंग यह नहीं है, और मरकुस या उसके स्रोत के संपादक ने उन्हें यहां जोड़ा है।

१३ : ३० की तुलना मर. ९ : १ और उसकी व्याख्या से कीजिए, जहां यह मत प्रस्तुत है कि यीशु, नबियों के समान, आगामी काल को छोटा करके दिखाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यीशु स्वयं सोचता था कि वह शीघ्र ही लौट आएगा। एक अन्य संभावना यह है कि "ये सब बातें" का अर्थ ई. स. ७० की घटनाओं तक ही सीमित है। यदि यह सत्य है तो यह संपूर्ण प्रवचन असंबद्ध है। परन्तु यह असंभाव्य प्रतीत होता है। "ये लोग जाते न रहेंगे" (हिं. सं. "इस पीढ़ी का अंत न होगा") का स्पष्ट अर्थ वे लोग हैं जो यीशु के काल में जीवित थे। यूनानी शब्द का अर्थ "जाति" भी हो सकता है, परंतु अधिक विद्वानों की मान्यता के अनुसार यह अर्थ यहां लागू नहीं है। संभव है कि १३ : ३१ किसी अज्ञात प्रसंग से यहां जोड़ा गया हो, तब "मेरी बातें" का अर्थ केवल इस प्रसंग की बातें नहीं वरन् यीशु की समस्त शिक्षा है, अर्थात् वह सत्य जिसे वह प्रकट करने आया। कदाचित यह पद उपरोक्त सूचक शब्द "टलेंगे" (१३ : ३० और ३१) के कारण यहां जोड़ा गया है।

१३ : ३२ में मानव-पुत्र का आगमन, अर्थात् न्याय-दिवस, का उल्लेख है। बहुत टीकाकारों की मान्यता है कि यह कथन अवश्य प्रामाणिक है क्योंकि ऐसा कथन जिस में यीशु के अज्ञान की स्वीकृति है, कलीसिया की रचना नहीं हो सकती। यदि यीशु का विचार सचमुच यह था कि मैं फिर शीघ्र लौट आऊंगा तो इसका अर्थ यह है कि वह ठीक समय या दिन नहीं जानता था। वह स्वयं नहीं जानता था, अतः ख्रिस्तियों को अनुमान लगाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए।

१३ : ३३-३७ : साधारणतः यह माना जाता है कि संभाव्यतः रचयिता ने इन

पदों को भिन्न प्रसंगों से एकत्रित किया। इनकी कड़ी "जागते रहो" है। **१३ : ३३** में "और प्रार्थना करते रहो" शब्द अनेक हस्तलेखों में नहीं पाए जाते, अतः अधिकांश विद्वान उन्हें अप्रामाणिक मानते हैं, और वे हिं. सं. में सम्मिलित नहीं किए गए हैं—वे पद-टिप्पणी में दिए गए हैं। यहां भी "समय" युगांत है। १३ : ३४ और ३५ तलंतों के दृष्टांत (मत्त. २५ : १४, १५; लू. १९ : १२, १३) के समान है। अंतर यह है कि यहां प्रत्येक दास को उसका काम बताया जाता है, और द्वारपाल का उल्लेख भी है। इन पदों की अन्योक्तिमूलक व्याख्या नहीं होनी चाहिए, केवल साधारण परिस्थिति की दृष्टि से ही इन दासों में और ख्रिस्ती विश्वासियों में समानता है। **१३ : ३५** में रात के चारों पहरों का वर्णन है। इस प्रकार कोई नहीं जानता कि ख्रिस्त का पुनरागमन और युगांत कब होगा। **१३** : ३६ और ३७ में तैयार रहने का महत्व बहुत स्पष्ट प्रस्तुत किया गया है—१ थि. ५ : २ क्र. से तुलना कीजिए। "सोते" का अर्थ आत्मिक और नैतिक रूप से तैयार न होना, परमेश्वर के साथ प्रत्यक्ष संबंध न रखना, है। संभव है कि इस सुसमाचार की रचना के समय कलीसिया के लोग अपने प्रभु के पुनरागमन न होने के कारण कुछ अंशों में निराश से थे, और कि उन में से अनेक व्यक्ति आत्मिक और नैतिक रूप से ढीले हो गए थे। इन बातों के द्वारा उनको चेतावनी दी गई।

७. क्रूस तथा पुनरुत्थान का वर्णन १४ : १—१६-२०

विद्वानों में सहमति है कि यीशु के दुःखभोग का वर्णन सुसमाचारों का सब से पुराना वर्णन है, जो मरकुस को पूर्व-रचित रूप में मिला। ऐसा प्रतीत होता है कि यह मौखिक परंपरा का सब से प्रारंभिक चरण है। फिर भी मरकुस ने संभाव्यतः कुछ परंपरागत वर्णनों को जो उसको अन्य स्रोतों से मिले इस में सम्मिलित किया। टीका में इनकी ओर संकेत किया गया है।

(१) क्रूस से पूर्व की घटनाएं १४ : १-५२

(क) यीशु की हत्या के लिए षड्यंत्र १४ : १, २

(मत्त. २६ : १-५; लू. २२ : १, २)

ऐसा प्रतीत होता है कि १४ : १ और २ का संबंध १४ : १० क्र. से है, और कि १४ : ३-९ में एक अलग वर्णन है जिसको मरकुस ने यहां जोड़ा। "दो दिन के बाद" का अर्थ संभाव्यतः यह है कि यह बुधवार के दिन हुआ। यहूदियों के समय के मापन के अनुसार दिन सूर्यास्त के समय आरंभ होता था, और उनकी जंत्री के अनुसार फसह का पर्व वर्ष के पहले महीने (मार्च-अप्रैल) की १५ तिथि को होता था (नि. १२ : १-१३)। यह महीना निर्वासन से पहले "अबीब" (नि. १३ : ४) और निर्वासन के पश्चात् "नीसान" (नहे. २ : १) कहलाता था। फसह के दिन को मिलाकर सात दिन तक अखमीरी रोटी का पर्व होता था (नि. १२ : १४-२०)। यह मानो एक ही पर्व के समान था। फसह के मेम्ने १४ नीसान तीसरे पहर को वध किए जाते थे। नीसान की १५ तिथि सूर्यास्त के समय आरंभ होती थी, और मेम्ने सूर्यास्त और आधी

रात के मध्य खाए जाते थे। मरकुस के वर्णन के अनुसार फसह उस वर्ष बृहस्पतिवार की संध्या को आरंभ हुआ, अर्थात् उस समय १५ नीसान आरंभ हुआ। संदर्भ से यह स्पष्ट नहीं है कि यहूदियों के अधिकारी पर्व से पहले या पर्व के पश्चात् यीशु को मार डालना चाहते थे। वास्तव में वह फसह के दिन ही क्रूसित हुआ। संभाव्यतः यहूदा के प्रस्ताव ने उन्हें अवसर दिया (१४ : १२ की टीका को भी देखिए)।

(ख) बैतनिय्याह में सुगंधित द्रव्य द्वारा अभ्यंजन १४ : ३-९
(मत्त. २६ : ६-१३; तुलना लू. ७ : ३६-५०; यू. १२ : १-८)

मत्ती कुछ ब्योरों को छोड़ देता है, परंतु अधिकतर उसका वर्णन मरकुस के समान है। लूका का वृत्तांत बहुत भिन्न है और उस में वर्णित घटना यीशु के सेवाकाल के आरंभ में हुई। अनेक विद्वानों की मान्यता के अनुसार यह एक अन्य घटना का वर्णन है, परंतु अन्य विद्वान उसे मरकुस में वर्णित घटना की भिन्न परंपरा मानते हैं। लूका की टीका में इस पर ध्यान दिया जाएगा। यूहन्ना में इन दोनों वृत्तांतों का मिश्रण प्रतीत होता है।

१४ : ३ बैतनिय्याह के लिए ११ : १ की टीका को देखिए। केवल मरकुस और मत्ती में शमौन को कोढ़ी कहा गया है। लूका में शमौन फरीसी है। स्मरण कीजिए कि केवल लूका में स्त्री पापिनी कहलाती है, और केवल यूहन्ना में उसका नाम मरियम बताया गया है। यूहन्ना के अनुसार भोजन मरियम के घर हुआ। मरकुस कोई कारण नहीं बताता कि स्त्री ने यह क्यों किया। केवल १४ : ८ में यीशु का स्पष्टीकरण है। मरकुस के अनुसार गंधरस यीशु के सिर पर, परंतु लूका और यूहन्ना के अनुसार उसके पांवों पर उंडेला गया। वह यूनानी शब्द (नार्दस) जिसका अनुवाद जटामांसी किया गया है, संभाव्यतः नार्दस संस्कृत शब्द "नलदा" से बना। यह पौधा विशेष भारत में ही प्राचीन काल से पाया जाता था। यह इत्र बहुमूल्य था क्योंकि बहुत दूर से लाया गया था। "दीनार" के लिए ६ : ३७ की टीका को देखिए। ऐसा प्रतीत होता है कि उस स्त्री ने समस्त गंधरस को उंडेलकर पात्र को रिक्त कर दिया।

१४ : ४-८ का सार यह है कि स्त्री ने अपने हृदय की स्वाभाविक उमंग से यीशु का अभ्यंजन इस इत्र से किया, और इस प्रकार अपनी कृतज्ञता और प्रेम को व्यक्त किया। ऐसी क्रिया के मूल्य का अनुमान रुपयों में नहीं लगाया जा सकता। आपत्ति करनेवालों ने इस तथ्य को नहीं पहचाना था। १४ : ७ के उत्तरार्द्ध पर बल दिया गया है, "मैं तुम्हारे पास सदा न रहूंगा" और इस वाक्य में "मैं" शब्द पर विशेष बल दिया गया है। १४ : ८ में स्त्री के अभिप्राय का उल्लेख नहीं है वरन् उसकी क्रिया के संबंध में यीशु का स्पष्टीकरण व्यक्त किया गया है। यीशु ने उस क्रिया में एक गहरे प्रतीकात्मक अर्थ को पहचान लिया। ४१ : ९ का कथन यीशु का है, परंतु उसके कुछ शब्द (विशेषकर "सुसमाचार" और "प्रचार करना") मरकुस के काल के हैं। स्त्री का नाम नहीं बताया गया है।

(ग) यहूदा का विश्वासघात १४ : १०, ११
(मत्त. २६ : १४-१६; लू. २२ : ३-६)

मूलतः यह वर्णन तीनों सुसमाचारों में एक सा है, परंतु लूका में बहुत शाब्दिक अंतर है। वह लिखता है कि शैतान ने यहूदा में प्रवेश किया, और कि यहूदा "अवसर ढूंढ़ने लगा कि भीड़ की अनुपस्थिति में यीशु को उनके हाथ पकड़वाए" (हिं. सं.)। मत्ती के अनुसार यहूदा ने महायाजकों से रुपया मांगा। यहूदा को तीस चांदी के सिक्के देने की प्रतिज्ञा में जक. ११ : १२ की ओर संकेत है।

यहूदा इसकरियोती के विषय में ३ : १९ की टीका को देखिए। यह नहीं बताया गया है कि यीशु को पकड़वाने की क्या आवश्यकता थी। संभाव्यतः यहूदा ने यहूदियों के अधिकारियों को वह स्थान दिखाया जहां यीशु उन्हें मिल सकता था। मरकुस ने नहीं लिखा कि यहूदा ने रुपया मांगा, परंतु १४ : ११ में संकेत है कि उस ने मांगा होगा। विभिन्न अनुमान लगाए गए हैं कि यहूदा ने, बारह में से एक होते हुए भी, ऐसा क्यों किया, परंतु इस प्रश्न का कोई निश्चित उत्तर नहीं मिलता। संभव है कि उस ने सोचा कि यीशु एक राजनीतिक नेता बनकर अपनी जाति को स्वतंत्र करेगा, और जब देखा कि ऐसा नहीं होगा तब वह निराश हो गया। यद्यपि वह बारह में से एक था तथापि यीशु ने उस पर किसी प्रकार का दबाव नहीं डाला कि वह यह काम न करे।

(घ) फसह की तैयारी १४ : १२-१६
(मत्त. २६ : १७-१९; लू. २२ : ७-१३)

मत्ती का वर्णन संक्षिप्त है। उसमें घड़े और अटारी का उल्लेख नहीं है, न ही यह कहा गया कि दो शिष्य भेजे गए। लूका के अनुसार पतरस और यूहन्ना भेजे गए।

वास्तव में पर्व का "पहला दिन" सूर्यास्त के पश्चात् आरंभ होता था, अर्थात् १५ नीसान को। परंतु यहां १४ नीसान "पहला दिन" माना गया है। उस दिन सब खमीर घरों में से निकाला जाता था और अखमीरी रोटी खाई जाती थी, अतः कभी कभी वह दिन भी पर्व में सम्मिलित किया जाता था। मेम्ने १४ नीसान के अंत में वध होकर १५ नीसान के आरंभ में खाए जाते थे। इस पद (१४ : १२) से स्पष्ट ज्ञात होता है कि इस सुसमाचार में अंतिम भोज फसह का भोज माना गया है, जिस के लिए विशेष खाद्य सामग्री और पेय निर्धारित थे। यीशु ने बड़ी सावधानी के साथ इसकी तैयारी की। अनेक विद्वानों की मान्यता है कि केवल मरकुस के इस अंश में यह भोज फसह का भोज माना गया है, और कि इस में और १४ : २ में विरोध है, क्योंकि यदि यह सचमुच फसह का भोज था तो यीशु पर्व के दिन क्रूसित हुआ, जो असंभव होता। उक्त विद्वानों के विचार के अनुसार मरकुस ने अपनी सामग्री को भिन्न स्रोतों से लेकर इन स्रोतों की परस्पर असंगति को रहने दिया। परंतु यह प्रमाणित नहीं हुआ है कि पर्व के दिन यीशु का क्रूसित होना असंभव था, अतः असंगति भी प्रमाणित नहीं हुई।

मरकुस के वर्णन और यूहन्ना के वर्णन में विरोध है। यूहन्ना के अनुसार फसह

का भोज यीशु की मृत्यु के पश्चात् हुआ, और यीशु लगभग उस समय मर गया जब मेम्ने वध हो रहे थे (यू. १३ : १, २९; १८ : २८; १९ : १४, ३१, ३२)। यूहन्ना और मरकुस के वर्णनों को संगत प्रमाणित करने के प्रयत्न किए गए हैं, परन्तु वे असफल हुए हैं, क्योंकि उन में अनेक स्थलों पर अस्वाभाविक अनुवाद करने पड़ते हैं। हमको ऐसा प्रतीत होता है कि संभाव्यतः मरकुस का वर्णन ठीक है, अंतिम भोज फसह का भोज था, और यूहन्ना ने प्रतीकात्मक अभिप्राय से इसको परिवर्तित किया—यीशु परमेश्वर का मेम्ना था, वह उस समय मरा जब फसह के मेम्ने मरे। इस विषय पर अन्य सामग्री "मरकुस रचित सुसमाचार - टीका", लेखक जे. जे. पॉल, पृ. ३०६-३०८, और "यूहन्ना रचित सुसमाचार-टीका" लेखक एम. आर. रॉबिन्सन, पृ. ४, ५, १४२, १९४, २०१-२०३ में मिल सकती है।

१४ : १३-१६ : यह भोज रात के समय यरूशलेम नगर के अंदर खाया जाता था (व्य. १६ : ५-७)। ऐसा प्रतीत होता है कि यीशु ने प्रबंध किया था कि घड़ावाला मनुष्य शिष्यों को मिले। ऐसा मनुष्य सरलता से पहचाना जा सकता था क्योंकि साधारणतः पुरुष घड़ों को उठाए नहीं फिरते थे। यीशु उस कमरे को "मेरी पाहुनशाला" कहता है, अर्थात् वह जिसको मैं ने ले रखा है। उस विशेष भोज के लिए शिष्यों को बहुत तैयारी करनी पड़ी होगी।

(च) यहूदा के विश्वासघात का संकेत १४ : १७-२१
(मत्ती २६ : २०-२५; लू. २२ : १४, २१-२३)

इस अंश में मत्ती का वर्णन अधिकतर मरकुस के समान है। वह मरकुस के कुछ ब्योरों को छोड़ देता है। मत्ती २६ : २५ मरकुस में नहीं है। लूका का वर्णन भिन्न है—वह इस से पहले भोज का विवरण कर चुका है, और वह यहूदा संबंधी वर्णन को संक्षिप्त करता है।

इस अंश के वाक्यविन्यास के आधार पर अनेक विद्वानों की मान्यता है कि वह एक अलग अंश था जिसको मरकुस ने इस दुःखभोग के वर्णन में सम्मिलित किया। परंतु इस घटना की ऐतिहासिकता पर कोई संदेह नहीं है। आरंभ में लोग फसह को खड़े होकर, परंतु कालांतर में बैठकर खाते थे। १४ : १८ में भ. ४१ : ९ की ओर संकेत है, "मेरा परम मित्र जिस पर मैं भरोसा रखता था, जो मेरी रोटी खाता था, उस ने भी मेरे विरुद्ध लात उठाई है"। यद्यपि यीशु जानता था कि मेरा पकड़वानेवाला कौन होगा तो भी मरकुस के वर्णनानुसार उस ने कोई संकेत नहीं किया। यूहन्ना के वर्णन अनुसार यीशु स्पष्ट कह देता है। मत्ती २६ : २५ में भी स्पष्ट उल्लेख है। यहां ऐतिहासिक रूप से संभाव्यतः मरकुस अधिक मानने योग्य है। इस वर्णन से ज्ञात होता है कि शिष्यों पर यीशु के शब्दों का गहरा प्रभाव हुआ, क्योंकि वे सब अपने विषय में प्रश्न पूछने लगते हैं। १४ : २० में भी उपरोक्त भ. ४१ : ९ की ओर संकेत है। किसी के साथ भोजन करते हुए ऐसा धोखा देना अत्यंत नीच काम था। यहूदा "बारह" में से

एक था। "बारह" उन मनोनीत व्यक्तियों के छोटे से समूह का विशेष नाम था। इस पद के कुछ हस्तलेखों में एक छोटा यूनानी शब्द जोड़ा गया है, जो हिं. सं. में भी सम्मिलित किया गया है: "मेरे साथ **एक ही** थाली में हाथ डाल रहा है"। इस से यहूदा का काम और भी अधिक घृणित जान पड़ता है।

१४ : २१ में "मनुष्य का पुत्र" यीशु स्वयं है। "जाता ही है" शब्दों के द्वारा इस तथ्य पर बल दिया जाता है कि यद्यपि यीशु क्रूसित होने के लिये बाध्य नहीं था, और उस ने इच्छास्वातंत्र्य से इसको स्वीकार किया, तथापि क्रूस परमेश्वर का प्रबंध था। इस पद के अंत में यीशु के शब्दों का अभिप्राय यहूदा को धमकी देना नहीं, केवल एक सत्य को प्रकट करना था। यहूदा को भी स्वतंत्र इच्छा प्राप्त थी, और उस ने स्वयं अपना मार्ग चुन लिया। परमेश्वर ने यहूदा को किसी प्रकार से भी विवश नहीं किया। यीशु ने भी यहूदा पर किसी प्रकार का दबाव नहीं डाला। संभव है कि इन शब्दों से यीशु ने मानो यहूदा से अनुरोध किया।

(छ) अंतिम भोज १४ : २२-२५

(मत्त. २६ : २६-२९; लू. २२ : १५-२०)

इस अंश में मत्ती और मरकुस में थोड़ा ही अंतर है। मत्ती में कटोरे के विषय में यीशु के शब्द पीने से पहले और मरकुस में पीने के पश्चात् आते हैं। अंत में मरकुस के "परमेश्वर के राज्य" के स्थान पर मत्ती में "अपने पिता का राज्य" है। लूका का वर्णन भिन्न है, उस में दो बार कटोरे का उल्लेख है। लूका की विशेषताओं पर उसकी टीका में ध्यान दिया जाएगा। लूका स्पष्ट शब्दों में इस भोज को "फसह" कहता है (लू. २२ : १५)।

मरकुस के इस वर्णन में यह भोज फसह नहीं कहा गया है, न ही फसह के मेम्ने का उल्लेख है, यद्यपि मेम्ना फसह के भोज में महत्वपूर्ण था। अतः अनेक विद्वानों की मान्यता है कि वास्तव में यह अंतिम भोज फसह नहीं था, और यूहन्ना रचित सुसमाचार ठीक है, जिसके अनुसार फसह का भोज यीशु की मृत्यु के पश्चात् हुआ। परंतु इस अंश में कोई ऐसी बात नहीं है जो इसके फसह का भोज होने के विरोध में हो, और हम ने १४ : १२ की टीका करते हुए यह मत व्यक्त किया है कि संभाव्यतः यह फसह का भोज था। यदि यह मत ठीक है तो इस वर्णन में भोज के केवल उन भागों का उल्लेख है जो "प्रभु भोज" के संस्कार के लिए महत्वपूर्ण थे। मरकुस के वर्णन की तुलना १ कुर. ११ : २३-२६ से करनी चाहिए। यद्यपि १ कुर. मरकुस रचित सुसमाचार से पहले लिखा गया तथापि कुछ संकेत विद्यमान हैं कि प्रभु भोज के संबंध में मरकुस का वर्णन १ कुरिंथियों से प्राचीनतर है (उदाहरणार्थ मरकुस में "जो तुम्हारे लिए है" और "मेरे स्मरण के लिए यही किया करो" शब्द नहीं हैं। इस प्रकार मरकुस में कटोरे के संबंध में शब्द भिन्न हैं, और कटोरे को पिया करने का आदेश भी नहीं है)। फिर भी दोनों वर्णन मौलिक रूप से समान हैं।

"आशिष" फसह के भोज में सम्मिलित होती थी। १४ : २३ में वह यूनानी शब्द जो "धन्यवाद किया" से अनूदित है "यूख़रिस्तेओ" है। इससे "यूखरिस्त" शब्द बना है जो बहुधा प्रभु भोज के लिए प्रयुक्त होता है। १४ : २३ और २४ में महत्व-पूर्ण तथ्य यह है कि रोटी और दाखरस यीशु का शरीर और उसका लोहू कहे गए हैं। प्रभु भोज में रोटी और दाखरस दोनों इस बात का प्रतीक हैं कि यीशु पर विश्वास करने-वाला यीशु के साथ एक है, संयुक्त है। तोड़ी हुई रोटी और दाखरस यीशु की मृत्यु के प्रतीक भी हैं, जो एक बलिदान थी। विश्वासी इस मृत्यु में सहभागी हो जाते हैं, आत्मिक बल प्राप्त करते हैं, और "ख्रिस्त के साथ क्रूसित" हो जाते हैं (गल. २ : १६)। १४ : २४ में दाखरस "वाचा का मेरा लोहू" कहा गया है। यहां नि. २४ : ८ की ओर संकेत है, जहां उस वाचा का वर्णन है जो याहवे और इस्राएलियों के मध्य बांधी गई। यि. ३१ : ३१ में एक नई वाचा की प्रतिज्ञा है, और १ कुर. ११ : २५ के अनुसार यीशु ने कहा कि कटोरा "मेरे लोहू में नई वाचा है", अर्थात् इस में यिर्मयाह की भविष्यवाणी पूरी हो गई। संभव है कि "बहुतों के लिए" शब्द यश. ५३ : १२ की ओर संकेत करते हैं। इब्रानी और अरामी मुहाविरे में "बहुत" का अर्थ "सब" है। यीशु का लोहू सब लोगों के लिए बहाया गया (यू. ३ : १६)।

१४ : २५ को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि यहूदियों के साहित्य में कहीं कहीं मसीह का युग एक भोज के समान कहा गया है, उदाहरणार्थ यश. २५ : ६; अनेक अप्रमाणिक लेखों में; और मत्त. ८ : ११; लू. १४ : १५; प्रे. १६ : ६। इस पद में "परमेश्वर के राज्य में" दाख का रस पीना युगांत में परमेश्वर के राज्य की पूर्ति में सहभागी होना है। यीशु उस अंतिम भोज में शिष्यों के साथ सहभागी था, परंतु उस सहभागिता की परिपूर्णता भविष्य में है।

(ज) शिष्यों की निर्बलता और पतरस के अस्वीकरण की भविष्यवाणी १४ : २६-३१

(मत्त. २६ : ३०-३५; लू. २२ : ३१-३४, ३६; तुलना यू. १३ : ३६-३८)

मत्ती का वर्णन मरकुस के समान है। लूका में पतरस के अस्वीकरण की भविष्य-वाणी जैतून पर्वत को चले जाने के वर्णन से पहिले है। लूका २२ : ३१, ३२ मत्ती और मरकुस में नहीं हैं, और मरकुस के १४ : २६-२८ लूका में नहीं हैं। केवल मरकुस के अनुसार इस बात का उल्लेख है कि मुर्ग **दो बार** बांग देगा। तीनों सुसमाचारों के अनुसार यह भविष्यवाणी है कि पतरस तीन बार यीशु का अस्वीकरण करेगा।

१४ : २६ संभवत: ये वही भजन थे जो फसह के अंत में गाए जाते थे, अर्थात् भजन ११४-११८। १४ : २७ उस यूनानी शब्द का अनुवाद करना कठिन है जो यहां "ठोकर खाने" से अनूदित है। हिं. सं. में इस प्रकार है : "तुम सब का पतन होगा", और बल्के के अनवाद में "तुम सब विचलित हो जाओगे"। इसका अर्थ यह है कि यीशु

पर उनका विश्वास डाँवाडोल हो जाएगा, यीशु के संबंध में उनकी आशा टूट जाएगी। १४ : २७ का उत्तरार्द्ध ज. १३ : ७ से उद्धृत है, जो इस प्रसंग में बहुत उपयुक्त है। यीशु ने अनेक बार भेड़ों और मेषपाल की उपमा का प्रयोग किया (मत्त. १५ : २४; २५ : ३१-४६; मर. ६ : ३४ ; लू. १२ : ३२; १५ : ३-७; यू. १० : ११)। अनेक विद्वानों की मान्यता है कि १४ : २८ में, जो १६ : ७ की ओर संकेत करता है, यीशु का कथन नहीं वरन् ख्रिस्तीय समुदाय की रचना है। उनका कहना है कि यदि इस पद का अर्थ पुनरुत्थित ख्रिस्त का स्वयं को लोगों पर प्रकट करना है तो अधिकतर यह प्रकट करना यरूशलेम में हुआ, न कि गलील में। परंतु वास्तव में यरूशलेम में दर्शनों के वर्णन केवल लूका और यूहन्ना में हैं। मत्ती और मरकुस में केवल गलील में दिखाई देने की ओर संकेत है (मरकुस के उपरोक्त स्थल और मत्त. २८ : १६)। १४ : २९ में पतरस यीशु के गलील जाने का कोई उल्लेख नहीं करता, जिसके कारण उक्त विद्वान १४ : २८ को मिलाई हुई बात मानते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि पतरस को यीशु के पहले शब्दों से, कि सब ठोकर खाएंगे, ऐसी चोट लगी कि उस ने गलील विषयक कथन की उपेक्षा की।

१४ : ३० में अनेक हस्तलेखों में "दो बार" शब्द नहीं पाए जाते, अतः वे हि. सं. में भी नहीं हैं। परंतु संभाव्यतः वे मूल पाठ में थे। यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि न केवल पतरस वरन् सब शिष्य कहते हैं कि यदि यीशु के साथ मरना भी पड़े तो भी उसका इनकार कभी नहीं करेंगे। परंतु यीशु उनके हृदयों से भली भांति परिचित था। १४ : ५० में वर्णित है कि "सब चेले उसे छोड़कर भाग गए"।

(झ) गतसमने में प्राणपीड़ा १४ : ३२-४२
(मत्त. २६ : ३६-४६; लू. २२ : ४०-४६)

यहां भी मत्ती मरकुस का अनुसरण करता है। वह यीशु के तीसरी बार प्रार्थना करने के लिए जाने का उल्लेख करता है, जो मरकुस में नहीं है। लूका का वर्णन बहुत संक्षिप्त और कुछ परिवर्तित भी है। लूका २२ : ४३, ४४ अन्य सुसमाचारों में, और लूका के अनेक हस्तलेखों में भी, नहीं हैं। इन पदों में स्वर्गदूत और लोहू के पसीने का वर्णन है।

अधिक टीकाकार इसे एक ऐतिहासिक घटना मानते हैं। वे यह बात इस आधार पर मानते हैं कि न तो शिष्यों की मंदता न यीशु के स्पष्ट मानवत्व का ऐसा वर्णन किसी काल्पत रचना में संभव है। गतसमने नाम का अर्थ संभाव्यतः "तेल का कोल्हू" है। यह जैतून पर्वत पर या उसके निकट स्थित था। परंपरागत स्थान किद्रोन नाले से थोड़ी दूर पूर्व की ओर है (यू. १८ : १) परंतु अनेक विद्वानों का विचार है कि वह नगर से इस से अधिक दूरी पर था। इस अंश में यीशु का मानवत्व बहुत स्पष्टता से प्रकट किया गया है। वह शिष्यों की सहायता चाहता है। यह आपत्ति प्रस्तुत की गई है कि यह असंभव है कि शिष्यों ने यीशु की प्रार्थना सुन ली हो, क्योंकि "उनकी

आंखें नींद से भरी थीं"। परंतु संभव है कि प्रार्थना करने के लिए अलग हो जाने से पहले यीशु ने उन्हें बताया कि मैं क्यों इस प्रकार प्रार्थना करने आया हूं, और कैसी घोर व्यथा का अनुभव कर रहा हूं। निस्संदेह इस वर्णन की वाक्यरचना परंपरा में रची गई, परंतु मूल तथ्य ऐतिहासिक है। रूपांतर के समय भी यीशु इन्हीं तीन शिष्यों को अपने साथ ले गया (९:२)। १४ : ३३ में बहुत प्रबल शब्दों का प्रयोग किया गया है, जिनका अनुवाद "अधीर" और "व्याकुल" किया गया है। इन में से पहला हिं. सं. में "संत्रस्त" से और बुल्के में "भयभीत" से अनूदित है। क्या करण है कि यीशु इस प्रकार घबराया हुआ था? संभाव्यत: इसका कारण यह नहीं है कि वह जानता था कि मुझे, जो जवान और स्वस्थ हूं, मृत्यु का सामना करना पड़ेगा, वरन् यह कि उसको ज्ञात था कि इस मृत्यु में मुझे बुराई की शक्ति का विरोध करना पड़ेगा, संसार के पाप का बोझ उठाना होगा। तुलना कीजिए इब्र. ५ : ७-१०, जहां उसका मानवत्व स्पष्टत: व्यक्त है। यही तथ्य १४ : ३४ में भी प्रत्यक्ष है, "मेरा अंतर इतना व्यथित है कि मानो प्राण निकले जा रहे हैं" (हिं. सं.)।

शिष्यों से यीशु की मांग केवल यह थी कि "जागते रहो" (१४ : ३७ और ३८)। १४ : ३५ और ३६ में एक ही बात असाक्षातकथन और साक्षातकथन के रूप में कही गई है। "घड़ी" का अर्थ परमेश्वर से निर्धारित निर्णायक समय है—१४ : ४१ से भी तुलना कीजिए। "अब्बा" वह अरामी शब्द है जो यीशु बोला। परंपरा में इसका प्रयोग होता था परन्तु यूनानी-भाषी लोगों के लिये उसका अनुवाद करना पड़ा। "अब्बा जान" या "पिता जी" इसी के समान हैं। यहूदी लोगों में बच्चे अपने पिता को इस प्रकार संबोधित करते थे, परंतु वे लोग इस शब्द को परमेश्वर के संबंध में प्रयुक्त नहीं करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि यीशु परमेश्वर को "अब्बा" कहा करता था, जिस से उनका विशेष परस्पर संबंध प्रकट होता है। ख्रिस्तियों ने भी इसको अपनाया (रो. ८ : १५; गल. ४ : ६)। यीशु को पूर्ण विश्वास था कि परमेश्वर सर्वशक्तिमान है, उस से सब कुछ हो सकता है। जवान स्वस्थ मानव होते हुए वह नहीं मरना चाहता था, परंतु इस पद में उसके चरित्र का सारतत्व व्यक्त किया गया है। चाहे कुछ भी देना पड़े, वह सदा अपने पिता परमेश्वर की इच्छा को पूर्ण करने के लिए प्रस्तुत था। तुलना कीजिए मत्त. ६ : ३३, मर. १२ : २९-३१। कटोरा यहां दु:ख और कोप का प्रतीक है, अर्थात् वह संसार के पाप का कटोरा है—देखिए १० : ३५-४५ की टीका।

१४ : ३७-४२ यीशु तीन बार प्रार्थना करने जाता है और तीनों बार शिष्य प्रत्याशा से कम निकलते हैं। पतरस को संबोधित करते समय यीशु उसे पतरस नहीं, शमौन कहता है। इस समय वह "चट्टान" ("पतरस" का अर्थ यही है) नहीं है। इस परीक्षा में पतरस प्रत्याशा से कम निकला। आत्मा तत्पर थी (१४ : ३१ को देखिए), परंतु शिष्य अपने दावे को पूरा नहीं कर सके। उनकी आंखें नींद से भरी थीं (४०)—ऐसा प्रतीत होता है कि वे शारीरिक रूप से थके हुए थे, और यीशु के इस निर्णायक समय को पहचानने में असफल रहे। परीक्षा में बचाव प्रार्थना करने से संभव है (३८)।

इसकी तुलना प्रभु की प्रार्थना से कीजिए। **१४ : ४१** का दूसरा वाक्य उस प्रकार होना चाहिए जैसा हि. सं. में है, "अब भी सो रहे हो ! विश्राम कर रहे हो !" यह एक प्रश्न भी हो सकता है, जैसे बुल्के के अनुवाद में है। यीशु उन्हें नहीं कहता कि "सोते रहो" वरन् आश्चर्य व्यक्त करता है कि वे सो रहे हैं। यहां भी "बस घड़ी आ पहुंची है", अर्थात् निर्णायक समय आया है। यह समय यीशु की समस्त सेवा का चरमोत्कर्ष था, परंतु शिष्यों की आंखें बंद थीं। मानव-पुत्र, अर्थात् ख्रिस्त, पापी मनुष्यों के हाथ सौंपा जाने को था। ऐसा प्रतीत होता है कि यीशु का आंतरिक संघर्ष समाप्त हो गया, और यीशु फिर शांत हो गया कि यहूदा के विश्वासघात का सामना कर सके। इसके पश्चात् शिष्यों के व्यवहार से ज्ञात होता है कि उन्हों ने इन बातों को नहीं समझा था।

(ट) यीशु का बंदी होना १४ : ४३-५२

(मत्त. २६ : ४७-५६; लू. २२ : ४७-५३)

मत्ती यहां मरकुस के समान ही है, परंतु मत्ती २६ : ५० पू और ५२-५४ केवल इस सुसमाचार में हैं। लूका वर्णन को बहुत संक्षिप्त करता है परंतु कुछ ब्योरे पद ४८, ४६, ५१ और ५३उ में जोड़ भी लेता है।

वर्णन के आरंभ में इस तथ्य को महत्व दिया गया है कि यहूदा बारह में से एक था। यहां भी यह भीड़ यहूदियों के अधिकारियों की ओर से आती है (महायाजक, शास्त्री जो व्यवस्था के विशेषज्ञ थे, और पुरनिए)। ये अधिकारी महासभा के सदस्य थे। मरकुस भीड़ के लोगों को "पहरुए" आदि नहीं कहता, परंतु लू. २२ : ५२ के अनुसार उन में महायाजक, मंदिर के सरदार और पुरनिए थे। यूहन्ना में (१८ : ३) पलटन का उल्लेख भी है (हिं. सं. "सेनादल"), जिसका अर्थ रोमी सेनादल है। यह असंभाव्य प्रतीत होता है कि सचमुच यहूदियों के अधिकारी स्वयं आए थे। संभाव्यत: मंदिर के पहरुए (सैनिक, पुलिस) आए थे। यहूदा ने उन्हें वह स्थान दिखाया जहां यीशु उन्हें मिल सकता था। ऐसा प्रतीत होता है कि जो यीशु को पकड़ने आए थे उन्हों ने सोचा कि यीशु और उसके साथी विरोध करेंगे। शिष्य का गुरु का चुंबन करना यहूदियों की प्रथा थी, यह कोई असाधारण बात नहीं थी। **१४ : ४४** में "यत्न से ले जाना" से हिं. सं. का "सावधानी से ले जाना" अच्छा है। अर्थ यह है कि वह किसी प्रकार से भागने न पाए। **१४ : ४५** संभव है कि "बहुत चूमा" केवल "उनका चुंबन किया" (हि. सं. और बुल्के) होना चाहिए। परंतु अनेक विद्वान मानते हैं कि यह क्रिया १४ : ४४ की क्रिया से अधिक सार्थक है। उसका अर्थ "स्नेह पूर्वक चुंबन किया" हो सकता है, परंतु यहूदा का स्नेह दिखावे का था। १४ : ४६ में "पकड़ लिया" के स्थान पर पद ध. ग्रं. और बुल्के के अनुवाद में "गिरिफ्तार कर लिया" ठीक अर्थ को व्यक्त करता है।

१४ : ४७ बहुधा मरकुस व्यक्तियों के नाम नहीं बताता। यूहन्ना १८ : १० के अनुसार पतरस ने महायाजक के दास का कान उड़ा दिया, और उस दास का नाम मलखुस था। यह ऐसी आवेगशील क्रिया थी जो पतरस के स्वभाव के अनुकूल थी।

विद्वानों में सहमति है कि १४ : ४८ और ४९ से अनुमान लगाया जा सकता है कि इन में यीशु उत्तरदायी अधिकारियों को संबोधित कर रहा था, परंतु उनकी यह मान्यता भी है कि ऐसे अधिकारी उस समय उपस्थित नहीं रहे होंगे, अतः संभव है कि यीशु ने ये बातें कालांतर में कहीं और मरकुस या उसके स्रोत ने उन्हें इस प्रसंग में जोड़ा। यीशु की आपत्ति थी कि उन्हों ने उसे **इस ढंग से** क्यों पकड़ा ? १४ : ४९ से ज्ञात होता है कि यीशु केवल तीन दिन से (यदि यरूशलेम में "अंतिम सप्ताह" वास्तव में केवल एक सप्ताह था तो इस से पहले केवल तीन दिन बीत चुके थे) मंदिर में उपदेश नहीं करता रहा, वरन् इस से लंबी अवधि के लिए। नया नियम में बार बार शास्त्रों के पूरा होने का उल्लेख है। यहां संभवतः यश. ५३ : ३, १२ अभिप्रेत है, परंतु यह भी हो सकता है कि साधारण रूप से इसका अर्थ पुराना नियम का पूरा होना है। **१४ : ५०** में पद २७ की भविष्यवाणी के पूरा होने का वर्णन है।

१४ : ५१-५२ यह भी एक अलग वर्णन है जो जोड़ा गया है। यह नवयुवक बारह में से एक नहीं था। बहुत से अनुमान लगाए गए हैं कि वह कौन था, जिन में से सब से संभाव्य यह है कि वह मरकुस स्वयं था। इसके विरुद्ध यह है कि अनेक विद्वानों की मान्यता के अनुसार वाक्यरचना दिखाती है कि लेखक ने इस छोटे अंश को किसी स्रोत से लिया, और कि यदि सचमुच यह नवयुवक मरकुस होता तो वह अपने वर्णन में अधिक ब्योरे मिलाता। उसकी चादर मलमल की थी (हिं. सं.) जिस से ज्ञात होता है कि वह उच्च वर्ग का था

(२) यीशु का विचार, क्रूसीकरण और दफ़न १४ : ५३—१५ : ४७

(क) महापुरोहित के संमुख यीशु का विचार १४ : ५३-६५

(मत्त. २६ : ५७-६८; लू. २२ : ५४, ५५, ६७-७१, ६३-६५)

मत्ती बताता है कि महायाजक काइफा था, और अन्य उपस्थित लोगों में महायाजकों को सम्मिलित नहीं करता। वह यह वर्णित नहीं करता कि साक्षियों की साक्षी में असंगति थी, और मंदिर को ढा देने के विषय में कथन को संक्षिप्त कर लेता है। यीशु से महायाजक का प्रश्न मत्ती में लंबा है, और उस में शाब्दिक अंतर भी है। उसके अनुसार यीशु स्पष्ट उत्तर नहीं देता, वरन् यह कहता है कि "तू ने आप ही कह दिया"। अन्य छोटी भिन्नताएं भी हैं। आरंभ में लूका केवल महायाजक का उल्लेख करता है। पतरस के आग तापने के वर्णन में कुछ अंतर है, और उसके पश्चात् ही लूका पतरस की अस्वीकृति का वर्णन करता है। उस में महायाजक और यीशु में प्रश्नोत्तर का अधिक भाग नहीं है। ख्रिस्त होने के विषय में यीशु का उत्तर मत्ती और मरकुस के वर्णनों से भिन्न है। लूका में यीशु के निरादर का वर्णन प्रश्नोत्तर से पहले आता है।

इस विचार के संबंध में चारों सुसमाचारों के वर्णनों को संगत नहीं किया जा सकता। मरकुस और मत्ती के अनुसार रात को महासभा एकत्रित हुई और प्रश्नोत्तर हुआ। सब का निर्णय था कि यीशु प्राणदंड के योग्य था। फिर (मर. १५ : १) प्रातः काल महासभा दूसरी बार एकत्रित हुई और यीशु पिलातुस के पास भेजा गया।

लूका के अनुसार रात को कुछ कार्यवाही नहीं हुई, वरन् महासभा केवल प्रातःकाल एकत्रित हुई, और विचार के जो ब्योरे मरकुस के अनुसार रात की बैठक में हुए वही लूका के अनुसार प्रातःकाल हुए। इसके अतिरिक्त लूका में हेरोदेस के सामने भी प्रश्नोत्तर का वर्णन है। यूहन्ना के अनुसार वे यीशु को पहले हन्ना के पास ले गए, जो काइफा का ससुर था और महायाजक रह चुका था। हन्ना ने यीशु को काइफा के पास भेजा। चारों सुसमाचारों के अनुसार यीशु फिर पिलातुस के पास भेजा गया।

१४ : ५३ वास्तव में केवल एक महायाजक होता था। अतः अन्य लोग जो यहां महायाजक कहे गए हैं, महायाजकीय वंश के लोग हुए होंगे। संभव है कि **१४ : ५४** का संबंध वास्तव में पतरस की अस्वीकृति के साथ होना चाहिए। यह शीतकाल का समय था और ठंड थी। **१४ : ५५** में यह प्रश्न उठता है कि क्या यह महासभा की विधिवत् बैठक थी ? महासभा यहूदियों का सर्वोच्च न्यायालय थी, जिसके इकहत्तर सदस्य होते थे। इसकी सदस्य-संख्या में सदूकी, फरीसी और शास्त्री होते थे, और सभापति महायाजक होता था। ये अर्धवृत्त में बैठा करते थे, और रब्बियों के शिष्य भी सभा के संमुख बैठ सकते थे। महासभा की विधिवत् बैठक मंदिर के अंदर एक विशेष सभा-भवन में होती था, और केवल उस भवन में किए हुए निर्णय विधिवत् माने जाते थे। महासभा रात के समय या किसी बड़े पर्व में एकत्रित नहीं की जा सकती थी। साक्षियों से एक एक करके प्रतिप्रश्न किया जाता था, और यह अनिवार्य था कि प्रत्येक बात में साक्षियों की साक्षी संगत हो, नहीं तो वह मान्य नहीं थी। सभा के प्रत्येक सदस्य को पृथक पृथक अपना निर्णय देना पड़ता था। यदि मृत्युदंड का निर्णय था तो एक रात बीतने के बाद देना पड़ता था इस से पहले कि निर्णय कार्यान्वित किया जाए, ताकि महासभा को मन बदलने का अवसर दिया जाए। उपरोक्त बातों से स्पष्ट है कि यदि यीशु का विचार विधिवत महासभा की बैठक में हुआ तो बहुत बातों में महासभा ने अपने नियमों का उल्लंघन किया। बैठक रात को, महायाजक के घर हुई, मंदिर में नहीं। निर्णय तत्क्षण किया गया, आदि।

उपरोक्त तथ्यों के संबंध में अनेक भिन्न मान्यताएं हैं : (i) एक विचार यह है कि वास्तव में इतनी कार्यवाही रात को नहीं हुई, वरन् यह वर्णन अधिकतर कलीसिया द्वारा रचा गया ताकि यह प्रमाणित किया जा सके कि ख्रिस्त की मृत्यु के उत्तरदायी रोमी नहीं, यहूदी थे। (ii) अनेक की मान्यता यह है कि मरकुस में महासभा की विधिवत् बैठक का वर्णन नहीं वरन् अनियमित बैठक का वर्णन है। फिर प्रातःकाल विधिवत् बैठक हुई ताकि नियमानुसार निर्णय किया जाए। (iii) एक अन्य विचार यह है कि रात की बैठक वास्तव में अनियमित थी परंतु मरकुस उसको एक विधिवत् बैठक मानकर लिखता है। प्रातःकाल को विधिवत् बैठक हुई (जैसे लूका के वर्णन में है) और मरकुस ने उसके कुछ ब्योरों को रातकी बैठक के वर्णन में सम्मिलित किया। हमारे विचार में उपरोक्त (ii) या (iii) ठीक है। निश्चय नहीं हो सकता। परंतु इस मुकदमे की ऐतिहासिकता पर संदेह करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

किसी विचार में अभियुक्त व्यक्ति के विरुद्ध पर्याप्त साक्षी होना अनिवार्य था (व्य. १९ : १५)। यदि यह विधिवत् विचार था तो आश्चर्य की बात है कि ऐसे साक्षी तैयार नहीं किए गए जिनका साक्ष्य संगत हो। यीशु ने अवश्य कुछ ऐसे शब्द कहे होंगे जैसे पद ५८ में वर्णित हैं, परंतु विद्वान इस बात में एकमत हैं कि उस ने ठीक ठीक कहा, यह हमें ज्ञात नहीं है। मत्ती में "हाथ के बनाए हुए" और "जो हाथ का न बना हो" शब्द नहीं हैं। लूका में यह पूरा कथन ही नहीं है। तुलना कीजिए मर. १५ : २९; यू. २ : १९-२२; प्रे. ६ : १४ जहां इस कथन के भिन्न रूप पाए जाते हैं। संभव है कि "हाथ के बनाए हुए" और "जो हाथ का न बना हो" शब्द मिलाए गए हों, क्योंकि खिस्तियों में यह विचार साधारण हो गया था (प्रे. ७ : ४८; १७ : २४; इब्र. ९ : ११, २४)। ई. स. ७० में रोमियों ने मंदिर को ध्वस्त कर दिया। यह प्रकट नहीं किया गया है कि इस बात के प्रति साक्षियों का साक्ष्य क्यों असंगत था।

१४ : ६०-६२ यीशु मौन रहा। कदाचित कारण यह था कि समस्त कार्यवाही अवैध थी। महायाजक प्रयत्न कर रहा था कि यीशु किसी प्रकार अपने आप को अभियुक्त बना ले। १४ : ६१ में "तू" शब्द पर बल दिया गया है, कि मानो यीशु जैसे व्यक्ति का ख्रिस्त होना कल्पना से परे है। "परम धन्य" का अर्थ परमेश्वर है—यहूदी परमेश्वर के नाम का उच्चारण करना अनुचित मानते थे। अनेक विद्वानों की मान्यता के अनुसार "परम धन्य" का यूनानी मूल शब्द वह नहीं है जो प्रचलित था, अतः उन्हें इस प्रश्न की ऐतिहासिकता पर संदेह है। महायाजक के लिए "परम धन्य का पुत्र" ऐसे सार्थक शब्द नहीं थे जैसे मरकुस और उसके सुसमाचार के पाठकों के लिए थे। ख्रिस्ती "परमेश्वर-पुत्र" और "ख्रिस्त" (मसीह) को एक ही मानते थे, परंतु विद्वानों को निश्चय नहीं है कि यहूदियों की ऐसी मान्यता थी या नहीं। सहदर्शी सुसमाचारों में केवल यह स्थल है जहां यीशु स्पष्ट शब्दों में मान लेता है कि मैं ख्रिस्त हूं। मत्ती और लूका के समान स्थलों को देखिए, जहां वह उत्तर देता है, "तू ने आप ही कह दिया"। १४ : ६२ में "सर्वशक्तिमान की दाहिनी ओर बैठे" शब्द भ. ११० से हैं, और "मनुष्य का पुत्र" से "देखोगे" तक शेष शब्द दा. ७ : १३ पर आधारित हैं। इस स्थल में यीशु के संबंध में तीन पदवियों का प्रयोग किया गया है, परमेश्वर-पुत्र, ख्रिस्त और मानव-पुत्र। उसके "आकाश के बादलों के साथ आने" का अर्थ साधारणतः उसका पृथ्वी पर पुनरागमन माना जाता है, परंतु अनेक विद्वानों की मान्यता के अनुसार उसका परमेश्वर के साथ आकाश में विराजमान होना अभिप्रेत है, क्योंकि वे कहते हैं कि दा. ७ : १३ में "मनुष्य के संतान सा कोई" परमेश्वर के पास पहुंचता है, जो आकाश में है, पृथ्वी पर नहीं। अन्य विद्वान दावा करते हैं कि दा. ७ : २२ के अनुसार परमेश्वर पृथ्वी पर उतरता है, और यह संपूर्ण दृश्य पृथ्वी पर है। इस व्याख्या के आधार पर हम कह सकते हैं कि मर. १४ : ६२ में मानव-पुत्र के पुनरागमन का उल्लेख है।

१४ : ६३ आपत्ति की गई है कि यहूदियों की परिभाषा के अनुसार जो कुछ यीशु ने कहा था, वह निंदा नहीं था। परंतु चाहे नियमानुसार निंदा हुई या नहीं, ऐसा प्रतीत

होता है कि अधिकारी इसे निंदा मानना चाहते थे। वास्तव में निंदा की परिभाषा अधिक विस्तृत की गई थी, और यीशु के शब्द निंदा गिने जा सकते थे। निर्णय करने में महासभा के सदस्य सब एकमत थे। यूनानी मूल शब्दों का अर्थ अनिवार्य रूप से यह नहीं है कि यह निर्णय विधिवत् न्यायालय का था। साधारण मान्यता है कि १४ : ६५ एक अलग परंपरा पर आधारित है—लूका में (२२ : ६३-६५) वह अन्य स्थल में है, और यीशु के पकड़ने वाले उससे यह व्यवहार करते हैं। मरकुस में ऐसा प्रतीत होता है कि इस अत्याचार में महासभा के सदस्य भाग लेते हैं, क्योंकि पद के अंत में सेवकों के उसे मारने का अलग वर्णन है (हिं. सं.। हिं. प्र. में वे प्यादे कहलाते हैं)। इस प्रकार मानव-पुत्र का निरादर हुआ।

(ख) पतरस की अस्वीकृति १४ : ६६-७२
(मत्त. २६ : ६९-७५; लू. २२ : ५६-६२)

मत्ती मरकुस का अनुसरण करता है परंतु वह कुछ ब्योरों को छोड़ देता है। वह यीशु को नासरी नहीं वरन् गलीली कहता है। लूका में ये दोनों नाम नहीं हैं। मरकुस के अनुसार वही लौंडी दूसरी बार पतरस से प्रश्न पूछती है, परंतु मत्ती के अनुसार वह दूसरी थी, और लूका में यह एक मनुष्य था (पतरस का उत्तर है, "हे मनुष्य, मैं नहीं हूं")। तीसरी बार मत्ती और मरकुस के अनुसार पूछनेवाले वे हैं "जो पास खड़े थे", परंतु लूका में वह "एक और मनुष्य" था। लूका पतरस के धिक्कारने और शपथ खाने का वर्णन नहीं करता। वह यह तथ्य मिला लेता है कि पतरस के तीसरी बार अस्वीकृति करने के पश्चात् "प्रभु ने घूमकर पतरस की ओर देखा"। मत्ती और लूका में मुर्ग के दूसरी बार बांग देने का वर्णन नहीं है।

साधारण मान्यता है कि इस अंश की सामग्री पतरस से ही प्राप्त हुई होगी। इस में पतरस का विश्वासघात ऐसा स्पष्ट प्रकट किया गया है कि यह कोई कल्पित कहानी नहीं हो सकती। पतरस पूर्ण रूप से अस्वीकार करता है कि मैं उस मनुष्य को जानता ही नहीं। प्रश्न पूछनेवाली केवल लौंडी है (हिं. सं. और बुल्के "दासी", ध. ग्र. "नौकरानी") तो भी पतरस के उत्तर से ज्ञात होता है कि वह बहुत ही घबराया हुआ था। ऐसा प्रतीत होता है कि उस ने प्रभु की चेतावनी पर गंभीरता से ध्यान नहीं दिया था। संभाव्यत: मरकुस का वर्णन मानना चाहिए, अर्थात् कि दूसरा प्रश्न पूछनेवाली वही दासी थी और पास खड़े हुए लोगों ने तीसरी बार प्रश्न किया। १४ : ६८ के अंत में "और मुर्ग ने बांग दी" अनेक हस्तलेखों में नहीं है। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि ये शब्द मूल पाठ में नहीं थे। परंतु १४ : ७२ में "दूसरी बार" और "दो बार" शब्दों को सम्मिलित करने के लिए हस्तलेखों की साक्षी बहुत प्रबल है, अत: संभाव्यत: १४ : ६८ में भी उक्त शब्दों को मूल पाठ में सम्मिलित मानना चाहिए। दूसरी बार दासी ने यह बात अन्य लोगों के सुनने में कही, और वही लोग थे जिन्हों ने पतरस के गलीली उच्चारण को पहचानकर निश्चय किया कि वह यीशु का अनुयायी था। पतरस पर तीव्र घबराहट

छा गई क्योंकि वह शपथ खाता है कि वह "उस मनुष्य को" नहीं जानता। इस समस्त प्रश्नोत्तर में वह यीशु का नाम अपने होंठों पर नहीं लेता। यदि सचमुच मुर्ग ने दो बार बांग दी तो पतरस ने पहली बार या तो उसको सुना ही नहीं या उस पर ध्यान नहीं किया। अंत में उसको प्रभु की भविष्यवाणी स्मरण आई। अंतिम वाक्य में "इस बात को सुनकर" संभाव्यतः ठीक अनुवाद नहीं है। विद्वान यूनानी शब्द का अर्थ ठीक से नहीं जानते, परंतु कदाचित वह एक मुहाविरा है जिसका अनुवाद हिं. सं., ध. ग्रं. और बुल्के में इस प्रकार है, "वह फूट-फूटकर रोने लगा"। मत्ती और लूका ने इसको ऐसा समझा और अन्य यूनानी शब्दों में इसी को व्यक्त किया (मत्त. २६ : ७५; लू. २२ : ६२)।

मरकुस के काल की कलीसिया के लिए इस वर्णन से यह प्रोत्साहन था कि यद्यपि पतरस ने इस बुरे ढंग से यीशु को अस्वीकार किया तथापि कालांतर में वह संभलकर साहसपूर्वक सुसमाचार प्रचार करता रहा और उस ने प्रबल साक्षी दी। अतः वे जो किसी काल में भी विश्वासघात करते हैं, आशा कर सकते हैं कि उनको भी संभल जाने की सामर्थ्य मिलेगी।

(ग) पिलातुस के संमुख यीशु का विचार १५ : १-१५
(मत्त. २७ : १, २, ११-२६; लू. २३ : १-४, १७-२५)

मत्ती मरकुस के वर्णन में केवल शाब्दिक परिवर्तन करता और कुछ बातें जोड़ता है। उदाहरणार्थ मत्त. २७ : १७ मरकुस १५ : ९ से भिन्न है। मत्ती २७ : १९, पिलातुस की **पत्नी** के स्वप्न के विषय में, और २४, २५ पिलातुस के अपने हाथ धोने के विषय में, केवल मत्ती में हैं। लूका का वर्णन बहुत अंशों में भिन्न है। उसके अनुसार यीशु का विचार प्रातःकाल ही हुआ, और यहां वह आरंभ में ही बताता है कि यहूदियों के अधिकारियों ने पिलातुस के सामने यीशु पर अभियोग लगाया कि वह कैसर को कर देने से मना करता और अपने आप को ख्रिस्त राजा कहता है। लूका मरकुस के १५ : ४, ५ और ६-१० के अधिक भाग को छोड़ता है। लूका के २३ : ४, ५ और २२ में इस तथ्य पर बल दिया गया है कि पिलातुस ने यीशु में कुछ दोष नहीं पाया। लूका २३ : ६-१६ में हेरोदेस के सामने प्रतिप्रश्न है, जो अन्य सुसमाचारों में वर्णित नहीं है।

१५ : १ यदि मरकुस का वर्णन विश्वसनीय है तो अनुमान लगाना पड़ता है कि महासभा प्रातः काल इस कारण एकत्रित हुई कि रात के निर्णय को वैध किया जाए। अनेक टीकाकार मानते हैं कि वास्तव में महासभा की बैठक प्रातःकाल ही हुई, जैसे लूका के वर्णन में है, और मर. १४ : ५५-६५ किसी अन्य स्रोत से यहां मिलाया गया है। विद्वानों में "सलाह करके" के मूल यूनानी शब्दों के अर्थों के संबंध में विवाद है कि इन शब्दों का अर्थ महासभा की बैठक हो सकता है अथवा नहीं। हमारे विचार में संभाव्यतः रात को अवैध बैठक हुई, और फिर प्रातःकाल दूसरी बैठक हुई, जहां निर्णय वैध किया गया। इस में भी अनेक बातें अवैध थीं, क्योंकि यह पर्व का दिन था, निर्णय एक दिन के पश्चात् नहीं वरन् तत्क्षण किया गया, आदि। यह नहीं समझना चाहिए कि अधिकारी सदा नियमानुसार कार्य करते थे।

पिलातुस ई. स. २६-३६ यहूदिया का राज्यपाल था। योसेपस और अन्य लेखक उसकी क्रूरता की साक्षी देते हैं। उसका वर्णन "पृष्ठभूमि" पृ. ५०-५१ में मिलता है। विद्वानों का विचार है कि पिलातुस का राज्यभवन अंतोनिया का गढ़ या हेरोदेस का महल था। १५ : २ में यह माना गया है कि यहूदियों ने पिलातुस को बताया था कि यीशु ने राजा होने का दावा किया था। यहूदी स्वयं उस पर ख्रिस्त बनने का दावा करने का दोष लगाते थे। यहां इस पद में इसका राजनीतिक पक्ष प्रस्तुत किया गया है। यीशु का उत्तर अनिश्चित है। १५ : ३ में यह नहीं बताया गया है कि दोष क्या थे। लूका २३ : २ में विशेष अभियोगों का वर्णन है (ऊपर देखिए)। १५ : ४, ५ से ज्ञात होता है कि पिलातुस ने पहचान लिया कि यीशु ऐसा व्यक्ति नहीं है जैसा यहूदी बता रहे हैं। यीशु के मौन के उल्लेख से यश. ५३ : ७ स्मरण आता है। कदाचित् यह उस समय यीशु के मन में था।

१५ : ६ इस प्रथा का वर्णन केवल यहां मिलता है, परंतु उस पर संदेह करने की कोई आवश्यकता नहीं है। १५ : ७, ८ अनेक टीकाकारों का विचार है कि कदाचित् यह भीड़ बरअब्बा के समर्थकों की थी। मत्त. २७ : १६, १७ के कुछ हस्तलेखों में उसका नाम यीशु बरअब्बा बताया गया है, अतः अनेक विद्वानों की मान्यता है कि यह ठीक है, और उनका विचार है कि मत्ती ने इसको मरकुस से लिया, इस कारण वह मरकुस के मूल पाठ में रहा होगा, और कालांतर में काटा गया क्योंकि "यीशु" एक विशेष पवित्र नाम बन गया। वैसे तो "यीशु" नाम यहूदियों में साधारण था। संभाव्यतः "ऊपर गई" का अर्थ यह है कि भीड़ सीढ़ी पर चढ़ गई, जहां पिलातुस बैठा था। पद ८ के अंत में फिर एक अपराधी को छोड़ने की प्रथा की ओर संकेत है। १५ : ९, १० पिलातुस व्यंग्य से यीशु को यहूदियों का राजा कहता है कि यहूदियों को छेड़े। "डाह से" का अर्थ यह है कि यहूदी अधिकारी यीशु से ईर्ष्या करते थे क्योंकि बहुत लोग उसके अनुयायी हो गए थे, जिस से अधिकारियों का अधिकार खतरे में था। अनेक टीकाकारों की मान्यता के अनुसार इस भीड़ में वे लोग नहीं थे जो यीशु के थोड़े समय पहले यरूशलेम में धूम धाम के साथ प्रवेश के अवसर पर उपस्थित थे। अन्य विद्वानों का विचार है कि यह वही भीड़ थी, परंतु उन के विचारों में यीशु के संबंध में परिवर्तन हो गया था। वास्तव में हम नहीं जानते कि कौन सा विचार ठीक है, क्योंकि हमारी जानकारी अपर्याप्त है। संभव है कि राजनीतिक दृष्टि से बरअब्बा यीशु से अधिक लोकप्रिय हो गया था क्योंकि वह बलप्रयोग से रोमियों को निकालना चाहता था, परंतु यीशु ऐसा करने को तैयार नहीं था। १५ : ११ महायाजक वास्तव में बरअब्बा का समर्थन नहीं वरन् यीशु का विरोध करना चाहते थे।

१५ : १२-१४ अनेक विद्वानों का विचार है कि पिलातुस ने रोमी राज्यपाल होते हुए यहूदियों के साथ ऐसा वार्तालाप नहीं किया होगा, परंतु संभव है कि उस ने व्यंग्य से ऐसा किया हो। भीड़ की प्रतिक्रिया पद ८ और ११ की तुलना में अधिक आवेग-पूर्ण है, क्योंकि अधिकारियों ने उन्हें उत्तेजित किया है। रोमी लोग निम्न वर्ग के अप-

राधियों को क्रूस का दंड देते थे। यह दंड प्राचीनकाल की अनेक जातियों में साधारण दंड था। **१५ : १४** से ज्ञात होता है कि पिलातुस यीशु को निरपराध मानता था। लूका और यूहन्ना इस तथ्य पर अधिक बल देते हैं। मत्ती इस स्थल पर पिलातुस के हाथ धोने का वर्णन जोड़ता है। यहां पिलातुस की दुर्बलता प्रकट हो जाती है। वह डरता था कि यदि मैं यीशु को छोड़ूं तो यहूदी मेरा बुरा कराएंगे। **१५ : १५** में पिलातुस का अंतिम विश्वासघात वर्णित है। उस ने हिं. सं. के अनुसार "जनसमूह को संतुष्ट करने की इच्छा से" यह किया। यह रोमी न्यायपरायणता का अच्छा उदाहरण नहीं है। सामान्य रूप से क्रूस पर चढ़ाने से पहले अपराधी को कोड़े लगाए जाते थे। कोड़े चमड़े के होते थे, और हड्डी या किसी धातु के टुकड़ों से जटित होते थे कि अपराधी को और भी अधिक कष्ट हो। अपराधी के कपड़े उतारे जाते थे कि पीठ नंगी हो जाए, वह झुका हुआ बांधा जाता था, और पीटे जाने पर रक्तपूर्ण और बुरी तरह घायल हो जाता था।

(घ) सैनिकों द्वारा उपहास १५ : १६-२०
(मत्त. २७ : २७-३१)

यहां थोड़े से परिवर्तन करते हुए मत्ती मरकुस का अनुसरण करता है। "बैंजनी वस्त्र" के स्थान पर "लाल वस्त्र" है, और यूनानी शब्द "वस्त्र" मरकुस के शब्द से भिन्न है। यह वह लबादा था जो रोमी सैनिक पहिनते थे। सैनिक यीशु के हाथ में एक नरकुल रखते हैं। सैनिकों का घुटने टेकना मरकुस की तुलना में मत्ती में अन्य क्रम के अनुसार है। लूका इस अंश को अपने सुसमाचार में सम्मिलित नहीं करता, परंतु हेरोदेस के सामने प्रतिप्रश्न के विवरण में यीशु का उपहास करने का संक्षिप्त वर्णन है।

१५ : १६ "प्रीतोरियुन" उस भवन का नाम होता था जिस में रोमी राज्यपाल रहता था, अतः बुल्के का अनुवाद, "राज्यपाल का भवन" ठीक है। यूनानी मूल में कोई शब्द नहीं है जिसका अनुवाद यहां "किला" किया गया है। हिं. सं. में केवल "प्रैतोरिउन" है। "सारी पलटन" का अर्थ २००-६०० सैनिक हो सकता है। वे यह जानकर कि यीशु राजा होने का दावा करता था उसका उपहास करते हैं। संभाव्यतः "बैंजनी वस्त्र" सचमुच सैनिक का वह लाल लबादा था जिसका उल्लेख मत्ती करता है (ऊपर देखिए)। बैंजनी वस्त्र राजकीय माना जाता है। "यहूदियों का राजा" तिरस्कार भरे शब्द हैं। यह पूर्ण दृश्य अपमान और उपहास का है। यह दंड का कोई भाग नहीं, केवल सैनिकों का मनोरंजन था। यू. १९ : २, ३ को भी देखिए।

(च) क्रूस १५ : २१-३२
(मत्त. २७ : ३२-४४; लू. २३ : २६-४३)

शमौन कुरेनी के विषय में मत्ती कुछ ब्योरों को छोड़ देता है। उसके अनुसार दाखरस में पित्त मिलाया हुआ था न कि मुर्र। वस्त्र बांटने के पश्चात् मत्ती यह बात जोड़ता है कि वे "वहां बैठकर उसका पहरा देने लगे"। वह क्रूसीकरण का समय नहीं बताता। २७ : ४० में "अपने आप को तो बचा" के पश्चात् वह ये शब्द जोड़ता है, "यदि

तू परमेश्वर का पुत्र है तो—"। वह मरकुस के १५ : ३२ के शब्दों को परिवर्तित करता और २७ : ४३ को जोड़ता है। लूका के २३ : २७-३२ पद केवल उसी सुसमाचार में हैं। लूका दो कुकर्मियों का वर्णन आरंभ में गुलगुता को चले जाने से पहले करता है। उस में "गुलगुता" नाम नहीं, केवल "खोपड़ी" है। कुकर्मियों का उल्लेख फिर २३ : ३३ में भी है, और पद ३४ में यीशु का महावाक्य है, "हे पिता उन्हें क्षमा कर, क्योंकि ये नहीं जानते कि क्या कर रहे हैं"। लूका आरंभ में मुर्र मिले दाखरस का वर्णन नहीं करता, परंतु उसके २३ : ३६ में सैनिक यीशु का उपहास करते और उसे सिरका देना चाहते हैं। २३ : ३९उ–४३ केवल लूका में हैं।

१५ : २१ प्रथा यह थी कि वह व्यक्ति जिसको क्रूस का दंड दिया जाता था अपने क्रूस की आड़ी लकड़ी को क्रूसीकरण के स्थान पर ले जाता था (देखिए बाइबल ज्ञानकोष पृष्ठ ११३)। यू. १९ : १७ के अनुसार "वह अपना क्रूस उठाए हुए उस स्थान तक बाहर गया"। संभव है कि यीशु उसको कुछ दूरी तक ले गया और फिर शमौन बेगार में पकड़ा गया। कुरेने उत्तर अफ्रीका में, यूनान के संमुख, स्थित था। "गांव से" (हिं. प्र.) ठीक अनुवाद है। "खेत से" (हिं. सं., ध. ग्रं., बुल्के) में यह विचार निहित है कि वह खेत में कार्य करके आ रहा था, परंतु यह अनुवाद ठीक नहीं है। यदि वह यहूदी था तो ऐसा कार्य पर्व के दिन करना निषिद्ध था। सिकंदर और रूफुस के उल्लेख से पता चलता है कि वे रोम में, जहां संभाव्यतः यह सुसमाचार लिखा गया, ख्रिस्ती थे। कदाचित् शमौन ख्रिस्ती हो गया था, पर यह अनुमान ही है। **१५ : २२ गुलगुता** अरामी शब्द है, जिसका अर्थ है, खोपड़ी। कदाचित् खोपड़ी के रूप का कोई टीला था, परंतु हम निश्चित रूप से नहीं जानते। **१५ : २३** यीशु ने दाखरस नहीं पिया। कदाचित् दाखरस बेहोश करनेवाला था, और यीशु पूर्ण रूप से सचेतन होकर इस पीड़ा को सह लेना चाहता था। **१५ : २४** में क्रूसीकरण का वर्णन अत्यंत संक्षिप्त है। सब लोग इस भयानक दंड से भली भांति परिचित थे। क्रूस भिन्न रूपों के होते थे, परंतु अधिकतर एक खंभा होता था जिस पर एक आड़ी लकड़ी लगाई जाती थी। कभी कभी खंभे के ऊपरी भाग को, T के रूप में, कभी कभी कुछ नीचे जैसे क्रूस साधारणतः माना जाता है। अपराधी के हाथ और पांव रस्सियों से बांधे जाते या कीलों से जकड़े जाते थे। कभी कभी केवल हाथों में कीलें ठोकी जाती थीं। सुसमाचारों में केवल यूहन्ना १९ : २५; २० : २०, २५ और २७ में कीलों का उल्लेख है। क्रूसित व्यक्ति बड़ी यंत्रणा का अनुभव करता था। उसके कपड़े आदि उनको मिलते थे जो उसे क्रूस पर चढ़ाते थे।

१५ : २५ सहदर्शी सुसमाचारों में से केवल मरकुस समय का उल्लेख करता है। यह "पहले पहर" (हिं. सं.) था, अर्थात् नौ बजे, परंतु यू. १९ : १४ के अनुसार वह "छटे घंटे के लग भग" हुआ, अर्थात् बारह बजे दो पहर को। ऐसा प्रतीत होता है कि इन दो सुसमाचारों में दो पृथक परंपराएं हैं। संभवतः यूहन्ना ने जान बूझकर वह समय बताया है जब मेम्ने वध किए जाते थे। कुछ टीकाकार मानते हैं कि मरकुस समयों को एक कृत्रिम आयोजन के अनुसार बताता है। यह भी संभव है कि दोनों लेखक समय

को "लगभग" बताते हैं, और ठीक समय कहीं इनके बीच में हुआ (देखिए "यूहन्ना रचित सुसमाचार-टीका", एम. आर. रॉबिन्सन, पृ. २०२-२०३)। **१५ : २६** दोषपत्र लगाना भी साधारण प्रथा थी। इस पद में, और मत्त. २७ : ३७; लू. २३ : ३८ और यू. १९ : १९ में दोषपत्र का शाब्दिक रूप भिन्न है, परंतु जो मरकुस में है, वह सब अन्य सुसमाचारों में भी सम्मिलित है। **१५ : २७** का स्पष्टीकरण पद २८ में किया गया है (यश. ५३ : १२ से उद्धृत)। परंतु विद्वान एकमत हैं कि **१५ : २८,** जो अनेक हस्त-लेखों में नहीं पाया जाता, मरकुस के मूल पाठ में नहीं था। यही बात लू. २२ : ३७ के मूल पाठ में पाई जाती है, जहां से वह मरकुस के कुछ हस्तलेखों में जोड़ा गया होगा।

ऐसा प्रतीत होता है कि शाब्दिक रूप से १५ : २९ वि. २ : १५ और भ. २२ : ७ पर आधारित है (सिर हिला हिलाकर), परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि यह वर्णन कल्पित है। यहां उसी अभियोग का उल्लेख है जो १४ : ५८ में भी है। लोगों का इस प्रकार यीशु का उपहास करना स्वाभाविक बात थी। जब अधिकारी भी उसका उपहास करते हैं (पद ३०-३२) तो वे भी व्यंग्यात्मक रूप से मान लेते हैं कि उस ने कुछ लोगों को बचाया अवश्य है। यदि वास्तव में उसे में ऐसी शक्ति थी तो होना चाहिए था कि वह अपने आप को भी बचा सके। अवश्य अधिकारियों के शब्द "इस्राएल का राजा" और "हम विश्वास करें" व्यंग्यपूर्ण हैं। यहां हम न केवल क्रूसित यीशु का वरन् अपमानित यीशु का भी चित्रण देखते हैं।

(छ) यीशु की मृत्यु १५ : ३३-४४

(मत्त. २७ : ४५-४६; लू. २३ : ४४-४९)

मत्ती मरकुस के समान है, परंतु वह इस वर्णन में २७ : ५१उ-५३ को, पुनरुत्थित लोगों के यरूशलेम में प्रवेश करने के संबंध में, जोड़ देता है। २७ : ५४ में सूबेदार का वर्णन कुछ भिन्न है, और स्त्रियों के वर्णन में (२७ : ५५, ५६) शाब्दिक अंतर है। शलोमी "जब्दी के पुत्रों की माता" कहलाती है। लूका में परदे के फट जाने का वर्णन अंधकार छा जाने के विवरण के पश्चात् ही है। यीशु की पुकार "हे मेरे परमेश्वर—" लूका के सुसमाचार में नहीं है। लू. २३ : ३६ में एक सैनिक यीशु को सिरका देना चाहता है। लू. २३ में यीशु मरते समय कहता है, "हे पिता मैं अपनी आत्मा तेरे हाथों में सौंपता हूँ"। सूबेदार के शब्द भिन्न हैं, "निश्चय यह मनुष्य धर्मी था"। अंत में स्त्रियों का उल्लेख है, परंतु उनके नाम नहीं बताए गए हैं।

१५ : ३३ पद २५ की व्याख्या को देखिए। इन दो पदों में, और पद १५ : ३४, ४२ और १६ : १ में समय का उल्लेख है। मरकुस के अनुसार यीशु छः घंटे क्रूस पर रहा, जो अपेक्षाकृत थोड़ा समय था। **१५ : ३४** यीशु के शब्द अरामी भाषा के हैं, जिन पर इब्रानी का कुछ प्रभाव हुआ है। संभाव्यतः यीशु स्वयं इब्रानी बोला, क्योंकि ये शब्द भ. २२ : १ से उद्धृत हैं। मत्ती में ये शब्द अधिकतर इब्रानी के अनुसार हैं। अपनी रचना-पद्धति के अनुसार मरकुस पाठकों के लिए यूनानी अनुवाद साथ ही प्रस्तुत करता है। भ. २२ : ७ का संकेत मर. १५ : २९ में है (सिर हिलाना) और १५ : २४ भ.

२२ : १८ से उद्धृत है। यह संकेत वस्त्र बांटने के संबंध में है। उपरोक्त तथ्यों के कारण अनेक विद्वानों की मान्यता है कि यह वर्णन ऐतिहासिक नहीं, वरन् भ. २२ के आधार पर रचा गया है, अतः उनका कहना है कि यीशु की उस पुकार को भ. २२ के संदर्भ में समझना चाहिए। यद्यपि इस भजन के आरंभ में उसका रचयिता स्वयं को परित्यक्त अनुभव करता है तथापि उसके अंत में वह संतोष और विजय व्यक्त करता है, अतः यीशु की इस पुकार में भी विजय की अभिव्यक्ति हुई है। परंतु अधिक टीकाकारों की मान्यता है कि यदि यीशु को किसी प्रकार से छोड़े जाने का अनुभव न होता तो यह कभी न लिखा जाता कि यह पुकार उसके मुंह से निकली। भ. २२ के उपरोक्त तीन पदों के उद्धरण के आधार पर यह कहना कि समस्त वर्णन एक कल्पित रचना है अनुचित है। क्या मरकुस के पाठक ऐसे संकेत को समझ लेते? हमें यह मानना चाहिए कि यीशु को परित्यक्त होने का अनुभव हुआ। इसका अर्थ यह नहीं है कि वास्तव में परमेश्वर पिता ने उसे छोड़ दिया था। तौ भी उस ने परमेश्वर से उस वियुक्ति का अनुभव किया जो पाप का परिणाम होता है, यद्यपि वह स्वयं निष्पाप था। पौलुस के शब्दों में, "वह जो पाप से अपरिचित थे, उनको परमेश्वर ने हमारे लिए पाप बना दिया कि हम उसके द्वारा परमेश्वर की धार्मिकता बन जाएं" (२ कुर. ५ : २१, हिं. सं.)।

१५ : ३५-३६ यदि यीशु भ. २२ : १ इब्रानी में बोला तब यह पूर्ण रूप से संभव है कि लोगों ने सोचा कि जब वह "एली" बोला तब वह "एलिय्याह" कह रहा था। यह भी संभव है कि अनेक ने ठीक से नहीं सुना था। कुछ विद्वानों का विचार है कि "एक" (३६) का अर्थ है, एक सैनिक, क्योंकि सिरका या 'खट्टी अंगूरी' (बुल्के) विशेष रूप से सैनिकों का पेय था। इन विद्वानों का दावा है कि एक रोमी सैनिक को पता नहीं हो सकता था कि एलिय्याह कौन है, अतः यह घटना ऐतिहासिक नहीं हो सकती। परंतु यह अनुमान ही है कि वह सैनिक था। यदि वह सैनिक था भी तो वह दूसरों की बात को (पद ३५) व्यंग्य से दोहरा सकता था। यह सिरका साधारण लोगों का सस्ता पेय था। यीशु ने प्यास बुझाने के लिए उसे पिया होगा। क्रूसित व्यक्ति को बहुत प्यास लगती थी। स्पंज देनेवाले में कुतूहल और दया का मिश्रण था।

अनेक विद्वानों की मान्यता है कि १५ : ३४ की पुकार भ. २२ के आधार पर **१५ : ३७** की पुकार का आशय व्यक्त करने के लिए रची गई। यह अधिक संभव प्रतीत होता है कि यू. १९ : ३० के समान पद ३७ में विजय की पुकार थी ("पूरा हुआ", अर्थात् मेरा कार्य पूरा हो गया)। यूनानी में "प्राण छोड़ दिया" एक ही शब्द है - यीशु की मृत्यु का विवरण एक ही शब्द में हुआ। हिं. सं. और बुल्के : उस ने "प्राण त्याग दिए"।

१५ : ३८ मंदिर में परदे पवित्र स्थान के सामने, और पवित्र स्थान और परमपवित्र स्थान के बीच में होते थे। यहां संभाव्यतः पवित्र स्थान और परमपवित्र स्थान के बीच का परदा अभिप्रेत है। कुछ टीकाकार मानते हैं कि सचमुच यह परदा फट गया। हमारा विचार है कि यह बात प्रतीकात्मक है। विशेष रूप से परमपवित्रस्थान में परमेश्वर की उपस्थिति मानी जाती थी, परंतु उस में केवल महायाजक, वर्ष में एक बार

प्रवेश कर सकता था। परदे के फट जाने का अर्थ यह है कि अब प्रत्येक व्यक्ति, ख्रिस्त की मृत्यु के कारण, परमेश्वर की उपस्थिति में प्रवेश कर सकता है। १५ : ३९ सूबेदार (हिं. सं. और बुल्के, "शतपति)" अयहूदी था, अतः जब उस ने कहा कि यीशु सचमुच परमेश्वर का पुत्र था तो ये शब्द ऐसे सार्थक नहीं थे जैसे यहूदियों के लिए होते। सूबेदार के कथन का अर्थ यह था कि यीशु दिव्य व्यक्ति है। अयहूदी लोग देवताओं और मनुष्यों में वह अंतर नहीं मानते थे जो यहूदी मानते थे। इस बात में अयहूदी अधिकतर कुछ अंशों में हिन्दुओं के समान थे। मरकुस और उसके पाठकों के लिए इन शब्दों में पूरा ख्रिस्तीय अर्थ भरा हुआ था। मरकुस ने ऐसे ही शब्दों से इस सुसमाचार को आरंभ किया था (१ : १)। क्रूस पर मरते हुए यीशु की अभिवृत्ति से शतपति बहुत प्रभावित हुआ।

१५ : ४०, ४१ दफनाने और जी उठने के वर्णनों की तैयारी स्वरूप हैं। **मरियम मगदलीनी** के संबंध में पद ४७; १६ : १; लू. ८ : २; यू. १९ : २५; २० : १; ११-१८ को देखिए। मगदला गलील की झील के पश्चिमी तट पर स्थित एक नगर था (मानचित्रावली पृ. ४४ को देखिए)। दूसरी मरियम पद ४७ में योसेस की माता, १६ : १ में याकूब की माता, और यू. १९ : २५ में क्लोपास की पत्नी कहलाती है। मत्त. २७ : ५६ में शलोमी "ज़ब्दी के पुत्रों की माता" कही गई है। लू. ८ : ३ में वर्णित है कि यीशु के अनुयायियों में अनेक स्त्रियां थीं जो "अपनी संपत्ति से उसकी सेवा करती थीं"।

(ज) यीशु का दफ़न १५ : ४२-४७
(मत्त. २७ : ५७-६१; लू. २३ : ५०-५६)

मत्ती इस वर्णन को संक्षिप्त करता है। वह तैयारी के दिन का उल्लेख नहीं करता, मरकुस के विवरण के स्थान पर यूसुफ को यीशु का शिष्य और धनी मनुष्य कहता है, और सूबेदार को बुलाने का उल्लेख पद ५४ में करता है। उसके अनुसार यह नई कबर यूसुफ की ही थी। लूका समय का उल्लेख नहीं करता। वह यूसुफ के संबंध में अधिक ब्योरेवर विवरण करता हुआ यह कहता है कि यीशु के क्रूसीकरण के संबंध में "उन्हों ने लोगों की योजना और कार्य में मत नहीं दिया था" (हिं. सं., लू. २३ : ५१)। उसके अनुसार उस कबर में कोई कभी नहीं रखा गया था। वह स्त्रियों के नाम नहीं बताता, और यह तथ्य जोड़ता है कि उन्हों ने सुगंधित वस्तुएं और इत्र तैयार किया।

१५ : ४२ सूर्यास्त होने पर सबत आरंभ होनेवाला था। सबत में ऐसे कार्य करना निषिद्ध था, अतः शीघ्रता से काम किया गया। **१५ : ४३** हमें ठीक से ज्ञात नहीं है कि अरिमतिया कहां स्थित था। "मंत्री" के मूल यूनानी शब्द का अर्थ "सभासद्" है, और, यद्यपि यह वह शब्द नहीं है जो साधारणतः यहूदी महासभा के सदहस्यों के लिए प्रयुक्त होता था तथापि विद्वान प्रायः एकमत हैं कि यहां इसका यही तात्पर्य है। हिं. सं. का अनुवाद अच्छा है, "परिषद् का प्रतिष्ठित सदस्य"। मरकुस के अनुसार वह "परमेश्वर के राज्य की बाट जोहता था", जिसका अर्थ यह है कि वह एक भक्त यहूदी था जो

आनेवाले ख्रिस्त की प्रतीक्षा कर रहा था। परंतु मत्ती के अनुसार वह यीशु का शिष्य था। व्यवस्था के अनुसार (व्य. २१ : २३) किसी शव को रात भर छोड़ देना अवैध था, विशेष रूप से सबत के दिन। **१५ : ४६** में हिं. सं. ठीक है, "मलमल की चादर मोल ली"। अनेक विद्वानों की मान्यता है कि यह फसह के पर्व का दिन नहीं हो सकता था, क्योंकि पर्व के दिन किसी वस्तु को मोल लेना निषिद्ध था। निस्संदेह साधारण रूप से ऐसा करना अवैध था, परंतु शव को रहने देना भी अवैध था, और संभाव्यतः ऐसी परिस्थिति के लिए विशेष प्रबंध था। यरूशलेम के आस पास लोग मृतकों को चट्टान में खुदी हुई कबरों में रखते थे, क्योंकि यह पर्वतीय प्रदेश था। पत्थर को लुढ़काने के लिए कई मनुष्यों की आवश्यकता हुई होगी। इस पत्थर के द्वारा चोरों और वन-पशुओं से सुरक्षा होती थी। **१५ : ४७** संभाव्यतः अगले अंश की तैयारी स्वरूप जोड़ा गया है।

(३) पुनरुत्थान १६ : १-२०

(क) स्त्रियां, रिक्त कबर और नवयुवक १६ : १-८

(मत्त. २८ : १-१०; लू. २४ : १-११)

मत्ती इस वर्णन को संक्षिप्त करता है। वह शलोमी और सुगंधित वस्तुओं का उल्लेख नहीं करता, और मरकुस के १६:३-५, पत्थर को लुढ़काने के विषय में, छोड़ देता है। इन पदों के स्थान पर मत्ती के २८ : २-४ में भूकंप और स्वर्गदूत का वर्णन है। मरकुस के अनुसार स्त्रियां यीशु का अभ्यंजन करने के लिए कबर पर आईं, परंतु मत्ती के अनुसार उनका अभिप्राय कबर को देखना था। मत्ती पतरस का पृथक उल्लेख नहीं करता, और कहता है कि स्त्रियां शिष्यों को बताने के लिए दौड़ीं, जो मरकुस के विपरीत है। मत्ती के २८ : ९, १०, जिनके अनुसार स्त्रियों की यीशु से भेंट होती है, केवल मत्ती में है।

लूका अंत में ही स्त्रियों के नाम बताता है, और शलोमी के स्थान पर योअन्ना का नाम लेता है। वह बताता है कि कबर के अंदर जाकर स्त्रियों को यीशु का शव नहीं मिला। एक नवयुवक के स्थान पर दो पुरुष उनको मिले। उनके शब्दों में भी अंतर है। लूका ने मरकुस के "वह तुम से पहले गलील को जाएगा" को "स्मरण करो कि कि उस ने गलील में रहते हुए तुम से कहा था" में परिवर्तित किया (पुनरुत्थान के विषय में)। लूका के अनुसार स्त्रियों ने सब कुछ "उन ग्यारह को और सब को" बताया, और शिष्यों ने अविश्वास किया।

१६ : १ इन नामों के संबंध में १५ : ४०, ४१ की व्याख्या को देखिए। लूका के अनुसार भी स्त्रियां सुगंधित वस्तुएं ले गईं, परंतु मत्ती के अनुसार वे कबर को देखने गईं (२८ : १)। यू. १९ : ४० के अनुसार निकोदेमुस और यूसुफ ने सुगंध द्रव्य रखे। संभव है कि दोनों वर्णन सत्य हों, स्त्रियां यह न जानते हुए कि ये वस्तुएं रखी गई थीं उनको ले गईं। **१६ : २** सब सुसमाचारों में सहमति है कि स्त्रियां प्रातःकाल कबर पर पहुंचीं। **१६ : ३, ४** में भूकंप होने का कोई संकेत नहीं है, न ही इसका कोई उल्लेख है कि पहरा

बैठाया गया था (मत्त. २७ : ६२-६६), जो पत्थर को लुढ़का सकते थे। मरकुस नहीं बताता कि यह पत्थर कैसे लुढ़काया गया, परंतु उसके वर्णन में यह अंतर्निहित है कि वह किसी अलौकिक शक्ति से लुढ़काया गया। **१६ : ५-६** विद्वान प्रायः एकमत हैं कि नवयुवक अलौकिक व्यक्ति था। मत्ती के अनुसार एक स्वर्गदूत, लूका के अनुसार दो पुरुष, और यूहन्ना के अनुसार दो स्वर्गदूत थे। मुख्य बात यह है कि स्त्रियों के लिए परमेश्वर की ओर से संदेश था। उन्हें विश्वास दिलाया गया कि परमेश्वर ने यीशु को उठाया था, मनुष्य उसके शव को नहीं ले गए थे (तुलना यू. २० : २, "वे मेरे प्रभु उठा ले गए और मैं नहीं जानती कि उसे कहां रखा है")। इस विश्वास के द्वारा वे इस अफवाह को रोक सकती थीं। **१६ : ७** यूहन्ना और लूका के अनुसार (यूहन्ना के २१वें अध्याय को छोड़) पुनरुत्थान के पश्चात् यीशु के दर्शन यरूशलेम में हुए, और मत्ती मरकुस में केवल मत्त. २८ : १६-२० में गलील में उसके दर्शन का उल्लेख है, अतः अनेक टीकाकारों की मान्यता है कि मर. १४ : २८ और १६ : ७ मूल पाठ में प्रक्षिप्त किए गए हैं। परंतु हस्तलेखों में कोई साक्षी नहीं मिलती कि ऐसा हुआ। सुसमाचारों के वर्णन संगत नहीं किए जा सकते। ऊपर बताया गया कि लूका ने किस प्रकार इस पद को परिवर्तित किया है। पतरस का विशेष उल्लेख, जो मत्ती और लूका छोड़ते हैं, संभाव्यतः उसके अस्वीकरण के कारण है। कोई कारण नहीं था कि शिष्य गलील को न लौटते। उनका लौटना स्वाभाविक बात थी। **१६ : ८** केवल मरकुस में है। मत्ती और लूका के विवरण इसके विपरीत हैं। स्त्रियों का भय श्रद्धापूर्ण था। ऐसा प्रतीत होता है कि इस स्थल में मत्ती और लूका मरकुस के विवरण को संशोधित करना चाहते हैं। यूनानी मूल पाठ में, हिन्दी के समान, इस पद और इस अंश के अंतिम शब्द "क्योंकि डरती थीं" हैं। यह वाक्य-विन्यास यूनानी भाषा में असाधारण है, अतः अनेक विद्वानों की मान्यता के अनुसार यह असंभाव्य है कि मरकुस ने इस वाक्य से अपना सुसमाचार समाप्त किया। **१६ : ९-२०** साधारणतः इस सुसमाचार का वास्तविक अंश नहीं माने जाते (नीचे देखिए)। यह भी असंभव प्रतीत होता है कि मरकुस का अभिप्राय यह था कि यीशु के दर्शन देने का कोई विवरण न लिखे। अतः निम्नलिखित तीन संभावनाएं हैं : (i) कि किसी कारण मरकुस अपने सुसमाचार को पूरा न कर सका। (ii) कि उसे पूरा करने से पूर्व वह मर गया। (iii) कि उस ने उसे पूरा किया और इस से पहले कि कुछ प्रतियां बनाई गईं उसका अंतिम भाग टूट गया और खो गया। इन अनुमानों के संबंध में हमें कुछ निश्चित जानकारी प्राप्त नहीं है।

(ख) परिशिष्ट। मरियम मगदलीनी, दो स्त्रियों तथा ग्यारह शिष्यों को दर्शन। स्वर्गारोहण १६ : ९-२०

लगभग सर्वत्र यह माना जाता है कि १६ : ९-२० इस सुसमाचार का वास्तविक अंश नहीं है। यह अंश दो प्रमुख हस्तलेखों में, कुछ अन्य हस्तलेखों और अनेक प्राचीन अनुवादों में भी पूर्णतः नहीं पाया जाता। अन्य प्राचीन हस्तलेखों में यह तथा एक पृथक संक्षिप्त समाप्ति भी साथ साथ पाई जाती हैं। चौथी शताब्दी के एक महत्वपूर्ण हस्तलेख

में पद १४ के पश्चात् एक लंबा सा अंश प्रक्षिप्त किया गया है। कलीसिया के धर्माचार्यों के लेखों में भी १६ : ९-२० का बहुत कम संकेत पाया जाता है।

अंतर्साक्ष्य से भी यही साक्षी मिलती है। शब्दावली और शैली मरकुस की नहीं हैं, और सामग्री १६ : १-८ से असंगत है। १६ : १-२० अन्य सुसमाचारों में सम्मिलित पुनरुत्थान के पश्चात् के विवरणों के सारांश के समान है। विद्वानों का एक सामान्य विचार यह है कि इन पदों में एक धर्मशिक्षात्मक सारांश पाया जाता है जो मरकुस रचित सुसमाचार में कालांतर में जोड़ा गया क्योंकि यह सुसमाचार अपूर्ण माना जाता था।

१६ : ९-११ की तुलना यू. २० : ११-१८ से कीजिए। पद ९ पद १ से भिन्न है, उन्हें एक ही सुसमाचार में संगत करना कठिन है। यूनानी शब्दावली मरकुस की नहीं है। मरियम में से दुष्टात्माओं के निकाले जाने का वर्णन लू. ८ : २ में है। इन सब पदों में शिष्यों के अविश्वास पर बल दिया गया है (पद १३ और १४ को देखिए)।

१६ : १२-१३ में लूका २४ : १३-३५ का संक्षेप है, परंतु मरकुस १६ : १३उ और लूका २४ : ३३-३५ में असंगति है। लूका के अनुसार वे ग्यारह विश्वास करते हैं, क्योंकि वे कहते हैं कि शमौन ने प्रभु को देखा है। **१६ : १४** की तुलना लू. २४ : ३६-४९ और यू. २० : १९-२३ से कीजिए। इन में शिष्य भोजन कर रहे हैं कि यीशु उनको दर्शन देता है। परंतु इन दो स्थलों में इस तथ्य का वर्णन नहीं है कि यीशु ने उन्हें उनके अविश्वास के कारण उलाहना दिया। "उलाहना देना" एक बहुत प्रबल यूनानी शब्द (ओनेदिज़ो) का अनुवाद है। इस पद के पश्चात् उपरोक्त क्षेपक एक हस्तलेख में पाया जाता है। एक विद्वान के विचार के अनुसार कदाचित यह क्षेपक उस उलाहना के प्रभाव को घटाने के अभिप्राय से जोड़ा गया।

१६ : १५-१६ मत्त. २८ : १८-२० के समान हैं, परंतु शब्दावली भिन्न है। "सारी सृष्टि" (हि. प्र.) के स्थान पर "प्रत्येक प्राणी" (हि. सं.) अच्छा अनुवाद है। कुछ विद्वानों की मान्यता के अनुसार यह असंभव है कि यीशु ने ऐसा आदेश दिया, क्योंकि यदि वह देता तो अयहूदियों को कलीसिया में सहभागी होने के संबंध में वादविवाद न होता (प्रे. १५ अध्याय)। परंतु ख्रिस्तियों की अपूर्णता को दृष्टि में रखते हुए हमें यह पूर्ण रूप से संभव प्रतीत होता है कि उन्हों ने इस आदेश के निहितार्थ को नहीं समझा। १६ : १६ से यू. ३ : १८; प्रे. २ : ३८; १६ : ३१, ३३ की तुलना कीजिए। यह द्रष्टव्य है कि इस पद के उत्तरार्द्ध में बपतिस्मा का उल्लेख नहीं है। यह नहीं कहा गया कि बपतिस्मा न पाना दोषी ठहराए जाने का कारण है।

१६ : १७-१८ "दुष्टात्माओं को निकालेंगे" के संबंध में प्रे. ८ : ७; १६ : १८; १९ : १२ को देखिए। "नई भाषा बोलेंगे" के लिये देखिए प्रे. २ : ४; १० : ४६; १९ : ६ आदि। "सांपों को उठा लेंगे" के लिये देखिए प्रे. २८ : ३-६। नया नियम में विष पान कर लेने का कोई वर्णन नहीं है। उपरोक्त बातों के संबंध में, "ख्रिस्तियों में आश्चर्य कर्म करने की शक्ति होने को ख्रिस्तीय धर्म की सत्यता का प्रमाण मान लेना द्वितीय शताब्दी के ख्रिस्तीय धर्मप्रमाणशास्त्र की एक विशेषता है" (नैन्हम)।

१६ : १९ स्वर्गारोहण के संबंध में लू. २४ : ५०-५३; प्रे. १ : २, ९ और १ तीम. ३ : १६ को देखिए। परमेश्वर की दाहिनी ओर बैठने का उल्लेख भ. ११० : १ पर आधारित है। यह पद प्रे. ७ : ५५, ५६; रो. ८ : ३४; इफ. १ : २०; कुल. ३ : १; इब्र. १ : ३; ८ : १; १० : १२; १२ : २; १ पत. ३ : २२ में भी उद्धृत है। इस भजन की यह बात यीशु पर ख्रिस्तीय धर्म के आरंभ से ही लगाई गई। इन शब्दों से यीशु का ईश्वरत्व स्पष्ट व्यक्त किया गया है, और उन में यह भी निहित है कि उस ईश्वरत्व में मानव होने का अनुभव भी सदा सम्मिलित होगा। **१६ : २०** की शब्दावली भी मरकुस के काल के पश्चात् की है, उदाहरणार्थ "हर जगह प्रचार किया", "चिन्हों के द्वारा जो साथ साथ चलते थे", "दृढ़ करता रहा"। प्रभु उनके साथ काम करता रहा - इसकी तुलना मत्ती रचित सुसमाचार के अंत में प्रतिज्ञा से कीजिए।

निम्नलिखित समाप्ति, जो अवश्य अप्रामाणिक है, थोड़े से हस्तलेखों में पाई जाती है : और जो आदेश उन्हें दिए गए थे उन्हों ने उनको संक्षेप में उन लोगों को सुनाया जो पतरस के साथ रहते थे। और इसके पश्चात् यीशु ने स्वयं उनको दर्शन देकर उनके द्वारा पूर्व से पश्चिम तक शाश्वत् उद्धार के पवित्र और अविनाशी संदेश को प्रसारित किया।

अध्याय ३

लूका रचित सुसमाचार

निर्देश—इस सुसमाचार की सामान्य बातों के लिए पढ़िए "नया नियम की भूमिका" पृष्ठ ७८-८३, १०६-११३।

प्राक्कथन—मरकुस रचित सुसमाचार की टीका का प्राक्कथन पढ़िए। उसकी अधिकांश सामग्री लूका पर भी लागू है। हम यह टीका इस मान्यता को स्वीकार करते हुए लिख रहे हैं कि चारों सुसमाचारों में से सब से पहले मरकुस लिखा गया, और कि लूका ने अपनी रचना में मरकुस रचित सुसमाचार का प्रयोग किया। उस सामग्री के लिए जो केवल मत्ती और लूका में पाई जाती है Q प्रतीक का प्रयोग किया गया है (देखिए "भूमिका", पृ. ८१)। अन्य सामग्री भी है जो केवल लूका में पाई जाती है।

यह तथ्य स्मरण रहना चाहिए कि लूका ने एक ही पुस्तक की दो जिल्दें लिखीं, वास्तव में यह सुसमाचार और "प्रेरितों के काम" एक ही लेख हैं। इस सुसमाचार को सही तौर पर समझने के लिए यह स्मरण रखना अनिवार्य है कि रचयिता का अभिप्राय दोनों जिल्दों में ही पूरा हो जाता है। लूका के उन अभिप्रायों और विशेष लक्षणों के अतिरिक्त जो "भूमिका" पृ. १०८-११२ में वर्णित हैं निम्नलिखित दो महत्वपूर्ण अभिप्राय भी खोज द्वारा प्राप्त हुए हैं : (१) लूका की युगांत-विद्या उन लोगों की विचारधाराओं का शोधक है जिनकी यह मान्यता थी कि परमेश्वर के राज्य का प्रारंभ यीशु के पुनरागमन के समय ही होगा। लूका इस तथ्य पर बल देता है कि परमेश्वर का राज्य स्थापित हो चुका है, उदाहरणार्थ १६ : १६ (मत्त. ११ : १२ की विषमता में, जहां इस कथन का रूप भिन्न है); १७ : २०-३७, विशेषकर पद २१। (२) इस सुसमाचार में यह विचार व्यक्त है कि यहूदियों ने अपने ख्रिस्त को अस्वीकार किया, अतः विजातीय लोगों में प्रचार हुआ, और पुराने इस्राएल के स्थान पर अब नया इस्राएल, अर्थात् कलीसिया है, जो उद्धार का संदेश वाहक है (उदाहरणार्थ २ : ३४, ३५; ४ : १६-३०; १० : ३१, ३२; १३ : ३४, ३५; २० : ४५-४७)।

लूका रचित सुसमाचार—रूपरेखा

प्राक्कथन १ : १-४

१ यूहन्ना बपतिस्मा-दाता और यीशु का जन्म एवं लड़कपन १ : ५—२ : ५२

(१) यूहन्ना बपतिस्मा-दाता के जन्म के संबंध में भविष्यवाणी १ : ५-२५

(२) यीशु के जन्म के संबंध में भविष्यवाणी १ : २६-३८
(३) मरियम–इलीशिबा मिलन, मरियम का स्तोत्र १ : ३९-५६
(४) यूहन्ना का जन्म, जकरयाह का गान १ : ५६-८०
(५) यीशु का जन्म २ : १-२०
(६) यीशु को नाम देना, मंदिर में अर्पित किया जाना, शमौन का गीत, हन्ना की साक्षी २ : २१-४०
(७) बालक यीशु का मंदिर में पाया जाना २ : ४१-५२

२ यीशु के सेवाकार्य के लिए तैयारी ३ : १—४ : १३

(१) यूहन्ना बपतिस्मा-दाता और उसका उपदेश, यूहन्ना और हेरोदेस, यीशु का बपतिस्मा ३ : १-२२ (मर. १ : १-११; मत्त. ३ : १-१७)
(२) यीशु की वंशावली ३ : २३-३८ (तुलना मत्त. १ : १-१७)
(३) यीशु की परीक्षा ४ : १-१३ (मर. १ : १२, १३ : मत्त. ४ : १-११)

३ गलील में यीशु का सेवाकार्य ४ : १४—९ : ५०

(१) यीशु के सेवाकार्य का आरंभ ४ : १४–४४

(क) गलील में सेवाकार्य का आरंभ और नासरत में अस्वीकरण ४ : १४-३० (मर. १ : १४, १५; ६ : १-६; मत्त. १२ : १२, १७; १३ : ४५-४८)
(ख) अशुद्ध आत्मा-ग्रसित और बहुत अन्य लोगों को स्वास्थ्य-दान, यहूदियों में प्रचार ४ : ३१-४४ (मर. १ : २१-३९; मत्त. ८ : १४-१७)

(२) शिष्यों को आह्वान ५ : १–६ : १६

(क) शमौन का बुलाया जाना ५ : १-११ (तुलना मर. १ : १६-२०; मत्त. ४ : १८-२२)
(ख) एक कोढ़ी को और एक अर्द्धांगी को स्वास्थ्य-दान ५ : १२-२६ (मर. १ : ४०-४५; २ : १-१२; मत्त. ८ : १-४; ९ : १-८)
(ग) लेवी को आह्वान, उपवास का प्रश्न ५ : २७-३९ (मर. २ : १३-२२; मत्त. ९ : ९-१७)
(घ) सबत-पालन का प्रश्न, सूखे हाथवाले को स्वास्थ्य-दान, बारह शिष्यों का चयन ६ : १-१६ (मर. २ : २३-२८; ३ : १-६, १३-१९; मत्त. १२ : १-१४; १० : १-४)

(३) मैदान प्रवचन ६ : १७-४९

(क) मैदान उपदेश और स्वास्थ्य दान, आशीर्वचन और अभिशाप ६ : १७-२६ (मर. ३ : ७, ८, १०; मत्त. ४ : २४, २५; ५ : ३, ४, ६, ११, १२)
(ख) शत्रुओं से प्रेम ६ : २७-३६ (मत्त. ५ : ३९-४२, ४४-४८; ७-१२)
(ग) दूसरों पर दोष लगाना, वृक्ष और फल, सुनना और करना ६ : ३७-४९

(मत्त. ७ : १-५; १५ : १४; १० : २४, २५; ७ : १६-२१; १२ : ३३-३५; ७ : २४-२७)

(४) गलील में सेवाकार्य के दृश्य ७ : १—८ : ३

(क) शतपति के दास को स्वस्थ करना ७ : १-१० (मत्त. ८ : ५-१०, १३)

(ख) नाईन की विधवा ७ : ११-१७

(ग) यूहन्ना बपतिस्मा-दाता का प्रश्न, यूहन्ना के संबंध में यीशु के शब्द ७ : १८-३५ (मत्त. ११ : २-११, १६-१९)

(घ) चरण अभ्यंजन, ऋणियों का दृष्टांत, सेवानिष्ट स्त्रियां ७ : ३६-८:३

(५) दृष्टांत और सामर्थ्य के काम ८ : ४-५६

(क) बीज बोनेवाले का दृष्टांत, दृष्टांतों का अभिप्राय, यीशु के वास्तविक नातेदार ८ : ४-२१ (मर. ४ : १-२५; मत्त. ३ : १-१३, १८-२३)

(ख) आंधी को शांत करना, गिरासेनी को स्वास्थ्य-दान ८ : २२-३९ (मर. ४ : ३५-५:२०; मत्त. ८ : २३-३४)

(ग) याईर की पुत्री और रक्तस्राव से पीड़ित स्त्री ८ : ४०-५६ (मर. ५ : २१-४३; मत्त. ९ : १८-२६)

(६) यीशु और बारह शिष्य ९ : १—५०

(क) बारह का भेजा जाना, यीशु के प्रति हेरोदेस के विचार, पांच सहस्र को भोजन कराना ९ : १-१७ (मर. ६ : ७-१६, ३०-३४; मत्त. ९ : ३४; १० : १; ९-११, १४; १४ : १, २, १३-२१)

(ख) पतरस का स्वीकरण, मृत्यु एवं पुनरुत्थान-संबंधी प्रथम भविष्यवाणी, स्वार्थत्याग पर शिक्षा, यीशु का रूपांतरण ९ : १८-३६ (मर. ८ : २७-३१, ३४-३८; ९ : १-८; मत्त. १६ : १३-१६, २०, २१, २४-२८; १७ : १-४, ८)

(ग) अशुद्ध आत्मा-ग्रसित बालक, मृत्यु की द्वितीय भविष्यवाणी, महान कौन है ९ : ३७-५० (मर. ९ : १४-२०, २५, २७, ३०-३७; मत्त. १७ : १४-१९, २२, २३; २८ : १-३ पू., ५)

४ यरूशलेम के मार्ग में ९ : ५१—१९ : २७

(१) प्रचार और प्रतिक्रिया ९ : ५१–१० : ३७

(क) सामरी यीशु को अस्वीकार करते हैं, शिष्य बनने की शर्तें ९ : ५१-६२ (मत्त. १ : १९-२२)

(ख) बहत्तर का भेजा जाना १० : १-१६ (मत्त. ९ : ३७, ३८; १० : ७-१६; ११ : २१-२३; १० : ४०)

(ग) बहत्तर का लौटना, यीशु का धन्यवाद देना १० : १७-२४ (मत्त. ११ : २५-२७; १३ : १६, १७)

(घ) व्यवस्थाचार्य का प्रश्न, दयालु सामरी का दृष्टांत १० : २५-३७ (मर. १२ : २८-३१; मत्त. २२ : ३४-४०)

(२) प्रार्थना के संबंध में शिक्षा १० : ३८—११ : १३

(क) मरियम और मर्था, प्रभु की प्रार्थना १० : ३८—११ : ४ (मत्त. ६ : ९-१३)

(ख) आधी रात को मांगनेवाले का दृष्टांत, प्रार्थना का उत्तर ११ : ५-१३ (मत्त. ७ : ७-११)

(३) विरोधियों के संबंध में १२ : १४-५४

(क) यीशु और शैतान, अशुद्ध आत्मा का लौटना ११ : १४-२६ (मर. ३ : २२-२७; मत्त. १२ : २३-३०, ४३, ४५)

(ख) धन्य कौन है, चिन्ह ढूंढ़ने के विरुद्ध चेतावनी, प्रकाश और अंधकार ११ : २७-३६ (मत्त. १२ : ३८-४२; ५ : २५; ६ : २२, २३)

(ग) फरीसियों और शास्त्रियों की भर्त्सना ११ : ३७-५४ (मत्त. २३:४, ६, ७, १३, २३, २५-२७, २९-३६)

(४) शिष्यों के लिए यीशु की शिक्षा १२ : १-४८

(क) कपट के विरुद्ध, निर्भय विश्वास-घोषणा के लिए प्रबोधन १२ : १-१२ (मत्त. १० : २६-३३; १२ : ३२; १० : १९, २०)

(ख) लोभ के संबंध में चेतावनी, मूर्ख धनवान् का दृष्टांत १२ : १३-२१

(ग) चिंता-उन्मूलन, सदैव जाग्रत रहना १२ : २२-४८ (मत्त. ६ : २५-३३, १९-२१; २४ : ४३-५१)

(५) निर्णायक काल १२ : ४९—१३ : ९

(क) समय के लक्षण, वादी के साथ समझौता १२ : ४९-५९ (मत्त. १० : ३४-३६; १३ : २, ३; ५ : २५, २६)

(ख) हृदय-परिवर्तन या बिनाश, फलहीन अंजीर का वृक्ष १३ : १-९

(६) विविध कथन तथा घटनाएं १३ : १०—१९ : २७

(क) कुबड़ी को सबत के दिन स्वस्थ करना १३ : १०-१७ (तु. मत्त. १२ : ११, १२; लू. १४ : ५)

(ख) राई के दाने और खमीर के दृष्टांत, राज्य-प्रवेश से वंचित १३ : १८-३० (मर. ४ : ३०-३२; मत्त. १३ : ३१-३२; ७ : १३, १४; २५ : १०, १२; ७ : २२, २३; ८ : ११, १२; १९ : ३०; २०:२६)

(ग) यरूशलेम जाना अनिवार्य, यरूशलेम के लिए यीशु का प्रेम १३ : ३१-३५ (मत्त. २३ : ३७-३९)

(घ) जलोदर-पीड़ित को स्वस्थ करना, नम्रता पर शिक्षा १४ : १-१४

(मत्त. १२ : ११, १२; लू. १३ : १५; मत्त. २३ : १२; लू. १८:१४)

(च) भोज का दृष्टांत, आत्मत्याग १४ : १५-३५ (मत्त. २२ : १-१०; १० : ३७, ३८)

(छ) खोई हुई भेड़ और खोई हुई मुद्रा के दृष्टांत १५ : १-१० (मत्त. १८ : १२-१४)

(ज) उड़ाऊ पुत्र का दृष्टांत १५ : ११-३२

(झ) अधर्मी भंडारी का दृष्टांत, फरीसियों का कपट १६ : १-१५ (मत्त. ६:२४)

(ट) व्यवस्था और विवाह-विच्छेद, धनवान् मनुष्य और निर्धन लाजर का दृष्टांत १६ : १६-३१ (मत्त. ११ : १२, १३; ५ : १८, ३२; १९ : ९=मर. १० : ११, १२)

(ठ) पाप कराने, क्षमा और विश्वास करने के संबंध में, अयोग्य दास १७ : १-१० (मर. ९ : ४२; मत्त. १८ : ६, ७, १५, २१, २२; १७:२०)

(ड) दस कोढ़ियों को स्वास्थ्य-दान, परमेश्वर का राज्य १७ : ११-२१

(ढ) मानव पुत्र का दिन १७ : २२-३७ (मत्त. २४ : १७, १८, २६-२८, ३७-४१; १० : ३९; मर. १३ : १५, १६; मत्त. १६ : २५=मर. ८-२५=लू. ९:२४)

(त) अधर्मी न्यायाधीश और फरीसी तथा कर लेनेवाले के दृष्टांत १८ : १-१४ (मत्त. १८:४; २३:१२; लू. १४ : ११)

(थ) बच्चों को आशीर्वाद, धनवान् और शाश्वत् जीवन, मृत्यु की तीसरी भविष्यवाणी १८ : १५-३४ (मर. १० : १३-३०; मत्त. १९ : १३-२९; मर. १० : ३२-३४; मत्त २० : १७-१९)

(द) यरीहो में : अंधे को दृष्टिदान, जक्कई १८ : ३५:१९ : १० (मर. १० : ४६-५२; मत्त. २० : २९-३४)

(ध) मुद्राओं का दृष्टांत १९ : ११-२७ (मत्त. २५ : १४-३०)

५ यीशु यरूशलेम में १९ : २८—२१ : ३८

(१) यरूशलेम में प्रवेश, यरूशलेम के विध्वंस की भविष्यवाणी, मंदिर का परिष्करण १९ : २८-४८ (मर. ११ : १-११, १५-१९; मत्त. २१ : १-३, ६-१०, १२, १३;)

(२) यीशु के अधिकार के संबंध में प्रश्न, दाख उद्यान का दृष्टांत २० : १-१९ (मर. ११ : २७:१२ : १२; मत्त. २१ : ३३-४२, ४५, ४६; २२ : १-१०)

(३) कैसर को कर देने और पुनरुत्थान के प्रश्न २० : २०-४० (मर. १२ : १३-२७; मत्त. २२ : १५-३३)

(४) दाऊद-पुत्र, शास्त्रियों के विरुद्ध चेतावनी, विधवा की दमड़ी २० : ४१-२१ : ४ (मर. १२ : ३५-४४; मत्त. २२ : ४१-४५; २३ : १, ६, ७)

(५) मंदिर तथा यरूशलेम-विनाश, और युगांत २१ : ५-३८

(क) मंदिर के विनाश की भविष्यवाणी, प्रभु के आगमन के चिन्ह, विपत्तियों का प्रारंभ २१ : ५-१९ (मर. १३ : १-१३; मत्त. २४ : १-९, १४; १० : १७-२१)

(ख) यरूशलेम का विनाश, मानव-पुत्र का आगमन, जागरूकता की चेतावनी २१ : २०-३८ (मर. १३ : १४-२०, २४-३२; मत्त. २४ : १५-२२, २९-३६)

६ यीशु का अंतिम समय, विचार और क्रूसीकरण २२ : १—२३ : ५६

(१) यीशु के विचार से पूर्व की घटनाएं २२ : १-६२

(क) यीशु की हत्या का षड्यंत्र, प्रभु भोज की तैयारी २२ : १-१३ (मर. १४ : १, २, १०-१६; मत्त. २६ : २-५, १४-१९)

(ख) प्रभु भोज २२ : १४-२३ (मर. १४ : १७-२५; मत्त. २६ : २०-२९)

(ग) बड़प्पन का प्रश्न, पतरस के अस्वीकरण की भविष्यवाणी, दो तलवारें २२ : २४-३८ (मर. १० : ४२-४५; १४-२८, ३०; मत्त. २० : २५-२८, १९ : २८; २० : ३३, ३४)

(घ) गतसमने में, यीशु का बंदी होना, पतरस का अस्वीकरण २२ : ३९-६२ (मर. १४ : २६, ३२, ४३-४५, ६६-७२; मत्त. २६ : ३०, ३६-५८, ६९-७५)

(२) यीशु का विचार २२ : ६३—२३ : २५

(क) उपहास, महायाजक के संमुख और पिलातुस के संमुख यीशु का विचार २२ : ६३-२३ : ५ (मर. १४ : ६१-६५; १५ : १-५; मत्त. २६ : ६३-६८; २७ : १, २, ११-१४)

(ख) यीशु हेरोदेस को संमुख २३ : ६-१२

(ग) मृत्युदंड की आज्ञा २३ : १३-२५ (मर. १५ : ७, ११-१५; मत्त. २७ : २०, २६)

(३) क्रूसीकरण, मृत्यु, कबर में रखना २३ : २६-५६

(क) क्रूसीकरण २३ : २६-४३ (मर. १५ : २१-३२, ३६; मत्त. २७ : ३२-४४, ४८)

(ख) मृत्यु और कबर में रखा जाना २३ : ४४-५६ (मर. १५ : ३३, ३७-४०, ४२, ४३, ४६, ४७; मत्त. २७ : ४५, ५०, ५१पू., ५४, ५५, ५७-६१)

७ यीशु का पुनरुत्थान और दर्शन २४ : १-५३

(१) रिक्त कबर २४ : १-१२ (मर. १६ : १-८; मत्त. २८ : १-८)

(२) इम्माऊस के मार्ग में शिष्यों को दर्शन २४ : १३-३५
(३) यरूशलेम में शिष्यों को दर्शन, स्वर्गारोहण २४ : ३६-५३

लूका रचित सुसमाचार—टीका

निर्देश : जहां जहां लूका ने अपनी सामग्री मरकुस या Q से ली है वहां मरकुस और मत्ती की टीकाओं में इन अंशों की व्याख्या की गई है । उसको पढ़ना चाहिए। यहां केवल उन बातों पर विशेष ध्यान दिया गया है जो लूका में भिन्न रूप में है । उन बातों की, जो केवल लूका में ही पाई जाती हैं, अधिक विस्तार से व्याख्या की गई है ।

प्रस्तावना १ : १-४

हिं. सं. का अनुवाद श्रेष्ठ है, अतः उसे प्रस्तुत करते हैं :

१ अनेक लेखकों ने प्रयास किया है कि हमारे बीच में संपन्न हुई घटनाओं का विवरण प्रस्तुत करें, २ जैसा कि हमें उन से प्राप्त हुआ है जो आरंभ से ही प्रत्यक्षदर्शी और वचन के सेवक थे, ३ अतः हे थियुफिलुस महोदय, सब बातों का आरंभ से सावधानी पूर्वक अनुशीलन करने के पश्चात् मैं ने भी उचित समझा कि आपके लिए क्रमानुसार विवरण लिखूं ४ कि जिन बातों की शिक्षा आपको मिली है, उनकी सत्यता के संबंध में आप जान सकें ।

विद्वानों की सामान्य मान्यता के अनुसार यह संभाव्यतः लूका के संपूर्ण लेख, अर्थात् उसके सुसमाचार और "प्रेरितों के काम" की भी प्रस्तावना है । यह प्रस्तावना शास्त्रीय (Classical) यूनानी साहित्यिक शैली में लिखी गई, और समकालीन प्रचलित ढंग के अनुसार है । इसकी शैली इस सुसमाचार के शेष भाग की शैली से भिन्न है । शेष भाग में प्रचलित सामान्य हेलेनी यूनानी का प्रयोग किया गया है, और साथ ही सप्तति अनुवाद के मुहाविरों और विशिष्टताओं का मिश्रण भी है । लेखक को उच्च कोटि की साहित्यिक यूनानी पर अच्छा अधिकार था । उपरोक्त मिश्रण संभाव्यतः उसके स्रोतों में था ।

प्रस्तावना की निम्न-लिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए :

(१) इस प्रस्तावना से स्पष्ट है कि यह सुसमाचार और "प्रेरितों के काम" थियुफिलुस नामक व्यक्ति के लिए लिखे गए । "महोदय", या "श्रीमान्" का मूल यूनानी शब्द "क्रतिस्तस" सामान्यतः सरकारी पदाधिकारियों को संबोधित करने में प्रयुक्त होता था । परंतु वह किसी सम्मानित व्यक्ति पर भी लागू हो सकता था । अतः उसके प्रयोग से पता नहीं चलता कि थियुफिलुस रोमी पदाधिकारी था या केवल एक सम्मानित व्यक्ति था । पद ४ से ज्ञात होता है कि उस ने कुछ ख्रिस्तीय शिक्षा प्राप्त की थी । परंतु इस से भी यह स्पष्ट नहीं है कि वह ख्रिस्ती था या केवल ख्रिस्त धर्म में रुचि लेता लेता था । यह भी संभव है कि पद ४ का अनुवाद इस प्रकार हो, "कि जो बातें आपको सिखाई गई हैं, उनकी सत्यता के संबंध में आप जान सकें" । यूनानी शब्द का प्रयोग इस प्रकार प्रे. २१ : २१, २४ में ("सिखाया गया", यूनानी शब्द "कतेख़ेया") किया

गया है। इसका अर्थ यह है कि शत्रुओं ने थियुफिलुस को ख्रिस्त धर्म के संबंध में भ्रांत जानकारी दी थी, जिसका परिष्कार लूका करना चाहता था। अधिकांश टीकाकारों की मान्यता है कि यहां हि. प्र. और हिं. सं. के अनुवाद ठीक हैं। लूका का अभिप्राय थियुफिलुस की जानकारी का संशोधन करना नहीं, उस जानकारी की वृद्धि करना था। फिर भी इस सुसमाचार में संकेत हैं कि लूका ज्ञानवाद-मिश्रित शिक्षा का खंडन करना चाहता था।

(२) इन पदों से यह भी स्पष्ट है कि अपने लेख को संकलित करने में लूका ने ऐसे स्रोतों का प्रयोग किया, जो संभाव्यत: लिखित और मौखिक भी थे। इन स्रोतों में मरकुस रचित सुसमाचार अवश्य सम्मिलित था ("भूमिका" के उपरोक्त स्थलों में देखिए)। इसका अर्थ यह नहीं है कि लूका ने उन "अनेक लेखकों" के प्रयासों को ग़लत समझा, किंतु यह कि वे अपूर्ण थे। लूका ने उन स्रोतों का "सावधानी पूर्वक अनुशीलन" किया, अर्थात् उसने पूर्ण अनुसंधान करके कुछ सामग्री को अपने सुसमाचार में सम्मिलित किया, अन्य सामग्री को छोड़ दिया। यह अनुशीलन "आरंभ से", अर्थात् ख्रिस्त-धर्म की प्रारंभिक अवस्था से, था। परिणामिक विवरण "क्रमानुसार" था। अनेक टीकाकारों की मान्यता के अनुसार इसका अर्थ "कालक्रमानुसार" है, परंतु यह अधिक संभव है कि यह क्रम सैद्धांतिक है, क्योंकि लूका का कालक्रम मरकुस की अपेक्षा अस्पष्ट है।

(३) इस प्रस्तावना में लेखक सुसमाचार की ऐतिहासिकता पर बल देते हुए लिखता है कि उसके मूल स्रोत "आरंभ से प्रत्यक्षदर्शी और वचन के सेवकों" की साक्षी पर आधारित थे। लूका स्वयं प्रत्यक्षदर्शी नहीं था, परंतु वह विश्वास दिलाता है कि जो बातें उस ने संकलित करके लिखी थीं वे प्रत्यक्षदर्शी लोगों की साक्षी पर आधारित थीं।

इस प्रस्तावना से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि धर्म-शास्त्र की "ईश्वरीय-प्रेरणा" की अवधारणा में यह विचार निहित नहीं है कि उसके लेखक निष्क्रिय साधन थे। लूका मानव था, जिस ने परिश्रम करके अपने लेखों को रचा। उस ने सामान्य मानवीय पद्धतियों का प्रयोग किया। परमेश्वर ने उसे अलौकिक रूप से साधारण मानवीय त्रुटियां करने से नहीं बचाया। तो भी उसके लेख सही मानों में ईश्वर-प्रेरित हैं।

१ यूहन्ना बपतिस्मा-दाता और यीशु का जन्म एवं लड़कपन १ : ५—२ : ५२

इस खंड के संबंध में मत्त. १ : १८-२५ की व्याख्या के अंतिम तीन पैरा और २ : १-१२ की व्याख्या का पहला पैरा पढ़िए।

इन पहले अध्यायों में, प्रस्तावना की विषमता में, इब्रानी और अरामी मुहाविरों का बहुत प्रभाव है। या तो लूका के स्रोत अरामी भाषा में लिखे गए थे, और लूका ने सप्तति अनुवाद का प्रयोग करके उनका अनुवाद किया, या उसको यह सामग्री ऐसी अरामी-प्रभावित यूनानी भाषा में मिली। यह दूसरी विचार-धारा अधिक संभाव्य है, क्योंकि हम नहीं जानते कि लूका को अरामी और इब्रानी आती थी या नहीं। यदि वह सूरियावाले अंताकिया का था तो संभवत: वह अरामी भाषा जानता था। यदि वह

अयहूदी था (देखिए कुल. ४ : ११, १४) तो संभाव्यतः उसे इब्रानी भाषा नहीं आती थी। यीशु और यूहन्ना के जन्म के वर्णनों में समानता है। १ : ५-२५ और १ : २६-३८ की तुलना (यीशु और यूहन्ना के जन्मों के संदेश); १ : ५७-८० और २ : १-२० की तुलना (यूहन्ना और यीशु के जन्म); तथा १ : ३९-५६ और २ : २१-४० की तुलना (मरियम का इलीशिबा के पास जाना और यीशु का मंदिर में समर्पण आदि) कीजिए। इस खंड के विचारों और उसकी भाषा पर सप्तति अनुवाद में इसहाक और शिमशोन के जन्मों के वर्णनों का प्रभाव हुआ है (उ. १७ : १५-१९; १८ : १-१५; न्य. १३ : १-२४)।

(१) यूहन्ना बपतिस्मा-दाता के जन्म के संबंध में भविष्यवाणी १ : ५-२५

१ : ५—तुलना कीजिए मत्त. २ : १। हेरादेस राजा के संबंध में मत्त. २ : १ की व्याख्या को पढ़िए। अबिय्याह का उल्लेख १ इ. २४ : १० में है। याजक चिट्ठी डालने से (पद ९) मंदिर में पारी पारी सेवा करते थे, परंतु याजक बहुत थे, और जीवन में एक ही बार उनको अवसर मिलता था। बहुत याजक सेवा करने से रह जाते थे। इस प्रकार सेवा करना बड़े गौरव की बात मानी जाती थी। **१ : ६** का अर्थ यह है कि जकरयाह और इलीशिबा दोनों यहूदी व्यवस्थानुसार आचरण करते थे। **१ : ८-१०**—यह सेवा यरूशलेम के मंदिर में होती थी। अनेक याजक यरूशलेम में ही रहते थे (१ : ३९)। धूप-दान प्रति दिन दो बार, प्रातःकाल को और संध्या को (नि. ३० : ७, ८—देखिए "बाइबल ज्ञानकोश", "धूप") होता था। इस उपासना में याजक परमेश्वर के सामने लोगों का प्रतिनिधि माना जाता था। जो लोग उपासना करने आते थे वे मंदिर में आते थे परंतु पवित्र स्थान में प्रवेश नहीं करते थे। याजक धूप-दान करके बाहर आकर उपासकों को आशिष देता था।

१ : ११-१८ में स्वर्गदूत का संदेश है। स्वर्गदूत परमेश्वर के संदेशवाहक माने जाते थे। बाइबल में केवल दो स्वर्गदूतों के नाम बताए गए हैं, जिब्राईल (पद १९; दा. ८ : १६ आदि) और मीकाईल (दा. ९ : १३; यहू. ९ आदि)। कालांतर में, अप्रामाणिक लेखों में अनेक अन्य नाम भी प्रस्तुत हैं। मौलिक रूप से स्वर्गदूत परमेश्वर की सक्रियता और संदेश का प्रतीक हैं। अपने को परमेश्वर की उपस्थिति में पाकर जकरयाह घबरा गया। **१ : १३** से अनुमान लगाना पड़ता है कि जकरयाह ने अपने लिए भी प्रार्थना की थी। इस पद की तुलना न्य. १३ : २५ से कीजिए। **१ : १४**—इस सुसमाचार में आनंद और हर्ष का बहुत उल्लेख है। यह आनंद का विशेष अवसर था क्योंकि लंबे काल के बाद इस्राएल में एक नबी उपस्थित हुआ था। **१ : १५**—तुलना कीजिए न्य. १३ : ७, जहां वर्णित है कि शिमशोन "नजीर" होगा। "नजीर" की परिभाषा गि. ६ : १-८ में है। नजीर के लिए मदिरा न पीने और बाल न कटवाने की आज्ञा थी। बाल न कटवाने का उल्लेख यहां नहीं है, अतः हमें ज्ञात नहीं है कि यूहन्ना नजीर था या नहीं। मदिरा पीने के स्थान पर यूहन्ना पवित्र आत्मा से परिपूर्ण है (इफ. ५ : १८)। उसका परमेश्वर के साथ निकट संबंध था। **१ : १७** में स्वर्गदूत के शब्द

मल. ३ : ८ और ४ : ५, ६ पर आधारित हैं। इन स्थलों के कारण यहूदियों की मान्यता थी कि प्रतिज्ञात ख्रिस्त के प्रकट होने से पहले एलिय्याह फिर आएगा। सहदर्शी सुसमाचारों के अनुसार यूहन्ना में यह बात पूरी हुई। इसके संबंध में मर. ६ : १५; ६ : ११-१३ और मत्त. ११ : १४ की व्याख्या पढ़िए। इस पद में (१७) मत्त. ११ : १४ और मर. ६ : १३ की यह बात नहीं है कि यूहन्ना एलिय्याह है, किंतु यह कि वह "एलिय्याह की आत्मा और सामर्थ्य में होकर चलेगा"। "उसके आगे" का अर्थ "परमेश्वर के आगे" है (वह मार्ग को मेरे आगे सुधारेगा", मल. ३ : १)। इस पद में ख्रिस्त के आने की तैयारी में बपतिस्मा-दाता का कर्तव्य मलाकी के शब्दों में भली भांति व्यक्त किया गया है।

१ : १८-२३ पद १८ में जकरयाह का प्रश्न अब्रहाम के प्रश्न के समान है (उ. १५ : ८)। उ. १७ : १७; १८ : १२ से भी तुलना कीजिए। १ : १९—पद ११ की व्याख्या को देखिए। ऐसा प्रतीत होता है कि लूका को दंड प्रकट करनेवाले आश्चर्यकर्मों में विशेष रुचि थी (प्रे. १ : १८; ५ : ५, १०; १२ : २३; १३ : ११)। **१ : २०-२३**—जकरयाह को पवित्र स्थान में विलंब हो गया था। जब वह बाहर आया तो वह प्रतीक्षा करनेवाले उपासकों को आशिष नहीं दे सका। इन बातों से लोगों ने ठीक अनुमान लगाया कि जकरयाह ने दर्शन देखा होगा।

१ : २४, २५—कदाचित् इलीशिबा इस कारण अपने को छिपाए रही कि वह वयोवृद्ध थी, और डरती थी कि कहीं उसकी हंसी न हो। अनेक टीकाकारों की मान्यता है कि पूर्वीय देशों में ऐसे डर की अभिवृत्ति नहीं रही होगी। उनका यह अनुमान है कि "पांच महीने" ऐतिहासिक तथ्य नहीं है, वरन् संपादकीय है, जिससे इस तथ्य का स्पष्टीकरण हो कि मरियम को इलीशिबा के गर्भवती होने का समाचार छठवें महीने में ही क्यों मिला (पद ३६)। भारत के समान इस्राएल में भी निःसंतान रहना स्त्री के लिए अत्यंत लज्जा की बात मानी जाती थी।

(२) यीशु के जन्म के संबंध में भविष्यवाणी १ : २६-३८

लूका और मत्ती के वर्णनों के पारस्परिक संबंध और इस विवरण के अनेक ब्योरों के विषय में मत्त. १ : १८-२५ की व्याख्या को पढ़िए।

१ : २६, २७—नासरत निचले गलील का एक छोटा नगर था जो गलील की झील से दक्षिण-पश्चिम की ओर लगभग २४ किलोमीटर दूर स्थित था। यीशु के काल से पहले उसका कोई विशेष महत्व नहीं था। मरियम और यूसुफ के परस्पर संबंध के विषय में मत्त. १ : १८-२५ की व्याख्या को देखिए। यह तथ्य प्रस्तुत है कि यूसुफ दाऊद के वंश से था। इस तथ्य की ओर पद ३२ में भी संकेत है। यीशु का दाऊद का वंशज होना यूसुफ के वंश के कारण ही है। अनेक टीकाकारों की मान्यता है कि यदि यीशु यसुफ का स्वाभाविक पिता नहीं था तो यीशु का वंश उस से नहीं माना जा सकता (३ : २३ और उसकी व्याख्या को देखिए)। परंतु मत्ती और लूका यीशु के

दाऊद-वंशी होने और उसके कुंवारी से जन्म लेने को मानते हैं। वे इन दो तथ्यों में विरोध नहीं मानते, जैसे अनेक आधुनिक आलोचक मानते हैं। इस से अनुमान लगाया जा सकता है कि इस परिस्थिति में यीशु का यूसुफ के वंश से माना जाना यहूदियों की प्रथा के विरुद्ध नहीं था।

१ : २८ हिं. सं. अच्छा है, "अनुग्रह की पात्र, आनंदित हो"। यह स्वर्गदूत का अभिवादन है। इस पद में मरियम के लिए आश्वासन के शब्द हैं, तो भी वह घबरा गई (पद २९)। **१ : ३०, ३१** में मरियम को यीशु के जन्म का संदेश दिया जाता है - तुलना कीजिए मत्त. १ : २०, २१ जहां ऐसा संदेश यूसुफ को दिया जाता है। दो बार (पद २८, ३०) अनुग्रह का उल्लेख है। परमेश्वर का अनुग्रह उसके असीम, क्रियात्मक और सृजनात्मक प्रेम का प्रकाशन है। १ : ३१ के शब्द लगभग वही हैं जो इश्माएल और इम्मानूएल के जन्मों के संबंध में उ. १६ : ११ और यश ७ : १४ में पाए जाते हैं। न्य. १३ : ३ से भी तुलना कीजिए। यश. ७ : १४ के संबंध में मत्त. १ : १८-२५ की व्याख्या को पढ़िए। उसी व्याख्या में "यीशु" नाम का अर्थ भी बताया गया है।

१ : ३२, ३३—"और प्रभु—" शब्दों से लेकर पद ३३ के अंत तक स्वर्गदूत के शब्द यश. ९ : ७; २ श. ७ : १२, १३, १६ के समान हैं। पद ३३ की तुलना मी. ४ : ७; दा. ७ : १४ से कीजिए। लूका के शब्द अवश्य इन स्थलों से प्रभावित हुए हैं। "परमप्रधान (परमेश्वर) का पुत्र" के संबंध में मर. १ : १ की व्याख्या को पढ़िए। यहूदी लोग दाऊद को आदर्श राजा मानते थे, अतः उनकी दृढ़ मान्यता थी कि प्रतिज्ञात ख्रिस्त उसके वंश से होगा, और उसके सिंहासन का उत्तरधिकारी होगा। पुराना नियम के उपरोक्त स्थलों में संकेत पाए जाते हैं कि प्रतीक्षित ख्रिस्त का राज्य साधारण पार्थिव राज्य नहीं होगा। "याकूब के घराने" का अर्थ "इस्राएली लोग" है। उसके उत्तराधिकारी कलीसिया के लोग हैं।

१ : ३४ से ज्ञात होता है कि मरियम ने स्वर्गदूत के शब्दों का यह अर्थ समझा कि उसका विवाह होने से पहले वह गर्भवती होगी। **१ : ३५** में "पवित्र आत्मा" और "परमप्रधान की सामर्थ" समानार्थक हैं। यहां पवित्र आत्मा के संबंध में वह पूर्ण अवधारणा नहीं है जिससे कलीसिया बाद में पिंतेकुस्त के समय से परिचित हुई। यहां पुराना नियम की अवधारणा ही निहित है। पुराना नियम में पवित्र आत्मा का अर्थ परमेश्वर की सृजनात्मक एवं क्रियात्मक शक्ति है। अतः अर्थ यह है कि बालक का जन्म परमेश्वर की सृजनात्मक एवं क्रियात्मक शक्ति से होगा। इस कारण वह विशेष अर्थों में परमेश्वर का पुत्र होगा। यहां लेखक यीशु ख्रिस्त, परमेश्वर के पुत्र के उद्भव का प्रतिपादन करने का प्रयास करता है और उसकी शिक्षा यह है कि पवित्र आत्मा के प्रभाव से यीशु उत्पन्न हुआ। "पवित्र" शब्द का मौलिक अर्थ "परमेश्वर को अर्पित" है।

१ : ३६-३८ केवल इसी स्थल पर यह उल्लेख है कि इलीशिबा मरियम की कुटुम्बिनी थी। इस रिश्ते के परिणाम स्वरूप यीशु और यूहन्ना नातेदार थे। एक

और परिणाम कदाचित यह है कि मरियम भी याजकीय वंशज थी (१ : ५)। परंतु यह अनुमान अनिवार्य नहीं है। १ : ३७ के शब्द उ. १८ : १४ से उद्धृत हैं। १ : ३८ में मरियम नम्रता से परमेश्वर की इच्छा को स्वीकार करती है। "दासी" उसी शब्द ("दूले", स्त्रीलिंग रूप में) का अनुवाद है जो नबियों के लिए प्रयुक्त होता था, और जिसको पौलुस ने अपनाया।

(३) मरियम-इलीशिबा मिलन; मरियम का स्तोत्र १ : ३९-५६

अनेक टीकाकार १ : ३९-४५ की ऐतिहासिकता पर संदेह करते हैं। कहा जाता है कि वह ७ : १८-२३ से असंगत है, क्योंकि इस अंश में यह विचार निहित है कि यूहन्ना को इलीशिबा से ज्ञात हुआ होगा कि आनेवाला ख्रिस्त यीशु हैं, अतः यह असंभव है कि वह उसके ख्रिस्त होने के संबंध में शंका करके पूछे कि "क्या आनेवाला तू ही है ?" (७ : १९)। ऐसी मान्यता को स्वीकार करनेवाले मत्त. ३ : १४, १५ और यू. १ : १९-३४ को भी ऐतिहासिक नहीं मान सकते। इसके संबंध में यह विचार भी प्रस्तुत किया जाता है कि यूहन्ना का प्रश्न इस लिए नहीं किया गया कि उसका विश्वास दुर्बल हो गया था वरन् इस कारण कि केवल उस समय वह पहचानने लगा कि कदाचित् ख्रिस्त यीशु ही है (मत्त. ११ : २-६ की व्याख्या को देखिए)। इन मान्यताओं की अपेक्षा हमें यह अधिक संभव प्रतीत होता है कि यूहन्ना ने पहचाना था कि यीशु अवश्य ख्रिस्त है, परंतु "ख्रिस्त" के संबंध में उसका बोध अपूर्ण था। यदि यह विचार ठीक है तो हम इस अंश की मौलिक ऐतिहासिकता को स्वीकार कर सकते हैं। मरियम का इलीशिबा के पास जाना स्वाभाविक था। इलीशिबा और मरियम के बीच वार्तालाप की शब्दावली ने ख्रिस्तीय परंपरा में बनी शब्दावली का रूप धारण कर लिया है।

१ : ३९—नगर का नाम अज्ञात है। संभाव्यतः वह यरूशलेम के निकट था। १ : ४१—गर्भ की इस अवस्था पर बच्चे का उछलना साधारण बात है। परंतु लूका स्पष्टतः इसको पवित्र आत्मा का प्रभाव मानता था। १ : ४२, ४३—इन पदों में यह विचार निहित है कि इलीशिबा अलौकिक रूप से जान गई कि मरियम पवित्र आत्मा से गर्भवती थी। इस में संभाव्यतः कालांतर का दृष्टिकोण प्रतिबिंबित है। विशेष रूप से यह असंभाव्य है कि इस समय इलीशिबा ने मरियम को "मेरे प्रभु की माता" कहा हो। परंतु यह पूर्णरूपेण सत्य और निश्चित है कि परवर्ती काल के दृष्टिकोण से यीशु अवश्य "प्रभु" था। १ : ४५—आरंभ में (पद ३४) मरियम स्वर्गदूत की बात पर विश्वास नहीं कर सकी, परंतु उसके पश्चात् उस ने संदेश को स्वीकार करके पूर्ण विश्वास किया। इलीशिबा दो बार मरियम को "धन्य" कहती है (४२, ४४)। यह ऐसी धन्यता नहीं है जिसके कारण मरियम आराध्य मानी जाए। इसका अर्थ यह है मानव होते हुए वह परमेश्वर की कृपापात्र है।

१ : ४६-५६—मरियम-गीत—पद ४६ के एक दो प्राचीन लातीनी हस्तलेखों और अनेक धर्माचार्यों के लेखों में मरियम के स्थान पर यह गीत इलीशिबा का है।

अधिकांश विद्वानों की मान्यता के अनुसार हस्तलेखों की साक्षी अत्याधिक मरियम के पक्ष में है। इस मान्यता को सामान्य स्वीकृति प्राप्त है कि यह गीत हन्ना के गीत (१ श. २ : १-१०) पर आधारित है। इन दो गीतों की तुलना कीजिए। परंतु इन दो गीतों की समानता अधिकतर शाब्दिक नहीं, वरन् विचार-धारा की है। मरियम का गीत पुराना नियम के उद्धरणों की माला है। यह असंभव नहीं है कि सचमुच मरियम ने, जो पुराना नियम से परिचित रही होगी, स्वयं ये शब्द कहे। परंतु यह गीत काव्य रूप में है, अतः संभाव्यतः वह परवर्ती काल में यहूदी-ख्रिस्तीय संदर्भ में रचा गया होगा। पुराना नियम के उद्धरण क्रमानुसार निम्नलिखित हैं :

गीत का पाठ	पुराना नियम
४६	१ श. २ : १
४७	हब. ३ : १८
४८	१ श. १ : ११; उ. ३० : १३; भ. ३० : ८
४९	व्य. १० : २१; भ. १११ : ९
५०	भ. १०३ : १३, १७
५१	भ. ८९ : १०
५२	अय. ५ : ११; १२ : १९
५३	भ. १०७ : ९; १ श. २ : ५, ७, ८
५४	यश. ४१ : ८, ९; भ. ९८ : ३
५५	मी. ७ : २०; उ. १७ : ७; २२ : १७; १ श. २२ : ५१

१ : ४६-५० में अपने संबंध में मरियम का धन्यवाद है। १ : ४६—परमेश्वर स्वयं उद्धार का स्रोत है, तुलना कीजिए १ तीम १ : १; २ : ३; तीत. १ : ३; २ : १०; ३ : ४। यह विचार पास्तरीय पत्रों की एक विशेषता है। १ : ४८—मरियम को धन्य मानने और उसको आराध्य मानने में बड़ा अंतर है।

१ : ५१-५६—इस अंश में क्रियाएं भूतकालिक हैं, परंतु संभाव्यतः मौलिक अर्थ भविष्यकालिक है। जिस क्रांति का वर्णन है वह ख्रिस्त द्वारा होती है। विशेष रूप से पद ५१-५३ क्रांतिकारी हैं। राष्ट्रीय रूप से यहूदी लोग शताब्दियों से अधीन और दलित रहे थे। उन्हें स्वतंत्रता की तीव्र आकांक्षा थी, और उनका दृढ़ मूल विश्वास था कि केवल परमेश्वर यह परिवर्तन कर सकता है। इस गीत का मौलिक तात्पर्य यह है कि ख्रिस्त के आगमन से यह परिवर्तन आरंभ हो जाता है। ख्रिस्त प्रकाशित परमेश्वर की सामर्थ्य से व्यक्तिगत नैतिक क्रांति (अहंकार के विरुद्ध), सामाजिक और राजनीतिक क्रांति (शक्तिशालियों के विरुद्ध) और आर्थिक क्रांति (धनवानों के विरुद्ध) संभव हो जाती है। यहूदी जनता की दृष्टि में दीन-हीन होना और धर्मी होना समानार्थक शब्द थे। इस गीत में दावा किया जाता है कि ख्रिस्त-काल में यथार्थ अर्थों में उप-

रोक्त आकांक्षा पूरी की जाएगी। वास्तव में उस काल से लेकर आज तक बहुत से अन्यायों का उन्मूलन खिस्त द्वारा किया गया है। आदर्श रूप से जहां जहां खिस्त द्वारा परमेश्वर का राज्य स्थापित हो जाता है वहां सामाजिक और आर्थिक न्याय की स्थापना भी होती है। **१: ५४, ५५**—नया इस्राएल कलीसिया है। कलीसिया अब्रहाम से की गई प्रतिज्ञाओं की उत्तराधिकारिन् है।

(४) यूहन्ना का जन्म, जकरयाह का गान १ : ५७-८०

इस अंश के भी दो भाग हैं : १ : ५७-६६, यूहन्ना का जन्म, खतना तथा नाम देना। १ : ६७-७९, जकरयाह-गीत। १ : ८० जोड़नेवाला पद है।

१ : ५७-६६—पद ५८ में फिर आनंद का उल्लेख है (१ : १४, ४७)। **१ : ५९-६३**—आठवें दिन खतना करना व्यवस्थानुसार था (उ. १७ : १२; लै. १२ : ३)। परंतु (पुराना नियम के काल में) आठवें दिन नाम देना यहूदियों की साधारण प्रथा नहीं थी। संभव है कि हेलेनी-रोमी प्रथा का प्रभाव यहूदियों पर हुआ, जिसके अनुसार नाम जन्म के ७-१० दिन पश्चात् दिया जाता था। पड़ोसी बालक को उसके पिता का नाम देने लगे। बहुधा दादा का नाम दिया जाता था। "यूहन्ना" का अर्थ है, "याहवे अनुग्रहमय है"। अतः यह नाम प्रतीकात्मक है। यहूदी लोग नामों को महत्व देते थे। अनेक टीकाकारों की यह मान्यता है कि १ : ६० में यह विचार निहित है कि इलीशिबा को अलौकिक रूप से ही ज्ञात हुआ कि बालक का नाम यूहन्ना रखना था। ऐसा अनुमान लगाना अनावश्यक है क्योंकि महीनों पहले जकरयाह को यह आदेश दिया गया था (१ : १३), और यह मानना तर्कसंगत है कि उस ने अवश्य पट्टी द्वारा इलीशिबा को बताया होगा। "संकेत करके" (६२) का निहितार्थ कदाचित् यह है कि जकरयाह बहरा भी था, भले ही इसका उल्लेख नहीं है। लोगों के अचंभे का कारण जकरयाह और इलीशिबा का आग्रह था कि बालक का नाम यूहन्ना ही हो। **१ : ६४-६६**—जकरयाह की जीभ खुल जाना उसके आज्ञापालन का परिणाम था। यह विचारनीय है कि जीभ खुल जाने पर जकरयाह की पहली क्रिया धन्यवाद करना थी। भय छा जाना स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी, तुलना कीजिए १ : १२,३०। पद ६५, ६६ से ज्ञात होता है कि यूहन्ना का यश शीघ्र ही फैल गया।

१ : ६७-७९ जकरयाह-गान – मरियम-गीत के समान यह संभाव्यतः परवर्ती काल की रचना है। यह भी पुराना नियम के उद्धरणों की माला है। उद्धरणों की सूची निम्नलिखित है :

पद	उद्धरण
६८	भ. ८१ : १४; ७२ : १८; १०६ : ४८; १११ : ९
६९	भ. १३२ : १७; १८ : २; १ श. २ : १०; यहे. २९ : २१
७१	भ. १०६ : १०

७२-७५	मी. ७ : २० ; भ. १०५ : ८, ९; १०६ : ४५, ४६; नि. २ : २४; लै. २६ : ४२; यि. ११ : ५
७६	मल. ३ : १; यश. ४० : ३
७८, ७९	भ. १०७ : १०; यश. ९ : २; ५८ : ८

जकरयाह-गीत के तीन भाग हैं, १ : ६८, ६९ : यीशु के संबंध में। १ : ७०-७५ : परमेश्वर की भूतपूर्व प्रतिज्ञाओं के संबंध में। १ : ७६-७९ : यूहन्ना के संबंध में भविष्य-वाणी।

१ : ६८, ६९—"दृष्टि की" के स्थान पर "सुधि ली है" (हिं. सं., बुल्के, ध. ग्र.) अच्छा है। "उद्धार का सींग" का अर्थ हिं. सं. में स्पष्ट व्यक्त है, "शक्तिशाली उद्धारकर्ता", अर्थात् ख्रिस्त। सींग शक्ति का प्रतीक माना जाता था। "छुटकारा किया है" का तात्पर्य मूल रूप से राजनीतिक है।

१ : ७०-७५—इन पदों का वर्णन उलटे कालक्रमानुसार दाऊद से लेकर अब्राहाम तक है। १ : ७० में पुराना नियम की प्रतिज्ञाओं का स्पष्ट उल्लेख है। १ : ७१ में "उद्धार के सींग" का स्पष्टीकरण है (पद ६९)। यह उद्धार राजनीतिक है, परंतु परवर्ती इतिहास की दृष्टि में हम उसका ख्रिस्तीकरण कर सकते हैं। **१ : ७३-७५** में अब्राहाम से खाई गई शपथ का वर्णन है, जो उ. २२ : १६, १७ में पाई जाती है। इस प्रतिज्ञा की पूर्ति का परिणाम पवित्रता, धार्मिकता और परमेश्वर की सेवा करना है। यीशु ही है जिसके द्वारा यह प्रतिज्ञा पूरी हो जाती है।

१ : ७६-७९—इस अंश में जकरयाह यूहन्ना को संबोधित करता है। यहां मल. ३ : १ और यश. ४० : ३ यूहन्ना पर लागू किए गए हैं, तुलना कीजिए मर. १ : २। यूहन्ना उद्धार नहीं, केवल उसका ज्ञान देता है। उसके प्रचार में मौलिक बात मन परिवर्तन उत्पन्न करनेवाली पाप-क्षमा थी (१ : ७८, ७९ में उद्धार के साधन का वर्णन है)। "ऊपर से भोर का प्रकाश" (हिं. सं. "स्वर्ग से प्रातःकालीन प्रकाश") का अर्थ है ख्रिस्त-काल का उदय। ऐसा ही विचार यश. ६० : १ और मल. ४ : २ में पाया जाता है। वह शब्द ("अनतले") जिसका अनुवाद "भोर का प्रकाश" किया गया है यि. २२ : ५; ज. ३ : ८; ६ : १२ के सेप. अनुवाद में "अंकुर" और "शाख़" के लिए प्रयुक्त हुआ है। इन स्थलों में आनेवाले ख्रिस्त की ओर संकेत माना जाता था। प्रकाश और अंधकार का प्रतीकार्थ सार्वभौमिक है। **१ : ७९** की अंतिम पंक्ति में "कुशल के मार्ग" के स्थान पर "शांति के पथ" (हिं. सं.) अच्छा है। ख्रिस्त द्वारा प्रत्येक प्रकार का नैतिक और आत्मिक अंधकार दूर हो सकता है।

१ : ८०—"जंगल" से अच्छा "निर्जन प्रदेश" (हिं. सं.) है। ऐसा प्रतीत होता है कि यूहन्ना शीघ्र ही तापसिक जीवन व्यतीत करने लगा। "निर्जन प्रदेश" शब्द अधिकतर मृतक सागर के पश्चिमी तट की ओर एवं यरदन नदी के निचले भाग के पश्चिमी तट की ओर के प्रदेश के संबंध में प्रयुक्त होते थे। संभवतः यूहन्ना का कुमरान-

पंथ से संबंध था, परंतु इस प्रश्न का समाधान अभी तक अनिश्चित है (कुमरान-पंथ के संबंध में देखिए बाइबल ज्ञान कोश, "मृत्यु सागर कुंडलपत्र" और "नया नियम की पृष्ठभूमि" पृ. १६३-१६६)।

(५) यीशु का जन्म २ : १-२०

इस अंश के संबंध में मत्त. १ : १८-२५ की व्याख्या को पढ़िए। अनेक टीकाकारों की मान्यता के अनुसार यह वर्णन मौलिक रूप से इतिहास नहीं, दंतकथा है, जिसका महत्व उसके प्रतीकार्थ में है। यदि इस में इतिहास और पौराणिक तत्व का मिश्रण है तो इन भिन्न तत्वों का विश्लेषण करना असंभव है। हमारे विचार में इसकी मौलिक ऐतिहासिकता के विरुद्ध मान्य तर्क प्रस्तुत नहीं किए गए हैं।

२ : १-३—औगुस्तुस ई. पू. ३१ से ई. स. १४ तक रोमी साम्राज्य का सम्राट रहा। यहां "सारे जगत" का अर्थ "रोमी साम्राज्य" है (देखिए हिं. सं.)। हमें ज्ञात है कि इस काल के पश्चात् ही इस साम्राज्य में चौदह चौदह वर्ष के बाद करारोपण के संबंध में जनगणना हुआ करती थी। यह "पहली" जनगणना कही गई है। हमें योसेपस के लेख "यहूदियों की प्राचीन परंपरा" से ज्ञात होता है कि ई. स. ६-७ में पलिश्तीन में, जब क्विरिनियुस सूरिया का राज्यपाल था, ऐसी जनगणना हुई। परंतु जब यीशु का जन्म हुआ तब हेरोदेस महान जीवित था, और हेरोदेस की मृत्यु ई. पू. ४ में हुई। क्विरिनियुस हेरोदेस के शासनकाल में राज्यपाल नहीं हुआ। अतः संभव है कि यहां लूका की भूल है। यह एक साधारण मान्यता हो गई है। फिर भी कुछ साक्षी मिली है कि ई. पू. ९-६ में, जब सूरिया का राज्यपाल सतुर्नीनुस था, क्विरिनियुस एक सैनिक पदाधिकारी था। हमें ज्ञात है कि ई. पू. ८ में औगुस्तुस ने रोमी नागरिकों की जनगणना की। भले ही इस बात का कहीं उल्लेख नहीं है तो भी यह असंभव तो नहीं है कि पलिश्तीन में भी जनगणना हुई। इस संबंध में निश्चय नहीं हो सकता। तो भी हम मान सकते हैं कि यूसुफ और मरियम किसी ऐसे कारण से नासरत से यरूशलेम गए। इस प्रकार लूका प्रकट करता है कि आरंभ से ही साम्राज्य की व्यवस्था और यीशु के आगमन में एक संगति पाई जाती थी।

२ : ४-७—१ श. १७ : १२, ५८ के अनुसार बैतलहम दाऊद का जन्मस्थान था। वह यरूशलेम से दक्षिण की ओर ९-१० किलोमीटर दूर स्थित है। यीशु के जन्म का वर्णन बहुत संक्षिप्त और सरल शब्दों में है। पद ७ में "पहिलौठा" शब्द में में यह विचार निहित है कि बाद में मरियम ने अन्य बच्चों को भी जन्म दिया। इस वर्णन का यह प्रतीकार्थ है कि यीशु का जन्म एक अत्यंत दीनहीन वातावरण में हुआ। इस सुसमाचार की एक विशिष्टता यह है कि उस में दीनहीन लोगों पर परमेश्वर की कृपादृष्टि प्रकट की गई है।

२ : ८-१४—यदि यह वर्णन मूल रूप से ऐतिहासिक है तो यीशु का जन्म-दिन २५ दिसंबर नहीं हो सकता क्योंकि यह तिथि शीतकाल में है जब चरवाहे और भेड़ें रात

को बाहर नहीं रहे होंगे। यीशु के जन्म की तिथि का निर्धारण चौथी शताब्दी ई. स. में हुआ। ठीक तिथि ज्ञात नहीं है। इस अंश में भी दीनहीन लोगों को परमेश्वर का प्रकाशन प्राप्त है। १ : १०-१४ के शब्द संभाव्यत: परवर्ती काल के हैं, जब धर्मवैज्ञानिक रूप से ख्रिस्तीय शब्दावली अधिक विकसित हो गई थी, परंतु इस संबंध में संशय करने की आवश्यकता नहीं है कि चरवाहों को ऐसा संदेश मिला। यह तथ्य विचारनीय है कि सुसमाचार "बड़े आनंद का" है। यीशु का आगमन शोक का कारण नहीं, आनंद का है (देखिए यू. १५ : ११; १६ : २०-२४)। यह सुसमाचार "सब लोगों के लिए" है। यहां मौलिक रूप से "लोग" शब्द का अर्थ इस्राएली लोग है, परंतु संभाव्यत: लूका का अभिप्राय यह था कि सब जातियां इस में सम्मिलित हों। सुसमाचार सार्वभौमिक है। "ख्रिस्त" पदवी के स्पष्टीकरण के लिए मर १ : १ और ८ : २९ की व्याख्या को देखिए। "उद्धारकर्ता" शब्द सहदर्शी सुसमाचारों में केवल इस पद में यीशु पर लागू है। इन अर्थों में वह यूहन्ना रचित सुसमाचार में केवल एक बार और पौलुस के पत्नों में दो बार पाया जाता है। इसका अधिक प्रयोग नया नियम की अंतिम पुस्तकों अर्थात् पास्तरीय पत्नों और २ पतरस में किया गया है। कदाचित् इसका कारण यह है कि यह शब्द सम्राट पर लागू किया जाता था। सम्राट आदि अस्थायी उद्धार करते थे। गंभीर रूप से वास्तविक उद्धारकर्ता यीशु है। "प्रभु" उस शब्द का अनुवाद है जो सेप. में "याहवे" (यहोवा) के अनुवाद के लिए प्रयुक्त होता है। यहां अवश्य यह शब्द यीशु का ईश्वरत्व व्यक्त करता है।

२ : १४ के अनुसार शांति उन लोगों को प्राप्त है जिन से परमेश्वर प्रसन्न है। इसका अर्थ यह नहीं है कि परमेश्वर पक्षपात करता है वरन् यह कि परमेश्वर उन लोगों को जानता है जो उसकी ओर उन्मुख हैं, और उन्हें अपनी शांति प्रदान करता है। यह बाह्य सांसारिक शांति नहीं वरन् आंतरिक शांति है। हिं. सं. की पद-टिप्पणी में यह वैकल्पिक अनुवाद प्रस्तुत है, "पृथ्वी पर शांति और मनुष्यों में सद्भावना"। यह अनुवाद अधिकांश हस्तलेखों के अनुसार है, परंतु हि. प्र. और हिं. सं. के साधारण अनुवाद सर्वश्रेष्ठ हस्तलेखों के अनुसार हैं।

२ : १५-२०—उपरोक्त निर्देशन के अनुसार चरवाहे यरूशलेम जाते हैं, और जो बात उन्हें ज्ञात हो गई उसे प्रकट करते हैं। **पद १८, १९**—"सब सुननेवाले" आश्चर्य-चकित हुए, परंतु मरियम को ये बातें पहले से ज्ञात थीं (१ : २६-३८)। यदि हम इस वर्णन की मौलिक ऐतिहासिकता को स्वीकार करें तो मानना पड़ता है कि मरियम और अन्य श्रोताओं ने उक्त तथ्यों के अर्थ और महत्व को अपूर्ण रूप से ही समझा। तब ही इन बातों में और २ : ५०; मर. ३ : २१ जैसे वर्णनों में संगति मानी जा सकती है। ऐसे स्थलों से, विशेष रूप से २ : ५० से, यह स्पष्ट है कि मरियम ने उस आह्वान को पूर्ण रूप से नहीं समझा जो उसके पुत्न को परमेश्वर की ओर से मिल रहा था। वह "उनका चिंतन करती रही" (हिं. सं.)

(६) यीशु को नाम देना, मंदिर में अर्पित किया जाना, शमौन-गीत, हन्ना की साक्षी २ : २१-४०

२ : २१—"यीशु" नाम के संबंध में १ : ३१ की व्याख्या को देखिए। इस पद की तुलना १ : ५९ और उसकी व्याख्या से कीजिए।

२ : २२-२४ में दो पृथक बातों का वर्णन है, अर्थात् मरियम का शुद्धिकरण और यीशु को अर्पित करना ("प्रभु के सामने लाएं")। यह स्पष्ट नहीं है कि "उनके" शब्द किस की ओर संकेत करते हैं, क्योंकि शुद्धिकरण मरियम का ही था। संभव है कि लूका ने शुद्धिकरण और अर्पण में गड़बड़ की, परंतु यह भी हो सकता है कि दोनों एक ही समय हुए। लूका का वर्णन स्पष्ट नहीं है। शुद्धिकरण के नियम का वर्णन लै. १२ अध्याय में है। अर्पित करने का नियम नि. १३ : २, १३ में वर्णित है और पद २३ में नि. १३ : २ का स्थूल उद्धरण है। पद २४ में लै. १२ : ८ का उद्धरण अर्पण के संबंध में नहीं, मरियम के शुद्धिकरण के संबंध में है।

२ : २५-२८—शमौन जैसे कितने भक्त यहूदी थे जो प्रतिज्ञात ख्रिस्त की बाट जोह रहे थे। यहां "इस्राएल की शांति" शब्द यश. ४० : १ और ४९ : १३ की ओर संकेत करते हैं। शमौन को पवित्र आत्मा द्वारा ज्ञात हुआ कि ख्रिस्त यीशु ही है। शमौन प्रतीक्षा करने के कारण तैयार था। परमेश्वर ऐसे लोगों का मार्गदर्शन करता है। शमौन आत्मा की प्रेरणा से मंदिर में भी आया।

२ : २९-३२—शमौन-गीत। यह भी काव्य रूप में पुराना नियम के उद्धरणों की माला है, जो इस प्रकार हैं : पद ३०, ३१ में, यश. ४० : ५ (सेप. में, दूसरी पंक्ति में, "उद्धार" शब्द है); यश. ५२ : १०। २ : ३० में यश. ४२ : ६; ४९ : ६ का उद्धरण है।

हि. प्र. का अनुवाद, "विदा करता है", ठीक है (हिं. सं. "विदा कीजिए")। इन शब्दों में प्रार्थना नहीं है वरन एक तथ्य का कथन है। २ : ३० में शमौन को दी गई जो प्रतिज्ञा पद २६ में है वह पूरी हो गई। २ : ३१-३२ में यह तथ्य व्यक्त है कि यीशु के आने में यशायाह ४० : ५; ४२ : ६; ४९ : ६ और ५२ : १० की भविष्यवाणियों की परिपूर्ति हो गई। उद्धार के तथ्य का विस्तृत प्रतिपादन और विवरण प्रेरितों के काम की पुस्तक में है। उद्धार के प्रबंध में यहूदियों और अयहूदियों का उद्धार सम्मिलित है।

२ : ३३-३५—अनेक टीकाकारों की यह मान्यता है कि यदि पूर्ववर्ती वर्णन ऐतिहासिक है तो यीशु के माता-पिता चकित नहीं हो सकते थे क्योंकि उन्हें यीशु के संबंध में, कि वह कौन है, ज्ञात हो चुका था। मानना पड़ता है कि उनका आश्चर्य किसी और कारण से हुआ, उदाहरणार्थ कि उद्धार विजातियों के लिए है, कि परमेश्वर ने ये बातें शमौन पर प्रकट कीं, आदि। यहां यूसुफ स्पष्ट शब्दों में यीशु का पिता कहा गया है। यह इस तथ्य से असंगत नहीं है कि वह शारीरिक रूप से यीश का स्वाभाविक

पिता नहीं था। इसके संबंध में १ : २७ की व्याख्या को पढ़िए। २ : ३४ में "गिरने और उठने के लिए" (हिं. सं. में "उत्थान और पतन" शब्द उलटे लिखे गए हैं) की दो भिन्न व्याख्याएं संभव हैं : (क) यीशु के कारण कुछ लोग गिरते हैं, अन्य लोग उठते हैं, अर्थात् यीशु के प्रति अनुक्रिया के द्वारा हम स्वयं अपना न्याय कराते हैं (तु. १२ : ५१-५३; यू. ३ : १८-२१)। (ख) जो गिरते हैं उन्हीं का फिर पतन के पश्चात यीशु द्वारा उत्थान होता है। इन दोनों व्याख्याओं में हमें (क) ठीक प्रतीत होती है। **चिन्ह** (हिं. सं. "प्रतीक") का विरोध अवश्य किया गया। २ : ३५ में मरियम के लिए दुख-भोग की भविष्यवाणी है। यह दुख क्रूस के कारण होगा। क्रूस का स्पष्ट उल्लेख नहीं है, परंतु "विरोध" शब्द उसकी ओर संकेत करता है।

२ : ३६-३८—यूनानी मूल पाठ से यह स्पष्ट नहीं है कि हन्नाह चौरासी वर्ष विधवा रही या चौरासी वर्ष उसकी अवस्था थी। ऐसा प्रतीत होता है कि वह मंदिर में ही रहती थी। पद ३८ में "उसके" का अर्थ यीशु है।

२ : ३९, ४०—यह स्पष्ट है कि लूका उन परंपराओं से अपरिचित था जिन पर मत्त. १-२ अध्याय आधारित हैं। स्वाभाविक रूप से पद ३९ का अर्थ यह है कि वे उसी समय के लगभग नासरत गए। परंतु यदि २ : १-३ की व्याख्या के अनुसार यीशु का जन्म ई. पू. ८-७ में हुआ तो यीशु और उसके माता-पिता मत्ती के वर्णन के अनुसार मिस्र में कम से कम तीन चार वर्ष रहे होंगे, क्योंकि हेरोदेस की मृत्यु ई. पू. ४ में हुई। यदि वे मिस्र में थोड़ा समय रहे तो यीशु के जन्म की तिथि ई. पू. ६ के पश्चात् है। ऐतिहासिक रूप से ये वर्णन संगत नहीं किए जा सकते। अतः मानना पड़ता है कि भले ही वे मौलिक रूप से इतिहास पर आधारित हों तो भी ब्योरों में असंगति है। पद ४० का निहितार्थ यह है कि यीशु का पालन-पोषण सामान्य यहूदी ढंग के अनुसार हुआ, परंतु उसका विकास असाधारण था। "बढ़ता और बलवंत होता....गया" शब्दों का अर्थ शारीरिक विकास है। यीशु मानसिक रूप से असाधारण मात्रा में बुद्धिमान था, और आत्मिक रूप से परमेश्वर के अनुग्रह का पात्र था।

(७) बालक यीशु का मंदिर में पाया जाना २ : ४१-५२

नि. २३ : १४-१७; ३४ : २३ और व्य. १६ : १६ के अनुसार प्रत्येक यहूदी पुरुष के लिये प्रतिवर्ष यरूशलेम में तीन पर्वों के अवसर पर उपस्थित होना आवश्यक था, अर्थात् फसह, अठवारों, और झोपड़ियों के पर्व। परंतु वस्तुतः पलिश्तीन के यहूदी भी साधारणतः केवल फसह के लिए जाते थे। स्त्रियों का जाना अनिवार्य नहीं था परंतु बहुधा पुरुष सपरिवार जाते थे। तेरह वर्ष की अवस्था में यहूदी बालकों की दीक्षा होती थी। इस की तैयारी तेरहवें वर्ष में की जाती थी। कहीं कहीं बारह वर्ष पूरे होने पर भी दीक्षा होती थी। यद्यपि यहां इस बात का उल्लेख नहीं है तथापि संभवतः यह वर्णन यीशु की दीक्षा से संबंधित था। उस समय से युवक अधिक उत्तरदायी माना जाता था। यदि दीक्षा का समय नहीं तो उसकी तैयारी का समय हुआ होगा। लोग

कारवां बनाकर पर्व में जाते थे, अतः यीशु की अनुपस्थिति का पता न लगना असाधारण बात नहीं थी।

२ : ४६—"तीन दिन" का अर्थ संभाव्यतः उनके यरूशलेम से प्रस्थान करने के पश्चात् तीन दिन है। पर्व के अवसर पर महासभा के सदस्य अनौपचारिक रूप से कहीं मंदिर में बैठकर लोगों से प्रश्नोत्तर करते थे। यहां सीखते हुए यीशु का चित्रण किया गया है। मंदिर में श्रोता यीशु की बुद्धिमानी से विस्मित हुए। समस्तस्थिति को देखकर यीशु के माता-पिता चकित हुए। २ : ४८ में मरियम की बातों से ज्ञात होता है कि उस ने उन बातों को पूर्ण रूप से नहीं समझा जो यीशु के जन्म के समय उसको बताई गई थीं। २ : ४६ केंद्रीय पद है। "तेरा पिता" (पद ४८) और "अपने पिता" में विषमता प्रकट की गई है। इस अवस्था में भी यीशु विशेष अर्थों में परमेश्वर को अपना पिता जानता था। पद-टिप्पणी में दिए हुए अनुवाद की अपेक्षा "के भवन में" ठीक है, क्योंकि इस में यह विचार निहित है कि माता-पिता को जानना चाहिए था कि यीशु कहां मिलेगा। इस पर भी वे नहीं समझते (शिष्यों से तुलना कीजिए)। २ : ५१ से यह प्रकट होता है कि यीशु साधारण यहूदी नव-युवक का जीवन व्यतीत करता रहा।

२ : ५२ से प्रकट होता है कि यीशु का सर्वतोमुखी विकास-शारीरिक,मानसिक और आत्मिक-होता गया। वह शब्द ("हेलिकिया") जिसका अनुवाद "डील डौल" किया गया है "अवस्था" से भी अनूदित हो सकता है (१२ : २५ और १६ : ३ में भी यही शब्द प्रयुक्त है), परंतु यह कहना कि अवस्था बढ़ती गई निरर्थक है, क्योंकि यीशु की अवस्था का बढ़ना अनिवार्य था। अर्थ यह है कि यीशु का अच्छा शारीरिक विकास हुआ।

२ यीशु के सेवाकार्य के लिए तैयारी ३ : १-४ : १३

(१) यूहन्ना बपतिस्मा-दाता और उसका उपदेश, यूहन्ना और हेरोदेस, यीशु का बपतिस्मा ३ : १-२२

३ : १-२२ (मर. १ : १-११, मत्त. ३ : १-१७)

३ : १, २ पू. में लूका यीशु के सेवाकार्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का सारांश प्रस्तुत करता है। उन शासकों के शासनकाल निम्नलिखित हैं : तिबिरियुस ई. स. १४-३७ रोम का सम्राट रहा; पुंतियुस ई. स. २६-३६ यहूदिया प्रांत का रोमी राज्यपाल रहा; हेरोदेस अंतिपास ई. पू. ४—ई. स. ३९ गलील और पीरिया का शासक था। यहां हेरोदेस और अन्य शासक "चौथाई के राजा" कहे गए हैं (देखिए मर. ६ : १४ और मत्त. १४ : १ की व्याख्या)। वे पूरे राजा नहीं, अधीन शासक थे। फिलिप्पुस का शासन-काल ई. पू. ४—ई. स. ३४ रहा। उसका प्रदेश गलील की झील के पूर्व की ओर स्थित था। लिसानियास अज्ञात सा शासक है। अबिलेने दमिश्क से पश्चिम की ओर स्थित प्रदेश था। हन्ना ई. स. ६ या ७ से १५ तक महायाजक रहा, तब वह पदच्युत किया गया। अतः वास्तव में वह इस समय महायाजक नहीं था, परंतु उसका बहुत प्रभाव रहा। काइफा ई. स. १८-३६ के लगभग महायाजक रहा। वह हन्ना का दामाद था। इन

सब व्यक्तियों और स्थानों के संबंध में "बाइवल ज्ञान कोश" का अध्ययन करना चाहिए। इनका वर्णन "पृष्ठभूमि" में भी है।

विद्वानों की साधारण मान्यता के अनुसार तिबिरियुस का पंद्रहवां वर्ष ई. पू. २८ था। अतः हम मान सकते हैं कि यीशु की सेवा का प्रारंभ संभाव्यतः उसी वर्ष हुआ। उपरोक्त ऐतिहासिक तथ्यों का वर्णन करके लूका प्रकट करता है कि ख्रिस्तीय विश्वास इतिहास से पृथक नहीं वरन् यथार्थ और अनिवार्य रूप से ऐतिहासिक प्रक्रिया में सम्मिलित है।

३ : २ उ.-६—इन पदों में मर. १ : २-५ की पुनर्रचना है। उस स्थल की व्याख्या को देखिए। मरकुस के ४ तथा ५ पदों की सामग्री लूका के २ उ. और ३ पदों में, परिवर्तित रूप में है। **३ : २ उ.** के अनुसार यूहन्ना को निर्जन स्थान में ही परमेश्वर का आह्वान मिला। यह बात केवल लूका में पाई जाती है। आह्वान के संबंध में यूनानी शब्द लगभग वही हैं जो सेप. के अनुसार यि. १ : १ में यिर्मयाह के बुलाए जाने के संबंध में हैं, परंतु इब्रानी मूल पाठ भिन्न है। **३ : ३**—केवल लूका वर्णन करता है कि वह "जंगल" जहां यूहन्ना प्रचार करता था "यरदन के आस पास का समस्त प्रदेश" था। **३ : ४** मत्ती और मरकुस के समान है (यश. ४० : ३ का उद्धरण) और मत्ती के समान लूका भी मल. ३ : १ का उद्धरण छोड़ता है। **३ : ५, ६** केवल लूका में है। वह यशायाह का उद्धरण बढ़ाकर यश. ४ : ४, ५ को भी सम्मिलित करता है। ये पद लूका के उदारमना दृष्टिकोण के अनुकूल हैं, क्योंकि अंतिम पंक्ति में स्पष्ट शब्दों में विजाति लोग भी उद्धार के प्रबंध में सम्मिलित किए गए हैं। यह समस्त उद्धरण, जो पुराना नियम में याहवे पर लागू है, यीशु पर लागू किया जाता है (उद्धरण सेप. के अनुसार है)।

३ : ७-९—यह अंश Q में से है, और पद ७ को छोड़ लगभग शब्दशः मत्त. ३ : ७-१० के समान है—उसकी व्याख्या को देखिए। पद ७ की भिन्नता का विवेचन भी उस व्याख्या में किया गया है।

३ : १०-१४ केवल लूका में है। यह प्रसंग से पूर्ण रूप से संगत है। इस अंश में साधारण लोग यूहन्ना से आचरण के संबंध में पूछते हैं। लूका ने अवश्य इसका संबंध पिछले अंश से जोड़ा - अच्छा फल कैसे लाएं? साधारण लोग अपने धंधों में लगे रहने के कारण पूरा व्यवस्था-पालन नहीं कर सकते थे, अतः व्यवस्थापक आदि बहुधा उनका तिरस्कार करते थे। इस अंश में सुसमाचार नहीं वरन् कुछ मूल नैतिक सिद्धांत हैं जिनसे पुराना नियम के नबियों की शिक्षा का स्मरण होता है। **३ : ११** की तुलना प्रे. १-५ अध्यायों से, विशेषकर २ : ४४-४७ और ४ : ३२-३७ से कीजिए। कभी कभी कहा जाता है कि ये "मामूली" नैतिक सिद्धांत है, परंतु ऐसी सहभागिता प्रकट करना सरल नहीं, कठिन है क्योंकि उसके लिए स्वार्थत्याग आवश्यक है, जो मानव-स्वभाव के विरुद्ध है। इस से सुसमाचार की आवश्यकता प्रकट की जाती है। **३ : १२, १३** – कर लेनेवाले प्रायः शोषक होते थे। यहां "लेना" शब्द में यह तात्पर्य निहित है। वे अनुचित लाभ उठाने के कारण घृणित माने जाते थे। जक्कई (१९ : २) ऐसा व्यक्ति था।

३:१४ - संभाव्यत: ये सिपाही यहूदी थे। इस में पुलीस जैसे लोगों की विशेष बुराइयों का वर्णन है। 'उपद्रव" के स्थान पर "अत्याचार" शब्द (हिं. सं., बुल्के, ध. ग्र.) अच्छा है।

३ : १५-१८ मरकुस के वर्णन और Q का मिश्रण है - देखिए मर. १ : ७, ८ और मत्त. ३ : ११, १२ की व्याख्या। ३ : १४, जो केवल लूका में है, रचयिता का स्पष्टीकरण है। ३ : १६ में मरकुस और Q का मिश्रण है। "मैं तो इस योग्य नहीं कि उसके जूतों का बंध खोल सकूं" मत्ती की विषमता में लगभग मरकुस के समान है। ३ : १८ भी, जो केवल लूका में है, संपादकीय है। लूका यूहन्ना के प्रचार को "सुसमाचार" कहता है, क्योंकि वह ख्रिस्त की ओर संकेत करता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि उस समय यूहन्ना जानता था कि यीशु ही प्रतिज्ञात ख्रिस्त है।

३ : १९, २० केवल लूका में है, परंतु वह मरकुस के वर्णन का संक्षेप है। मर. ६ : १४-२९ की प्रस्तावना और ६ : १७ की व्याख्या को पढ़िए। लूका यूहन्ना की मृत्यु का ब्योरेवर वर्णन नहीं करता।

३ : २१,२२ मर. १ : ९-११ पर आधारित हैं। उस स्थल की व्याख्या को पढ़िए। लूका यीशु के बपतिस्मे का वर्णन नहीं करता, केवल उसकी ओर संकेत करता है। लूका इस तथ्य पर बल देता है कि बपतिस्मे के पश्चात् यीशु प्रार्थना कर रहा था। मरकुस और मत्ती में इसका उल्लेख नहीं है। अनेक बार लूका ही यीशु की प्रार्थना का वर्णन करता है : ५ : १६; ६ : १२; ९ : १८, २८, २९; ११ : १। इनके अतिरिक्त २२ : ४१ भी है जो मरकुस और मत्ती में भी है। इस प्रकार लूका यीशु का पिता परमेश्वर से गहन संपर्क प्रकट करता है। लूका ही लिखता है कि पवित्र आत्मा "शारीरिक रूप से" ("सदेह", हिं. सं.) उतर आया, परंतु संभाव्यत: यह विचार मरकुस के वर्णन में भी निहित है। यह यीशु की निजी अनुभूति मात्र नहीं वरन् एक ठोस वस्तुगत घटना थी। लूका के अनुसार यह घटना बपतिस्मे के समय नहीं परंतु बपतिस्मे के पश्चात् प्रार्थना के समय हुई।

(२) **यीशु की वंशावली ३ : २३-३८**
(तुलना मत्त. १ : १-१७)

मत्त. १ : १-१७ की व्याख्या को पढ़िए। उस में मत्ती और लूका की वंशावलियों पर विवेचन किया गया है। लूका ने वंशावली को मत्ती के समान अपने सुसमाचार के आरंभ में नहीं वरन् यीशु के सेवाकार्य के वर्णन के आरंभ रखा है। संभाव्यत: उस ने इसका समावेश यीशु को ख्रिस्त प्रकट करने के संबंध में किया। परंतु वह मत्ती के समान अब्राहाम से ही यीशु की वंश रेखा आरंभ नहीं करता, वरन् आदाम से। इस से लूका सुसमाचार की सार्वभौमिकता पर बल देता है। आदाम को "परमेश्वर का (पुत्र)" कहने में लूका यीशु के ईश्वरत्व की ओर संकेत करता है। परंतु एक मानव वंशावली प्रस्तुत करने से उसके मानवत्व का महत्व भी प्रकट किया गया है। वर्तमान टीकाकारों में सहमति है कि हमें इन वंशावलियों के संबंध में इतनी जानकारी नहीं है कि हम उनकी भिन्नताओं के संबंध में कोई प्राक्कल्पना स्थापित कर सकें।

पद २३ में लिखा है कि जब यीशु उपदेश करने लगा तो वह "लगभग तीस वर्ष का था"। इसका अर्थ केवल यह है कि संभाव्यतः वह २८-३२ वर्ष का था। हम ठीक अनुमान नहीं लगा सकते, अतः यीशु के जन्म और उसकी मृत्यु की तिथियां निर्धारित करने में इस तथ्य से कोई सहायता प्राप्त नहीं होती। अनेक विद्वानों ने यू. ८ : ५७ से यह अनुमान लगाया है कि उसके अनुसार यीशु की उमर ५० वर्ष के निकट थी। ईरेनयस का यह विचार था। अधिकांश टीकाकार इस मान्यता को स्वीकार नहीं करते।

(३) यीशु की परीक्षा ४ : १-१३

(मर. १ : १२, १३; मत्त. ४ : १-११)

मत्त. ४ : १-११ की व्याख्या को पढ़िए। उस व्याख्या में मत्ती और लूका के वर्णनों में क्रम-भेद आदि की ओर कुछ संकेत किए गए हैं। यह व्याख्या मौलिक रूप से दोनों वर्णनों पर लागू है। इन में काफी शब्द-भेद है, परंतु अर्थ-भेद कम है। भिन्नता की बातों का उल्लेख निम्नलिखित है।

४ : २—मत्ती की विषमता में, परंतु मरकुस के समान, लूका के अनुसार परीक्षा निरंतर चालीस दिन होती रही (मत्ती पद २, ३ "अंत में उसे भूख लगी और परखनेवाले ने पास आकर उस से कहा—")। **४ : ४** में मत्त. पद ४ की अपेक्षा व्य. ८ : ३ का उद्धरण संक्षिप्त है। **४ : ५** में लूका पर्वत का उल्लेख नहीं करता और लिखता है कि शैतान ने यीशु को "पल भर में" संसार के राज्य दिखाए, जो मत्ती में नहीं है। इस प्रकार लूका में यीशु की इस अनुभूति के मानसिक और दर्शनरूपी पहलू पर बल दिया गया है। **४ : ६** का अधिक भाग मत्ती में नहीं है। मत्ती इस स्थल पर केवल यह लिखता है कि "यह सब कुछ तुझे दूंगा" (मत्ती, पद ९) **४ : १०, ११** में, भ. ९१ : ११, १२ के उद्धरण में, लूका "कि वे तेरी रक्षा करें" शब्दों को सम्मिलित करता है। मत्ती ने उन्हें छोड़ दिया। ४ : १३ मत्ती में नहीं है। "कुछ समय के लिये उसके पास से चला गया"—इन शब्दों में यीशु की आगामी परीक्षाओं की ओर संकेत है, उदाहरणार्थ पतरस का यीशु को झिड़कना और उसका शैतान कहा जाना (मर. ८ : ३२, ३३), भले ही लूका ने इस वर्णन को सम्मिलित नहीं किया; लू. २२ : ३, २८; गतसमने में (लू. २२ : ३९-४६ और मत्ती और मरकुस के अनुरूपी स्थल)।

३ गलील में यीशु का सेवाकार्य ४ : १४-९ : ५०

इस खंड में मर. १ : १४-९ : ४० का अधिक भाग और अन्य स्रोतों की कुछ सामग्री भी, सम्मिलित की गई है। मुख्य ब्योरे निम्नलिखित हैं : (i) लू. ६ : २०-८ :४ की सब सामग्री अन्य स्रोतों से ली गई है (ii) पहले शिष्यों का बुलाया जाना (मर. १ : १६-२०) और नासरत में यीशु का अस्वीकार किया जाना (मर. ६ : १-६), जिनके स्थान पर लूका में उन्हीं घटनाओं के भिन्न और लंबे वर्णन हैं (लू. ५ : १-११; ४ : १६-३०)। पर लूका में उन्हीं घटनाओं के भिन्न और लंबे वर्णन हैं (लू. ५ : १-११; ४ : १६-३०)। (iii) लूका ने मर. ६ : ४५–८ : २६ को बिलकुल छोड़ दिया है।

८ : २६ क्र. को छोड़ इस खंड की सब घटनाएं गलील में घटित बताई गई हैं।

(१) यीशु के सेवाकार्य का आरंभ ४ : १४-५५

(क) गलील में सेवकार्य का आरंभ और नासरत में अस्वीकरण ४ : १४-३०

(मर. १ : १४, १५; ६ : १-६; मत्त. १२ : १२, २७; १३ : ५४-५८)

४ : १४, १५ मर. १ : १४, १५ से भिन्न है। अपनी रीति के अनुसार लूका लिखता है कि यीशु "आत्मा की सामर्थ्य से भरा हुआ" था। इस में यीशु के बपतिस्मे और परीक्षा की ओर संकेत है। लूका में भिन्नता इस कारण है कि वह नासरत के लोगों के अस्वीकरण का वर्णन यीशु के सेवाकाल के प्रारंभ से संबंधित करता है। वह सेवा के इस चरण पर यह भी प्रकट करता है कि प्रतिज्ञात ख्रिस्त यीशु है, और कि सुसमाचार सब जातियों के लिए है। यहूदियों ने जो दुर्व्यवहार परवर्ती काल में यीशु से कियाय हां इसका पूर्वदर्शन प्रस्तुत है। इन पदों से यह तथ्य प्रकट है कि लूका ने अपने सुसमाचार को कालक्रमानुसार नहीं वरन् सैद्धांतिक क्रम के अनुसार रचा। यीशु की अस्वीकृति इस प्रकार शीघ्र नहीं हुई।

४ : १६-३०—इस अंश के संबंध में मर. ६ : १-६ की व्याख्या को पढ़िए। अनेक टीकाकारों की मान्यता के अनुसार लूका ने मरकुस के वर्णन को बदलकर उस में अन्य कल्पित सामग्री को जोड़ा। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि लूका के पास मरकुस में वर्णित घटना की एक अलग परंपरा थी। पद २३ में यह पूर्वकल्पना निहित है कि इस घटना से पहले यीशु ने काफी समय काम किया था।

४ : १६—लूका ही बताता है कि यीशु के "अपने देश" (मरकुस के शब्द) का नाम नासरत था। मत्त. ४ : १३ में भी यीशु के सेवाकार्य के इस चरण पर नासरत का उल्लेख है, परंतु वह इस घटना के संबंध में नहीं है। ये शब्द भी केवल लूका में हैं कि यीशु का सभागृह में जाना "अपनी रीति के अनुसार" था। इसका अर्थ यह है कि वह आराधना करने के लिए जाया करता था। यीशु सभागृह में पाठ पढ़ने और उपदेश देने के लिए निमंत्रित हुआ होगा। सभागृह की प्रथा के अनुसार "सेवक" (पद २०) ने उसे यशायाह का कुंडलपत्र दिया होगा (सभागृह के संबंध में बाइबल ज्ञानकोश, "सभाघर", और "पृष्ठभूमि" पृ. १०७-११० को देखिए)। लूका का यह स्थल सब से पुराना लेख है जिस में सभागृह की आराधना का कुछ ब्योरेवर वर्णन है। आराधना का अगुआ पाठ पढ़ने के लिए खड़ा होता, और उपदेश देने के लिए बैठ जाता था। ४ : १८, १९ में यश. ६१ : १, २ और ५८ : ६ का सम्मिश्रण है। "कुचले हुओं को छुड़ाऊं" ५८ : ६ से उद्धृत है। पूर्ण उद्धरण लगभग शब्दशः सेप. से है, और इब्रानी से कुछ भिन्न है। यश. ६१ : १, २ की ओर संकेत मत्त. ११ : ५=लू. ७ : २२; मत्त. ५ : ४, और प्रे. १० : ३८ में भी है। पद १९ में "वर्ष" का शाब्दिक अर्थ नहीं लेना चाहिए। इसका अर्थ मसीह-विषयक युग का आरंभ है। इस उद्धरण से ज्ञात होता है कि यीशु स्वयं को कैसा ख्रिस्त मानता था। यह यहूदियों के सामान्य विचार से बहुत भिन्न था, कि ख्रिस्त विजयी योद्धा होगा। कलीसिया ने ख्रिस्त संबंधी उस मान्यता को स्वीकार किया जो यशायाह के इन पदों में व्यक्त है। ४ : २१ विशेष रूप से यीशु के सेवाकाल के प्रारंभिक

चरण से असंगत है, क्योंकि वह स्पष्ट रूप से उस सेवाकाल के किसी अग्रवर्ती चरण से संबंधित है। यह निश्चित है कि यीशु ने इतने शीघ्र अपने को ख्रिस्त घोषित नहीं किया। परंतु धर्म-विज्ञान की दृष्टि से यह वर्णन गंभीर रूप से सच है। इस में यह दावा किया गया है कि परमेश्वर की प्रतिज्ञाएं यीशु में पूरी हो गई हैं। यहां यीशु के उपदेश का सारांश ही होगा। ४ : २२—लोग पहचानते हैं कि यीशु असाधारण गंभीर प्रज्ञा को व्यक्त करता है, परंतु उनके शब्दों में, "क्या यह यूसुफ का पुत्र नहीं ?", अविश्वास और संशय का स्वर है। ऐसा साधारण व्यक्ति इतना बड़ा दावा नहीं कर सकता था। ऐसा प्रतीत होता है कि यीशु ने अगली बातें इस तथ्य को पहचानकर कहीं। ४ : २३ से प्रकट होता है कि यह घटना परवर्ती काल में हुई, क्योंकि इस प्रारंभिक चरण पर यीशु का कार्य कफरनहूम में आरंभ नहीं हुआ था। कहावत का तात्पर्य यह है कि यीशु ने नासरत में भी, जो उसका "अपना नगर" था (मर. ६ : १) सामर्थ्य के कार्य कर दिखाए।

४ : २४-२७ में यीशु का उत्तर है। एलिय्याह से संबंधित घटना का वर्णन १ रा. १७ में है; विशेषकर १७ : १, ७, ९ और १८ : १ को देखिए। इलीशा के संबंध में २ रा. ५ : १-४ को देखिए। इन उदाहरणों से यीशु यह निष्कर्ष निकालता है कि सुसमाचार विजातियों के लिए भी है। यह लूका का एक विशेष विषय है। इन उदाहरणों में एलिय्याह और इलीशा विजातीय लोगों की सेवा करते हैं। 'विजातीयों में सुसमाचार प्रसारण' का प्रेरितों के काम में प्रमुख स्थान है।

४ : २८-३० – अन्य सुसमाचारों में इस घटना का कोई उल्लेख नहीं है। यह भी सेवाकार्य के प्रारंभिक चरण पर असंभव था। नासरत की स्थिति बदल गई है, अतः वर्तमान में इस चोटी का पता नहीं चलता। ४ : ३० का यह आशय प्रतीत होता है कि यीशु अलौकिक रूप से निकल गया।

(ख) अशुद्ध आत्मा-ग्रसित और बहुत अन्य लोगों को स्वास्थ्य-दान, यहूदियों में प्रचार ४ : ३१-४४

(मर. १ : २१-३९; मत्त. ८ : १४-१७)

मर. १ : २१-३९ की व्याख्या को पढ़िए।

४ : ३१-३७ में लूका ने मरकुस का अनुसरण करके कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया है। जो परिवर्तन हैं वे अधिकतर शाब्दिक तथा शैली-संबंधी हैं। यह अंश मत्ती में नहीं है। पद ३२ में लूका ने मरकुस के शब्दों को, "शास्त्रियों की नाईं नहीं" छोड़ा है। पद ३५ में "बड़े शब्द से चिल्लाकर" शब्दों को छोड़कर वह "बिना हानि पहुंचाए" शब्दों को जोड़ता है।

४ : ३८, ३९—लूका ने मर. १ : १६-२० को अपने वर्णन में सम्मिलित नहीं किया। अतः अब तक पहले शिष्यों के बुलाए जाने का वर्णन नहीं हुआ है। इस कारण से लूका ने अन्द्रियास, याकूब और यूहन्ना का उल्लेख मरकुस के वर्णन में से छोड़ा है। पतरस की सास का हाथ पकड़ने के स्थान पर (मरकुस) लूका ने लिखा कि यीशु "उसके निकट खड़ा" हुआ। शेष परिवर्तन शाब्दिक ही हैं।

४ : ४०, ४१—इस अंश में, विशेष रूप से पद ४१ में, अधिक परिवर्तन किए गए हैं। इस पद में लूका ने मर. ३ : ११, १२ के अनेक ब्योरे जोड़ लिए हैं। लूका ने मर. ३ : ११, १२ के अनुरूपी वर्णन में से (६ : १७-१९) इन ब्योरों को छोड़ दिया है। इस प्रकार वह इस प्रारंभिक चरण पर प्रकट करता है कि दुष्टात्माएं यीशु को परमेश्वर-पुत्र मान लेती हैं। लूका मरकुस के शब्दों का स्पष्टीकरण करके लिखता है : दुष्टात्माएं यीशु को पहचानती थीं, कि वह ख्रिस्त है। इस स्थल पर केवल लूका में "ख्रिस्त" शब्द का प्रयोग किया गया है, परंतु संभाव्यतः वह मरकुस के विवरण में निहित है।

४ : ४२-४४—मत्ती ने इस अंश को भी छोड़ा है। उपरोक्त कारण से लूका यहां भी शमौन और उसके साथियों (मरकुस पद ३६) के स्थान पर "भीड़ की भीड़" का वर्णन करता है। यह आश्चर्य की बात है कि लूका प्रार्थना के उल्लेख को छोड़ता है। साधारणतः वह प्रार्थना-संबंधी ब्योरे जोड़ लेता है। कदाचित् उस ने सोचा कि पाठक समझेंगे कि वह प्रार्थना करने के अभिप्राय से ही निर्जन स्थान में गया होगा। मरकुस की तुलना में पद ४३ के शब्द अधिक सबल हैं – "सुनाना अवश्य है"। यह उसके लिए परमेश्वर की इच्छा थी। लूका ने परमेश्वर के राज्य का उल्लेख भी यहां जोड़ा है। यह इस सुसमाचार में उसका पहला उल्लेख है। यह मरकुस में नहीं है। परमेश्वर के राज्य के संबंध में मर. १ : १५ की व्याख्या को पढ़िए। पद ४४ में "यहूदिया" का अर्थ समस्त पलिश्तीन देश है। इन विस्तृत अर्थों में यह शब्द लूका के लेखों में लू. १ : ५; ६ : १७; ७ : १७; २३ : ५; और प्रे. १० : ३७ में पाया जाता है। अन्यत्र उसका अर्थ रोमी प्रांत यहूदिया है।

(२) शिष्यों को आवाहन ५ : १-६ : १६

(क) शमौन का बुलाया जाना ५ : १-११

(तुलना मर. १ : १६-२०; मत्त. ४ : १८-२२)

लूका ने मर. १ : १६-२० के स्थान पर इस वर्णन को सम्मिलित किया है।

इस अंश में और यू. २१ : १-१४ में कुछ समानता है, भले ही यह यीशु के सेवा-कार्य के आरंभ से संबंधित है और यूहन्ना का वर्णन यीशु के पुनरुत्थान के बाद के काल से संबंध रखता है। विशेष समानताएं निम्नलिखित हैं : यीशु के कहने पर शिष्यों का जाल डालना (लूका पद ४, यूहन्ना पद ६); मछलियों की बड़ी संख्या जाल में आना (लूका पद ६, यूहन्ना पद ६), और दोनों विवरणों में पतरस की केंद्रीय स्थिति। अन्य ब्योरों के प्रति इन विवरणों में भिन्नता है। अतः हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि यह मान्यता कि एक ने दूसरे का अनुकरण और अनुकूलन किया ठीक नहीं है। मरकुस और मत्ती के शीर्षक में उक्त वर्णनों की अपेक्षा लूका के वर्णन का भिन्न होने तथा यूहन्ना और लूका के वर्णनों की उपरोक्त समानता के कारण अधिकांश विद्वान मानते हैं कि यूहन्ना और लूका के इन अंशों में कुछ परस्पर संबंध अवश्य है। संभवतः यीशु ने किसी समय मछलियां पकड़ने में इस प्रकार शिष्यों का मार्गदर्शन किया, जिस के आधार पर परंपरा ने भिन्न रूपों को धारण किया। यूहन्ना और लूका ने इस परंपरा का अपने अपने

उद्देश्यों के अनुसार अनुकूलन किया। यह अनुमान ही है, परंतु कुछ इस प्रकार का स्पष्टीकरण इन दो विवरणों की मांग है।

५ : १—गन्नेसरत की झील गलील सागर है। "गन्नेसरत" नाम भी प्रचलित था। यह उस मैदान का नाम था जो झील के उत्तर-पश्चिमी तट पर स्थित था। केवल लूका "झील" के लिए ठीक शब्द का प्रयोग करता है ("लिम्ने")। अन्य सुसमाचारों में "थलस्सा", अर्थात् सागर है, भले ही उसका अनुवाद हि. प्र. में "झील" किया गया है। ५ : २, ३—तुलना कीजिए मर. ४ : १, जहां यीशु बीज बोनेवाले का दृष्टांत नौका में बैठकर सुनाता है। लू. ८ : ४ में से यह बात छोड़ी गई है, अतः यह उचित अनुमान है कि उस ने इस ब्योरे को वहां से लेकर इस वर्णन में सम्मिलित किया है। यहां उपदेश का विषय नहीं बताया गया है।

५ : ४-९—यीशु विशेष रूप से पतरस को संबोधित करता है। यीशु का आदेश पतरस के दैनिक काम के अनुकूल था। पतरस मछुआ था, अतः वह इस काम से भली भांति परिचित था। यहां वह यीशु को "स्वामी" ("अपिस्ताता") कहता है। समस्त नया नियम में केवल लूका इस शब्द का प्रयोग करता है (८ : २४, ४५; ९ : ३३, ४९; १७ : १३)। अन्य सुसमाचारों में यीशु "गुरु" (दिदस्कलस) कहा जाता है। पद ५ में पतरस के शब्दों में संशय की अभिव्यक्ति है। परंतु सफलता प्राप्त करने पर वह विस्मय से अभिभूत हो यीशु के चरणों में गिरकर उसे "प्रभु" संबोधित करता है। "गुरु" की अपेक्षा "प्रभु" शब्द अत्यंत सार्थक है। यहां, सुसमाचार के आरंभ में ही, लूका प्रकट करता है कि यीशु के ईश्वरीय व्यक्तित्व और उसके आश्चर्यजनक कार्यों ने शिष्यों में उसके प्रति श्रद्धा की भावना उत्पन्न की। परिणाम-स्वरूप पतरस अपनी अयोग्यता को अनुभव करता है।

५ : १०, ११ – इस वर्णन में याकूब और यूहन्ना की गौण स्थिति है, तुलना कीजिए मर. १ : १९, २०। यीशु के शब्द, "अब से तुम मनुष्यों को जीवित पकड़ोगे" (हि. सं.) पतरस से ही कहे जाते हैं। मर. १ : १७ में इन के समान शब्द पतरस और अन्द्रियास से कहे जाते हैं (लूका में अन्द्रियास का उल्लेख नहीं है)। परंतु पद ११ में क्रियाएं बहुवचन में हैं, जिस से अनुमान लगाया जा सकता है कि यह प्रतिज्ञा उन सब से की गई। मनुष्यों को पकड़ने का अर्थ यह है कि वे उनको परमेश्वर के राज्य में लाएंगे, कि परमेश्वर की इच्छा उन में पूरी हो जाए।

(ख) एक कोढ़ी को और एक अर्धांगी को स्वास्थ्य दान ५ : १२ २६
(मर. १ : ४०-४५; २ : १-१२; मत्त. ८ : १-४; ९ : १-८)

लू. ५ : १२–६ : १६ सब मर. १ : ४०–३ : ८ से उद्धृत है। मरकुस का कोई अंश नहीं छोड़ा गया। क्रम भी मरकुस का ही है, केवल लू. ६ : १२-१६ में मरकुस के क्रम में थोड़ा सा परिवर्तन है। मर. २ : १–३ : ६=लूका ५ : १७–६ : ११ के संबंध में मरकुस की टीका में टिप्पणी पढ़िए।

५ : १२-१६ के संबंध में मर० १ : ४०-४५ की टीका को पढ़िए। **५ : १२ पु.**

मरकुस में नहीं है। लूका को इन संपादकीय शब्दों को जोड़ना पड़ा क्योंकि उस ने इस से पिछले अंश को जोड़कर मरकुस के क्रम को तोड़ा। इस अंश में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं है, मौलिक अर्थ वही है जो मरकुस के वर्णन का है। वर्णन संक्षिप्त किया गया है। ५ : १३ में लूका ने, मत्ती के समान, "क्रुद्ध होकर" शब्दों को छोड़ा है (मर. १ : ४१ हि. सं. पाद-टिप्पणी। हि. प्र., "तरस खाकर")। इसके संबंध में मर. १ : ४१ की टीका को पढ़िए। ५ : १६ में लूका ने यह निष्कर्ष निकाला है कि यीशु प्रार्थना करने के अभिप्राय से निर्जन स्थान गया।

५ : १७-२६—पद १७ मर. २ : १, २ से पूर्णतः भिन्न है। लूका के अनुसार फरीसी और व्यवस्थापक उपस्थित थे। "व्यवस्थापक" शब्द (यूनानी मूल शब्द, "नॉमोदिदस्कलस") केवल यहां, प्रे. ५ : ३४ और १ तीम. १:७ में पाया जाता है। एक अन्य यूनानी शब्द अनेक बार लूका में "व्यवस्थापक" से अनूदित होता है। इस शब्द का अर्थ "शास्त्री" है (शास्त्रियों के संबंध में मर. १ : २१-२८ की टीका को पढ़िए)। "शास्त्री" का प्रयोग लूका में चौदह बार किया गया है। लूका लिखता है कि ये लोग दूर से, विशेष रूप से यरूशलेम, अर्थात् यहूदी धर्म के केंद्र से, आए थे। मरकुस के पद ६ में केवल शास्त्रियों का उल्लेख है, फरीसियों का नहीं। अधिक शास्त्री फरीसी होते थे। लूका इस चमत्कारात्मक कार्य के स्पष्टीकरण में लिखता है, "चंगा करने के लिए प्रभु की सामर्थ्य उसके साथ थी"। इसका अर्थ परमेश्वर की सामर्थ्य है, जिसके द्वारा यीशु ने इस मनुष्य को स्वस्थ किया। इस वर्णन को लूका ने कहीं कहीं संक्षिप्त किया, कहीं कहीं बढ़ाया भी है, जैसे पद १८=मरकुस पद ३। **५ : १७** में खपरैल हटाने का वर्णन है, जहां मरकुस के अनुसार उन्हों ने छत "खोदकर खोल डाली"। लूका ने इसका अनुकूलन ऐसे स्थान से किया है जहां खपरैलवाले घर होते थे (मरकुस की टीका को भी देखिए)। पद २५ में लूका ने "परमेश्वर की बड़ाई करता हुआ" और पद २६ में "बहुत डरकर" शब्दों को जोड़ा है।

(ग) लेवी को आवाहन, उपवास का प्रश्न। ५ : २७-३९
(मर. २ : १३-२२; मत्त. ९ : ९-१७)

इन दो अंशों में लूका कोई ऐसा परिवर्तन नहीं करता जिस से मरकुस के वर्णन के अर्थ में कुछ अंतर हो जाए। मरकुस की टीका को पढ़िए।

५ : १७-३२—पद २८ में लूका ने "सब कुछ छोड़कर" शब्दों को जोड़ा है। इसका अर्थ यह है कि लेवी यीशु को पूर्ण आत्मसमर्पण करता है। मर. २ : १५ में यह स्पष्ट नहीं है कि घर किस का था। लूका ने पद २९ में इसका स्पष्टीकरण करके लिखा है कि "लेवी ने अपने घर में. . . ."। ५ : ३० में फरीसियों और शास्त्रियों के प्रश्न के शब्द मध्यम पुरुष बहुवचन में, परंतु मरकुस में वे यीशु के संबंध में और अन्य पुरुष एकवचन में है। **५ : ३२** में "मन फिराने के लिए" शब्द जोड़े गए हैं। यह भी लूका का अपना स्पष्टीकरण है। यह मरकुस में वर्णित कथन का निहितार्थ स्पष्ट करता है।

५ : ३३-३९ – ५ : ३६ में लूका ने मरकुस के वर्णन को परिवर्तित किया है।

उद्देश्यों के अनुसार अनुकूलन किया। यह अनुमान ही है, परंतु कुछ इस प्रकार का स्पष्टीकरण इन दो विवरणों की मांग है।

५ : १—गन्नेसरत की झील गलील सागर है। "गन्नेसरत" नाम भी प्रचलित था। यह उस मैदान का नाम था जो झील के उत्तर-पश्चिमी तट पर स्थित था। केवल लूका "झील" के लिए ठीक शब्द का प्रयोग करता है ("लिम्ने")। अन्य सुसमाचारों में "थलस्सा", अर्थात् सागर है, भले ही उसका अनुवाद हि. प्र. में "झील" किया गया है। ५ : २, ३—तुलना कीजिए मर. ४ : १, जहां यीशु बीज बोनेवाले का दृष्टांत नौका में बैठकर सुनाता है। लू. ८ : ४ में से यह बात छोड़ी गई है, अतः यह उचित अनुमान है कि उस ने इस ब्योरे को वहां से लेकर इस वर्णन में सम्मिलित किया है। यहां उपदेश का विषय नहीं बताया गया है।

५ : ४-९—यीशु विशेष रूप से पतरस को संबोधित करता है। यीशु का आदेश पतरस के दैनिक काम के अनुकूल था। पतरस मछुआ था, अतः वह इस काम से भली भांति परिचित था। यहां वह यीशु को "स्वामी" ("अपिस्ताता") कहता है। समस्त नया नियम में केवल लूका इस शब्द का प्रयोग करता है (८ : २४, ४५; ९ : ३३, ४९; १७ : १३)। अन्य सुसमाचारों में यीशु "गुरु" (दिदस्कलस) कहा जाता है। पद ५ में पतरस के शब्दों में संशय की अभिव्यक्ति है। परंतु सफलता प्राप्त करने पर वह विस्मय से अभिभूत हो यीशु के चरणों में गिरकर उसे "प्रभु" संबोधित करता है। "गुरु" की अपेक्षा "प्रभु" शब्द अत्यंत सार्थक है। यहां, सुसमाचार के आरंभ में ही, लूका प्रकट करता है कि यीशु के ईश्वरीय व्यक्तित्व और उसके आश्चर्यजनक कार्यों ने शिष्यों में उसके प्रति श्रद्धा की भावना उत्पन्न की। परिणाम-स्वरूप पतरस अपनी अयोग्यता को अनुभव करता है।

५ : १०, ११ – इस वर्णन में याकूब और यूहन्ना की गौण स्थिति है, तुलना कीजिए मर. १ : १९, २०। यीशु के शब्द, "अब से तुम मनुष्यों को जीवित पकड़ोगे" (हिं. सं.) पतरस से ही कहे जाते हैं। मर. १ : १७ में इन के समान शब्द पतरस और अन्द्रियास से कहे जाते हैं (लूका में अन्द्रियास का उल्लेख नहीं है)। परंतु पद ११ में क्रियाएं बहुवचन में हैं, जिस से अनुमान लगाया जा सकता है कि यह प्रतिज्ञा उन सब से की गई। मनुष्यों को पकड़ने का अर्थ यह है कि वे उनको परमेश्वर के राज्य में लाएंगे, कि परमेश्वर की इच्छा उन में पूरी हो जाए।

(ख) एक कोढ़ी को और एक अधांगी को स्वास्थ्य दान ५ : १२ २६

(मर. १ : ४०-४५; २ : १-१२; मत्त. ८ : १-४; ९ : १-८)

लू. ५ : १२–६ : १६ सब मर. १ : ४०–३ : ८ से उद्धृत है। मरकुस का कोई अंश नहीं छोड़ा गया। क्रम भी मरकुस का ही है, केवल लू. ६ : १२-१६ में मरकुस के क्रम में थोड़ा सा परिवर्तन है। मर. २ : १–३ : ६=लूका ५ : १७–६ : ११ के संबंध में मरकुस की टीका में टिप्पणी पढ़िए।

५ : १२-१६ के संबंध में मर० १ : ४०-४५ की टीका को पढ़िए। **५ : १२ पू.**

मरकुस में नहीं है। लूका को इन संपादकीय शब्दों को जोड़ना पड़ा क्योंकि उस ने इस से पिछले अंश को जोड़कर मरकुस के क्रम को तोड़ा। इस अंश में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं है, मौलिक अर्थ वही है जो मरकुस के वर्णन का है। वर्णन संक्षिप्त किया गया है। ५ : १३ में लूका ने, मत्ती के समान, "क्रुद्ध होकर" शब्दों को छोड़ा है (मर. १ : ४१ हि. सं. पाद-टिप्पणी। हि. प्र., "तरस खाकर")। इसके संबंध में मर. १ : ४१ की टीका को पढ़िए। ५ : १६ में लूका ने यह निष्कर्ष निकाला है कि यीशु प्रार्थना करने के अभिप्राय से निर्जन स्थान गया।

५ : १७-२६—पद १७ मर. २ : १, २ से पूर्णातः भिन्न है। लूका के अनुसार फरीसी और व्यवस्थापक उपस्थित थे। "व्यवस्थापक" शब्द (यूनानी मूल शब्द, "नॉमोदिदस्कलस") केवल यहां, प्रे. ५ : ३४ और १ तीम. १:७ में पाया जाता है। एक अन्य यूनानी शब्द अनेक बार लूका में "व्यवस्थापक" से अनूदित होता है। इस शब्द का अर्थ "शास्त्री" है (शास्त्रियों के संबंध में मर. १ : २१-२८ की टीका को पढ़िए)। "शास्त्री" का प्रयोग लूका में चौदह बार किया गया है। लूका लिखता है कि ये लोग दूर से, विशेष रूप से यरूशलेम, अर्थात् यहूदी धर्म के केंद्र से, आए थे। मरकुस के पद ६ में केवल शास्त्रियों का उल्लेख है, फरीसियों का नहीं। अधिक शास्त्री फरीसी होते थे। लूका इस चमत्कारात्मक कार्य के स्पष्टीकरण में लिखता है, "चंगा करने के लिए प्रभु की सामर्थ्य उसके साथ थी"। इसका अर्थ परमेश्वर की सामर्थ्य है, जिसके द्वारा यीशु ने इस मनुष्य को स्वस्थ किया। इस वर्णन को लूका ने कहीं कहीं संक्षिप्त किया, कहीं कहीं बढ़ाया भी है, जैसे पद १८=मरकुस पद ३। ५ : १७ में खपरैल हटाने का वर्णन है, जहां मरकुस के अनुसार उन्हों ने छत "खोदकर खोल डाली"। लूका ने इसका अनुकूलन ऐसे स्थान से किया है जहां खपरैलवाले घर होते थे (मरकुस की टीका को भी देखिए)। पद २५ में लूका ने "परमेश्वर की बड़ाई करता हुआ" और पद २६ में "बहुत डरकर" शब्दों को जोड़ा है।

(ग) लेवी को आवाहन, उपवास का प्रश्न। ५ : २७-३९
(मर. २ : १३-२२; मत्त. ९ : ९-१७)

इन दो अंशों में लूका कोई ऐसा परिवर्तन नहीं करता जिस से मरकुस के वर्णन के अर्थ में कुछ अंतर हो जाए। मरकुस की टीका को पढ़िए।

५ : १७-३२—पद २८ में लूका ने "सब कुछ छोड़कर" शब्दों को जोड़ा है। इसका अर्थ यह है कि लेवी यीशु को पूर्ण आत्मसमर्पण करता है। मर. २ : १५ में यह स्पष्ट नहीं है कि घर किस का था। लूका ने पद २९ में इसका स्पष्टीकरण करके लिखा है कि "लेवी ने अपने घर में. . . ."। ५ : ३० में फरीसियों और शास्त्रियों के प्रश्न के शब्द मध्यम पुरुष बहुवचन में, परंतु मरकुस में वे यीशु के संबंध में और अन्य पुरुष एकवचन में है। **५ : ३२** में "मन फिराने के लिए" शब्द जोड़े गए हैं। यह भी लूका का अपना स्पष्टीकरण है। यह मरकुस में वर्णित कथन का निहितार्थ स्पष्ट करता है।

५ : ३३-३९ — **५ : ३६** में लूका ने मरकुस के वर्णन को परिवर्तित किया है।

कदाचित् उसका अभिप्राय यह था कि कपड़ों और दाखरस के दृष्टांतों में अनुकूलन और संतुलन उत्पन्न करे, परंतु वास्तव में इसका रूप मरकुस में अच्छा है, क्योंकि कौन नया वस्त्र फाड़कर उसके कपड़े को पुराने कपड़े पर लगाता है ? **५ : ३९** केवल लूका में है। लूका ने इसको किसी अन्य प्रसंग से लेकर जोड़ा होगा। कदाचित् इसका अर्थ यह है कि वे लोग, जो मन-परिवर्तन नहीं करना चाहते, यीशु प्रदत्त नव-जीवन को अस्वीकार करते हैं।

(घ) सबत पालन का प्रश्न, सूखे हाथवाले को स्वास्थ्य दान, बारह शिष्यों का चयन ६ : १-१६

(मर. २ : २३-२८; ३ : १-६, १३-१९; मत्त. १२ : १-१४; १० : १-४)

मरकुस के उपरोक्त उद्धरणों की टीका को पढ़िए। मरकुस और लूका में भिन्नताओं का वर्णन निम्नलिखित है।

६ : १-५—पद १ में लूका ने "हाथों से मल मलकर खाते जाते थे" शब्दों को जोड़ा है। यह लूका का स्पष्टीकरण है। **६ : २** में लूका के अनुसार फरीसी प्रत्यक्ष रूप से शिष्यों को संबोधित करते हैं। मरकुस के अनुसार उन्हों ने यीशु से शिष्यों के संबंध में पूछा। ६ : ४ में लूका ने मरकुस की इस गलती को छोड़ दिया है कि 'दाऊद के समय अबियातार महायाजक था' (इस के संबंध में मर. २ : २३-२८ की टीका को देखिए)। लूका ने ६ : ५ में से, "उस ने उन से कहा" शब्दों को छोड़, मरकुस के पद २७ को बिलकुल ही छोड़ा है, अर्थात् कि सबत का दिन मनुष्य के लिए बनाया गया न कि मनुष्य सबत के दिन के लिए।

६ : ६-११—पद ६ में लूका ने मरकुस के वर्णन को बढ़ाकर लिखा है कि यह "किसी और सबत के दिन" हुआ, और कि यीशु उपदेश देने लगा। **६ : ८** में उस ने यह स्पष्टीकरण किया है कि "यीशु उनके विचार जानता था"। "विचार" शब्द का यूनानी मूल शब्द बहुधा "कुविचार" के लिए प्रयुक्त होता है। यहां लूका ने इस वर्णन को विस्तार दिया है। परंतु पद ९ में उस ने मर. पद ४ के शब्द "वे चुप रहे" छोड़े हैं। **६ : १०** में उस ने यीशु के क्रोध का उल्लेख नहीं किया है, जो मरकुस पद ५ में है। मत्ती और लूका साधारणतः ऐसी बातें छोड़ते हैं। **पद ११** मरकुस के पद ६ से भिन्न है। लूका फरीसियों और हेरोदियों का उल्लेख नहीं करता, और स्पष्ट शब्दों में यह भी नहीं कहता कि वे यीशु का विनाश करना चाहते थे।

६ : १२-१६—यह अंश और अगला अंश (६ : १७-१९) मरकुस की अपेक्षा उलटे क्रम में है। कदाचित् क्रम बदलने में लूका का अभिप्राय यह था कि स्वास्थ्य-दान संबंधी वर्णन मैदान प्रवचन से पहले आए। ६ : १२ में लूका ने फिर यह तथ्य जोड़ा है कि यीशु ने इस अत्यंत महत्वपूर्ण अवसर पर प्रार्थना की, और रात भर प्रार्थना करता रहा। यीशु को विशेष रूप से अपने पिता के मार्गदर्शन की आवश्यकता थी। तुलना कीजिए मर. १ : ३५ और ६ : ४६ (उस बड़े खंड में जिसे लूका ने सम्मिलित नहीं किया)

जहां यीशु निर्जन स्थान में और पर्वत पर जाकर प्रार्थना करता है। लूका ने मरकुस के पद १४, १५ को नितांत छोड़ दिया है, अतः ६ : १३ भी मरकुस के वर्णन से भिन्न है। इस प्रकार लूका में यह वर्णित नहीं है कि यीशु ने उन लोगों को चुन लिया "जिन्हें वह चाहता था", और कि उस ने उन्हें इस लिए चुना कि वे उसके साथ रहें और प्रचार करने के लिए भेजे जाएं। लूका इस तथ्य पर बल देता है कि ये बारह शिष्य "प्रेरित" थे। मरकुस में बारह शिष्य केवल ६ : ३० में प्रचार-यात्रा से लौटने के प्रसंग में, प्रेरित कहे गए हैं। अनेक हस्तलेखों में मर. ३ : १४ में भी कहा गया है कि यीशु ने शिष्यों को प्रेरित कहा, परंतु अधिकांश विद्वान इसे मूल पाठ का वास्तविक भाग नहीं मानते (इसके संबंध में मरकुस की टीका को देखिए)। संभाव्यतः ऐतिहासिक रूप से यीशु ने उन्हें इस चरण पर प्रेरित नहीं कहा होगा। अन्य सुसमाचारों की अपेक्षा लूका में अधिक बार शिष्यों को "प्रेरित" कहा गया है (९ : १०; १७ : ५; २२ : १४; २४ : १०; और प्रेरितों के काम में बार बार)। "प्रेरित" के संबंध में बाइबल ज्ञानकोश देखिए। शिष्यों की सूची के संबंध में मरकुस की टीका को पढ़िए।

(३) मैदान प्रवचन ६ : १७-४९

इस प्रवचन की सामान्य जानकारी के संबंध में मत्त. ५ : १, २ की टीका को पढ़िए। वहां मत्ती में पर्वत प्रवचन और लूका में मैदान प्रवचन की पारस्परिक तुलना की गई है। दोनों प्रवचनों के विषय-क्रम समान हैं। इस संबंध में तीन मुख्य संभावनाएं हैं : (i) कि उन स्थलों में जो मत्ती और लूका दोनों में हैं मत्ती का वर्णन Q के अनुरूप है, जिसका अनुकूलन लूका ने किया। (ii) कि Q का मूल रूप लूका में है, अनुकूलन मत्ती ने किया। (iii) कि अपने अपने अभिप्राय के अनुसार दोनों सुसमाचार-रचयिताओं ने Q का अनुकूलन किया है। कदाचित् इन में से तीसरा विचार ठीक है।

(क) मैदान उपदेश और स्वास्थ्य दान, आशीर्वचन और अभिशाप ६ : १७-२६

(मर. ३ : ७, ८, १०; मत्त. ४ : २४, २५; ५ : ३, ४, ६, ११, १२)

६ : १७-१९ में मर. ३ : ७, ८, १० का संक्षेपण और अनुकूलन किया गया है। लूका ने यह बात जोड़ी है कि ये लोग "उसकी सुनने और अपनी बीमारियों से चंगा होने के लिए" उसके पास आए। इस प्रकार "सुनने" शब्द से इस प्रवचन की तैयारी की गई है। मरकुस में झील के तट के दृश्य का चित्रण है, जिसका अनुकूलन करके लूका ने उसकी स्थिति मैदान बताया है। इस कारण लूका ने नाव का उल्लेख भी किया है। अन्य अनेक छोटे परिवर्तन भी हैं। आए हुए लोग अपेक्षाकृत विस्तृत क्षेत्र से थे, परंतु मरकुस में अधिक स्थानों का वर्णन है। इन प्रदेशों को मानचित्र में देखिए। मरकुस का अनुसरण करते हुए लूका स्वास्थ्य-दान के कार्य का उल्लेख भी करता है। **६ : १९** उ. केवल लूका में है। उसकी तुलना ५ : १७ और उसकी व्याख्या से कीजिए।

६ : २०-२६—इस अंश के संबंध में मत्त. ५ : ३-१२ की टीका के पहले पैरा

को और मत्त. ५ : ३, ४, ६, ११, १२ की व्याख्या को पढ़िए। **६ : २०, २१ पू.** की व्याख्या मत्ती की टीका में पर्याप्त है। संभवत: मत्त. ५:४ लू. ६ : २१ उ. के अनुरूप है–उसके अर्थ के संबंध में मत्ती की टीका में देखिए। वर्तमान का दुख भविष्य के सुख में परिवर्तित होगा। भविष्य के लिए बड़ी आशा है। **६ : २१, २३**–मत्त. ५ : ११, १२ की व्याख्या मूलत: इन पदों पर लागू है। "तुम्हें निकाल देंगे. . . .तुम्हारा नाम बुरा मानकर काट देंगे" शब्दों को जोड़कर संभाव्यत: लूका ने स्वयं अपने स्रोत को बढ़ाया है। यह स्पष्ट है कि यहां किसी प्रकार के बहिष्कार का वर्णन है। इस में संभाव्यत: कालांतर में यहूदी-वंशी ख्रिस्तियों का सभागृहों से बहिष्करण प्रतिबिंबित है।

६ : २४-२६ के अभिशापों की अभिव्यक्ति आशीर्वचनों की अभिव्यक्ति के अनुरूप है। इन में मानो आशीवर्चनों का विपरीत पक्ष प्रकट किया गया है। ये अभिशाप मत्ती में नहीं हैं। संभव है कि ये लूका की रचना हैं। इन पदों में यह विचार निहित है कि जो लोग संबोधित हैं वे जीवन का सुख भोग करते हैं और अन्य लोगों के दुखों की उपेक्षा करते हैं, अत: उन पर शोक है।

(ख) शत्रुओं से प्रेम ६ : २७-३६

(मत्त. ५ : ३९-४२, ४४-४८; ७ : १२)

मत्ती के उपरोक्त स्थलों की व्याख्या को पढ़िए।

इस अंश में पदों का क्रम मत्ती की अपेक्षा लूका में कुछ भिन्न है। मत्ती की कुछ सामग्री लूका में नहीं है। लूका ६ : ३१=मत्त. ७ : १२। लू. ६ : ३४, ३५ पू. मत्ती में नहीं हैं।

६ : २७-३०—पद २७ मत्ती के पद ४४ के अनुरूप है। इस पद के "जो तुम से द्वेष करते हैं उनकी भलाई करो; जो तुम्हें शाप देते हैं, उन्हें आशीर्वाद दो" शब्द मत्ती में नहीं हैं। रो. १२ : १४ से तुलना कीजिए।

६ : २७ उ. में मौलिक सिद्धांत है, अर्थात् शत्रुओं से प्रेम करने का आदेश। लूका के पुनर्विन्यास के द्वारा यह सिद्धांत इन पदों के आरंभ में आता है, तदनंतर ६ : २७ पू. में इस सिद्धांत की भिन्न व्यावहारिक अभिव्यक्तियों का वर्णन है। बैर (द्वेष), शाप देना, अपमान करना, गाल पर थप्पड़ मारना, दोहर (अंगरखा) छीन लेना, सब शत्रुता की अभिव्यक्तियां हैं। मांगना (पद ३०) शत्रुता तो नहीं है, भले ही हम बहुधा मांगने-वालों को शत्रु ही समझते हैं। इस प्रकार भलाई करना, आशीर्वाद देना, किसी के लिए प्रार्थना करना, दूसरा गाल फेरना, अपना माल छीननेवाले या मांगनेवाले को देना, सब प्रेम की अभिव्यक्तियां हैं। **६ : ३१** में लूका ने एक प्रसिद्ध कथन को जोड़ा है, जो मत्त. ७ : १२ में, अन्य प्रसंग में, पाया जाता है। यह मानो प्रेम की व्यावहारिक अभिव्यक्ति का सारांश है। इस पद के संबंध में मत्ती की टीका को भी देखिए।

उपरोक्त पदों में लूका ने मत्ती के पद ३९ पू. को छोड़ा है। उस ने केवल "गाल" लिखा है, न कि "दहिने गाल" (मत्ती), और मत्ती की अपेक्षा ("कुरता" और "अंगरखा" का क्रम बदल दिया है। कदाचित् कारण यह है कि मत्ती में न्यायिक कार्यविधि का,

परंतु लूका में "छीनने" का वर्णन है (मत्ती की व्याख्या को देखिए)। लूका ने मत्त. ५ : ४१ को भी छोड़ा है।

६ : ३२ में मत्ती के "कर लेनेवालों" के स्थान पर और ६ : ३३ में मत्ती के "अन्य जातियों" के स्थान पर लूका ने "पापी" लिखा है। यहां लूका सामान्यीकरण करता है। ६ : ३३ अन्य बातों के प्रति भी मत्ती से भिन्न है। ६ : ३४, ३५ पू. केवल लूका में हैं। संसार का यह ढंग है कि लोग उन व्यक्तियों से भलाई करते हैं जिन से उन्हें कुछ प्राप्ति की आशा होती है। प्रेम की मांग यह है कि हम ऐसी आशा न रखते हुए बल्कि दी हुई वस्तु के लौटाए जाने की अपेक्षा न करते हुए भी देने और प्रेम करने के लिए तैयार रहें। अतः पद ३५ में मानो सब अपरोक्त बातों का सार है। ऐसा प्रेम करने का आधार यह है कि इस में परमेश्वर स्वयं आदर्श है, उसका प्रेम इसी कोटि का है। इस पद में "अपने स्वर्गीय पिता" (मत्त. ५ : ४५) के स्थान पर "परमप्रधान" (हिं. सं., बुल्के और ध. ग्र. में, "सर्वोच्च") है। परमेश्वर के लिए यूनानी मूल शब्द का प्रयोग सप्तति अनुवाद में बहुधा किया गया है। ६ : ३६ में "सिद्ध" (मत्त. ५ : ४८; हिं. सं. और बुल्के में "पूर्ण") के स्थान पर "दयालु" है। मत्ती ५ : ४८ की व्याख्या इस पर भी लागू है।

(ग) दूसरों पर दोष लगाना, वृक्ष और फल, सुनना और करना ६ : ३७-४६
(मत्त. ७ : १-५; १५ : १४; १० : २४, २५; ७ : १६-२१; १२ : ३३-३५; ७ : २४-२७)

६ : ३७-४२ में मत्त. ७ : १-५ और कुछ अन्य कथन सम्मिलित हैं जो मत्ती में भिन्न प्रसंगों में सम्मिलित किए गए हैं। मत्त. ७ : १-५ की व्याख्या को पढ़िए। मत्ती का वर्णन अधिक संघटित है। मत्त. ७ : २ उ. लूका में नहीं है। लू. ६ : ३७ उ. और ३८ (अंतिम वाक्य को छोड़) मत्ती में नहीं है। ३७ उ. पूर्ण रूप से ३७ पू. से संगत है, परंतु ऐसा प्रतीत होता है कि पद ३८ किसी अन्य अज्ञात प्रसंग से जोड़ा गया है। यद्यपि इस पद का संबंध ३७ पू. के साथ अस्पष्ट है तो भी संभवतः लूका ने, अथवा उसके स्रोत ने, उसे इस संदर्भ में जोड़ा कि इस पद का अंतिम वाक्य ("नाप" के संबंध में) का स्पष्टीकरण हो, क्योंकि यह नियम "देने" पर भी लागू है। "नाप" के संबंध में कथन मर. ४ : २४ में भी पाया जाता है, परंतु उसका प्रसंग भिन्न है। मौलिक सत्य यह है कि जिस व्यक्ति में देने का, उदारता का भाव हो उसको दिया जाएगा। "लोग. . .डालेंगे" (शाब्दिक अनुवाद, "देंगे") एक इब्रानी मुहाविरा है जिसका वास्तविक अर्थ यह नहीं है कि वे लोग जिनको तुम ने कुछ दिया है, या अन्य मनुष्य तुम्हें प्रतिदान देंगे वरन् यह कि परमेश्वर तुम्हें देगा।

६ : ४३-४६—ऐसे ही कथन मत्त. ७ : १६-२१; १२ : ३३-३५ में भी पाए जाते हैं — उन स्थलों की व्याख्या को पढ़िए। मत्ती के इन स्थलों में ये कथन झूठे नबियों और फरीसियों पर लागू किए गए हैं। परंतु यह निहित अर्थ है कि ये कथन किसी वर्ग के लिये नहीं, वरन सर्वसाधारण के लिये हैं। शब्दावली की दृष्टि से लूका और

मत्ती के विवरण भिन्न हैं, परंतु दोनों का एक ही मौलिक अर्थ है। किसी मनुष्य के कथन और उसके कार्य उसके यथार्थ स्वभाव को प्रकट करते हैं। मत्ती के उपरोक्त स्थलों की व्याख्या इस अंश पर भी लागू है।

६ : ४७-४६—मत्त. ७ : २४-२७ की व्याख्या को पढ़िए। शाब्दिक अंतर होने के बावजूद मौलिक रूप से दोनों वर्णनों का अर्थ समान है। संभाव्यतः लूका ने अन्य देश के जल-वायु के अनुसार इस अंश का अनुकूलन किया है। मत्ती का विवरण पलिश्तीन की भौगोलिक स्थिति के अनुकूल है। लूका इस तथ्य पर बल देता है कि यीशु के वचन पर चलनेवाला मनुष्य घर की पक्की और गहरी नींव डालता है। इस नींव के कारण बाढ़ का प्रभाव नहीं होता। यह नींव यीशु के वचन के प्रति आज्ञापालन है। ऐसा आज्ञापालन तब ही संभव है जब वैयक्तिक रूप से यीशु के प्रति संपूर्ण निष्ठा रहती है, अर्थात् हम शुद्ध मन से उसे अपना प्रभु मानते हैं (पद ४६)।

(४) गलील में सेवाकार्य के दृश्य ७ : १-८ : ३

(क) शतपति के दास को स्वस्थ करना ७ : १-१०
(मत्त. ८ : ५-१०, १३)

मत्त. ८ : ५-१०, १३ की व्याख्या को पढ़िए। दोनों विवरणों के ब्योरों में बहुत अंतर है, परंतु कथोपकथन में बड़ी समानता है। मौलिक अर्थ और अभिप्राय समान है, अर्थात् यह प्रकट करना कि यीशु केवल यहूदियों के लिए नहीं, अन्यजातियों के लिए भी आया। मत्ती में पर्वत प्रवचन और इस वर्णन के बीच में कोढ़ी को स्वास्थ्य-दान का विवरण है। लूका ने इसे प्रवचन के पश्चात् ही सम्मिलित किया है।

७ : १ संपादकीय है। **७ : ३-६ पू.** मत्ती में नहीं हैं। **७ : १०** भी इन पदों के अनुकूल है। अतः मत्ती के अनुसार शतपति स्वयं यीशु के पास आता है, परंतु लूका के अनुसार वह पहले यहूदियों के धर्म वृद्धों को, फिर अपने मित्रों को, यीशु के पास भेजता है। उनको भेजने का कारण पद ७ पू. में बताया गया है, जो मत्ती में नहीं है। कथोपकथन में शब्द-समानता से स्पष्ट होता है कि एक ही घटना का वर्णन दोनों सुसमाचारों में है। दोनों लेखक एक ही स्रोत, अर्थात् Q, का प्रयोग कर रहे थे। परंतु इस प्रश्न के प्रति कि मत्ती ने वर्णन का संक्षेपण किया या लूका ने उसे बढ़ाया विद्वानों में मतभेद है। संभवतः लूका का वर्णन Q स्रोत के अधिक निकट है और मत्ती ने अपनी शैली के अनुसार उसका संक्षेपण किया है। यह बात महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि विवरण का सार उन ब्योरों में पाया जाता है जो दोनों सुसमाचारों में समान हैं। अतः मत्ती की टीका में जो व्याख्या है वह लूका के वर्णन पर भी लागू है।

सब से महत्वपूर्ण शब्द शतपति के हैं (पद ६-८)। शतपति यह प्रकट करता है कि अन्य जाति होते हुए भी वह यीशु पर पूर्ण विश्वास करना जानता है। यही प्रतिक्रिया है जो यीशु देखना चाहता था, और जिसके कारण उस ने शतपति की प्रशंसा की। इस विश्वास और यीशु की प्रेमपूर्ण सामर्थ्य के द्वारा दास स्वस्थ्य हो गया।

(ख) नाईन की विधवा ७ : ११-१७

यह वर्णन केवल लूका में है। वह एक विशुद्ध आश्चर्यकर्म-कथा है जो इस स्थल पर अगले अंश की तैयारी में सम्मिलित की गई है। नाईन नासरत के दक्षिण-पूर्व में लगभग साढ़े नौ किलोमीटर की दूरी पर स्थित था। इस वर्णन की विशेष बातें ये हैं कि स्त्री विधवा थी, नवयुवक एकमात्र पुत्र था, अतः बड़ी निराशा की परिस्थिति थी। विश्वास का उल्लेख नहीं है, यीशु को विधवा की इस दशा पर दया आई। इसी दया के कारण ही वह नवयुवक को जीवित करता है (पद १३, १४)। ७ : १३ में पहली बार लूका वृत्तांत-भाग में यीशु को "प्रभु" कहता है। लूका अनेकों बार ऐसा करता है, परंतु "प्रभु" शब्द का वृत्तांत भागों में प्रयोग अन्य सहदर्शी सुसमाचारों में नहीं है। यीशु के शब्द से ही नवयुवक उठ बैठता है। ७ : १५ में "उस ने उसे उसकी माँ को सौंप दिया" शब्द मूल यूनानी में शब्दशः २ रा. १७ : २३ के सप्तति अनुवाद के समान हैं। उस स्थल में यह वर्णन है कि एलिय्याह सारपत की विधवा के पुत्र को जीवित करता है। इसी प्रकार २ रा. ४ : ३२-३७ में यह वृत्तांत है कि एलीशा एक बालक को जीवित करता है। लूका के विवरण में इन दोनों वर्णनों की ओर संकेत है। लोग यीशु को एलिय्याह और एलीशा के समान एक नबी मानते हैं, परंतु यह नहीं पहचानते कि वह ख्रिस्त है। ऐसे आश्चर्यकर्मों के संबंध में जिन में यीशु प्रकृति पर अधिकार प्रकट करता है मर. ४ : ३५-४१ की व्याख्या के तीसरे पैरा और ५ : २१-४३ की व्याख्या की अंतिम पंक्तियों को देखिए।

(ग) यूहन्ना बपतिस्मा-दाता का प्रश्न, यूहन्ना के संबंध में यीशु के शब्द ७ : १८-३५
(मत्त. ११ : २-११, १६-१९)

मत्त. ११ : २-११, १६-१९ की व्याख्या को पढ़िए। यह व्याख्या लगभग लूका के लिए भी पर्याप्त है, क्योंकि अधिकतर दोनों सुसमाचारों में शाब्दिक समानता है। कहीं कहीं मत्ती ने वर्णन का थोड़ा संक्षेपण किया है। मत्ती के १२-१५ पद किसी अन्य स्रोत से हैं। लूका के पद २०, २१ मत्ती में नहीं है, परंतु इन पदों में कोई नई सामग्री नहीं है। ७ : २९, ३० भी मत्ती में नहीं है, परंतु समान विचार मत्त. २१ : ३१, ३२ में है। हि. सं. से स्पष्ट है कि इन पदों का अर्थ यह है कि सर्वसाधारण और करलेनेवालों ने "यूहन्ना का बपतिस्मा लेने के कारण परमेश्वर की धार्मिकता स्वीकार की", परंतु "फरीसियों और व्यवस्थाचार्यों ने उनका बपतिस्मा न लेने के कारण अपने विषय में परमेश्वर की योजना व्यर्थ कर दी"। ७ : ३५ में मत्त. ११ : १९ के "अपने कामों से" के स्थान पर "अपनी सब संतानों से" है। संभाव्यतः "संतान" का अर्थ है वे लोग जो यूहन्ना और यीशु के संदेशों को स्वीकार करते हैं। "ज्ञान" (हि. सं. में 'बुद्धि' जो सटीक अनुवाद है)। 'बुद्धि' का अर्थ है परमेश्वर की बुद्धि या प्रज्ञा। "सच्चा ठहराया गया" के लिये हिं. सं. अनुवाद में है "प्रमाणित होती है"। इस पदांश का अर्थ

यह है कि यीशु के संदेशों को स्वीकार करने वालों और उन पर आचरण करने वालों के द्वारा परमेश्वर की बुद्धि प्रमाणित था सच्ची सिद्ध होती है।

(घ) चरण अभ्यंजन, ऋणियों का दृष्टांत, सेवानिष्ट स्त्रियां ७ : ३६-८ : ३

अनेक टीकाकारों की यह मान्यता है कि लूका ने मर. १४ : ३-९ का अनुकूलन करके एक अलग दृष्टांत को भी जोड़ लिया है (पद ४०-४३)। मरकुस और लूका के वर्णनों की समानताएं निम्न-लिखित हैं : व्यक्ति का नाम शमौन होना, स्त्री का बाहर से आना, यीशु का अभ्यंजन, भोजन करने के लिए बैठना, "संगमरमर के पात्र में इत्र" शब्द। परंतु समानताओं की अपेक्षा भिन्नताएं बहुत अधिक हैं : शमौन मरकुस में कोढ़ी था, स्थान और समय का अंतर है; लूका में इत्र पांवों पर, मरकुस में सिर पर उंडेला जाता है। लूका में इस घटना का संबंध यीशु की मृत्यु से नहीं जोड़ा गया है। लूका में आपत्ति उठाई जाती है स्त्री के दुराचार के कारण, परंतु मरकुस में बहुमूल्य इत्र के अपव्यय के कारण। मरकुस में स्त्री के यीशु के चरणों को आंसुओं से भिगोकर उन्हें बालों से पोंछने का वर्णन नहीं है। कथोपकथन में कोई अनुरूपता नहीं है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि उपरोक्त मान्यता कि लूका ने मरकुस के वर्णन का अनुकूलन किया है ठीक नहीं है। इसके अतिरिक्त ७ : ४०-४३ समस्त अंश का अनिवार्य भाग है, जिसके बिना पद ४४ क्र., विशेषकर पद ४७, अपेक्षाकृत निरर्थक हैं। संभवतः मौखिक परंपरा के निर्माण और विकास की अवधि में दो पृथक वृत्तांतों का पारस्परिक प्रभाव हुआ। यह स्पष्ट है कि लूका के इस अंश में वर्णित परंपरा का प्रभाव यू. १२ : १-८ पर हुआ। इसके संबंध में यूहन्ना की टीका को पढ़िए। उपरोक्त सब बातों के कारण लू. ७ : ३६-४० को एक पृथक घटना का विवरण मानकर ही उसकी व्याख्या यहां की गई है।

७ : ३६-३८ – यद्यपि यीशु फरीसियों को उनके पाखंड के कारण फटकारता था तो भी उस ने उनके साथ भोजन करने को अस्वीकार नहीं किया। यह तथ्य वर्णित नहीं है, पर साधारणतः माना जाता है, कि यह पापिनी स्त्री वेश्या थी। ख्रिस्तीय परंपरा के अनुसार यह स्त्री मरियम मगदलीनी थी, परंतु इस परंपरा की सत्यता का कोई प्रमाण या समर्थन नहीं मिलता। यह संभव है कि स्त्री ने केवल अपने आंसुओं से यीशु के चरणों को पोंछा, और इत्र की बात मरकुस में वर्णित घटना से परंपरा में यों ही जोड़ी गई। ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्री का हृदय द्रवित हो उठा, वह पछताई, और प्रेम से विवश होकर उसने यह कार्य किया। ७ : ३९—स्त्री के विषय में शमौन का अनुमान बहुत गलत निकला। उसका अनुमान था कि यीशु ने नहीं पहचाना कि स्त्री कैसी थी। शमौन स्वयं को धार्मिक और स्त्री को पापिनी मानता था।

७ : ४०-४३ में यह मौलिक सिद्धांत व्यक्त है कि क्षमा की अनुक्रिया प्रेम है। ७ : ४४-४६ में यीशु फरीसी और स्त्री की तुलना करता है। यद्यपि शमौन ने यीशु को अपने घर में निमंत्रित किया था तो भी उसने अतिथि-सत्कार की साधारण प्रथाओं का पालन नहीं किया ७ : ४७ के हिन्दी अनुवादों के अनुसार स्त्री के पाप उसके प्रेम की बहुतायत के कारण क्षमा हुए। यह विचार नया नियम के उस प्रधान सिद्धांत

के विपरीत है कि क्षमा केवल परमेश्वर के अनुग्रह के कारण प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त यह विचार इसी पद के उत्तरार्द्ध और पद ४०-४३ के दृष्टांत के उस निष्कर्ष के विपरीत भी है, कि प्रेम क्षमा का कारण नहीं, उसकी उपज है। व्याकरण की दृष्टि से पद ४७ पू. का भिन्न अनुवाद संभव है; "उसके प्रेम की प्रचुरता यह प्रमाणित करती है कि उसके पाप क्षमा हुए हैं"। उपरोक्त कठिनाइयों के कारण इस अनुवाद को स्वीकार करना उपयुक्त प्रतीत होता है। इस प्रकार समस्त विवरण में संगति रहती है।

अनेक टीकाकारों के विचार के अनुसार ७ : ४८-५० अनावश्यक है, क्योंकि इन पदों में केवल पहले कही गई बातें दोहराई गई हैं। संभव है कि ये पद शिक्षा देने या प्रचार करने में परंपरा के मौखिक स्तर पर जोड़े गए। पद ५० का अंतिम वाक्य शब्दशः ८ : ४८=मर. ५ : ३४ के समान है। इस परिच्छेद में धर्म के अधिकारियों के संबंध में यीशु के कथन का एक उदाहरण दिया गया है, "मैं तुम से सच कहता हूं कि कर लेनेवाले और वेश्याएं परमेश्वर के राज्य में तुम से पहले प्रवेश कर रही हैं" (मत्त. २१ : ३१, हिं. सं.)।

८ : १-३—यह संपादकीय टिप्पणी केवल लूका में है। इसके पश्चात् लूका फिर मरकुस का अनुसरण करता है। मर. १५ : ४०, ४१ में भी इस बात का उल्लेख है कि कुछ स्त्रियां यीशु के पीछे हो लेती और उसकी सेवा करती थीं। लू. २३ : ४६ में, जो अनुरूपी स्थल है, स्त्रियों के नाम नहीं दिए गए। केवल मरियम मगदलीनी का नाम दोनों स्थलों में है। ये संपन्न स्त्रियां थीं जो सेवा करने से अपनी कृतज्ञता को व्यक्त करती थीं। यीशु उनके जीवनों में आमूल परिवर्तन लाया था। पद ३ में पाठांतर है। हिं. सं. ठीक है, "अपनी संपत्ति से उन लोगों की सेवा करती थीं", अर्थात् वे यीशु और उसके शिष्यों की सेवा करती थीं।

(५) दृष्टांत और सामर्थ्य के काम ८ : ४-५६

(क) बीज बोनेवाले का दृष्टांत, दृष्टांतों का अभिप्राय, यीशु के वास्तविक नातेदार ८ : ४-२१

(मर. ४ : १-१५; मत्त. ३ : १-१३, १८-२३)

इस स्थल पर लूका ने मर. ३ : १९ उ. - २१, कि यीशु के मित्र आकर उस से मिलना चाहते हैं, और कहते हैं कि "उसका मस्तिष्क विकृत हो गया है" (हि. सं.), तथा मर. ३ : २२-३० को भी (शैतान के संबंध में) छोड़ा है। शैतान ("बालजबूल") के संबंध में लू. ११ : १४-२३ में एक अनुरूपी वर्णन है। लूका मर. ३ : ३१-३५ को बीज बोनेवाले के दृष्टांत तथा अनेक अन्य कथनों के पश्चात् रखता है।

इस परिच्छेद के संबंध में मर. ४ : १-२५ की व्याख्या को पढ़िए। स्थूल रूप से यह व्याख्या लूका के वर्णन पर भी लागू है।

इस परिच्छेद के संबंध में मर. ४ : १-२५ की व्याख्या को पढ़िए। स्थूल रूप से यह व्याख्या लूका के वर्णन पर भी लागू है।

८ : ४-८—पद ४ में लूका ने "नगर नगर के लोग" शब्दों को जोड़ा है। उस ने

मरकुस की इस बात को छोड़ा है कि यीशु ने नाव में बैठकर शिक्षा दी। लूका में यही बात ५ : १-३ में, पतरस के आवाहन के संबंध में, है। इस अंश में लूका ने मरकुस के वर्णन को संक्षिप्त किया है, परंतु पद ५ में उसे बढ़ाया भी है। पद ६ में बीज "तरी न मिलने से" सूख जाता है। मरकुस के पद ६ के अनुसार वह "जड़ न पकड़ने के कारण" सूख गया। इस परिवर्तन से कदाचित् लूका का अभिप्राय स्पष्टीकरण करना था। पद ८ में लूका ने केवल "सौगुना" फल का उल्लेख किया है।

८ : ९, १० में केवल इस दृष्टांत के विषय में पूछा जाता है। इस संबंध में मरकुस के पद १०-१२ की व्याख्या को देखिए। यद्यपि इन पदों में लूका और मरकुस में कुछ शाब्दिक अंतर है तथापि मौलिक अर्थ एक ही है। मरकुस की व्याख्या में मर. ४ : ३३, ३४ पर विवेचन किया गया है। ये पद लूका में नहीं है, तो भी मरकुस की व्याख्या लू. ८ : १०, ११ पर भी लागू है। पद १० में मरकुस के पद ११, १२ का संक्षेपण है, परंतु अर्थ वही है।

८ : ११-१५—इस में भी लूका ने संक्षेपण और परिवर्तन किया है, परंतु मौलिक अर्थ वही है जो मरकुस में है। "उनके मन में से" और "ऐसा न हो कि वे विश्वास करके उद्धार पाएं" (पद २) स्पष्टीकरण करने के लिए जोड़े गए है। पद १३ में ("परीक्षा के समय बहक जाते हैं" ("उनका पतन हो जाता है", हिं. सं.) मरकुस के पद १७ उ. का संक्षेप है। पद १५ के अंत में परिवर्तन है—केवल लूका ने लिखा कि वे "धीरता पूर्वक फल लाते हैं" (हिं. सं.)। कलीसिया में धीरता की बड़ी आवश्यकता थी, क्योंकि उस समय विरोधी करनेवाले भी थे, और लोग शीघ्र ही सुसमाचार का संदेश स्वीकार नहीं करते थे।

८ : १६-१८—इस में भी मरकुस का अनुसरण किया गया है। संक्षेपण और परिवर्तन किए गए हैं। लूका ने मरकुस के पद २३ को छोड़ा है। उस ने मरकुस के पद २४ उ. को ("जिस नाप से तुम नापते हो उसी से तुम्हारे लिए भी नापा जाएगा") ६ : ३८ में सम्मिलित किया है। पद १८ उ. में, मरकुस के निहितार्थ का स्पष्टीकरण करते हुए, लूका ने "जिसे वह अपना समझता है" शब्दों को मरकुस के "जो उसके पास है" शब्दों के स्थान पर लिखा है।

८ : १९-२१ में शाब्दिक परिवर्तन है, पर अर्थ वही है जो मरकुस में है। ये पद मर. ३ : ३१-३५ के अनुरूप हैं (ऊपर देखिए)। लूका ने मरकुस के पद ३३ को छोड़ा है। मरकुस में "जो कोई परमेश्वर की इच्छा पर चले" के स्थान पर लूका ने "जो परमेश्वर का वचन सुनते और मानते हैं" लिखा है। मौलिक अर्थ एक ही है।

(ख) आंधी को शांत करना, गिरासेनी को स्वास्थ्य-दान ८ : २२-३९
(मर. ४ : ३५–५ : २०; मत्त. ८ : २३-३४)

८ : २२-२५ – पद २२ पू. इस अंश के लिए लूका की प्रस्तावना है। मरकुस के अनुसार यीशु पहले से झील के तट पर था। इस अंश में लूका ने मरकुस के वर्णन का संक्षेपण और भाषा की दृष्टि से परिमार्जन किया है, परंतु तात्पर्य वही है। मर. ४ :

३५-४१ की व्याक्या को पढ़िए। केवल यह स्मरण कीजिए कि लूका ने इस अंश के प्रसंग में थोड़ा सा परिवर्तन किया है।

८ : २६-३६ – मर. ५ : १-२० की व्याख्या को पढ़िए। लूका के परिवर्तन अधिकतर भाषा-परिमार्जन से संबंधित हैं, अत: यह व्याख्या उसके वर्णन पर भी लागू है।

८ : २७ में लूका ने मरकुस के कथन के स्थान पर, कि यह मनुष्य "कबरों से निकला", यह लिखा कि वह "नगर का एक मनुष्य" था। मर. ५ : ४, ५ में इस मनुष्य की मनोविकृति का वर्णन है। लूका ने इसको अंतरित करके पद २६ में यीशु के आदेश के पश्चात् वर्णित किया है। इस स्थान बदलने का कारण स्पष्ट नहीं है। लूका ने मर. ५ : ५ को छोड़ा है, जिस में उस मनुष्य के चिल्लाने और अपने को घायल करने का वर्णन है। यह विलोपन "कबरों से" शब्दों को छोड़ने से संगत है (पद २७)। **८ : ३१** – मर. ५ : १० में लिखा है कि "उस ने उस से बहुत बिनती की, कि हमें. . . ."। लूका ने इस असंगति को ठीक करके लिखा, "उन्हों ने उस से बिनती की. . ."। इसी पद में वह मरकुस के वर्णन को परिवर्तित करके लिखता है कि "हमें अथाह गड्ढे में जाने की आज्ञा न दे", जिस से मरकुस के वर्णन का स्पष्टीकरण हो जाता है। "**अथाह गड्ढा**" वह स्थान माना जाता था जहां न्याय-दिवस तक शैतान और दुष्टात्माएं बंधे रहेंगे (प्र. ६ : ११; १७ : ८; २० : १, २; २ पत. २ : ४; रो. १० : ७। देखिए बाइबल ज्ञान-कोश, "अथाह कुंड")। **८ : ३३ उ.** में लूका ने सूअरों की संख्या के उल्लेख को छोड़ा है। **८ : ३५ उ.** में "यीशु के पांवों के पास" शब्द जोड़े गए हैं, जिस से यह प्रकट किया गया है कि वह व्यक्ति यीशु का शिष्य बना। **८ : ३७** में स्पष्टीकरण करने के लिये ये शब्द जोड़े गए हैं, "गिरासेनियों के आस पास के सब लोग" और "क्योंकि उन पर बड़ा भय छा गया था"। **८ : ३६** में लूका ने स्पष्ट किया है कि "प्रभु" (मर. ५ : १६) का अर्थ "परमेश्वर" है, न कि "यीशु"। मरकुस के "दिकपुलिस में" के स्थान पर लूका ने "सारे नगर में" लिखा है। लूका में कहीं दिकपुलिस का उल्लेख नहीं है।

(ग) याईर की पुत्री और रक्तस्राव से पीड़ित स्त्री ८ : ४०-५६
(मर. ५ : २१-४३; मत्त. ६ : १८-२६)

मर. ५ : २१-४३ की व्याख्या को पढ़िए।

८ : ४० में लूका ने इस तथ्य पर बल दिया है कि जनसमूह ने यीशु का स्वागत किया, और कि वे उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे (हिं. सं.), जो मरकुस में वर्णित नहीं है। **८ : ४२** में लूका कहता है कि लड़की एकलौती थी। यह भी मरकुस में नहीं है। लड़की की आयु बारह वर्ष की होने का उल्लेख मरकुस के वर्णन के अंत में (मर. ५ : ४२) है। संभव है कि लूका ने इस तथ्य को आरंभ में प्रतीकात्मक रूप से वर्णित किया। स्त्री भी बारह वर्ष से पीड़ित रही थी (पद ४३)। कदाचित् लूका बारह के अंक को इस्राएल के बारह गोत्रों का प्रतीक प्रकट करना चाहता था। यीशु रोगी इस्राएल को भी स्वस्थ कर सकता है। **८ : ४३** – सर्वश्रेष्ठ प्राचीन हस्तलेखों में "जो अपनी सारी जीविका वैद्यों के पीछे व्यय कर चुकी थी" शब्द नहीं हैं। संभव है कि लूका ने वैद्य होने के कारण

मरकुस के वर्णन में से यह बात अपने वर्णन में सम्मिलित नहीं की। यह भी संभव है कि वह संक्षेपण मात्र कर रहा था। ८ : ४४ में लूका ने, मत्ती के समान, "के आंचल" शब्द को जोड़ा है।

लूका ने ८ : ४५, ४६ में मरकुस के वर्णन को परिवर्तित किया है। शिष्यों के स्थान पर पतरस उत्तर देता है। लूका पतरस को शिष्यों का प्रवक्ता मानता है। "स्वामी" लूका का एक विशिष्ट शब्द है (५ : ५ की टिप्पणी को देखिए)। पतरस के शब्द मर. ५ : ३१ की अपेक्षा अधिक शिष्ट हैं। पद ४६ में लूका ने मर. ५ : ३० के शब्दों को उत्तम पुरुष में लिखा है। ८ : ४७ लूका मर. ५ : ३३ को बढ़ाकर उसका स्पष्टीकरण करता है। ८ : ४८ में से मर. ५ : ३४ के शब्द, "अपनी इस बीमारी से बची रह", छोड़े गए हैं। ८ : ५० में लूका ने "तो वह बच जाएगी" शब्दों को जोड़ा है। ये ऐसे सार्थक शब्द हैं जैसे मर. ५ : ३४=लू. ८ : ४८ में पाए जाते हैं, क्योंकि यहां भी उस यूनानी शब्द ("सोद-जेन") का प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ "उद्धार देना" भी है। इसके संबंध में मर. ५ : ३४ की व्याख्या को देखिए। ८ : ५१—लूका ने मर. ५ : ३७, ३८ को ऐसा परिवर्तित किया है कि घटना के इसी चरण पर यीशु लोगों को घर में प्रवेश करने से रोकता है। यह बात मरकुस के पद ४० में है। संभवतः लूका का अभिप्राय संक्षेपण करना ही था। उस ने यूहन्ना का उल्लेख याकूब से पहले किया और यों मरकुस के क्रम को बदल दिया है। ८ : ५३ मर. ५ : ४० पू. की अपेक्षा अधिक निश्चित है, क्योंकि लूका ने "यह जानकर कि वह मर गई है" शब्दों को जोड़ा है। ८ : ५४ में अपनी प्रथानुसार, लूका ने मर. ५ : ४१ में वर्णित अरामी शब्दों को छोड़ा है। ८ : ५५—केवल लूका में ये शब्द हैं कि "उसके प्राण फिर आए"। यह भी संभाव्यतः स्पष्टीकरण है। इस परिच्छेद में अन्य छोटे परिवर्तन भी हैं जिन का उल्लेख करना आवश्यक नहीं है।

(६) यीशु और बारह शिष्य ९ : १-५०

(क) बारह का भेजा जाना, यीशु के प्रति हेरोदेस का विचार, पांच सहस्र को भोजन कराना ९ : १-१७

(मर. ६ : ६-१६, ३०-४४; मत्त. ९ : ३५; १० : १, ९-११, १४; १४ : १, २, १३-२१)

इस समस्त खंड के संबंध में मरकुस के उपरोक्त स्थलों की व्याख्या को पढ़िए। साधारणतः लूका ने मरकुस के वर्णन का संक्षेपण किया है।

९ : १-६—केवल मर. ६ : ७ में वर्णित है कि शिष्य दो दो करके भेजे गए। पद १ और २ में लूका का वर्णन अधिक ब्योरेवर है। उस में स्वास्थ्य-दान पर अधिक बल दिया गया है और ये शब्द जोड़े गए हैं कि शिष्य "परमेश्वर के राज्य का प्रचार करने" के लिए भेजे गए। इन बातों का वर्णन मर. ३ : १४, १५ में किया गया है, जिसको लूका ने अपने अनुरूपी वर्णन (६ : १३) में नहीं सम्मिलित किया है। मर. ६ : १३ में भी स्वस्थ करने और दुष्टात्माओं को निकालने का वर्णन है। लूका ने अनेक बार ऐसे स्थलों में परमेश्वर के राज्य के प्रचार का वर्णन किया है जहां अन्य सुसमाचारों में

उसका उल्लेख नहीं है (४ : ४३; ८ : १; ९ : ११; १६ : १६)। ९ : ६ में मर. ६ : १२, १३ का संक्षेप मात्र सम्मिलित है। अन्य बातों के लिए मरकुस की टीका को देखिए।

९ : ७-९—पद ७ में "देश की चौथाई का राजा" शब्द मरकुस के "राजा" शब्द का शोधन करते हैं। हिं. सं. की पाद-टिप्पणी में यूनानी मूल शब्द "तित्रिअर्खेस" दिया गया है। वह रोम के सम्राट के अधीन एक शासक था। इस संबंध में मर. ६ : १४-२९ की टीका के दूसरे पैरा को पढ़िए। ९ : ७ में लूका ने मरकुस के वर्णन को संक्षिप्त किया, पर ९ : ९ में उसे बढ़ाया है। उस ने "उसने उसे देखने की इच्छा की" शब्दों को जोड़ा है। इसकी तुलना १३ : ३१ और २३ : ८ से कीजिए। यीशु से मिलने की चेष्टा करने में हेरोदेस का अभिप्राय आत्मिक लाभ की प्राप्ति नहीं थी। इस स्थल पर लूका ने मर. ६ : १७-२९ को, जिस में यूहन्ना की मृत्यु का वर्णन है, छोड़ा है।

९ : १०-१८—यहां भी लूका का वर्णन संक्षिप्त है। उस ने मरकुस के पद ३१ को पूर्णतया छोड़ा है। पद १० में उस ने बताया है कि यीशु और उसके शिष्य बैतसैदा गए, जो गलील सागर के उत्तरी तट पर यरदन नदी के निकट, पूर्व की ओर स्थित था। मरकुस के वर्णन के अनुसार वे उस आश्चर्यकर्म के पश्चात् बैतसैदा को गए। इसके संबंध में मर. ६ : ३०-४४, ४५ की व्याख्या को और बाइबल ज्ञानकोश में "बैतसैदा" पर टिप्पणी को पढ़िए। **९ : ११ उ.** में संक्षेपण किया गया है। लूका ने पुराना नियम का वह उद्धरण छोड़ दिया है जो मर. ६ : ३४ में है (वे उन भेड़ों के समान थे जिनका कोई चरवाहा न हो)। उस ने "उन से परमेश्वर के राज्य की बातें करने लगा" शब्दों को जोड़ा है। मत्ती और लूका दोनों लिखते हैं कि यीशु ने इस अवसर पर लोगों को स्वस्थ भी किया। **९ : १३-१५** का तात्पर्य वही है जो मर. ६ : ३७-४० का है, परंतु लूका ने क्रम-परिवर्तन और भाषा-परिमार्जन किया है। इस तथ्य को कि "वे लोग पांच हजार पुरुषों के लगभग थे" लूका ने मरकुस के वर्णन के अंत से पद १३ में अंतरित किया है। **९ : १६** शब्दशः मर. ६ : ४१ के समान है। मरकुस की व्याख्या को देखिए। संभाव्यतः यह पूर्ण शाब्दिक समानता इस कारण है कि ये शब्द प्रारंभिक कलीसिया में प्रभुभोज-संबंधी थे।

ध्यान रखिए कि इस स्थल पर लूका ने मर. ६ : ४५—८ : २६ को छोड़ दिया है। इसके संबंध में मर. ६ : ४५-५२ की व्याख्या को देखिए।

(ख) पतरस का स्वीकरण, मृत्यु एवं पुनरुत्थान-संबंधी प्रथम भविष्यवाणी, स्वार्थ-त्याग पर शिक्षा, यीशु का रूपांतरण ९ : १८-३६

(मर. ८ : २७-३१, ३४-३८; ९ : १-८; मत्त. १६ : १३-१६, २०, २१, २४-२८; १७ : १-५, ८)

इन अंशों के संबंध में मरकुस के उपरोक्त स्थलों की व्याख्या अधिकांश में लूका के वर्णन पर भी लागू है।

९ : १८-२७—पद २८ पू मर. ८ : २७ पू, से पूर्ण रूप से भिन्न है, परंतु उन में विरोध नहीं है। लूका किसी स्थान का उल्लेख नहीं करता और यह ब्योरा जोड़ता है कि यीशु प्रार्थना कर रहा था। स्मरण रहना चाहिए कि लूका ने इस से पहले ही मरकुस की बहुत सामग्री छोड़ी है। पद १८ के उत्तरार्द्ध में "लोग" के स्थान पर "जनता" (हिं. सं.) ठीक है। यूनानी शब्द का अर्थ "भीड़", "जनसमूह" है। ९ : २० में लूका ने "परमेश्वर का" शब्दों को जोड़ा है। **पद २१, २२** लगभग शब्दश: मर. ८ : ३०, ३१ के समान हैं, परंतु मरकुस ८ : ३१ पू. में वह उन्हें सिखाने लगा "शब्द हैं जो लूका में नहीं हैं। मूल यूनानी में मरकुस ८ : ३० और ८ : ३१ में कोई अनिवार्य संबंध नहीं है। इसकी विषमता में लूका में पद २२ का कथन और पद २१ की शिक्षा अनिवार्य रूप से संबंधित है, जैसे हिं. सं. से स्पष्ट है, ". . . .'आज्ञा दी कि यह बात किसी से न कहें', और बताया कि 'यह अनिवार्य है कि मानव-पुत्र को बहुत दु:ख सहने पड़ें'. . . ."। लूका ने पूर्ण रूप से मर. ८ : ३२, ३३ को छोड़ा है, जिस में पतरस के यीशु को रोकने और यीशु के पतरस को डांटने का वर्णन है। कदाचित् लूका ने इसको अनुपयुक्त सोचा।

९ : २३-२७ में लूका और मरकुस में बहुत शाब्दिक समानता है। **९ : २३** में "सब" शब्द के अंतर्गत वे लोग हैं जिनका उल्लेख मर. ८ : ३४ पू. में है। लूका ने "प्रति दिन" शब्द जोड़े हैं। शारीरिक रूप से ख्रिस्त के निमित्त क्रूसित होने की संभावना केवल थोड़े समय के लिये ही हो सकती थी, अत: लूका "क्रूस उठाने" का निहितार्थ स्पष्ट करता है। क्रूस-वहन, अर्थात् आत्मपरित्याग, ख्रिस्तानुसरण का अनिवार्य प्रतिबंध है, और इसका पालन एक दैनिक प्रक्रिया है। प्रत्येक ख्रिस्ती जन को इस सत्य पर प्रति दिन मनन चिंतन करके उसे कार्यान्वित करने की आवश्यकता है। **९ : २४** में से लूका ने "और सुसमाचार" शब्दों को छोड़ा है। उसने मर. ८ : ३७ को बिल्कुल छोड़ा है, और मर. ८ : ३८ में से "इस व्यभिचारी और पापी जाति के बीच" शब्दों को छोड़ा है (२६ पू.)। इस सामग्री को छोड़ने में संभाव्यत: लूका का अभिप्राय संक्षेपण करना ही था। **९ : २६ उ.** में "अपने पिता की महिमा सहित" (मर. ८ : ३८ उ.) के स्थान पर लूका ने "अपनी, और अपने पिता की. . महिमा सहित" लिखा है, जिस से मानव-पुत्र भी पिता परमेश्वर के संग महिमायुक्त माना गया है। **९ : २७** मर. ९ : १ के समान है, परंतु लूका ने अंतिम शब्दों को (यूनानी में), "सामर्थ्य सहित आया हुआ", छोड़ दिया है। इस पर मर. ९ : १ की व्याख्या को पढ़िए। उस व्याख्या में व्यक्त किए गए विचारों में से दूसरा लूका के इस पद के स्पष्टीकरण में ठीक जान पड़ता है, अर्थात् कि यह भविष्य-वाणी यीशु के पुनरुत्थान, पवित्र आत्मा के उतर आने और कलीसिया की वृद्धि में पूरी हुई। ऐसा प्रतीत होता है कि इस स्थल में यही लूका का दृष्टिकोण था। मरकुस की व्याख्या की अन्य बातों को ध्यानपूर्वक पढ़िए।

९ : २८-३६ – मरकुस ९ : २-८ की व्याख्या को पढ़िए। **९ : २८** – कदाचित् लूका ने सोचा कि "कोई आठ दिन" मर. ९ : २ के "छ: दिन" से अधिक सटीक था। दोनों का अर्थ लगभग एक सप्ताह है। इस पद में भी लूका ने यूहन्ना का नाम याकूब से

पहले रखा है (८ : ५१ की व्याख्या को देखिए)। लूका के विचार में "एकांत में" (मर. ९ : २) का अर्थ यह है कि यीशु प्रार्थना करने गया। **९ : २९** में लूका ने शाब्दिक परिवर्तन किए हैं, परंतु मौलिक अर्थ वही है जो मरकुस के वर्णन का है। **९ : ३१-३३ पू.** केवल लूका में हैं। मर. ९ : ४ में इतना ही है कि मूसा और एलिय्याह "यीशु से वार्तालाप कर रहे थे" (हिं. सं.)। इन पदों में लूका मरकुस की बात का प्रतिपादन करता है। यीशु की आगामी मृत्यु "निर्गमन" (हिं. सं.) थी। इस शब्द के प्रयोग से अवश्य इस्राएलियों के मिस्र से निर्गमन की ओर संकेत है। यीशु वह नवीन मूसा है जो एक नए इस्राएल (कलीसिया) की स्थापना करके अपनी मृत्यु और पुनरुत्थान द्वारा परमेश्वर के लोगों को पाप और मृत्यु के "मिस्र" से मुक्त करता है। कदाचित् **९ : ३२** इस बात का स्पष्टीकरण करता है कि पतरस ने पद ३३ का विचित्र सुझाव क्यों दिया। केवल जागने के पश्चात् शिष्य यीशु की महिमा को देखते हैं। **९ : ३३** में यह स्पष्ट नहीं है कि "वे" कौन हैं जो यीशु के पास से जाने लगे। हिं. सं. में यह स्पष्ट है, "जब वे दोनों उस से विदा होने लगे", अर्थात् मूसा और एलिय्याह।

९ : ३३ उ. में पतरस यीशु को "स्वामी" कहता है (मरकुस में "रब्बी", मत्ती में "प्रभु")। इस पर ५ : ५ की व्याख्या को देखिए। इस पद के अंत में लूका ने मर. ९ : ६ के शब्द, "इस लिए कि वे बहुत डर गए थे" छोड़े हैं, परंतु **९ : ३४ उ.** में वह बताता है कि शिष्य उस समय डर गए जब बादल उन पर छा गया। **९ : ३५** में "प्रिय" (मर. ९ : ७) के स्थान पर "चुना हुआ" है। इस परिवर्तन से लूका यश. ४२ : १ की ओर संकेत करता है, जहां याहवे का दास उसका "चुना हुआ" कहा गया है। कहीं कहीं "प्रिय" का यही तात्पर्य है। **९ : ३६** – केवल लूका में वर्णित है कि शिष्य इन बातों के संबंध में मौन रहे।

(ग) अशुद्ध आत्मा-ग्रस्त बालक, मृत्यु की द्वितीय भविष्यवाणी, महान कौन है ९ : ३७-५०

(मर. ९ : १४-२०, २५, २७, ३०-३७; मत्त. १७ : १४-१९, २२, २३; २८ : १-३ पू., ५)

९ : ३७-४३ – मर. ९ : १४-२९ की व्याख्या के साथ तुलना कीजिए। मत्ती के समान लूका ने मरकुस के वर्णन को बहुत संक्षिप्त किया है। मरकुस के वर्णन में बालक के पिता के विश्वास पर बल दिया गया है। लूका इसका उल्लेख न करके शिष्यों के अविश्वास को प्रकट करता है। लूका में यह अंश यीशु के यरूशलेम जाने की तैयारी के संदर्भ में है। वह स्पष्ट करता है कि शिष्य तैयार नहीं हैं। लूका ने मर. ९ : ९-१३ की सामग्री का संक्षिप्त रूप ९ : ३७ उ. और ३८ पू. में सम्मिलित किया है। उस ने शास्त्रियों के साथ विवाद के उल्लेख को छोड़ा है। यद्यपि लू. ९ : ३८-४२ का शाब्दिक रूप परिवर्तित है तो भी ये पद मूलतः मर. ९ : १७-२० के समान हैं। लूका में इस अंश के सब से महत्वपूर्ण शब्द हैं, "मैं कब तक तुम्हारे साथ रहूंगा?"। यीशु अपनी दृष्टि यरूशलेम में अपने सेवाकार्य की पूर्ति की ओर लगाए हुए थे, परंतु शिष्य तैयार नहीं थे।

लूका ने बालक के पिता के साथ यीशु के वार्तालाप और बालक के रोग के ब्योरे-वार विवरण को छोड़ा है। अंत में उस ने शिष्यों के प्रश्न और यीशु के उत्तर का वर्णन भी नहीं किया है।

९ : ४४, ४५ – मर. ९ : ३०-३२ की व्याख्या को पढ़िए। लूका ने मरकुस के वर्णन में से निम्नलिखित मौलिक तथ्यों को सम्मिलित किया है कि मनुष्य का पुत्र मनुष्य के हाथ में पकड़वाया जाने को था, कि शिष्य इस बात को नहीं समझते थे, और कि शिष्य यीशु से पूछने से डरते थे। लूका ने मरकुस की शेष बातों को छोड़कर इस कथन के लिए प्रसंग की रचना की है। उस ने यीशु के पकड़वाए जाने के ब्योरेवार वर्णन को छोड़ा है। वह पद ४६ में शिष्यों की मानसिक और आध्यात्मिक मंदता को बहुत स्पष्ट करता है।

९ : ४६-४८ – यहां भी लूका ने स्थान के उल्लेख को (मर. ९ : ३३) छोड़ दिया है। मरकुस की टीका में बताया गया है कि मरकुस का वर्णन मिश्रित प्रतीत होता है। उस व्याख्या में उक्त अन्य स्थलों पर भी ध्यान दीजिए जहां इसके समान शिक्षा पाई जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि लूका ने मरकुस की सामग्री का संक्षेपण और पुनर्विन्यास किया है। हम मरकुस की टीका में कही गई बात को दोहराते हैं, कि इस अंश की शिक्षा मौलिक है। प्रत्येक ख्रिस्ती व्यक्ति और समुदाय को इस पर गंभीरता से मनन चिंतन करना चाहिए।

९ : ४९, ५० – लूका ने मर. ९ : ३८-४१ को संक्षिप्त किया है। उस ने मरकुस के पद ३९, ४० की अधिक सामग्री को छोड़ा है, परंतु अर्थ में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया। मरकुस की व्याख्या को पढ़िए।

४ यरूशलेम के मार्ग में ९ : ५१ – १९ : २७

मरकुस १० : १–११ : १० में यीशु के अंतिम बार यरूशलेम जाने का वर्णन है। इसके स्थान पर लूका में उपरोक्त लंबा विवरण है। इस विवरण की अधिक सामग्री शिक्षात्मक है, जिसको यात्रा के वर्णन के ढांचे में संन्निविष्ट किया गया है। इस युक्ति से लूका ने भिन्न भिन्न स्रोतों की ऐसी सामग्री को अपने सुसमाचार में सम्मिलित किया जिसका यीशु के सेवाकार्य में वास्तविक संदर्भ अज्ञात् है। मर. १० : १ के अनुसार यीशु यरदन नदी को पार करके पिरिया में होकर यरूशलेम गया। लूका के इस परि-च्छेद के पहले अंश का दृश्य सामरिया में है (९ : ५१-५६), परंतु इसके पश्चात् साम-रिया का उल्लेख केवल १७ : ११ में है। मर. १० : ४६ और लू. १८ : ३४ में वर्णित है कि यीशु अंत में यरीहो पहुंचा, जिस से जान पड़ता है कि यात्रा-संबंधी सामग्री के लिए लूका मरकुस के वर्णन पर अवलंबित था। ९ : ५३; १३ : २२, ३३; १७ : ११ और १८ : ३१ में वर्णित है कि यीशु और उसके शिष्य यरूशलेम जा रहे थे। ये संभाव्यत: संपादकीय टिप्पणियां हैं। यह स्पष्ट है कि यह विवरण मूलत: यात्रा का वर्णन नहीं है उस शिक्षा में जो यहां सम्मिलित की गई है यह निहित है कि वह गलील में दी गई।

भीड़ों का उल्लेख है (११ : २६; १२ : १, ५४; १४ : २५); सभागृह के समुदाय का वर्णन है (१३ : १०); कर लेनेवालों और पापियों (१५ : १), हितैषी फरीसियों ((११ : ३७; १३ : ३१; १४ : १), विरोधी व्यवस्थापकों और फरीसियों (१० : २५; ११ : ४५, ५३; १५ : २; १६ : १४), और बहुधा शिष्यों का वर्णन है। निष्कर्ष यह कि हमें इस परिच्छेद को अधिकतर यात्रा का वर्णन नहीं वरन् शिक्षास्पद विवरण मानकर इसका अध्ययन करना चाहिए। इस में आरंभ से १८ : १४ तक मरकुस की कुछ भी सामग्री सम्मिलित नहीं है।

(१) प्रचार और प्रतिक्रिया ९ : ५१-१० : ३७

(क) सामरी यीशु को अस्वीकार करते हैं, शिष्य बनने की शर्तें ९ : ५१-६२ (मत्त. ८ : १९-२२)

९ : ५१-५६ – पद ५१ में ऊपर उठाए जाने का अर्थ स्वर्गारोहण है (हिं. सं.)। संभाव्यतः इस संदर्भ में इस शब्द से अभिप्रेत वह समस्त प्रक्रिया है—यीशु का पकड़वाया जाना, विचार, मृत्यु, पुनरुत्थान—जिसका चरम बिंदु स्वर्गारोहण है। यीशु ने "यरूशलेम जाने का दृढ़ निश्चय किया" (हिं. सं.)। इसका अर्थ यात्रा करना मात्र तो नहीं है। यीशु का अभिप्राय धर्माधिकारियों का सामना करके उस महाकार्य को पूर्ण करना था जिसके कारण वह संसार में आया। **९ : ५३ – सामरी** लोग यहूदी-विजाति मिश्रित वंश के थे। वे पंचग्रंथ को (पुराना नियम की पहली पांच पुस्तकें) अपना धर्मशास्त्र मानते और गिरिज्जीम पर्वत पर ईश्वरोपासना करते थे। यीशु के काल में सामरियों और यहूदियों में द्वेष और शत्रुता थी (देखिए बाइबल शब्दकोश, "शोमरोन", "शोमरोनी"; "पृष्ठभूमि" १२७-१२८)। उस काल में सामरी नहीं चाहते थे कि यहूदी उनके प्रदेश में होकर यातायात करें। **९ : ५४** के कुछ शब्द २ रा. १ : १०, १२ से उद्धृत हैं, जहां एलिय्याह के कथन के अनुसार राजा अहज्याह के दूत आग से भस्म किए जाते हैं। **९ : ५५** – यीशु ने उन्हें डांटा क्योंकि वह बदला लेने को उचित प्रतिक्रिया नहीं मानता था। "और कहा, तुम नहीं जानते. . .बचाने के लिए आया है"—ये शब्द सर्वश्रेष्ठ प्राचीन प्रतियों में नहीं हैं। तो भी ये शब्द ख्रिस्ती व्यक्ति की उपयुक्त प्रतिक्रिया और भाव को भली भांति व्यक्त करते हैं।

९ : ५७-६२—इन पदों में से ५७-६० पू. मत्त. ८ : १९-२२ में भी हैं। मत्ती की व्याख्या में भिन्नताएं बताई गई हैं। उस व्याख्या को पढ़िए। लूका में "मनुष्य का पुत्र" पदवी का कई बार इस से पहले उल्लेख है। **९ : ६० उ.**—संभाव्यतः लूका ने ये शब्द जोड़े। उनका संबंध पद ६२ उ. से है। इस समस्त अंश का अभिप्राय यह प्रकट करना है कि परमेश्वर के राज्य का प्रचार योग्य रीति से करने के लिए पूर्ण आत्मसमर्पण अनिवार्य है। हल चलाने का एक मौलिक नियम सामने की भूमि पर दृष्टि लगाए रहना है, नहीं तो कूँड़ सीधा नहीं रहता। "परमेश्वर के राज्य के योग्य" का अर्थ हिं. सं. में ठीक व्यक्त किया गया है, "परमेश्वर के राज्य के उपयुक्त"। ऐसा व्यक्ति उपयुक्त रीति से राज्य का प्रचार नहीं कर सकता।

(ख) बहत्तर का भेजा जाना १० : १-१६
(मत्त. ९ : ३७, ३८; १० : ७-१६; ११ : २१-२३; १० : ४०)

१० : १—यह पद केवल लूका में है। किसी अन्य सुसमाचार में बहत्तर या सत्तर अन्य शिष्यों को सुसमाचार-प्रचार कार्य के लिए भेजने का वर्णन नहीं है, अतः अनेक विद्वानों की मान्यता के अनुसार यह एक ऐतिहासिक विवरण नहीं, केवल प्रतीकात्मक है। परंतु यह पूर्ण रूप से संभव प्रतीत होता है कि बारह के अतिरिक्त यीशु ने अन्य शिष्यों को भी ऐसे सेवाकार्य के लिए भेजा हो। कदाचित् इस अंश में तथ्य और प्रतीक का मिश्रण है। निस्संदेह सत्तर का अंक प्रतीकात्मक है। इस संबंध में मूलतः दो संभावनाएं है, (i) उत्पत्ति १० अध्याय में संसार की जातियों की सूची है जिस में उनका कुल जोड़ सत्तर है (सेप. में बहत्तर हैं। लू. १० : १ में भी श्रेष्ठ हस्तलेखों में अंतर है। आधी प्रतियों में सत्तर, आधी में बहत्तर है, अतः हिं. प्र. में "सत्तर" परंतु हि. सं. में "बहत्तर" लिखा है। दोनों अंक प्रतीकात्मक माने जाते हैं)। यदि इस वर्णन की पृष्ठभूमि उत्पत्ति अध्याय १० है तो सत्तर या बहत्तर संसार की सब जातियों का प्रतीक है, और लाक्षणिक रूप से यह प्रकट किया जाता है कि सुसमाचार–प्रचार विश्वव्यापक होना चाहिए। यह लूका का दृष्टिकोण है। (ii) निर्गमन २४ : १ और गि. ११ : १६ में इस्राएल के सत्तर पुरनियों का वर्णन है जो मूसा की सहायता के लिए नियुक्त हुए। इस प्रकार लूका यीशु को नवीन मूसा के रूप में प्रस्तुत करता है जो सत्तर सहायकों को भेजता है। यदि लूका के इस अंश की पृष्ठभूमि यही है तो बारह" के समान "सत्तर" भी नवीन इस्राएल का प्रतीक है। यह विचार भी निहित हो सकता है कि नया इस्राएल, अर्थात् कलीसिया, समस्त संसार में सुसमाचार प्रसारित करती है।

१० : २-१६ एक सम्मिश्रित वर्णन है। कुछ सामग्री वही है जो मत्ती के उपरोक्त स्थलों में भी है, अन्य सामग्री लूका के पृथक स्रोतों में से है। इस अंश की तुलना मर. ६ : ६-१२=लू. ९ : १-६ से भी कीजिए (मत्त. ९ : ३५; १० : १, ९-११, १४ भी इसके समान हैं), जहां बारह को भेजने का वर्णन है। मत्ती ने बारह को भेजने के वर्णन में Q की कुछ सामग्री को भी जोड़ा है,जिसका प्रयोग लूका ने सत्तर को भेजने के विवरण में सम्मिश्रित किया है। अतः ऐतिहासिक दृष्टि से इस सामग्री का विश्लेषण करना असंभव सा है।

१० : २ शब्दशः मत्ती ९ : ३७, ३८ के समान है—उस स्थल की व्याख्या को पढ़िए। १० : ३ की तुलना मत्त. ७ : १५ से कीजिए। मत्ती १० : १६ में यही कथन है। लूका में "भेड़ों" के स्थान पर "मेमनों" होना चाहिए, जैसे हिं. सं. में है। मेमना विशेष रूप से बलिदान का पशु था। शिष्यों को विरोधियों (भेड़ियों) के बीच में मेमनों के समान नम्र रहना है। मत्त. १० : १६ उ. लूका में नहीं है। १० : ४ की ओर २२ : ३५ में संकेत किया गया है, जहां यीशु बारह को संबोधित करता है। यही शब्द दोनों पदों में हैं, परंतु वे ९ : ३ के शब्दों से भिन्न हैं। ९ : ३ बारह के भेजे जाने के संबंध में है। इन तथ्यों से ज्ञात होता है कि यदि सच मुच बारह के अतिरिक्त शिष्यों का एक अन्य

समूह भी भेजा गया तो इन दो समूहों के विवरणों को पृथक करना असंभव है। स्थूल रूप से ९ : ३ और अन्य सुसमाचारों के अनुरूपी स्थलों में, तथा १० : ४ में मौलिक अर्थ एक ही है। इस संबंध में मर. ६ : ८ की व्याख्या को पढ़िए। **१० : ५** केवल लूका में है। उसकी तुलना मत्त. १० : १३ (=लू. १० : ६) से कीजिए। यहूदियों का साधारण अभिवादन "शालोम" (सलाम) था, जिसका अर्थ है, "शांति"। यहां हि. सं. का अनुवाद ठीक है, "इस घर पर शांति हो"।

१० : ६ – हि. सं. : "यदि वहां कोई शांति का पात्र होगा तो शांति उस में विराजेगी. . . ."। माना जाता है कि यह अभिवादन एक प्रकार से आशीर्वाद था। **१० : ७** केवल लूका में है, परंतु मजदूर के संबंध में कहावत मत्त. १० : १० में भी है। १ कुर. ९ : १४ से भी तुलना कीजिए। भोजन करने के संबंध में **१० : ८** जैसे शब्द १ कुर. १० : २७ में पाए जाते हैं, परंतु वहां विशेष विषय भिन्न है। **१० : ९** में मत्ती १० : ७, ८ का संक्षेप है। स्वास्थ्य-दान के कार्य इस बात का प्रमाण देते हैं कि परमेश्वर का राज्य निकट है। लूका में "**तुम्हारे निकट**" शब्द प्रकट करते हैं कि यह राज्य भावी ही नहीं है वरन् वर्तमान में स्थापित हो चुका है। **१० : १०-१२** पर मत्त, १० : १४, १५ की व्याख्या को पढ़िए। लूका में धूल झाड़ने की बात साक्षातकथन (direct speech) में है, परंतु मत्ती का वर्णन असाक्षातकथन में है। **१० : ११** उ. राज्य के संबंध में है। यह मत्ती में नहीं है। **१० : १२** में "उस दिन" का अर्थ न्याय-दिवस, है, जैसे मत्ती में लिखा है। लूका केवल सदोम का उल्लेख करता है। मत्ती में अमोरा भी है।

१० : १३-१६—पद १३-१५ लगभग शब्दशः मत्त. ११ : २१-२३ के समान हैं, केवल संदर्भ भिन्न है। उसकी व्याख्या को पढ़िए। १० : १६ मत्त. १० : ४० के समान है, परंतु कथन उलटे रूप में व्यक्त किया गया है। मत्ती की व्याख्या को पढ़िए, जहां अन्य सदृश स्थल भी बताए गए हैं।

(ग) बहत्तर का लौटना, यीशु का धन्यवाद देना १० : १७-२४
(मत्त. ११ : २५-२७; १३ : १६, १७)

१० : १६-२० केवल लूका में है। पद १७ में "सत्तर" और "बहत्तर" के लिए यहां भी प्राचीन प्रतियों की उपरोक्त साक्षी है। मर. ६ : ३०=लू. ९ : १० से तुलना कीजिए, जहां बारह के लौटने का वर्णन है। शैतान मनुष्य का विरोधी और परमेश्वर के सामने उस पर दोष लगानेवाला माना जाता था। सांप और बिच्छू दुष्टता के प्रतीक हैं। इन पदों में अधिकतर आत्मिक हानि से रक्षण का वर्णन है। इन शिष्यों के सुसमाचार-प्रचार कार्य और स्वास्थ्य-दान के द्वारा यीशु ने यह दर्शन देखा कि दुष्ट की शक्ति भंग हो गई। इस विजय के कारण शिष्य आनंद-विभोर हो गए, परंतु यीशु ने कहा कि उन के कार्य का महत्व पूर्ण परिणाम आत्माओं पर विजय नहीं था परंतु यह कि "तुम्हारे नाम स्वर्ग में लिखे हैं" (पद २०)। इसका अर्थ यह है कि वे परमेश्वर के राज्य के लिए तैयार हो रहे थे। **१०:१९** कदाचित् भ. ९१:१३ पर आधारित है। यीशु लोगों को परमेश्वर के राज्य में प्रवेश कराने के लिए आया, और इस प्रक्रिया का आरंभ देखकर वह आनंदित हुआ।

१० : २१, २२—ये पद लगभग शब्दशः मत्ती ११ : २५-२७ में पाए जाते हैं। उसकी व्याख्या को पढ़िए। मत्ती और लूका के संदर्भ भिन्न हैं। हम नहीं जानते कि में इसका संदर्भ क्या था। लूका ने यहां "उसी घड़ी" (मत्ती में "उसी समय") शब्दों को बहत्तर के लौटने के समय पर लागू किया है, और "इन बातों को" का संबंध शिष्यों के प्रचार-कार्य और स्वास्थ्य-दान सेवा से है।

१० : २३, २४—ये पद मत्त. १३ : १६, १७ में भी, शिष्यों के दृष्टांतों को समझने के संदर्भ में हैं। उसकी व्याख्या को पढ़िए। मत्ती में इसका प्रसंग लूका की अपेक्षा अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। लूका का पद २३ पू. मत्ती में नहीं है। वह इस कथन को संदर्भ के अनुकूल करता है। मत्ती में "और तुम्हारे कान कि वे सुनते हैं" शब्द हैं, जो लूका में नहीं हैं। लूका के संदर्भ में सुनने की बात प्रस्तुत नहीं थी।

(घ) व्यवस्थाचार्य का प्रश्न, दयालु सामरी का दृष्टांत १० : २५-३७
(मर. १२ : २८-३१; मत्त. २२ : ३४-४०)

१० : २५-२८ इस अंश के संबंध में मरकुस और मत्ती के उपरोक्त स्थलों की व्याख्या को पढ़िए। तीनों सहदर्शी सुसमाचारों के इस अंश में जो पारस्परिक संबंध हैं उसका विवेचन मरकुस १२ : २८-३१ की टीका में किया गया है। पुराना नियम से उद्धरण को छोड़ लूका में शब्दावली और वाक्यरचना प्रायः पूर्ण रूप से मरकुस से भिन्न है। मत्ती २२ : ३५ में, लू. १० : २५ के समान, "व्यवस्थापक", या "व्यवस्थाचार्य" शब्द का प्रयोग किया गया है ("नमिकस"), जो मत्ती में और कहीं नहीं पाया जाता, परंतु लूका में अनेक बार "शास्त्री" के स्थान पर प्रयुक्त होता है। मत्ती और लूका में अन्य छोटी समानताएं भी हैं। ये तथ्य मरकुस की टीका में व्यक्त मान्यता का समर्थन करते हैं कि लूका का वर्णन Q स्रोत से लिया गया और मत्ती ने मरकुस और Q का सम्मिश्रण किया। लूका में प्रश्न भिन्न है। अनंत जीवन को प्राप्त करना परमेश्वर के राज्य में प्रवेश करने के समान है। परंतु यहूदी लोगों के लिए दोनों का तात्पर्य वर्तमान से नहीं वरन् भविष्य काल से संबंधित था। लूका में यीशु नहीं अपितु व्यवस्थापक प्रश्न का उत्तर देता है। संभाव्यतः इस बात के संबंध में मरकुस का वर्णन अधिक मानने योग्य है।

लूका ने मर. १२ : २८-३१ को अपने सुसमाचार में सम्मिलित नहीं किया। यदि वह उसका प्रयोग करता तो उसे २० : ३९ के पश्चात् ही सम्मिलित करता। इस से ज्ञात होता है कि लूका स्वयं १० : २५-२८ के विवरण को मर. १२ : २८-३१ के विवरण का भिन्न रूप मानता था।

१० : २९-३७ – यह दृष्टांत केवल लूका में है। व्यवस्थापक अपने को ठीक प्रमाणित करना चाहता था (पद २९)। अतः प्रश्न पूछने में उसका अभिप्राय अनुचित था। परिणाम-स्वरूप उसका प्रश्न भी ठीक नहीं था, जैसे पद ३६ में यीशु के उत्तर से स्पष्ट है, "उसका पड़ोसी कौन ठहरा ?" यीशु ने व्यावस्थापक के प्रश्न का उत्तर नहीं दिया वरन् इस प्रश्न का कि "मैं किस का पड़ोसी प्रमाणित हो सकता हूं"। यह ठीक

प्रश्न है। इसका उत्तर, जैसे इस कहानी से स्पष्ट किया गया है, यह है कि "जिसको मेरे प्रेम की आवश्यकता है मैं उसका पड़ोसी हूं"।

यरूशलेम से यरीहो का मार्ग लगभग २७ किलोमीटर का था, और आरंभ के अंत तक लगभग ४०० मीटर की उतराई यरदन की घाटी में थी। यह निर्जन स्थान पर्वतीय था। अतः डाकुओं के लिए बड़ा सुविधाजनक था। याजक और लेवी व्यावसायिक धर्मसेवक थे, जिनका एक कर्तव्य धार्मिक आचरण का नमूना प्रकट करना था। इनकी तुलना में सामरी न केवल साधारण व्यक्ति वरन् ऐसी जाति का भी था जिसका तिरस्कार यहूदी करते थे (६ : ५३ की व्याख्या को देखिए)। याजक और लेवी को संभाव्यतः इस बात की चिंता थी कि कहीं वह घायल मनुष्य मरा न हो और वे उसे छूकर अनुष्ठातिक रूप से अशुद्ध न हो जाएं। वे धर्म की प्रधान तथा गौण बातों में भेद नहीं कर सकते थे। सामरी, उनकी दृष्टि में अछूत सा था, परंतु वह ठीक प्रतिक्रिया करता है – "उसे देखकर तरस आया"। जो कुछ आवश्यक था वही उस ने किया, और उस से अधिक करने को भी तैयार था। वह वास्तव में उस अभागे व्यक्ति का पड़ोसी प्रमाणित हुआ। व्यवस्थापक ने भली भांति समझ लिया। उसको आशा नहीं हुई होगी कि यीशु ऐसा व्यावहारिक उत्तर देगा। अंतिम शब्द अत्यंत प्रभावशाली हैं, "जा, तू भी ऐसा ही कर"। अर्थ यह है कि सामरी का सा भाव रखना और ऐसे काम करना प्रेम की वास्तविक अभिव्यक्ति है। यही अनंत जीवन के मार्ग में होना है।

(२) प्रार्थना के संबंध में शिक्षा १० : ३८-११ : १३

(क) मरियम और मार्था, प्रभु की प्रार्थना १० : ३८-११ : ४

(मत्त. ६ : १-१३)

१० : ३८-४२ यह अंश केवल लूका में है। सहदर्शी सुसमाचारों में यही एक स्थल है जहां इन स्त्रियों का वर्णन है। यूहन्ना के अनुसार (११ : १; १२ : १-३) उनका घर बैतनिय्याह में था, और मरियम वह स्त्री थी जिस ने यीशु के पांवों पर इत्र डाला था। लूका में किसी स्थान विशेष की ओर संकेत नहीं है। मार्था अतिथि-सत्कार में व्यस्त थी। अतः वह चिढ़ गई कि मरियम ने हाथ नहीं बंटाया। यीशु ने मार्था की हलकी सी भर्त्सना की। यीशु स्वयं मरियम से बात करता रहा था, जिस से मार्था को ज्ञात होना चाहिए था कि उस ने मरियम के व्यवहार में कोई बुराई नहीं देखी थी। मार्था व्यावहारिक बातों में उलझे होने के कारण खीझ गई थी। यीशु ऐसी व्यावहारिक सेवा अनावश्यक नहीं कहता, किंतु "एक बात", जो "उत्तम भाग" है, अत्यावश्यक घोषित करता है। यह मानना तर्कसंगत है कि वह "एक बात" यीशु के वचन को सुनना है। यह सब अन्य बातों का आधार है।

१० : ४२ में अनेक पाठांतर हैं। कुछ हस्तलेखों में "परंतु एक बात अवश्य है" शब्द नहीं हैं। अन्य प्राचीन प्रतियों में इनके अतिरिक्त और शब्द भी हैं, जैसे हिं. सं. में हैं। अतः भिन्न व्याख्याएं संभव हैं। हमारे विचार में उपरोक्त टीका संभाव्यतः ठीक है।

११ : १-४—प्रभु की प्रार्थना मत्त. ६ : ९-१३ में भी पाई जाती है, अतः उस स्थल की व्याख्या को पढ़िए। अधिकांश में वह व्याख्या लूका पर भी लागू है, परंतु लूका में यह प्रार्थना अधिक संक्षिप्त है, तथा कुछ अन्य भिन्नताएं भी हैं। लूका में इसका प्रसंग भिन्न है। संभव है कि ११ : १, जो केवल इस सुसमाचार में है, लूका की रचना हो। रब्बी अपने शिष्यों के लिए छोटी प्रार्थनाएं तैयार करते थे। मत्ती में इस प्रार्थना में निम्नांकित बातें सम्मिलित हैं जो लूका में नहीं हैं : "तू जो स्वर्ग में है"; "तेरी इच्छा जैसी स्वर्ग में पूरी होती है वैसे पृथ्वी पर भी हो"; "परंतु बुराई से बचा"। मत्ती में "आज हमें दे" के स्थान पर लूका में "हर दिन हमें दिया कर" है। संभव है कि इस प्रार्थना के प्रयोग में ये शब्द परिवर्तित हुए। इस प्रकार जहां मत्ती में "अपराध" है वहां लूका में "पाप" लिखा है। विद्वानों की साधारण मान्यता के अनुसार मत्ती ने इस प्रार्थना को बढ़ाया। लूका ने संभाव्यतः उसे परिवर्तित किया। इन दो रूपों में कोई मौलिक अंतर नहीं है। मत्त. १३ उ. के संबंध में उसकी व्याख्या को देखिए।

(ख) आधी रात को मांगनेवाले का दृष्टांत, प्रार्थना का उत्तर ११ : ५-१३
(मत्त. ७ : ७-११)

११ : ५-८ केवल लूका में है। यूनानी में पद ५ जटिल सा है। हि. प्र. की अपेक्षा हिं. सं. स्पष्ट है, "मान लो, किसी का एक मित्र है. . . ."। रात की ठंड में दिन की गरमी से बचने के लिए यात्रा करनेवाले का इस प्रकार किसी मित्र के पास आना असाधारण बात नहीं थी। उठकर रोटी देना उस व्यक्ति और उसके परिवार के लिए कष्टप्रद था, तो भी मित्र के आग्रह के कारण उस ने उठकर उसे रोटी दी। दृष्टांत का अर्थ यह नहीं है कि परमेश्वर अनिच्छा से देता है वरन् यह कि वह मनुष्य में ईश्वरीय दानों की प्राप्ति की उत्कंठा देखकर प्रसन्न होता है। जिन लोगों की ऐसी उत्कंठा होती है वे अवश्य परमेश्वर से पाते हैं।

११ : ९-१३ का अधिक भाग मत्त. ७ : ७-११ में शब्दशः पाया जाता है, अतः उस स्थल की व्याख्या को पढ़िए। केवल इतना अंतर है : (i) कि मत्ती में रोटी और पत्थर का तथा मछली और सांप का, परंतु लूका में मछली और सांप तथा अंडा और बिच्छु का वर्णन है (हि. सं.) में ऐसा है। यह सही मूल पाठ के अनुसार है। अनेक पाठांतर हैं, जिनका अभिप्राय मत्ती के साथ संगति कराना है। हि. प्र. में इन पाठांतरों में से एक अनूदित है)। (ii) कि लूका में "अच्छी वस्तुएं" (मत्त. ७ : ११) के स्थान पर "पवित्र आत्मा" है। पवित्र आत्मा लूका का एक विशेष विषय है, अतः संभाव्यतः लूका ने ही यह परिवर्तन किया होगा।

(३) विरोधियों के संबंध में ११ : १४-५४

(क) यीशु और शैतान, अशुद्ध आत्मा का लौटना ११ : १४-२६
(मर. ३ : २२-२७; मत्त. १२ : २३-३०, ४३, ४५)

मरकुस और मत्ती के उपरोक्त स्थलों को और उनकी व्याख्या को पढ़िए। **मत्ती के समान, लूका ने भी Q और मरकुस के वर्णनों का सम्मिश्रण किया है, परंतु**

कदाचित् लूका मत्ती से अधिक Q पर निर्भर है। लूका के पद १४, १८उ.-२०, २३ मत्त. १२ : २२, २३ उ., २७, २८, ३० के समान, और Q में से हैं। पद १५-१८ पू. मर. ३ : २२-२६ के समान हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि शैतान-संबंधी वर्णन दोनों परंपराओं में सुरक्षित रखा गया था।

११ : १६ केवल लूका में है, परंतु वह मत्त. १२ : ३८; मत्त. १६ : १=मर. ८ : ११; और लू. ११ : २९ के समान है। संभाव्यत: इस पद को जोड़ने में लूका का अभिप्राय यह प्रकट करना था कि आध्यात्मिक लोगों की दृष्टि में यीशु के आश्चर्यकर्म वास्तव में चिन्ह थे। **११ : २०** में लूका ने "परमेश्वर की अंगुली" (हि. प्र., पाद-टिप्पणी, हिं. सं., पाद-टिप्पणी) लिखा। इसका अनुवाद "सामर्थ्य" किया गया है। मत्त. १२ : २८ में "परमेश्वर के आत्मा से" है। उपरोक्त अनुवाद मूल के अर्थ को ठीक व्यक्त करते हैं। लूका के शब्द, "परमेश्वर की अंगुली से" नि. ८ : १९ से उद्धृत जान पड़ते हैं, जहां मूसा के आश्चर्य कर्मों का वर्णन है।

(ख) धन्य कौन है, चिन्ह ढूढ़ने के विरुद्ध चेतावनी, प्रकाश और अंधकार ११ : २७-३६
(मत्त. १२ : ३८-४२; ५ : १५; ६ : २२, २३)

११ : २७, २८ केवल लूका में है। ११ : २९-३२ मत्त. १२ : ३८-४२ के अनुरूप है। मत्ती की व्याख्या को पढ़िए। ११ : ३३ मत्त. ५ : १५ के अनुरूप और ११ : ३४, ३५ मत्त. ६ : २२, २३ के अनुरूप है, अत: उनकी व्याख्या को भी पढ़िए। ११ : ३६ केवल लूका में है।

११ : २७, २८ कुछ अंशों में मर. ३ : ३२-३५ के समान है, जिसका प्रयोग लूका ने ८ : १९-२१ में किया है। दोनों स्थलों की प्रमुख शिक्षा एक ही है, अर्थात् यह कि सब से महत्वपूर्ण संबंध वह है जो मनुष्य और परमेश्वर में होता है। मनुष्य के लिए इस संबंध का आधार आज्ञापालन है।

११ : २९-३२ की पर्याप्त व्याख्या मत्ती १२ : ३८-४२ की टीका में की गई है।

११ : ३३ मत्त. ५ : १५ में भी, पर्वतीय प्रवचन में है। उसकी तुलना मर. ४ : २१=लू. ८ : १६ से भी कीजिए, जो लगभग उसके समान है। इस संबंध में मरकुस की व्याख्या को देखिए। लूका के प्रसंग में इस कथन का संबंध पद ३१, ३२ से है। यीशु के द्वारा परमेश्वर का प्रकाश प्रकट हुआ। ख्रिस्तियों को उस प्रकाश को छिपाना नहीं, चमकाना है। **११ : ३४, ३५** भी अन्य स्थल पर मत्ती के पर्वतीय प्रवचन में है। उसकी व्याख्या को देखिए। संभाव्यत: लूका ने इसको केवल इस कारण यहां जोड़ा कि उस में प्रकाश का उल्लेख है। मत्ती की व्याख्या इस संदर्भ पर लागू नहीं है। लूका ने पद ३५ के द्वारा इस पद का संबंध संदर्भ के साथ जोड़ा है। ख्रिस्ती व्यक्ति को सावधान रहना है कि वह ख्रिस्त का प्रकाश जो उसके अंदर है सुरक्षित रखे। **११ : ३६** – यह पद अस्पष्ट और पुनरुक्त है। कदाचित् उनका अभिप्राय इस अंश का सारांश प्रस्तुत करना है। हिं. प्र. की अपेक्षा हिं. सं. स्पष्ट है, "यदि तुम्हारा समस्त शरीर प्रकाश

में है और उसका कोई अंश अंधकार में नहीं तो वह सर्वथा दीप्तिवान् रहेगा; जैसे दीपक अपने आलोक से तुम्हें दीप्तिवान् करता है" ।

(ग) फरीसियों और शास्त्रियों की भर्त्सना ११ : ३७-५४
(मत्त. २३ : ४, ६, ७, १३, २३, २५-२७, २६-३६)

निम्नांकित व्याख्या के क्रमानुसार मत्ती के उपरोक्त स्थलों की व्याख्या को पढ़िए। लूका की अधिक सामग्री मत्ती में भी है, परंतु क्रम और शब्दावली में बहुत अंतर है। मत्त. २३ : १३-३६ की टीका का पहला पैरा भी पढ़िए। संभव है कि मत्ती और लूका दोनों ने अपने स्रोत (Q) का अनुकूलन किया, या उन्हें यह सामग्री दो भिन्न रूपों में प्राप्त हुई। लूका में, मत्ती के समान, सात धिक्कार हैं, परंतु पद ३६ में (=मत्त. २३ : २५) "हाय" शब्द नहीं है। इसको मिलाकर लूका में पहले चार धिक्कार फरीसियों के विरुद्ध, अंतिम तीन धिक्कार (पद ४६ से लेकर) व्यवस्थापकों, अर्थात् शास्त्रियों, के विरुद्ध हैं। मत्ती में सातों धिक्कार शास्त्रियों और फरीसियों के विरुद्ध हैं। मत्ती के समान लूका ने भी अपने काल की कलीसिया की स्थिति की ओर संकेत किया है। मत्ती शास्त्रियों और फरीसियों को पाखंडी (कपटी) भी कहता है परंतु लूका यहां इस शब्द का प्रयोग नहीं करता। १२ : १ में उसका प्रयोग किया गया है।

११ : ३७, ३८ केवल लूका में हैं। इन पदों द्वारा लूका इन कथनों के लिए अपने सुसमाचार में संदर्भ का प्रबंध करता है। यह प्रायः असंभव है कि किसी के घर भोजन करते समय यीशु उसके विरुद्ध ऐसी बातें कहता। पद ३८ की तुलना मत्त. १५ : १= मर. ७ : १ क्र. और उसकी व्याख्या से कीजिए।

११ : ३६, ४१ मत्त. २३ : २५, २६ के समान है। **११ : ४०** केवल लूका में है। इस अंश का ब्योरा स्पष्ट नहीं है, क्योंकि पात्रों के बाहर किंतु मनुष्यों के भीतर का उल्लेख है। परंतु मौलिक अर्थ स्पष्ट है। फरीसियों का धर्म ऊपरी, उथला बाह्य नियमों और रीतियों से संबंधित था। महत्वपूर्ण बातें बाह्य नहीं, आंतरिक हैं। अनेक लोग बाह्य रीति रस्मों का पालन करते हुए भी आंतरिक रूप से दुष्ट रहते हैं। ११ : ४१ मत्ती से भिन्न और ऐसा अस्पष्ट है कि अनुमान लगाया गया है कि मौखिक परंपरा में मूल अरामी का अनुवाद ठीक से नहीं किया गया। इतना साफ है कि इसका मौलिक अर्थ भी उपरोक्त व्याख्या के अनुकूल है। कदाचित् "दान" का अर्थ वह योगदान है जो कोई व्यक्ति अपने सदाचार से कर सकता है।

११ : ४२ मत्त. २३ : २३ के समान है। शब्दों में अंतर है परंतु अर्थ में नहीं। मत्ती की व्याख्या को पढ़िए। **११ : ४४** मत्त. २३ : २७ के सदृश है, परंतु मौलिक अर्थ भिन्न है। कबर को स्पर्श करना अशुद्ध हो जाना है, अतः अदृश्य कबरें हानिकर हैं। ऐसे ही पाखंडी मनुष्य हानिकर हैं। **११ : ४५, ४६ पू.** केवल लूका में है। ऐसा प्रतीत होता है कि लूका ने इसको रचा कि व्यवस्थापकों के विरुद्ध अलग धिक्कार हों। ११ : ४६ उ. के संबंध में मत्त. २३ : ४ की व्याख्या को पढ़िए। **११ : ४७, ४८** में मत्त. २३ : २९ – ३१ की सामग्री का संक्षेप है। मौलिक अर्थ का स्पष्टी-

करण मत्ती की टीका में किया गया है। अर्थ यह है कि इन व्यवस्थापकों में वही हिंसक भाव है जो उनके पूर्वजों में भी था।

११ : ४९-५१ मत्त. २३ : ३४-३६ के समान है। मत्ती की व्याख्या अधिकतर लूका के इस अंश पर भी लागू है। **११ : ४९** में "परमेश्वर की बुद्धि" बोलती है। (मत्ती के अनुसार यह यीशु का कथन था)। इसके संबंध में दो संभावनाएं है, (i) कि "परमेश्वर की प्रज्ञा" नामक एक लेख था जो खो गया है, और जिस में से यह बात उद्धृत की गई। (ii) कि परमेश्वर ने अपनी प्रज्ञा से यह बात कही। अधिकांश विद्वान (ii) को स्वीकार करते हैं। मत्ती में "बुद्धिमानों और शास्त्रियों" के स्थान पर लूका में "प्रेरितों" है। कदाचित् लूका स्पष्ट रूप से इस कथन को कलीसिया पर लागू करना चाहता था। मत्ती में यहूदी धर्माचार्यों का उल्लेख है। **पद ४८ उ.** मत्त. २३ : ३४ की अपेक्षा अधिक संक्षिप्त है। **११ : ५०, ५१**में भी मत्ती से काफी शाब्दिक अंतर है, परंतु मौलिक अर्थ समान है। **११ : १२** में मत्त. २३ : १३ के "मनुष्यों के विरोध में स्वर्ग के राज्य का द्वार बंद करते हो" के स्थान पर "ज्ञान की कुंजी को ले तो ली" है। मत्ती में कथन का जो रूप है वह अधिक स्वीकार्य है क्योंकि वह प्रसंग के अधिक अनुकूल है। संभवत: "ज्ञान" शब्द का प्रयोग हेलेनीवाद और ज्ञानवाद के प्रभाव से है। व्यस्थापकों का कार्य लोगों को स्वर्ग का मार्ग दिखाना था, परंतु वे इस कार्य में, और स्वयं भी उस मार्ग को पाने में असफल रहे। **११ : ५३, ५४** केवल लूका में है। यह लूका का अपना संपादकीय उपसंहार है।

(४) शिष्यों के लिए यीशु की शिक्षा १२ : १-४८

(क) कपट के विरुद्ध, निर्भय विश्वास घोषणा के लिए प्रबोधन १२ : १-१२

(मत्त. १० : २६-३३; १२ : ३२; १० : १९, २०)

उपरोक्त संदर्भ प्रकट करते हैं कि इस अंश का अधिक भाग मत्ती में बारह शिष्यों को सुसमाचार प्रचार के लिए भेजने के प्रसंग में है। मत्ती की व्याख्या को पढ़िए।

१२ : १ पू. केवल लूका में है। यद्यपि भीड़ उपस्थित है तथापि यीशु विशेष रूप से अपने शिष्यों को संबोधित करता है। १२ : १३ में भीड़ में से एक व्यक्ति के बोलने का, पद २२ में शिष्यों को संबोधित करने का, और अंत में, पद ५४ में, भीड़ को संबोधित करने का उल्लेख है। १२ : १ उ. की तुलना मत्त १६ : ६=मर. ८ : १५ से कीजिए। वहां प्रसंग भिन्न है। यहां "खमीर" का अर्थ है फरीसियों का कपट। लूका ने पिछले अंश में कपट शब्द का प्रयोग नहीं किया, परंतु इस पद में उसका प्रत्यक्ष प्रयोग है। १२ : १, २, और ३ में निकट संबंध है। **१२ : १** में फरीसियों के खमीर का अर्थ "कपट" बताया गया है ("फरीसियों के खमीर अर्थात् कपट से सावधान रहना," हि. सं.)। मत्ती १६ : ११, १२ फरीसियों की शिक्षा को खमीर कहा गया है। १२ : २ में यह तथ्य स्पष्ट किया गया है कि सब कपट और पाखंड छिप न सकेगा।, वह खुल जाएगा। **१२ : ३** में शिष्यों को संबोधित किया गया है। बिना किसी प्रकार के कपट के, तथा निडर होकर शिष्यों को चाहिये कि सुसमाचार प्रचार करें। यद्यपि इस समय प्रकट रूप से प्रचार

करना असंभव है, तथापि वे दिन आएंगे जब प्रचार करना संभव होगा। सुसमाचार प्रचार में कपट के लिये कोई स्थान नहीं है। १२ : १-३ की तुलना मर. ४ : २३=लू. ८ : १७ से और मत्त. १० : २६, २७ से भी कीजिए। इस तुलना से ज्ञात होता है कि १२ : २, ३ के कथन तीन भिन्न प्रसंगों में प्रयुक्त किए गए हैं। मत्त. १० : २६-२७ में शिष्यों को प्रोत्साहित किया जाता है कि वे निर्भीकता से यीशु की शिक्षा का प्रचार करें।

१२ : ४, ५ मत्त. १० : २८ की अपेक्षा अधिक विस्तृत है, परंतु मौलिक अर्थ एक ही है। मत्ती की व्याख्या को देखिए। मत्ती में "पर आत्मा को घात नहीं कर सकते" के स्थान पर लूका में "उसके पीछे और कुछ नहीं कर सकते" है। पद ५ में "आत्मा और शरीर" (मत्ती में) का उल्लेख नहीं है, परंतु लूका में इस कथन का रूप अधिक जोरदार है। **१३ : ६, ७** मत्त.१० : २९-३१ के समान है, अतः उसकी व्याख्या को पढ़िए। अंकों में, और कुछ शब्दों में, अंतर है, परंतु मौलिक अर्थ एक ही है। **१२ : ८, ९** मत्ती १० : ३२, ३३ के समान है। उसकी व्याख्या को पढ़िए। जहां मत्ती में "मैं भी. . .मान लूंगा" है वहां लूका में "मनुष्य का पुत्र भी. . . .मान लेगा" है, अतः अनेक टीकाकारों की यह मान्यता है कि इस स्थल में यीशु और मनुष्य का पुत्र दो पृथक व्यक्ति हैं। ऐसा मान लेना आवश्यक नहीं है। संभव है कि लूका ने "मैं" को "मनुष्य के पुत्र" में परिवर्तित किया। यह वह पदवी है जिसके प्रयोग से यीशु अपने ख्रिस्त होने को गुप्त रखता था (मर. २ : १-१२ की व्याख्या के पश्चात् की टिप्पणी को देखिए)। "परमेश्वर के स्वर्गदूतों के सामने" संभाव्यतः मत्ती के "अपने स्वर्गीय पिता के सामने" के समानार्थक है। पद ९ की तुलना मर. ८ : ३८=ल. ९ : २६ और उसकी व्याख्या से कीजिए।

१२ : १० मत्त. १२ : ३२ के समान है। मर. ३ : ३८, ३९ से भी तुलना कीजिए। मत्ती और मरकुस में यह कथन शैतान संबंधी वादविवाद के संदर्भ में है। लूका ने उस स्थल में इस कथन को सम्मिलित नहीं किया। मत्ती की व्याख्या को पढ़िए। **१२ : ११, १२** का अर्थ मूलतः वही है जो मत्त. १० : १९ का है। तुलना मर. १३ : ११ =लू. २१ : १४, १५ से भी कीजिए। स्पष्टीकरण के लिए मर. १३ : ११ की टीका को देखिए।

(ख) लोभ के संबंध में चेतावनी, मूर्ख धनवान् का दृष्टांत १२ : १३-२१

यह अंश केवल लूका में है। **१२ : १३, १४** में दृष्टांत के लिए प्रसंग तैयार किया गया है। यीशु ने इस कारण उस व्यक्ति के निवेदन को अस्वीकार किया कि उसकी दृष्टि में इस समस्या का कारण लोभ था। इसका समाधान संपत्ति का विभाजन नहीं वरन् संपत्ति के प्रति अनासक्ति है (तुलना १ कुर. ६ : ७, ८)। **१२ : १५** का यही अर्थ है। संपत्ति सीमित काल के लिए परमेश्वर की ओर से दान है। संपत्ति की प्राप्ति को जीवन का अर्थ और लक्ष्य बनाना सब से बड़ी भूल है। दृष्टांत में धनवान् का भ्रम यह नहीं था कि उसने अपनी भूमि की उपज की रक्षा की वरन् यह कि उस संपत्ति के अतिरिक्त उसके पास कुछ था ही नहीं। वह "परमेश्वर की दृष्टि में धनी नहीं"

था। यथार्थ में जीवन संपत्ति पर निर्भर नहीं है। यथार्थ जीवन का आधार परमेश्वर के साथ निकट व्यक्तिगत संबंध है। इस व्यक्ति ने इस संबंध की उपेक्षा की थी। १२ : १७-१६ धनवान ने अपने मन में जो विचार किया उससे प्रकट होता है कि वह पूर्णतया स्वार्थी था। पद १६ बुल्के के अनुवाद में चलती भाषा में बड़ा प्रभावशाली है : "अरे भाई, तुम्हारे पास बरसों के लिए बहुत सा माल इकट्ठा है, इस लिए विश्राम करो, खाओ-पीओ और मौज उड़ाओ"। वह धनवान मृत्यु के लिए तैयार नहीं था। परमेश्वर का एकमात्र दान जो मनुष्य मृत्यु से परे ले जा सकता है, अर्थात् शाश्वत जीवन, उसके पास नहीं था।

(ग) चिंता उन्मूलन, सदैव जाग्रत रहना १२ : २२-४८

(मत्त. ६ : २५-३३, १६-२१; २४ : ४३-५१)

१२ : २२-३४—इस अंश में पद २२-३१ मत्त. ६ : २५-३३ के समान है, पद ३२ केवल लूका में है, और पद ३३, ३४ मत्त. ६ : १६-२१ के समान है।

१२ : २२-३१ के संबंध में मत्ती ६ : २५-३३ की की टीका पर्याप्त है। उसको पढ़िए। पद २६ केवल लूका में है। पद २७ उ. – हिं. सं. में "न तो वे कातते हैं न बुनते हैं" है। यह यूनानी मूल में पाठांतर के कारण है। संभाव्यतः हि. प्र. का अनुवाद ठीक है। पद २६ उ. में शाब्दिक अंतर है, अर्थ में अंतर नहीं है।

१२ : ३२ केवल लूका में है। लूका ने इसे यहां राज्य के उल्लेख के कारण सन्निविष्ट किया होगा। "झुंड" शिष्यों का समूह था, परंतु कालांतर में यह कथन कलीसिया पर लागू माना गया। राज्य मनुष्य के परिश्रम का फल नहीं, परमेश्वर का दान है।

१२ : ३३, ३४ और मत्त. ६ : १६-२१ में काफी भिन्नता है। मौलिक अर्थ तो एक ही है परंतु लूका में "काई" का उल्लेख नहीं है, न मत्ती में संपत्ति बेचने का वर्णन है (तुलना १८ : २२=मर. १० : २१=मत्त. १६ : २१)।

१२ : ३५-४६ – पद ३५-३८ केवल लूका में है, परंतु उन में और मत्त. २५ : १-१३, दस कुमारियों के दृष्टांत में, कुछ समानता है। इस अंश में ख्रिस्त के पुनरागमन के लिए तैयार रहने का प्रबोधन है। ऐसे तैयार रहना है जैसे श्रमिक, जो धोती कमर में बांधे रहकर काम करने के लिए प्रस्तुत रहता है। **१२ : ३७** की तुलना यू. १३ : ५ से कीजिए। यथार्थ में कोई स्वामी इस प्रकार अपने दासों की सेवा नहीं करेगा। परंपरा में यह दृष्टांत अन्योक्तिमूलक बनाया गया है। वास्तव में ख्रिस्त गंभीर अर्थों में अपने अनुयायियों की सेवा करता है। १२ : ३८ में संकेत किया गया है कि ख्रिस्त के पुनरागमन में विलब होना संभव है।

१२ : ३६-४६ मत्त. २४ : ४३-५१ के समान है। लूका के परिवर्तन अधिकतर शैलीगत ही हैं, अतः मत्ती की व्याख्या पर्याप्त है—उसको पढ़िए। **१२ : ४१** केवल लूका में है। शिष्यों में पतरस को अग्रिम स्थान प्राप्त था, अतः यहां ऐसे शब्द उस पर आरोपित किए गए हैं जो लूका के काल की कलीसिया के शब्द हैं। इस प्रश्न का स्पष्ट

उत्तर नहीं मिलता, परंतु पद ४२ में, मत्त. २४ : ४५ के "दास" के स्थान पर, लूका ने "भंडारी" लिखा है, जिस से ज्ञात होता है कि लूका में यह अंश विशेषकर प्रेरितों के संबंध में, और लूका के काल के पाठकों के लिए समकालीन कलीसिया के धर्माचार्यों के संबंध में लिखा गया। यह अर्थ मत्ती में भी निहित है, परंतु लूका में अधिक स्पष्ट किया गया है।

१२ : ४७, ४८ केवल लूका में है। यह उपरोक्त कथनों से संबंधित है। दोनों पदों में एक मौलिक नियम का प्रतिपादन है – जिस अनुपात से किसी को बुद्धि, ज्ञान, अनुग्रह, उत्तरदायित्व आदि प्रदान किए गए हैं। उसी अनुपात से परमेश्वर उस से निष्ठा, भक्ति, विश्वस्तता, सेवा आदि की मांग करेगा।

(५) निर्णायक काल १२ : ४९-१३ : ९

(क) समय के लक्षण, वादी के साथ समझौता १२ : ४९-५९
(मत्त. १० : ३४-३६; १३ : २, ३; ५ : २५, २६)

१२ : ४९-५३ पद ४९ पू. केवल लूका में है। तुलना कीजिए मर. १० : ३८ और उसकी व्याख्या। आग का अर्थ परमेश्वर का न्याय है। जैसे मत्त. १० : ३४-३६ की व्याख्या में प्रकट किया गया है, जहां सत असत आमने सामने होते हैं वहां न्याय और विरोध अनिवार्य रूप से होते हैं। यहां बपतिस्मा का अर्थ यीशु की मृत्यु है। **१२ : ५१-५३** की व्याख्या मत्त. १० : ३४-३६ की टीका में की गई है। लूका ने "तलवार" के स्थान पर "अलग कराने" (हिं. सं. "फूट डालने) लिखा है। "तलवार" शब्द में राजनीतिक अर्थ निहित है। कदाचित् लूका इस अर्थ से बचना चाहता था। मत्ती का वर्णन संक्षिप्त है, परंतु मौलिक अर्थ समान है।

१२ : ५४-५६ कुछ अंशों में मत्त. १६ : २, ३ के सदृश है, परंतु ब्योरे में काफी अंतर है। मत्ती का प्रसंग भी भिन्न है – उसकी व्याख्या को पढ़िए। लूका के अनुसार यीशु जनता को संबोधित करता है। लोग जल-वायु के संकेतों को पहचानते हैं, परंतु "इस काल के लक्षणों को" (हिं. सं.) नहीं पहचान सकते। "इस काल" का अर्थ ख्रिस्त का काल है जो यीशु के आने से आरंभ हुआ।

१२ : ५७-५९ मत्त. ५ : २५, २६ के समान है। उसकी व्याख्या को पढ़िए। पद ५७ मत्ती में नहीं है। संभाव्यतः वह लूका का संपादकीय सन्निवेश है, जिस से इस अंश और पिछले अंश का संबंध जोड़ा गया है। लूका इस कथन को, दृष्टांत के समान, अंतिम न्याय पर लागू करता है। यदि लोग "इस काल के लक्षणों को" पहचानें तो वे न्याय के दिन से पहले अपने विरोधियों से मेल करेंगे। वास्तव में युगांत-संबंधी परिभाषा में परमेश्वर स्वयं वादी और न्यायाधीश दोनों है। मेल उसी से करना है।

(क) हृदय-परिवर्तन या विनाश, फलहीन अंजीर का वृक्ष १३ : १-९

यह पूर्ण अंश केवल लूका में है। इस सुसमाचार में अनेक बार इस प्रकार की साहित्यिक रचना है। यीशु ने एक कथन के पश्चात् दृष्टांत है।

१३ : १-५—उक्त दोनों घटनाएंय रूशलेम में हुईं। उनका वर्णन किसी

अन्य लेख में नहीं मिलता, परंतु योसेपस पिलातुस के संबंध में इसी प्रकार के अत्याचार का विवरण करता है। यीशु ने इस सामान्य मान्यता को अस्वीकार किया कि संकट या विपत्ति में पड़ना विपत्ति-ग्रस्त व्यक्ति के निजी पाप का फल है (तुलना कीजिए यू. ९ : ३)। सब मनुष्य पापी हैं, अतः दोनों उदाहरणों में उक्त लोगों की दशा उनके अपराध विशेष के कारण नहीं है। वे शारीरिक रूप से नष्ट हुए, परंतु जो लोग पश्चाताप और मन-परिवर्तन नहीं करते वे अधिक गंभीर रूप से नष्ट हो जाएंगे। इस स्थल में व्यक्तिगत विनाश का नहीं वरन् राष्ट्रीय रूप से इस्राएल के विनाश का वर्णन है।

१३ : ६-९ का दृष्टांत स्पष्ट करता है कि इस अंश में मौलिक रूप से इस्राएल की ओर संकेत है। अंजीर का वृक्ष इस्राएल का प्रतीक है। इस्राएली जाति और राष्ट्र से वह फल नहीं हुआ जो परमेश्वर चाहता था और जिस की अपेक्षा में उस ने उसे चुना था, अतः इस्राएल विनाश के योग्य है। तीन वर्ष में वृक्ष में फल लगना चाहिए था। तीन वर्ष पर्याप्त समय था। परमेश्वर धैर्यवान है, वह अवसर देने को तैयार है, परंतु अंततः यदि मन-परिवर्तन न हो तो वह फलहीन वृक्ष को नहीं रहने देगा। इस्राएल जाति यीशु के संदेश को अस्वीकार कर रही थी। यह चेतावनी है कि इस संदेश की उपेक्षा करना जोखिममय है। यरूशलेम का विनाश ई. स. ७० में हुआ, परंतु संभाव्यतः इस अंश का संकेत युगांत-संबंधी भी है। लूका ने मर. ११ : १२-१४, २०-२५ को (फल रहित अंजीर के वृक्ष का वर्णन) अपने सुसमाचार में सम्मिलित नहीं किया। कारण कदाचित् यह है कि उस ने उसे इस दृष्टांत के अनुकूल समझा।

(६) विविध कथन तथा घटनाएं १३ : १०–१९ : २७

(क) कुबड़ी को सबत के दिन स्वस्थ करना १३ : १०-१७

(तु. मत्त १२ ; ११, १२; लू. १४ : ५)

यह वर्णन भी केवल लूका में है। सबत-पालन के संबंध में मर. २ : २३-२७; ३ : १-६ (=लू. ६ : १-११) की व्याख्या को देखिए। माना जाता है कि स्त्री के रोग का कारण दुष्टात्मा का प्रभाव है। कदाचित् उसे गठिया का रोग था। यीशु उस पर दया करके स्वयं उस से बोला। वह स्त्री उस रोग से, जो शैतान, अर्थात् दुष्टता के प्रभाव से था, ग्रस्त थी, अतः यीशु ने कहा कि "तुम मुक्त हो गई" (छूट गई, हि. प्र.)। इस प्रकार पद १६ में भी उसे मुक्त करने का उल्लेख है। इन बातों में पाप और दुष्टता के बंधन से मुक्त होने का संकेत है। सभागृह का अधिकारी (पद १४) इस्राएल और उसके धर्म का प्रतीक है, जो रीति रस्मों के बंधन में थे। यद्यपि पद १४ में केवल एक व्यक्ति ने आपत्ति की तो भी पद १५ में (तुलना १४ : २-६; मत्त. १२ : ११, १२ उ. और उसकी व्याख्या) यीशु बहुवचन - रूपी शब्दों का प्रयोग करता है। यीशु पहले इस्राएल को, फिर समस्त संसार को, शैतान के वश से छुड़ाने आया (स्त्री "अब्राहाम की पुत्री" थी)। पद १६ में "उचित" के यूनानी मूल शब्द ((एदे) में यह अर्थ निहित है कि स्त्री का सबत के दिन मुक्त होना उपयुक्त, बल्कि आवश्यक था। यह प्रकट करना आवश्यक था कि परमेश्वर निरंतर क्रियाशील है। शैतान का विरोध सबत के दिन भी

उत्तर नहीं मिलता, परंतु **पद** ४२ में, मत्त. २४ : ४५ के "दास" के स्थान पर, लूका ने "भंडारी" लिखा है, जिस से ज्ञात होता है कि लूका में यह अंश विशेषकर प्रेरितों के संबंध में, और लूका के काल के पाठकों के लिए समकालीन कलीसिया के धर्माचार्यों के संबंध में लिखा गया। यह अर्थ मत्ती में भी निहित है, परंतु लूका में अधिक स्पष्ट किया गया है।

१२ : ४७, ४८ केवल लूका में है। यह उपरोक्त कथनों से संबंधित है। दोनों पदों में एक मौलिक नियम का प्रतिपादन है – जिस अनुपात से किसी को बुद्धि, ज्ञान, अनुग्रह, उत्तरदायित्व आदि प्रदान किए गए हैं। उसी अनुपात से परमेश्वर उस से निष्ठा, भक्ति, विश्वस्तता, सेवा आदि की मांग करेगा।

(५) निर्णायक काल १२ : ४९-१३ : ९

(क) समय के लक्षण, वादी के साथ समझौता १२ : ४९-५९

(मत्त. १० : ३४-३६; १३ : २, ३; ५ : २५, २६)

१२ : ४९-५३ पद ४९ पू. केवल लूका में है। तुलना कीजिए मर. १० : ३८ और उसकी व्याख्या। आग का अर्थ परमेश्वर का न्याय है। जैसे मत्त. १० : ३४-३६ की व्याख्या में प्रकट किया गया है, जहां सत असत आमने सामने होते हैं वहां न्याय और विरोध अनिवार्य रूप से होते हैं। यहां बपतिस्मा का अर्थ यीशु की मृत्यु है। **१२ : ५१-५३** की व्याख्या मत्त. १० : ३४-३६ की टीका में की गई है। लूका ने "तलवार" के स्थान पर "अलग कराने" (हिं. सं. "फूट डालने) लिखा है। "तलवार" शब्द में राजनीतिक अर्थ निहित है। कदाचित् लूका इस अर्थ से बचना चाहता था। मत्ती का वर्णन संक्षिप्त है, परंतु मौलिक अर्थ समान है।

१२ : ५४-५६ कुछ अंशों में मत्त. १६ : २, ३ के सदृश है, परंतु ब्योरे में काफी अंतर है। मत्ती का प्रसंग भी भिन्न है – उसकी व्याख्या को पढ़िए। लूका के अनुसार यीशु जनता को संबोधित करता है। लोग जल-वायु के संकेतों को पहचानते हैं, परंतु "इस काल के लक्षणों को" (हिं. सं.) नहीं पहचान सकते। "इस काल" का अर्थ ख्रिस्त का काल है जो यीशु के आने से आरंभ हुआ।

१२ : ५७-५९ मत्त. ५ : २५, २६ के समान है। उसकी व्याख्या को पढ़िए। पद ५७ मत्ती में नहीं है। संभाव्यतः वह लूका का संपादकीय सन्निवेश है, जिस से इस अंश और पिछले अंश का संबंध जोड़ा गया है। लूका इस कथन को, दृष्टांत के समान, अंतिम न्याय पर लागू करता है। यदि लोग "इस काल के लक्षणों को" पहचानें तो वे न्याय के दिन से पहले अपने विरोधियों से मेल करेंगे। वास्तव में युगांत-संबंधी परिभाषा में परमेश्वर स्वयं वादी और न्यायाधीश दोनों है। मेल उसी से करना है।

(क) हृदय-परिवर्तन या विनाश, फलहीन अंजीर का वृक्ष १३ : १-९

यह पूर्ण अंश केवल लूका में है। इस सुसमाचार में अनेक बार इस प्रकार की साहित्यिक रचना है। यीशु ने एक कथन के पश्चात् दृष्टांत है।

१३ : १-५—उक्त दोनों घटनाएंय रूशलेम में हुईं। उनका वर्णन किसी

अन्य लेख में नहीं मिलता, परंतु योसेपस पिलातुस के संबंध में इसी प्रकार के अत्याचार का विवरण करता है। यीशु ने इस सामान्य मान्यता को अस्वीकार किया कि संकट या विपत्ति में पड़ना विपत्ति-ग्रस्त व्यक्ति के निजी पाप का फल है (तुलना कीजिए यू. ९ : ३)। सब मनुष्य पापी हैं, अतः दोनों उदाहरणों में उक्त लोगों की दशा उनके अपराध विशेष के कारण नहीं है। वे शारीरिक रूप से नष्ट हुए, परंतु जो लोग पश्चाताप और मन-परिवर्तन नहीं करते वे अधिक गंभीर रूप से नष्ट हो जाएंगे। इस स्थल में व्यक्तिगत विनाश का नहीं वरन् राष्ट्रीय रूप से इस्राएल के विनाश का वर्णन है।

१३ : ६-९ का दृष्टांत स्पष्ट करता है कि इस अंश में मौलिक रूप से इस्राएल की ओर संकेत है। अंजीर का वृक्ष इस्राएल का प्रतीक है। इस्राएली जाति और राष्ट्र से वह फल नहीं हुआ जो परमेश्वर चाहता था और जिस की अपेक्षा में उस ने उसे चुना था, अतः इस्राएल विनाश के योग्य है। तीन वर्ष में वृक्ष में फल लगना चाहिए था। तीन वर्ष पर्याप्त समय था। परमेश्वर धैर्यवान है, वह अवसर देने को तैयार है, परंतु अंततः यदि मन-परिवर्तन न हो तो वह फलहीन वृक्ष को नहीं रहने देगा। इस्राएल जाति यीशु के संदेश को अस्वीकार कर रही थी। यह चेतावनी है कि इस संदेश की उपेक्षा करना जोखिममय है। यरूशलेम का विनाश ई. स. ७० में हुआ, परंतु संभाव्यतः इस अंश का संकेत युगांत-संबंधी भी है। लूका ने मर. ११ : १२-१४, २०-२५ को (फल रहित अंजीर के वृक्ष का वर्णन) अपने सुसमाचार में सम्मिलित नहीं किया। कारण कदाचित् यह है कि उस ने उसे इस दृष्टांत के अनुकूल समझा।

(६) विविध कथन तथा घटनाएं १३ : १०—१९ : २७

(क) कुबड़ी को सबत के दिन स्वस्थ करना १३ : १०-१७

(तु. मत्त १२ : ११, १२; लू. १४ : ५)

यह वर्णन भी केवल लूका में है। सबत-पालन के संबंध में मर. २ : २३-२७; ३ : १-६ (=लू. ६ : १-११) की व्याख्या को देखिए। माना जाता है कि स्त्री के रोग का कारण दुष्टात्मा का प्रभाव है। कदाचित् उसे गठिया का रोग था। यीशु उस पर दया करके स्वयं उस से बोला। वह स्त्री उस रोग से, जो शैतान, अर्थात् दुष्टता के प्रभाव से था, ग्रस्त थी, अतः यीशु ने कहा कि "तुम मुक्त हो गई" (छूट गई, हि. प्र.)। इस प्रकार पद १६ में भी उसे मुक्त करने का उल्लेख है। इन बातों में पाप और दुष्टता के बंधन से मुक्त होने का संकेत है। सभागृह का अधिकारी (पद १४) इस्राएल और उसके धर्म का प्रतीक है, जो रीति रस्मों के बंधन में थे। यद्यपि पद १४ में केवल एक व्यक्ति ने आपत्ति की तो भी पद १५ में (तुलना १४ : २-६; मत्त. १२ : ११, १२ उ. और उसकी व्याख्या) यीशु बहुवचन - रूपी शब्दों का प्रयोग करता है। यीशु पहले इस्राएल को, फिर समस्त संसार को, शैतान के वश से छुड़ाने आया (स्त्री "अब्रहाम की पुत्री" थी)। पद १६ में "उचित" के यूनानी मूल शब्द ((एदे) में यह अर्थ निहित है कि स्त्री का सबत के दिन मुक्त होना उपयुक्त, बल्कि आवश्यक था। यह प्रकट करना आवश्यक था कि परमेश्वर निरंतर क्रियाशील है। शैतान का विरोध सबत के दिन भी

होना चाहिए। सबत-पालन और अन्य ऐसे नियम दया और प्रेम की मांगों से अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं। इस अंश का संबंध पिछले अंशों से है, जहां इस्राएल की असफलता प्रकट की गई है।

(ख) राई के दाने और खमीर के दृष्टांत, राज्य-प्रवेश से वंचित १३ : १८-३०
(मर. ४ : ३०-३२; मत्त. १३ : ३१-३३; ७ : १३, १४; २५ : १०, १२; ७ : २२, २३; ८ : ११, १२; १९ : ३०; २० : १६)

१३ : १८, १९ – राई के दाने का दृष्टांत मर. ४ : ३०-३२=मत्त. १३ : ३१, ३२ में भी पाया जाता है। उन दो स्थलों की व्याख्या को पढ़िए। उन में इस दृष्टांत के प्रति तीनों सुसमाचारों के पारस्परिक संबंध का विवेचन किया गया है। लूका के वर्णन में शब्दों और ब्योरे का अंतर होते हुए भी मौलिक अर्थ में वैभिन्न्य नहीं है। लूका ने ८ : १८ के पश्चात्, जहां मरकुस के क्रमानुसार इस दृष्टांत को आना चाहिए था, उसे सम्मिलित नहीं किया। **१३ : २०, २१** की पर्याप्त व्याख्या मत्त. १३ : ३३ की टीका में की गई है।

लूका में उपरोक्त दो दृष्टांतों के प्रसंग भिन्न हैं। इस्राएल की असफलता प्रकट की गई है। इन दृष्टांतों की मुख्य शिक्षा यह है कि परमेश्वर का राज्य सीमित नहीं, विश्वव्यापक है। सब जातियों के लोग उस में सम्मिलित होंगे।

१३ : २२-३० में लूका ने कई छोटे अंशों को इस विषय के अनुकूल जोड़ा है कि परमेश्वर ने बहुत यहूदियों को अपने राज्य से वर्जित किया, और बहुत विजातीय लोगों को उस में प्रविष्ट कराया है। ये अंश मत्ती में भिन्न प्रसंगों में पाए जाते हैं, जिस से ज्ञात होता है कि लूका ने उन्हें संकलित करके जोड़ा है।

१३ : २२-२४ मत्त. ७ : १३, १४ के सदृश हैं, परंतु उनमें बड़ी भिन्नता भी है। इनकी तुलना कीजिए। पद २२ लूका की संपादकीय रचना है(९ : ५१-१९ : २७, "यरूशलेम के मार्ग में" शीर्षक के नीचे की टिप्पणी को पढ़िए)। पद २३—इस प्रश्न पर समकालीन यहूदी धर्माचार्य वादविवाद करते थे। यीशु स्पष्ट उत्तर न देकर प्रकट करता है कि उद्धार पाना सरल नहीं है। लूका में केवल द्वार (मत्ती में फाटक और और मार्ग) का वर्णन है। पद २४ में "यत्न करो" एक यूनानी शब्द (अगोनित्सेस्थ) का अनुवाद है जिसका अर्थ प्राणपन से चेष्टा या प्रयत्न करना, संघर्ष करना, है।

१३ : २५-३०—पद २५ मत्त. २५ : १०-१२ के समान है, जो दस कुमारियों के दृष्टांत में है। पद २६, २७ और मत्त. ७ : २२, २३ में समानता और भिन्नता दोनों हैं। पद २८, २९ मत्त. ८ : ११, १२ के समान है। पद ३० इस रूप में मत्त. २० : १६ में और विपरीत रूप में मत्त. १९ : ३०=मर. १० : ३१ में है।

१३ : २५—प्रसंग मत्ती के प्रसंग से भिन्न है, वार्तालाप के शब्द समान हैं। परमेश्वर से ऊपरी परिचय होना उद्धार–प्राप्ति के लिए अपर्याप्त है। **१३ : २६, २७**–लूका पद २६ और मत्ती पद २३ की स्थितियां भिन्न हैं, परंतु मौलिक बात दोनों की यह है कि परमेश्वर से परिचय होने का दावा किया जाता है। ऐसा ही नकारात्मक उत्तर

पद २५ में भी है, परंतु पद २७ में वे लोग स्पष्टतः कुकर्मी कहे गए हैं। मत्ती के अनुरूपी स्थल की व्याख्या को पढ़िए। १३ : २८, २९ से ज्ञात होता है कि यह पूरा अंश इस्राएल पर लागू है। मत्ती के अनुरूपी अंश में क्रम भिन्न है परंतु समानता बहुत है। मत्ती की व्याख्या को पढ़िए। मत्ती के वर्णन की क्रियाएं अन्य पुरुष में हैं, परंतु लूका में यीशु श्रोताओं को संबोधित करता है, अतः लूका में "अपने आपको बाहर निकाले हुए" मत्ती के "राज्य के पुत्र बाहर अंधकार में निकाल दिए जाएंगे" (हिं. सं.) के अनुकूल है। "राज्य के पुत्र" का अर्थ यहूदी जाति है। पद २९ स्पष्ट करता है कि विजातीय लोग परमेश्वर के युगांत-संबंधी भोज में सहभागी होंगे। यह बात उस काल के बहुत यहूदियों की मान्यता का खंडन करती है कि यद्यपि सब विजातीय लोग नष्ट हो जाएं तो भी यहूदी लोग उद्धार प्राप्त करेंगे।

(ग) यरूशलेम जाना अनिवार्य, यरूशलेम के लिए यीशु का प्रेम १३ : ३१-३५ (मत्त. २३ : ३७-३९)

१३ : ३१-३३ केवल लूका में है। पद ३१ पू. लूका के संपादकीय शब्द हैं। ये शब्द इस अंश को पिछले अंश के साथ जोड़ते हैं। यह घटना गलील में, या पीरिया में, जो हेरोदेस अंतिपास के प्रदेश थे, हुई होगी। पद ३१ से ज्ञात हो जाता है कि कुछ फरीसी यीशु के हितैषी थे। संभाव्यतः लोमड़ी चालाकी का प्रतीक है। "आज और कल" का अर्थ नियत अल्प काल है। इतने में यीशु को वह काम करना था जिस के लिए वह आया था। पद ३२ और ३३ में कुछ पुनरावृत्ति है—कदाचित मौखिक परंपरा में कुछ शब्द जोड़े गए। परंतु मौलिक अर्थ स्पष्ट है। चाहे हेरोदेस कुछ भी करे यीशु अपना कार्य पूर्ण करने के लिए कृतसंकल्प था। "तीसरे दिन पूरा करूंगा" का अर्थ हिं. सं. में अधिक स्पष्ट व्यक्त किया गया है, "तीसरे दिन मेरा कार्य पूरा किया जाएगा"। इस में अवश्य यीशु की होनेवाली मृत्यु की ओर संकेत है। यीशु का यरूशलेम की ओर चलना आवश्यक था क्योंकि वह जानता था कि उसका काम वहां मृत्यु के द्वारा पूरा होने को था। यीशु स्वयं वह नबी है जो यरूशलेम में मारा जाएगा।

१३ : ३४, ३५ लगभग शब्दशः मत्त. २३ : ३७-३९ के समान है। मत्ती की व्याख्या को पढ़िए। लूका ने इस अंश को विषय की समानता के कारण यहां जोड़ा होगा, क्योंकि इस में भी नबियों के मारे जाने का वर्णन है। परंतु पद ३५ के कारण यह प्रसंग मत्ती के प्रसंग की अपेक्षा अनुपयुक्त है। जैसे मत्ती की टीका में कहा गया है, इस पद में यीशु के पुनरागमन का उल्लेख है, परंतु लूका का प्रसंग यीशु के यरूशलेम में धूमधाम के साथ प्रवेश करने (१९ : २८) से पहले का है। तो भी लूका का अभिप्राय भी यह था कि पद ३५ उ. के शब्द यीशु के पुनरागमन की ओर संकेत माने जाएं।

(घ) जलोदर पीड़ित को स्वस्थ करना, नम्रता पर शिक्षा १४ : १-१४ (मत्त. १२ : ११, १२; लू. १३ : १५; मत्त. २३ : १२; लू. १८ : १४)

१४ : १-३ की तुलना मर. ३ : १-६=मत्त. १२ : ९-१४=लू. ६ : १-५ से कीजिए, जहां इसी प्रकार की एक अन्य घटना का वर्णन है। यीशु सबत् के दिन एक

रोगी को स्वस्थ करता है और यहूदियों के धर्माचार्य इस पर आपत्ति करते हैं। स्मरण रहे कि यहां लूका का संदर्भ रूढ़िवादी यहूदी धर्म की असफलता का संदर्भ है। **१४ : ५** मत्त. १२ : ११ और लू. १३ : १५ के समान है (मत्ती की व्याख्या को देखिए)। इस पद में पाठांतर है। सर्वश्रेष्ठ हस्तलेखों का अनुवाद हिं. सं. में है, "जिसका पुत्र या बैल कुएं में गिर जाए"। निस्संदेह शुद्ध मूल पाठ यही है, परंतु संभव है कि यीशु ने "गधा" अथवा "भेड़" कहा और कि परंपरा के संचरण में अशुद्धि हो गई। यह भी संभव है कि वास्तव में "पुत्र" ठीक है, और कि यह बात व्य. ५ : १४ पर आधारित है, जहां व्यक्तियों की सूची में पुत्र और पशुओं की सूची में बैल पहला है। मौलिक बात एक ही है, अर्थात् कि आवश्यकता होने पर फरीसी भी सबत-पालन का उल्लंघन करते थे। यहां भी यीशु दया के भाव को औपचारिक व्यवस्थापालन से उत्तम और महत्वपूर्ण प्रमाणित करता है।

१४ : ७-११—ऐसा प्रतीत होता है कि १४ : १-२४ में अलग वर्णन और कथन हैं जो एक ही समय और संदर्भ में नहीं कहे गए, पर लूका ने स्वयं उन्हें इस प्रकार से जोड़ा, इसलिए कि सब का विषय भोज-संबंधी है। पद ७-१४ फरीसियों के पक्षपात और वर्गचेतना के विरुद्ध हैं। इस अंश में एक मौलिक सामाजिक नियम व्यक्त किया गया है। विनम्र भाववाला मनुष्य प्रतिष्ठायुक्त आसनों की खोज नहीं करता। सार की बात पद ११ में है, जो १८ : १४ और मत्त. २३ : १२ के समान है। मत्त. १८ : ४ से भी तुलना कीजिए। पद ७ में लूका ने पद ८-१० के वर्णन को दृष्टांत कहा है। यदि वह सचमुच दृष्टांत है तो वह फरीसियों की उस मान्यता के विरुद्ध संकेत है कि परमेश्वर के युगांत-संबंधी राज्य में उनको श्रेष्ठ स्थान मिलने का विशेषाधिकार प्राप्त था। इस प्रश्न के संबंध में भी नम्र भाव की आवश्यकता है।

१४ : १२-१४—ये पद दृष्टांत में सम्मिलित नहीं हैं। फरीसी अपने वर्ग के लोगों को निमंत्रित करना पसंद करते थे। ऐसा भाव न्यूनाधिक हम सब में पाया जाता है। ऐसे भाव में अवश्य यह खतरा सदा रहता है कि हम जो कुछ करें मन में यह विचार रखते हुए करें कि मुझे ऐसा करने से क्या लाभ होगा ? यीशु के कथन में देने के भाव पर बल दिया गया है। पद १४ में प्रतिफल का उल्लेख है। इसकी तुलना मत्त. ५ : ४६ और उसकी व्याख्या से कीजिए। यदि हम स्वर्ग में प्रतिफल मिलने की आशा के कारण ही व्यवहार करें तो हम भी कुछ "लेने" का भाव प्रकट करते हैं। "धर्मियों के जी उठने" के उल्लेख का अर्थ यह नहीं है कि अधर्मी नहीं जी उठेंगे, परंतु यह अर्थ है कि इन लोगों का जी उठना, जो परमेश्वर की दृष्टि में धार्मिक हैं, यथार्थ जीवन में प्रवेश करना होगा।

(च) भोज का दृष्टांत, आत्मत्याग १४ : १५-३५
(मत्त. २२ : १-१०; १० : ३७, ३८)

१४ : १५-२४—साधारणतः माना जाता है कि यह और मत्त. २२ : १-१० एक ही दृष्टांत के दो भिन्न वर्णन हैं। इस विषय पर मत्ती की व्याख्या को पढ़िए। उस व्याख्या में कुछ अन्य बातें भी हैं जो इस अंश पर भी लागू हैं।

इस रूप में यह दृष्टांत पूर्णतः संदर्भ के अनुकूल है।

१४ : १५ के द्वारा लूका स्पष्ट रूप से युगांत-संबंधी भोज का विषय प्रस्तुत करता है। इस दृष्टांत में निमंत्रण देनेवाला परमेश्वर, और निमंत्रित लोग यहूदी हैं। लूका के अनुसार केवल एक दास भेजा जाता है; मत्ती के अनुसार अनेक भेजे गए। संभाव्यतः लूका का अभिप्राय यह था कि दास यीशु का प्रतीक माना जाए। लूका में मत्ती की अपेक्षा निमंत्रण को अस्वीकार करनेवालों के संबंध में अधिक ब्योरेवार वर्णन है। एक प्रकार से सब के बहाने उचित हैं। मोल लिए गए खेत या बैलों का देखना और नव-विवाहित पत्नी के साथ रहना आवश्यक कार्य थे। इस प्रकार फरीसियों का व्यवस्थापालन उनकी दृष्टि में आवश्यक था। शोक की बात यह थी कि वे इस में ऐसे व्यस्त रहे कि यीशु द्वारा दिए गए परमेश्वर के निमंत्रण के महत्व को नहीं पहचाना।

लूका के अनुसार स्वामी ने दूसरी और तीसरी बार दास को भेजा (मत्ती में केवल दूसरी बार)। दूसरी बार के निमंत्रित लोग (२२) वे यहूदी हैं जिनका तिरस्कार यहूदियों के धर्माचार्य करते थे, जैसे कर लेनेवाले, "पापी" लोग जो अपने धंधों में व्यस्त रहने के कारण व्यवस्था का उल्लंघन करते थे, और भ्रष्टाचारी लोग। तीसरी बार के लोग (२३) स्पष्ट रूप से विजातीय लोगों का प्रतीक हैं, जिनके संबंध में संदर्भ के अंश भी प्रकट करते हैं कि वे परमेश्वर के राज्य में प्रवेश करेंगे। इन को बाध्य करने (हिं. सं.) का अर्थ यह नहीं है कि लोगों को बलप्रयोग से ख्रिस्ती बनाना चाहिए। ऐसा करना ख्रिस्त के भाव के विपरीत आचरण करना है।

महत्वपूर्ण तथ्य **१४ : २४** में है। यह बात विशेष रूप से समकालीन यहूदी धर्माचार्यों के विरुद्ध कही गई। संभव है कि इस पद में दृष्टांत के शब्द मेजबान के नहीं वरन् यीशु के स्पष्टीकरण के शब्द हों। एक प्रकार से वे लोग जो परमेश्वर के राज्य में प्रवेश करने के निमंत्रण को अस्वीकार करते हैं अपनी ही क्रिया से स्वयं को उस राज्य के उपकारों से वंचित रखते हैं।

१४ : २५-३५—यह अंश अधिकतर लूका में ही है, परंतु पद २६, २७ मत्त. १० : ३७, ३८ के समान है। उसकी व्याख्या को पढ़िए। तुलना मर. ८ : ३४= मत्त. १६ : २४=लू. ९ : २३ से भी कीजिए। **पद २५** लूका की संपादकीय भूमिका है। लूका के अनुसार ये बातें जनता से कही गईं। मत्त. १० अध्याय में यीशु शिष्यों को संबोधित करता है। मत्ती की अपेक्षा लूका में आदेश अधिक कड़ा है। "अप्रिय रखने" (हिं. सं., बुल्के, ध. ग्र., "बैर रखने") का अर्थ यह नहीं है कि सचमुच शाब्दिक अर्थों में शत्रुता हो वरन् यह कि वे इस प्रकार ख्रिस्त को अपने जीवनों में अग्रिम स्थान दें कि प्रियजनों के लिए उनका प्रेम अपेक्षाकृत बैर के समान प्रतीत थे। लूका में मत्ती से अधिक प्रिय जनों का उल्लेख है। अपने प्राणों से बैर रखने के संबंध में मर. ८ : ३४ की व्याख्या को और **१४ : २७** के संबंध में मर. ८ : ३५ की व्याख्या को पढ़िए। इन बातों का सार पद ३२ में पाया जाता है। यह पद दृष्टांतों के पश्चात् आता है, परंतु दृष्टांतों का मुख्य विचार इस से कुछ भिन्न है। १४ : ३३ में मानो पद २७ का स्पष्टी-

करण है—अपना क्रूस उठाना अपना सब कुछ त्यागना है। कितनी बड़ी मांग है यह ! १४ : २८-३२ के दृष्टांतों की प्रमुख बात यह है कि किसी महाकार्य का भार अपने ऊपर लेने से पहले भली भांति विचार कर लेना चाहिए कि उसे पूरा करने की शक्ति है या नहीं। ये बातें यीशु का अनुसरण करने पर लागू होती हैं। बिना सोचे समझे यीशु का अनुयायी नहीं बनना चाहिए, पहले अच्छी तरह से हिसाब लगाना चाहिए कि ऐसे परित्याग के लिए तैयार हैं या नहीं। कदाचित् लूका को किसी अन्य स्रोत से ये दृष्टांत मिले और इस ने इन्हें यहां जोड़ा।

१४ : ३४, ३५—मर. ९ : ५० और मत्त. ५ : १३ की व्याख्या को पढ़िए। "बिगड़ जाए" उसी शब्द का अनुवाद है जिसका स्पष्टीकरण मत्ती की व्याख्या में किया गया है। लूका के संदर्भ में स्पष्टतः "नमक" आदर्श ख्रिस्तीय आचरण का प्रतीक है, जिस में प्रमुख गुण पूर्ण आत्मसमर्पण है।

(घ) खोई हुई भेड़ और खोए हुए मुद्रा के दृष्टांत १५ : १-१०
(मत्त. १८ : १२-१४)

१५ : ३-७ मत्त. १८ : १२-१४ में भिन्न रूप में है। मत्ती को इस दृष्टांत का वर्णन किसी अन्य स्रोत से मिला या उस ने उसे परिवर्तित किया। मत्ती में प्रसंग भी भिन्न है। मत्ती की व्याख्या को पढ़िए। शेष पद केवल लूका में हैं।

"पापी" के संबंध में मर. २ : १५ की व्याख्या को देखिए। लूका के अनुसार यीशु ने ये दो दृष्टांत, और उड़ाऊ पुत्र का दृष्टांत भी यीशु के तिरस्कृत लोगों से मित्रता का भाव प्रकट करने के संबंध में बताए। इन दृष्टांतों का अभिप्राय इस तथ्य को स्पष्ट करना है कि परमेश्वर की दृष्टि में प्रत्येक व्यक्ति बहुमूल्य है। लूका का वर्णन अत्यंत सजीव है। जैसे मेषपाल और स्त्री खोई हुई भेड़ और मुद्रा को बड़ी उत्सुकता से खोजते हैं वैसे ही परमेश्वर अपने अद्भुत प्रेम से मानव को ढूंढ़ कर बचाता है। पलिश्तीन अधिकतर पर्वतीय प्रदेश है। शीघ्र ही भेड़ झुंड से अलग होकर बनपशुओं का शिकार बन सकती थी। साधारण घर भारत के किसी दरिद्र देहाती मनुष्य के घर के समान अंधकारपूर्ण होता था, अतः मुद्रा को ढूंढ़ने के लिए दीपक की आवश्यकता थी। इन दो दृष्टांतों में पांच बार "आनंद" शब्द का प्रयोग किया गया है। यद्यपि पिछले अंशों में आत्मसमर्पण और परित्याग का वर्णन है तथापि इन प्रक्रियाओं का भी अंतिम परिणाम वास्तविक आनंद है। "स्वर्ग में" (७) और "परमेश्वर के स्वर्गदूतों के सामने" (१०) मुहाविरे हैं जिन का अर्थ यह है कि परमेश्वर स्वयं आनंद करता है। नया नियम के काल में इब्रानी लोग परमेश्वर पर ऐसा मानवीय भाव आरोपित करना पसंद नहीं करते थे।

(ज) उड़ाऊ पुत्र का दृष्टांत १५ : ११-३२

यह दृष्टांत केवल लूका में है। इसका संदर्भ भी १५ : १, २ में प्रकट किया गया है। संभवतः जब यीशु ने इसे सुनाया तब उसका अभिप्राय यह था कि बड़ा भाई

यहूदियों का और छोटा भाई विजातियों का प्रतीक माना जाए। लूका के संदर्भ में वे क्रमशः अधर्मी यहूदियों और धर्मनिष्ठ यहूदियों के प्रतीक हैं। कदाचित् अन्यजातियों की ओर भी संकेत है।

१५ : ११ से ज्ञात होता है कि "उड़ाऊ पुत्र" इस दृष्टांत का उपयुक्त नाम नहीं है। वास्तव में वह दो खोए हुए पुत्रों और प्रेममय क्षमाशील पिता का दृष्टांत है। **१५ : १२**—यहूदियों की प्रथानुसार पिता अपने जीवनकाल में ही पुत्रों में अपनी संपत्ति का विभाजन कर सकता था। व्य. २१ : १६, १७ के अनुसार संपत्ति के विभाजन पर ज्येष्ठ पुत्र को संपत्ति के "दो भाग" मिलने थे, अर्थात् यदि केवल दो पुत्र होते थे तो ज्येष्ठ को दो तिहाई मिलनी थी। छोटे पुत्र को एक तिहाई मिली होगी। **१५ : १३**—"इकट्ठा करके" का अर्थ संभवतः यह भी है कि उस ने संपत्ति को बेचकर नगदी ली। "कुकर्म" के स्थान पर "भोग विलास" (हिं. सं.) अच्छा अनुवाद है। १५ : ३० में ज्येष्ठ पुत्र अपनी समझ के अनुसार इस बात का अधिक स्पष्टीकरण करता है। कदाचित् उसका यह अनुमान सत्य था, परंतु अनुचित अतिशयोक्ति भी हो सकती थी। **१५ : १५**—यहूदी लोग सूअर को अशुद्ध मानते थे, अतः सूअर चराना अत्यंत अपमानजनक कार्य माना जाता था। **१५ : १७** महत्वपूर्ण है। उद्धार का पहला कदम अपनी पतित स्थिति की पहचान है। इसके साथ ही इस नवयुवक को घर का विचार आया। मन-परिवर्तन की प्रक्रिया आरंभ हो गई। उस ने पहचाना कि घर का दास बनना भी संसार में बेठिकाना मारा मारा फिरने से अच्छा है। परंतु उस समय वह पिता का प्रेम नहीं जानता था—वह मजदूर बनने को तैयार था।

१५ : २०, २१—पिता पुत्र की बाट जोह रहा था। भर्त्सना की एक बात भी नहीं कही। पुत्र अपनी रटी हुई बात कहने लगा पर यहां तक कहने की नौबत नहीं आई कि "मुझे एक श्रमिक के समान रख लीजिए", कि पिता ने दासों को आज्ञा देना आरंभ किया। पिता उसे पुत्र जैसा रखना चाहता था, श्रमिक जैसा नहीं। सर्वश्रेष्ठ वस्त्र, अंगूठी और जूतियां प्रतिष्ठा, अधिकार (अंगूठी=मुद्रिका), और स्वतंत्रता के प्रतीक थे। **१५ : २३, २४**—इन पदों में दो बार "आनंद" शब्द आया है। वह पद ३२ में भी है। १५ : १-११ की व्याख्या से तुलना कीजिए। पिता की अभिवृत्ति पापी व्यक्ति के प्रति परमेश्वर की अभिवृत्ति का प्रतीक है।

१५ : २५—पिता की विषमता में ज्येष्ठ पुत्र अपने भाई के स्वागत को दौड़ा हुआ नहीं गया। उसकी प्रतिक्रिया क्रुद्ध होना थी (पद २८)। यद्यपि वह छोटे भाई के समान दूर देश को नहीं गया तथापि वह उतना ही पथभ्रष्ट हो गया, क्योंकि वह विद्वेष और आत्मदया की भावनाओं का शिकार था। उसके शब्दों से पता चलता है कि पिता के प्रति उसकी अभिवृत्ति पुत्र की नहीं, सेवक या दास की थी। भाई के प्रति उसकी अभिवृत्ति आत्म-धार्मिकता के दंभ की थी। **१५ : २९** में "एक बकरी का बच्चा भी नहीं दिया" के संबंध में यह मानना पड़ता है कि यहूदियों की प्रथानुसार पिता ने संपत्ति के विभाजन के बावजूद बड़े बेटे का भाग अपने हाथों में रखा था। छोटे का अपना भाग

मांगना और लेना असाधारण बात थी। १५ : ३०—"तेरा यह पुत्र" शब्द तिरस्कारात्मक हैं। परंतु पिता बड़े प्रेमभाव से उत्तर देकर उसे "पुत्र" संबोधित करता है। सचमुच जो कुछ पिता का था वह पुत्र का भी था। केवल यह था कि अपने जीवनकाल में पिता उसका लाभ उठा सकता था। १५ : ३२ में पिता के कहने का अर्थ यह है कि आनंद –प्रमोद अवश्य करना चाहिए, आनंद न करना बड़ी भूल होगी।

मौलिक रूप से इस दृष्टांत की शिक्षा यह है कि परमेश्वर का प्रेम पथभ्रष्ट मानव को खोजनेवाला प्रेम है, अतः जो कोई मनपरिवर्तन करके परमेश्वर के पास छोटे पुत्र के समान आता है परमेश्वर आनंदित होकर उसे स्वीकार करके क्षमा करता है। समकालीन संदर्भ में यह दृष्टांत किस पर लागू है, इसके स्पष्टीकरण के लिए इस अंश की व्याख्या के प्रारंभ में देखिए।

दृष्टांत में यह नहीं बताया गया कि ज्येष्ठ पुत्र की अंतिम प्रतिक्रिया क्या थी। क्या उसका मनपरिवर्तन भी हुआ ? संभाव्यतः यीशु ने जान बूझकर इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया, कि श्रोता अपनी अपनी दशा पर मनन चिंतन करें, हमारा भी ऐसा करना उपयुक्त होगा।

(ञ) अधर्मी भंडारी का दृष्टांत, फरीसियों का कपट १६ : १-१५ (मत्त. ६ : २४)

पद १३—मत्त. ६ : २४ को छोड़ यह अंश केवल लूका में है।

१६ : १-८ में दृष्टांत का वर्णन है। यीशु विशेषकर शिष्यों को संबोधित कर रहा था (पद १) परंतु फरीसी भी उपस्थित थे(पद १४)। १६ : १, २ से यह प्रकट है कि भंडारी सचमुच स्वामी की दृष्टि में अपराधी था, उस ने विश्वासघात किया होगा। उसे निश्चय हुआ कि स्वामी मुझे भंडारी नहीं रहने देगा। ऋणियों के दो उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। दोनों का भारी ऋण था। संभाव्यतः उन्हों ने स्वामी से माल लिया था, जिसके लिए उन्हें उतना देना था। भंडारी उनके ऋणपत्र ("खाता-बही" का यही अर्थ है) लौटा देता है और वे अंकों को बदलते या नए ऋणपत्र लिखते हैं। इस प्रकार यदि बहुत ऐसे ऋणी थे तो वे सब भंडारी के ऐसे आभारी रहे होंगे कि भविष्य में अवश्य उसकी सहायता के लिए प्रस्तुत हुए होंगे—"मुझे अपने घरों में ले लें" (पद ४)।

१६ : ८ में भंडारी का स्वामी उसकी चतुराई की सराहना करता है। संभव है कि भंडारी इस कारण "अधर्मी" कहा गया है कि उस ने पहले विश्वासघात किया था (पद १, २)। ऋण को घटाना विश्वासघात नहीं माना गया। तब ही समझ में आता है कि स्वामी कैसे उसकी सराहना कर सकता था। यदि उस ने अपनी उस चतुराई से स्वामी की हानि की होती तो सराहना न होती। १६ : ८ उ. में यीशु का स्पष्टीकरण है। इसके अनुसार इस दृष्टांत का अर्थ यह है कि जैसे यह भंडारी, और कदाचित् उसका स्वामी भी, सांसारिक बातों में चतुर हैं, वैसे "ज्योति की संतान" आध्यात्मिक

बातों के प्रति चतुर नहीं हैं। "ज्योति की संतान" से अभिप्रेत वे लोग हैं जो धर्मनिष्ट होने का दावा करते हैं, इस संदर्भ में विशेष रूप से फरीसी। इनको पहचानना चाहिए था कि वास्तविक कल्याण किस बात में है, परंतु उन्होंने नहीं पहचाना। भंडारी ने आगामी दिनों के लिए प्रबंध किया, परंतु "ज्योति की संतान" आगामी जीवन के लिए परमेश्वर के प्रबंध को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। यथार्थ "ज्योति की संतान" ख्रिस्ती विश्वासी हैं, अतः उनको परमेश्वर के राज्य की बातों में चतुर होना चाहिए।

"स्वामी" (यूनानी "किरियस") का अर्थ "प्रभु" भी है, अतः अनेक टीकाकार मानते हैं कि पद ८ पू. में यह कहा गया है कि प्रभु, अर्थात् यीशु, ने दृष्टांत के भंडारी की सराहना की। परंतु यूनानी वाक्य-रचना ऐसे अनुवाद के विरुद्ध है।

१६ : ९-१३ में ऐसे पृथक कथन हैं जो शब्दसाम्य के कारण यहां जोड़े गए हैं। पद ८ और ९ में "अधर्म" शब्द कड़ी है। पद १० में भी "अधर्म" शब्द है, और पद ११ में "अधर्म के धन" है जो पद ९ में भी है। "धन" का उल्लेख पद ३१ में भी हैं। इन पदों में कई भिन्न विचार पाए जाते हैं। **१६ : ९** का अर्थ यह है कि धन का ऐसा प्रयोग करना चाहिए कि मरते समय, जब धन का सहारा जाता रहे, स्वर्ग में "मित्र" हों, अर्थात् परमेश्वर उन्हें ग्रहण करे। तुलना १२ : ३३ से कीजिए। **१६ : १०-१२** में धन के प्रयोग में विश्वासपात्र होने का विषय है। "सच्चा" का अर्थ "सच्चा धन", अर्थात् अनंत जीवन आदि है। पद १२ में "जो तुम्हारा है" का अर्थ वह वास्तविक और प्रचुरता का जीवन है जो परमेश्वर की संतान होने के नाते मनुष्य को प्राप्त होना चाहिए। **१६ : १३** का अर्थ स्पष्ट है। कोई व्यक्ति दो सत्ताओं को अपने जीवन में अग्रिम स्थान नहीं दे सकता। यही कथन मत्त. ६ : २४ में भी है।

संभवतः उपरोक्त कथन मौखिक परंपरा में दृष्टांत के साथ जोड़े गए और इस रूप में लूका को मिले। यह भी हो सकता है कि उनके जोड़े जाने का अभिप्राय यह था कि दृष्टांत का अर्थ असत्य रूप से न समझा जाए, अर्थात् भंडारी के अधर्म का अनुसरण न किया जाए।

१६ : १४, १५ से ज्ञात होता है कि वास्तव में, उपरोक्त स्पष्टीकरण के अनुसार, दृष्टांत फरीसियों के संबंध में कहा गया। पद १४ संभाव्यतः लूका की टिप्पणी है, और समकालीन यहूदियों और ख्रिस्तियों के पारस्परिक विरोध को प्रतिबिंबित करता है। वह जो "परमेश्वर की दृष्टि में घृणित है" इस संदर्भ में धन, या धन का दुरुपयोग, है।

(ट) व्यवस्था और विवाह विच्छेद, धनवान् मनुष्य और निर्धन लाजर का दृष्टांत १६ : १६-३१

(मत्त. ११ : १२, १३; ५ : १८, ३२; १९ : ९ = मर. १० : ११, १२)

१६ : १६-१८ में तीन पृथक कथन हैं। लूका ने इनको पद १५ के संबंध में यहां जोड़ा होगा। फरीसी व्यवस्थापालन में अतिवादी थे। कदाचित् लूका के मन

में यह विचार था कि ये पद प्रकट करते हैं कि यद्यपि सुसमाचार व्यवस्था को लोप नहीं करता तो भी वह व्यवस्था से परे और उत्तम है।

१६ : १६ भिन्न रूप में मत्त. ११ : १२, १३ में है। मत्ती की व्याख्या को ध्यानपूर्वक पढ़िए। लूका या उसके स्रोत ने इस कथन को सरल बना दिया है। यूहन्ना के पश्चात् एक नया युग आरंभ हो गया, परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि व्यवस्था का निराकरण हो गया, अतः पद १७ भी जोड़ा गया है। बलपूर्वक परमेश्वर के राज्य में प्रवेश करने के कई संभव अर्थ मत्त. ११ : १२, १३ की टीका में बताए गए हैं। लूका के संबंध में संभाव्यतः अर्थ (i) लागू है, परंतु अनेक टीकाकार (ii) के पक्ष में हैं। **१६ : १७** के संबंध में मत्त. ५ : १८ की व्याख्या को और १६ : १८ के संबंध में मर. १० : ११, १२ की व्याख्या को पढ़िए।

१६ : १९-३१—यह दृष्टांत केवल लूका में है। विद्वानों की सामान्य मान्यता है कि १६ : १९-२६ में यीशु ने एक परंपरागत कथा का प्रयोग किया है जो मिस्र देश में आरंभ हुई और यहूदियों में प्रचलित हो गई। केवल इस दृष्टांत में एक व्यक्ति का नाम बताया गया है। संभाव्यतः लाजर का यू. ११ अध्याय के लाजर से कोई संबंध नहीं है। इस नाम का अर्थ है, "परमेश्वर सहायक है", जो इस संदर्भ में उपयुक्त है। ऐसा प्रतीत होता है कि दृष्टांत का संबंध १६ : ९ से है। धनवान् ने धन से मित्र नहीं बनाए।

१६ : १९—मलमल और बैंजनी वस्त्र महंगे होते थे। **१६ : २१**—भोजन करनेवाले अपने हाथ रोटियों से पोंछ कर साफ करते और रोटियों को मेज के नीचे फेंकते थे। यह "मेज पर को जूठन" थी। कुत्ते इस बेचारे की हालत को और भी खराब करते थे। **१६ : २२**—कोई प्रमाण नहीं मिलता कि "अब्रहाम की गोद" प्रचलित मुहाविरा था। इसका अर्थ अब्रहाम की सहभागिता है। संभव है कि ख्रिस्त-संबंधी भोज में अब्रहाम के साथ सहभागिता अभिप्रेत हो। स्पष्ट है कि यह सहभागिता परमानंद की स्थिति मानी जाती थी। साधारणतः "अधोलोक" (यूनानी "हादेस") का अर्थ वह स्थान है जहां सदाचारी और दुराचारी मृतक दोनों जाते हैं (देखिए बाइबल ज्ञान कोश, "अधोलोक"), परंतु यहां इसका अर्थ है, नरक। कुछ टीकाकारों की मान्यता के अनुसार इस दृष्टांत में लाजर और धनवान् अधोलोक के पृथक भागों में थे, परंतु यह अधिक संभव है कि खाई (गड्ढा, पद २६) अधोलोक और लाजर के बीच में थी।

१६ : २३-२६—इन सब पदों में यह अभिप्राय नहीं है कि मृत्यु पश्चात् की स्थिति का नक्शा खींचा जाए वरन् यह प्रकट करना है कि न्याय कर्म के आधार पर किया जाता है। धनवान् ने लाजर पर दया नहीं की थी, वह अपने भोग विलास में ऐसा मग्न था कि लाजर पर ध्यान भी नहीं दिया। परलोक के जीवन का चित्रण प्रतीकात्मक है। नया नियम की शिक्षा अधिकतर यह नहीं है कि न्याय मृत्यु के पश्चात् ही होता है (तुलना कीजिए मत्त. १० : १५; प्रे. १७ : ३१; यू. ५ : २८, २९; १ थि. ४ : १३ क्र.; २ तीम. ४ : ८; प्रक. २० : १३)। अतः इस स्थल पर दृष्टांतों के स्पष्टीकरण के मौलिक नियम को स्मरण करना आवश्यक है, अर्थात् कि दृष्टांत का एक ही मुख्य बिंदु होता है।

१६ : २६ का महत्व इस तथ्य पर बल देने में है कि इस पार्थिव जीवन में हम परलोक के जीवन की तैयारी करते हैं।

१६ : २७, २८ में धनवान् अब भी स्वयं को लाजर से श्रेष्ठ मानता है—"लाजर को भेज"। **१६ : २९-३१** का अर्थ यह है कि धनवान् के भाइयों के पास व्यवस्था ("मूसा") और नबियों के लेख हैं जिनके द्वारा उन्हें जानना चाहिए कि परमेश्वर मानव से दया की मांग करता है। यदि वे इन लेखों के होते हुए भी दया नहीं करते तो किसी के मृतकों में से जीवित होकर उनके पास जाने पर भी वे दया करना नहीं सीखेंगे। पद ३०, ३१ में अवश्य यीशु के पुनरुत्थान की ओर संकेत है। लूका के काल में यहूदी उस पुनरुथान को अस्वीकार कर रहे थे।

(ठ) पाप कराने, क्षमा और विश्वास करने के संबंध में, अयोग्य दास १७ : १-१०

(मर. ९ : ४२; मत्त. १८ : ६, ७, १५, २१, २२; १७ : २०)

१७ : १, २ मत्त. १८ : ६, ७ और मर. ९ : ४२ के समान है—उन स्थलों की व्याख्या को पढ़िए। ऐसा प्रतीत होता है कि लूका का वर्णन Q से लिया गया। लूका में पदों का क्रम मत्ती के क्रम के विपरीत है। इस अंश के कथन भी शिष्यों के लिए, और लूका के काल के ख्रिस्तीय धर्माचार्यों के लिए हैं। **१७ : ३,४** के संबंध में मत्त. १८ : १५, २१, २२ की व्याख्या को पढ़िए। मत्त. १८ : १४ का संदर्भ कलीसिया का सामूहिक जीवन है, परंतु लूका १७ : ३ में पाप और क्षमा का व्यक्तिगत पक्ष प्रकट किया गया है। क्षमा असीम होनी चाहिए (पद ४)। ऐसी क्षमा के लिए दृढ़ विश्वास की आवश्यकता है, **अतः १७ : ५** में शिष्यों का निवेदन है। संभाव्यतः इस अंश के कथन Q में कुछ इस रूप में थे जो लूका में है। लूका ने पद ५ को स्वयं यहां जोड़ा होगा। **१७ : ६** मत्त. १७ : २० और मत्त. २१ : २१=मर. ११ : २२, २३ के समान है। इन सब स्थलों की पारस्परिक तुलना करके मर. ११ : २२, २३ की व्याख्या को पढ़िए। केवल लू. १७ : ६ में तूत या शहतूत के पेड़ का उल्लेख है। इस वृक्ष की जड़ें बहुत सबल मानी जाती थीं। अर्थ वही है जो उपरोक्त अन्य स्थलों का है।

१७ : ७-१० केवल लूका में है। पद ७, ८ में दैनिक जीवन का एक सामान्य उदाहरण है जो उस काल की सामाजिक स्थिति के अनुकूल है। सार की बात पद ९ में है। उस काल में "मानवीय विशेषाधिकार" की चर्चा नहीं हुई थी! दास दास ही होता था। परमेश्वर के संबंध में मानव की स्थिति यही है। वह अपनी "योग्यता" के आधार पर परमेश्वर से कोई मांग नहीं कर सकता, क्योंकि उसकी योग्यता भी परमेश्वर का दान है। हम अपने किए के आधार पर परमेश्वर के साथ सौदा नहीं कर सकते।

(ड) दस कोढ़ियों को स्वास्थ्य-दान, परमेश्वर का राज्य १७ : ११-२१

यह अंश केवल लूका में है। कोढ़ के संबंध में मर. १ : ४०-४५ की व्याख्या को पढ़िए। "सामरिया और गलील के बीच" का अर्थ संभाव्यतः यह है कि वह स्थान

कहीं सामरिया और गलील के बीच की सीमा के निकट था। कोढ़ियों के संबंध में लै. १३ अध्याय को पढ़िए—उस में आदेश है कि कोढ़ी स्वयं को याजकों को दिखाएं। इस वर्णन में दसों कोढ़ी स्वस्थ हो जाते हैं (पद १४), और अंत में यीशु उन में से एक से कहता है कि उसके विश्वास ने उसे स्वस्थ किया। यह कथन ८ : ४८, १८ : ४२ में भी है। इसके संबंध में मर. ५ : ३४ की व्याख्या को पढ़िए।

लूका ने इस वर्णन को इस कारण सम्मिलित किया कि कोढ़ियों में से एक सामरी था, और वही है जिस ने लौटकर धन्यवाद दिया। १७ : १६ के अंतिम शब्द बहुत सार्थक हैं, "और वह सामरी था"। सामरियों के संबंध में लू. ९ : ५३ की व्याख्या को पढ़िए। इस अंश में इस तथ्य पर बल दिया गया है कि इस "विदेशी" ने परमेश्वर की स्तुति की परंतु शेष कोढ़ियों ने स्तुति नहीं की। यह माना गया होगा कि वे यहूदी थे, अतः यीशु के शब्दों में यहूदी लोगों की भर्त्सना है। संभव है कि अंतिम कथन (पद १९) इस कारण जोड़ा गया (उपरोक्त उद्धरण प्रकट करते हैं कि यह कथन भिन्न प्रसंगों में जोड़ा गया है) कि उस में "चंगा किया" शब्द का अर्थ "उद्धार दिया" भी है (यूनानी "सेसोकेन"), यह कथन उद्धार के प्रबंध में अयहूदियों के समावेश की ओर संकेत है।

१७ : २०, २१—प्रश्न पूछनेवाले फरीसी हैं। परमेश्वर के राज्य के अर्थ का संक्षिप्त स्पष्टीकरण मर. १ : १५ की व्याख्या में है। बाइबल ज्ञान-कोश पृ० २५५ को भी देखिए। फरीसी उस राज्य की स्थापना की प्रतीक्षा कर रहे थे। यीशु का उत्तर है कि यह राज्य "प्रकट रूप से नहीं आता", जैसे मानव राज्य आते हैं। परमेश्वर का राज्य कोई स्थान या दृश्य साम्राज्य नहीं है। इसका अर्थ यह है कि जब यीशु का सेवाकार्य आरंभ हुआ तब परमेश्वर के राज्य की स्थापना हुई। यीशु के उपदेश, कार्य और व्यक्तित्व के द्वारा राज्य स्थापित हो गया था। अनेक टीकाकारों की मान्यता के अनुसार इन शब्दों का अर्थ वास्तव में यह नहीं है कि राज्य स्थापित हो चुका है वरन् यह कि वह युगांत में स्थापित होनेवाला है।

इस कथन का एक अन्य संभव अनुवाद है, जो वास्तव में यूनानी मूल पाठ का शाब्दिक अर्थ अधिक सटीक रूप से व्यक्त करता है। अनुवाद है, "परमेश्वर का राज्य तुम्हारे अंदर है"। अधिकांश अंग्रेजी अनुवाद इस प्रकार हैं। इसका अर्थ यह है कि परमेश्वर का राज्य मानव हृदय की एक गंभीर अनुभूति है। वह परमेश्वर का व्यक्ति के पूर्ण व्यक्तित्व पर शासन है, जिसके द्वारा परमेश्वर की इच्छा उस व्यक्ति में पूरी हो जाती है। अनेक विद्वान, जो उपरोक्त पहली मान्यता को स्वीकार करते हैं, इस अनुवाद पर यह आपत्ति करते हैं कि वह यीशु की विचारधारा से असंगत है।

हम नहीं जानते कि इस कथन का अरामी (यीशु की भाषा) मूल रूप क्या था, अतः उपरोक्त संभावनाओं में चुनना कठिन है। यह स्पष्ट है कि राज्य अदृश्य रूप में आता है। सचमुच उसकी स्थापना व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से मानव जीवन में यीशु के आने से हुई। यद्यपि पौलुस "परमेश्वर का राज्य" शब्दों का बहुत कम प्रयोग

करता है तथापि उसकी साक्षी यह है कि किसी व्यक्ति के जीवन में राज्य की स्थापना एक गहरा व्यक्तिगत अनुभव है ।

(ढ) मानव-पुत्र का दिन १७ : २२-३७

(मत्त. २४ : १७, १८, २६-२८, ३७-४१; १० : ३९; मर. १३ : १५, १६; मत्त. १६ : २५=मर. ८ : ३५=लू. ९ : २४)

लूका ने इस अंश में Q और अपने विशेष स्रोत की बातों का सम्मिश्रण किया है। कुछ समान स्थल मरकुस में भी हैं।

१७ : २२ केवल लूका में है। मत्ती में ये कथन जैतून पर्वत पर किए गए प्रवचन में पाए जाते हैं। इस पद में लूका प्रकट करता है कि ये बातें चेलों से कही गईं, भले ही अवसर वह नहीं है जो मत्ती में है। "मनुष्य के पुत्र के दिनों" (तुलना कीजिए पद २६, "नूह के दिनों", और पद ३०, जहां "दिन" एकवचन में है) का अर्थ यीशु का पुनरागमन है। इस पुनरागमन के लिए सुसमाचार-रचयिताओं में से केवल मत्ती "आना" (यूनानी "परूसिया") शब्द का प्रयोग करता है। मत्त २४ : ३ की व्याख्या को देखिए। **१७ : २३, २४** लगभग मत्त. २४ : २६, २७ के समान है। उन पदों की व्याख्या को पढ़िए। लूका का वर्णन अधिक विशद है। "अपने दिन में प्रकट होगा" का अर्थ यीशु का पुनरागमन है। **१७ : २५** केवल लूका में है। उस के द्वारा लूका प्रकट करता है कि मनुष्य का पुत्र यीशु ही है। **१७ : २६, २७** मत्त. २४ : ३७-३९ के समान है। मत्ती की व्याख्या को पढ़िए। मत्त. २४ : ३७ में "परूसिया" शब्द है।

१७ : २८-३० केवल लूका में है। मत्ती में इसके समरूप स्थल में लूत का वर्णन नहीं है। इस के संबंध में गि. १८ : २०, २१, और अध्याय १९ को देखिए। नूह के काल के लोगों के समान यह भी ऐसे लोगों का उदाहरण है जो परमेश्वर के "दिन" के लिए तैयार नहीं थे। दोनों उदाहरणों में एक आकस्मिक घटना के लिए तैयार रहने की चेतावनी है। **१७ : ३१** मत्त. २४ : १७, १८=मर. १३ : १५, १६ के समान है, जो यरूशलेम के विध्वंस के संबंध में है। मरकुस की व्याख्या को पढ़िए। वहां यह अंकित है कि यह बात मरकुस के संदर्भ में अधिक उपयुक्त है। **१७ : ३२** केवल लूका में है—देखिए गि. १९ : १७, २६। लूत की पत्नी ने पीछे की ओर देखा और नमक का खंभा बन गई। **१७ : ३३** मत्त. १० : ३७, और मत्त. १६ : २५=मर. ८ : ३५= लू. ९ : २४ के समान है। मरकुस की व्याख्या को पढ़िए। लूका ने इसे स्वयं यहां जोड़ा होगा। इस संदर्भ में इसका संबंध लूत की पत्नी के उदाहरण से है। **१७ : ३४, ३५** मत्त. २४ : ४०, ४१ के समान है, अतः मत्ती की व्याख्या को पढ़िए। लूका में वे दो मनुष्य खेत में नहीं वरन् खाट पर हैं। **१७ : ३६** अनेक हस्तलेखों में सन्निविष्ट किया गया है, परंतु वह सर्वश्रेष्ठ प्रतियों में नहीं है। वह मत्त. २४ : ४० से लिया गया, अतः यहां प्रामाणिक नहीं है। **१७ : ३७** मत्त. २४ : २८ के समान है, परंतु मत्ती में ३७ पू. का प्रश्न नहीं है। मत्ती की व्याख्या को पढ़िए। Q की सामग्री यहां समाप्त हो गई है।

(त) अधर्मी न्यायाधीश और फरीसी तथा कर लेनेवाले के दृष्टांत १८ : १-१४
(मत्त. १८ : ४; २३ : १२; लू. १४ : ११)

यह पूर्ण अंश केवल लूका में है।

१८ : १-८—१८ : १ की व्याख्या आगे देखिए। इस अंश में दृष्टांत पद २-५ में है। पद ६-८ में प्रतिपादन है, और पद १ में दृष्टांत का एक अभिप्राय व्यक्त किया गया है। **१८ : २-५** में दो व्यक्तियों का चित्रण है। स्पष्ट शब्दों में यह बताया गया है कि न्यायाधीश अधर्मी था (पद २)। विधवा दरिद्र होने के कारण घूस नहीं दे सकती थी, न ही विधवा के ऐसे कोई प्रभावशाली मित्र थे जिनकी बात न्यायाधीश के सामने चलती, अतः उसका एक ही उपाय बार बार आकर न्यायाधीश से विनती करना ही था। **१८ : ६-८** में यीशु के प्रतिपादन का अर्थ यह है कि जब न्यायाधीश ने अधर्मी होने के बावजूद अंत में खीझकर विधवा की फ़रियाद सुनी और उसकी इच्छा पूरी की तो परमेश्वर, जो न्यायी और दयासागर है, अवश्य उन "मनोनीत लोगों" (हिं. सं.) का न्याय करेगा जो उस की दुहाई देते रहते हैं। मनोनीत लोग वे हैं जो परमेश्वर से निष्ठा रखने के कारण उत्पीड़ित होते हैं। परमेश्वर का स्वभाव ऐसा है कि वह अवश्य और शीघ्र ही ऐसे लोगों का न्याय करेगा।

अनेक टीकाकारों की मान्यता के अनुसार यह प्रतिपादन यीशु का नहीं वरन् कलीसिया या लूका का है। इसमें लूका के काल की कलीसिया की परिस्थिति प्रतिबिंबित होती है। तो भी यह असंभव नहीं है कि यह भी प्रभु का कथन है। संभाव्यतः **१८ : ८** उ. प्रभु का कथन नहीं है। इसका संबंध १७ : ३७ के प्रश्न से है। पद ८ उ. में "विश्वास" का अर्थ ख्रिस्त पर विश्वास है। कदाचित् लूका ने स्वयं इसको इस अभिप्राय से जोड़ा कि ख्रिस्ती लोग विश्वास में दृढ़ और स्थिर रहें। **१८ : १** लूका या उसके स्रोत की रचना है। अनेक टीकाकारों का दावा है कि यह पद दृष्टांत और उसके प्रतिपादन से असंगत है, अर्थात् कि दृष्टांत का अभिप्राय प्रार्थना करने का प्रोत्साहन देना नहीं था। दृष्टांत का अभिप्राय पद ६-८ में स्पष्ट किया गया है—उपरोक्त व्याख्या को देखिए। तो भी वास्तव में पद १ का सत्य भी दृष्टांत में निहित है, और "हियाव न छोड़ना चाहिए" शब्द प्रकट करते हैं कि लेखक के काल में ऐसा विरोध हो रहा था कि प्रार्थना करने की विशेष आवश्यकता थी।

१८ : ९-१४—इस दृष्टांत का घटनास्थल यरूशलेम है। **१८ : ९** में फरीसियों की ओर संकेत है, भले ही सब फरीसी ऐसे नहीं होते थे। यहां फिर पिछले अध्यायों का विषय छेड़ा गया है। मंदिर में सामूहिक प्रार्थना के निर्धारित समय होते थे, परंतु कोई व्यक्ति किसी समय भी जाकर निजी प्रार्थना कर सकता था। अपनी पूरी प्रार्थना में फरीसी अपनी धार्मिकता जताता है। पहले वह उन कुकर्मों की सूची प्रस्तुत करता है जिन से वह दूर रहा है, फिर दो कर्तव्यातिरिक्त सत्कार्यों का उल्लेख करता है जिन का पालन वह किया करता है। वह स्पष्ट शब्दों में प्रकट करता है कि वह उस कर लेनेवाले को तुच्छ समझता है। सप्ताह में दो बार उपवास करना और समस्त

आय का दसवां अंश देना व्यवस्था की मांगें नहीं थीं (दसवां अंश देने के संबंध में व्य. १४ : २२ क्र. को देखिए) । धर्मनिष्ट यहूदी सोमवार और बृहस्पतिवार को उपवास करते थे, परंतु यह व्यवस्था की मांग नहीं, कर्तव्यातिरिक्त सत्कार्य माना जाता था । निष्कर्ष यह कि फरीसी स्वयं को सिद्ध मानता था । उसकी प्रार्थना में पापांगीकार कुछ भी नहीं है ।

फरीसी और कर लेनेवाले में विषमता स्पष्ट है । कर लेनेवाले पतित और निकृष्ट लोग माने जाते थे । इस कर लेनेवाले ने अपनी वास्तविक स्थिति को पहचान लिया । वह परमेश्वर का पवित्रता को भी भली भांति जानता था । वह परमेश्वर से केवल दया मांग सकता था, क्योंकि इस ने पहचाना था कि अपने किसी कार्य से नहीं, केवल उस ईश्वरीय दया के द्वारा उसे बचने की आशा हो सकती थी (पद १३ में हिं. प्र. की पाद-टिप्पणी में ठीक अनुवाद नहीं है) । इन दो व्यक्तियों में से कर लेनेवाला है जिसके संबंध में लिखा है कि वह "धर्मी ठहराया गया" (हिं. नं., "धार्मिक गिना गया")। इसका अर्थ यह है कि वह परमेश्वर की दृष्टि में धार्मिक गिना गया (इस शब्द के स्पष्टीकरण के संबंध में "नया नियम टीका" ग्रंथ ८ पृ. ९-१० पर रो. ३ : २१-२६ की व्याख्या को पढ़िए) । इस कथन में यह निहित है कि फरीसी धार्मिक नहीं गिना गया, क्योंकि वह अपनी दृष्टि में धार्मिक था । ऐसे दंभी व्यक्ति से परमेश्वर प्रसन्न नहीं हो सकता क्योंकि वह स्वार्थ से भरा होता है । पद **१८ : १४** का अंतिम भाग १४ : ११ और मत्त. १८ : ४; २३ : १२ में भी पाया जाता है । उसका अर्थ स्पष्ट है । संभाव्यत: लूका ने स्वयं इस पद को यहां जोड़ा ।

(थ) बच्चों को आशीर्वाद, धनवान् और शाश्वत् जीवन, मृत्यु की तीसरी भविष्यवाणी १८ : १५-३४

(मर. १० : १३-३०; मत्त. १९ : १३-२९; मर. १० : ३२-३४; मत्त. २० : १७-१९)

१८ : १५-१७ मर. १० : १३-१६ के समान और अधिकांश में शब्दश: उसके अनुकूल है । उसकी व्याख्या को पढ़िए । लूका में "बच्चों" (मरकुस, "बालकों") का अर्थ छोटे छोटे बच्चे है, अत: मरकुस का शब्द वहां अधिक उपयुक्त है । लूका ने "क्रुद्ध होकर" (मर. १० : १४) शब्दों को छोड़ा है । वह यीशु पर मानवीय आवेग आरोपित नहीं करना चाहता था ।

१८ : १८-३० मर. १० : १७-३० के समान है । मरकुस की व्याख्या अधिकतर लूका पर भी लागू है—उसको पढिए ।

१८ : १८—केवल लूका इस धनवान् को "सरदार" कहता है । लूका ने मर. १० : १७ पू. को सम्मिलित नहीं किया है । इस प्रकार उस ने इस वर्णन में से अनेक सजीव ब्योरों को छोड़ा है, परंतु कोई मौलिक अंतर नहीं है । उसका वर्णन संक्षिप्त है । १८ : २०—लूका ने "छल न करना" छोड़ा है—इस के विषय में मरकुस की व्याख्या को देखिए (मर. १० : १९) । **१८ : २२** में लूका ने "उस पर दृष्टि करके उस से प्रेम

(त) अधर्मी न्यायाधीश और फरीसी तथा कर लेनेवाले के दृष्टांत १८ : १-१४
(मत्त. १८ : ४; २३ : १२; लू. १४ : ११)

यह पूर्ण अंश केवल लूका में है ।

१८ : १-८—१८ : १ की व्याख्या आगे देखिए । इस अंश में दृष्टांत पद २-५ में है । पद ६-८ में प्रतिपादन है, और पद १ में दृष्टांत का एक अभिप्राय व्यक्त किया गया है । **१८ : २-५** में दो व्यक्तियों का चित्रण है । स्पष्ट शब्दों में यह बताया गया है कि न्यायाधीश अधर्मी था (पद २) । विधवा दरिद्र होने के कारण घूस नहीं दे सकती थी, न ही विधवा के ऐसे कोई प्रभावशाली मित्र थे जिनकी बात न्यायाधीश के सामने चलती, अतः उसका एक ही उपाय बार बार आकर न्यायाधीश से विनती करना ही था । **१८ : ६-८** में यीशु के प्रतिपादन का अर्थ यह है कि जब न्यायाधीश ने अधर्मी होने के बावजूद अंत में खीझकर विधवा की फ़रियाद सुनी और उसकी इच्छा पूरी की तो परमेश्वर, जो न्यायी और दयासागर है, अवश्य उन "मनोनीत लोगों" (हिं. सं.) का न्याय करेगा जो उस की दुहाई देते रहते हैं । मनोनीत लोग वे हैं जो परमेश्वर से निष्ठा रखने के कारण उत्पीड़ित होते हैं । परमेश्वर का स्वभाव ऐसा है कि वह अवश्य और शीघ्र ही ऐसे लोगों का न्याय करेगा ।

अनेक टीकाकारों की मान्यता के अनुसार यह प्रतिपादन यीशु का नहीं वरन् कलीसिया या लूका का है । इसमें लूका के काल की कलीसिया की परिस्थिति प्रतिबिंबित होती है । तो भी यह असंभव नहीं है कि यह भी प्रभु का कथन है । संभाव्यतः **१८ : ८** उ. प्रभु का कथन नहीं है । इसका संबंध १७ : ३७ के प्रश्न से है । पद ८ उ. में "विश्वास" का अर्थ ख्रिस्त पर विश्वास है । कदाचित् लूका ने स्वयं इसको इस अभिप्राय से जोड़ा कि ख्रिस्ती लोग विश्वास में दृढ़ और स्थिर रहें । **१८ : १** लूका या उसके स्रोत की रचना है । अनेक टीकाकारों का दावा है कि यह पद दृष्टांत और उसके प्रतिपादन से असंगत है, अर्थात् कि दृष्टांत का अभिप्राय प्रार्थना करने का प्रोत्साहन देना नहीं था । दृष्टांत का अभिप्राय पद ६-८ में स्पष्ट किया गया है—उपरोक्त व्याख्या को देखिए । तो भी वास्तव में पद १ का सत्य भी दृष्टांत में निहित है, और "हियाव न छोड़ना चाहिए" शब्द प्रकट करते हैं कि लेखक के काल में ऐसा विरोध हो रहा था कि प्रार्थना करने की विशेष आवश्यकता थी ।

१८ : ९-१४—इस दृष्टांत का घटनास्थल यरूशलेम है । **१८ : ९** में फरीसियों की ओर संकेत है, भले ही सब फरीसी ऐसे नहीं होते थे । यहां फिर पिछले अध्यायों का विषय छेड़ा गया है । मंदिर में सामूहिक प्रार्थना के निर्धारित समय होते थे, परंतु कोई व्यक्ति किसी समय भी जाकर निजी प्रार्थना कर सकता था । अपनी पूरी प्रार्थना में फरीसी अपनी धार्मिकता जताता है । पहले वह उन कुकर्मों की सूची प्रस्तुत करता है जिन से वह दूर रहा है, फिर दो कर्तव्यातिरिक्त सत्कार्यों का उल्लेख करता है जिन का पालन वह किया करता है । वह स्पष्ट शब्दों में प्रकट करता है कि वह उस कर लेनेवाले को तुच्छ समझता है । सप्ताह में दो बार उपवास करना और समस्त

आय का दसवां अंश देना व्यवस्था की मांगें नहीं थीं (दसवां अंश देने के संबंध में व्य. १४ : २२ क. को देखिए) । धर्मनिष्ट यहूदी सोमवार और वृहस्पतिवार को उपवास करते थे, परंतु यह व्यवस्था की मांग नहीं, कर्तव्यातिरिक्त सत्कार्य माना जाता था । निष्कर्ष यह कि फरीसी स्वयं को सिद्ध मानता था । उसकी प्रार्थना में पापांगीकार कुछ भी नहीं है ।

फरीसी और कर लेनेवाले में विषमता स्पष्ट है । कर लेनेवाले पतित और निकृष्ट लोग माने जाते थे । इस कर लेनेवाले ने अपनी वास्तविक स्थिति को पहचान लिया । वह परमेश्वर का पवित्रता को भी भली भांति जानता था । वह परमेश्वर से केवल दया मांग सकता था, क्योंकि इस ने पहचाना था कि अपने किसी कार्य से नहीं, केवल उस ईश्वरीय दया के द्वारा उसे बचने की आशा हो सकती थी (पद १३ में हि. प्र. की पाद-टिप्पणी में ठीक अनुवाद नहीं है) । इन दो व्यक्तियों में से कर लेनेवाला है जिसके संबंध में लिखा है कि वह "धर्मी ठहराया गया" (हि. नं., "धार्मिक गिना गया")। इसका अर्थ यह है कि वह परमेश्वर की दृष्टि में धार्मिक गिना गया (इस शब्द के स्पष्टीकरण के संबंध में "नया नियम टीका" ग्रंथ ८ पृ. ९-१० पर रो. ३ : २१-२६ की व्याख्या को पढ़िए) । इस कथन में यह निहित है कि फरीसी धार्मिक नहीं गिना गया, क्योंकि वह अपनी दृष्टि में धार्मिक था । ऐसे दंभी व्यक्ति से परमेश्वर प्रसन्न नहीं हो सकता क्योंकि वह स्वार्थ से भरा होता है । पद **१८ : १४** का अंतिम भाग १४ : ११ और मत्त. १८ : ४; २३ : १२ में भी पाया जाता है । उसका अर्थ स्पष्ट है । संभाव्यतः लूका ने स्वयं इस पद को यहां जोड़ा ।

(थ) बच्चों को आशीर्वाद, धनवान् और शाश्वत् जीवन, मृत्यु की तीसरी भविष्यवाणी १८ : १५-३४

(मर. १० : १३-३०; मत्त. १९ : १३-२९; मर. १० : ३२-३४; मत्त. २० : १७-१९)

१८ : १५-१७ मर. १० : १३-१६ के समान और अधिकांश में शब्दशः उसके अनुकूल है । उसकी व्याख्या को पढ़िए । लूका में "बच्चों" (मरकुस, "बालकों") का अर्थ छोटे छोटे बच्चे है, अतः मरकुस का शब्द वहां अधिक उपयुक्त है । लूका ने "क्रुद्ध होकर" (मर. १० : १४) शब्दों को छोड़ा है । वह यीशु पर मानवीय आवेग आरोपित नहीं करना चाहता था ।

१८ : १८-३० मर. १० : १७-३० के समान है । मरकुस की व्याख्या अधिकतर लूका पर भी लागू है—उसको पढिए ।

१८ : १८—केवल लूका इस धनवान् को "सरदार" कहता है । लूका ने मर. १० : १७ पू. को सम्मिलित नहीं किया है । इस प्रकार उस ने इस वर्णन में से अनेक सजीव ब्योरों को छोड़ा है, परंतु कोई मौलिक अंतर नहीं है । उसका वर्णन संक्षिप्त है । १८ : २०—लूका ने "छल न करना" छोड़ा है—इस के विषय में मरकुस की व्याख्या को देखिए (मर. १० : १९) । **१८ : २२** में लूका ने "उस पर दृष्टि करके उस से प्रेम

किया" शब्दों को छोड़ा है (मर. पद २१)। उस ने एक यूनानी शब्द को जोड़कर यीशु के कथन को अधिक सबल किया है—"अपना सब कुछ बेचकर"। मर. १० : २३ में लिखा है कि यीशु ने उस समय शिष्यों को संबोधित किया, परंतु लू. १८ : २४ में से यह बात छोड़ी गई है, अतः लूका के अनुसार १८ : २४-२७ की बातें जनसाधारण से कही गईं। इस स्थल में से अनेक सजीव ब्योरे छोड़े गए हैं, परंतु सार की बातें वही हैं जो मरकुस में हैं।

१८ : २८, २९ में फिर पतरस के साथ शिष्यों को संबोधित किया गया है। १८ : २९ में लूका ने "पत्नी" शब्द को जोड़ा, और "बहिनों" तथा "खेतों" (मर. पद २९) को छोड़ा है। १८ : ३० में वह पद २९ के शब्दों को नहीं दोहराता जैसे मरकुस अपने १० : ३० में दोहराता है। इस पद में से लूका ने "उपद्रव के साथ" (हिं. सं., "साथ ही साथ अत्याचार") शब्दों को भी छोड़ा है, भले ही वे शब्द उसके काल की कलीसिया की परिस्थिति के अनुकूल थे।

१८ : ३१-३४—यीशु की मृत्यु की तीसरी भविष्यवाणी। पहली और दूसरी भविष्यवाणियां ९ : २१, २२ और ९ : ४४, ४५ में हैं। बीच में लूका का वह लंबा भाग आया है जिस में मरकुस की बातें बहुत कम हैं। लूका ने मर. १० : ३२ को सम्मिलित नहीं किया क्योंकि वह कई बार ९ : ५१ से लेकर लिख चुका है कि यीशु और उसके शिष्य यरूशलेम जा रहे थे। १८ : ३१ मर. १० : ३३ से भिन्न है। लूका ने यह नहीं लिखा कि महायाजक और शास्त्री (महासभा) यीशु को "घात के योग्य ठहरायेंगे", क्योंकि यीशु के विचार के वर्णन में लूका के अनुसार ऐसा नहीं हुआ (मर. १४ : ६४ उ. के विपरीत)। इसके स्थान पर लूका फिर इस बात पर बल देता है कि यीशु की मृत्यु भविष्यवाणियों के अनुसार हुई। १८ : ३३ में लूका ने "उसका अपमान करेंगे" जोड़ा है, जो मर. १० : ३४ में नहीं है। १८ : ३४ केवल लूका में है। लूका इस तथ्य पर विशेष बल देता है कि शिष्य यीशु की मृत्यु को नहीं समझते थे (तुलना ९ : ४५)।

(द) यरीहो में : अंधे को दृष्टिदान, जक्कई १८ : ३५-१९ : १०
(मर. १० : ४६-५२; मत्त. २० : २९-३४)

इस अंश में लूका ने अधिकतर मरकुस का अनुसरण किया है। मरकुस की व्याख्या को पढ़िए। लूका ने इस स्थल पर मर. १० : ३५-४० को (याकूब और यूहन्ना का निवेदन) छोड़ा है, और मर. १० : ४१-४५ की अनुरूपी सामग्री को २२ : २४-२७ में, अंतिम भोज के वर्णन के पश्चात् ही, सम्मिलित किया है। संभाव्यतः उस ने १८ : ३४ में शिष्यों के आत्मिक अंधेपन में और इस अंश में जहां अंधे का अंधापन जाता रहता है विषमता प्रकट की है।

१८ : ३५ के अनुसार यीशु और शिष्य यरीहो के निकट पहुंचे। मरकुस के अनुसार वे यरीहो से निकल रहे थे। लूका ने इसे परिवर्तित किया। सटीक इतिहास लिखने की अपेक्षा लूका की रुचि विचारधाराओं को व्यक्त करने में थी। कदाचित् उसका अभिप्राय यह था कि १८ : १५-४३ की सामग्री को, जो मरकुस में से है पहले

प्रस्तुत करे, और फिर यरीहो के संबंध में अपने स्रोत के एक विवरण का प्रयोग करे (१९ : १-१०)। लूका ने अंधे का नाम नहीं बताया (बरतिमाई, मर. १० : ६)। लूका १८ : ३६ मरकुस में नहीं है—कदाचित् इसका अभिप्राय स्पष्टीकरण करना था। १८ : ४० में लूका ने मरकुस का संक्षेपण किया है। १८ : ४१ में "रब्बी" (मरकुस पद ५१) के स्थान लूका में, मत्ती के समान, "प्रभु" है। "रब्बी" इब्रानी शब्द है इस कारण लूका ने उसे परिवर्तित किया। लूका ने १८ : ४३ उ. "सब लोगों ने देखकर परमेश्वर की स्तुति की" को यहां जोड़ा है।

१९ : १-१०—कर लेनेवालों का मुखिया होने के नाते जक्कई के सामने अनुचित कमाई का विशाल क्षेत्र खुला था। उस ने यीशु का यश सुना होगा, अतः उसे देखने के लिए उत्सुक था। १९ : ५ में यह नहीं बताया गया है कि यीशु जक्कई के संबंध में कैसे जानता था। उस ने उसे नाम से पुकारा। यद्यपि जक्कई कर लेनेवाला होने के कारण तिरस्कृत व्यक्ति था तथापि यीशु उसके घर जाना चाहता था। जक्कई पर इस बात का बड़ा प्रभाव हुआ होगा। हम अनुमान लगा सकते हैं कि उस समय से जक्कई में मन-परिवर्तन का कार्य आरंभ हो गया। १९ : ७ में कट्टर यहूदियों की साधारण प्रतिक्रिया व्यक्त है, तुलना कीजिए ५ : ३०, १५ : २। जक्कई यीशु के व्यक्तित्व से अत्यंत प्रभावित हुआ। मन-परिवर्तन का प्रमाण क्षतिपूर्ति से दिया जाता है, अतः जक्कई की स्वाभाविक प्रतिक्रिया वही है। उस ने पहचाना कि परमेश्वर का सामीप्य धन बटोरने से श्रेष्ठ है। १९ : ९ में यीशु का बहुत स्पष्ट कथन है। जक्कई के विश्वास का कोई उल्लेख नहीं है क्योंकि उस ने उसका व्यावहारिक प्रमाण दिया था। जिस व्यक्ति को उद्धार प्राप्त है उस में एक ऐसा आमूल परिवर्तन हो जाता है कि उसका व्यवहार बदल जाता है। "अब्रहाम का पुत्र" का अर्थ यह है कि यद्यपि वह तुच्छ समझा जाता था तो भी वह यहूदी था। वह अपने व्यवहार से प्रमाण देता है कि वह आत्मिक रूप से अब्रहाम का पुत्र है। इस उद्धार में उसका पूरा घर सम्मिलित था। १९ : १० में यीशु के संसार में आने का उद्देश्य संक्षेप में व्यक्त है। तुलना कीजिए ५ : ३२।

(ध) मुद्राओं का दृष्टांत १९ : ११-२७
(मत्त. २५ : १४-३०)

इस दृष्टांत के संबंध में मत्त. २५ : १४-३० की व्याख्या को पढ़िए। मौलिक रूप से यह व्याख्या लू. १९ : ११-२७ पर भी लागू है, परंतु इन दो वर्णनों में स्पष्ट भिन्नताएं भी हैं। तो भी अधिकांश टीकाकारों की मान्यता है कि इन दो विवरणों में एक दृष्टांत के दो रूप पाए जाते हैं। संभव है कि मौखिक परंपरा में ये दो भिन्न रूप बन गए। लूका का वर्णन मत्ती से निम्नांकित बातों में भिन्न है : १९ : ११ में लूका स्पष्ट बताता है कि यह दृष्टांत उस समय कहा गया जब यीशु और शिष्य यरूशलेम के निकट पहुंच गए। वह इस कारण कहा गया कि "वे समझते थे कि परमेश्वर का राज्य अभी निकट हुआ चाहता है"। "वे" का अर्थ संभाव्यतः शिष्य है, परंतु यह स्पष्ट नहीं है। मत्ती के अनुसार यह दृष्टांत अंतिम दिनों में यरूशलेम में कहा गया। लूका में एक

"कुलीन मनुष्य" (हिं. सं.) का वर्णन है जो राजपद प्राप्त करने के लिए जाता है। समस्त दृष्टांत का अनुकूलन राजपद–प्राप्ति के तथ्य की दृष्टि से किया गया है। मत्ती के अनुसार तीन दासों को भिन्न भिन्न धनराशियां दी गई, परंतु लूका में दस दासों में से प्रत्येक को एक ही धनराशि दी गई। मत्ती में बड़ी धनराशि है, किंतु लूका में वह छोटी है ("मुहर", या "मुद्रा" का मूल्य लगभग डेढ़ सौ रुपया था)। यद्यपि लूका दस दासों का उल्लेख करता है तो भी लू. १९ : १६ क्र. में केवल तीन का वर्णन है, जिस से ऐसा प्रतीत होता है कि जिस रूप में यह दृष्टांत लूका को मिला उस में मत्ती के रूप के समान केवल तीन दासों का वर्णन था। कदाचित लूका या उसके स्रोत ने इसे "दस" में इस कारण परिवर्तित किया कि दस दासों का उल्लेख कुलीन व्यक्ति की स्थिति के अधिक अनुकूल समझा गया। लूका में अच्छे दासों की न केवल प्रशंसा की जाती है वरन् उनको नगरों पर भी अधिकार दिया जाता है। यह भी राजपदाधिकारी की स्थिति के अनुकूल है। १९ : २५ इस कारण कोष्ठक में है कि वह अनेक श्रेष्ठ हस्तलेखों में नहीं पाया जाता।

संभव है कि लूका या उसके स्रोत में दो भिन्न दृष्टांतों का सयोजन किया गया है। यह भी हो सकता है कि उस "कुलीन मनुष्य" के वर्णन में अरखिलाऊस (मत्त. २ : २२) की ओर संकेत है। जब उसका पिता हेरोदेस महान ई. पू. ४ में मर गया तब अरखिलाऊस रोमी सम्राट औगुस्तुस से यह निवेदन करने के लिये रोम गया कि सम्राट उसे यहूदिया का राजा नियुक्त करे। उस समय पचास यहूदियों का प्रतिनिधि-मंडल भी इस निवेदन का विरोध करने के लिए रोम पहुंचा। अरखिलाऊस शासक नियुक्त हुआ, परंतु उसे राजा का पद नहीं मिला। ख्रिस्ती पाठक अवश्य इस दृष्टांत को अन्योक्ति समझे होंगे, जिसका अर्थ यीशु का स्वर्ग जाकर और अपना "राज्याधिकार" प्राप्त करके लौट आना है।

५ यीशु यरूशलेम में १९ : २८–२१ : ३८

(१) यरूशलेम में प्रवेश, यरूशलेम के विध्वंस की भविष्यवाणी, मंदिर का परिष्करण १९ : २८-४८

(मर. ११ : १-११, १५-१९; मत्त. २१ : १-३, ६-१०, १२, १३)

१९ : २८-४०—पद ३९ और ४० को छोड़ यह अंश मर. १ : १-११ के समान है, अतः मरकुस के उस स्थल की व्याख्या को पढ़िए। अधिकतर लूका ने मरकुस का अनुसरण करके केवल शैलीगत परिवर्तन किए हैं। हम संक्षेप में अन्य भिन्नताओं का उल्लेख करेंगे। **१९ : २८** की तुलना मर. १० : ३२ से कीजिए, जिसे लूका ने १८ : ३१ से पहले सम्मिलित नहीं किया। **१९ : ३३** में लूका के अनुसार गधे के मालिकों ने प्रश्न पूछा—मरकुस के अनुसार (पद ५) उन लोगों ने पूछा "जो वहां खड़े थे"। लूका स्पष्टीकरण करता है। **१९ : ३६** में लूका केवल कपड़ों का उल्लेख करता है, डालियों का उल्लेख नहीं। **१९ : ३७** केवल लूका में है। इस पद के अनुसार यीशु और भीड़ अभी यरूशलेम से लगभग डेढ़ किलोमीटर की दूरी पर थे। सड़क जैतून पर्वत की आड़

में होकर, किद्रोन की घाटी में उतरकर, यरूशलेम की चढ़ाई पर जाती थी। लूका कहता है कि स्तुति करनेवाले "शिष्यों का विशाल जनसमूह" थे (हिं. सं.)। केवल लूका इस स्थल पर शिष्यों का विशेष उल्लेख करता है। १९ : ३८ में लूका ने "होशाना" शब्द को सम्मिलित नहीं किया, क्योंकि वह एक इब्रानी शब्द है। लूका ने ही "राजा" शब्द को सन्निविष्ट किया है, जिस से यह तथ्य और भी स्पष्ट हो जाता है कि भ. ११८ : २५, २६ के प्रयोग से ख्रिस्त होने का दावा किया जाता है। १९ : ३८ उ. भी मरकुस से भिन्न है। कदाचित यहां भी लूका मरकुस के शब्दों का स्पष्टीकरण करना चाहता था। ख्रिस्त-काल की शांति स्वर्ग में, अर्थात उस लोक में है जहां पुनरुत्थित ख्रिस्त जाता है। यरूशलेम (१९ : ४२) "पृथ्वी पर.....शांति" (२ : १४) को अस्वीकार करता है, अतः उस शांति की पूर्ति के लिए उसे ख्रिस्त के आगमन तक प्रतीक्षा करना पड़ेगा।

१९ : ३९, ४० केवल लूका में हैं। फरीसी मानते थे कि जो कुछ कहा गया था, यह परमेश्वर की निंदा थी। पद ४० की तुलना हब. २ : ११ से कीजिए। कदाचित यह प्रचलित मुहाविरा था। अर्थ यह है कि अब यीशु का ख्रिस्त होना छिप नहीं सकता, उसका खुल्लमखुल्ला ज्ञात होना अनिवार्य है।

१९ : ४१-४४ केवल लूका में है। यरूशलेम के धर्माचार्यों ने यीशु को अस्वीकार किया था। उन्हों ने अपनी "शांति की बातें" (हिं. सं.) न पहचानीं। यीशु को इस पर बड़ा शोक हुआ, और इस स्थल में यरूशलेम और यहूदी जाति के लिए उसका प्रेम बहुत स्पष्ट है। **१९ : ४३, ४४** में यरूशलेम के विध्वंस की ऐसी स्पष्ट भविष्यवाणी है कि अनेक टीकाकारों का दावा है कि यह वास्तव में भविष्यवाणी नहीं वरन् घटना के पश्चात रचा गया वर्णन है। परंतु अन्य टीकाकार निर्देश करते हैं कि पद ४३ यश. २९ : ३ (सेप.) के समान और पद ४४ भ. १३७ : ९ (सेप.) के समान है। संभव है कि यीशु ने इस प्रकार की भविष्यवाणी की और परंपरा के मौखिक चरण पर उसके शब्दों का अनुकूलन उपरोक्त स्थलों से किया गया। ई. स. ७० में रोमियों के हाथ नगर का ऐसा विध्वंस हुआ। यरूशलेम ने "कृपादृष्टि के अवसर" को नहीं पहचाना, "तूने अनुग्रहपूर्ण आगमन का अवसर नहीं पहिचाना" (हिं. सं.)। इसका अर्थ यह है कि परमेश्वर की ओर से यीशु उनके पास आया परंतु उन्हों ने उसे अस्वीकार किया।

१९ : ४५-४८—लूका में मंदिर का परिष्कार उसी दिन होता है जब यीशु यरूशलेम में प्रविष्ट होता है। लूका ने मरकुस में से अंजीर के पेड़ का वर्णन सम्मिलित नहीं किया है। उस ने मंदिर के परिष्कार का वर्णन बहुत संक्षिप्त किया है। उस ने यश. ५३ : ७ के उद्धरण में से "सब जातियों के लिए" शब्द छोड़े हैं, यद्यपि ये शब्द उसके उदार दृष्टिकोण के अनुकूल हैं। कदाचित कारण यह है कि लूका ने अपना सुसमाचार मंदिर के विनाश के पश्चात लिखा, और वह जानता था कि मंदिर नहीं वरन कलीसिया जातियों के लिए प्रार्थना का घर बनी। लूका अपने वर्णन में इस तथ्य के विषय मरकुस

"कुलीन मनुष्य" (हिं. सं.) का वर्णन है जो राजपद प्राप्त करने के लिए जाता है। समस्त दृष्टांत का अनुकूलन राजपद–प्राप्ति के तथ्य की दृष्टि से किया गया है। मत्ती के अनुसार तीन दासों को भिन्न भिन्न धनराशियां दी गई, परंतु लूका में दस दासों में से प्रत्येक को एक ही धनराशि दी गई। मत्ती में बड़ी धनराशि है, किंतु लूका में वह छोटी है ("मुहर", या "मुद्रा" का मूल्य लगभग डेढ़ सौ रुपया था)। यद्यपि लूका दस दासों का उल्लेख करता है तो भी लू. १९ : १६ क्र. में केवल तीन का वर्णन है, जिस से ऐसा प्रतीत होता है कि जिस रूप में यह दृष्टांत लूका को मिला उस में मत्ती के रूप के समान केवल तीन दासों का वर्णन था। कदाचित लूका या उसके स्रोत ने इसे "दस" में इस कारण परिवर्तित किया कि दस दासों का उल्लेख कुलीन व्यक्ति की स्थिति के अधिक अनुकूल समझा गया। लूका में अच्छे दासों की न केवल प्रशंसा की जाती है वरन् उनको नगरों पर भी अधिकार दिया जाता है। यह भी राजपदाधिकारी की स्थिति के अनुकूल है। **१९ : २५** इस कारण कोष्ठक में है कि वह अनेक श्रेष्ठ हस्तलेखों में नहीं पाया जाता।

संभव है कि लूका या उसके स्रोत में दो भिन्न दृष्टांतों का संयोजन किया गया है। यह भी हो सकता है कि उस "कुलीन मनुष्य" के वर्णन में अरखिलाऊस (मत्त. २ : २२) की ओर संकेत है। जब उसका पिता हेरोदेस महान ई. पू. ४ में मर गया तब अरखिलाऊस रोमी सम्राट औगुस्तुस से यह निवेदन करने के लिये रोम गया कि सम्राट उसे यहूदिया का राजा नियुक्त करे। उस समय पचास यहूदियों का प्रतिनिधि-मंडल भी इस निवेदन का विरोध करने के लिए रोम पहुंचा। अरखिलाऊस शासक नियुक्त हुआ, परंतु उसे राजा का पद नहीं मिला। ख्रिस्ती पाठक अवश्य इस दृष्टांत को अन्योक्ति समझे होंगे, जिसका अर्थ यीशु का स्वर्ग जाकर और अपना "राज्याधिकार" प्राप्त करके लौट आना है।

५ यीशु यरूशलेम में १९ : २८–२१ : ३८

(१) यरूशलेम में प्रवेश, यरूशलेम के विध्वंस की भविष्यवाणी, मंदिर का परिष्करण १९ : २८-४८

(मर. ११ : १-११, १५-१९; मत्त. २१ : १-३, ६-१०, १२, १३)

१९ : २८-४०—पद ३९ और ४० को छोड़ यह अंश मर. १ : १-११ के समान है, अतः मरकुस के उस स्थल की व्याख्या को पढ़िए। अधिकतर लूका ने मरकुस का अनुसरण करके केवल शैलीगत परिवर्तन किए हैं। हम संक्षेप में अन्य भिन्नताओं का उल्लेख करेंगे। **१९ : २८** की तुलना मर. १० : ३२ से कीजिए, जिसे लूका ने १८ : ३१ से पहले सम्मिलित नहीं किया। **१९ : ३३** में लूका के अनुसार गधे के मालिकों ने प्रश्न पूछा—मरकुस के अनुसार (पद ५) उन लोगों ने पूछा "जो वहां खड़े थे"। लूका स्पष्टीकरण करता है। **१९ : ३६** में लूका केवल कपड़ों का उल्लेख करता है, डालियों का उल्लेख नहीं। **१९ : ३७** केवल लूका में है। इस पद के अनुसार यीशु और भीड़ अभी यरूशलेम से लगभग डेढ़ किलोमीटर की दूरी पर थे। सड़क जैतून पर्वत की आड़

में होकर, किद्रोन की घाटी में उतरकर, यरूशलेम की चढ़ाई पर जाती थी। लूका कहता है कि स्तुति करनेवाले "शिष्यों का विशाल जनसमूह" थे (हिं. सं.)। केवल लूका इस स्थल पर शिष्यों का विशेष उल्लेख करता है। **१९ : ३८** में लूका ने "होशाना" शब्द को सम्मिलित नहीं किया, क्योंकि वह एक इब्रानी शब्द है। लूका ने ही "राजा" शब्द को सन्निविष्ट किया है, जिस से यह तथ्य और भी स्पष्ट हो जाता है कि भ. ११८ : २५, २६ के प्रयोग से ख्रिस्त होने का दावा किया जाता है। **१९ : ३८ उ.** भी मरकुस से भिन्न है। कदाचित यहां भी लूका मरकुस के शब्दों का स्पष्टीकरण करना चाहता था। ख्रिस्त-काल की शांति स्वर्ग में, अर्थात उस लोक में है जहां पुनरुत्थित ख्रिस्त जाता है। यरूशलेम (१९ : ४२) "पृथ्वी पर. . . . .शांति" (२ : १४) को अस्वीकार करता है, अतः उस शांति की पूर्ति के लिए उसे ख्रिस्त के आगमन तक प्रतीक्षा करना पड़ेगा।

१९ : ३९, ४० केवल लूका में हैं। फरीसी मानते थे कि जो कुछ कहा गया था, यह परमेश्वर की निंदा थी। पद ४० की तुलना हब. २ : ११ से कीजिए। कदाचित यह प्रचलित मुहाविरा था। अर्थ यह है कि अब यीशु का ख्रिस्त होना छिप नहीं सकता, उसका खुल्लमखुल्ला ज्ञात होना अनिवार्य है।

१९ : ४१-४४ केवल लूका में है। यरूशलेम के धर्माचार्यों ने यीशु को अस्वीकार किया था। उन्हों ने अपनी "शांति की बातें" (हिं. सं.) न पहचानीं। यीशु को इस पर बड़ा शोक हुआ, और इस स्थल में यरूशलेम और यहूदी जाति के लिए उसका प्रेम बहुत स्पष्ट है। **१९ : ४३, ४४** में यरूशलेम के विध्वंस की ऐसी स्पष्ट भविष्यवाणी है कि अनेक टीकाकारों का दावा है कि यह वास्तव में भविष्यवाणी नहीं वरन् घटना के पश्चात रचा गया वर्णन है। परंतु अन्य टीकाकार निर्देश करते हैं कि पद ४३ यश. २९ : ३ (सेप.) के समान और पद ४४ भ. १३७ : ९ (सेप.) के समान है। संभव है कि यीशु ने इस प्रकार की भविष्यवाणी की और परंपरा के मौखिक चरण पर उसके शब्दों का अनुकूलन उपरोक्त स्थलों से किया गया। ई. स. ७० में रोमियों के हाथ नगर का ऐसा विध्वंस हुआ। यरूशलेम ने "कृपादृष्टि के अवसर" को नहीं पहचाना, "तूने अनुग्रहपूर्ण आगमन का अवसर नहीं पहिचाना" (हिं. सं.)। इसका अर्थ यह है कि परमेश्वर की ओर से यीशु उनके पास आया परंतु उन्हों ने उसे अस्वीकार किया।

१९ : ४५-४८—लूका में मंदिर का परिष्कार उसी दिन होता है जब यीशु यरूशलेम में प्रविष्ट होता है। लूका ने मरकुस में से अंजीर के पेड़ का वर्णन सम्मिलित नहीं किया है। उस ने मंदिर के परिष्कार का वर्णन बहुत संक्षिप्त किया है। उस ने यश. ५३ : ७ के उद्धरण में से "सब जातियों के लिए" शब्द छोड़े हैं, यद्यपि ये शब्द उसके उदार दृष्टिकोण के अनुकूल हैं। कदाचित कारण यह है कि लूका ने अपना सुसमाचार मंदिर के विनाश के पश्चात लिखा, और वह जानता था कि मंदिर नहीं वरन कलीसिया जातियों के लिए प्रार्थना का घर बनी। लूका अपने वर्णन में इस तथ्य के विषय मरकुस

का अनुसरण नहीं करता कि "अंतिम सप्ताह" में ठीक कौन से दिन क्या क्या घटित हुआ। अतः वह १९ : ४७, ४८ में मर. ११ : १८ का अनुकूलन करता है। "और वह प्रति दिन मंदिर में उपदेश करता था" शब्द केवल लूका में हैं। तुलना कीजिए २१ : ३७। लूका ने "क्योंकि उससे डरते थे" शब्दों को सम्मिलित नहीं किया, और "लोगों के रईस" शब्दों को जोड़ा है।

(२) यीशु के अधिकार के संबंध में प्रश्न, दाख उद्यान का दृष्टांत २० : १-१९
(मर. ११ : २७—१२ : १२; मत्त. २१ : ३३-४२, ४५, ४६; २२ : १-१०)

इस पूर्ण अंश में लूका और मरकुस में थोड़ा ही अंतर है। यह अंतर अधिकतर लूका के शैलीगत परिवर्तनों के कारण है। लू. २० : १—२१ : ७ में क्रमानुसार वही बातें हैं जो मर. ११ : २७–१३ : ४ में हैं। परंतु लूका में समयों के संकेत अस्पष्ट रह गए हैं।

इस अंश के संबंध में मर. ११ : २७–१२ : १२ की व्याख्या पर्याप्त है। उपरोक्त कथन के अनुसार २० : १ में समय के संबंध में मरकुस की तुलना में यीशु के शब्द अस्पष्ट हैं। २० : ६ में लूका ने मरकुस के "तो लोगों का डर है" शब्दों का स्पष्टीकरण करके "तो समस्त जनता हमें पत्थरों से मार डालेगी" (हिं. सं.) लिखा।

२० : ९ में मरकुस की तुलना में लूका ने यश. ५ : २ का उद्धरण संक्षिप्त किया है। २० : १२ में लूका के अनुसार उन्होंने तीसरे दास को मार नहीं डाला, केवल उसे घायल किया। २० : १५ में किसान पुत्र को पहले दाख उद्यान से बाहर निकालते हैं, फिर उसे मार डालते हैं। यह मरकुस के क्रम के विपरीत है। मत्त. २१ : ३९ में भी ऐसा ही है—उसकी व्याख्या को पढ़िए। संभाव्यतः लूका का अभिप्राय इस बात को वास्तविक घटना से संगत करना था। यीशु यरूशलेम से बाहर मारा गया (तुलना कीजिए इब्र. १३ : १२)। २० : १७ में भ. ११८ : २२ का उद्धरण छोटा किया गया है, परंतु महत्वपूर्ण तथ्य उस में स्पष्ट है। २० : १८ केवल लूका में है। यह कथन लूका को किसी परंपरा से मिला, और उसने इसे स्वयं यहां जोड़ा होगा। "उस पत्थर पर गिरने" का अर्थ उस पत्थर के कारण, अर्थात ख्रिस्त के कारण, ठोकर खाना है। पत्थर का किसी पर गिरने का अर्थ यह है कि उस पश्चातातापहीन व्यक्ति के लिए यीशु न्यायाधीश बनता है (तुलना यश. ८ : १४; १ पत. २ : ४-८)।

(३) कैसर को कर देने और पुनरुत्थान के प्रश्न २० : २०-४०
(मर. १२ : १३-२७; मत्त. २२ : १५-३३)

२० : २०-२६ मर. १२ : १३-१७ के समान है। मरकुस की व्याख्या को पढ़िए। लू. २० : २० में मर. १२ : १३ बहुत परिवर्तित रूप में है। फरीसियों और हेरोदियों का उल्लेख नहीं है। वे लोग जो महासभा की ओर से यीशु के पास भेजे गए गुप्तचर (भेदिए) कहे गए हैं। लूका इन सब लोगों का अभिप्राय बहुत स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करता है, "कि उसे हाकिम के हाथ और अधिकार में सौंप दें"। पद २५ तक

लूका कुछ संक्षेपण करके मरकुस का अनुसरण करता है। २०:२७ केवल लूका में है। उसका अर्थ यह है कि महासभावालों और उनके गुप्तचरों की धूर्तता सफल नहीं हुई।

२०:२७-४० मर. १२ : १८-२७ के समान है—उसकी व्याख्या को पढ़िए। पद ३३ तक लूका के वर्णन में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं है। लूका में भी केवल इस स्थल में सदूकियों का उल्लेख है। २०:३४-३६ मर. १२ : २४, २५ से इतना भिन्न है कि अनुमान लगाना पड़ता है कि लूका ने इस पद को किसी अन्य स्रोत से जोड़ा। २०:३५ में ऐसा प्रतीत होता है कि यह विचार निहित है कि केवल वे लोग जो "इस योग्य गिने जाते हैं", अर्थात धार्मिक लोग, जी उठेंगे, परंतु १४ : १४ की व्याख्या को देखिए। लूका ने यह बात सम्मिलित नहीं की (मर. १२ : २४) कि सदूकी पवित्र शास्त्र और परमेश्वर की सामर्थ्य से अपरिचित हैं। उस ने "इस युग के" (पद ३४), "जी उठने को" और "परमेश्वर के" (पद ३६) संतानों का उल्लेख किया है। यहां "संतान" शब्द से यह आशय है कि जिसके वे संतान कहे गए हैं उसी के गुण उन में पाए जाते हैं। इस युग के संतान और परमेश्वर के संतान में विषमता प्रकट की गई है। पुनरुत्थान के संतान में पुनरुत्थान का जीवन क्रियाशील है

२०:३७,३८ मर. १२ : २६, २७ के समान है—मरकुस की व्याख्या को पढ़िए। २०:३८ के अंतिम शब्द कठिन हैं। इसके संबंध में दो संभावनाएं हैं : (i) "उसके निकट सब जीवित हैं" का अर्थ यह है कि यद्यपि हम उन्हें मृतक समझें तो भी वे सब लोग जिनका उल्लेख २० : ३५, ३६ में है परमेश्वर की दृष्टि में जीवित हैं। (ii) इन शब्दों का अनुवाद "सब उसके निमित्त जीते हैं" भी हो सकता है। इसका अर्थ यह है कि उपरोक्त सब लोग परमेश्वर को समर्पित होकर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। इन में से (i) प्रसंग के अनुकूल प्रतीत होता है।

संभाव्यत: २०:३६, ४० मर. १२ : ३२, ३४ पर आधारित हैं। लूका ने मरकुस के उस स्थल को सम्मिलित नहीं किया।

(४) दाऊद पुत्र, शास्त्रियों के विरुद्ध चेतावनी, विधवा की दमड़ी २०:४१-२१:४

(मर. १२ : ३५-४४; मत्त. २२ : ४१-४५; २३ : १, ६, ७)

इस पूर्ण अंश में लूका ने कुछ संक्षेपण करके मरकुस का अनुसरण किया कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं है। अतः मरकुस की व्याख्या पर्याप्त है।

२०:४२ में लूका भजन-संहिता का उल्लेख करता है। नया नियम में लूका ही है जो इस पुस्तक का नाम लेता है। २० : ४५ में लूका स्पष्ट करता है कि यीशु शिष्यों को संबोधित कर रहा था। यह तथ्य मरकुस में नहीं है। २१:१-४ में अधिक संक्षेपण किया गया है, परंतु मौलिक अर्थ वही है जो मरकुस में है।

(५) मंदिर तथा यरूशलेम-विनाश और युगांत २१:५-३८

इस खंड के संबंध में मरकुस की टीका, ६(३), "प्रकाशनात्मक प्रवचन", मर. १३ : १-३७ को पढ़िए। लूका, २१ : ५-११ में, मरकुस का अनुसरण करता है। इसके पश्चात कहीं कहीं उस में और मरकुस में ऐसा अंतर है कि अनेक विद्वानों की

मान्यता के अनुसार लूका ने एक अन्य स्रोत का प्रयोग करके उसके और मरकुस के वर्णनों का संयोजन किया। यह संभव हो सकता है, परंतु प्रमाणित नहीं हो सकता।

(क) मंदिर के विनाश की भविष्यवाणी, प्रभु के आगमन के चिन्ह, विपत्तियों का प्रारंभ २१ : ५-१९

(मर. १३ : १-१३; मत्त. २४ : १-६, १४; १० : १७-२१)

२१ : ५-७ मर. १३ : १-४ के समान है—उसकी व्याख्या को पढ़िए। मरकुस के अनुसार यीशु और शिष्य मंदिर को छोड़कर जैतून पर्वत को जाते हैं, परंतु लूका के अनुसार वे मंदिर में ही रहते हैं। अतः लूका ने "और भेंट की वस्तुओं से" ("समर्पित वस्तुओं से", हिं. सं.) शब्दों को जोड़ा है। वे समर्पित वस्तुएं अभिप्रेत हैं जिनको लोग मंदिर में चढ़ाते थे। **२१ : ८-११** मर. १३ : ५-८ के समान है, अतः मरकुस की टीका को पढ़िए। पद ८ में लूका ने परिवर्धन और परिवर्तन करके इस प्रकार लिखा है, "कि समय निकट आ पहुंचा है। तुम उनके पीछे न चले जाना"। "समय आ पहुंचा है" उन दावा करनेवालों के शब्द हैं जो जो दावा करते हैं कि "समय", अर्थात ख्रिस्त के लौट आने का समय, आ गया है। **२१ : ११** में लूका ने "मरियां" शब्द को जोड़ा है। **२१ : ११उ.** मर. १३ : ८ से भिन्न है। **२१ : ११उ** में परंपरागत प्रकाशनात्मक शब्दावली का प्रयोग किया गया है।

२१ : १२-१९ में अधिक परिवर्तन किए गए हैं, तो भी यह अंश मुख्यतः मर. १३ : ९-१३ के समान है—उसकी व्याख्या को पढ़िए। **२१ : १२** में "इन सब बातों से पहले" शब्द केवल लूका में हैं। इन शब्दों का संकेत २१:८-११ की ओर है। इन शब्दों से प्रकट होता है कि लूका २१ : १२-१९ में वर्णित घटनाओं को अंतिम समय से नहीं वरन सुसमाचार-प्रचार के काल में शिष्यों के दुखों से संबंधित मानता था। यह आश्चर्य की बात है कि लूका ने मर. १३ : १० को सम्मिलित नहीं किया—"पर अवश्य है कि पहले सुसमाचार सब जातियों में प्रचार किया जाए"। कदाचित यह उपरोक्त कारण से है, कि लूका स्पष्ट करना चाहता था कि यह अंश अंतिम समय से पहले ही की विपत्तियों के संबंध में नहीं वरन प्रारंभिक कष्टों के संबंध में था। **२१ : १५** की शब्दावली मर. १३ : ११उ की शब्दावली से भिन्न है। कदाचित लूका यहां एक अन्य स्रोत का प्रयोग कर रहा था। लूका में यह कथन उत्तम पुरुष में है—यीशु स्वयं उन्हें शब्द और बुद्धि देगा। इस कथन की पूर्ति प्रे. ४ : ८, १३; ६ : ३ जैसे स्थलों में पाई जाती है। **२१ : १८** इस स्थल पर केवल लूका में है, परंतु वह १२ : ७=मत्त. १० : ३० के समान है। २१ : १६ के कारण ("तुम में से कितनों को मरवा डालेंगे") इसका अर्थ यह नहीं हो सकता कि शारीरिक रूप से शिष्यों को कुछ हानि नहीं पहुंच सकती वरन यह कि मौलिक रूप से उनके प्राण परमेश्वर के हाथों में सुरक्षित हैं।

(ख) यरूशलेम का विनाश, मानव पुत्र का आगमन, जागरूकता की चेतावनी २१ : २०-३८

(मर. १३ : १४-२०, २४-३२; मत्त. २४ : १५-२२, २९-३६)

२१ : २०-२४ मर. १३ : १४-२० से बहुत भिन्न है तो भी मरकुस के इस अंश की टीका पढ़िए। २० : २० कदाचित मरकुस से भिन्न स्रोत पर आधारित है। ऐसा प्रतीत होता है कि लूका को इस तथ्य को गुप्त शब्दावली में प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं थी। लूका में ई. स. ७० में यरूशलेम के विध्वंस की स्पष्ट भविष्यवाणी है। **२१ : २१पू** मरकुस के समान है। इसके पश्चात **पद २१ उ**, २२ में लूका का वर्णन भिन्न है। वह मर. १३ : १५, १६ को लू. १७ : ३१ में सम्मिलित कर चुका है (इसकी और मर. १३ : १५, १६ की व्याख्या को देखिए)। यूसेब, चौथी शताब्दी ईसवी का ख्रिस्तीय इतिहासकार, यह बताता है कि यरूशलेम के घेरे से पूर्व ख्रिस्तियों ने प्रकाशन द्वारा मार्गदर्शन प्राप्त कर यरूशलेम को छोड़ा और पेल्ला को, जो दिकपुलिस में स्थित था भाग गए। यहां इस प्रकार का मार्गदर्शन है। **२१ : २२** व्य. ३२ : ५३ के शब्दों पर आधारित है। लूका के इन अंशों में, जहां मरकुस से भिन्नता है, पुराना नियम के अनेक संकेत हैं। **२१ : २३ पू** मर. १३ : १७ के समान है। लूका ने मर. १३ : १८ को सम्मिलित नहीं किया। **लू. २३उ** लगभग मर. १३ : १९ के समान है, परंतु **पद २४** मरकुस से पूर्ण रूप से भिन्न है। योसेपस, यहूदी इतिहासकार, जो यरूशलेम के घेरे के समय उपस्थित था, यह बताता है कि उस घेरे में ग्यारह लाख यहूदी मारे गए और लगभग एक लाख युद्धबंदी किए गए। "अन्यजातियों का समय" का अर्थ यरूशलेम में विजातीय लोगों के शासन की अवधि है।

२१ : २५-२८—मर. १३ : २४-२७ की व्याख्या को देखिए। यद्यपि लूका की शब्दावली भिन्न है, और उस ने अन्य स्रोत से कुछ सामग्री जोड़ी है तथापि मौलिक रूप से अर्थ वही है जो मरकुस में है। लूका ने समुद्र के गरजने और लहरों का उल्लेख जोड़ा है, और **२१ : २६** में वह इन बातों को न केवल यरूशलेम पर वरन संसार पर भी आरोपित करता है। **२१ : २७** शब्दश: मर. १३ : २६ के समान है, परंतु दा. ७ : १३ के उद्धरण में लूका ने "बादलों" (मर. १३ : २६) को "बादल" में परिवर्तित किया है। लूका के लेखों में एकवचन में "बादल" शब्द का प्रयोग विशेष रूप से ख्रिस्त के गौरव को व्यक्त करता है (९ : ३४; प्रे. १ : ९-११)। **२१ : २८** केवल लूका में है। ख्रिस्तियों के लिए अंतिम काल आनंद-काल होगा, क्योंकि उनके उद्धार की परिपूर्ति निकट होगी। तुलना कीजिए रो. १३ : ११; १ पत. १ : ५।

२१ : २९-३३ अधिकतर मर. १३ : २८-३२ के समान है—उनकी व्याख्या को पढ़िए। **पद ३१** में, मरकुस के "वह निकट है" के स्थान पर लूका ने "परमेश्वर का राज्य निकट है" लिखा है। इस पद में परमेश्वर के राज्य के वर्तमान पक्ष का नहीं वरन उसकी परिपूर्ति का उल्लेख है।

२१ : ३४ ३८ केवल लूका में है। लूका ने यहां मर. १३ : ३३-३७ को सम्मिलित नहीं किया, परंतु ऐसी सामग्री लूका के भिन्न स्थलों में पाई जाती है। मर. १३ : ३३, ३४ की तुलना लू. १९ : १२, २३ से, मर. १३ : ३५ की तुलना लू. १२ : ४० से और मर. १३ : ३६ की तुलना लू. १२ : ३८ से कीजिए। मरकुस के इस अंश के स्थान

पर लूका ने २१ : ३४-३६ को जोड़ा है। इसकी तुलना १ थिस. ५ : ३, ६, ७ से कीजिए। संभव है कि पद ३५ यश. २४ : १७ पर आधारित हो। स्पष्टतः इस अंश में निर्णायक और संकटमय समय का वर्णन है, अतः जागते रहने की कड़ी चेतावनी है। २१ : ३७, ३८ एक संपादकीय टिप्पणी है। मर. ११ : ११ और १४ : ३ के अनुसार यीशु रात को बैतनिय्याह गया, जो जैतून नामक पर्वत के निकट स्थित था। मर. ११ : १९ में भी लिखा है कि "सायंकाल होने पर वे नगर के बाहर चले गए" (हिं. सं.)। लूका में ये स्थल नहीं पाए जाते, अतः उस ने इस टिप्पणी के द्वारा स्पष्टीकरण किया।

६ यीशु का अंतिम समय, विचार और क्रूसीकरण २२ : १-२३ : ५६

(१) यीशु के विचार से पूर्व की घटनाएं २२ : १-६२

(क) यीशु की हत्या का षड्यंत्र, प्रभु भोज की तैयारी २२ : १-१३

(मर. १४ : १, २, १०-१६; मत्त. २६ : २-५, १४-१९)

२२ : १-६ मर. १४ : १, २, १०, ११ के समान हैं, अतः मरकुस की व्याख्या को पढ़िए। पद १ में लूका अखमीरी रोटी के पर्व और फसह के पर्व को एक ही पर्व कहता है, परंतु वास्तव में मरकुस यहां अधिक सटीक है—वे दो पृथक पर्व थे। फसह १४ नीसान को और अखमी रीरोटी १५-२१ नीसान को होता था (लै. २३ : ५, ६)। लूका ने मर. १४ : २ को सम्मिलित नहीं किया है। उस ने उसका संक्षेप करके "पर वे लोगों से डरते थे" ही लिखा। इस स्थल पर लूका ने मर. १४ : ३-९ को सम्मिलित नहीं किया है क्योंकि लूका ७ : ३५-५० में लूका का एक अन्य वर्णन है जो कुछ अंशों में इस वर्णन के सदृश है। इसके संबंध में लूका ७ : ३६-५० की व्याख्या को देखिए।

२२ : ३-६ मर. १४ : १०, ११ के समान है, परंतु लूका ने कुछ परिवर्धन किए हैं। उसका यह प्रतिपादन है कि शैतान ही था जिस ने यहूदा को यीशु के पकड़वाने के लिये प्रेरित किया। तुलना कीजिए यू. १३ : २, २७। २२ : ४ में लूका पहरुओं के सरदारों का उल्लेख करता है, जो मरकुस में नहीं है। २२ : ६ में लूका ने "बिना उपद्रव के" शब्दों को जोड़ा है। यहां हिं. सं. अधिक ठीक है, "भीड़ की अनुपस्थिति में यीशु को उनके हाथ पकड़वाए"।

२२ : ७-१३ मर. १४ : १२-१६ के समान है। मरकुस की व्याख्या लूका पर भी लागू है, अतः उसको पढ़िए। पद ७ में अखमीरी रोटी के पर्व के दिन के संबंध में वही गलती है जो मर. १४ : १२ में है—मरकुस की व्याख्या में देखिए। शैलीगत परिवर्तनों को छोड़ लूका के वर्णन में केवल यह अंतर है कि उसके अनुसार वे दो शिष्य जो तैयारी करने के लिए भेजे गए पतरस और यूहन्ना थे, और कि उनको भेजने में यीशु ने ही पहल की। पतरस और यूहन्ना के एक साथ कार्य करने के संबंध में प्रे. ३ : १ क्र., ४ : १९ और ८ : १४ को भी देखिए।

(ख) प्रभु भोज २२ : १४-२३

(मर. १४ : १७-२५; मत्त. २६ : २०-२९)

इस अंश में लूका मरकुस से बहुत भिन्न है। अनेक विद्वानों की मान्यता है कि

लूका ने मरकुस के वर्णन को परिवर्तित किया है, परंतु हमें ऐसा प्रतीत होता है कि उस ने मरकुस और एक अन्य स्रोत का संयोजन किया है। मरकुस की व्याख्या को भी देखिए।

लूका और मरकुस में मुख्य भिन्नताएं निम्नांकित हैं : (i) लूका का क्रम भिन्न है। पकड़वानेवाले के संबंध में सब बातें भोज के वर्णन के पश्चात हैं (मरकुस में ये बातें आरंभ में हैं; मत्ती मरकुस का अनुसरण करता है)। (ii) लूका में कटोरा का उल्लेख दो बार है, एक बार रोटी तोड़ने से पहले (पद १७), दूसरी बार उसके पश्चात (पद १९ पू)।

२२ : १४ में लूका शिष्यों को "प्रेरित" कहता है (मरकुस और मत्ती में, "बारह")। लूका में उनके भावी कार्य की ओर संकेत है। २२ : १५-१८ परमेश्वर के राज्य के भावी पक्ष की ओर संकेत करते हैं। केवल लूका स्पष्ट शब्दों में इसे फसह का भोज कहता है। इसके संबंध में मरकुस की व्याख्या को पढ़िए। यहूदी लोगों की कल्पना के अनुसार परमेश्वर के राज्य की परिपूर्ति युगांत में एक बड़े भोज के समान होगी। यहां यीशु भोज के रूपक का प्रयोग करता है। २२ : १६ लूका के विशेष स्रोत से होगा। २२ : १८ का भी मौलिक रूप से उपरोक्त अर्थ है, परंतु यह पद मर. १४ : २५ के सदृश है, अतः संभव है कि लूका ने उसे वहां से लिया। उसकी व्याख्या को पढ़िए। यदि सचमुच यह फसह का भोज था (मरकुस की टीका को देखिए) तो संभवतः इस पद में विशेष प्रभु-भोज के कटोरे का नहीं वरन यहूदियों के फसह के भोज में दाखरस के तीसरे या चौथे कटोरे का उल्लेख है। उस भोज में ऐसे चार कटोरे पिए जाते थे। यदि यह विचार ठीक है तो विशेष प्रभु-भोज के कटोरे का वर्णन केवल २२ : २० में है। दूसरी शताब्दी ईसवी के लेख "बारह शिष्यों की शिक्षा" में भी कटोरे के रोटी तोड़ने से पहले होने का वर्णन है। तुलना कीजिए १ कुर. १० : १६ और उसकी व्याख्या (सामान्य टीका, ग्रंथ ८)। इन तथ्यों से ज्ञात होता है कि प्रारंभिक कलीसिया में कटोरे और रोटी का क्रम पक्के तौर पर निर्धारित नहीं था। २२ : १९पू मर. १४ : २२ से लिया गया है। इस पद में और पद १७ में भी "धन्यवाद करके" यूनानी शब्द "यूखरिस्तेओ" का अनुवाद है (मर. १४ : २३ की व्याख्या को देखिए)।

२२ : १९ उ, २० एक प्राचीन हस्तलेख और कई प्राचीन अनुवादों में नहीं है, अतः बहुत से विद्वान इसे प्रामाणिक नहीं मानते। यदि इन पदों को अप्रामाणिक माना जाए तो लूका में केवल एक बार कटोरे का उल्लेख है। इन पदों का शब्द-रूप लगभग १ कुर. ११ : २४, २५ के समान है, अंतर थोड़ा ही है। अतः यह सामान्य अनुमान लगाया गया है कि वे इस सुसमाचार के लिखे जाने के पश्चात इस स्थल में १ कुर. ११ : २४, २५ से सम्मिलित किए गए। परंतु अनेक कारणों से, जिनके वर्णन के लिए यहां स्थान नहीं है, यह अधिक संभव प्रतीत होता है कि लूका में आरंभ से ही ये पद सम्मिलित थे और कालांतर में किसी ने, यह न समझते हुए कि कटोरे का उल्लेख दो बार क्यों हुआ, उन्हें एक हस्तलेख में सम्मिलित नहीं किया। यदि यह अनुमान ठीक है तो लूका ने यहां भी अपना वर्णन मरकुस पर आधारित करके एक अन्य स्रोत की सामग्री इस से

संयोजित की। २२ : १६ पू, २० के लिए मर. १४ : २२-२४ की व्याख्या को पढ़िए। २२ : २० में लूका ने "और उन सब ने उस में से पिया" शब्दों को (मर. १४ : २३) सम्मिलित नहीं किया। २२ : १६उ अन्य सुसमाचारों में नहीं है परंतु यह लगभग १ कुर. ११ : २४ के समान है—उसकी टीका को पढ़िए। माना जाता है कि यह एक बहुत प्राचीन परंपरा है, जिसके आधार पर कलीसिया प्रभु-भोज के संस्कार को मनाती चली आई है।

२२ : २१-२३ मौलिक रूप से मर. १४ : १८-२१ के समान है, परंतु शब्दावली बहुत भिन्न है। अधिक समानता पद २२ में है। मरकुस की व्याख्या को पढ़िए। "जैसा उनके विषय में लिखा है" (मर. १४ : २१) के के स्थान पर लूका में "जैसा उनके लिए ठहराया गया" (हिं. सं. "निश्चित किया गया") है। इन शब्दों से यह तथ्य बड़ी स्पष्टता से व्यक्त है कि यीशु की मृत्यु परमेश्वर के पूर्वज्ञान और अभिप्राय के अनुसार हुई। पद २३ कुछ अंशों में मत्त. २६ : २५ के समान है।

(ग) बड़प्पन का प्रश्न, पतरस के अस्वीकरण की भविष्यवाणी, दो तलवारें २२ : २४-३८

(मर. १० : ४२-४५; १४ : २६, ३०; मत्त. २० : २५-२८; १६ : २८; २० : ३३, ३४)

२२ : २४-२६ मर. १० : ४२-४५ के समान है—उसकी व्याख्या को पढ़िए। **२२ : २४** का संकेत मर. १० : ३५-४० की ओर है, जिसको लूका ने सम्मिलित नहीं किया। याकूब और यूहन्ना यीशु के राज्य में मुख्य स्थान चाहते हैं। इस अंश में लूका की शब्दावली भिन्न है, परंतु अर्थ वही है जो मरकुस में है। **२२ : २५** में "उपकारक कहलाते हैं" शब्द केवल लूका में हैं। यूनानी शब्द ("यूअर्गतेस") बहुधा सूरिया और मिस्र के यूनानी राजाओं के सबंध में प्रयुक्त होता था। **२२ : २६** में "प्रधान" शब्द है (हिं. सं. "नेता")। यह शब्द नया नियम में अन्यत्र केवल प्रे. १५ : २२; इब्र. १३ : ७, १७, २४ में पाया जाता है। वर्तमान काल में नेतृत्व की बड़ी चर्चा होती है। यह तथ्य विचारणीय है कि नया नियम में नेतृत्व के संबंध में यही एकमात्र आदेश है; कि नेता में सेवक की भावना और अभिवृत्ति हो। **२२ : २७** केवल लूका में है, परंतु वह कुछ अंशों में मर. १० : ४५ के समान है, जिसको लूका ने सम्मिलित नहीं किया। इस पद का अर्थ बहुत स्पष्ट है। काश कि कलीसिया के सब "नेता" इस अर्थ को पहचानें और अपनाएं।

२२ : २८-३० आंशिक रूप से मत्ती १६ : २८ के समान है—उसकी व्याख्या को पढ़िए। २२ : २८ में "संकट" (हिं. सं.) शब्द ठीक है। संकटों में परीक्षाएं भी सम्मिलित हैं। इस पद में संकेत है कि यीशु शिष्यों की सहायता की कदर करता था। **२२ : २६, ३०**—"मेज" का अर्थ युगांत-संबंधी भोज है। इस पर मत्त. ८ : ११, १२ की व्याख्या को पढ़िए। लू. १३ : २६ में भी इसका उल्लेख है। इन पदों का अनुवाद हिं. सं. में स्पष्ट है, "जैसे मेरे पिता ने मेरे लिए राज्य निर्दिष्ट किया है, वैसे ही मैं तुम्हारे

लिए निर्दिष्ट करता हूं कि तुम मेरे राज्य में मेरी मेज पर खाओ, पीओ और सिंहासनों पर बैठकर इस्राएल के बारह वंशों का न्याय करो"। यीशु शिष्यों के लिए राज्य निर्दिष्ट नहीं करता—राज्य यीशु का ही है। शिष्यों के लिए यह निर्दिष्ट है कि वे यीशु के साथ राज्य में सहभागी हों। शेष बातें मत्त. १९ : २८ को टीका में देखिए।

२२ : ३१-३४ मर. १४ : २६-३१ से भिन्न हैं, परंतु कुछ समानता भी है। मरकुस में सब शिष्यों के विषय में कहा गया है कि उनका पतन होगा और इसके संबंध में पुराना नियम से उद्धरण (जक. १३ : ७) प्रस्तुत किया गया है। लूका में यीशु शमौन को ही संबोधित करता है। शैतान सब शिष्यों को फटकना चाहता है। यद्यपि वह पतरस के अस्वीकरण का उल्लेख करने को है तो भी यीशु उसको संबोधित करके आदेश देता है कि वह अपने साथी शिष्यों को स्थिर करे। "जब तू फिरे" का अर्थ "जब मुझे अस्वीकार करने के पश्चात तेरा मन परिवर्तन हो जाए" है। इस कथन के अनुसार यीशु को संपूर्ण आशा थी कि पतरस और अन्य शिष्य विश्वास में स्थिर हो जाएंगे। २२ : ३३ के शब्द मरकुस की तुलना में और भी निश्चय-पूर्ण हैं। पतरस अपनी दुर्बलता को नहीं जानता था।

२२ : ३५-३८ केवल लूका में है। इस अंश में यीशु प्रकट करता है कि आने वाले दिनों में शिष्यों को संकट का सामना करना पड़ेगा। २२ : ३५ का संकेत १० : ४ की ओर है, जो सत्तर के भेजे जाने के संबंध में है (१० : १)। इस में तलवार का उल्लेख नहीं है। यीशु के व्यवहार और उसकी शिक्षा को दृष्टि में रखते हुए यह मान लेना कठिन है कि उस ने शाब्दिक अर्थों में तलवार रखने का आदेश दया (तुलना मत्त. २६ : ५२; ५ : ३८-४८; यू. १८ : ११)। अतः अधिकांश टीकाकारों की मान्यता है कि यहां यीशु ने लाक्षणिक रूप से संकटकाल के जोखिमों का प्रतिपादन करने के लिए तलवारों का उल्लेख किया, अथवा कि उस ने व्यंग्य से तलवारें मोल लेने का आदेश दिया। शिष्यों ने उसके कथन का शाब्दिक अर्थ लिया, इस कारण उस ने अंत में व्यंग्य से कहा, "बहुत है" (बुल्के, "बस ! बस !")। २२ : ३७ में यश. ५३ : १२ के शब्द उद्धृत हैं। नया नियम का यही एकमात्र स्थल है जहां यश. ५३ का स्पष्ट उद्धरण है, अलबत्ता संकेत बहुत हैं। संभवतः ये सब बातें व्यंग्यात्मक हैं। यदि शिष्य इस प्रकार सांसारिक साधनों के सहारे चलें तो अवश्य शैतान की पकड़ में आ जाएंगे (पद ३१)।

(घ) गतसमने में, यीशु का बंदी होना, पतरस का अस्वीकरण २२ : ३९-६२
(मर. १४ : २६, ३२, ४३-४५, ६६-७२; मत्त. २६ : ३०, ३६-५८, ६९-७५)

२२ : ३९-४६ में मर. १४ : ३२-४२ बहुत संक्षिप्त किया गया है, और पद ४३, ४४ उस संक्षिप्त वर्णन में जोड़े गए हैं। मरकुस की व्याख्या को पढ़िए। २२ : ३९ में लूका "गतसमने" नाम नहीं लिखता क्योंकि पाठकों के लिए ऐसा अनजान नाम कदाचित निरर्थक होता। इस तथ्य पर बल दिया गया है कि शिष्यों को प्रार्थना करने

संयोजित की। २२ : १९ पू, २० के लिए मर. १४ : २२-२४ की व्याख्या को पढिए। २२ : २० में लूका ने "और उन सब ने उस में से पिया" शब्दों को (मर. १४ : २३) सम्मिलित नहीं किया। २२ : १९उ अन्य सुसमाचारों में नहीं है परंतु यह लगभग १ कुर. ११ : २४ के समान है—उसकी टीका को पढ़िए। माना जाता है कि यह एक बहुत प्राचीन परंपरा है, जिसके आधार पर कलीसिया प्रभु-भोज के संस्कार को मनाती चली आई है।

२२ : २१-२३ मौलिक रूप से मर. १४ : १८-२१ के समान है, परंतु शब्दावली बहुत भिन्न है। अधिक समानता पद २२ में है। मरकुस की व्याख्या को पढ़िए। "जैसा उनके विषय में लिखा है" (मर. १४ : २१) के के स्थान पर लूका में "जैसा उनके लिए ठहराया गया" (हिं. सं. "निश्चित किया गया") है। इन शब्दों से यह तथ्य बड़ी स्पष्टता से व्यक्त है कि यीशु की मृत्यु परमेश्वर के पूर्वज्ञान और अभिप्राय के अनुसार हुई। पद २३ कुछ अंशों में मत्त. २६ : २५ के समान है।

(ग) बड़प्पन का प्रश्न, पतरस के अस्वीकरण की भविष्यवाणी, दो तलवारें २२ : २४-३८

(मर. १० : ४२-४५; १४ : २९, ३०; मत्त. २० : २५-२८; १९ : २८; २० : ३३, ३४)

२२ : २४-२६ मर. १० : ४२-४५ के समान है—उसकी व्याख्या को पढ़िए। **२२ : २४** का संकेत मर. १० : ३५-४० की ओर है, जिसको लूका ने सम्मिलित नहीं किया। याकूब और यूहन्ना यीशु के राज्य में मुख्य स्थान चाहते हैं। इस अंश में लूका की शब्दावली भिन्न है, परंतु अर्थ वही है जो मरकुस में है। **२२ : २५** में "उपकारक कहलाते हैं" शब्द केवल लूका में हैं। यूनानी शब्द ("यूअर्गतेस") बहुधा सूरिया और मिस्र के यूनानी राजाओं के सबंध में प्रयुक्त होता था। **२२ : २६** में "प्रधान" शब्द है (हिं. सं. "नेता")। यह शब्द नया नियम में अन्यत्र केवल प्रे. १५ : २२; इब्र. १३ : ७, १७, २४ में पाया जाता है। वर्तमान काल में नेतृत्व की बड़ी चर्चा होती है। यह तथ्य विचारणीय है कि नया नियम में नेतृत्व के संबंध में यही एकमात्र आदेश है, कि नेता में सेवक की भावना और अभिवृत्ति हो। **२२ : २७** केवल लूका में है, परंतु वह कुछ अंशों में मर. १० : ४५ के समान है, जिसको लूका ने सम्मिलित नहीं किया। इस पद का अर्थ बहुत स्पष्ट है। काश कि कलीसिया के सब "नेता" इस अर्थ को पहचानें और अपनाएं।

२२ : २८-३० आंशिक रूप से मत्ती १९ : २८ के समान है—उसकी व्याख्या को पढ़िए। २२ : २८ में "संकट" (हिं. सं.) शब्द ठीक है। संकटों में परीक्षाएं भी सम्मिलित हैं। इस पद में संकेत है कि यीशु शिष्यों की सहायता की कदर करता था। **२२ : २९, ३०**—"मेज" का अर्थ युगांत-संबंधी भोज है। इस पर मत्त. ८ : ११, १२ की व्याख्या को पढ़िए। लू. १३ : २९ में भी इसका उल्लेख है। इन पदों का अनुवाद हिं. सं. में स्पष्ट है, "जैसे मेरे पिता ने मेरे लिए राज्य निर्दिष्ट किया है, वैसे ही मैं तुम्हारे

लिए निर्दिष्ट करता हूं कि तुम मेरे राज्य में मेरी मेज पर खाओ, पीओ और सिंहासनों पर बैठकर इस्राएल के बारह वंशों का न्याय करो"। यीशु शिष्यों के लिए राज्य निर्दिष्ट नहीं करता---राज्य यीशु का ही है। शिष्यों के लिए यह निर्दिष्ट है कि वे यीशु के साथ राज्य में सहभागी हों। शेष बातें मत्त. १९ : २८ को टीका में देखिए।

२२ : ३१-३४ मर. १४ : २६-३१ से भिन्न हैं, परंतु कुछ समानता भी है। मरकुस में सब शिष्यों के विषय में कहा गया है कि उनका पतन होगा और इसके संबंध में पुराना नियम से उद्धरण (जक. १३ : ७) प्रस्तुत किया गया है। लूका में यीशु शमौन को ही संबोधित करता है। शैतान सब शिष्यों को फटकना चाहता है। यद्यपि वह पतरस के अस्वीकरण का उल्लेख करने को है तो भी यीशु उसको संबोधित करके आदेश देता है कि वह अपने साथी शिष्यों को स्थिर करे। "जब तू फिरे" का अर्थ "जब मुझे अस्वीकार करने के पश्चात तेरा मन परिवर्तन हो जाए" है। इस कथन के अनुसार यीशु को संपूर्ण आशा थी कि पतरस और अन्य शिष्य विश्वास में स्थिर हो जाएंगे। २२ : ३३ के शब्द मरकुस की तुलना में और भी निश्चय-पूर्ण हैं। पतरस अपनी दुर्बलता को नहीं जानता था।

२२ : ३५-३८ केवल लूका में है। इस अंश में यीशु प्रकट करता है कि आने वाले दिनों में शिष्यों को संकट का सामना करना पड़ेगा। २२ : ३५ का संकेत १० : ४ की ओर है, जो सत्तर के भेजे जाने के संबंध में है (१० : १)। इस में तलवार का उल्लेख नहीं है। यीशु के व्यवहार और उसकी शिक्षा को दृष्टि में रखते हुए यह मान लेना कठिन है कि उस ने शाब्दिक अर्थों में तलवार रखने का आदेश दया (तुलना मत्त. २६ : ५२; ५ : ३८-४८; यू. १८ : ११)। अतः अधिकांश टीकाकारों की मान्यता है कि यहां यीशु ने लाक्षणिक रूप से संकटकाल के जोखिमों का प्रतिपादन करने के लिए तलवारों का उल्लेख किया, अथवा कि उस ने व्यंग्य से तलवारें मोल लेने का आदेश दिया। शिष्यों ने उसके कथन का शाब्दिक अर्थ लिया, इस कारण उस ने अंत में व्यंग्य से कहा, "बहुत है" (बुल्के, "बस ! बस !")। २२ : ३७ में यश. ५३ : १२ के शब्द उद्धृत हैं। नया नियम का यही एकमात्र स्थल है जहां यश. ५३ का स्पष्ट उद्धरण है, अलबत्ता संकेत बहुत हैं। संभवतः ये सब बातें व्यंग्यात्मक हैं। यदि शिष्य इस प्रकार सांसारिक साधनों के सहारे चलें तो अवश्य शैतान की पकड़ में आ जाएंगे (पद ३१)।

(घ) गतसमने में, यीशु का बंदी होना, पतरस का अस्वीकरण २२ : ३९-६२
(मर. १४ : २६, ३२, ४३-४५, ६६-७२; मत्त. २६ : ३०, ३६-५८, ६९-७५)

२२ : ३९-४६ में मर. १४ : ३२-४२ बहुत संक्षिप्त किया गया है, और पद ४३, ४४ उस संक्षिप्त वर्णन में जोड़े गए हैं। मरकुस की व्याख्या को पढ़िए। २२ : ३९ में लूका "गतसमने" नाम नहीं लिखता क्योंकि पाठकों के लिए ऐसा अनजान नाम कदाचित निरर्थक होता। इस तथ्य पर बल दिया गया है कि शिष्यों को प्रार्थना करने

की आवश्यकता है। यहां और पद ४६ में भी परीक्षा के संबंध में प्रार्थना करने का उल्लेख है। शिष्यों की बड़ी भारी परीक्षा होनेवाली थी। मरकुस के अनुसार यीशु ने कहा, "यहां बैठे रहो, जब तक मैं प्रार्थना करूं"। लूका ने मर. १४ : ३३, ३४, ३५उ को सम्मिलित नहीं किया। इनके स्थान पर पद ४३, ४४ में यीशु के दुख का वर्णन है। **२२ : ४२** में "मेरी इच्छा नहीं परंतु तेरी इच्छा पूरी हो" का यूनानी मूल रूप मत्त. ६ : १० के समान है (प्रभु की प्रार्थना में)। ये शब्द लू. ११ : २ में, जो अनुरूपी स्थल है, नहीं पाए जाते। **२२ : ४३, ४४** बहुत से श्रेष्ठ प्राचीन हस्तलेखों में नहीं हैं, परंतु वे अन्य अच्छी प्राचीन पांडुलिपियों में है। संभव है कि अनेक लिपिकों ने इन पदों को इस कारण सम्मिलित नहीं किया कि इन पदों में यीशु के मानवीय कष्ट का सजीव चित्रण है। मरकुस भी, १४ : ३३, ३४ में एसी व्याकुलता का चित्रण करता है। ऐसी व्याकुलता की संभावना न मानना यीशु के वास्तविक मनुष्यत्व को अस्वीकार करना है। "लहू की बूंदों" को लाक्षणिक रूप से समझना चाहिए। इस मानसिक पीड़ा के द्वारा यीशु को निश्चय हो गया कि अपना लहू बहाना आवश्यक है, और पिता परमेश्वर की इच्छा के अनुसार है। **२२ : ४५**—केवल लूका यह वर्णन करता है कि शिष्य "उदासी के मारे" सो रहे थे। मर. १४ : ४० में कारण इस से भिन्न बताया गया है। **पद ४५, ४६** में लूका ने मरकुस के वर्णन के शेष भाग का संक्षेपण किया है। लूका यीशु के तीन बार जाकर प्रार्थना करने और लौटने का वर्णन नहीं करता।

२२ : ४७-५३—इस अंश में लूका का वर्णन मर. १४ : ४३-५२ से बहुत भिन्न है, परंतु कहीं कहीं, मुख्यतः पद ५२उ में, वह शब्दशः मरकुस के अनुसार है। मरकुस की टीका को पढ़िए। ऐसा प्रतीत होता है कि लूका ने मरकुस और एक अन्य स्रोत का संयोजन किया, परंतु उस ने मरकुस की बहुत सामग्री को सम्मिलित नहीं किया। लूका के वर्णन में कार्य की अपेक्षा यीशु के शिक्षात्मक कथनों को अधिक महत्व दिया गया है। लूका ने इस तथ्य का उल्लेख नहीं किया है कि भीड़ यहूदियों के अधिकारियों की ओर से आई (मरकुस, पद ४३ और उसकी व्याख्या), परंतु **पद ५२** में वह कहता है कि वे अधिकारी स्वयं उपस्थित थे (तुलना कीजिए यू. १८ : २)। यदि सचमुच अधिकारी उपस्थित थे तो वे दूसरों के पीछे रहे होंगे। लूका के अनुसार यीशु ने इन अधिकारियों को संबोधित किया। **२२ : ४७** में यीशु यहूदा से प्रश्न करता है। यह अन्य सुसमाचारों में नहीं है। इस प्रश्न के वर्णन में यह विचार निहित है कि वास्तव में यहूदा ने यीशु का चुंबन नहीं किया—यीशु ने उसे रोका (तुलना मर. १४ : ४५)। **२२ : ४९** में भी प्रभु का एक प्रश्न है जो अन्य सुसमाचारों में नहीं है। कदाचित यह प्रश्न लू. २२ : ३८ से संबंधित है—इस प्रश्न से शिष्यों की मंदता प्रकट होती है। **२२ : ५१** के अनुसार वह दास का दाहिना कान था जो काटा गया। यही ब्यौरा यू. १८ : १० में भी है। केवल लूका में वर्णित है कि यीशु ने उस दास को स्वस्थ किया। अनेक टीकाकारों की मान्यता के अनुसार ऐसे ब्यौरे पौराणिक हैं, क्योंकि वे एक मूल विवरण में ऐसे परिवर्धन हैं जो परंपरा में जोड़े जाते हैं। **२२ : ५३उ** केवल लूका में है। इसकी तुलना यू. १३ : ३०

से कीजिए—"और रात्रि का समय था"। अंधकार बुराई का प्रतीक है। इस दृश्य में हम संसार की दुष्टता की शक्ति देखते हैं जो यीशु के विरुद्ध बड़ी योजनाबद्ध थी। लूका ने मर. १४ : ४६उ–५१ को सम्मिलित नहीं किया।

२२ : ५४-६२ के संबंध में मर. १४ : ५३, ५४, ६६-७२ की व्याख्या को पढ़िए। इस व्याख्या में मरकुस और लूका की भिन्नताओं की अनेक बातों पर ध्यान दिया गया है। २२ : ५४, ५५ शाब्दिक परिवर्तन को छोड़ मरकुस के समान हैं, परंतु लूका ने "और सब महायाजक और पुरनिए और शास्त्री उसके यहां इकट्ठे हो गए" (मर. १४ : ५३) शब्दों को सम्मिलित नहीं किया। लू. २२ : ६६ के अनुसार महासभा का अधिवेशन प्रातःकाल ही हुआ (मरकुस की टीका को देखिए)। लूका में पतरस के अस्वीकरण का वर्णन यीशु के विचार के वर्णन से पहले आता है। २२ : ५६—लूका इस बात का उल्लेख नहीं करता कि लौंडी महायाजक की थी। मरकुस और मत्ती के अनुसार तीनों बार लौंडी और अन्य व्यक्ति पतरस को मध्यम पुरुष में संबोधित करते हैं, परंतु लूका में ये सब बातें अन्य पुरुष में हैं। लूका में लौंडी यीशु का नाम नहीं लेती। २२ : ५७ में पतरस का उत्तर अन्य सुसमाचारों की अपेक्षा स्पष्ट है। २२ : ५८, ५९ में लूका के अनुसार दो और भिन्न व्यक्ति प्रश्न पूछते हैं (मरकुस की टीका को देखिए)। पद ५९ में लूका ने "कोई एक घंटे भर के बाद" शब्दों को जोड़ा है। २२ : ६०—लूका ने पतरस के धिक्कार और शपथ का उल्लेख नहीं किया (मर. १४ : ७१), और मत्ती के समान वह केवल इस चरण पर वर्णित करता है कि मुर्ग ने बांग दी (मरकुस की विषमता में)। २२ : ६१ के पहले शब्द केवल लूका में हैं। प्रभु की उस गंभीर दृष्टि से पतरस को यीशु की चेतावनी स्मरण आई और उस ने पहचान लिया कि उस ने क्या किया था। २२ : ६२ कतिपय हस्तलेखों में नहीं है। वह शब्दशः मत्त. २६ : ७५ के अंतिम शब्दों के समान है, अतः अधिकांश टीकाकारों की मान्यता है कि वह कालांतर में मत्ती से यहां सन्निविष्ट किया गया।

(२) यीशु का विचार २२ : ६३–२३ : २५

(क) उपहास, महायाजक के संमुख और पिलातुस के संमुख यीशु का विचार २२ : ६३–२३ : ५

(मर. १४ : ६१-६५; १५ : १-५; मत्त. २६ : ६३-६८; २७ : १, २, ११-१४)

२२ : ६३-६५ की तुलना मर. १४ : ६५ से कीजिए। मरकुस में यह अपमान यीशु के रात को किए गए प्रति-परीक्षण (Cross-examination) के पश्चात होता है। मरकुस में ऐसा प्रतीत होता है कि महासभा के सदस्यों ने यह दुर्व्यवहार किया। लूका स्पष्ट रूप से कहता है कि उन लोगों ने यह किया जो यीशु को पकड़े हुए थे। वह इस तथ्य को भी स्पष्ट करता है कि उन लोगों ने इस कारण कहा कि "भविष्यवाणी कर" कि यीशु की आंखें ढकी हुई थीं, अतः यीशु नहीं देख सकता था कि किस ने मारा। बुल्के का अनुवाद, शाब्दिक न होने पर भी, अच्छा है, "यदि तू नबी है,

तो हमें बता—तुझे किस ने मारा है ?" यह प्रश्न मत्ती में भी है, परंतु उस में आंखें ढकने का उल्लेख नहीं है, अतः प्रश्न निरर्थक सा है।

२२ : ६६ की तुलना मर. १५ : १, मत्त. २७ : १, २ से कीजिए। इस पद के संबंध में मर. १५ : १-१५ की व्याख्या का पहला पैरा और मर. १५ : १ की व्याख्या को पढ़िए। वहां इस मान्यता का समर्थन किया गया है कि संभाव्यतः रात को यहूदियों के अधिकारी अनौपचारिक रूप से एकत्रित हुए, फिर प्रातःकाल महासभा का व्यवस्थित अधिवेशन हुआ। लूका ने रात की बैठक का उल्लेख नहीं किया है।

२२ : ६७-७१—लूका ने मर. १४ : ५५-६१, मंदिर को ढा देने के आरोप के संबंध में प्रति-परीक्षण को सम्मिलित नहीं किया है। २२ : ६७-७१ में लूका ने महासभा के प्रश्न को दो भागों में विभाजित किया है। मरकुस में केवल एक प्रश्न और एक उत्तर है। लूका में पहले प्रश्न का उत्तर (पद ६७ उ, ६८) अन्य सुसमाचारों में नहीं है। यीशु को विश्वास नहीं था कि ये लोग कुछ सुनने या समझने के लिए तैयार थे। २२ : ६९ में लूका, मरकुस के समान भ. ११० : १ के उद्धरण को सम्मिलित करता है, पर दा. ७ : १३ के उद्धरण को नहीं। यदि मर. १४ : ६२ में दा. ७ : १३ से उद्धृत "आकाश के बादलों के साथ आने" शब्दों का अर्थ यीशु का पुनरागमन है (मर. १४ : ६२ की व्याख्या को देखिए) तो यहां लूका मानो यह शिक्षा देता है कि यीशु अपने पुनरागमन के समय ही नहीं वरन अपने पुनरुत्थान के समय महिमान्वित होगा। २२ : ७० में दूसरा प्रश्न है। पद ६७ में लूका ने मर. १४ : ६१ के प्रश्न का दूसरा भाग सम्मिलित नहीं किया, "उस परम धन्य का पुत्र", अर्थात परमेश्वर का पुत्र। संभाव्यतः यीशु का उत्तर "तुम आप ही कहते हो" उसकी स्वीकृति है। सहदर्शी सुसमाचारों में यीशु स्वयं को परमेश्वर-पुत्र नहीं कहता। लू. ३ : २२; ४ : ३, ४१; ९ : ३५ में उसके परमेश्वर-पुत्र होने का उल्लेख है, और २ : ४९; १० : २२; २० : १३ में उसके कथनों में परमेश्वर-पुत्र होने की ओर संकेत है। लूका के पाठकों के लिए कदाचित "मसीह" की तुलना में "परमेश्वर-पुत्र" अधिक सार्थक पदवी थी। "परमेश्वर-पुत्र" पदवी के संबंध में मर. १ : १ की व्याख्या को पढ़िए। २२ : ७१ से ज्ञात होता है कि महासभा के सदस्यों ने यीशु के उत्तर को उसकी स्वीकृति मान ली

२३ : १ ५—तुलना कीजिए मर. १५ : १-५ और उसकी व्याख्या। लूका के अनुसार "सारी सभा" यीशु को पिलातुस के पास ले गई। २३ : २ केवल लूका में है, परंतु वह मर. १५ : ३ का विस्तृत रूप प्रतीत होता है। लूका तीन विशेष अभियोगों का उल्लेख करता है। सब झूठे हैं। कर देने के संबंध में अभियोग का खंडन २० : २५ में स्पष्ट रूप से किया गया है। अपने को राजा कहने का अभियोग पिलातुस के प्रश्न (पद ३—मर. १५ : २) में निहित है। २३ : ४, ५ केवल लूका में है। लूका के अनुसार पिलातुस ने तीन बार स्पष्ट शब्दों में कहा कि वह यीशु में कोई दोष नहीं पाता था (पद ४, १४, २२)। हमारा विचार है कि इस वर्णन में लूका मरकुस के वर्णन का प्रयोग कर रहा था, परंतु अन्य सामग्री भी उसके पास थी, जिसको उस ने संयोजित किया।

फिर भी यह स्पष्ट है कि उस ने इस तथ्य को प्रदर्शित करने के विशेष अभिप्राय से इस सामग्री का प्रयोग किया है कि मौलिक रूप से रोमी शासन नहीं वरन यहूदी नेता यीशु की मृत्यु के लिए उत्तरदायी थे। इन दो पदों में यह बात स्पष्टतः व्यक्त की गई है। यहूदियों के अधिकारी यीशु को रोमी शासन का विद्रोही प्रदर्शित करके उसके विरूद्ध पिलातुस को उकसाने का प्रयत्न करते हैं। पिलातुस ऐसा बुद्धिमान था कि उस ने उनके छल को पहचाना, परंतु वह ऐसा दृढ़-निश्चयी नहीं था कि उस पहचान के अनुसार व्यवहार कर सके।

(ख) यीशु हेरोदेस के संमुख २३ : ६-१२

यह अंश केवल लूका में है। अनेक विद्वानों की मान्यता के अनुसार यह लूका की कल्पित रचना है जो भ. २ : २ और प्रे. ४ : २७, २८ की परंपरा (जिस में भ. २ : २ का प्रतिपादन है) पर आधारित है। इस मान्यता के समर्थन में एक प्रमुख तर्क यह है कि मरकुस के अनुसार यीशु लगभग नौ बजे क्रूस पर चढ़ाया गया (मर. १५ : २५)। उस समय से पहले महासभा और पिलातुस के सामने विचार, और इस घटना के लिए भी पर्याप्त समय नहीं था। परंतु संभव है कि वास्तव में यीशु कहीं नौ बजे और दो पहर के बीच क्रूसित हुआ (मर. १५ : २५ की व्याख्या को देखिए)। संभाव्यतः लूका हेरोदेस के अनेक कर्मचारियों से परिचित था (लू. ८ : ३ से अनुमान), जिस से उसे अधिक जानकारी प्राप्त हो सकती थी। प्रे. ४ : २६-२८ से प्रकट होता है कि एक परंपरा के अनुसार यीशु की मृत्यु के संबंध में हेरोदेस और पिलातुस के नाम एक साथ जोड़े गए थे। अतः इस वर्णन का मौलिक रूप से ऐतिहासिक होना संभव माना जा सकता है।

हेरोदेस अंतिपास के संबंध में मर. ६ : १४ की व्याख्या को पढ़िए। पर्व के अवसर पर हेरोदेस का यरूशलेम में उपस्थित होना पूर्ण रूप से संभव था। **२३ : ८** की तुलना ९ : ९ से कीजिए। हेरोदेस के कुतूहल का जाग्रत होना स्वाभाविक बात थी। **२२ : ११** के अनुसार हेरोदेस और उसके सैन्य-दल ने यीशु का उपहास किया। मरकुस के अनुसार (१५ : १६-२०) रोमी सिपाहियों ने यह किया। लूका ने इस अंश को सम्मिलित नहीं किया। **२२ : १२**–हमें पिलातुस और हेरोदेस की पारस्परिक शत्रुता के संबंध में और कोई जानकारी नहीं है।

(ग) मृत्युदंड की आज्ञा २३ : १३-२५
(मर. १५ : ७, ११-१५; मत्त. २७ : २०, २६)

इस अंश के संबंध में मर १५ : ६-१५ की व्याख्या को पढ़िए। **२३ : १३-१६** केवल लूका में है। उसका अभिप्राय इस तथ्य पर बल देना है कि पिलातुस यीशु को निरपराध मानता था। **पद १४** में उन अभियोगों का उल्लेख है जो पद २ के अनुसार यीशु पर लगाए गए। २२ : १६ में पिलातुस का प्रस्ताव है कि मृत्युदंड के बदले यीशु को पिटवाया जाए। मर. १५ : १५ के अनुसार मृत्युदंड की आज्ञा के पश्चात इस बात का वर्णन है कि यीशु को कोड़े लगवाए गए।

२३ : १८-२५—पद १७ सर्वश्रेष्ठ हस्तलेखों में नहीं है, अतः वह हमारे अनुवादों में भी सम्मिलित नहीं किया गया। हिं. सं. में वह पाद-टिप्पणी में दिया गया है, "पर्व के समय उसे किसी को मुक्त करना पड़ता था"। किसी लिपिक ने इस पद को जोड़ा होगा क्योंकि लूका ने मर. १५ : ६-१० को, जिस में बरब्बा को मुक्त करने की घटना का वर्णन है, सम्मिलित नहीं किया। २३ : १८-२५ में लूका ने मरकुस के वर्णन को परिवर्तित करके मर. १५ : ६-१० के अनेक ब्यौरों को अपने वर्णन में सम्मिलित किया है, परंतु एक बंदी को मुक्त करने की प्रथा की बात रह गई। २३ : १८ में "उसका काम तमाम कर" के स्थान पर "उसे हटाओ" (हिं. सं.) या "उसे ले जाइए" (बुल्के) सटीक अनुवाद हैं। २३ : १६ में मर. १५ : ६-१० के स्थान पर बरब्बा के संबंध में संक्षिप्त वर्णन है। २३ : २० में लूका फिर पिलातुस के यीशु को छोड़ने की इच्छा का उल्लेख करता है। यह बात मर. १५ : १२ में निहित है। लूका उसे प्रत्यक्ष करता है। २३ : २१ मर. १५ : १३ के समान है। २३ : २२, २३ में लूका मर. १५ : १४ को विस्तृत रूप देकर फिर दोहराता है कि पिलातुस यीशु को निरपराध मानता था। पद २२उ शब्दशः पद १६ के समान है। अंत में स्पष्ट शब्दों में वर्णित है कि पिलातुस पराजित हुआ, "और उनका चिल्लाना प्रबल हुआ"। २३ : २४, २५ में मर. १५ : १५ का परिवर्तित रूप है। लूका दोनों पदों में प्रकट करता है कि पिलातुस की आज्ञा "उनकी बिनती के अनुसार" और "उनकी इच्छा के अनुसार" हुई। २३ : २५ में वह बरब्बा और यीशु में विषमता स्पष्ट प्रकट करता है। अपने बचाव के लिए पिलातुस एक प्रमुख कुकर्मी को मुक्त करने और परमेश्वर-पुत्र को मृत्युदंड के लिए हवाले करने को तैयार था।

(३) क्रूसीकरण, मृत्यु, कबर में रखना २३ : २६-५६

इस खंड में लूका ने कहीं मरकुस के क्रम को परिवर्तित किया है, कहीं कुछ बातें छोड़ी हैं, और कहीं परिवर्धन भी किया है। टीका में इन बातों की ओर ध्यान आकर्षित किया जाएगा।

(क) क्रूसीकरण २३ : २६-४३

(मर. १५ : २१-३२, ३६; मत्त. २७ : ३२-४४, ४८)

२३ : २६-३१—पद २६ के संबंध में मर. १५ : २१ की व्याख्या को पढ़िए। लूका ने "सिकंदर और रूफुस का पिता" शब्दों को सम्मिलित नहीं किया, और "कि उसे यीशु के पीछे पीछे ले चले" शब्दों को जोड़ा है। तुलना कीजिए ९ : २३; १४ : २७।

२३ : २७-३१ केवल लूका में है। यहूदी स्त्री के लिए निःसंतान रहना बड़ी लज्जा और शोक की बात थी, परंतु यहां यह भविष्यवाणी है कि यरूशलेम पर ऐसी विपत्ति आएगी कि निःसंतान स्त्रियां अपने आपको धन्य समझेंगी। अनेक टीकाकारों का विचार है कि इस स्थल की रचना पर ज. १२ : १०, ११ का प्रभाव हुआ है—उस से तुलना कीजिए। २३ : ३० हो. १० : ८ से उद्धृत है। "गिरो" और "ढांप लो" का अर्थ

"मार डालो" है। ऐसा कष्ट होगा कि लोग मरना चाहेंगे। २३ : ३१ संभाव्यतः कहावत है। जब निर्दोष यीशु के साथ ऐसा दुर्व्यहार किया जाता है तो दोषी यरूशलेम (कदाचित राजद्रोही यहूदी अतिवादियों) का क्या ठिकाना ?

२३ : ३२-४३ मर. १५ : २२-३२ पर आधारित है, परंतु लूका ने क्रम-परिवर्तन और अपने स्रोत से परिवर्धन भी किए हैं। मरकुस की टीका को पढ़िए—उस में लूका के कुछ परिवर्तनों का उल्लेख है। सब परिवर्तनों का ब्यौरेवार वर्णन करना असंभव है। लूका के विवरण में यीशु और कुकर्मियों के क्रूसीकरण के वर्णन एक साथ हैं। इसके पश्चात ही वस्त्र के विभाजन और उपहास के बयान हैं। अंत में कुकर्मियों का वार्तालाप और यीशु का कथन है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस विवरण में प्रमुख विचार यीशु की मृत्यु के संबंध में क्षमा है। लूका के दो मुख्य परिवर्धन, पद ३४ पू और ३९-४३ इस तथ्य को प्रकट करते हैं।

यह भी द्रष्टव्य है कि इस अंश में पुराना नियम के अनेक स्थलों के संकेत पाए जाते हैं। निम्नांकित पदों की तुलना कीजिए : २३ : ३३ से यश. ५३ : १२; २३ : ३४ से भ. २२ : १८; २३ : ३५, ३६ से भ. २२ : ७, ८; २३ : २६ से भ. ६९ : २१।

२३ : ३३ में लूका ने "गुलगुता" नाम सम्मिलित नहीं किया, केवल इसका अनुवाद, "खोपड़ी", किया। २३ : ३४ पू अनेक श्रेष्ठ हस्तलेखों में नहीं है। जहां तक हस्तलेखों का प्रश्न है यह नितांत अनिश्चित है कि इस प्रार्थना को मूल पाठ में सम्मिलित मानना चाहिए या नहीं। फिर भी प्रे. ७ : ६० में स्तिफनुस की एक ऐसी प्रार्थना है जो इस प्रार्थना पर आधारित प्रतीत होती है। यह इस प्रार्थना की प्रामाणिकता की ओर संकेत करता है। यह संभव है कि किसी लिपिक ने इस विचार से कि यीशु की हत्या करनेवालों की क्षमा नहीं होनी चाहिए इस कथन को सम्मिलित नहीं किया। अतः अधिकांश विद्वान इसे प्रामाणिक पाठ में सम्मिलित मानते हैं। यह यीशु के उदात्त कथनों में से एक है। वह परमेश्वर के क्षमाशील हृदय को प्रकट करता है। वह प्रत्येक ख्रिस्ती के लिए आदर्श भी है। लूका ने मर. १५ : २५ को, जिस में क्रूसीकरण का समय बताया गया है, सम्मिलित नहीं किया। मर. १५ : २९ भी लूका में नहीं है। २३ : ३६ में सिरका देने का उल्लेख है। मर. १५ : २३ और ३६ में यीशु को कुछ पिलाने के संबंध में दो पृथक घटनाओं का वर्णन है। ऐसा प्रतीत होता है कि लूका ने इनका संयोजन किया है। वह भी जान पड़ता है कि लूका के अनुसार सिरका देना उपहास का एक अंग था। २३ : ३८ में (तुलना मर १५ : २६) "यह" शब्द जोड़ा गया है, जिस से तिरस्कार व्यक्त किया गया है।

२३ : ३९-४३ केवल लूका में है। मरकुस के अनुसार (पद ३२) दोनों कुकर्मियों ने यीशु को बुरा भला कहा। लूका के पास एक अन्य परंपरा थी। स्पष्ट है कि ये दो परंपराएं असंगत हैं, और कि लूका ने अपनी परंपरा को पसंद किया। पहले कुकर्मी ने ताने से बात की (पद ३९)। दूसरा कुकर्मी मानता था कि वह दंडनीय था। उस ने पहचाना कि यीशु निर्दोष था, और कुछ अंशों में यह भी पहचाना कि यीशु अद्वि-

तीय व्यक्ति है। उस ने यीशु के राजा होने की चर्चा सुनी थी। कदाचित इसके संबंध में उसका विचार बहुत अस्पष्ट और अपर्याप्त था, परंतु उस ने पूर्ण विश्वास से विनती की। यीशु का उत्तर उसकी आशा से बहुत अधिक था। यीशु के काल में मृत्यु के पश्चात की परिस्थिति के विषय में यहूदी लोगों के विविध विचार थे, जिन में से एक यह था कि धार्मिक मृतकों की आत्माएं सीधे स्वर्गलोक में पहुंच जाती हैं। यही विचार यहां पाया जाता है। १६ : २२ और फिलि. १ : २३ से तुलना करके उनकी व्याख्याओं को भी पढ़िए।

(ख) मृत्यु और कबर में रखा जाना २३ : ४४-५६
(मर. १५ : ३३, ३७-४०, ४२, ४३, ४६, ४७; मत्त. २७ : ४५, ५०, ५१पू, ५४, ५५, ५७-६१)

२३ : ४४-४९ के संबंध में मर. १५ : ३३-४१ की व्याख्या को पढ़िए। लूका ने मंदिर के परदे के फट जाने का उल्लेख यीशु की मृत्यु के वर्णन से पहले किया है। उस ने मर. १५ : ३४, ३५, ३६उ को, जिस में यीशु के शब्द "हे मेरे परमेश्वर. ." आदि, और एलिय्याह को बुलाने का वर्णन है, सम्मिलित नहीं किया। **२३ : ४५** में "सूर्य का उजियाला जाता रहा" का अर्थ यह है कि सूर्य-ग्रहण हुआ, अतः इस बात को एक लाक्षणिक परिवर्धन मानना पड़ता है, क्योंकि पूर्णिमा के समय सूर्य-ग्रहण होना असंभव है। यह इस बात का प्रतीक है कि जो कुछ हो रहा था उसका महत्व विश्वीय था। यहां पाठांतर भी है, जिसका अर्थ सूर्य-ग्रहण नहीं है, परंतु यह प्रामाणिक नहीं माना जाता। यह संभाव्यतः ऐसा परिवर्तन है जो उपरोक्त कठिनाई के कारण किया गया। **२३ : ४६** में यीशु की पुकार भ. ३१ : ५ से उद्धृत है। वह लगभग सेप. के अनुवाद के अनुकूल है। लूका ने जान बूझकर मर. १५ : ३४ के यीशु के कथन को सम्मिलित नहीं किया, यद्यपि वह उसके सामने ही था। कदाचित उस ने सोचा कि इस कथन में पराजित होने का भाव है। लूका में वर्णित कथन से विश्वास और आश्वासन व्यक्त है। संभव है कि यह लूका की रचना है, परंतु हम जानते हैं कि यीशु भजनों से भली भांति परिचित था, अतः यद्यपि यह कथन अन्य सुसमाचारों में नहीं है तथापि इस कथन का यीशु का वास्तविक कथन और उसके भाव की अभिव्यक्ति होना असंभव नहीं कहा जा सकता। **२३ : ४७** में "परमेश्वर का पुत्र" के स्थान पर लूका ने "धर्मी" (हिं. सं., "धर्मात्मा") लिखा। संभाव्यतः लूका का विचार था कि वह पाठकों या सूबेदार की स्थिति के अधिक अनुकूल था। **२३ : ४८** केवल लूका में है। यह पद २७, ३५ से संबंधित संपादकीय टिप्पणी है। **२३ : ४९** में मर. १५ : ४०, ४१ का संक्षेप है। वास्तव में लूका ने वर्णन का अनुकूलन भ. ३८ : ११; ८८ : ८ के शब्दों से किया है। वह स्त्रियों के नाम नहीं बताता। तुलना कीजिए ८ : २, ३, जहां अनेक स्त्रियों के नाम हैं।

२३ : ५०-५६ के संबंध में मर. १५ : ४२-४७ की व्याख्या को पढ़िए। मरकुस ने पद ४२ में, अर्थात इस अंश के आरंभ में, समय का उल्लेख किया, परंतु लूका उनका

वर्णन पद ५४ में करता है। २३ : ५० में लूका का परिवर्धन है, कि यूसुफ "सज्जन और धर्मी पुरुष" था, और २३ : ५१ में कि वह "उनके विचार और उनके इस काम से प्रसन्न न था"। इस प्रकार लूका पाठकों के लिए स्पष्ट करता है कि यह कैसे हुआ कि महा-सभा का एक सदस्य (हिं. सं.) यीशु के पक्ष में था। लूका ने सूबेदार के प्रश्न को, कि क्या यीशु मर चुका था, सम्मिलित नहीं किया (मर. १५ : ४४, ४५)। २३ : ५३ में, कबर के संबंध में उस ने "जिस में कोई कभी न रखा गया था" शब्दों को जोड़ा है। २३ : ५५ में भी स्त्रियों के नाम नहीं बताए गए हैं—पद ४९ की व्याख्या को देखिए। २३ : ५५ उ, ५६ अन्य सुसमाचारों में नहीं है। केवल लूका के अनुसार स्त्रियों ने उसी दिन कबर से लौटकर सुगंधित वस्तुओं और इत्र को तैयार किया। मरकुस और लूका दोनों में वर्णित है कि सप्ताह के पहले दिन, प्रातःकाल, वे उन वस्तुओं को कबर पर लाईं (मर. १६ : १; लू. २४ : १)।

७ यीशु का पुनरुत्थान और दर्शन २४ : १-५३

(१) रिक्त कबर २४ : १-१२।

(मर. १६ : १-८; मत्त. २८ : १-८)

२४ : १-१२—मर. १६ : १-८ की व्याख्या को पढ़िए। उस व्याख्या के दूसरे पैरा में लूका के परिवर्तनों का वर्णन है। व्याख्या उसकी ध्यानपूर्वक पढ़िए। इस अंश में अनेक ऐसे स्थल हैं जिनके कुछ शब्द या वाक्य एक महत्वपूर्ण हस्तलेख (D), प्राचीन लातीनी अनुवाद, और अनेक गौण हस्तलेखों में नहीं पाए जाते। मुख्यतः, पद ३ में "प्रभु" शब्द, पद ६ में "वह यहां नहीं, परंतु जी उठा है", और पूरा पद १२ उपरोक्त हस्तलेखों और अनुवाद में नहीं हैं। अतः विद्वानों को पूर्ण निश्चय नहीं है कि ये शब्द या वाक्य प्रामाणिक मूल पाठ में थे। तो भी हम इस टीका में इनको प्रामाणिक मानने में कदाचित अधिकांश विद्वानों का अनुसरण करते हैं।

२४ : १, २, में मर. १६ : १-३ का सारांश है। लूका यहां भी स्त्रियों के नामों का उल्लेख नहीं करता। २४ : ३ में लूका ही कहता है कि यीशु की लोथ नहीं मिली, जिस से वह इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि कबर रिक्त था। २४ : ४ में "दो पुरुष" मर. १६ : ५ के "एक जवान" के स्थान पर है। इस परिवर्तन में लूका इस वर्णन को यीशु के दिव्य रूपांतर (९ : ३०) और स्वर्गारोहण (प्रे. १ : १०) के वर्णनों के सदृश बनाता है। "झलकते वस्त्र" की तुलना भी ९ : २९ से कीजिए। २४ : ५ भी परिवर्तित है (मर. १५ : ६)। लूका ही स्पष्ट शब्दों में कहता है कि स्त्रियां डर गईं (मरकुस और मत्ती में वह निहित है), और कि वे "मुंह झुकाए रहीं"। "पुरुषों" के शब्द कदाचित जवान के उस कथन का संक्षेप हैं जो मरकुस में है। २४ : ६-८ मर. १६ : ७ से बहुत भिन्न है। मरकुस के अनुसार स्त्रियों को यह आदेश दिया गया कि वे शिष्यों को कहें कि यीशु उन से पहले गलील को जाएगा। लूका के अनुसार पुनरुत्थित यीशु के सब दर्शन यरूशलेम में या उसके निकट हुए। अतः उस ने इस कथन को सम्मिलित न करके वर्णन को पूर्ण रूप से बदल दिया है। "पुरुष" स्त्रियों को स्मरण दिलाते हैं कि यीशु ने अपनी मृत्यु और

पुनरुत्थान के संबंध में भविष्यवाणी की थी (९ : २२, ४४)। इस युक्ति से लूका उन भविष्यवाणियों के संबंध में पाठकों को स्मरण दिलाता है। इन पदों में यह विचार निहित है कि उन भविष्यवाणियों के समय स्त्रियां उपस्थित थीं। **२४ : ९** भी मर. १६ : ८ से भिन्न है, बल्कि यह उसके विपरीत भी जान पड़ता है। तुलना मत्त. २८ : ८ से कीजिए, और इसके संबंध में मत्त. २८ : ८ और मर. १६ : ८ की व्याख्या को पढ़िए।

२४ : १०, ११ केवल लूका में है। अंत में लूका ने स्त्रियों के नाम बताए हैं। ये नाम मर. १६ : १ के नामों के समान हैं, परंतु शलोमी के स्थान पर योअन्ना है। लूका के अनुसार अन्य स्त्रियां भी उपस्थित थीं। २४ : १२ की तुलना यू. २० : ३-१० से कीजिए (लू. २४ : १-१२ की व्याख्या का पहला पैरा देखिए)। अनेक विद्वानों की मान्यता के अनुसार यह पद यूहन्ना २० : ३-१० के विवरण पर आधारित था, या लूका के पास वह स्रोत था जो यूहन्ना के पास भी था।

(२) **इम्माऊस के मार्ग में शिष्यों को दर्शन २४ : १३-३५**

यह वर्णन केवल लूका में है। वह लूका की साहित्यिक शैली की विशेषताओं से परिपूर्ण है। अनेक टीकाकार इसे पूर्ण रूप से ऐतिहासिक मानते हैं। अन्य व्याख्याकार इसे पूर्ण रूप से लूका की साहित्यिक रचना कहते हैं, जिसकी कुछ "ऐतिहासिकता" नहीं है। ऐसे विद्वान मानते हैं कि इस में गहरी ख्रिस्तीय शिक्षा है। हमें उन टीकाकारों से सहमति है जो मानते हैं कि यह वर्णन एक ऐतिहासिक घटना पर आधारित है, और लूका को किसी परंपरागत रूप में मिला। लूका ने इसे अन्य सामग्री के साथ संगत करके, और श्रेष्ठ साहित्यिक रूप देकर, एक अत्यंत प्रभावशाली विवरण तैयार किया।

२४ : १३, १४—"उन में से दो" का अर्थ उन "सब" में से दो है जिनका उल्लेख पद ९ में है। **इम्माऊस** यरूशलेम के पश्चिम की ओर स्थित एक ग्राम था (मानचित्र को देखिए)। **२४ : १५, १६**—"पूछताछ" के बदले "विचार-विमर्श" (हिं. सं.) ठीक है। इन पदों में यह बात निहित है कि वे लोग यीशु को पहचानने से अलौकिक रूप से रोके गए। यह भी उल्लेखनीय है कि वे यीशु को एक साधारण मनुष्य समझते थे। **२४ : १७-२१**—उनकी उदासी से पता चलता है कि वे नहीं मानते थे कि यीशु जीवित है। क्लियोपास संभवतः वह क्लोपास है जिसकी पत्नी यू. १९ : २५ के अनुसार क्रूस के पास खड़ी थी। यह अनुमान ही है। दूसरे व्यक्ति का नाम अज्ञात है। यह असंभव नहीं है कि वह क्लियोपास की पत्नी थी। **२४ : १९** की शब्दावली प्रे. ७ : २२ ("काम और वचन में सामर्थी") के अनुकूल है, जहां मूसा का वर्णन है। यीशु वह मूसा के समान आनेवाला नबी था जिसकी भविष्यवाणी व्य. १८ : १५ क्र. में है। **२४ : २१** में भी इसी प्रकार का संकेत है—"छुटकारा देकर" की तुलना प्रे. ७ : ३५ से कीजिए। लोग यीशु को महान नबी मानते थे, परंतु इन दो व्यक्तियों ने आशा की थी कि वह नबी से भी महान, अर्थात् ख्रिस्त प्रमाणित होगा। अब उन्हों ने सोचा कि

इस आशा पर पानी फिर गया। "तीसरा दिन" शब्दों में यह विचार निहित है कि वे यीशु की मृत्यु के संबंध में उसकी भविष्यवाणियों को जानते और स्मरण करते थे।

२४ : २२-२४ पद १-१२ की ओर संकेत करते हैं। विशेष रूप से पद २४ का संकेत पद १२ की ओर है, और वह पद १२ के प्रामाणिक होने का समर्थन करता है। २४ : २३ में वे "दो पुरुष" जिनका उल्लेख पद ४ में है "स्वर्गदूत" कहे गए हैं। २४ : २५-२७—यीशु कहता है कि यह अवश्य है कि मसीह, अर्थात शास्त्रों द्वारा प्रतिज्ञात ख्रिस्त, "ये दुख उठाकर अपनी महिमा में प्रवेश करे"। दुख वे हैं जिनका उल्लेख पद २० में है। महिमा में प्रवेश करने का अर्थ पुनरुत्थान और स्वर्गारोहण है। दुख इस लिए आवश्यक है कि यह परमेश्वर का सनातन प्रबंध है, जो यहूदियों के शास्त्रों में प्रकट किया गया। यीशु ने "मूसा और सब भविष्यवक्ताओं से आरंभ करके" इस तथ्य का स्पष्टीकरण किया। लूका के लेखों में पुराना नियम के अनेक पद इस बात के प्रमाण में प्रस्तुत किए गए हैं, जैसे २३ : ३४ क. (भ. २२, भ. ६९), २० : १७ (भ. ११८); २२ : ३७ (यश. ५३); प्रे. २ : २७ (भ. १६)। परंतु वास्तव में इस कथन का संकेत मुख्यतः ऐसे प्रमाण-उद्धरणों की ओर नहीं वरन संपूर्ण पुराना नियम की ओर है, अर्थात आरंभ से लेकर अंत तक इस्राएल के साथ परमेश्वर के संबंध की ओर है। परमेश्वर एक पवित्र, समर्पित राष्ट्र चाहता था जो उसके, और संसार के लिए उसके अभिप्राय के निमित्त दुख सहने के लिए तैयार हो। बहुधा इस्राएल का दुख उसके अपने पापों के कारण था, परंतु इस्राएल के सामने, विशेष रूप से यश. ४०-५५ अध्यायों में, दुखी दास का आदर्श रखा गया, वह दास जो प्रतिनिधिक रूप से परमेश्वर तथा जनता के निमित्त दुख भोगता है। इस संबंध में 'मिस्र से निर्गमन' सब से महत्वपूण घटना है। इस्राएली लोगों ने दासत्व के अपमान से मुक्ति पाकर एक नए जीवन में प्रवेश किया। प्रति वर्ष फसह के पर्व में यह घटना स्मरण की जाती थी। अतः मूसा से लेकर सब भविष्यवक्ता साक्षी देते थे कि दुखभोग के द्वारा परमेश्वर का दास परमेश्वर के उद्देश्य को पूर्ण करता है। यह बात यीशु में ही पूरी हो गई, अतः यीशु स्वयं ख्रिस्त प्रमाणित हुआ।

२४ : २८-३१—उन दो व्यक्तियों ने तब ही यीशु को पहचाना जब उस ने रोटी तोड़ी। वे बारह शिष्यों में से नहीं थे, अतः अंतिम भोज के समय वे उपस्थित नहीं थे। कदाचित उन्हों ने यीशु के साथ अन्य समयों पर खाना खाया हो। अवश्य इस स्थल में प्रभु भोज की ओर संकेत है। शब्दावली ९ : १६ की शब्दावली के समान है; तुलना २२ : १९ से भी कीजिए। ज्यों ही उन्हों ने यीशु को पहचाना त्यों ही वह अदृश्य हो गया, परंतु अब उनके लिए सब कुछ नया हो गया था।

२४ : ३२ ३५—कितनी गहरी आत्मिक अनुभूति हुई उनको! यीशु ने उनके लिए शास्त्रों का प्रतिपादन किया था। कोई आश्चर्य नहीं कि उनके मन उत्तेजित हुए। इस शब्द (मूल यूनानी "कैयो") का मौलिक अर्थ "जलना" है, अतः इस में "उत्तेजित होना", "उल्लसित होना" (हिं. सं.), और "उद्दीप्त होना" (बुल्के) सब अर्थ विद्य-

मान हैं। "शमौन" का अर्थ शमौन पतरस है। १ कुर. १५ : ५ से तुलना कीजिए, और उसकी व्याख्या को देखिए (सामान्य टीका, ग्रंथ ८)।

(३) यरूशलेम में शिष्यों को दर्शन, स्वर्गारोहण २४ : ३६-५३

यह संपूर्ण अंश भी केवल लूका में है।

२४ : ३६-४३—अनेक ब्यौरे यू. २० : १९-२९ के समान हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इन बातों के लिए लूका और यूहन्ना दोनों एक ही परंपरा पर निर्भर थे। संभाव्यत: लूका ने इस अंश को इम्माऊस के मार्ग की घटना से भिन्न स्रोत से लिया, और पद ३६ के पहले शब्द इन दो अंशों की कड़ी हैं। अनेक टीकाकार मानते हैं कि इन दो अंशों में वर्णित बातों के बीच में कुछ समय व्यतीत हुआ। पद १२ के समान (२४ : १-१२ की व्याख्या के आरंभ में देखिए) "और उस ने उन से कहा" (३६), और पद ४०, "D" आदि प्रतियों में नहीं हैं। **२४ : ३६उ** के शब्द यू. २० : १९ में और **२४ : ४०** के शब्द यू. २० : २० में भी हैं। अनेक विद्वानों की मान्यता के अनुसार ये शब्द कालांतर में लूका में सन्निविष्ट किए गए, परंतु यदि लूका और यूहन्ना ने एक ही स्रोत का प्रयोग किया तो ऐसा अनुमान लगाना अनावश्यक है। **२४ : ३७**—यद्यपि शिष्य यीशु के जी उठने के विषय में जानते थे तथापि वे डर गए। संभाव्यत: इस अंश का एक अभिप्राय इस विचार का खंडन करना था कि पुनरुत्थित यीशु देहमुक्त आत्मा मात्र था। इस कारण लूका इस तथ्य का महत्व प्रकट करता है कि यीशु का शरीर आभास ही नहीं था। १ कुर. १५ : ३५ क्र. में पौलुस ने अनेक सदृश उदाहरणों के द्वारा पुनरुत्थित देह का प्रतिपादन करने का प्रयत्न किया है। लू. २४ : ३६-४३ को समझने में वह स्थल अत्यंत सहायक है। ग्रंथ ८ में उसकी व्याख्या को पढ़िए। **२४ : ३९** की तुलना यू. २० : २७ से कीजिए। "हड्डी मांस" शब्द संकेत करते हैं कि यीशु का शरीर भौतिक था। यदि हम ऐसे वर्णन को ऐतिहासिक मानते हैं तो यह मानना पड़ता है कि यह शरीर पूर्ण रूप से परिवर्तित नहीं हुआ था। **२४ : ४१** में, यू. २० : २० के समान, शिष्यों के आनंद का उल्लेख है। **२४ : ४१-४३** भी यीशु की वास्तविक देह का महत्व प्रकट करता है। इसकी तुलना यू. २१ : ५ से कीजिए। इन बातों से इस तथ्य का महत्व प्रकट किया गया है कि पुनरुत्थान के पश्चात भी यीशु का यथार्थ मानवत्व उसके व्यक्तित्व का अनिवार्य तत्व रहा।

२४ : ४४-४९—पद ४४ की तुलना पद २७ से कीजिए। समस्त नया नियम में केवल इस स्थल में ही मूसा की व्यवस्था और भविष्यवक्ताओं की पुस्तकों के साथ साथ भजन-संहिता का उल्लेख है। लूका में पुराना नियम के अधिकांश ख्रिस्त-संबंधी उद्धरण भजनों में से हैं। २४ : ४७-४९ में "प्रेरितों के काम" का संक्षेप है। यही सुसमाचार है जिसका प्रचार करने के लिए प्रेरित भेजे गए। **२४ : ४९**—प्रतिज्ञा योए. २ : २८-३२ में है, जो प्रे. २ : १७-२१ में उद्धृत है। इसका उल्लेख प्रे. १ : ४ में भी है। प्रतिज्ञा पिंतेकुस्त के दिन पूरी हो गई (प्रे. २ : १ क्र.)। प्रे. १ : ४ के अनुसार यह कथन पिंते-कुस्त से पहले ही का है।

२४ : ५०-५३—इस अंश में "और स्वर्ग पर उठा लिया गया" (पद ५१) और "उसको दंडवत करके" (पद ५२) शब्द उन प्रतियों में नहीं पाए जाते जिनका उल्लेख २१ : १२ की व्याख्या के पहले पैरा में है। अतः अनेक विद्वान इन शब्दों को प्रामाणिक न मानकर विचार करते हैं कि इस अंश में स्वर्गारोहण का वर्णन नहीं है। हमारा विचार है कि ये शब्द प्रामाणिक हों या न हों, पर संभाव्यतः इनमें स्वर्गारोहण अभिप्रेत है। स्वर्गारोहण का अधिक विस्तृत वर्णन प्रे. १ : ९-११ में है। हम अनुमान लगा सकते हैं कि लूका अपने सुसमाचार के अंत में पाठकों के लिए उन बातों का संक्षेप लिखना चाहता था जिन से वह अपने दूसरे ग्रंथ को आरंभ करनेवाला था। अतः यह पूर्णतः संभव है कि उपरोक्त शब्द जो कतिपय प्रतियों में नहीं हैं आरंभ से ही मूल पाठ में सम्मिलित थे। फिर भी हम इसके संबंध में मताग्रही नहीं हो सकते। इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि यीशु के पुनरुत्थान और जीवित यीशु के दर्शन से शिष्य आश्वस्त और उल्लसित हुए, भले ही यीशु उन से अलग हो गया था। यह भी उल्लेखनीय है कि वे मंदिर में परमेश्वर की स्तुति करते थे। वे सब यहूदी थे, अतः उनका मंदिर में, अपने प्रभु के समान, आराधना करना स्वाभाविक बात थी।

अध्याय ४

यूहन्ना रचित सुसमाचार

निर्देश : पाठकों को "नया नियम की भूमिका" अध्याय तेरह (पृष्ठ ११५-१३१) का अध्ययन करना चाहिए, जहां यूहन्ना रचित सुसमाचार की भूमिका, जिस में उसकी रूपरेखा भी सम्मिलित है, पाई जाती है।

१ प्रस्तावना—"शब्द" १ : १-१८

इस सुसमाचार के पहले अठारह पद सुसमाचार की प्रस्तावना हैं। इस प्रस्तावना में यूनानी शब्द "लॉगस" (हि. प्र. "वचन", हिं. सं., ध. ग्र. और बुल्के "शब्द") का प्रयोग विशेष अर्थों में किया गया है। इस शब्द के विभिन्न अर्थ हैं, जैसे बोलना, कथन, आज्ञा, बात, संदेश, वार्तालाप, लेखा, कारण। इस सुसमाचार के शेष भाग में "लॉगस" अधिकतर यीशु के कथनों के लिए प्रयुक्त हुआ है। परंतु प्रस्तावना में "लॉगस" शब्द का बहुत विशिष्ट अर्थ है।

इस शब्द की पृष्ठभूमि में इब्रानी और यूनानी तत्व विद्यमान हैं। उत्पत्ति १ : ३ में लिखा है कि "...तब परमेश्वर ने कहा"। इस में परमेश्वर के सर्जनात्मक शब्द का विचार निहित है। पुराना नियम के नबियों के लेखों में भी "वचन" या "शब्द" का बहुत उल्लेख है, उदाहरणार्थ यश. १ : १०, जहां सेप. में "लॉगस" शब्द है, यश. ५५ : ११; यि. १ : ६, आदि। भ. ३३ : ६ से भी तुलना कीजिए। ऐसे स्थलों में भी परमेश्वर का सृजक कार्य अभिप्रेत है।

नबियों के लेखों में "लॉगस" शब्द के समान पुराना नियम की और ज्ञानवर्धक धर्मग्रंथ (अपक्रिफा) की काव्यात्मक पुस्तकों में "बुद्धि" शब्द का प्रयोग किया गया है, जैसे अय. २८ : १२ क्र.; नी. ८ : २२ क्र.; सी. २४ : ३३। ऐसे लेखों में "बुद्धि" लगभग व्यक्तिगत है, परंतु उसे व्यक्तित्व से संपन्न नहीं माना गया है।

इब्रानी पृष्ठभूमि और यूनानी पृष्ठभूमि की कड़ी फिलो (ई. पू. २०—ई. स. ५०) है। यह सिकंदरिया नगर का एक यहूदी दार्शनिक था जिस ने यहूदियों के धर्मशास्त्र और यूनानी दर्शनशास्त्र की विचार धाराओं का समन्वय करने का प्रयत्न किया। फिलो ने "लॉगस" शब्द का विशेष अर्थों में बहुत प्रयोग किया। यूनानी दर्शन में बहुधा "लॉगस" शब्द का अर्थ वह बुद्धि है जो समस्त विश्व में, मानव और ब्रह्म में, व्याप्त है। पुराना नियम के सप्तति अनुवाद में "लॉगस" "वचन" का अनुवाद है, अतः प्रवासी यहूदी और कुछ अंशों में पलिश्तीन के यहूदी भी इस शब्द से भली भांति परिचित थे। फिलो ने इस शब्द के उपरोक्त प्रयोगों और अर्थों का समन्वय करने का प्रयत्न किया, परंतु माना

जाता है कि वह इस प्रयत्न में सफल नहीं हुआ, क्योंकि ऐसा समन्वय असंभव प्रतीत होता है। फिलो पुराना नियम को अधिक महत्व देते हुए "लॉगस" का बौद्धिक पक्ष भी प्रकट करना चाहता था। फिलो का यह सिद्धांत था कि परमेश्वर ने "लॉगस" की सृष्टि की, और लॉगस परमेश्वर तथा सृष्टि के बीच में मध्यस्थ था। सृष्टि के कार्य में वह परमेश्वर का सहायक रहा। परंतु उसका पूर्व अस्तित्व नहीं था न ही वह व्यक्तित्व संपन्न था।

उपरोक्त बातों से विदित होता है कि "लॉगस" शब्द की पृष्ठभूमि बहुत विस्तृत है। इस सुसमाचार के लेखक ने इस सार्थक प्रचलित शब्द को लेकर उस में अधिक गंभीर अर्थ भरकर उसे पाठकों के लिए यीशु ख्रिस्त के व्यक्तित्व का स्पष्टीकरण करने के लिए प्रयुक्त किया। इस सुसमाचार में "लॉगस" शाश्वत है, वह आरंभ से ही परमेश्वर के साथ निहित था। वह व्यक्तित्व-संपन्न भी है—"शब्द परमेश्वर था (१ : १)।

१ : १-५ : यहां "वचन" ("शब्द") को उपरोक्त स्पष्टीकरण की दृष्टि से समझना चाहिए। वचन अनादि है। यद्यपि वचन परमेश्वर था तथापि यह भी कहा गया है कि वह परमेश्वर के साथ था, जिस से विदित होता है कि पूर्ण अभिन्नता अभिप्रेत नहीं है। यहां त्रिएकत्व का सिद्धांत व्यक्त नहीं है, परंतु वह निहित है। यह सिद्धांत ख्रिस्तीय अनुभव और इस जैसे पदों पर आधारित है। पद ३ की तुलना इब्र. १ : २; कुल. १:१६ और १ कुर. ८ : ६ से कीजिए। सब वस्तुओं की उत्पत्ति परमेश्वर **से**, परंतु वचन **के द्वारा** हुई। वचन सृष्टि के कार्य में कर्त्ता नहीं वरन साधन था। **पद ४ :** "जीवन" और "ज्योति" इस सुसमाचार के दो विशेष शब्द हैं। इस सुसमाचार में इनका अध्ययन बाइबल शब्दानुक्रमणिका की सहायता से कीजिए। दोनों शब्दों का प्रयोग व्यावहारिक, नैतिक और आत्मिक है। जीवन का मूल तत्त्व अनादि और अनंत वचन ("लॉगस") **में पाया** जाता है। भ. ३६:९ से तुलना कीजिए। हिं. सं. की पाद-टिप्पणी में पद ३उ-४ पू का वैकल्पिक अनुवाद प्रस्तुत किया गया है, "उसके बिना एक भी वस्तु उत्पन्न नहीं हुई। (४) जो कुछ भी उत्पन्न हुआ है उस में वह जीवन था।" अनेक आधुनिक अनुवाद इस प्रकार हैं। हमें यह अनुवाद सार्थक प्रतीत होता है। उसका अर्थ यह है कि समष्टि में जो जीवन था वह वचन (लॉगस) के द्वारा ही था। **पद ५** के उत्तरार्द्ध का अनुवाद इस प्रकार होना चाहिए, "परंतु अंधकार उस पर विजयी नहीं हुआ" (हिं. सं.—तुलना कीजिए हि. प्र. की पाद टिप्पणी)। स्पष्ट है कि यहां "ज्योति" और "अंधकार" का प्रयोग नैतिक और अध्यात्मिक अर्थों में है। यह साधारण विचार था कि अच्छाई और बुराई (ज्योति और अंधकार) में निरंतर संघर्ष होता रहता है। कुमरान (मृतक सागर के निकट निवासी) संप्रदाय के एक लेख का नाम था, "प्रकाश की संतानों और अंधकार की संतानों में युद्ध"। संभव है कि लेखक चाहता था कि हि. प्र. और हिं. सं. दोनों के अर्थ लिए जाएं। यह भी सच है कि अंधकार ने ज्योति को ग्रहण नहीं किया। यूनानी शब्द (कतलंबानो) के दोनों अर्थ संभव हैं। यद्यपि अंधकार "लॉगस" की

ज्योति ग्रहण नहीं करता तो भी वह उस ज्योति को पराजित भी नहीं कर सकता बुल्के के अनुवाद के अनुसार, "अंधकार ने उसे नहीं बुझाया"। हमारे जीवनों में भी यह ज्योति विजयी हो सकती है।

१ : ६-८—इस सुसमाचार में यूहन्ना कहीं "बपतिस्मादाता" नहीं कहा गया है। इन पदों का अभिप्राय इस तथ्य को स्पष्ट करना है कि यूहन्ना स्वयं ज्योति नहीं था, केवल ज्योति की साक्षी देनेवाला था। कुछ संकेत विद्यमान हैं कि यूहन्ना के अनुयायियों का एक पंथ सा था। कदाचित लेखक उनके दावों का खंडन कर रहा था। इस संबंध में "भूमिका" पृष्ठ १२३ पर २(२) (ख) (ii) को पढ़िए।

१ : ९, १०—यूहन्ना नहीं, वरन यीशु सच्ची ज्योति था। वही है जिस में शब्द (लॉगस) देहधारी हुआ(पद १४)। ज्योति पहले भी संसार को प्रकाशित करती रही, यद्यपि पूर्ण प्रकाश उदय नहीं हुआ था। मनुष्य प्रकाश को ग्रहण न करने के उत्तरदायी थे (रो. १ : १८-२१; यू. ३ : १९) पद ९ का अनुवाद ध. ग्र. में ठीक है, "वह यथार्थ ज्योति.....संसार में आ रही थी"। यह देहधारण की ओर संकेत है। प्रस्तावना में इस स्थल पर देहधारण का वर्णन शुरू होता है। संभाव्यत: पद १० में देहधारण के पश्चात का वर्णन है। जब शब्द संसार में प्रकट रूप में आया तब भी संसार ने उसे नहीं पहचाना।

१: ११-१३ पद ११ में "घर" का अर्थ पलिश्तीन देश और यहूदी जाति है, जो सांसारिक रूप से यीशु के "अपने" थे। ७ : ७; १५ : १८; १६ : २०; १७ : १४ में उल्लेख है कि संसार यीशु से बैर रखता था। इसकी विषमता में वे लोग हैं जो "शब्द" को ग्रहण करते हैं, अर्थात ख्रिस्ती लोग। "परमेश्वर की संतान बनने का अधिकार" शब्दों में यह निहित है कि वे पहले संतान नहीं थे। यूहन्ना में मनुष्य परमेश्वर के "पुत्र" (यूनानी "हियै") नहीं वरन "संतान" (यूनानी "तेकना") कहे गए हैं (तुलना १ यू. ३ : २)। केवल यीशु परमेश्वर-पुत्र कहलाता है। नया नियम के अन्य लेखों में इन शब्दों में यह भेद नहीं किया गया है, उदाहरणार्थ मत्त. ५ : ९ (पुत्र—"हियै")। परमेश्वर की संतानों का विशेष लक्षण यह है कि वे "शब्द" के नाम पर विश्वास करते हैं। "विश्वास", अर्थात परमेश्वर से गहरा व्यक्तिगत संबंध जिस में उस पर पूर्ण भरोसा रखना भी सम्मिलित है, इस सुसमाचार के विशेष शब्दों में से एक है। **पद १३** में नए जन्म का वर्णन है(तुलना कीजिए अध्याय ३)। यह आत्मिक जन्म मनुष्य का कार्य नहीं, सर्वथा परमेश्वर का कार्य है। इस जन्म के द्वारा लोग परमेश्वर की संतान बनते हैं, अर्थात कुछ अंशों में वे परमेश्वर के गुणों से संपन्न हो जाते हैं, जैसे प्रेम, कृपा, धैर्य, भलाई आदि।

१ : १४ एक अत्यंत महत्वपूर्ण पद है। यद्यपि पद ९ से देहधारी शब्द का वर्णन जारी है तथापि इस पद में ही स्पष्ट शब्दों में देहधारण के तथ्य की अभिव्यक्ति है। "देहधारी हुआ" का शाब्दिक अनुवाद है, "मांस बना", जिसका अर्थ यह है कि वह पूर्ण रूप से मनुष्य बना। संभाव्यत: लेखक का एक अभिप्राय यीशु के व्यक्तित्व के प्रति

मानवाभासवाद (Docceticism) का खंडन करना था। "शब्द" का मानवत्व वास्तविक और पूर्ण था (तुलना कीजिए फिलि. २ : ६, ७; इब्रा. २ : १७; ४ : १५; १ यू. ४ : १-३; २ यू. ७)। पाप को छोड़ यीशु अन्य मनुष्यों के समान मानव था। अनुग्रह और सच्चाई परमेश्वर के विशेष गुण हैं। शब्द (अथवा उसकी महिमा, जैसे बुल्के और ध. ग्र. में है) इन गुणों से परिपूर्ण है। अनुग्रह परमेश्वर का वह प्रेम है जिस से वह अयोग्य व्यक्तियों को प्रेम करता है(इस शब्द के अर्थ के संबंध में बाइबल ज्ञान कोश पृष्ठ १०-११ को देखिए)। बौद्धिक और नैतिक रूप से परमेश्वर सत्य का स्रोत ही है। परमेश्वर की महिमा उसका सत और गुण है जिसको वह मनुष्यों पर प्रकट करता है। "एकलौता" का अर्थ यह है कि पिता परमेश्वर के साथ शब्द (यीशु) का संबंध अद्वितीय रूप से पुत्र का संबंध था।

१ : १५ के संबंध में १ : ६-८ की टिप्पणी को देखिए। यीशु की आयु यूहन्ना की आयु से कम थी, तो भी यीशु श्रेष्ठ था क्योंकि वास्तव में शब्द के रूप में उसका पूर्व अस्तित्व रहा। "मुझ से पहले" का यह अर्थ हैं।

१ : १६-१८—ख्रिस्त में परमेश्वर की परिपूर्णता है (कुल. २ : ६)। ज्ञानवादी लोग ऐसे प्राणियों के समूह की कल्पना करते थे जो परमेश्वर और मनुष्यों के बीच मध्यस्थ स्वरूप थे । वे इस समूह को "परिपूर्णता" कहते थे। यथार्थ मध्यस्थ ख्रिस्त ही है, वही परमेश्वर की परिपूर्णता है। उसके द्वारा परमेश्वर का अपरिमित और असीम अनुग्रह विश्वासियों को निरंतर प्राप्त होता रहता है। **पद १७** में व्यवस्था तथा अनुग्रह और सत्य में विषमता प्रकट की गई है (तुलना गल. ३ : २३-२५)। यहूदी लोग अपनी व्यवस्था को ऊंची मान्यता देते थे। वह व्यवस्था मूसा द्वारा दी गई, परंतु यीशु मूसा से श्रेष्ठ प्रमाणित हुआ। अनुग्रह व्यवस्था से श्रेष्ठ है। **पद १८** : परमेश्वर का अदृष्ट होना यहूदियों का एक मूल सिद्धांत था (नि. ३३ : २०; व्य. ४ : १२)। तुलना कीजिए ५ : ३७; ६ : ४६; १ यू. ४ : १२, २०। हि. प्र. की पाद टिप्पणी में सही मूल पाठ का अनुवाद है, "परमेश्वर एकलौता"। हिं. सं. में इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है, "एकलौता पुत्र परमेश्वर"। एकलौता पुत्र स्वयं ईश्वरीय है। पुत्र पिता से घनिष्ट संबंध रखता है ("उसकी गोद में" है), अतः वही है जो पिता को उपयुक्त रूप से प्रकट कर सकता है। अपने देहधारी रूप में "शब्द" ने पिता को प्रकट किया।

२ यूहन्ना बपतिस्मादाता और उसके कुछ शिष्यों की साक्षी १ : १९-५१

(१) **१ : १९-२८** : इस सुसमाचार में साधारणतया यहूदी धर्म और जाति के प्रतिनिधि "यहूदी" ही कहलाते हैं। अधिकांश याजक और लेवी सदूकी होते थे, परंतु पद २४ में ये फरीसी कहे गए हैं। कदाचित इसका कारण यह है कि इस सुसमाचार के लेखनकाल में फरीसी यीशु के विरोधियों का प्रतीक माने जाते थे। इस अंश में यूहन्ना बपतिस्मादाता के प्रति तीन संभावनाओं का वर्णन है, अर्थात कि वह ख्रिस्त है, कि वह एलिय्याह है, और कि वह "वह भविष्यवक्ता" है। यहूदियों की मान्यता थी कि प्रतिज्ञात ख्रिस्त के आने से पहले एलिय्याह फिर आएगा (मल. ४ : ५ के आधार

पर)। सहदर्शी सुसमाचारों के अनुसार यीशु ने कहा कि यूहन्ना एलिय्याह है (मत्त. ११ : १४; १७ : १२; मर. ९ : ११-१३), परंतु यूहन्ना रचित सुसमाचार से ज्ञात होता है कि यूहन्ना स्वयं का अपने प्रति यह विचार नहीं था। भविष्यवक्ता (नबी) के आने की भविष्यवाणी व्य. १८ : १५ में है, जिसका उल्लेख प्र. ३ : २२; ७ : ३७ में है। इन दो स्थलों में व्य. १८ : १५ ख्रिस्त की भविष्यवाणी माना गया है, परंतु यू. १ : २०, २१ में ख्रिस्त और वह भविष्यवक्ता पृथक माने गए हैं। उस भविष्यवक्ता का उल्लेख यू. ६ : १४; ७ : ४० में भी है, जहां "लोगों" की मान्यता व्यक्त की गई है। इन पदों में भी संकेत है कि कदाचित लोग उस भविष्यवक्ता और आनेवाले ख्रिस्त को एक ही मानते थे, परंतु यह बात स्पष्ट नहीं है। निष्कर्ष यह है कि इन बातों के प्रति विभिन्न मान्यताएं प्रचलित थीं, जिनको क्रमबद्ध करना कठिन है।

यूहन्ना का अस्वीकरण स्पष्ट है। **पद** २३ में वह यश. ४० : १३ का प्रयोग करके अपना परिचय देता है। यशायाह में "प्रभु" का अर्थ याहवे था, परंतु यहां वह यीशु पर लागू है। **पद** २६, २७ की तुलना मर. १ : ७ से कीजिए। मरकुस में इस स्थल पर (१ : ८) पवित्र आत्मा से बपतिस्मा देने का उल्लेख है, परंतु यूहन्ना में इस बात का वर्णन पद ३३ में है। **पद २८** : बैतनिय्याह कहां स्थित था यह ज्ञात नहीं है। संभवतः वह यरदन पार था।

(२) **१ : २९-३४** : "दूसरे दिन" शब्द २९, ३५ और ४३ पदों में पाए जाते हैं, और २ : १ में "फिर दूसरे दिन" है। संभाव्यतः ये शब्द ऐतिहासिक क्रम की ओर नहीं वरन् सैद्धांतिक क्रम की ओर संकेत करते हैं। इस परिच्छेद में क्रमबद्ध रूप से यीशु के व्यक्तित्व के संबंध में विचार धाराओं का विकास दृष्टिगोचर है। इस विवरण में फसह के मेमने का संकेत है (नि. १२ : ३-१३)। यश. ५३ : ७ और नि. २९ : ३८-४२ से भी तुलना कीजिए। **१ : ३१** : हिं. सं. : "मैं स्वयं उसे नहीं पहचानता था"। अन्य लोगों के समान यूहन्ना ने भी नहीं पहचाना कि ख्रिस्त यही है। परमेश्वर का यह अभिप्राय रहा कि बपतिस्मा देने के द्वारा यूहन्ना प्रकट करे कि यीशु ही ख्रिस्त है। **१ : ३२** इस सुसमाचार में यीशु के बपतिस्मा का वर्णन नहीं है, उसका संकेत ही यहां पाया जाता है। कपोत के द्वारा ही यूहन्ना ने ख्रिस्त को पहचाना। तलमूद में (पुराना नियम का प्राचीन अरामी अनुवाद) उ. १ : २ के संबंध में लिखा है कि परमेश्वर का आत्मा जल के ऊपर ऐसे मंडलाता था जैसे कपोत अपने बच्चों के ऊपर। इसी प्रकार यहां भी कपोत पवित्र आत्मा का प्रतीक है। आत्मा के "ठहरने" के संबंध में यश. ११ : २; ४२ : १; ६१ : १ से तुलना कीजिए। **१ : ३३** : पद २६, २७ की व्याख्या को पढ़िए। पवित्र आत्मा के बपतिस्मे के संबंध में मर. १ : ८; मत्त. ३ : ११; लू. ३ : १६ से तुलना कीजिए। पवित्र आत्मा के बपतिस्मे का अर्थ पवित्र आत्मा की सामर्थ्य से जीवन-परिवर्तन है।

(३) **१ : ३५-४२** : "दूसरे दिन" के संबंध में पद २९ की व्याख्या को देखिए। यीशु के प्रति यूहन्ना की साक्षी के कारण उसके दो अनुयायी यीशु के पीछे हो लेते हैं।

१ : ३८ में "रब्बी" शब्द का अर्थ "स्वामी" है। यीशु के काल से कुछ पूर्व इस शब्द का प्रयोग अध्यापकों के लिए होने लगा था। "चलो तो देख लोगे" सार्थक शब्दों से यीशु इन व्यक्तियों को निमंत्रित करता है। यहां गंभीर रूप से यह संकेत है कि यीशु सदा लोगों को अपने पास बुलाता है। १ : ३९ में संभाव्यत: "दसवें घंटे" का अर्थ तीसरे पहर लग भग चार बजे है। १ : ४०, ४१—अंद्रियास नामी शिष्य नहीं था, परंतु इस सुसमाचार में तीन बार यह वर्णित है कि वह किसी को यीशु के पास लाया (यहां, ६ : ८ और १२ : २२)। अन्यत्र उसका उल्लेख केवल मर. १३ : ३ और शिष्यों के नामों की सूचियों में है। मर. १ : १६-२० के अनुसार यीशु ने पहले चार शिष्यों को गलील में इस समय के पश्चात बुलाया। संभव है कि यीशु पहले यरूशलेम में इन शिष्यों से मिला और कालांतर में उन्हें पूर्ण रूप से बुलाया। संभाव्यत: यूहन्ना का वर्णन एक पृथक परंपरा पर आधारित है।

यूनानी शब्द "ख्रिस्तस" और इब्रानी शब्द "माशीआह" समानार्थक शब्द हैं, जिन से हमारी भाषा में "ख्रिस्त" और "मसीह" शब्द बने हैं। दोनों का अर्थ "अभिषिक्त" है। सहदर्शी सुसमाचारों के अनुसार यीशु इतने शीघ्र "ख्रिस्त" नहीं कहा गया। संभवत: यहां पर इस शब्द का प्रयोग ऐतिहासिक क्रम के अनुसार नहीं वरन सैद्धांतिक क्रम के अनुसार किया गया है। लेखक आरंभ से ही यीशु का ख्रिस्त होना प्रकट करना चाहता था। १ : ४२—यीशु ने पतरस को "ध्यान पूर्वक देखा" (हिं. सं.) केफा (अरामी) और पतरस (यूनानी) दोनों का अर्थ "चट्टान" है। इस पद को छोड़ "केफा" शब्द केवल पौलुस के पत्रों में पतरस के लिए पाया जाता है। "पतरस" नाम के संबंध में तुलना कीजिए मत्त. १६ : १८। सहदर्शी सुसमाचारों के अनुसार "पतरस" नाम भी इतने शीघ्र नहीं दिया गया।

(४) १ : ४३-५१—ऐसा प्रतीत होता है कि यीशु गलील को प्रस्थान करने वाला था, परंतु यह स्पष्ट नहीं है। फिलिप्पुस का उल्लेख ६ : ५, ७; १२ : २१ क. और १४ : ८ में है। सहदर्शी सुसमाचारों के अनुसार पतरस और अंद्रियास कफरनहूम के थे। संभवत: दोनों स्थानों में उनके घर थे। वर्तमान काल के विद्वानों की मान्यता है कि एक ही बैतसैदा था जो गलील झील के तट पर यरदन पार स्थित था। फिलिप्पुस बारह शिष्यों में से एक था। नामों की सूचियों को छोड़ उसका वर्णन सहदर्शी सुसमाचारों में अन्यत्र नहीं है। १ : ४५—नतनएल बारह शिष्यों में से एक नहीं था। उसका नाम सहदर्शी सुसमाचारों में नहीं पाया जाता। इस पद से ज्ञात होता है कि फिलिप्पुस भी मानता था कि यीशु ही ख्रिस्त है। १ : ४६--नासरत एक अज्ञात सी नगरी थी जिसका कोई उल्लेख पुराना नियम में नहीं है। काना नासरत के निकट स्थित था, अत: 'क्या कोई. . .सकती है' कदाचित कोई स्थानिक कहावत है। १ : ४७—यीशु ने पहचाना कि नतनएल वास्तव में इस्राएली कहलाने के योग्य है। तुलना कीजिए रो. २ : २८, २९। यथार्थ इस्राएली में कपट नहीं होता। १ : ४८—संभाव्यत: अंजीर के पेड़ के नीचे होने का कोई विशेष अर्थ नहीं है। लेखक इस तथ्य को प्रकट करना

चाहता था कि विचित्र रूप से यीशु को नतनएल के संबंध में जानकारी प्राप्त थी। यही इस पद की महत्वपूर्ण बात है। इसी के कारण नतनएल मान लेता है कि यीशु परमेश्वर का पुत्र और इस्राएल का राजा है, अर्थात वह स्वीकार करता है कि यीशु 'ख्रिस्त' है (भ. २ : ६, ७ से तुलना कीजिए)। १ : ५० में "इस से बड़े बड़े काम" शब्दों में यीशु के उन कामों की ओर संकेत है जिनका वर्णन होनेवाला है।

१ : ५१ में पहली बार इस सुसमाचार में "मनुष्य के पुत्र" का उल्लेख है। इस पदवी का स्पष्टीकरण मर. २ : १-१२ के अंत में एक विशेष टिप्पणी में किया गया है। उस टिप्पणी को पढ़िए। इस सुसमाचार में इस पदवी के अधिकांश उल्लेख मनुष्य के पुत्र के स्वर्ग से अवतरण और उसके स्वर्गारोहण के संबंध में हैं, उदाहरणार्थ ३ : १३। यह वह जीवन की रोटी है जो स्वर्ग से है (६ : २७, ३१-३३, ३८, ५१); उसके शिष्य उसको ऊपर जाते देखेंगे (६ : ६२)। ऐसा जान पड़ता है कि यीशु के मनुष्य के पुत्र होने के विषय में इस सुसमाचार के लेखक को एक पृथक परंपरागत स्रोत प्राप्त था। इस पद में याकूब के स्वप्न का संकेत है। याकूब ने एक सीढ़ी देखी जिस पर परमेश्वर के दूत चढ़ते उतरते थे (उ. २८ : १२)। जैसे उन दूतों के द्वारा याकूब और परमेश्वर के बीच संबंध आरंभ हुआ वैसे ही यीशु, परमेश्वर का देहधारी पुत्र, परमेश्वर और मानवजाति के बीच मध्यस्थ है। "मैं तुम से सच सच कहता हूं" शब्द इस सुसमाचार में २५ बार पाए जाते हैं। उनके प्रयोग से यह प्रकट होता है कि संदर्भगत कथन महत्वपूर्ण हैं।

३. यीशु द्वारा प्रदत्त नया जीवन पुराने धर्म से श्रेष्ठ है २ : १–४ : ४२

(१) यह तथ्य चिह्नों द्वारा स्पष्ट किया जाता है २ : १-२५

(क) जल को दाखरस में परिवर्तित करना, अर्थात यह प्रदर्शित करना कि नया पुराने से श्रेष्ठ है २ : १-११

मौलिक रूप से यह विवरण प्रतीकात्मक और शिक्षात्मक है, तो भी हम मान सकते हैं कि वह एक ऐतिहासिक घटना पर आधारित है। "काना" गलील प्रांत में गलील की झील और समुद्र के मध्य में स्थित था। यीशु सन्यासी नहीं था। वह एक विवाह के आनंद और हर्ष में भाग लेने को तैयार था। इस वृत्तांत में अग्रिम स्थान यीशु को प्राप्त है, मरियम का स्थान गौण ही है। कुछ लोग अनुभव करते हैं कि "हे माहिला मुझे तुझ से क्या काम" शब्द कहकर यीशु ने अपनी माता का अनादर किया, परंतु यूनानी मूल पाठ में अनादर की भावना नहीं है। इस के विपरीत जिस यूनानी शब्द से "माहिल' अनूदित है उस में प्रेम भाव और आदर की ध्वनि है। यीशु ने मरियम की भर्त्सना नहीं की। उसका अभिप्राय यह प्रकट करना था कि वह किसी मनुष्य से नहीं, केवल पिता परमेश्वर से प्रेरित होकर अपना कार्य करता था। २ : ४ में पहली बार यीशु के "समय" (यूनानी "होरा") का उल्लेख है। यह शब्द विशेष अर्थों में निम्नलिखित स्थलों में पाया जाता है : २ : ४; ४ : २१; ४ : २३; ५ : २५; ५ : २८, २९; ७ : ३०; ८ : २०; १४ : २; १६ : २५; १६ : ३२। अनेक स्थलों में कहा गया है कि समय आ चुका है,

१२ : २३; १२ : २७; १३ : १; १७ : १। यह समय मुख्यतः यीशु के दुखभोग, मृत्यु और पुनरुत्थान का समय है।

इस विवरण के प्रतीकों का स्पष्टीकरण संक्षेप में इस प्रकार हो सकता है : मटके मूसा की व्यवस्था का प्रतीक हैं। उन में भरा हुआ जल, मुस्लिमों के वजू के समान, हाथ धोने के लिए था। दाखरस जीवित आत्मिक सत्य का प्रतीक है। जल बड़ी मात्रा में दाखरस बनता है। जल की बहुतायत आत्मा की बहुतायत का प्रतीक है। इन प्रतीकों के द्वारा यह प्रकट किया गया है कि वह नया जीवन जो यीशु की ओर से पवित्र आत्मा द्वारा प्राप्त होता है यहूदी धर्म, व्यवस्था, संस्कार आदि से श्रेष्ठ है।

१ : ११—"चिन्ह" शब्द के संबंध में "भूमिका" पृष्ठ ११९ को देखिए। यीशु के आश्चर्यकर्म केवल इस सुसमाचार में "चिन्ह" कहे गए हैं। यह शब्द निम्नलिखित स्थलों में अच्छे अर्थ में पाया जाता है : २ : ११; २ : ३३; ३ : २; ४ : ४५; ६ : २, १४, २६; ७ : ३१; १० : ४१; ११ : ४७; १२ : १८, ३७; २० : ३०। वह २ : १८; ४ : ४८ और ६ : ३० में भी पाया जाता है, परंतु वहां अच्छे अर्थ में इसका प्रयोग नहीं है।

(ख) मंदिर का परिष्कार करना, अर्थात यह दिखाना कि नये से पुराने का परिष्कार होता है २ : १२-२२

इस विवरण की तुलना मर. ११ : १५-१९ से कीजिए। मत्ती और लूका ने मरकुस के वर्णन का संक्षेपण किया है। यह घटना यूहन्ना के अनुसार यीशु के सेवाकाल के आरंभ में, परंतु सहदर्शी सुसमाचारों के अनुसार सेवाकाल के अंतिम चरणों में हुई। अधिकांश विद्वानों की मान्यता है कि ये एक ही घटना के दो पृथक वर्णन हैं, और कि यूहन्ना ने, ऐतिहासिक क्रम की उपेक्षा करके, इसे अपने सैद्धांतिक क्रम के अनुकूल इस स्थल पर सम्मिलित किया। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक ने इसी प्रकार से अपने लेख की रचना की है।

मरकुस के वर्णन में कोड़ों का उल्लेख नहीं है। वह बताता है कि यीशु ने "मंदिर में से होकर किसी को बरतन लेकर आने जाने न दिया"। मर. ११ : १७ में यश. ५३ : ७ और यि. ७ : ११ उद्धृत हैं, परंतु यू. २ : १७ का उद्धरण अन्य स्थल से है। **यू. २ : १८-२२** की बातें मरकुस में नहीं हैं। यूहन्ना ने एक पृथक परंपरा का प्रयोग किया होगा (भूमिका पृष्ठ ११६)।

मर. ११ : १५-१९ की व्याख्या में इस घटना के अनेक ब्यौरों का स्पष्टीकरण किया गया है, अतः उस व्याख्या को पढ़िए। **यू. २ : १५** में कोड़े से किसी को मारने का उल्लेख नहीं है, न पशु न मनुष्य। अतः यह अनुमान लगाना कि यीशु ने उस समय मनुष्यों को मारा होगा अनुचित है। मंदिर को अपने पिता का भवन कहा। इस कथन के द्वारा यीशु ने ख्रिस्त होने का दावा किया। २ : १७ में उद्धरण भ. ६९ : ९ से है। इसी भजन के उद्धरण निम्नांकित स्थलों में पाए जाते हैं : यू. १५ : २५; १९ : २९; प्रे. १ : २०; रो. ११ : ९; १५ : ३। इन उद्धरणों से ज्ञात होता है कि प्रारंभिक काल

के ख्रिस्तियों की मान्यता थी कि इस भजन में आनेवाले ख्रिस्त का उल्लेख है। २: १९—यह कथन सहदर्शी सुसमाचारों में नहीं है, परंतु उसका कुछ परिवर्तित रूप यीशु पर दोष लगाने और उसका उपहास करने के संबंध में मर. १४ : ५८=मत्त. २६ : ६१ और मर. १५ : २९=मत्त. २७ : ४० में है। महान हेरोदेस ने ई. पू. २०-१८ में मंदिर निर्माण कार्य आरंभ किया (योसेपस) और यह कार्य ई. स. ६४ में पूर्ण हुआ। इस घटना के समय कार्य अपूर्ण था। संभाव्यत: यीशु का अर्थ यह था कि यद्यपि यहूदी लोग उस मंदिर को नष्ट कर डालें तो भी यीशु उसके स्थान पर थोड़ी ही देर में (तीन दिन में) एक आत्मिक मंदिर को स्थापित करेगा—तुलना कीजिए यहे. ४०-४६ अध्याय। २ : २१ में इसका अन्य स्पष्टीकरण है जो संभाव्यत: यीशु के पुनरूत्थान के पश्चात उसके शिष्यों को सूझा। "देह के मंदिर" के दो अर्थ संभव हैं : (१) यीशु की देह और पुनरु-त्थान (२) कलीसिया जो पौलुस के पत्रों में ख्रिस्त की देह कहलाती है। संभवत: दोनों अर्थ अभिप्रेत हैं।

यहूदी धर्म में मंदिर को केंद्रिय स्थान प्राप्त था। इस विवरण से लेखक यह प्रकट करता है कि ख्रिस्त और उस पर विश्वास यहूदी धर्म की पूर्ति है। जो अभाव यहूदी धर्म में था उसकी पूर्ति ख्रिस्त द्वारा होती है, और जो अशुद्धता उस धर्म में आ गई थी वह ख्रिस्त द्वारा दूर की जाती है। यीशु का मंदिर पर भी अधिकार है।

(ग) इन चिह्नों का प्रभाव २ : २३-२५

"चिन्ह" का अर्थ यहां भी आश्चर्यकर्म ही है। २० : ३० और २१ : २५ में वर्णित है कि यीशु ने बहुत कार्य किए जिनका वर्णन इस सुसमाचार में नहीं है। अभी तक एक ही आश्चर्यकर्म का वर्णन हुआ है। "बहुतों. . .विश्वास किया, परंतु. . .उनके भरोसे पर नहीं छोड़ा"—इन विश्वास करने वालों का विश्वास अपरिपक्व हुआ होगा, तब ही यीशु ने अपने आपको उनके भरोसे पर नहीं छोड़ा। यह अंश अगले परिच्छेद की तैयारी में है। नीकुदेमुस का विश्वास भी अधूरा था, और यीशु पूर्ण विश्वास की ओर उसका मार्गदर्शन करता है। इस सुसमाचार में बार बार इस तथ्य पर बल दिया गया है कि यीशु जानता था कि मनुष्य के मन में क्या है, उदाहरणार्थ १ : ४८; ४ : १८; ६ : ६१। यह इस सुसमाचार की एक विशेषता है (भूमिका पृष्ठ १२०, (च) में भी देखिए)।

(२) यह शिक्षा (नया जीवन पुराने धर्म से श्रेष्ठ है) तीन वर्णनों द्वारा दी जाती है ३ : १–४ : ४२

(क) ख्रिस्त नीकुदेमुस को, जो पुराने धर्म का प्रतीक है, उपदेश देता है कि नया जन्म आवश्यक है ३ : १-२१

यह इस सुसमाचार का पहला प्रवचन है। ३ : १-४ नीकुदेमुस यहूदी महासभा का सदस्य था (७ : ५०)। उसका उल्लेख १९ : ३९ में भी है, परंतु किसी अन्य सु-समाचार में उसका कोई वर्णन नहीं है। इस विवरण से यह स्पष्ट है कि वह स्वयं यीशु

के पास आना चाहता था। उसके रात के समय आने के दो संभव अभिप्राय है : (i) कि वह एकांत में यीशु से भेंट करना चाहता था। (ii) कि इसे भय था कहीं अन्य लोग उसे यीशु के पास जाते न देखें। इस वर्णन में कदाचित प्रतीकात्मक रूप से यह अभिप्रेत है कि नीकुदेमुस आत्मिक अंधकार में से यीशु की ज्योति में प्रविष्ट हुआ। नीकुदेमुस मानो यहूदियों का प्रतिनिधि होकर यीशु की प्रशंसा करता है, परंतु "यदि परमेश्वर उसके साथ न हो" शब्द प्रकट करते हैं कि यीशु के प्रति उसका विचार अपूर्ण था। अत: ३ : ३ में यीशु नीकुदेमुस के अपूर्ण विश्वास को स्पष्ट करता है। इस सुसमाचार में "परमेश्वर के राज्य" का उल्लेख केवल इस पद और पद ५ में है। उसके स्थान पर "अनंत जीवन" शब्दों का प्रयोग किया जाता है। "परमेश्वर के राज्य" के अर्थ के संबंध में मर. १ : १५ की व्याख्या को देखिए। "नया जन्म लेने" (हिं. सं.) के मूल यूनानी शब्दों (गन्नेथे अनोथन) का अर्थ "ऊपर से जन्म लेना" भी है (हिं. सं. पाद टिप्पणी) —संभाव्यत: लेखक का अभिप्राय था कि दोनों अर्थ लिए जाएं। नीकुदेमुस इस बात को नहीं समझता। जैसे शारीरिक जीवन जन्म लेने से आरंभ होता है वैसे ही आत्मिक जीवन की प्राप्ति भी एक प्रकार का जन्म है। वह जीवन का एक नवीन आरंभ है।

३ : ५-९ : यह नया जन्म पवित्र आत्मा द्वारा होता है। यदि यीशु के अपने कथन में जल का उल्लेख भी था तो संभवत: वह आत्मा का प्रतीक था। संभाव्यत: सुसमाचार-लेखक के विचार में "जल" बपतिस्मा की ओर संकेत करता था। परंतु इस कथन में यह विचार निहित नहीं है कि बपतिस्मा के संस्कार के साधन से नया जन्म होता है। नया जन्म परमेश्वर के आत्मा का कार्य है। शारीरिक जन्म और आत्मिक जन्म में आकाश-पाताल का अंतर है। "हवा" और "आत्मा" एक यूनानी शब्द के दो भिन्न अर्थों को व्यक्त करते हैं (प्न्यूमा)। इसी प्रकार इब्रानी शब्द भी द्वयर्थक है (रूऐख़)। शारीरिक रूप से हवा के बिना और आत्मिक रूप से आत्मा के बिना हम मर जाते हैं। हवा और आत्मा दोनों रहस्यमय हैं, मनुष्य की समझ से परे हैं।

३ : १०-१५—"गुरु" के मूल यूनानी में (हॉ दिदस्कलस) यह विचार निहित है कि वह महान या प्रसिद्ध गुरु था, अत: उसका इन बातों को न समझना आश्चर्य का कारण था। उसमें आत्मिक अंतर्दृष्टि का अभाव था। ३ : ११ में "मैं तुझ से सच सच कहता हूं" शब्दों के पश्चात सर्वनाम और क्रियाएं बहुवचन में हैं। संभव है कि इस से यीशु का अधिकार प्रकट करने का अभिप्राय हो, परंतु यह भी हो सकता है कि यीशु ने नीकुदेमुस के शब्दों का प्रयोग किया जो ३ : २ में हैं, "हम जानते हैं"। यीशु का ज्ञान निश्चित था। "पृथ्वी की बातें" शब्दों का संकेत नये जन्म के रूपक की ओर है (पद २-७)। एक आत्मिक अनुभव का प्रतिपादन करने के लिये यीशु ने जन्म लेने के एक सांसारिक उदाहरण का प्रयोग किया था। "जो स्वर्ग में है" शब्द (पद १३) सर्वश्रेष्ठ हस्तलेखों में नहीं हैं। यदि वे प्रामाणिक हैं तो वे यीशु के जीवनकाल और स्वर्गारोहण के समय की ओर संकेत करते हैं। परंतु यह भी संभव है इस पद का संपूर्ण कथन यीशु का था,

के ख्रिस्तियों की मान्यता थी कि इस भजन में आनेवाले ख्रिस्त का उल्लेख है। २ : १९—यह कथन सहदर्शी सुसमाचारों में नहीं है, परंतु उसका कुछ परिवर्तित रूप यीशु पर दोष लगाने और उसका उपहास करने के संबंध में मर. १४ : ५८=मत्त. २६ : ६१ और मर. १५ : २९=मत्त. २७ : ४० में है। महान हेरोदेस ने ई. पू. २०-१८ में मंदिर निर्माण कार्य आरंभ किया (योसेपस) और यह कार्य ई. स. ६४ में पूर्ण हुआ। इस घटना के समय कार्य अपूर्ण था। संभाव्यतः यीशु का अर्थ यह था कि यद्यपि यहूदी लोग उस मंदिर को नष्ट कर डालें तो भी यीशु उसके स्थान पर थोड़ी ही देर में (तीन दिन में) एक आत्मिक मंदिर को स्थापित करेगा—तुलना कीजिए यहे. ४०-४६ अध्याय। २ : २१ में इसका अन्य स्पष्टीकरण है जो संभाव्यतः यीशु के पुनरूत्थान के पश्चात उसके शिष्यों को सूझा। "देह के मंदिर" के दो अर्थ संभव हैं : (१) यीशु की देह और पुनरुत्थान (२) कलीसिया जो पौलुस के पत्रों में ख्रिस्त की देह कहलाती है। संभवतः दोनों अर्थ अभिप्रेत हैं।

यहूदी धर्म में मंदिर को केंद्रिय स्थान प्राप्त था। इस विवरण से लेखक यह प्रकट करता है कि ख्रिस्त और उस पर विश्वास यहूदी धर्म की पूर्ति है। जो अभाव यहूदी धर्म में था उसकी पूर्ति ख्रिस्त द्वारा होती है, और जो अशुद्धता उस धर्म में आ गई थी वह ख्रिस्त द्वारा दूर की जाती है। यीशु का मंदिर पर भी अधिकार है।

(ग) इन चिह्नों का प्रभाव २ : २३-२५

"चिन्ह" का अर्थ यहां भी आश्चर्यकर्म ही है। २० : ३० और २१ : २५ में वर्णित है कि यीशु ने बहुत कार्य किए जिनका वर्णन इस सुसमाचार में नहीं है। अभी तक एक ही आश्चर्यकर्म का वर्णन हुआ है। "बहुतों. . .विश्वास किया, परंतु. . .उनके भरोसे पर नहीं छोड़ा"—इन विश्वास करने वालों का विश्वास अपरिपक्व हुआ होगा, तब ही यीशु ने अपने आपको उनके भरोसे पर नहीं छोड़ा। यह अंश अगले परिच्छेद की तैयारी में है। नीकुदेमुस का विश्वास भी अधूरा था, और यीशु पूर्ण विश्वास की ओर उसका मार्गदर्शन करता है। इस सुसमाचार में बार बार इस तथ्य पर बल दिया गया है कि यीशु जानता था कि मनुष्य के मन में क्या है, उदाहरणार्थ १ : ४८; ४ : १८; ६ : ६१। यह इस सुसमाचार की एक विशेषता है (भूमिका पृष्ठ १२०, (च) में भी देखिए)।

(२) यह शिक्षा (नया जीवन पुराने धर्म से श्रेष्ठ है) तीन वर्णनों द्वारा दी जाती है ३ : १–४ : ४२

(क) ख्रिस्त नीकुदेमुस को, जो पुराने धर्म का प्रतीक है, उपदेश देता है कि नया जन्म आवश्यक है ३ : १-२१

यह इस सुसमाचार का पहला प्रवचन है। ३ : १-४ नीकुदेमुस यहूदी महासभा का सदस्य था (७ : ५०)। उसका उल्लेख १९ : ३९ में भी है, परंतु किसी अन्य सुसमाचार में उसका कोई वर्णन नहीं है। इस विवरण से यह स्पष्ट है कि वह स्वयं यीशु

के पास आना चाहता था। उसके रात के समय आने के दो संभव अभिप्राय है : (i) कि वह एकांत में यीशु से भेंट करना चाहता था। (ii) कि इसे भय था कहीं अन्य लोग उसे यीशु के पास जाते न देखें। इस वर्णन में कदाचित प्रतीकात्मक रूप से यह अभिप्रेत है कि नीकुदेमुस आत्मिक अंधकार में से यीशु की ज्योति में प्रविष्ट हुआ। नीकुदेमुस मानो यहूदियों का प्रतिनिधि होकर यीशु की प्रशंसा करता है, परंतु "यदि परमेश्वर उसके साथ न हो" शब्द प्रकट करते हैं कि यीशु के प्रति उसका विचार अपूर्ण था। अतः ३ : ३ में यीशु नीकुदेमुस के अपूर्ण विश्वास को स्पष्ट करता है। इस सुसमाचार में "परमेश्वर के राज्य" का उल्लेख केवल इस पद और पद ५ में है। उसके स्थान पर "अनंत जीवन" शब्दों का प्रयोग किया जाता है। "परमेश्वर के राज्य" के अर्थ के संबंध में मर. १ : १५ की व्याख्या को देखिए। "नया जन्म लेने" (हिं. सं.) के मूल यूनानी शब्दों (गन्नेथे अनोथन) का अर्थ "ऊपर से जन्म लेना" भी है (हिं. सं. पाद टिप्पणी) —संभाव्यतः लेखक का अभिप्राय था कि दोनों अर्थ लिए जाएं। नीकुदेमुस इस बात को नहीं समझता। जैसे शारीरिक जीवन जन्म लेने से आरंभ होता है वैसे ही आत्मिक जीवन की प्राप्ति भी एक प्रकार का जन्म है। वह जीवन का एक नवीन आरंभ है।

३ : ५-६ : यह नया जन्म पवित्र आत्मा द्वारा होता है। यदि यीशु के अपने कथन में जल का उल्लेख भी था तो संभवतः वह आत्मा का प्रतीक था। संभाव्यतः सुसमाचार-लेखक के विचार में "जल" बपतिस्मा की ओर संकेत करता था। परंतु इस कथन में यह विचार निहित नहीं है कि बपतिस्मा के संस्कार के साधन से नया जन्म होता है। नया जन्म परमेश्वर के आत्मा का कार्य है। शारीरिक जन्म और आत्मिक जन्म में आकाश-पाताल का अंतर है। "हवा" और "आत्मा" एक यूनानी शब्द के दो भिन्न अर्थों को व्यक्त करते हैं (प्न्यूमा)। इसी प्रकार इब्रानी शब्द भी द्वयर्थक है (रूऐख़)। शारीरिक रूप से हवा के बिना और आत्मिक रूप से आत्मा के बिना हम मर जाते हैं। हवा और आत्मा दोनों रहस्यमय हैं, मनुष्य की समझ से परे हैं।

३ : १०-१५—"गुरु" के मूल यूनानी में (हॉ दिदस्कलस) यह विचार निहित है कि वह महान या प्रसिद्ध गुरु था, अतः उसका इन बातों को न समझना आश्चर्य का कारण था। उसमें आत्मिक अंतर्दृष्टि का अभाव था। ३ : ११ में "मैं तुझ से सच सच कहता हूं" शब्दों के पश्चात सर्वनाम और क्रियाएं बहुवचन में हैं। संभव है कि इस से यीशु का अधिकार प्रकट करने का अभिप्राय हो, परंतु यह भी हो सकता है कि यीशु ने नीकुदेमुस के शब्दों का प्रयोग किया जो ३ : २ में हैं, "हम जानते हैं"। यीशु का ज्ञान निश्चित था। "पृथ्वी की बातें" शब्दों का संकेत नये जन्म के रूपक की ओर है (पद २-७)। एक आत्मिक अनुभव का प्रतिपादन करने के लिये यीशु ने जन्म लेने के एक सांसारिक उदाहरण का प्रयोग किया था। "जो स्वर्ग में है" शब्द (पद १३) सर्वश्रेष्ठ हस्तलेखों में नहीं हैं। यदि वे प्रामाणिक हैं तो वे यीशु के जीवनकाल और स्वर्गारोहण के समय की ओर संकेत करते हैं। परंतु यह भी संभव है इस पद का संपूर्ण कथन यीशु का था,

और कि "स्वर्ग पर", "स्वर्ग से" और "स्वर्ग में" शब्दों में स्वर्गारोहण का नहीं वरन "स्वर्गिक" वातावरण का अर्थ निहित है। केवल यीशु है जो निरंतर पिता परमेश्वर की उपस्थिति में रहता है। १ : ५१ की व्याख्या से तुलना कीजिए—वहां भी "मनुष्य का पुत्र" पदवी का प्रयोग किया गया है। निस्संदेह लेखक के काल में ३ : १३ में स्वर्गारोहण की ओर संकेत माना जाता था। ऊंचे पर चढ़ाए जाने का अर्थ क्रूस है। चढ़ाए जाने में सांप और यीशु में समानता केवल इस बात की है कि लोग उन्हें सरलता से देख सकते थे। क्रूस का प्रभाव विश्वव्यापी है। जैसे सांप पर दृष्टि करनेवाले जीवित हो जाते थे वैसे ही क्रूस जीवनदायक है (यहां गि. २१ : ४-९ की ओर संकेत है)। अनेक विद्वानों की मान्यता के अनुसार ३ : १४, १५ में स्वर्गारोहण की ओर भी संकेत है।

३ : १६-२१ : इस विवरण का मौलिक विचार यह है कि यीशु ज्योति होकर संसार में आया और उसने सब मनुष्यों को बुलाया। अपनी अनुक्रिया से मनुष्य स्वयं निर्णय करते हैं कि उनकी अंतिम दशा क्या होगी। **३ : १६** का स्पष्ट संबंध पद १५ से है। परमेश्वर स्वयं प्रेम है (१ यू. ४ : १६)। "प्रेम" के लिए मूल यूनानी शब्द "अगापे" है, जिसका प्रयोग इस सुसमाचार में क्रिया रूप में ३७ बार और संज्ञा रूप में ७ बार किया गया है। ख्रिस्तियों ने इस शब्द को अपनाया और उस में विशेष विशुद्ध निस्स्वार्थ ख्रिस्तीय प्रेम का अर्थ भर दिया। इस पद का सार यह है कि क्रूस मूलतः परमेश्वर के प्रेम का प्रकाशन है, उसके प्रकोप का नहीं—उस ने यहां तक प्रेम किया कि "दे दिया"। "दे दिया" की यूनानी मूल क्रिया के काल से प्रकट होता है कि कोई विशेष ऐतिहासिक घटना घटित हुई, अर्थात "शब्द" का देहधारण, यीशु का जीवन और क्रूसीकरण। परमेश्वर का प्रेम असीम है, उस ने संसार से, अर्थात संसार के सब ही लोगों से प्रेम रखा, किसी समूह या वर्ग विशेष से ही नहीं। अतः जो व्यक्ति उस प्रेम को ठुकराता है वह स्वयं इसके परिणाम का उत्तरदायी है। "एकलौता" शब्द पुत्र की अद्वितीयता को प्रकट करता है। "जो कोई" शब्द भी प्रदर्शित करते हैं कि सब लोग परमेश्वर के प्रेम की परिधि के अंतर्गत हैं। पुत्र पर विश्वास करना अपने को उसके हाथों सौंप देना, अर्पित करना है।

"अनंत जीवन" शब्द इस सुसमाचार में १७ बार, यूहन्ना के पत्रों में ६ बार और सहदर्शी सुसमाचारों में केवल ८ बार पाए जाते हैं। इस सुसमाचार में बहुत बार अकेले "जीवन" शब्द का अर्थ भी अनंत जीवन होता है। यह जीवन केवल काल की दृष्टि से ही अनंत नहीं है, वरन वह एक विशेष गुण (quality) का, प्रचुरता का जीवन है। वह भविष्य में मृत्योपरांत ही नहीं मिलेगा, वर्तमान में भी विश्वास द्वारा प्राप्त होता है। सहदर्शी सुसमाचारों में परमेश्वर के राज्य का बहुत उल्लेख है। परमेश्वर के राज्य के स्थान पर इस सुसमाचारों में अनंत जीवन का अधिक वर्णन है।

३ : १७-२१ में इस सुसमाचार के अनेक मुख्य विचारों की अभिव्यक्ति है, अर्थात न्याय, विश्वास, ज्योति, अंधकार, बुराई करना, सचाई पर चलना। ५ : २२-३० में बताया गया है कि न्याय करने का सब काम पुत्र को सौंपा गया है। तो भी पुत्र

के संसार में आने का अभिप्राय न्याय करना नहीं, दंड की आज्ञा देना नहीं, वरन उद्धार करना था। विश्वास करनेवाले पर दंड की आज्ञा इस कारण नहीं होती कि वह ज्योति के पास आता है। ज्योति सब दुराचार को प्रकट करती है। वह ज्योति यीशु ख्रिस्त है, यीशु के पास आना ज्योति में आना है, अतः यीशु पर विश्वास करना औपचारिक नहीं वरन अत्यंत व्यावहारिक और अनुभवात्मक बात है। दुराचारी ज्योति में आने से डरता है, क्योंकि उस ज्योति से उसकी भर्त्सना होती है। इस प्रकार यीशु के प्रति अपनी प्रतिक्रिया के द्वारा मनुष्य अपना न्याय कराते हैं।

३ : १७ में पुत्र के पिता की ओर से भेजे जाने का उल्लेख है। यह इस सुसमाचार का एक प्रमुख विचार है, जो चालीस बार पाया जाता है। इसके द्वारा यीशु के ईश्वरत्व का महत्व प्रकट किया गया है। इसका गहन संबंध "प्रस्तावना" और देहधारण से है। इसका अर्थ यह है कि यीशु के कार्यों, कथनों और व्यक्तित्व के द्वारा परमेश्वर मनुष्यों के सामने स्वयं को प्रकाशित कर रहा था। निम्नलिखित स्थलों में यीशु के भेजे जाने का उल्लेख है : ३ : १७, ३४; ४ : ३४; ५ : २३, २४, ३०, ३६, ३७, ३८; ६ : २९, ३८, ३९, ४४, ५७; ७ : १६, १८, २९, ३३; ८ : १६, २६, २९, ४२; ९ : ४; १० : ३६; ११ : ४२; १२ : ४४, ४५, ४९; १३ : २०; १४ : २४; १५ : २१; १६ : ५; १७ : ३, ८, १८, २१, २३, २५; २० : २१ (२ बार)।

(ख) यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाला भी अंगीकार करता है कि उसे घटना है, और यीशु को बढ़ना, क्योंकि यीशु परमेश्वर की बातें करता है ३ : २२-३६

३ : २२-३० : पिछले अंश में भी यीशु यहूदिया में था, अतः "यहूदिया में आए" शब्द प्रकट करते हैं कि जब यह अंश जोड़ा गया तब ऐतिहासिक और भौगोलिक क्रम की उपेक्षा की गई। "शालेम" गरिज्जीम पर्वत के पूर्व की ओर अथवा स्कियुपुलिस के दक्षिण की ओर स्थित था। "ऐनोन" स्थान अज्ञात है। सहदर्शी सुसमाचारों में इस बात का उल्लेख नहीं है कि यीशु बपतिस्मा देता था, और यू. ४ : २ में स्पष्ट लिखा है कि "यीशु आप नहीं वरन उसके चेले बपतिस्मा देते थे"। फिर भी संभाव्यतः अनेक विद्वानों की यह मान्यता ठीक है कि सुसमाचार के संपादक (Redactor) ने ४ : २ को जोड़ा, और यीशु वास्तव में स्वयं बपतिस्मा देता था। यह पूर्ण ख्रिस्तीय बपतिस्मा नहीं था क्योंकि अब तक क्रूसीकरण और पुनरुत्थान नहीं हुए थे। यह तथ्य कि यूहन्ना अब तक बंदीगृह में नहीं डाला गया था सूचित करता है कि इस अंश की सब बातें यीशु के उस सेवाकाल से पहले घटित हुई जो सहदर्शी सुसमाचारों में वर्णित है। यहां (३ : २५) "शुद्धि" (हिं. सं. "शुद्धिकरण") का अर्थ बपतिस्मा है। **३ : २६** में शिकायत की ध्वनि है कि मानो यीशु यूहन्ना का अधिकतर छीन रहा हो। इस अंश का सार पद २७-३० में है। **३ : २७** का अर्थ संभाव्यतः यह है कि यीशु का यूहन्ना से महान होना परमेश्वर की ओर से निर्धारित था। **३ : २८** में १ : ६-९, २०, ३० जैसे स्थलों की ओर संकेत है। **३ : २९** नया नियम में दूलह दूलहिन ख्रिस्त और कलीसिया के प्रतीक हैं। इनके पारस्परिक संबंध में यूहन्ना बिचवई के समान था। सारांश ३ :

३० में है, जिसको प्रत्येक ख्रिस्ती अपना आदर्श वाक्य बना सकता है। १ : १९-२८; १ : २९-३४; १ : ३५-४२; १ : ४३-५१ और ३ : ३० में हम क्रमानुसार यूहन्ना को घटते और यीशु को बढ़ने देखते हैं।

३ : ३१-३६ : यीशु "ऊपर से आता है", यूहन्ना बपतिस्मा-दाता "पृथ्वी से आता है"। यीशु स्वर्ग की बातों की साक्षी देता है। मनुष्य स्वतंत्र हैं कि यीशु की साक्षी को ग्रहण करें या न करें। ३ : ३३ से यह स्पष्ट है कि अनेक लोग उसे ग्रहण करते हैं। "छाप देने" का अर्थ यह है कि वे परमेश्वर के सत्य को स्वीकार करते हैं। आत्मा "नाप नाप कर" न देने का अर्थ बुल्के के अनुवाद में स्पष्ट व्यक्त किया गया है, "जिसे ईश्वर ने भेजा है वह ईश्वर के ही शब्द बोलता है; क्योंकि ईश्वर उसे प्रचुर मात्रा में आत्मा प्रदान करता है"। पद ३५ से भी इस स्पष्टीकरण का समर्थन होता है। ३ : ३६ में हार्दिक विश्वास करने और न करने में विषमता व्यक्त की गई है, जैसे बुल्के के अनुवाद से स्पष्ट है, "जो पुत्र में विश्वास करने से इन्कार करता है. . . . ."। परमेश्वर का क्रोध मानवीय भावना जैसा नहीं है। वह पाप के प्रति परमेश्वर की प्रतिक्रिया और उसके प्रेम का विपरीत पक्ष है। विश्वास न करनेवाला स्वयं अपने को परमेश्वर के प्रेम की परिधि से बाहर रखता है (तुलना कीजिए ३ : १९ आदि)।

(ग) यीशु सामरी स्त्री को उपदेश देता है कि वह जीवन जो मैं देता हूं यहूदियों और सामरियों के धर्म से श्रेष्ठ है। वास्तविक आराधना आत्मा और सच्चाई से होती है। ४ : १-४२

४ : १-६ : पद २ के संबंध में ३ : २२ की व्याख्या को देखिए। गलील के यहूदी लोग पर्व के अवसर पर साधारणतः सामरिया होकर यरूशलेम जाते थे (योसेपस)। परंतु यही एक मार्ग तो नहीं था, वे यरदन नदी की घाटी में होकर भी जा सकते थे, अतः कदाचित "अवश्य" शब्द का अर्थ यह है कि सामरिया होकर जाना यीशु के लिए परमेश्वर की इच्छा थी। "सामरिया" के संबंध में बैबल ज्ञानकोश में "शोमरोन", और पृष्ठभूमि पृ. १२७-१२८ को देखिए। यहां के लोग मिश्रित थे (२ रा. १७ : २४-२६)। वे यहूदियों से बैर रखते थे। उनका आराधना केंद्र गिरिज्जीय पर्वत था। सामरिया में किसी "सूखार" नाम नगर या ग्राम का संकेत नहीं मिलता, और प्राचीन काल के अनेक अनुवादों में "सूखार" के स्थान पर "शकेम" है, अतः वर्तमान काल के अधिकांश विद्वानों की मान्यता है कि संभाव्यतः शकेम अभिप्रेत है। बैबल मानचित्रावली में नक्शा १४ में देखिए। याकूब का कूआं उस नगर के निकट है। उस भूमि का वर्णन जिसे याकूब ने यूसुफ को दिया उ. ३ : १९ और यहो. २४ : ३२ में है। याकूब के कूएं में उमड़ता पानी था। वह गिरिज्जीम पर्वत के निकट अब भी स्थित है।

४ : ७-१५ : "छठे घंटे" का अर्थ दो पहर है (पद ६)। यह जल भरने के लिए असाधारण समय था। ४ : ९ में हिं. सं. का अनुवाद इस प्रकार है, "(कारण यह कि यहूदी सामरियों के पात्रों का प्रयोग नहीं करते)"। स्त्री के आश्चर्य के दो कारण थे, कि वह सामरी थी, और कि वह स्त्री थी, तो भी यीशु उस से वार्तालाप कर रहा था

और उस ने जल भी मांगा था। ४ : १०-१५ इस सुसमाचार के उन अनेक स्थलों का एक उदाहरण है जहां द्वयर्थक बातें होने के कारण गलतफ़हमी हो जाती है। यीशु प्रतीकात्मक रूप से जीवनप्रद जल का उल्लेख कर रहा था, परंतु स्त्री ने सोचा कि वह बहते जल का उल्लेख कर रहा है। यह जल इस जीवन का प्रतीक है जो यीशु पवित्र आत्मा के द्वारा देता है। इस सुसमाचार में जीवनप्रद जल का उल्लेख ३ : ५; ४ : १०-१५; ७ : ३२ और १९ : ३४ में पाया जाता है। "हे प्रभु" के स्थान पर "महोदय" (हिं. सं., बुल्के) ठीक है। यूनानी शब्द "किरियस" के दोनों अर्थ संभव हैं। पद ११ और १३ में स्त्री इस विचार के कारण ऐसी बातें करती है कि यीशु साधारण बहते जल का उल्लेख कर रहा है। ४ : १२ : सामरी लोग याकूब के वंश से होने का गर्व करते थे। हमें ज्ञात नहीं है कि उनकी यह मान्यता सच है या नहीं। धर्मशास्त्र में कहीं इस बात का उल्लेख नहीं है कि याकूब ने उनको यह कूआं दिया। ४ : १३-१५ यीशु प्रदत जीवन जल उमड़ता रहेगा। यह वह आत्मिक अनंत जीवन है जो यीशु पर विश्वास करने से प्राप्त होता है। जिसको यह जल प्राप्त है वह सब परिस्थितियों में आनंद अनुभव करता है, क्योंकि उस जल का स्रोत अक्षय है। स्त्री अब तक नहीं समझती कि यीशु किस प्रकार के जल का वर्णन कर रहा है, परंतु इतना अवश्य समझ लेती है कि वह असाधारण जल है।

४ : १६-१९ : इस सुसमाचार में यीशु के अलौकिक ज्ञान पर बल दिया गया है। संभव है कि इस अंश का अभिप्राय केवल यह दिखाना है कि यीशु ने उस स्त्री का पाप प्रकट किया। परंतु यह भी हो सकता है कि स्त्री और उसके पति प्रतीक हैं। निस्संदेह स्त्री सामरी जाति का प्रतीक है। २ रा. १७ : २४-२६ में पांच जातियों का वर्णन है जो सामरिया में बसा दी गईं। उसी अध्याय के ३०, ३१ पदों में उन जातियों के सात देवताओं का उल्लेख है, परंतु एक परंपरा के अनुसार जिसकी ओर योसेपस संकेत करता है पांच ही देवता थे। अतः संभव है कि पांच पति सामरियों के मिश्रित धर्म का प्रतीक हैं, और "जिसके पास तू अब है" यहूदियों के परमेश्वर याहवे का प्रतीक है, जिसकी उपासना सामरी लोग अपूर्ण रूप से करते थे। अगले अंश से इस व्याख्या का समर्थन होता है। स्त्री का यीशु को भविष्यवक्ता कहना प्रकट करता है कि वह यीशु की महानता पहचानने लगी है।

४ : २०-२४ : सामरी लोग गरिज्जीम पर्वत पर और यहूदी लोग यरूशलेम के मंदिर में परमेश्वर की आराधना करते थे। यहूदियों की साधारण मान्यता थी कि सच्ची आराधना यरूशलेम में ही संभव है। यीशु कहता है कि वह समय जब सच्ची आराधना होगी "अब भी है", अर्थात वह समय यीशु के आगमन से आरंभ हो गया है। सच्ची आराधना सर्वदा और सर्वत्र हो सकती है। "सत्य", "सच्चा", आदि शब्द इस सुसमाचार के विशेष शब्दों में से हैं। इन शब्दों का अर्थ नैतिक और आत्मिक है। अब आराधना सच्ची, और "आत्मा से" इस कारण संभव है कि परमेश्वर स्वयं आत्मा है, और परमेश्वर का आत्मा विशेष रूप से यीशु में क्रियाशील था। वह आराधना "आत्मा और

सत्य" से है जिसके द्वारा आराधक और परमेश्वर में यथार्थ संबंध हो जाता है। उस में कोई कपट या पाखंड नहीं होता। "परमेश्वर आत्मा है" का मौलिक अर्थ यह है कि उस में सृजनात्मक शक्ति है जिसके द्वारा उसके आराधक सत्य की ओर उन्मुख हो सकते हैं।

४ : २५-३० : सामरी लोग भी ख्रिस्त के समान एक "आनेवाले' की प्रतीक्षा कर रहे थे जिसको वे "ताहेब" कहते थे। उनकी यह प्रतीक्षा व्य. १८ : १८ पर आधारित थी। "मसीह" और "ख्रिस्तुस" के संबंध में १ : ४१ की व्याख्या को देखिए। "मैं. . . .वही हूं" का शाब्दिक अनुवाद है, "मैं हूं", जो नि. ३ : १४ में परमेश्वर का नाम बताया गया है। यहां इसकी ओर संकेत है। ख्रिस्त में परमेश्वर हमारे पास आता है। यहूदियों की प्रथानुसार इस प्रकार पुरुष का स्त्री से वार्तालाप करना अनुचित था। स्त्री यीशु के संबंध में साक्षी देती है, जिसके कारण लोग उसके पास आते हैं। यीशु की अंतर्दृष्टि के कारण स्त्री उसे ख्रिस्त (ताहेब) मानने को तैयार है।

४ : ३१-३४ : पद ८ में वर्णित है कि चेले भोजन मोल लेने गए। यहां भी यीशु आत्मिक बातें करता है जिन्हें शिष्य लौकिक अर्थ में ही समझते हैं। यीशु का "भोजन" उसके स्वर्गिक पिता की इच्छा की पूर्ति करना है। यहां वह परमेश्वर को "भेजनेवाला" कहता है, जिस से विदित होता है कि "उसका काम" वह विशेष काम है जिसके लिए यीशु संसार में भेजा गया (३ : १६)। सामरी स्त्री की प्रतिक्रिया से यह काम कुछ अंशों में पूरा हो रहा था।

४ : ३५-३८ : पद ३५ में कहावत है—बीज बोने और कटनी के बीच चार महीने होते हैं। परंतु सामरिया में कटनी शीघ्र ही तैयार हो गई। लोग यीशु के पास आ रहे थे। यीशु ने "बीज" बोया था, अब शिष्य उनके साथ काटने के आनंद में सम्मिलित होंगे। पद ३७ में भी कहावत है जो संभाव्यतः शोक की भावना व्यक्त करती थी (तुलना मी. ६ : १५), परंतु यहां आनंद की भावना व्यक्त है। "औरों" शब्द से ज्ञात होता है कि बोनेवाला केवल यीशु नहीं था। अनुमान लगाया गया है कि इस शब्द से यीशु, नबी और यूहन्ना बपतिस्मा-दाता अभिप्रेत हैं। इस अंश की तुलना मर. ४ : १-९, २६-२९; मत्त. ९ : ३७, ३८=लू. १० : २ से कीजिए।

४ : ३९-४२ : सहदर्शी सुसमाचारों में सामरियों में से यीशु के शिष्य बनने का कोई वर्णन नहीं है। इस स्थल को छोड़ सामरियों के सुसमाचार को स्वीकार करने का पहला उल्लेख प्रे. ८ : ५ क्र. में है। इस अंश में यह प्रकट किया गया है कि यद्यपि यहूदी यीशु को ठुकराएं तथापि सामरी उसे ग्रहण करते हैं। उन में से अनेकों ने उस स्त्री की साक्षी के कारण विश्वास किया, परंतु अन्य लोगों ने तब ही विश्वास किया जब वे व्यक्तिगत रूप से यीशु से मिले। नया नियम में यीशु के लिए "उद्धारकर्ता" शब्द का कम प्रयोग किया गया है, और वह अधिकतर परवर्ती लेखों में पाया जाता है। कदाचित कारण यह है कि वह राजाओं और देवताओं की साधारण पदवी था। यहूदियों की तुलना में यहां सामरियों का दृष्टिकोण विस्तृत और उदार है। यीशु समस्त संसार का उद्धारकर्ता है। तुलना कीजिए ३ : १३, १७।

४ चिह्नों द्वारा उपदेश और यहूदियों के साथ वादविवाद ४ : ४३-१२ : ५०

(१) यीशु स्वास्थ्य और जीवन देता है ४ : ४३-६ : ७१

(क) राज्य कनर्मचारी के पुत्र को स्वस्थ करना ४ : ४३-५४

४ : ४३-४५ : पद ४३ और ४५ स्पष्ट हैं, परंतु पद ४४ में यह स्पष्ट नहीं है कि "अपना देश" का अर्थ क्या है। सहदर्शी सुसमाचारों में (मत्त. १३ : ५७; मर. ६ : ४; लू. ४ : २४) इसका अर्थ गलील है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस अंश में स्वाभाविक रूप से "अपना देश" यहूदिया मानना पड़ेगा, जिसको छोड़कर यीशु गलील को प्रस्थान कर रहा था, परंतु यह सहदर्शी सुसमाचारों की परंपरा के विरुद्ध है। कदाचित यह पद सुसमाचार के सम्पादक का प्रक्षेप है, इस कारण कि पद ४८ में संकेत है कि यद्यपि गलीलियों ने सहर्ष यीशु को ग्रहण किया (पद ४५) तथापि पद ४८ में संकेत है कि वे भी ऊपरी विश्वास करनेवाले थे। संभव है कि इस तथ्य की ओर भी संकेत है कि वास्तव में यीशु का संसार में कोई "घर" नहीं था। उसकी "मातृभूमि" (हिं. सं.) पिता परमेश्वर के पास थी।

४ : ४६-५४ : अधिकांश विद्वानों की मान्यता के अनुसार इस अंश में उस घटना का वर्णन है जो मत्त. ८ : ५-१२=लू. ७ : १-१० में भी वर्णित है। यूहन्ना का वर्णन एक पृथक परंपरा पर आधारित है। समानता की बातें भिन्नता की बातों से अधिक हैं। उक्त स्थलों को पढ़कर उनकी व्याख्या को देखिए।

सहदर्शी सुसमाचारों के उपरोक्त स्थलों में, जो "क्यू" (Q) स्रोत से माने जाते हैं, एक सूबेदार के सेवक का वर्णन है जो पक्षाघात से पीड़ित था। कफरनहूम का उल्लेख २ : १२ में भी हुआ है। सहदर्शी सुसमाचारों के अनुसार कफरनहूम यीशु के गलील में सेवाकाल का केंद्र रहा। यह स्पष्ट नहीं बताया गया परंतु साधारण मान्यता है, कि कर्मचारी अयहूदी था। क्यू के वर्णन में यह तथ्य स्पष्ट प्रकट किया गया है। अतः इस क्रम में पहले एक यहूदी सरदार (नीकुदेमुस) का वर्णन है, जिसका विश्वास अपूर्ण था, फिर एक सामरी का विवरण, जिसका विश्वास यीशु से वार्तालाप करते समय बहुत विकसित हो गया, और अंत में एक अन्यजाति व्यक्ति का वृत्तांत है, जो सब से अधिक विश्वास प्रकट करता है। "चिन्ह और अद्भुत काम" के संबंध में २ : ११ की व्याख्या को देखिए। यहां इन शब्दों का प्रयोग अच्छे अर्थ में नहीं है। कदाचित यीशु ने कर्मचारी के विश्वास को प्रबल और विकसित करने के अभिप्राय से यह बात कही। ४ : ४९, ५० में हम उसका विश्वास बढ़ता हुआ देखते हैं—उस ने यीशु के कथन पर विश्वास किया। "सातवें घंटे" (पद ५२) का अर्थ दो पहर के पश्चात एक बजे है। केवल इस विवरण में, और सूबेदार के सेवक तथा सूरूफिनीकी स्त्री (मर. ७ : २४ क्र.) के विवरणों में यीशु के दूर से किसी को स्वस्थ करने का वर्णन है। कर्मचारी आरंभ में ही यीशु पर विश्वास करता था परंतु यह देखकर कि लड़का उसी समय स्वस्थ हुआ जब यीशु ने कहा कि "तेरा पुत्र जीवित है" उसका विश्वास और भी दृढ़ हो गया।

४ : ५४ का अर्थ यह है कि यह दूसरी बार था कि यीशु ने यहूदिया से गलील में

आकर सामर्थ्य का कार्य किया। इसके पश्चात "चिन्हों" की गिनती नहीं की जाती।

(ख) अड़तीस वर्ष के रोगी को स्वस्थ करना ५ : १-१५

यह इस सुसमाचार के उन वर्णनों में एक है जो इस अभिप्राय से सम्मिलित किए गए हैं कि उन से यीशु के प्रवचन उत्पन्न होते हैं। इस वर्णन का प्रमुख तथ्य यीशु का सबत-उल्लंघन है। हम नहीं जानते कि किस पर्व का उल्लेख है, न ही यह जानना महत्वपूर्ण है। ५ : २-४ में बहुत पाठांतर है। संभव है कि "फाटक" का उल्लेख मूल पाठ में नहीं था, और कि "कुंड" का नाम भेड़-कुंड था। "बेतहसदा" के स्थान पर अनेक अन्य नाम भिन्न हस्तलेखों में पाए जाते हैं, जिन में से संभवत: बेथज़था ठीक है। २० वीं शताब्दी में पुरातत्वज्ञों ने इस स्थान की खुदाई की। खुदाई में ये पांच ओसारे निकले हैं, जिस से ज्ञात होता है कि इस स्थल पर भौगोलिक रूप से यूहन्ना का वर्णन बहुत यथार्थ है। हस्तलेखों की भिन्नता से संकेत होता है कि कोष्ठांकित शब्द प्रामाणिक नहीं हैं। निस्संदेह यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि यह व्यक्ति अड़तीस वर्ष से रोगी था, परंतु इस लंबी अवधि का उल्लेख यीशु की सामर्थ्य पर भी बल देता है। यीशु ने केवल इसको और जन्म के अंधे को (अध्याय ९) उनके निवेदन किए बिना स्वस्थ किया। ५ : ६ महत्वपूर्ण है—मानव जाति रोगी है; परमेश्वर उसे स्वस्थ करना चाहता है। क्या वह तैयार है? यह मनुष्य निरुपाय था, परंतु यीशु के कथन पर वह स्वस्थ हो गया। इस प्रकार रोगी मानवजाति का उपचार यीशु के शब्द से हो जाता है।

५ : १०-१५ : यहूदियों की व्यवस्था के अनुसार सबत के दिन यीशु का स्वास्थ्य-दान करना और उस मनुष्य का अपनी खाट उठाना दोनों अनुचित थे। उस मनुष्य के उत्तर में (पद ११) यह निहित है कि यीशु को अधिकार था कि उसे अपनी खाट उठाने का आदेश दे। यद्यपि यीशु ने उसके लिए इतना महान कार्य किया तो भी वह यीशु का नाम नहीं जानता था। यीशु स्वयं था जिस ने फिर उस व्यक्ति से बातें करना आरंभ किया। ९ : १-३ से हमें ज्ञात होता है कि यीशु की यह मान्यता नहीं थी कि किसी का रोगी होना उसके या किसी अन्य व्यक्ति के पाप का अनिवार्य परिणाम है। तो भी यह स्पष्ट है कि यीशु ने मान लिया कि इस मनुष्य के रोग का कारण उसका अपना पाप था। वर्तमान काल के विज्ञान से हमें ज्ञात होता है कि अनेक रोग इस प्रकार मन: शारीरिक होते हैं। अंत में यह मनुष्य यहूदियों को स्पष्ट बताता है कि उस को स्वस्थ करनेवाला यीशु ही था।

(ग) इस घटना पर आधारित अपने और परमेश्वर के परस्पर संबंध के विषय यीशु का उपदेश और यहूदियों के साथ वादविवाद ५ : १६-२९

इस अंश में परमेश्वर पिता और पुत्र के पारस्परिक संबंध का प्रतिपादन है। "यहूदियों" की दो आपत्तियां थीं (i) कि यीशु सबत के दिन कार्य करता था, और (ii) कि वह अपने आप को परमेश्वर के तुल्य बताता था। ५ : १७ महत्वपूर्ण पद है। इस

में उ. २ : १-३ और नि. २ : ११; ३१ : १७ की ओर संकेत है, जहां यह वर्णित है कि परमेश्वर ने सातवें दिन विश्राम किया। रब्बियों की परंपरा के अनुसार उसने पूर्ण रूप से विश्राम नहीं किया; सृष्टि का कार्य निरंतर होता रहा, "मेरा पिता अब तक काम करता है"। यह कहकर कि "और मैं भी काम करता हूं" यीशु ने अपने आप को परमेश्वर के तुल्य बताया, क्योंकि सबत के दिन केवल परमेश्वर को ही कार्य करने का अधिकार था। इस दूसरी आपत्ति के उत्तर का सार ५ : १९-२० में है। यद्यपि पिता और पुत्र में तत्वतः समता है तथापि यह सुसमाचार स्पष्ट प्रकट करता है कि पुत्र में एक प्रकार की अधीनता या निर्भरता है। पिता और पुत्र एक ही हैं (१० : ३०, ३८; १४ : ९-११)। पिता पुत्र के साथ और उसके द्वारा कार्य करता है (३ : ३५, १९ : १०)। पुत्र पिता पर निर्भर है और उसकी आज्ञाओं का पालन करता है (५ : ३०; ६ : ३८, ५७; ८ : २६; १० : १८; ; १२ : ४९; १४ : ३१; १५ : १०)। "इन से भी बड़े काम" मृतकों का पुनरुत्थान और अनंत जीवन की प्राप्ति है, जैसे पद २१ के शब्द "क्योंकि" से प्रकट किया गया है।

५ : २१-२३ में पिता और पुत्र की तुल्यता का विषय जारी है। यह तुल्यता मृतकों को उठाकर जीवन देने, न्याय करने, और आदर पाने के संबंध में है। पुत्र भी अपनी स्वतंत्र इच्छा से जीवन प्रदान करता है। न्याय के संबंध में ३ : १७-२१ की व्याख्या को पढ़िए। इस सुसमाचार का दृष्टिकोण यह है कि यीशु के प्रति अपनी प्रतिक्रिया के द्वारा मनुष्य स्वयं अपना न्याय कराते हैं। ५ : २४, २५ में युगांत में नहीं, इस जीवन में नए जन्म का अनुभव अभिप्रेत है। "प्रतीति" के स्थान पर "विश्वास होना चाहिए (हिं. सं., बुल्के, ध. ग्र.)। इसका अर्थ है पूर्ण व्यक्तिगत विश्वास, जिसके फलस्वरूप शाश्वत जीवन की प्राप्ति होती है और न्याय से बचाव होता है। ये बातें सब वर्तमान कालिक क्रिया द्वारा व्यक्त हैं, अतः यहां आत्मिक रूप से मृतकों का उल्लेख है। आत्मिक मृत्यु से निकलकर नया जन्म द्वारा यीशु पर विश्वास करने के परिणाम-स्वरूप नवजीवन में प्रवेश करना है। यह समय न केवल आनेवाला है वरन "अब भी है"। यह यथार्थ "जीवनमुक्ति" है।

५ : २६-२९—इस अंश में ही विषय हैं जो पद १९-२५ में भी हैं, अतः संभवतः १९-२५ में इस अंश का पुनर्विचार है। इन दो अंशों में अंतर यह है कि पद २६-२९ में युगांत-संबंधी विचार हैं, परंतु पद १९-२५ में इस जीवन में ही शाश्वत जीवन की प्राप्ति का वर्णन है। "मनुष्य का पुत्र" पदवी के संबंध में १ : ५१ की व्याख्या को पढ़िए। मनुष्य का पुत्र होने के नाते यीशु को न्याय करने का अधिकार दिया गया। पिता के समान ख्रिस्त भी जीवन-स्रोत है। ५ : २८, २९ में युगांत के संबंध में कलीसिया की साधारण मान्यता है। यूहन्ना इस मान्यता की उपेक्षा न करते हुए वर्तमान में नवजीवन की प्राप्ति पर बल देता है। कारण संभाव्यतः यह है कि जिस समय यह सुसमाचार लिखा गया उस समय तक यह स्पष्ट हो गया था कि ख्रिस्त का पुनरागमन उतना शीघ्र नहीं होगा जितना आरंभ में ख्रिस्ती लोगों ने विचार किया। यहां न्याय की कसौटी कर्म

है (तु. मत्त. २५ : ३१-४६)। यह विचारणीय है कि यहां सब के पुनरुत्थान का वर्णन है, अच्छे हों या बुरे।

(घ) यूहन्ना, मूसा, यीशु के कार्य, और स्वयं पिता इस तथ्य की साक्षी देते हैं। ५ : ३०-४७

५ : ३०-४० में चार प्रकार के साध्य का वर्णन है : (i) यूहन्ना बपतिस्मा-दाता का साक्ष्य (पद ३२-३५)। (ii) यीशु के कार्यों का साक्ष्य (पद ३६)। (iii) पिता परमेश्वर का साक्ष्य (पद ३७)। (iv) धर्मशास्त्र का साक्ष्य (पद ३९, ४०)। निस्संदेह इस विवरण पर यहूदियों के साथ कालांतर में ख्रिस्तियों के वादविवाद का प्रभाव हुआ, परंतु हम मान सकते हैं कि वह यीशु के कथनों पर आधारित है। अनेक टीकाकारों की मान्यता है कि पद ३२ में "एक और" का अर्थ यूहन्ना नहीं, बरन परमेश्वर है, परंतु विषय-क्रम के अनुसार ऐसा प्रतीत होता है कि यूहन्ना अभिप्रेत है। साक्षी के संबंध में यहूदियों का मूल सिद्धांत व्य. १९ : १५ में पाया जाता है। **पद ३३-३५** की तुलना १ : ६-९, १५ से कीजिए। पहले अध्याय में बार बार वर्णित है कि यूहन्ना ने यीशु के संबंध में साक्षी दी। यीशु यूहन्ना की महानता को स्वीकार करता है, परंतु उसकी साक्षी सब से प्रामाणिक नहीं मानता। यीशु के कार्य उसके ईश्वरत्व की साक्षी देते थे। यही हैं जो इस सुसमाचार में "चिह्न" कहे गए हैं। परमेश्वर का रूप न देखने के संबंध में १ : १८ की व्याख्या को देखिए (पद ३७)। यद्यपि परमेश्वर अब देहधारी रूप में संसार में आया था तथापि यहूदियों ने उसे नहीं पहचाना। **५ : ३९, ४०** में यहूदियों के पवित्र शास्त्र का उल्लेख है, जिस से यीशु भलीभांति परिचित था। सुसमाचारों में ८७ बार वर्णित है कि यीशु ने पुराना नियम से उद्धरण प्रस्तुत किए। यहूदियों का पक्का विश्वास था कि धर्मशास्त्र के अध्ययन से शाश्वत जीवन प्राप्त हो सकता है, तो भी वे यह नहीं पहचान सके कि उस धर्मशास्त्र की पूर्ति वास्तव में यीशु में ही है, कि जीवन का स्रोत यीशु ही है।

५ : ४१-४७—स्पष्ट है कि ये बातें यहूदियों के धर्म-नेताओं, या "रब्बियों" के विरुद्ध लिखी गई। जब वे शास्त्र के स्पष्टीकरण के संबंध में अतिस्पर्धा करते थे तब स्पष्टीकरण का उद्देश्य सत्य का प्रकटीकरण नहीं, मनुष्यों से आदर पाना था। इस कारण से ये परमेश्वर के प्रेम से अपरिचित थे (पद ४२)। "मूसा" का अर्थ व्यवस्था है। व्यवस्था के उद्देश्य की पूर्ति यीशु में हुई, अतः यीशु ने कहा "उस ने मेरे विषय में लिखा है"। यह भी संभव है कि व्य. १८ : १८ की ओर संकेत है, जहां मूसा के समान एक नबी उत्पन्न होने की प्रतिज्ञा है। ये नेता मूसा की व्यवस्था के निष्णात होने का गर्व करते थे।

(च) पांच सहस्र को भोजन कराना—जीवन की रोटी ६ : १-१५

इस विवरण की तुलना सहदर्शी सुसमाचारों के विवरणों से, विशेषकर मर. ६ : ३०-५२ से, करना चाहिए। यूहन्ना की निम्नलिखित बातें अन्य सुसमाचारों में

नहीं पाई जातीं; फसह का पर्व निकट था (४)। फिलिप्पुस से यीशु का प्रश्न, "उनके भोजन के लिए कहां से रोटियां मोल लाएं ?" (५) (मरकुस के अनुसार शिष्य यीशु से पूछते हैं)। यीशु के भविष्यवक्ता होने और उसे राजा बनाने के संबंध में बातें (१४,१५)।

संख्याओं में सब की सहमति है—दो सौ दीनार, पांच रोटियां, पांच हजार लोग।

हमें उन टीकाकारों से सहमति है जिनकी यह मान्यता है कि इस सुसमाचार के लेखक ने इस विवरण की रचना में सहदर्शी सुसमाचारों का नहीं वरन एक पृथक परंपरा का प्रयोग किया। इस विवरण का चारों सुसमाचारों में सम्मिलित होना उसकी ऐतिहासिकता का प्रबल प्रमाण है।

गलील की झील कभी कभी कालांतर में तिबिरियास कही जाती थी क्योंकि इस नाम के एक नगर का ई. स. २६ में झील के पश्चिम तट पर निर्माण हुआ। हेरोदेस अंतिपास ने इसे बनवाकर रोमी सम्राट तिबिरियुस के सम्मान में यह नाम दिया। इस स्थल पर (पद ३) केवल यूहन्ना में पर्वत पर चढ़ने का उल्लेख है। **६ : ४ :** यहूदियों के फसह के पर्व के उल्लेख का कारण यह है कि जीवन की रोटी के वर्णन में, जो इस अंश के पश्चात ही आता है, प्रभु भोज की ओर संकेत है। प्रभु भोज ख्रिस्तीय फसह के समान है। ६ : ५ : (ऊपर टिप्पणी को देखिए) यीशु के स्वयं प्रश्न पूछने का प्रतीकात्मक अर्थ यह है कि जीवन की रोटी देने में पहल करने वाला यीशु ही है। एक दीनार एक दिन की मजदूरी था। ६ : ८ : केवल यूहन्ना हमें बताता है कि अंद्रियास था जो इस लड़के को यीशु के पास लाया।

६ : ९-१३ : यह मर. ६ : ३९-४४ के समान है—उसकी व्याख्या को पढ़िए। पद ११ में "धन्यवाद करके" यूनानी शब्द "यूखरिस्तेन" का अनुवाद है, जिस से अंग्रेजी शब्द "यूखरिस्त" (प्रभु भोज) बना। मरकुस में एक अन्य शब्द का प्रयोग किया गया। इस शब्द का प्रयोग इस तथ्य का द्योतक है कि इस अंश का एक प्रमुख विषय प्रभु भोज है।

६ : १४, १५ : भविष्यवक्ता वह है जिसका उल्लेख व्य. १८ : १५, १८ में है। इसके संबंध में १ : १९-२८ की व्याख्या में देखिए। इस वर्णन से ज्ञात होता है कि लोगों ने यीशु को राजा बनाने का प्रयत्न किया। मत्त. ४ : ८-१० और लू. ४ : ५-८ से विदित है कि उसको राजा बनने का प्रलोभन दिया गया और कि उस ने पहचाना कि यह शैतान की ओर से है। यहूदियों की धारणा थी कि आनेवाला ख्रिस्त एक सांसारिक राजा होगा और ये लोग चाहते थे कि यीशु इस धारणा को पूर्ण करे। यीशु को बलपूर्वक राजनीतिक नेता बनाने के प्रयत्न का खतरा था। कदाचित यह कारण है कि उस ने अपने शिष्यों को नाव पर चढ़कर चलने पर विवश किया (मर. ६ : ४५)।

(छ) आंधी में सागर पर यीशु का आना, नाव का तुरंत अपने पहुंचने के स्थान पर पहुंचना। चेलों को आश्वस्त करना। ६ : १६-२१

इस अंश में भी यूहन्ना एक पृथक परंपरा का अनुसरण करता है। पांच सहस्त्र को भोजन कराने के पश्चात मरकुस के अनुसार शिष्य नाव पर चढ़कर बैतसैदा की ओर,

परंतु यूहन्ना के अनुसार कफरनहूम की ओर चलते हैं। यूहन्ना में इस बात का उल्लेख नहीं है कि यीशु प्रार्थना करने के लिए पर्वत पर गया। यूहन्ना का वर्णन अधिक संक्षिप्त है। ६ : १९ में "झील पर" शब्दों के स्थान पर "झील के तट पर" अनुवाद भी संभव है, परंतु अधिकांश विद्वानों की मान्यता है कि "झील पर" अभिप्रेत है क्योंकि यदि यह आश्चर्यकर्म न माना जाए तो उसका वर्णन करना निरर्थक सा हो जाता है। इस से यीशु की सामर्थ्य प्रकट होती है और प्रतीकात्मक रूप से यह शिक्षाप्रद है—संकट के समय यीशु सदा हमारे पास आता है और उस संकट में हमारी सहायता करता है। वह हमें गंतव्य स्थान पर पहुंचा देता है जहां हम अपनी सामर्थ्य और प्रयत्न से नहीं पहुंच सकते।

६ : २० में "मैं हूं" शब्दों में नि. ३ : १४ की ओर संकेत है—४ : २६ की व्याख्या को भी देखिए। ये शब्द बार बार इस सुसमाचार में पाए जाते हैं। वे भी ख्रिस्त और पिता परमेश्वर की समता को व्यक्त करते हैं। जब यीशु हमारे पास है तब परमेश्वर स्वयं हमारे पास है।

(च) जीवन की रोटी संबंधी शिक्षात्मक प्रवचन ६ : २२-५९

६ : २२-२४ का समन्वय मर. ६ : ५३ क. से करना असंभव प्रतीत होता है। मरकुस के अनुसार नाव गन्नेसरत पहुंची, जो वहीं झील के पश्चिमी तट पर स्थित था। मूल पाठ में पाठांतर प्रकट करते हैं कि भौगोलिक दृष्टि से इस अंश में गड़बड़ है, अतः वह अस्पष्ट है। लेखक का अभिप्राय भौगोलिक तथ्यों से नहीं, आध्यात्मिक सत्यों से संबंधित था।

६ : २५-३४—इस पूर्ण विवरण में "भीड़" शब्द का अर्थ स्पष्ट नहीं है। कहीं कहीं वे लोग अभिप्रेत हैं जिन्हों ने यीशु प्रदत्त भोजन खाया, कहीं कहीं अन्य लोगों का उल्लेख है। लेखक का अभिप्राय आध्यात्मिक और शिक्षात्मक है, अतः वह ऐसे ब्यौरों की उपेक्षा करता है। लेखक उन लोगों पर रोटी का लोभ करने का दोष लगाकर **पद** २७ में सार की बात को प्रस्तुत करता है। इसकी तुलना मत्त. ६ : ३३ से कीजिए। इस पद (२७) का अर्थ यह नहीं है कि कर्म (परिश्रम) से कोई शाश्वत जीवन को कमा सकता है वरन यह कि जीवन का प्रमुख लक्ष्य शाश्वत जीवन की प्राप्ति होना चाहिए। तुलना कीजिए २ कुर. ४ : १८। मनुष्य का पुत्र, अर्थात एक ईश्वरीय व्यक्ति, यह जीवन प्रदान कर सकता है। यहां "छाप कर दी है" का अर्थ यह है कि उस में परमेश्वर की सामर्थ्य है। ६ : २८, २९ में विश्वास का महत्व व्यक्त किया गया है। "विश्वास" शब्द का प्रयोग इस सुसमाचार में संज्ञा रूप में नहीं, केवल क्रिया रूप में होता है। यीशु ख्रिस्त पर विश्वास करना उसके साथ गहरा व्यक्तिगत संबंध रखना है। यही है वह कार्य जो परमेश्वर मनुष्य से चाहता है।

६ : ३०-३२ : मूसा और यीशु में तुलना की जाती है। रब्बियों की यह मान्यता थी कि जब ख्रिस्त आएगा तो वह मूसा के समान मन्ना देगा। वे मन्ना के प्रतीकात्मक और आध्यात्मिक अर्थ को भी मानते थे। **पद** ३१ में पुराना नियम के शब्द अधिकतर

नि. १६ : १५ से उद्धृत हैं। **पद ३२** का अर्थ बुल्के के अनुवाद से स्पष्ट व्यक्त है, "मूसा ने तुम्हें जो दिया था, वह स्वर्ग की रोटी नहीं थी"—सच्ची, यथार्थ रोटी वह है जो पिता दे रहा है (हिं. सं.)। **पद ३३** में हि. प्र. के अनुसार स्वर्ग की रोटी है जो जीवन देती है। हिं. सं. का अनुवाद इस प्रकार है, "परमेश्वर की रोटी वह है जो स्वर्ग से उतरकर संसार को जीवन देता है", अर्थात ख्रिस्त स्वयं। संभवतः दोनों विचार उपस्थित हैं। दूसरा विचार पद ३५ में स्पष्ट व्यक्त है।

६ : ३५-४० : स्वर्ग से उतरनेवाला स्वयं यीशु है, अतः वह जीवन की रोटी है, वही है जो मनुष्य की आत्मिक भूख को मिटा सकता है। वह अपनी उपस्थिति और सहभागिता से, और अपनी शिक्षा से इस भूख को मिटाता है। शर्तें उसके पास आना और उस पर विश्वास करना हैं। यीशु के पास आने में व्यक्ति की स्वतन्त्र इच्छा और परमेश्वर के मनोनय (Election; परमेश्वर द्वारा निर्वाचित होना) का ऐसा मिश्रण है कि हम उन्हें बौद्धिक रूप से नहीं सुलझा सकते। पद ३७ में परमेश्वर के मनोनय का पक्ष व्यक्त है। पद ३८ में पुत्र की अधीनता और निर्भरता व्यक्त है। इस में वह हमारा आदर्श है। ६ : ३९, ४० में (और ४४, ४५ में भी) "अंतिम दिन" का उल्लेख है। ११ : २४, १२ : ४८ से भी तुलना कीजिए। इस सुसमाचार में वर्तमान काल में शाश्वत जीवन की प्राप्ति और भविष्य में एक नियुक्त न्याय-दिवस दोनों विचार एक साथ पाए जाते हैं। जिसे शाश्वत जीवन प्राप्त है उसे "अंतिम दिन" का भय नहीं होता क्योंकि उसको निश्चय होता है कि उस दिन ख्रिस्त उसे जीवित उठाएगा।

६ : ४१-५१ : पद ४२ की तुलना मर. ६ : ३; मत्त. १३ : ५५ और लू. ४ : २२ से कीजिए। उस व्यक्ति को महान मान लेना जिस से हम बचपन से परिचित हैं कठिन होता है। **६ : ४४** में फिर इस तथ्य पर बल दिया गया है कि पहल करनेवाला परमेश्वर स्वयं है, न कि मनुष्य। "खींचना" उस यूनानी शब्द का अनुवाद है (हेल-कूएन) जिसका प्रयोग २१ : ६, ११ में मछलियों के भरे हुए जाल को खींचने के लिए किया गया है। अपने प्रेम से परमेश्वर मानव-जाति को आकर्षित करता है, परंतु मानव उस आकर्षण का विरोध कर सकता और करता भी है। **६ : ४५** में "वे सब परमेश्वर की ओर से सिखाए हुए होंगे" शब्द यश. ५३ : १३ का स्वतंत्र उद्धरण है। **६ : ४६** की तुलना १ : १८ और उसकी व्याख्या से कीजिए। ६ : ४७, ४८ पद ४० और पद ३५ के समान हैं। बल इस तथ्य पर दिया गया है कि वर्तमान में ही शाश्वत जीवन प्राप्य है। **६ : ४७** में शारीरिक मृत्यु का, परंतु **६ : ५०** में आत्मिक मृत्यु का वर्णन है। मन्ना के संबंध में पद ३१ क्र. की व्याख्या को देखिए। ६ : ५१ : "मांस" का अर्थ 'यीशु की देह' (हिं. सं.) है। इस में संभाव्यतः देहधारण की ओर नहीं वरन यीशु की मृत्यु और प्रभु भोज की ओर संकेत है। अब तक "जीवन की रोटी" के आध्यात्मिक पहलू का महत्व प्रकट किया गया है। आनेवाले पदों में उसके सांस्कारिक पक्ष के महत्व पर भी बल दिया जाता है।

६ : ५२-५९ : हम मान सकते हैं कि ६ : ३५-५० (या ५१) एक प्रवचन है

जिसका निर्माण लेखक ने यीशु के कथनों के आधार पर किया। अनेक विद्वानों की मान्यता के अनुसार ६ : ५२ (या ५१) —५९ लेखक की रचना है। यह भी संभव है कि ये दो अंश यीशु के कथनों के दो पृथक रूप हैं, एक जिसमें आध्यात्मिक पक्ष का महत्व प्रकट किया गया है, दूसरा जिस में सांसारिक पक्ष को अधिक महत्व दिया गया।

यद्यपि इस अंश के विचार हमें विचित्र प्रतीत होते हैं तथापि सुसमाचार के पहले पाठकों ने उन्हें समझ लिया होगा। एक साधारण मान्यता यह थी कि जो कोई उस बलि में से, जो किसी देवता के नाम चढ़ाई जाती थी, खाता था वह उस देवता के जीवन में संभागी हो जाता था। यहूदी भी मानते थे कि बलिदान करने में निहित एक विचार यह था कि किसी प्रकार से बलि चढ़ानेवाला वध किए हुए पशु के जीवन में संभागी हो जाता है। उनकी मान्यता थी कि बहाए हुए लहू में उस पशु का जीवन है। लोग बलि के मांस में से खा सकते थे। आत्मिक रूप से यीशु के मांस को खाना और उस के लहू को पीना उसको जीवन में संभागी होना है। यह कुछ अंशों में पौलुस के "ख्रिस्त में होने" के समान है। अध्याय १५ से भी तुलना कीजिए, जहां दाखलता और शाखाओं का रूपक है। यीशु की मृत्यु के द्वारा विश्वासी उस से संयुक्त हो जाता है। यीशु का जीवन उस में क्रियाशील होता है।

कदाचित इस अंश में मुख्य विचार प्रभु भोज का है। यीशु का मांस खाना और उसका लहू पीना रोटी और दाखरस को खाना और पीना है। "मांस" और "रोटी" एक हैं (पद ५६-५८)। विद्वानों ने प्रकट किया है कि मत्त. २६ : २६-२८ में प्रभु भोज से संबंधित शब्द इस विवरण में पाए जाते हैं। इस अंश के मुख्य विचार वही हैं जो पिछले अंश के भी हैं, अर्थात जीवन पाना, अनंत जीवन, अंतिम दिन उठाया जाना, ख्रिस्त में रहना, जीवित रहना, मन्ना खाना। परंतु अब यह प्रस्तुत किया गया है कि इन सब का अनुभव करने का एक प्रमुख साधन प्रभु भोज का संस्कार है। इसका अर्थ यह नहीं है कि उद्धार की प्राप्ति के लिए प्रभु भोज में सहभागी होना अनिवार्य है। इस सुसमाचार में यह विवरण प्रभु भोज के वृत्तांत का स्थान लेता है।

(झ) इस शिक्षा के कारण कुछ शिष्यों का फिर जाना। पतरस का स्वीकरण

६ : ६०-६५ : संभाव्यतः इस अध्याय की शेष बातें पद ५१-५९ से नहीं वरन पद ३५-५० से संबंधित हैं, अर्थात इन में सांस्कारिक पहलू विद्यमान नहीं है। इस अंश में केवल बारह ही शिष्यों का नहीं वरन बहुत चेलों का वर्णन है। यीशु की मांग संपूर्ण आत्मसमर्पण है, अतः बहुत लोग इस को नहीं सह सकते। **६ : ६२** में "ऊपर जाते" का अर्थ स्वर्गारोहण है। प्रश्न (यूनानी में) अधूरा छोड़ा गया है कि श्रोता या पाठक इस पर विचार करें। जब वे इस शिक्षा को सह नहीं सकते तो स्वर्गारोहण से उनकी क्या प्रतिक्रिया होगी ? **६ : ६३** की तुलना ३ : ६ से कीजिए। इस पद में "शरीर" उसी यूनानी शब्द (सार्क्स) का अनुवाद है जो पिछले अंश में "मांस" से अनूदित है, परंतु यहां यीशु की मृत्यु या प्रभु भोज की ओर कोई संकेत नहीं है। "शरीर" का अर्थ है दुर्बल पापमय मानव स्वभाव। यीशु के शब्द, विशेषकर इस अध्याय की शिक्षा, आत्मिक

और जीवनदायक हैं। ६ : ६४, ६५ में फिर यीशु की अलौकिक अंतदृष्टि का वर्णन है। लेखक यीशु को इस आरोप से बचाना चाहता था कि यीशु ने यहूदा को चुनने में गलती की। "पहले ही से" ("आरंभ से", हिं. सं.) का अर्थ यीशु के सेवाकार्य के आरंभ से है।

६ : ६६-७१ : अंतिम परिणाम यह है कि बहुत शिष्य यीशु को अस्वीकार करते हैं। विद्वानों की साधारण मान्यता है कि यह अंश इस सुसमाचार में पतरस के स्वीकरण के उस वर्णन के स्थान पर है जो मर. ८ : २०=मत्त. १६ : १६=लू. ९ : २० में पाया जाता है। ६ : ६८ में इसी प्रकार का स्वीकरण है। यह यूहन्ना रचित सुसमाचार की परिभाषा में व्यक्त है। जिसके पास अनंत जीवन की बातें हैं वही ख्रिस्त है। "परमेश्वर का पवित्र जन" का अर्थ यह है कि वह परमेश्वर के लिए अर्पित है। "पवित्र" शब्द की विषमता में यीशु यहूदा को "शैतान" कहता है। तुलना १३ : २, २७ से कीजिए। यह स्पष्ट दिखाया गया है कि हमें निर्णय करना है कि हम यीशु के पीछे हो लेंगे और उसके अनुयायी बने रहेंगे, या हट जाएंगे। यीशु का प्रश्न हम से भी किया जाता है, "क्या तुम भी चले जाना चाहते हो ?"

(२) यहूदियों से वादविवाद ७ और ८ अध्याय

(क) अपने भाइयों के कहने पर यीशु का मंडप पर्व में न जाना और भाइयों का अविश्वास ७ : १-१३

७ : १-१३ : पद १ की तुलना मर. ९ : ३० से कीजिए। मंडपों का पर्व, फसह को छोड़, यहूदियों का सब से बड़ा पर्व था, जो सितंबर-अक्टूबर में सात दिन मनाया जाता था। प्रत्येक मनुष्य के लिये, जो यरूशलेम से बीस मील के अंदर रहता था, इस पर्व में सम्मिलित होना अनिवार्य था, परंतु लोग उस में दूर-दूर से भी आते थे। यह कटनी का अवसर था, और इस्राएलियों के जंगल में फिरते रहने के स्मरणार्थ भी मनाया जाता था। हमें मरकुस रचित सुसमाचार से ज्ञात होता है कि यीशु प्रसिद्ध नहीं होना चाहता था (पद ४) वरन अपने ख्रिस्त होने को उपयुक्त समय तक छिपाना चाहता था। यीशु के भाइयों की दृष्टि में यरूशलेम में आश्चर्यकर्म करना गलील में करने की अपेक्षा कठिन था। यरूशलेम धर्म का केंद्र था। ७ : ६ में "मेरा समय" का अर्थ वही है जो अन्य स्थलों में भी है, जैसे २ : ४; ७ : ३०; ८ : २०; १२ : २७ और १७ : १ (घड़ी)। इसके संबंध में २ : ४ की व्याख्या को देखिए। "तुम्हारे लिए सब समय हैं "शब्दों में "समय" का प्रयोग साधारण अर्थों में किया गया है। **७ : ७**: "जगत" (हिं. सं. "संसार") शब्द भी इस सुसमाचार में बार बार पाया जाता है। साधारणतः पापमय संसार अभि-प्रेत है, जहां परमेश्वर की इच्छा के विरुद्ध व्यवहार होता है। ७ : ८ में फिर यीशु के "समय" का महत्व प्रकट किया गया है। यीशु के भाई "समय" के इस विशेष अर्थ को नहीं समझते। यीशु उन्हें धोखा नहीं देता। उसके अपने भाइयों के कहने पर नहीं वरन स्वेच्छा से जाना यह प्रकट करता है कि यीशु मनुष्यों के चलाए नहीं चलता था। उसका आचरण पिता परमेश्वर की इच्छा के अनुसार था। "यहूदी" का अर्थ (पद

११, १६) यहूदी धर्म के अधिकारी है, जैसे पद १३ से स्पष्ट ज्ञात होता है। यह भी स्पष्ट है कि यीशु का यरूशलेम में रहना जोखिममय था।

(ख) यीशु का पर्व में आना। उसके ज्ञान, व्यवस्था, सबत और उसे जानने के संबंध में वादविवाद। उसे पकड़ने को सिपाहियों का भेजा जाना। यीशु अपने जाने की भविष्यवाणी करता है। ७ : १४-३६

७ : १४-२४ : ऐसा प्रतीत होता है कि पद २३ का संदर्भ से कोई संबंध नहीं है, अतः अनेक विद्वानों का अनुमान है कि ७ : १४-२४ का अंश अध्याय ५ के अंत में होना चाहिए, अर्थात अड़तीस वर्ष के रोगी को स्वास्थ्य-दान के वर्णन के पश्चात। यह अनुमान ही है, हस्तलेखों में ऐसा कोई संकेत नहीं है।

यद्यपि यीशु एक प्रशिक्षित रब्बी नहीं था तथापि वह एक रब्बी के समान धर्म शास्त्र से परिचित था। यहूदियों के अधिकारी इस बात से आश्चर्य चकित थे। यीशु ने अपने घर और सभागृह में भी पढ़ा होगा, परंतु ७ : १५ का अर्थ यह है कि उसको ऐसी विद्या प्राप्त थी जैसी रब्बियों को थी—"उसको शिक्षण के बिना शास्त्र का ज्ञान कहां से मिला" (हिं. सं.)। यीशु की विद्या इस से भी बहुत गहन थी। वह कहता है कि ऐसी विद्या मानव रीति से प्राप्त नहीं हो सकती। ७ : १७ महत्वपूर्ण है। उस में यह सिद्धांत व्यक्त है कि यीशु की शिक्षा को समझने के लिए शुद्ध मन और अभिप्राय की आवश्यकता है। परमेश्वर की इच्छा की पूर्ति के लिए अपने आपको संपूर्णतः उसके हाथों में सौंप देना अनिवार्य है। केवल वह व्यक्ति जो अंतःकरण से पूर्णतः अपने को परमेश्वर के हाथों में सौंपता है यीशु की शिक्षा को ठीक से समझ सकता है। धर्मशास्त्र को समझने का रहस्य भी यही है। इस पद में और पद १८ में भी पिता पर यीशु की निर्भरता फिर स्पष्टतः व्यक्त है।

७ : १९-२४ का मुख्य विषय यहूदियों का व्यवस्था-उल्लंघन है। यहूदी पथ भ्रष्ट हो गए थे, क्योंकि वे यीशु को मानव रीति से ही समझने का प्रयत्न कर रहे थे और स्वयं अपनी व्यवस्था का उल्लंघन करते थे। उन्हों ने आज्ञाओं को एक बड़ा बोझ बनाया था, और मानव जीवन को प्रतिबंधों से बांध लिया था। जन्म से आठवें दिन लड़कों का खतना कराने की आज्ञा थी (लै. १२ : ३)। यद्यपि यह "मूसा" की व्यवस्था में सम्मिलित थी तथापि वह अब्रहाम के समय से चली आई थी। एक प्रमुख आज्ञा सबत को पवित्र रखने की आज्ञा थी। परंतु यदि संयोग से लड़के के जन्म से आठवां दिन सबत का दिन पड़ता था तो उन्हें अनुमति थी कि सबत की आज्ञा का उल्लंघन करके लड़के का खतना कराएं, और यों उस रीति को सबत से अधिक महत्व देते थे। परंतु खतना, जिस में एक पुरुष के शरीर का एक अंग काटा जाता है, ऐसा महत्वपूर्ण नहीं है। यहूदी ऐसा व्यवस्था-उल्लंघन सह सकते थे; परंतु जब यीशु ने एक मनुष्य को काटा नहीं, सर्वांग स्वस्थ कर दिया, तो उन्हों ने इस पर आपत्ति की। वे अपने धर्म की मूल बातों को महत्व नहीं देते थे। पद २० की तुलना मर. ३ : २२ से कीजिए, जो इस वर्णन के समान सबत के दिन स्वास्थ्यदान के पश्चात ही वर्णित है।

७ : २५-३६ : यरूशलेम-निवासी (बाहर से पर्व में आए हुए लोग नहीं) जानते थे कि यीशु को मार डालने का परामर्श हो रहा था, अतः इस लिए कि वह बिना रोक टोक खुल्लम-खुल्ला प्रचार कर रहा था उन्हें यह सूझा कि कदाचित अधिकारियों ने इसे ख्रिस्त मान लिया हो। परंतु वे जानते थे कि यीशु नासरत से था, और उनकी परंपरा के अनुसार कोई नहीं जान सकता था कि ख्रिस्त कहां से आएगा। यीशु प्रकट करता है कि वास्तव में वे नहीं जानते कि वह कहां से है। वह दो दावे करता है, कि ये यहूदी परमेश्वर को नहीं जानते, और कि परमेश्वर ने ही उसे भेजा है। परिणामस्वरूप यही यहूदी उसे पकड़ने का प्रयत्न करते हैं। इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि यीशु परमेश्वर की ओर से आया, उसे मानव रीति से ही नहीं समझा जा सकता। यहां फिर उसका "समय" न आने का उल्लेख है। मनुष्य उसे विवश नहीं कर सकते, क्योंकि उसका "समय" परमेश्वर के हाथों में है। ७ : ३१ से ज्ञात होता है कि यीशु के ख्रिस्त होने के विरुद्ध उपरोक्त अपत्तियों के बावजूद जन-साधारण से अनेक लोग उसके आश्चर्य-कर्मों के कारण ही उसे ख्रिस्त स्वीकार करने को तैयार थे। ७ : ३२ में अधिकारियों के उसे पकड़ने के प्रयत्न का उल्लेख है। पद ४५, ४६ में वर्णित है कि वह क्यों असफल रहा। यीशु को भेजने में परमेश्वर लोगों को ढूढ़ रहा था, परंतु थोड़े समय पश्चात यीशु फिर परमेश्वर के पास जाएगा, और फिर जो लोग उसे ढूढ़ेंगे वे उसे नहीं पाएंगे। यीशु अपनी होनेवाली मृत्यु की ओर संकेत कर रहा था। ७ : ३५ : यहूदी इस बात को भी गलत रीति से समझते हैं। "यूनानियों में तित्तर बित्तर" का अर्थ वे प्रवासी यहूदी लोग है जो बहुत देशों में हेलेनीवादी संस्कृति के वातावरण में रहते थे। साधारणतः वे यूनानी-भावी थे। यीशु के कथन का गंभीर अर्थ श्रोताओं की समझ में नहीं आ सकता था।

(ग) यीशु से जीवन जल की प्राप्ति। उसके ख्रिस्त होने के विषय में वाद विवाद। सिपाहियों का लौटना। गलील से कोई नबी उत्पन्न नहीं होता
७ : ३७-५२

७ : ३७-४४ : मंडप-पर्व सात दिन का पर्व था, परंतु एक और आठवां दिन बढ़ा दिया गया। अधिकांश विद्वानों की मान्यता है कि "पर्व के अंतिम दिन" का अर्थ यह आठवां दिन था। पर्व में प्रति दिन याजक शीलोह के कुंड जाते, एक पात्र में जल भरकर लाते और उसे वेदी पर उंडेलते थे। भ. सं. ११३-११८ गाए जाते थे। वर्षा के लिए बिनती की जाती थी। जल पवित्र आत्मा का प्रतीक माना जाता था, जिसकी प्रतिज्ञा आनेवाले ख्रिस्त के काल के संबंध में की गई थी (यश. ४४ : ३; योए. २ : २८; ३ : १८)। जल व्यवस्था का प्रतीक भी माना जाता था। संभव है कि यीशु ने उसी समय ये शब्द पुकारे जब जल उंडेला जा रहा था। सत्य जीवन उस जल द्वारा प्राप्त हो सकता है जो यीशु में से बहता है। ७ : ३८ की तुलना ४ : १४ से कीजिए। उस में "उमड़नेवाला जलस्रोत" हिं. सं.) का उल्लेख है, परंतु यहां यीशु पर विश्वास करनेवाला उस जल (जीवन) को अन्य लोगों तक पहुंचाने का साधन बनता है।

यूनानी मूल पाठ में विरामचिन्ह नहीं हैं। अनेक विद्वानों की मान्यता है कि विरामचिन्ह बदलकर अनुवाद इस प्रकार करना चाहिए, "यदि कोई प्यासा हो तो मेरे पास आए, और जो मुझ पर विश्वास करता है वह पिए। जैसा पवित्र शास्त्र में आया है, उस के हृदय में से जीवन के जल की नदियां बह निकलेंगी"। इस अनुवाद का एक संभव अर्थ यह है कि जीवन के जल की नदियां यीशु में से बह निकलेंगी। यह भी एक सत्य और अत्यंत उपयुक्त विचार है। तो भी हमें पहला अनुवाद अधिक संभव प्रतीत होता है।

पहला अनुवाद हो या दूसरा, "जैसा पवित्र शास्त्र में आया है,, शब्द कठिन हैं, क्योंकि उक्त उद्धरण शब्दशः पुराना नियम में नहीं मिलता। हम केवल कुछ स्थलों का उल्लेख कर सकते हैं जहां कुछ कुछ समान विचार पाया जाता है, जैसे यश. १२ : ३; ४३ : १८-२१; ४४ : ३; ४८ : २१; ५५ : १; ५८ : ११ और ज. १४ : ८ (जो मंडप-पर्व के लिए एक नियुक्त पाठ था)।

७ : ३९ : इस में लेखक का स्पष्टीकरण है। इस से पहले आत्मा का उल्लेख १ : ३२, ३३; ३ : ५-८; ४ : २३, २४; ६ : ६३ में हुआ है। उसके संबंध में स्पष्ट शिक्षा १४ : १६, १७, २६; १५ : २६; १६ : १३ क्र. और २० : २२ में है। "आत्मा अब तक न उतरा था" का शाब्दिक अनुवाद है, "आत्मा अब तक नहीं था"। विद्वानों में सहमति है कि इसका अर्थ यह नहीं हो सकता कि यीशु के पुनरुत्थान से पूर्व पवित्र आत्मा का अस्तित्व नहीं था। पुराना नियम में उस के कार्य और प्रभाव का वर्णन है। अतः हिं. सं. और बुल्के का अनुवाद अच्छा है, "आत्मा अभी तक प्रदान नहीं किया गया था"। वह ख्रिस्त का विशेष वरदान है। "महिमा" के संबंध में १३ : ३१ की व्याख्या को देखिए।

७ : ४०-४४ : "भविष्यवक्ता" के संबंध में १ : १९-२१ की व्याख्या को देखिए। "क्या मसीह गलील से आएगा ?" शब्दों में यह निहित है कि पूछनेवाले यीशु के बैतलहम में जन्म लेने की परंपरा से अपरिचित थे। इस संबंध में पवित्र शास्त्र की बात मी. ५ : २ में पाई जाती है। यह परंपरा पद २७ में वर्णित परंपरा से भिन्न है।

७ : ४५-५२ : सिपहियों के भेजे जाने का वर्णन पद ३२ में है। स्पष्टतः इन सिपाहियों पर यीशु के व्यक्तित्व का बड़ा प्रभाव हुआ था। फरीसियों को धर्म शास्त्र के विशेषज्ञ होने का बड़ा गर्व था, अतः वे जनसाधारण का, जो शास्त्रों से अनभिज्ञ था तिरस्कार करते थे। जनसाधारण वह जनता है जो इब्रानी में "ऐम हा आरेत्स" अर्थात "देश के लोग" कहे जाते थे। "देश के लोग" में और फरीसियों में बहुधा परस्पर बैर होता था। यहां फरीसी ऐसे लोगों को शापित कहते हैं जो यीशु को ख्रिस्त मानने को तैयार थे। नीकुदेमस (३ : १ क्र. को देखिए) यहां साहसी व्यक्ति दीख पड़ता है। फरीसियों के कथन का अर्थ यह है कि कोई नबी गलील में उत्पन्न नहीं होगा (विशेष कर वह नबी जिसका उल्लेख व्य. १८ : १५, १८ में है ?), क्योंकि २ राजा १४ : २५ में योना, अमित्तै के पुत्र का वर्णन है, जो गथेपेरनिसी कहा गया है। गथेपेर गलील में स्थित था।

(घ) व्यभिचारिणी का उद्धार ७ : ५३—८ : ११

यह अंश सर्वश्रेष्ठ प्राचीन हस्तलेखों में कहीं भी नहीं पाया जाता। इस कारण से वह कोष्टकांकित है। वह परवर्ती काल के अनेक गौण हस्तलेखों में इस स्थल पर, एक गौण हस्तलेख में ७ : ३६ के पश्चात, एक अन्य हस्तलेख में २१ : २४ के पश्चात, और एक हस्तलेख में लूका २१ अध्याय के पश्चात पाया जाता है। विद्वानों की साधारण मान्यता है कि यह इस सुसमाचार का वास्तविक अंश नहीं है। उसकी शैली यूहन्ना की शैली नहीं है। तो भी अधिकांश विद्वानों की मान्यता के अनुसार वह सुसमाचार-वृत्तांत का वास्तविक भाग है।

७ : ५३-८ : ११ : शास्त्री और फरीसी, अर्थात व्यवस्था के विशेषज्ञ, इस स्त्री को यीशु के पास लाए। निस्संदेह वह दंड के योग्य थी, और इस अपराध का दंड लै० २० : १० और व्य. २२ : २२-२४ के अनुसार मृत्यु था। मिशनाह में भी इस प्रकार का स्पष्ट आदेश है। तो भी ८ : ६ से ज्ञात होता है कि यीशु से यह प्रश्न पूछने में इन नेताओं को न्याय करने में कोई रुचि नहीं थी। तुलना कीजिए मर. १२ : १३-२४, जहां यहूदी नेता यीशु की परीक्षा करते हैं। हम नहीं जानते कि यीशु ने क्या लिखा और क्यों लिखा। यदि यीशु उत्तर में कहता कि इस को पत्थरों से मार डालना चाहिए तो उस पर निर्दयता का दोष लगाया जा सकता था। संभव है कि रोमी शासन की ओर से यहूदियों को मृत्युदंड देने का अधिकार प्राप्त नहीं था। तब यीशु पर शासन का विरोध करने का आरोप भी हो सकता था। यदि वह कहता कि "इसे जाने दो" तो मूसा की व्यवस्था का उल्लंघन करने का दोषी ठहरता। व्यवस्था की मांग थी कि दोष लगानेवाला दोषी को मारने में स्वयं पहल करे (व्य. १३ : ९, १७ : ७, तुलना प्रे. ७ : ५८)। यहां यह तथ्य प्रस्तुत किया गया है कि यीशु मानव स्वभाव से पूर्ण रूप से परिचित था। प्रत्येक मनुष्य अपने आपको अपराधी मानने लगा, और किसी को साहस नहीं हुआ कि उस स्त्री को दंड देने में पहल करे। स्त्री से कहे गए यीशु के शब्दों का अर्थ यह नहीं है कि वह पाप को हल्की बात समझता थी—उसकी शिक्षा से हमें ज्ञात है कि यह सच नहीं है। "जा, और फिर पाप न करना" शब्दों में सच्ची क्षमा व्यक्त की गई है, परंतु साथ ही साथ यह भी प्रकट किया गया है कि पापी को क्षमा पाकर अपने पाप का परित्याग करना है। इस शिक्षाप्रद विवरण से हमें यह पाठ मिलता है कि कोई व्यक्ति ऐसा धर्मी नहीं है कि वह अन्य व्यक्ति का निर्णय कर सके।

(च) यीशु संसार की ज्योति है; इस शिक्षा के संबंध में वादविवाद, और इस संबंध में भी कि वह कौन है और कहां से आया है (१२-३०)। पाप का दासत्व, सत्य के द्वारा स्वतंत्र होना, अब्रहाम के वंशज होना, यीशु का पिता परमेश्वर है, यीशु अब्रहाम से भी बड़ा, यहूदी उस पर पत्थर फेंकना चाहते हैं, पर वह निकल जाता है (३१-५९) ८ : १२-५९

इस अध्याय के शेष भाग में यीशु और यहूदियों में वाद-विवाद का वर्णन है।

संभाव्यत: इस पर लेखन-काल के वाद-विवाद का प्रभाव है, परंतु वर्णन मूल रूप से ऐतिहासिक है। संभवत: इस अध्याय में भी मंडप-पर्व का विचार निहित है। मंडप-पर्व की एक अन्य रीति यह थी कि उसके पहले दिन संध्याकाल में मंदिर में चार बहुत बड़े दीप जलाए जाते थे, जिन से चारों ओर प्रकाश पहुंचता था।

८ : १२-२० : "जगत की ज्योति मैं हूं" शब्द फिर ९ : ५ में हैं। उनका प्रतिपादन उसी अध्याय में है। इसके संबंध में १ : ४-९ और उसकी व्याख्या को देखिए। यीशु के पीछे चलना सुसमाचारों का एक विशिष्ट विचार है। तुलना कीजिए १ यू. १ : ५-७। साक्षी (गवाही) के विषय के संबंध में ५ : ३१-३६ और उसकी व्याख्या को देखिए। वहां कहा गया कि अपनी साक्षी सच्ची नहीं होती, परंतु यहां यह दावा है कि वह सच्ची है, और इसका कारण भी बताया गया है। पद १८ में व्यवस्था की मांग के अनुकूल दो साक्षियों का उल्लेख है (व्य. १७ : ६; १९ : १५)। यीशु कहां से आया और कहां को जाता है, इसका वर्णन ७ : २७, २८ और ३३-३५ में भी है। ८ : १५, १६ में दो प्रकार के न्याय का वर्णन है। फरीसी "शरीर के अनुसार", अर्थात मानव रीति से, न्याय करते हैं, परंतु यीशु का न्याय केवल मानव नहीं, परमेश्वर का है। तुलना कीजिए ३ : १७-२१; ५ : २२-३० और उनकी व्याख्या। ८ : १९ में "जानने" का अर्थ अनुभव से जानना है, न केवल परमेश्वर के संबंध में बौद्धिक ज्ञान की प्राप्ति है। फरीसी परमेश्वर के विषय में बहुत जानते थे, परंतु वास्तविक रूप से और व्यक्तिगत अनुभव से उस से परिचित नहीं थे। ८ : २० : भंडार घर मंदिर में स्त्रियों के आंगन में स्थित वह स्थान था जहां मंदिर का कोष रखा जाता और लोग अपना दान डालते थे। फिर यीशु का "समय" अब तक न आने का उल्लेख है।

८ : २१-३० : इस अंश में भी यह विषय है कि यीशु कहां से आता है और कहां जाता है। देखिए ७ : ३३, ३४। दोनों स्थलों में यहूदी उसका अर्थ गलत समझते हैं। अध्याय सात में वे पूछते हैं, क्या वह प्रवासी यहूदियों के पास जाएगा? यहां प्रश्न यह है कि क्या वह आत्महत्या करेगा? "नीचे के", "ऊपर के", "संसार के" की तुलना ३ : ३१ से कीजिए। "संसार" के अर्थ के संबंध में ७ : ७ की व्याख्या को देखिए। अपनी प्राथमिक प्रतिक्रिया के कारण यहूदी यीशु की बातें नहीं समझते। उनके विचार "नीचे के", "संसार के" हैं। ७ : २४ में यह विचार सन्निहित है कि इस प्रतिक्रिया के लिए यहूदी उत्तरदायी हैं। विश्वास न करने में वे यीशु प्रदत्त जीवन को अस्वीकार करते हैं, इस लिए अपने पापों में मरेंगे। इसी पद में "मैं वही हूं" शब्दों के मूल यूनानी पाठ का शाब्दिक अनुवाद केवल "मैं हूं" है, जैसे हिं. सं. में है (तुलना ६ : २०; ८ : २८, ५८; १३ : १९; १८ : ५, ६। ६ : २० की व्याख्या को पढ़िए)। जिन यूनानी मूल शब्दों का प्रयोग यहां किया गया है ("एगो एमी") वही शब्द बहुधा सेपत्वागिंता में पाए जाते हैं, उदाहरणार्थ व्य. ३२ : ३९; यश. ४१ : ४; ४३ : १०, १३; ४६ : ४; ४८ : १२। यश. ४३ : १० (सेपत्वगिंता) का अनुवाद निम्न रूप में है, "...कि समझकर मेरी प्रतीति करो और यह जान लो कि मैं (वही) हूं"। यूहन्ना के इस विवरण में यह स्पष्ट

दावा है कि ख्रिस्त परमेश्वर के तुल्य है, क्योंकि उसके संबंध में इन्हीं शब्दों का प्रयोग किया गया है। इस में नि. ३ : १४ की ओर संकेत है ("मैं जो हूं सो हूं") ।

८ : २५ में यीशु का उत्तर बहुत अस्पष्ट व्यक्त किया गया है । हि. सं. की पाद-टिप्पणी में इसका वैकल्पिक अनुवाद "मैं तुम से क्यों बोलूं ?" किया गया है। निश्चित रूप से जानना कि यह उत्तर क्या था असंभव है। ७ : २६-२६ में फिर इस तथ्य का महत्व प्रकट किया गया है कि यीशु पिता परमेश्वर पर निर्भर था। इसके संबंध में ५ : १६, २० की व्याख्या को पढ़िए। ८ : २८ : परमेश्वर के पुत्र का ऊंचे पर चढ़ाए जाने का अर्थ उसकी मृत्यु है (३ : १४; १२ : ३२-३४)। क्रूस पर यीशु का ईश्वरत्व प्रकट किया गया, और यह भी दिखाया गया कि परमेश्वर यीशु के समान है। परमेश्वर वही करता है जो यीशु कर रहा था। यीशु के कार्य परमेश्वर के कार्य थे। ८ : ३० : इस विवरण में बारी बारी यहूदियों के अविश्वास और उन में से अनेकों के विश्वास का वर्णन है। स्पष्ट है कि यह विश्वास भी पूर्ण, दृढ़ और परिपक्व विश्वास नहीं है।

८ : ३१-३८ : संभाव्यतः "जिन्हों ने उनकी प्रतीति की थी" वही हैं जिन्हों ने विश्वास किया, अतः दोनों पदों में विश्वास करने का उल्लेख है। अनेक विद्वानों की मान्यता है कि ये पद संदर्भ से असंगत हैं, क्योंकि ४०, ४८, ५२, ५३, ५६ जैसे पदों से ज्ञात होता है कि वे लोग जो संबोधित किए जा रहे थे यीशु पर कुछ भी विश्वास नहीं करते थे। ऐसे विद्वानों का अनुमान यह है कि सुसमाचार के सम्पादक ने ये पद जोड़े। "बने रहना" यूहन्ना के विशिष्ट शब्दों में से हैं। यीशु के वचन में बने रहने का अर्थ पूर्ण रूप से स्वयं को उसके हाथों सौंप देना, आत्मसमर्पण करना है (तुलना कीजिए ७ : १७)। यीशु प्रदत्त स्वतंत्रता राजनीतिक, सामाजिक, या किसी अन्य प्रकार की स्वतंत्रता से अत्यंत गहन और सार्थक है, क्योंकि वह पाप, स्वार्थ, वस्तुओं, लोगों और परिस्थिति के बंधनों से स्वतंत्रता है। यहां भी सत्य को जानना केवल बौद्धिक नहीं, अनुभवात्मक और नैतिक है। यहूदी विशेष रूप से अब्रहाम को अपना पूर्वज मानते थे, और उन में से अनेक की मान्यता यह थी कि अब्रहाम के वंश के होने के कारण हमारा बुरा नहीं हो सकता। यह कहकर कि "हम कभी किसी के दास नहीं हुए" यहूदी भूल गए कि शताब्दियों से उनकी जाति भिन्न भिन्न अन्य जातीय राष्ट्रों के दासत्व में रही थी। पाप के दासत्व से सब परिचित हैं। यह एक विवशता है जो स्वाभाविक रूप से मानव स्वभाव में पाई जाती है---स्वार्थ की विवशता। परमेश्वर का पुत्र यीशु इस दासत्व को तोड़ता है, मनुष्य को उस से स्वतंत्र करता है। यथार्थ स्वतंत्रता यही है।

८ : ३५ : घर परमेश्वर का है, अर्थात इस्राएल। संभव है कि यह पद भी यहां किसी अन्य संदर्भ से जोड़ा गया क्योंकि यह भी असंगत सा प्रतीत होता है। कदाचित वह "पुत्र" के उल्लेख के कारण जोड़ा गया। इस्राएली लोगों के अब्रहाम के वंशज होने के कारण चाहिए था कि वे यीशु को पहचानते, परंतु नहीं पहचाना (३७)। ८ : ३८ पद ४४ में स्पष्ट कहा गया है कि उनका पिता शैतान था। परंतु इस पद में पाठांतर है। संभव है कि अनुवाद इस प्रकार हो "जो कुछ मैं ने पिता के यहां देखा, वही कहता

हूं। इसी प्रकार तुम भी जो कुछ पिता से सुनते हो, वही करो"। इस अनुवाद में दोनों बार "पिता" परमेश्वर ही है।

८ : ३९-४७ : पद ३३ और उसकी व्याख्या को देखिए। यहूदी कहते थे कि हम अब्रहाम की संतान हैं। वे अब्रहाम को अपना सब से महान कुलपति और प्रमुख भक्त मनुष्य मानते थे। उनकी मान्यता थी कि उसके वंश से होने के कारण ही हम उद्धार पाएंगे, चाहे हमारा व्यवहार कुछ भी हो। ८ : ३९, ४० में यीशु इस विचार को गलत प्रमाणित करता है। मूल रूप से अब्रहाम की संतान होने का प्रमाण कर्म से दिया जाता है। "अब्रहाम के समान काम" मुख्यत: विश्वास करना था (उदाहरणार्थ गल. ३ : ६-९)। ८ : ४१ में यह भी एक साधारण यहूदी विचार था कि परमेश्वर पिता है (व्य. ३२ : ६; यश. ६३ : १६)। "हम" शब्द पर बल दिया गया है, अत: संभाव्यत इस कथन में संकेत है कि जिस ने व्यभिचार से जन्म लिया वह यीशु स्वयं है। कालांतर में यह आरोप यीशु पर बहुधा लगाया जाता था। ८ : ४२, ४३ : यीशु को अस्वीकार करने और उसका वचन न समझने से यहूदी यह प्रमाणित करते हैं कि उन में परमेश्वर के प्रति प्रेम नहीं है। यदि वास्तविक प्रेम होता तो ये यीशु को पहचानते (तुलना कीजिए पद ३१, ३२, ७ : १७)। ८ : ४४ में बड़ी कटु उक्ति है। संभाव्यत: इस अध्याय का शाब्दिक रूप सुसमाचार के लेखनकाल के वाद-विवाद के वातावरण में गढ़ा गया। यह वाद-विवाद उस समय ख्रिस्तियों और यहूदियों में हो रहा था। शैतान हत्यारा है यह विचार संभाव्यत: उ. ४ : ८ पर आधारित है। १ यू. ३ : १२ में एक परंपरा का उल्लेख है कि कैन, जिस ने अपने भाई को मारा, "उस दुष्ट से था", अर्थात, शैतान की संतान था। ८ : ४५ से ज्ञात होता है कि श्रोता यीशु पर विश्वास नहीं करते थे। ८ : ४६, ४७ : यदि इन में परमेश्वर की संतान का स्वभाव होता तो वे यीशु को, और उसके सत्य को पहचानते। यहां यीशु निष्पाप माना गया है, तुलना कीजिए इब्र. ४ : १५। इन पदों में जो सच और झूठ के संबंध में कहा गया है उस पर मनन चिंतन करना चाहिए।

८ : ४८-५७ : यहूदी लोग सामरियों का तिरस्कार करते थे। प्रे. ८ : ९ क्र. में शमौन जादूगर का वर्णन है। कालांतर में इसके विषय में यह परंपरा प्रचलित हुई कि उस में दुष्ट आत्मा थी। संभव है कि इस परंपरा के प्रभाव से यीशु पर यह दोष लगाया कि वह सामरी है और उस में दुष्ट आत्मा है। ८ : ४९, ५० : वास्तव में यीशु अपना सम्मान नहीं चाहता था, उस ने "दास का स्वरूप ग्रहण" किया (फिलि. २ : ७)। वह "एक" जो उसका सम्मान चाहता है, और न्याय करता है, परमेश्वर ही है। ८ : ५१ में आत्मिक मृत्यु का उल्लेख है—तुलना कीजिए ५ : २४ और उसकी व्याख्या। ८ : ५२, ५३ : यदि यीशु के वचन पर चलनेवाला नहीं मरेगा तो यीशु अब्रहाम और नबियों से बड़ा है, क्योंकि ये सब मर गए। इस में यहूदी शारीरिक मृत्यु का वर्णन करते हैं। ८ : ५४ की तुलना पद ५० और उसकी व्याख्या से लीजिए। ८ : ५६-५९ : यहूदी नहीं मान सकते थे कि कोई मनुष्य अब्रहाम से बड़ा हो सकता है। यीशु नहीं मानता था कि वह किसी प्रकार से अब्रहाम के विरोध में था। अब्रहाम ने उसका दिन देखा और मग्न

(हिं. सं. उल्लसित) हुआ। एक प्राचीन परंपरा थी कि परमेश्वर ने अब्रहाम पर आनेवाले ख्रिस्त के समय की बातें प्रकट की थीं, और कि चमत्कारात्मक रूप से वह व्यवस्था की सारी बातें, जो कालांतर में लिखी गईं, जानता था। अतः यीशु का यह कथन ख्रिस्त होने का दावा करने के तुल्य है। "मैं हूं" शब्दों की व्याख्या ८ : २४ की टिप्पणी में की गई है, उसे पढ़िए। यहां यह एक अत्यंत प्रभावशाली कथन है। यह ईश्वरत्व का बहुत स्पष्ट दावा है, जिस में ख्रिस्त के पूर्व-अस्तित्व का विचार भी प्रत्यक्ष रूप से व्यक्त है। यहूदी आनेवाले ख्रिस्त की खोज में थे, तो भी जब वह आया तब उसके कथन उन्हें परमेश्वर की निंदा प्रतीत होते थे। इस कारण उन्हों ने अंत में उसे मरवा डाला।

(३) शिक्षा और यहूदियों से वाद-विवाद अध्याय ९ और १०

(क) जन्म के अंधे को दृष्टिदान ९ : १-७

इस अंश में एक और घटना का विवरण है जिसका प्रयोग एक गहन तथ्य को प्रस्तुत करने के लिए सुसमाचार लेखक करता है। अन्य सुसमाचारों में भी ऐसे वर्णन हैं, परंतु उनका आध्यात्मिक अर्थ इतने स्पष्ट रूप से नहीं बताया गया। इस विवरण की शिक्षा यह है कि वास्तविक दृष्टि यीशु देता है, आत्मिक आंखों को खोलनेवाला वही है। इस अंश में विवरण और शिक्षा पृथक नहीं रखे गए हैं, वे मिश्रित हैं।

९ : १-७ : इस घटना के स्थान और समय के संबंध में कोई संकेत नहीं है। सहदर्शी सुसमाचारों में साधारणतः लोग यीशु के पास आते हैं, परंतु यहां यीशु पहल करता है (पद ६)। ९ : २ में यहूदियों की साधारण मान्यता व्यक्त है कि दुःख दुःखी व्यक्ति के अपने निजी पाप के फलस्वरूप होता है। यीशु की यह मान्यता नहीं थी, अतः वह यहां उसका प्रत्यक्ष विरोध करता है। यू. ५ : १४ और मर. ५ : ५ से ज्ञात होता है कि यीशु मानता था कि कभी कभी रोगी का रोग उसके पाप के परिणामस्वरूप होता है, परंतु यह संबंध अनिवार्य ही है। उक्त स्थलों की व्याख्या को देखिए। दुख सहना माता पिता के पाप के कारण होने का विचार नि. २० : ५ में पाया जाता है। उस काल में अनेक यहूदियों की यह मान्यता भी थी कि जन्म लेने से पहले भी बच्चे से पाप होना संभव है। ९ : ३ का अर्थ यह नहीं है कि परमेश्वर ने उस मनुष्य को अंधा किया कि फिर उसको दृष्टिदान के द्वारा अपनी महिमा प्रकट करे, वरन केवल यह, कि उसका अंधा होना परमेश्वर की महिमा के प्रकटीकरण का उपयुक्त अवसर था। ९ : ४, ५ में "दिन" तब तक है जब तक यीशु संसार में है; उसका चला जाना रात है। यहां वही तथ्य व्यक्त है जो ८ : १२ में भी है। वास्तव में हम "जब तक मैं जगत में हूं" शब्दों को शाब्दिक रूप में ही नहीं मान सकते, क्योंकि यीशु के पुनरुत्थान के पश्चात वह विशेष रूप से संसार की ज्योति प्रमाणित हुआ। ९ : ६ (तु. मर. ७ : ३३; ८ : २३) इसके संबंध में मर. ७ : ३३ की व्याख्या को पढ़िए। ९ : ७ शीलोह का कुंड यरूशलेम नगर के भीतर दक्षिण की ओर स्थित था। इसका विवरण बाइबल ज्ञानकोश में पढ़िए। यह वही कुंड है जिस में से मंडप पर्व के लिए पानी भरा जाता था (७ : ३७ की व्याख्या को देखिए)।

(ख) इस कार्य के आधार पर फरीसियों के साथ सबत-उल्लंघन करने और यीशु का परमेश्वर की ओर से होने पर वाद-विवाद ९ : ८-४१

इस अंश में प्रश्नोत्तर की श्रृंखला के द्वारा क्रमानुसार गहरे सत्य प्रकट किए गए हैं। धीरे धीरे अंधा यीशु की महानता पहचानता जाता है (पद ११, १७, ३३, ३७-३८)। साथ ही विरोधी फरीसियों का विरोध बढ़ता जाता है (१६, १८, २४, २८-२९, ३४)।

९ : ८-२३ : पद ८-१२ में यह प्रमाणित किया जाता है कि सचमुच अंधा स्वस्थ किया गया था। **पद ११** में अंधा यीशु को "मनुष्य" ही (हिं. सं.) कहता है। **९ : १३-१६** : साधारणत: इस सुसमाचार में यहूदियों के नेता केवल "यहूदी" कहे गए हैं (जैसे इस अध्याय के १८, २२ पदों में) परंतु यहां वे विशेष रूप से फरीसी कहे गए हैं। अब यह तथ्य खुलता है कि यह घटना सबत के दिन हुई। फरीसियों में दो मत हो जाते हैं, (i) कि यीशु पापी था क्योंकि उस ने सबत के नियम का उल्लंघन किया था। (ii) कि वह ऐसा महापुरुष था जिस पर सबत का नियम लागू नहीं था। **९ : १७** : अब यीशु के प्रति अंधे का बढ़ता हुआ बोध दृष्टिगोचर होने लगता है, वह उसे भविष्यवक्ता (नबी) कहता है। **९ : १८-२३** : फरीसियों ने अंधे की प्रतीति नहीं की। स्पष्ट है कि उसके माता पिता इस झंझट में नहीं फंसना चाहते थे। अत: यद्यपि उन्हों ने इस घटना के तथ्यों के सत्य को मान लिया तो भी सारी बात अपने पुत्र पर लादी। अधिकांश ख्रिस्ती विद्वानों में सहमति है कि यीशु के जीवनकाल में यीशु को ख्रिस्त स्वीकार करने के कारण सभागृह से बहिष्कार नहीं होता था। मरकुस रचित सुसमाचार के अनुसार यीशु ने कम से कम अपने सेवाकाल के पूर्वार्द्ध में ख्रिस्त होने का दावा नहीं किया। अत: बहिष्कार के उल्लेख में लेखनकाल की कलीसिया की परिस्थिति प्रतिबिंबित है। हमें ज्ञात है कि पहली शताब्दी ईसवी के अंत में ऐसा बहिष्कार होता था। वह दो प्रकार का था, थोड़ी अवधि के लिए, या जीवन भर के लिए। अंधे के माता पिता अवश्य किसी प्रकार के दंड से डरते थे।

९ : २४-३४ : "परमेश्वर की स्तुति कर" शपथ खाने का सूत्र था ("परमेश्वर का आदर कर", यहो. ७ : १९)। "हम जानते हैं" और "मैं एक बात जानता हूं" शब्दों में विषमता है। फरीसियों का ज्ञान सैद्धांतिक था, अंधे का ज्ञान अनुभवात्मक था। फरीसी वास्तव में यीशु की यथार्थता के संबंध में कुछ भी नहीं जानते थे। अंधे का ज्ञान ठोस और स्थिर था, अत: वह फरीसियों के विरोध से नहीं डगमगा सकता था। अंधे के इस प्रसिद्ध कथन में सुसमाचार के व्यावहारिक पक्ष का सार निहित है। **९ : २६, २७** : फरीसी अंधे को वाद-विवाद के जाल में फंसाने का प्रयत्न करते हैं। कदाचित उन्हें आशा थी कि वह अपनी पिछली बात को काटेगा। अंधा उनके फंदे में नहीं फंसता, वह उन से अधिक चतुर है। **९ : २८, २९** : मूसा व्यवस्था देनेवाला था। नि. ३३ : ११ में वर्णित है कि यहोवा मूसा से आमने सामने बातें करता था। "कहां का है" के संबंध में ७ : २७; ८ : १४ और उनकी व्याख्या को देखिए। **९ : ३०-३३** आश्चर्य की बात यह थी कि धर्म के अध्यापक होते हुए भी वे यीशु की यथार्थता को नहीं पहचानते

थे। यह यहूदियों की साधारण मान्यता थी कि परमेश्वर पापियों की नहीं सुनता परंतु भक्तों की सुनता है। अंधा इस माने हुए सिद्धांत का अनिवार्य परिणाम, अर्थात कि यीशु पापी नहीं वरन भक्त है, प्रस्तुत करता है। स्पष्ट शब्दों में वह कहता है कि यीशु परमेश्वर की ओर से था (तु. ३ : २)। **९ : ३४** : फरीसी इस वाद-विवाद में पराजित होते हैं और खिसियाकर तिरस्कार और अपमान की शरण लेते हैं। इस पद में सभागृह से औपचारिक बहिष्कार का वर्णन नहीं है।

९ : ३५-४१ : सर्वश्रेष्ठ हस्तलेखों की साक्षी है कि "परमेश्वर के पुत्र" के स्थान पर "मानव पुत्र" (हिं. सं., बुल्के, ध. ग्र.) होना चाहिए। इस पदवी के संबंध में १ : ५१ की टिप्पणी को देखिए। यहां न्याय के विषय के प्रसंग में इस पदवी का प्रयोग उपयुक्त है, तु. ५ : २७। अंधा इस पदवी के अर्थ के संबंध में नहीं वरन यह जानने के लिए प्रश्न पूछता है कि कौन सा व्यक्ति मानव पुत्र है। **९ : ३६** में "हे प्रभु" के स्थान पर संभाव्यतः "महोदय" (हिं. सं., बुल्के) होना चाहिए। यूनानी शब्द (किरिये) के दोनों अर्थ होते हैं परंतु वर्णन का विकास अब तक इस चरण तक नहीं पहुंचा जहां अंधा यीशु को "प्रभु" मान सकता था। इसका प्रमाण अंधे का प्रश्न है। **पद ३८** में जब उसकी आत्मिक आंखें पूर्ण रूप से खुलती हैं वह यीशु को "प्रभु" मानकर विश्वास करता है। यह व्यक्ति उन सब लोगों का प्रतीक है जो ख्रिस्त के प्रकाश में आकर जीवन-परिवर्तन का अनुभव करते हैं। **९ : ३९** में ज्योति होने का अनिवार्य परिणाम प्रकट किया गया है। न्याय के संबंध में ३ : १७-२१ और उसकी व्याख्या को पढ़िए। इस पद में यश. ६ : १० का संकेत है, जो मर. ४ : १२; मत्त. १३ : १५ और यू. १२ : ४० में उद्धृत है।

इस अध्याय के तीन अंतिम पदों में इसका सारांश पाया जाता है। मनुष्य स्वतंत्र इच्छा का अधिकारी है, वह ज्योति को स्वीकार या अस्वीकार कर सकता है। जो उसको अस्वीकार करते हैं वे अपने अंधेपन में रहने को चुन लेते हैं, अतः उनका पाप बना रहता है। इस में और मर. ३ : २९ में समानता है—उसकी व्याख्या को पढ़िए।

(ग) यीशु भेड़ों का द्वार और उत्तम मेषपाल है १० : १-२१

१० : १-६ : भेड़ों और चरवाहों का उदाहरण पुराना नियम में बहुत बार मिलता है। इस्राएल के नेता चरवाहे कहलाते हैं और इस्राएल परमेश्वर का झुंड है (यश. ४० : ११; यि. २३ : १-४; भ. ७४ : १, ७५ : ७, आदि)। वे चरवाहे अविश्वस्त निकले (दे. यहे. ३४ अध्याय; ज. ११ : ३-९)। ऐसे स्थल इस अध्याय की पृष्ठभूमि में हैं। ऐसे दुष्ट अयोग्य चरवाहों की विषमता में यीशु अच्छा चरवाहा है। तुलना कीजिए मत्त. १८ : १२-१४; लू. १५ : ३-७; मर. ६ : ३४; १४ : २७। अंतिम उल्लिखित पद में ज. १३ : ७ उद्धृत है। १ पत. २ : २५ और इब्र. १३ : २० में भी यीशु चरवाहा कहलाता है। उपरोक्त स्थलों के अतिरिक्त निम्नांकित से भी तुलना कीजिए : यू. २१ : १५-१९; १ पत. ५ : २, ३; प्रे. २० : २८; इफ. ४ : ११।

यूहन्ना के इस अध्याय में अनेक पृथक विचार पाए जाते हैं, मुख्यतः कि यीशु

द्वार है और कि वह चरवाहा भी है। १० :१-३ पू. में अधिकतर द्वार और उस में प्रवेश करनेवालों का विचार है, और १० : ३उ—५ में भेड़ों और चरवाहे का विचार प्रमुख है। लेखक ने यीशु के कथनों के आधार पर अपने अभिप्राय के अनुकूल इस शिक्षा को प्रस्तुत शब्दावली में व्यक्त किया है। प्राचीन काल के पलिश्तीन देश में बहुत भेड़ें हुआ करती थीं। भेड़ें तितर-बितर होकर कठिनाई से संभाली जा सकती थीं। चरवाहे को निरंतर जाग्रत रहना पड़ता था। भेड़शालाएं भारत की भेड़शालाओं के समान होती थीं, भेड़ें अपने अपने स्वामियों को जानती थीं, और चरवाहा साधारणत: अपनी भेड़ों को नाम लेकर पुकारता था। १० : ६ की तुलना मर. ४ : १३ से कीजिए।

१० : ७-२१ : पद ७-१० में पद १-३ पू. के विचार का प्रतिपादन है। **१० : ६** से विदित होता है कि "द्वार" उद्धार की प्राप्ति का द्वार है, अत: "चोर और डाकू" ऐसे लोग हैं जो उद्धार देने का दावा करते हैं। अनेक विद्वानों की मान्यता है कि वे लोग अभिप्रेत हैं जिन्हों ने ख्रिस्त होने का झूठा दावा किया, उदारणार्थ थियूदास और यहूदा (प्रे. ५ : ३६, ३७)। योसेपस भी ऐसे लोगों का उल्लेख करता है। अन्य टीकाकारों के विचार के अनुसार यीशु के काल के यहूदी अधिकारियों की ओर संकेत है। संभव है कि मकबियों के काल से लेकर यीशु के काल तक के यहूदी धर्म-नेताओं का उल्लेख है, क्योंकि वे अधिकतर स्वार्थी और पद और अधिकार के प्यासे थे। ऐसे नेताओं और तथाकथित उद्धारकों की विषमता में यीशु उद्धार का यथार्थ द्वार है। इस द्वार का प्रयोग करने वालों को आत्मिक स्वतंत्रता प्राप्त है—वे "भीतर-बाहर आया जाया करते हैं"। उन्हें आत्मिक भोजन, अर्थात अनंत जीवन भी मिलता है। अनंत जीवन (जीवन) का स्पष्टीकरण ३ : १६ की व्याख्या में किया गया है। यह बहुतायत से, प्रचुरता से, जीवन है। इसका अर्थ संसार के भौतिक पदार्थ, उन से निर्मित आविष्कार आदि नहीं है (तु. मत. ६ : ३३)। अनंत जीवन इन वस्तुओं के समान नहीं जाता रहेगा; वह शाश्वत, उद्देश्यपूर्ण, अर्थपूर्ण जीवन है।

१० : ११-१६ : इन पदों में पद ३उ-५ के अनुकूल यीशु के अच्छा चरवाहा होने का प्रतिपादन है। पुराना नियम में परमेश्वर (भ. २३ : १), मूसा (यश. ६२ : ११) और दाऊद (भ. ७८ : ७०-७२; यहे. ३४ : २३क.) इस्राएल के चरवाहे कहे गए हैं। यीशु उपरोक्त मनुष्यों की तुलना में भी अच्छा चरवाहा है। यूनानी मूल शब्द "कलॉस" में न केवल अच्छाई वरन सुंदरता और आकर्षण के विचार भी निहित हैं। यीशु अद्वितीय चरवाहा है। यहूदियों के धर्मनेता मजदूरों के समान स्वार्थी थे, अत: वे भेड़ों के लिए अपने प्राण नहीं दे सकते थे। प्राचीन पलिश्तीन में चरवाहों को रीछ, शेर आदि जैसे वनपशुओं से अपनी भेड़ों की रक्षा करनी पड़ती थी। यीशु और उस पर विश्वास करने-वाले में ऐसा गहन संबंध है जैसा परमेश्वर पिता और पुत्र में है। यह "जानना" (१४, १५) गहरे तौर पर व्यावहारिक और अनुभवात्मक है, यह बौद्धिक नहीं है। एक गहन व्यक्तिगत संबंध है। इस में वह प्रेम निहित है जिसके कारण यीशु अपने प्राण देने को तैयार था। **१० : १६** : अनेक टीकाकारों की मान्यता है कि "और भी भेड़ें" का अर्थ

प्रवासी यहूदी है परंतु संभाव्यतः अधिकांश विद्वानों का यह विचार ठीक है कि अन्य-जातीय लोग अभिप्रेत हैं। जब यहूदी और अयहूदी एक ही चरवाहे के पीछे हो लेते हैं तब एक ही झुंड बनता है।

१० : १७, १८ में फिर इस तथ्य पर बल दिया गया है कि मनुष्य यीशु को विवश नहीं कर सकते। अर्थ यह नहीं है कि पिता केवल क्रूस के कारण पुत्र से प्रेम करता है; क्रूस पिता के प्रेम का प्रकटीकरण और उसकी अभिव्यक्ति है। इस में पिता और पुत्र पूर्णतः एक हैं। "कि उसे फिर से लूं" शब्दों में यह विचार निहित है कि क्रूस का अभिप्राय पुनरुत्थान था, और पुनरुत्थान क्रूस की पूर्ति था।

१० : १९-२१ की तुलना मर. ३ : २१ क्र. से कीजिए। फूट पड़ने का संकेत ७ : १२, ४०, ४१; ९ : १६ में भी है। ७ : २०, ८ : ४८ में यीशु के भूतग्रस्त होने का उल्लेख है। यहूदी यीशु के संबंध में दो संभावनाएं देख रहे थे : कि वह भूतग्रस्त या पागल था; या उसके अपने संबंध में दावे सत्य थे।

१० : २२-३९ : इस अंश में भी ऐतिहासिक बातों और लेखनकाल के वाद-विवाद का मिश्रण है। अध्याय ७-१० में एक ही तर्क-क्रम है, और ऐसा प्रतीत होता है कि अध्याय १० का पहला भाग मंडप पर्व (७ : २, १४, ३७) की बातों के संबंध में है। स्थापन पर्व (१० : १) मंडप पर्व के लगभग ढाई महीने पश्चात होता है। यद्यपि इन पर्वों के उल्लेख से ऐतिहासिक घटनाओं की ओर संकेत होता है तथापि उपरोक्त तथ्यों से यह संकेत होता है कि इस सामग्री का क्रम कृत्रिम है। स्थापन पर्व दिसम्बर में उस अवसर के स्मरणार्थ मनाया जाता था जब यहूदा मकबी ने ई. पू. १६५ में यरूशलेम के मंदिर को पवित्र किया (१ मक. ४ : ३६-३९)। यह बड़े आनंद और आत्मसमर्पण का अवसर होता था। "सुलैमान का ओसारा" मंदिर के पूर्व की ओर स्थित था। १० : २४, २५ में, सहदर्शी सुसमाचारों के समान, यीशु यहूदियों को अपने संबंध में स्पष्ट नहीं बताना चाहता। इस सुसमाचार में अनेक बार यीशु के कार्य प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं, जैसे ५ : ३६; १० : ३८; १४ : ११। इन कार्यों के द्वारा विश्वास उत्पन्न होता है। १० : २६-२९ में पुनः इस अध्याय के पहले भाग की ओर संकेत होता है। द्वार और चरवाहे का प्रतिपादन हो चुका है, अब भेड़ों का कुछ स्पष्टीकरण है। इसकी तुलना पद ३उ-५ से कीजिए। इन पदों में यह विचार विद्यमान है कि भेड़ें परमेश्वर से निर्वाचित हैं—"मेरा पिता, जिस ने उन्हें मुझे दिया है. . ."। "जानने" का स्पष्टीकरण १० : १४, १५ की व्याख्या में किया गया है, तुलना कीजिए। विश्वासी, जो वास्तव में यीशु की "भेड़" है, पूर्ण रूप से सुरक्षित है, कोई उसे छीन नहीं सकता। इसका अर्थ यह नहीं है कि उसे कष्ट नहीं सहना पड़ेगा (१६ : ३३)।

१० : ३०-३३ : स्पष्ट शब्दों में पिता और पुत्र की एकता व्यक्त की गई, "मैं और पिता एक हैं"। १७ : ११ में यीशु की प्रार्थना है कि "वे एक हों जैसे हम एक हैं", जिसका अर्थ यह है कि ख्रिस्तियों की पारस्परिक एकता ऐसी होनी चाहिए जैसी पिता-पुत्र की है। यह प्रेम की एकता है, और परमेश्वर प्रेम है। निन्दा का दंड लै. २४ :

१६ में पत्थरों से मारना बताया गया है। परंतु यहां संभाव्यतः विधि-विधान के अनुसार नहीं वरन नियम के प्रतिकूल मारने का वर्णन है, तु. ८ : ५६। सहदर्शी सुसमाचारों के अनुसार इतना शीघ्र यीशु पर निन्दा का आरोप नहीं लगाया गया (मर. १४ : ६४)। संभवतः इस में भी यूहन्ना का वर्णन कालक्रमानुसार नहीं है। १० : ३२, ३३ में स्पष्ट रूप से लेखनकाल के वाद-विवाद का स्वर है। यीशु के काम प्रमाण में प्रस्तुत किए जाते हैं। विशेष निन्दा की बात यह है कि "तू मनुष्य होकर अपने आपको परमेश्वर बनाता है"। यदि यह दावा सच न होता तो बहुत बड़ी निन्दा होती।

१० : ३४-३६ : यहां भ. ८२ : ६ उद्धृत है, "मैंने कहा तुम ईश्वर हो"। यह बात इस्राएल के न्यायियों के संबंध में कही गई। भजन के प्रसंग से यूहन्ना के प्रसंग का कोई संबंध नहीं है। यहूदी रब्बी इसी प्रकार तर्क-वितर्क में धर्मशास्त्र का प्रयोग करते थे, अतः यह बात उनकी समझ में आई होगी। तर्क यह है कि यदि वे न्यायी "ईश्वर" कहे जा सकते थे तो यीशु परमेश्वर-पुत्र क्यों न कहा जाए ? "पवित्र ठहराकर" का अर्थ यह है कि वह परमेश्वर के कार्य के लिए पृथक किया गया है। १० : ३७-३६ यीशु के कामों का उल्लेख पहले, पद २५ में, हुआ है। "पिता मुझ में है, और मैं पिता में हूं" शब्द १४ : १०, ११ में भी हैं। यीशु के कार्य परमेश्वर के कार्य हैं (५ : १६, ३६)।

१० : ४०-४२ : इस अंश में यूहन्ना बपतिस्मा-दाता का अंतिम उल्लेख है। आगे इस चित्र में केवल यीशु है। इन पदों की तुलना मर. १० : १ से कीजिए। इन से ज्ञात होता है कि यीशु का कार्य कहां तक सफल हो रहा था। यह "स्थान" वही है जहां यूहन्ना बपतिस्मा देता था (१ : २८), और जहां यीशु का बपतिस्मा हुआ था।

(४) मृत्यु के द्वारा नया जीवन अध्याय ११ और १२

(क) लाजर को जिलाना ११ : १—४४

इस अध्याय में वर्णित घटना के संबंध में इस टीका में यह दृष्टिकोण स्वीकार किया गया है कि यह विवरण एक ऐतिहासिक घटना पर आधारित है जिसको लेखक ने, अन्य घटनाओं के समान, अपनी शैली और शब्दों के द्वारा व्यक्त करके शिक्षा देने के लिए प्रयुक्त किया है। अतः ब्योरेवार जानना कि क्या क्या घटित हुआ असंभव है। ऐतिहासिक रूप से संभाव्यतः मरकुस का विवरण ठीक है कि वह घटना, जिस के कारण अंत में यहूदी नेताओं ने यीशु को समाप्त करने का निश्चय किया, मंदिर का परिष्करण था (मर. ११ : १५-१८, विशेषकर पद १८)। यू. ११ : ४५ शिक्षात्मक है। लेखक इस घटना का प्रयोग करके प्रकट करता है कि यहूदी नेताओं को विरोधी बनाने में यीशु के आश्चर्यकर्मों का महत्वपूर्ण प्रभाव था। अनेक संकेत हैं कि यह घटना कालक्रमानुसार इस सुसमाचार में सम्मिलित नहीं की गई। यदि हम ऐसा मानें तो इसका कोई वर्णन अन्य सुसमाचारों में न होना अनिवार्य रूप से उसकी मौलिक ऐतिहासिकता के विरुद्ध सबल तर्क नहीं है।

११ : १-५ : "लाजर" नाम "एलिआजर" (परमेश्वर सहायता करता है) का संक्षिप्त रूप है। इस मनुष्य का वर्णन केवल इस अध्याय और अध्याय १२ में है।

"बैतनिय्याह" : मर. ११ : १ और उसकी टीका को देखिए। ११ : २ को संपादक ने सम्मिलित किया होगा—उस में १२ : १-८ की घटना की ओर संकेत है, जिसका वर्णन अभी तक नहीं हुआ है। ११ : ४ : यीशु के कथन का अर्थ यह नहीं है कि लाजर शारीरिक रूप से नहीं मरेगा, वरन यह कि उसकी मृत्यु से परमेश्वर की महिमा प्रकट होगी, और इसका अंतिम फल जीवन होगा। संभाव्यतः संपादक ने ११ : ५ को भी सम्मिलित किया, कि पाठकों को विश्वास दिलाया जाए कि वास्तव में यीशु लाजर से प्रेम करता था।

११ : ६-१६ : पद ५ और ६ का अर्थ हिं. सं. में अधिक स्पष्टतः व्यक्त है, "यद्यपि वह मरथा, उसकी बहन और लाजर से प्रेम करते थे, फिर भी जब उन्हों ने सुना कि वह रोगी है तो जहां थे, वहां दो दिन और ठहर गए"। २ : ३ और ७ : ३ और उनकी व्याख्या से तुलना कीजिए। यीशु मनुष्य के संकेत से नहीं वरन अपने पिता की इच्छानुसार कार्य करता है। संभव है कि ११ : ७, ८ भी संपादक के सम्मिलित किए हुए पद हों, क्योंकि पद ८ में यह वर्णन गत वर्णन से संगत किया गया है (१० : ३२)। एक और संकेत यह है कि इस पद में "यहूदी" का अर्थ वही है जो गत अध्यायों में है, परंतु अन्यतः इस अध्याय में इस शब्द से यहूदी जनता अभिप्रेत है। ११ : ९, १० : "दिन के बारह घंटे" का अर्थ यह है कि यीशु के लिए शेष समय सीमित है। आनेवाली रात का अर्थ यीशु की मृत्यु है। इस शेष समय में यीशु को अपना कार्य पूरा करना है। इन पदों में यह भी वर्णित है कि यीशु पर विश्वास करनेवाला उसके प्रकाश में चलता है—वह ठोकर नहीं खाता। ११ : ११-१४ में "सो जाने" में शब्द-श्लेष है। अंत में यीशु स्पष्ट बताता है कि लाजर मर गया है। ११ : १५ पद ४ के समान है। यीशु तब ही आनंदित हो सकता था जब उसको पूर्ण निश्चय था कि लाजर फिर जीवित होगा। ११ : १६ : थोमा पूर्ण निष्ठा प्रकट करता है। "थोमा" और "दिदुमुस" अरामी और यूनानी शब्द हैं जिनका अर्थ "जुड़वां बच्चा" है। अन्य स्थलों में यह शिष्य केवल "थोमा" ही कहलाता है।

११ : १७-२७ : पद १७-२० : चार दिन का उल्लेख इस तथ्य को प्रकट करने के लिए है कि वास्तव में लाजर मृत था। अनेक यहूदियों की मान्यता थी कि मृतक के प्राण तीन दिन तक शव के निकट रहते थे। यहूदियों का इन दो बहनों के पास आना यहूदियों की साधारण प्रथा के अनुसार था। अब तक मरियम को यीशु के आने का पता नहीं लगा (पद २८)। ११ : २१ में मरथा वही शब्द बोलती है जो पद ३२ में मरियम भी बोलती है। ११ : २२-२४ से ज्ञात होता है कि मरथा का विश्वास अपूर्ण था। वह मानती है कि यीशु की प्रार्थना सुन ली जाएगी, परंतु "जी उठने" के संबंध में वह केवल उस मान्यता को व्यक्त करती है जो समकालीन यहूदियों में प्रचलित थी, अर्थात कि युगांत में पुनरुत्थान होगा। पुराना नियम में पुनरुत्थान का बहुत कम उल्लेख है, परंतु पुराना और नया नियमों के मध्यंतर काल के यहूदी साहित्य में पुनरुत्थान के संबंध में बहुत से विविध विचार पाए जाते हैं। ११ : २५ में यीशु उपरोक्त विचारों की विषमता में कहता है कि उसके व्यक्तित्व में पुनरुत्थान उपस्थित है। पुनरुत्थान का जीवन शाश्वत जीवन है, वह अभी यीशु पर विश्वास करने से आरंभ हो जाता है। तुलना

कीजिए ६ : ३९, ४४, ४५। "मैं. . .हूं" शब्दों के संबंध में ६ : २० की व्याख्या को देखिए। इस पद में "मरने" का अर्थ शारीरिक रूप से मरना और "जीने" का अर्थ आध्यात्मिक है। ११ : २६ में "जीने" का अर्थ शारीरिक और "मरने" का अर्थ आत्मिक है। ११ : २७ में मरथा यीशु के संबंध में प्रचलित पदवियों का प्रयोग करती है, परंतु पद ३९ से ज्ञात होता है कि वह उनका अर्थ पूर्ण रूप से नहीं जानती न ही विश्वास करती है कि यीशु वास्तव में लाजर को जीवित कर सकता है।

११ : २८-३७ : यह अंश अधिकतर पिछले अंश के समान है। ११ : ३० को कोष्ठकांकित करने की आवश्यकता नहीं है। जो लोग मरियम के साथ संवेदना प्रकट कर रहे थे वे नहीं जानते थे कि यीशु आ गया था, अत: यह सोचा कि मरियम रोने के लिए जा रही थी। ११ : ३३ : पलिश्तीन में भी ऐसे अवसर पर रोने-चिल्लाने की प्रथा थी। "बहुत ही उदास हुआ" (हिं. सं. "उनका हृदय द्रवित हो उठा") एक प्रबल यूनानी शब्द (एंब्रिमाओमै) का अनुवाद है जिस में अंशत क्रोध का अर्थ भी निहित है। संभाव्यतः अर्थ यह है कि यीशु इस समस्त परिस्थिति पर, मृत्यु के सामने मनुष्यों की विवशता, और इस के परिणामों पर, क्रुद्ध हुआ। घबरा जाने और आंसू बहाने से यीशु का मानवत्व स्पष्ट प्रकट होता है। यह भी प्रकट है कि यीशु अपने आप को व्यय करके ही ऐसा कार्य कर सकता था। देहधारी परमेश्वर मृत्यु और पाप का सामना कर रहा था। ११ : ३६ : लोगों ने सोचा कि यीशु के आंसू केवल संवेदना प्रकट कर रहे थे। ११ : ३७ में संभव है कि बैर नहीं वरन उलझन व्यक्त हो। यह बात उनकी समझ में नहीं आ रही थी कि यदि यीशु मृतकों को जीवित कर सकता था तो उस ने लाजर को क्यों मरने दिया।

११ : ३८-४४ : पद ३८ में उसी शब्द का प्रयोग है जिसकी व्याख्या पद ३३ के संबंध में की गई है। पलिश्तीन पर्वतीय प्रदेश है, अत: लोग कब्रों के लिए गुफाओं का प्रयोग करते थे। वनपशुओं से सुरक्षा के लिए गुफा के सामने एक बड़ा गोल पत्थर रखा जाता था। मृतकों के प्राणों के संबंध में पद १७ की व्याख्या को पढ़िए। ११ : ३९, ४० मरथा का कथन प्रकट करता है कि उस ने अब तक पूर्ण रूप से यीशु का अभिप्राय नहीं समझा। यीशु का कथन, जो उस ने मरथा की बात के उत्तर में कहा उनके गत वार्तालाप (पद २०-२७) में वर्णित नहीं, वरन निहित है। परमेश्वर की महिमा का उल्लेख पद ४ में भी है। यह महिमा लाजर को जीवित करने में प्रकट होती है। ११ : ४१, ४२ : इस प्रार्थना में यह निहित है कि यीशु ने पहले भी इस संबंध में प्रार्थना की थी। यह समझना चाहिए कि उसका अपने पिता के साथ एक ऐसा अटूट संबंध था कि वह निरंतर प्रार्थना, अर्थात सहभागिता, का अनुभव करता था। ऐसा प्रतीत होता है कि "परंतु जो भीड़ आस पास खड़ी है. . ." आदि शब्द इस प्रार्थना का वास्तविक भाग नहीं वरन लेखक की रचना है। इन शब्दों से स्पष्ट होता है कि यीशु ने क्यों लोगों के सुनने में बड़े शब्द से प्रार्थना की। ११ : ४३, ४४ : इस आश्चर्यकर्म का वर्णन बहुत संक्षिप्त है। महत्वपूर्ण बात चमत्कार स्वयं नहीं वरन वह सत्य है जिसे चमत्कार प्रकट करता है (पद २५)। यीशु के शब्द परलाजर निकल आता है।

इस विवरण की तुलना ५ : २६-३० से कीजिए। अनेक समान शब्द और विचार दोनों में पाए जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अध्याय ११ में उपरोक्त अंश की पूर्ति है।

(ख) यीशु की हत्या का षड्यंत्र ११ : ४५-५७

पद ४५, ४६ : यहूदी फिर दो समूहों में विभाजित हैं, विश्वासी और अविश्वासी। यहां "फरीसी" यहूदियों के वे नेता हैं जो यीशु के विरोधी हैं। **११ : ४७, ४८ :** यद्यपि लाजर को जीवित करने की घटना कालक्रमानुसार वर्णित नहीं है (इस अध्याय की व्याख्या के पहले पैरा को देखिए) तथापि ऐसे कार्यों के कारण यहूदी नेता यीशु को समाप्त करने का अवसर ढूढ़ रहे थे। मत्त. २६ : १-५ में भी महासभा के एक प्रारंभिक अधिवेशन की ओर संकेत है। यहूदी नेताओं का स्वार्थी दृष्टिकोण प्रकट है। "जगह" का अर्थ मंदिर है। इन नेताओं को जिस बात की आशंका थी अंततः वही हो गई, रोमियों ने आकर ई. स. ७० में उनके मंदिर और उनकी जाति को नष्ट किया, यद्यपि इसका कारण वह नहीं था जो यहां बताया गया है। **११ : ४९-५३ :** काइफा ई. स. १८-३६ महायाजक रहा। लेखक का यह विचार नहीं है कि काइफा केवल एक वर्ष महायाजक रहा। "उस वर्ष" का अर्थ यह है कि उस विशेष महत्वपूर्ण वर्ष महायाजक वही था। काइफा एक बुद्धिमान सदूकी था जिस ने पहचान लिया कि यीशु के कारण उसकी और अन्य नेताओं की बहुत हानि हो सकती थी। "हमारे लोगों के लिए एक मनुष्य मरे" शब्द कहकर काइफा ने अनजाने एक सच्ची भविष्यवाणी की। यहूदी लोगों का एक सामान्य विचार यह था कि याजकों को भविष्यवाणी करने का वरदान प्राप्त था। **११ : ५२** में लेखक का प्रतिपादन है। "परमेश्वर की तितर-बितर संतान" से वे अन्यजातीय लोग अभिप्रेत हैं जो ख्रिस्तीय कलीसिया में सम्मिलित हो जाते हैं। इस प्रकार कलीसिया विविध जातियों का एक ही समुदाय बनाती है, तुलना १० : १६। ११ : ५३ में स्पष्ट बताया गया है कि यहूदियों ने उस समय यीशु को मार डालने का निश्चय किया।

११ : ५४-५७ : "जंगल" का अर्थ यरूशलेम के उत्तर की ओर का प्रदेश है। इफ्राइम यरूशलेम से लगभग २४ किलोमीटर उत्तर की ओर स्थित था। फसह के पर्व से कुछ दिन पहले लोग शुद्धिकरण करने के लिए आया करते थे (तु. गि. ९ : ६-१३)। यह तीसरा फसह का पर्व है जिसका उल्लेख इस सुसमाचार में है (दे. २ : १३, २३; ६ : ४)। **११ : ५७** से प्रकट होता है कि यीशु के पकड़वाए जाने की आवश्यकता क्यों थी। कारण यह प्रतीत होता है कि यहूदी नेता नहीं जानते थे कि यीशु कहां रहा करता था।

(ग) बैतनिय्याह में यीशु का अभ्यंजन। लाजर की हत्या का षड्यंत्र १२ : १-११

१२ : १-८ : यह एक ऐसी घटना का वर्णन है जो अंशतः मर. १४ : ३-९; मत्त. २६ : ६-१३ और लू. ७ : ३६-५० में वर्णित घटना के समान है। इन स्थलों की व्याख्या को भी पढ़िए। साधारण मान्यता के अनुसार मरकुस, मत्ती और यूहन्ना के वर्णन

कीजिए ६ : ३६, ४४, ४५। "मैं. . .हूं" शब्दों के संबंध में ६ : २० की व्याख्या को देखिए। इस पद में "मरने" का अर्थ शारीरिक रूप से मरना और "जीने" का अर्थ आध्यात्मिक है। ११ : २६ में "जीने" का अर्थ शारीरिक और "मरने" का अर्थ आत्मिक है। ११ : २७ में मरथा यीशु के संबंध में प्रचलित पदवियों का प्रयोग करती है, परंतु पद ३९ से ज्ञात होता है कि वह उनका अर्थ पूर्ण रूप से नहीं जानती न ही विश्वास करती है कि यीशु वास्तव में लाजर को जीवित कर सकता है।

११ : २८-३७ : यह अंश अधिकतर पिछले अंश के समान है। ११ : ३० को कोष्ठकांकित करने की आवश्यकता नहीं है। जो लोग मरियम के साथ संवेदना प्रकट कर रहे थे वे नहीं जानते थे कि यीशु आ गया था, अतः यह सोचा कि मरियम रोने के लिए जा रही थी। ११ : ३३ : पलिश्तीन में भी ऐसे अवसर पर रोने-चिल्लाने की प्रथा थी। "बहुत ही उदास हुआ" (हिं. सं. "उनका हृदय द्रवित हो उठा") एक प्रबल यूनानी शब्द (एंब्रिमाओमै) का अनुवाद है जिस में अंशतः क्रोध का अर्थ भी निहित है। संभाव्यतः अर्थ यह है कि यीशु इस समस्त परिस्थिति पर, मृत्यु के सामने मनुष्यों की विवशता, और इस के परिणामों पर, क्रुद्ध हुआ। घबरा जाने और आंसू बहाने से यीशु का मानवत्व स्पष्ट प्रकट होता है। यह भी प्रकट है कि यीशु अपने आप को व्यय करके ही ऐसा कार्य कर सकता था। देहधारी परमेश्वर मृत्यु और पाप का सामना कर रहा था। ११ : ३६ : लोगों ने सोचा कि यीशु के आंसू केवल संवेदना प्रकट कर रहे थे। ११ : ३७ में संभव है कि बैर नहीं वरन उलझन व्यक्त हो। यह बात उनकी समझ में नहीं आ रही थी कि यदि यीशु मृतकों को जीवित कर सकता था तो उस ने लाजर को क्यों मरने दिया।

११ : ३८-४४ : पद ३८ में उसी शब्द का प्रयोग है जिसकी व्याख्या पद ३३ के संबंध में की गई है। पलिश्तीन पर्वतीय प्रदेश है, अतः लोग कब्रों के लिए गुफाओं का प्रयोग करते थे। वनपशुओं से सुरक्षा के लिए गुफा के सामने एक बड़ा गोल पत्थर रखा जाता था। मृतकों के प्राणों के संबंध में पद १७ की व्याख्या को पढ़िए। ११ : ३९, ४० मरथा का कथन प्रकट करता है कि उस ने अब तक पूर्ण रूप से यीशु का अभिप्राय नहीं समझा। यीशु का कथन, जो उस ने मरथा की बात के उत्तर में कहा उनके गत वार्तालाप (पद २०-२७) में वर्णित नहीं, वरन निहित है। परमेश्वर की महिमा का उल्लेख पद ४ में भी है। यह महिमा लाजर को जीवित करने में प्रकट होती है। ११ : ४१, ४२ : इस प्रार्थना में यह निहित है कि यीशु ने पहले भी इस संबंध में प्रार्थना की थी। यह समझना चाहिए कि उसका अपने पिता के साथ एक ऐसा अटूट संबंध था कि वह निरंतर प्रार्थना, अर्थात सहभागिता, का अनुभव करता था। ऐसा प्रतीत होता है कि "परंतु जो भीड़ आस पास खड़ी है. . ." आदि शब्द इस प्रार्थना का वास्तविक भाग नहीं वरन लेखक की रचना है। इन शब्दों से स्पष्ट होता है कि यीशु ने क्यों लोगों के सुनने में बड़े शब्द से प्रार्थना की। ११ : ४३, ४४ : इस आश्चर्यकर्म का वर्णन बहुत संक्षिप्त है। महत्वपूर्ण बात चमत्कार स्वयं नहीं वरन वह सत्य है जिसे चमत्कार प्रकट करता है (पद २५)। यीशु के शब्द परलाजर निकल आता है।

इस विवरण की तुलना ५ : २६-३० से कीजिए। अनेक समान शब्द और विचार दोनों में पाए जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अध्याय ११ में उपरोक्त अंश की पूर्ति है।

(ख) यीशु की हत्या का षड्यंत्र ११ : ४५-५७

पद ४५, ४६ : यहूदी फिर दो समूहों में विभाजित हैं, विश्वासी और अविश्वासी। यहां "फरीसी" यहूदियों के वे नेता हैं जो यीशु के विरोधी हैं। **११ : ४७, ४८ :** यद्यपि लाजर को जीवित करने की घटना कालक्रमानुसार वर्णित नहीं है (इस अध्याय की व्याख्या के पहले पैरा को देखिए) तथापि ऐसे कार्यों के कारण यहूदी नेता यीशु को समाप्त करने का अवसर ढूढ़ रहे थे। मत्त. २६ : १-५ में भी महासभा के एक प्रारंभिक अधिवेशन की ओर संकेत है। यहूदी नेताओं का स्वार्थी दृष्टिकोण प्रकट है। "जगह" का अर्थ मंदिर है। इन नेताओं को जिस बात की आशंका थी अंततः वही हो गई, रोमियों ने आकर ई. स. ७० में उनके मंदिर और उनकी जाति को नष्ट किया, यद्यपि इसका कारण वह नहीं था जो यहां बताया गया है। **११ : ४९-५३ :** काइफा ई. स. १८-३६ महायाजक रहा। लेखक का यह विचार नहीं है कि काइफा केवल एक वर्ष महायाजक रहा। "उस वर्ष" का अर्थ यह है कि उस विशेष महत्वपूर्ण वर्ष महायाजक वही था। काइफा एक बुद्धिमान सदूकी था जिस ने पहचान लिया कि यीशु के कारण उसकी और अन्य नेताओं की बहुत हानि हो सकती थी। "हमारे लोगों के लिए एक मनुष्य मरे" शब्द कहकर काइफा ने अनजाने एक सच्ची भविष्यवाणी की। यहूदी लोगों का एक सामान्य विचार यह था कि याजकों को भविष्यवाणी करने का बरदान प्राप्त था। **११ : ५२** में लेखक का प्रतिपादन है। "परमेश्वर की तितर-बितर संतान" से वे अन्यजातीय लोग अभिप्रेत हैं जो ख्रिस्तीय कलीसिया में सम्मिलित हो जाते हैं। इस प्रकार कलीसिया विविध जातियों का एक ही समुदाय बनाती है, तुलना १० : १६। ११ : ५३ में स्पष्ट बताया गया है कि यहूदियों ने उस समय यीशु को मार डालने का निश्चय किया।

११ : ५४-५७ : "जंगल" का अर्थ यरूशलेम के उत्तर की ओर का प्रदेश है। इफ्राइम यरूशलेम से लगभग २४ किलोमीटर उत्तर की ओर स्थित था। फसह के पर्व से कुछ दिन पहले लोग शुद्धिकरण करने के लिए आया करते थे (तु. गि. ९ : ६-१३)। यह तीसरा फसह का पर्व है जिसका उल्लेख इस सुसमाचार में है (दे. २ : १३, २३; ६ : ४)। **११ : ५७** से प्रकट होता है कि यीशु के पकड़वाए जाने की आवश्यकता क्यों थी। कारण यह प्रतीत होता है कि यहूदी नेता नहीं जानते थे कि यीशु कहां रहा करता था।

(ग) बैतनिय्याह में यीशु का अभ्यंजन। लाजर की हत्या का षड्यंत्र १२ : १-११

१२ : १-८ : यह एक ऐसी घटना का वर्णन है जो अंशतः मर. १४ : ३-९; मत्त. २६ : ६-१३ और लू. ७ : ३६-५० में वर्णित घटना के समान है। इन स्थलों की व्याख्या को भी पढ़िए। साधारण मान्यता के अनुसार मरकुस, मत्ती और यूहन्ना के वर्णन

कीजिए ६ : ३६, ४४, ४५। "मैं. . .हूं" शब्दों के संबंध में ६ : २० की व्याख्या को देखिए। इस पद में "मरने" का अर्थ शारीरिक रूप से मरना और "जीने" का अर्थ आध्यात्मिक है। ११ : २६ में "जीने" का अर्थ शारीरिक और "मरने" का अर्थ आत्मिक है। ११ : २७ में मरथा यीशु के संबंध में प्रचलित पदवियों का प्रयोग करती है, परंतु पद ३६ से ज्ञात होता है कि वह उनका अर्थ पूर्ण रूप से नहीं जानती न ही विश्वास करती है कि यीशु वास्तव में लाजर को जीवित कर सकता है।

११ : २८-३७ : यह अंश अधिकतर पिछले अंश के समान है। **११ : ३०** को कोष्ठकांकित करने की आवश्यकता नहीं है। जो लोग मरियम के साथ संवेदना प्रकट कर रहे थे वे नहीं जानते थे कि यीशु आ गया था, अतः यह सोचा कि मरियम रोने के लिए जा रही थी। **११ : ३३** : पलिश्तीन में भी ऐसे अवसर पर रोने-चिल्लाने की प्रथा थी। "बहुत ही उदास हुआ" (हिं. सं. "उनका हृदय द्रवित हो उठा") एक प्रबल यूनानी शब्द (एंब्रिमाओमै) का अनुवाद है जिस में अंशतः क्रोध का अर्थ भी निहित है। संभाव्यतः अर्थ यह है कि यीशु इस समस्त परिस्थिति पर, मृत्यु के सामने मनुष्यों की विवशता, और इस के परिणामों पर, क्रुद्ध हुआ। घबरा जाने और आंसू बहाने से यीशु का मानवत्व स्पष्ट प्रकट होता है। यह भी प्रकट है कि यीशु अपने आप को व्यय करके ही ऐसा कार्य कर सकता था। देहधारी परमेश्वर मृत्यु और पाप का सामना कर रहा था। **११ : ३६** : लोगों ने सोचा कि यीशु के आंसू केवल संवेदना प्रकट कर रहे थे। **११ : ३७** में संभव है कि बैर नहीं वरन उलझन व्यक्त हो। यह बात उनकी समझ में नहीं आ रही थी कि यदि यीशु मृतकों को जीवित कर सकता था तो उस ने लाजर को क्यों मरने दिया।

११ : ३८-४४ : पद ३८ में उसी शब्द का प्रयोग है जिसकी व्याख्या पद ३३ के संबंध में की गई है। पलिश्तीन पर्वतीय प्रदेश है, अतः लोग कब्रों के लिए गुफाओं का प्रयोग करते थे। वनपशुओं से सुरक्षा के लिए गुफा के सामने एक बड़ा गोल पत्थर रखा जाता था। मृतकों के प्राणों के संबंध में पद १७ की व्याख्या को पढ़िए। **११ : ३९, ४०** मरथा का कथन प्रकट करता है कि उस ने अब तक पूर्ण रूप से यीशु का अभिप्राय नहीं समझा। यीशु का कथन, जो उस ने मरथा की बात के उत्तर में कहा उनके गत वार्तालाप (पद २०-२७) में वर्णित नहीं, वरन निहित है। परमेश्वर की महिमा का उल्लेख पद ४ में भी है। यह महिमा लाजर को जीवित करने में प्रकट होती है। **११ : ४१, ४२** : इस प्रार्थना में यह निहित है कि यीशु ने पहले भी इस संबंध में प्रार्थना की थी। यह समझना चाहिए कि उसका अपने पिता के साथ एक ऐसा अटूट संबंध था कि वह निरंतर प्रार्थना, अर्थात सहभागिता, का अनुभव करता था। ऐसा प्रतीत होता है कि "परंतु जो भीड़ आस पास खड़ी है. . ." आदि शब्द इस प्रार्थना का वास्तविक भाग नहीं वरन लेखक की रचना है। इन शब्दों से स्पष्ट होता है कि यीशु ने क्यों लोगों के सुनने में बड़े शब्द से प्रार्थना की। **११ : ४३, ४४** : इस आश्चर्यकर्म का वर्णन बहुत संक्षिप्त है। महत्वपूर्ण बात चमत्कार स्वयं नहीं वरन वह सत्य है जिसे चमत्कार प्रकट करता है (पद २५)। यीशु के शब्द पर लाजर निकल आता है।

इस विवरण की तुलना ५ : २६-३० से कीजिए। अनेक समान शब्द और विचार दोनों में पाए जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अध्याय ११ में उपरोक्त अंश की पूर्ति है।

(ख) यीशु की हत्या का षड्यंत्र ११ : ४५-५७

पद ४५, ४६ : यहूदी फिर दो समूहों में विभाजित हैं, विश्वासी और अविश्वासी। यहां "फरीसी" यहूदियों के वे नेता हैं जो यीशु के विरोधी हैं। **११ : ४७, ४८** : यद्यपि लाजर को जीवित करने की घटना कालक्रमानुसार वर्णित नहीं है (इस अध्याय की व्याख्या के पहले पैरा को देखिए) तथापि ऐसे कार्यों के कारण यहूदी नेता यीशु को समाप्त करने का अवसर ढूढ़ रहे थे। मत्त. २६ : १-५ में भी महासभा के एक प्रारंभिक अधिवेशन की ओर संकेत है। यहूदी नेताओं का स्वार्थी दृष्टिकोण प्रकट है। "जगह" का अर्थ मंदिर है। इन नेताओं को जिस बात की आशंका थी अंततः वही हो गई, रोमियों ने आकर ई. स. ७० में उनके मंदिर और उनकी जाति को नष्ट किया, यद्यपि इसका कारण वह नहीं था जो यहां बताया गया है। **११ : ४९-५३** : काइफा ई. स. १८-३६ महायाजक रहा। लेखक का यह विचार नहीं है कि काइफा केवल एक वर्ष महायाजक रहा। "उस वर्ष" का अर्थ यह है कि उस विशेष महत्वपूर्ण वर्ष महायाजक वही था। काइफा एक बुद्धिमान सदूकी था जिस ने पहचान लिया कि यीशु के कारण उसकी और अन्य नेताओं की बहुत हानि हो सकती थी। "हमारे लोगों के लिए एक मनुष्य मरे" शब्द कहकर काइफा ने अनजाने एक सच्ची भविष्यवाणी की। यहूदी लोगों का एक सामान्य विचार यह था कि याजकों को भविष्यवाणी करने का वरदान प्राप्त था। **११ : ५२** में लेखक का प्रतिपादन है। "परमेश्वर की तितर-बितर संतान" से वे अन्यजातीय लोग अभिप्रेत हैं जो ख्रिस्तीय कलीसिया में सम्मिलित हो जाते हैं। इस प्रकार कलीसिया विविध जातियों का एक ही समुदाय बनाती है, तुलना १० : १६। ११ : ५३ में स्पष्ट बताया गया है कि यहूदियों ने उस समय यीशु को मार डालने का निश्चय किया।

११ : ५४-५७ : "जंगल" का अर्थ यरूशलेम के उत्तर की ओर का प्रदेश है। इफ्राइम यरूशलेम से लगभग २४ किलोमीटर उत्तर की ओर स्थित था। फसह के पर्व से कुछ दिन पहले लोग शुद्धिकरण करने के लिए आया करते थे (तु. गि. ९ : ६-१३)। यह तीसरा फसह का पर्व है जिसका उल्लेख इस सुसमाचार में है (दे. २ : १३, २३; ६ : ४)। **११ : ५७** से प्रकट होता है कि यीशु के पकड़वाए जाने की आवश्यकता क्यों थी। कारण यह प्रतीत होता है कि यहूदी नेता नहीं जानते थे कि यीशु कहां रहा करता था।

(ग) बैतनिय्याह में यीशु का अभ्यंजन। लाजर की हत्या का षड्यंत्र १२ : १-११

१२ : १-८ : यह एक ऐसी घटना का वर्णन है जो अंशतः मर. १४ : ३-९; मत्त. २६ : ६-१३ और लू. ७ : ३६-५० में वर्णित घटना के समान है। इन स्थलों की व्याख्या को भी पढ़िए। साधारण मान्यता के अनुसार मरकुस, मत्ती और यूहन्ना के वर्णन

कीजिए ६ : ३९, ४४, ४५। "मैं. . .हूं" शब्दों के संबंध में ६ : २० की व्याख्या को देखिए। इस पद में "मरने" का अर्थ शारीरिक रूप से मरना और "जीने" का अर्थ आध्यात्मिक है। ११ : २६ में "जीने" का अर्थ शारीरिक और "मरने" का अर्थ आत्मिक है। ११ : २७ में मरथा यीशु के संबंध में प्रचलित पदवियों का प्रयोग करती है, परंतु पद ३९ से ज्ञात होता है कि वह उनका अर्थ पूर्ण रूप से नहीं जानती न ही विश्वास करती है कि यीशु वास्तव में लाजर को जीवित कर सकता है।

११ : २८-३७ : यह अंश अधिकतर पिछले अंश के समान है। ११ : ३० को कोष्ठकांकित करने की आवश्यकता नहीं है। जो लोग मरियम के साथ संवेदना प्रकट कर रहे थे वे नहीं जानते थे कि यीशु आ गया था, अतः यह सोचा कि मरियम रोने के लिए जा रही थी। ११ : ३३ : पलिश्तीन में भी ऐसे अवसर पर रोने-चिल्लाने की प्रथा थी। "बहुत ही उदास हुआ" (हिं. सं. "उनका हृदय द्रवित हो उठा") एक प्रबल यूनानी शब्द (एंब्रिमाओमै) का अनुवाद है जिस में अंशत क्रोध का अर्थ भी निहित है। संभाव्यतः अर्थ यह है कि यीशु इस समस्त परिस्थिति पर, मृत्यु के सामने मनुष्यों की विवशता, और इस के परिणामों पर, क्रुद्ध हुआ। घबरा जाने और आंसू बहाने से यीशु का मानवत्व स्पष्ट प्रकट होता है। यह भी प्रकट है कि यीशु अपने आप को व्यय करके ही ऐसा कार्य कर सकता था। देहधारी परमेश्वर मृत्यु और पाप का सामना कर रहा था। **११ : ३६ :** लोगों ने सोचा कि यीशु के आंसू केवल संवेदना प्रकट कर रहे थे। **११ : ३७** में संभव है कि बैर नहीं वरन उलझन व्यक्त हो। यह बात उनकी समझ में नहीं आ रही थी कि यदि यीशु मृतकों को जीवित कर सकता था तो उस ने लाजर को क्यों मरने दिया।

११ : ३८-४४ : पद ३८ में उसी शब्द का प्रयोग है जिसकी व्याख्या पद ३३ के संबंध में की गई है। पलिश्तीन पर्वतीय प्रदेश है, अतः लोग कब्रों के लिए गुफाओं का प्रयोग करते थे। वनपशुओं से सुरक्षा के लिए गुफा के सामने एक बड़ा गोल पत्थर रखा जाता था। मृतकों के प्राणों के संबंध में पद १७ की व्याख्या को पढ़िए। **११ : ३९, ४०** मरथा का कथन प्रकट करता है कि उस ने अब तक पूर्ण रूप से यीशु का अभिप्राय नहीं समझा। यीशु का कथन, जो उस ने मरथा की बात के उत्तर में कहा उनके गत वार्तालाप (पद २०-२७) में वर्णित नहीं, वरन निहित है। परमेश्वर की महिमा का उल्लेख पद ४ में भी है। यह महिमा लाजर को जीवित करने में प्रकट होती है। **११ : ४१, ४२ :** इस प्रार्थना में यह निहित है कि यीशु ने पहले भी इस संबंध में प्रार्थना की थी। यह समझना चाहिए कि उसका अपने पिता के साथ एक ऐसा अटूट संबंध था कि वह निरंतर प्रार्थना, अर्थात सहभागिता, का अनुभव करता था। ऐसा प्रतीत होता है कि "परंतु जो भीड़ आस पास खड़ी है. . ." आदि शब्द इस प्रार्थना का वास्तविक भाग नहीं वरन लेखक की रचना है। इन शब्दों से स्पष्ट होता है कि यीशु ने क्यों लोगों के सुनने में बड़े शब्द से प्रार्थना की। **११ : ४३, ४४ :** इस आश्चर्यकर्म का वर्णन बहुत संक्षिप्त है। महत्वपूर्ण बात चमत्कार स्वयं नहीं वरन वह सत्य है जिसे चमत्कार प्रकट करता है (पद २५)। यीशु के शब्द पर लाजर निकल आता है।

इस विवरण की तुलना ५ : २६-३० से कीजिए। अनेक समान शब्द और विचार दोनों में पाए जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अध्याय ११ में उपरोक्त अंश की पूर्ति है।

(ख) यीशु की हत्या का षड्यंत्र ११ : ४५-५७

पद ४५, ४६ : यहूदी फिर दो समूहों में विभाजित हैं, विश्वासी और अविश्वासी। यहां "फरीसी" यहूदियों के वे नेता हैं जो यीशु के विरोधी हैं। **११ : ४७, ४८** : यद्यपि लाजर को जीवित करने की घटना कालक्रमानुसार वर्णित नहीं है (इस अध्याय की व्याख्या के पहले पैरा को देखिए) तथापि ऐसे कार्यों के कारण यहूदी नेता यीशु को समाप्त करने का अवसर ढूंढ़ रहे थे। मत्त. २६ : १-५ में भी महासभा के एक प्रारंभिक अधिवेशन की ओर संकेत है। यहूदी नेताओं का स्वार्थी दृष्टिकोण प्रकट है। "जगह" का अर्थ मंदिर है। इन नेताओं को जिस बात की आशंका थी अंततः वही हो गई, रोमियों ने आकर ई. स. ७० में उनके मंदिर और उनकी जाति को नष्ट किया, यद्यपि इसका कारण वह नहीं था जो यहां बताया गया है। **११ : ४९-५३** : काइफा ई. स. १८-३६ महायाजक रहा। लेखक का यह विचार नहीं है कि काइफा केवल एक वर्ष महायाजक रहा। "उस वर्ष" का अर्थ यह है कि उस विशेष महत्वपूर्ण वर्ष महायाजक वही था। काइफा एक बुद्धिमान सदूकी था जिस ने पहचान लिया कि यीशु के कारण उसकी और अन्य नेताओं की बहुत हानि हो सकती थी। "हमारे लोगों के लिए एक मनुष्य मरे" शब्द कहकर काइफा ने अनजाने एक सच्ची भविष्यवाणी की। यहूदी लोगों का एक सामान्य विचार यह था कि याजकों को भविष्यवाणी करने का वरदान प्राप्त था। **११ : ५२** में लेखक का प्रतिपादन है। "परमेश्वर की तितर-बितर संतान" से वे अन्यजातीय लोग अभि-प्रेत हैं जो ख्रिस्तीय कलीसिया में सम्मिलित हो जाते हैं। इस प्रकार कलीसिया विविध जातियों का एक ही समुदाय बनाती है, तुलना १० : १६। ११ : ५३ में स्पष्ट बताया गया है कि यहूदियों ने उस समय यीशु को मार डालने का निश्चय किया।

११ : ५४-५७ : "जंगल" का अर्थ यरूशलेम के उत्तर की ओर का प्रदेश है। इफ्राइम यरूशलेम से लगभग २४ किलोमीटर उत्तर की ओर स्थित था। फसह के पर्व से कुछ दिन पहले लोग शुद्धिकरण करने के लिए आया करते थे (तु. गि. ९ : ६-१३)। यह तीसरा फसह का पर्व है जिसका उल्लेख इस सुसमाचार में है (दे. २ : १३, २३; ६ : ४)। **११ : ५७** से प्रकट होता है कि यीशु के पकड़वाए जाने की आवश्यकता क्यों थी। कारण यह प्रतीत होता है कि यहूदी नेता नहीं जानते थे कि यीशु कहां रहा करता था।

(ग) बैतनिय्याह में यीशु का अभ्यंजन। लाजर की हत्या का षड्यंत्र १२ : १-११

१२ : १-८ : यह एक ऐसी घटना का वर्णन है जो अंशतः मर. १४ : ३-९; मत्त. २६ : ६-१३ और लू. ७ : ३६-५० में वर्णित घटना के समान है। इन स्थलों की व्याख्या को भी पढ़िए। साधारण मान्यता के अनुसार मरकुस, मत्ती और यूहन्ना के वर्णन

एक ही घटना के संबंध में है, परंतु लूका में एक पृथक घटना वर्णित है। मत्ती का विवरण मरकुस पर आधारित है, अतः मरकुस और यूहन्ना की तुलना करना आवश्यक है : (i) मरकुस के अनुसार यह घटना पर्व से दो दिन पहले हुई, परंतु यूहन्ना के अनुसार छः दिन पहले। (ii) मरकुस के अनुसार यह शमौन कोढ़ी के घर में बैतनिय्याह में घटित हुई परंतु यूहन्ना के अनुसार संभाव्यतः मरियम और मरथा के घर। (iii) मरकुस में स्त्री का नाम नहीं बताया गया परंतु यूहन्ना के अनुसार वह मरियम थी। (iv) मरकुस के अनुसार इस यीशु के सिर पर उंडेला गया परंतु यूहन्ना के अनुसार उसके पांवों पर (तु, लू. ७ : ३८)। (v) मरकुस के अनुसार "कोई कोई अपने मन में रिसियाकर कहने लगे" परंतु यूहन्ना के अनुसार यहूदा इस्करियोती था जिसने आपत्ति की। (vi) हि. प्र. के अनुसार १२ : ७ और मर. १४ : ८ में परस्पर विरोध है, परंतु इस संबंध में पद ७ की व्याख्या को पढ़िए।

अन्य स्थलों के समान इस अंश के संबंध में भी हमारी मान्यता यह है कि लेखक ने मरकुस और लूका के वर्णनों का मिश्रण नहीं किया परंतु उस ने एक पृथक परंपरा का प्रयोग किया। संभाव्यत उपरोक्तः दो वर्णनों का कुछ मिश्रण परंपरा के मौखिक विकास के चरण में हुआ।

इस घटना के समय के संबंध में मरकुस और यूहन्ना में जो अंतर है वह इस लिए है कि ये दो भिन्न परंपराएं है। कौन सा वर्णन ठीक है, हम यह नहीं जानते। इसी प्रकार स्थान भी अनिश्चित है। १२ : ३ और मर. १४ : ३ में इस के संबंध में कुछ शाब्दिक समानता है। इसी प्रकार पद ५ और मर. १४ : ५ में दो सौ दीनार का उल्लेख है, अतः अनेक विद्वानों की मान्यता है कि यूहन्ना ने मरकुस का प्रयोग किया। परंतु भिन्नताओं के कारण इस संबंध में उपरोक्त विचार ठीक जान पड़ता है। एक दीनार एक दिन की मजदूरी थी। यहूदा मरियम की क्रिया का सही मूल्यांकन नहीं कर सका। केवल इस सुसमाचार में बताया गया है कि यहूदा लोभी था। अन्य सुसमाचारों में यह वर्णित है कि उस ने रुपया लेकर यीशु को पकड़-वाया। इस बात का उल्लेख यूहन्ना में नहीं है। १२ : ७ का अर्थ, हि. प्र. के अनुसार, यह है कि यीशु चाहता था कि बचा हुआ इत्र उसके गाड़े जाने के दिन के लिए रख लिया जाए। परंतु यह १९ : ३९, ४० से और मर. १४ : ३ से असंगत है। मरकुस के अनुसार सारा इत्र उंडेल दिया गया। अतः संभाव्यतः यह अर्थ यूहन्ना में भी निहित है। पाठांतर में यह लिखा है कि "उस ने रखा है", अर्थात मरियम ने इसी दिन के लिए यह इत्र रखा था। यह पाठांतर प्रामाणिक मूल पाठ नहीं है, परंतु संभाव्यतः वह मूल पाठ का अर्थ ठीक व्यक्त करता है, अतः हि. सं., "उसे रहने दो; उसे यह मेरे गाड़े के दिन के लिए करने दो" और बुल्के, "इसे छोड़ दो। इस ने यह मेरे दफ़न के दिन की तैयारी में किया है "के अनुवाद स्वीकार्य हैं। इस प्रकार मरकुस और यूहन्ना के वर्णनों में असंगति नहीं है।

इस विवरण में मूल तथ्य यह है कि यह स्त्री एक अत्यंत बहुमूल्य वस्तु उंडेल

देती है, और यीशु का कथन है कि उस ने ठीक किया। उस स्त्री ने यीशु की होनेवाली मृत्यु के महत्व और उद्देश्य को पहचान लिया। यहूदा ने उसे नहीं पहचाना।

१२ : ६–११ : ये संपादकीय पद यरूशलेम में प्रवेश करने के वर्णन की तैयारी में लिखे गए, क्योंकि वे इस तथ्य को प्रकट करते हैं कि लोग यीशु का अनुसरण कर रहे थे। "साधारण लोग" के स्थान पर "यहूदियों की एक बड़ी भीड़" (हि. सं.) होना चाहिए। १२ : ११ में "**चले गए**" का अर्थ यह है कि वह अपने धर्म और धर्मनेताओं को छोड़ रहे थे, "बहुत से लोग उन से अलग हो रहे थे" (बुल्के)। लाजर के इस प्रभाव के कारण यहूदी नेता उसे भी नष्ट करना चाहते थे।

(घ) विजयोल्लास सहित यरूशलेम में प्रवेश १२ : १२–१९

१२ : १२–१९ : इस घटना का वर्णन मर. ११ : १-१०, मत्त. २१ : १-९ और लू. १९ : २८-३८ में भी है। इन वर्णनों का पहला भाग यूहन्ना में नहीं है। परंतु मर. ११ : ७-१० की व्याख्या को पढ़िए, जिस में यूहन्ना के अनेक ब्योरों का स्पष्टीकरण किया गया है। यूहन्ना में इस घटना का संबंध लाजर के जिलाए जाने से जोड़ा गया है। केवल इस सुसमाचार में खजूरों की डालियों का उल्लेख है। यहां भीड़ वह है जो पर्व में आई थी। **पद १७** में एक अन्य भीड़ का वर्णन है जो यीशु के साथ रही थी। **१२ : १३ :** "इस्राएल का राजा" शब्द अन्य सुसमाचारों में नहीं हैं। इस सुसमाचार में यीशु के राजा होने पर विशेष बल दिया गया है। इस में भीड़ की राष्ट्रीय भावना की झलक है। यीशु गधे पर सवार होता है। इससे यीशु यह प्रकट करता है कि वह लोगों की राजनीतिक शक्ति की मांगों को पूरा करने नहीं वरन परमेश्वर और मनुष्यों के बीच प्रेम और शांति का संबंध बनाने आया था। **१२ : १५ :** ज. ९ : ९ का उद्धरण मत्त. २१ : ५ में भी है—उसकी व्याख्या को देखिए। यूहन्ना में यह उद्धरण स्वतंत्र रूप में है, "मत डर" शब्द जकर्याह में नहीं हैं। "सिय्योन की बेटी" का अर्थ इस्राएल है। **१२ : १६ :** यह पद केवल यूहन्ना में है। शिष्यों के न समझने का कारण यह था कि अब तक आनेवाले ख्रिस्त के संबंध में यह भ्रांत विचार उनके मनों पर सवार था कि वह एक राजनीतिक विजेता होकर आएगा। यीशु की महिमा का अर्थ उस की क्रूस संबंधी मृत्यु है। **१२ : १७, १८** में उपरोक्त दो भिन्न भीड़ों का उल्लेख है (पद १८ में "लोग" मूल पाठ में "भीड़" है)। ये पद भी संपादकीय प्रतीत होते हैं। इनके द्वारा इस घटना और लाजर के जिलाए जाने में संबंध प्रकट किया गया है। **१२ : १९ :** फरीसी घबराकर निराश हो गए। "संसार", अर्थात बहुत लोग, यीशु के पीछे हो लिए थे। परंतु इस रूपक में यह संकेत भी है कि वास्तव में सुसमाचार समस्त संसार में प्रसारित हो रहा था। यह व्यंजना लेखनकाल की ओर संकेत करती है।

(च) यूनानियों का प्रश्न, अपनी मृत्यु के विषय यीशु की शिक्षा १२ : २०–३६

१२ : २०–२२ : इस का प्रसंग भी फसह का पर्व है। "यूनानी" का अर्थ यहां यूनानी भाषी ही नहीं वरन यूनानी वंश के लोग भी है। यदि ये यहूदी धर्म से प्रभावित

न होते तो पर्व में उपासना करने न आते। कदाचित वे "परमेश्वर से डरनेवाले" (प्रे. १३ : १६) थे, जो अंशतः इस धर्म में सम्मिलित हो गए थे। उनका यीशु के पास आना सुसमाचार की विश्वव्यापकता को प्रकट करता है। कदाचित वे इस कारण से फिलिप्पुस के पास आए कि उसका नाम यूनानी है। इस सुसमाचार में फिलिप्पुस और अंद्रियास का उल्लेख एक साथ होता है, १ : ४४; ६ : ५-८।

१२ : २३ : यह नहीं बताया जाता कि यूनानी यीशु से मिलने पाए या नहीं। उनके आने का वर्णन यीशु की बातों को प्रस्तुत करने का अवसर था, और वह यह भी प्रकट करता है कि ये बातें यहूदियों और अयहूदियों सब पर लागू हैं। "मनुष्य का पुत्र" के संबंध में १ : ५१ की व्याख्या को देखिए। बार बार यह बात दोहराई गई है (२ : ४; ७ : ६, ८, ३०; ८ : २०) कि यीशु का समय नहीं आया था। अब "वह समय आ पहुंचा है", अर्थात उसकी मृत्यु और पुनरुत्थान का समय। **१२ : २४, २५** : यीशु उस गेहूं के दाने के समान मरने को था, परंतु यहां जो सिद्धांत व्यक्त है वह सब लोगों पर भी लागू है। जब तक हम इस प्रकार मर नहीं जाते, अर्थात स्वार्थ को क्रूसित नहीं करते, तब तक हम अकेले रहते हैं, हमारे जीवन असफल हैं। **पद २५** की तुलना मर. ८ : ३५; मत्त. १० : ३९; १६ : २५; लू. ९ : २४; १७ : ३३ से कीजिए। मरकुस की व्याख्या को पढ़िए। उपरोक्त स्थलों में कुछ शाब्दिक अंतर है, परंतु मूल सिद्धांत एक ही है। यहां यूहन्ना के विशेष शब्द "अनंत जीवन" भी हैं, जिसका प्रतिपादन ३ : १६ की व्याख्या में किया गया है। **१२ : २६** में पद २५ की बात दूसरे रूप में दोहराई गई है। "आदर करना" अनंत जीवन देने के लि तुल्य है। मर. ८ : ३४ में इस पद का भिन्न रूप है।

१२ : २७–३० सहदर्शी सुसमाचारों में गतसमने में यीशु की प्रार्थना के समान है। यूहन्ना में गतसमने की घटना का वर्णन नहीं है। यहां भी यीशु के आंतरिक संघर्ष का चित्रण किया गया है, जिस से उसका वास्तविक मानवत्व प्रकट हो जाता है। यीशु की "घड़ी", या समय, का उल्लेख है। यह "घड़ी" मनुष्यों से नहीं, पिता परमेश्वर से निर्धारित थी। उस में यीशु के संसार में आने का अभिप्राय पूरा होने को था। "अपने नाम की महिमा कर" **मर. १४ : ३६** के समान है, "जो तू चाहता है वही हो"। मत्त. ६ : ९ उ, १० से भी तुलना कीजिए। आकाशवाणी के द्वारा यीशु को आश्वासन मिलता है। यीशु के समकालीन यहूदियों की मान्यता थी कि यद्यपि प्राचीन काल में परमेश्वर प्रत्यक्ष रूप से मनुष्यों से बात करता था, तथापि वह अब ऐसा नहीं करता। यहां परमेश्वर प्रत्यक्ष रूप से यीशु से बोलता है। जो यीशु से कहा गया लोगों ने उसे नहीं समझा, परंतु उन्हों ने पहचान लिया कि "बादलों का गरजना" परमेश्वर का शब्द है (तु. नि १९ : १९; भ. २९ : ३ क्र.)। **१२ : ३१-३३** : संसार और उसके अधिकारियों का विचार था कि यीशु का ही न्याय उसकी मृत्यु के द्वारा हुआ, परंतु वास्तव में संसार का न्याय हुआ, और जगत का सरदार, अर्थात शैतान, निकाल दिया गया। "इस संसार का सरदार" का उल्लेख १४ : ३०; १६ : ११ में भी है (हिं. सं., १२ : ३१ और १६ : ११ में, "संसार का अधिपति", १४ : ३० में "संसार का अधिकारी")। यूनानी मूल पाठ सब में समान

रूप है। "ऊंचे पर चढ़ाए जाने" का अर्थ क्रूस पर चढ़ाया जाना है, परंतु इस में यीशु के स्वर्गारोहण और महिमा में रहने का विचार भी निहित है। क्रूसित और विजयी ख्रिस्त में एक अद्भुत आकर्षण है। **१२ : ३४, ३५ पू** : पद २३ में यीशु ने स्वयं को मनुष्य का पुत्र कहा। लोगों के प्रश्न का अर्थ यह प्रतीत होता है कि क्या मनुष्य का पुत्र और मसीह (ख्रिस्त) एक ही हैं? यीशु ने अपनी, अर्थात मनुष्य के पुत्र की मृत्यु का उल्लेख किया था, परंतु ख्रिस्त के संबंध में लोगों की मान्यता यह थी कि वह नहीं मरेगा। यह मान्यता स्पष्ट शब्दों में पुराना नियम में व्यक्त नहीं है। यहूदियों के अप्रामाणिक साहित्य में उसकी ओर संकेत है।

१२ : ३५ उ, ३६ अंशतः ३ : १९-२१ के समान है—उसकी व्याख्या को पढ़िए। १ : ४-९; ८ : १२ और ११ : ९, १० और उनकी व्याख्या को भी देखिए। यीशु यहूदियों के प्रश्न का उत्तर नहीं देता। कदाचित इन पदों में यहूदियों के सामान्य विरोध की प्रतिक्रिया है। इस समस्त विवरण में लेखनकाल के वाद-विवाद का प्रभाव भी प्रकट है। ख्रिस्त के बिना चलना अंधकार में चलने के सदृश है। जीवन का कोई अन्य मानक अथवा आदर्श नहीं है जिसके प्रकाश में हम चलें।

(छ) भविष्यवाणी के अनुसार, लोग विश्वास नहीं करते। यीशु का न्याय और अधिकार १२ : ३७-५०

१२ : ३७-४३ : इस अंश में यहूदियों के अविश्वास का स्पष्टीकरण है। प्रारंभिक ख्रिस्तियों का दृढ़ विश्वास था कि परमेश्वर ने इस अविश्वास को अपने वचन के द्वारा निर्धारित किया था। **१२ : ३८** में यश. ५३ : १ (पूर्णतः सेप. के अनुसार) और **१२ : ४०** में यश. ६ : १० (मिश्रित मूल पाठ) उद्धृत हैं। यश. ५३ : १ का पहला भाग रो. १० : १६ में भी उद्धृत है। यश. ६ : १० मर. ४ : १२, मत्त. १३ : १४, १५ और लू. ८ : १० में, दृष्टांतों के अर्थ के स्पष्टीकरण के संबंध में, विविध रूपों में पाया जाता है। उन स्थलों की व्याख्या को पढ़िए। परमेश्वर को ही समष्टि का और सब घटनाओं का मूल कारण मानकर यहूदी लोग निमित्त कारण की उपेक्षा करते थे। नया नियम स्पष्ट करता है कि प्रारंभिक ख्रिस्ती इस कारण से मनुष्य की स्वतंत्र इच्छा और उसके उत्तरदायित्व का अस्वीकार नहीं करते थे। यह एक प्रकार की समस्या या विरोधाभास है जिसका बौद्धिक समाधान नहीं मिलता। **१२ : ४१** में स्पष्ट कहा गया है कि यशायाह ने ख्रिस्त की महिमा देखी थी। यहां यश. ६ : १ की ओर संकेत है, जहां यशायाह परमेश्वर की महिमा को देखता है। ख्रिस्त परमेश्वर के तुल्य है। यश. ५३ : १ में (पद ३८) जिस समाचार का उल्लेख है वह परमेश्वर की ओर से नबी को दिया गया था। इस विवरण में जो समाचार है वह यीशु की शिक्षा और उसके कार्यों का संदेश है। **१२ : ४२, ४३** में "सरदार" का अर्थ अधिकारी, अर्थात महासभा का सदस्य है। तुलना कीजिए ३ : १; ७ : ५० (नीकुदेमुस) मर. १५ : ४३ (यूसुफ), लू. १८ : १८; प्रे. ६ : ७। इनका विश्वास दृढ़ नहीं था, नहीं तो वे प्रत्यक्ष रूप से यीशु पर अपना विश्वास प्रकट करते।

१२ : ४४-५० : इन पदों में इस सुसमाचार के प्रमुख विचारों का संक्षेप है, मुख्यत: विश्वास करना, ज्योति और अंधकार, न्याय, अनंत जीवन, पिता पर यीशु की निर्भरता। निम्नांकित स्थलों से तुलना कीजिए :

१२ : ४४ : विश्वास करने का उल्लेख बार बार होता है। १ : १२ की टिप्पणी को देखिए। यीशु के "भेजे जाने" का उल्लेख भी बहुधा होता है, उदाहरणार्थ १ : ३३; ४ : ३४; ५ : २२, २४; ७ : १६ आदि। ४ : ३४ की टिप्पणी को देखिए।

१२ : ४५ का विचार १४ : ९ में भी है। १ : १८ से भी तुलना कीजिए।

१२ : ४६ : ज्योति के संबंध में १२ : ३५उ, ३६ की टिप्पणी में अन्य स्थलों और व्याख्या का उल्लेख है। अंधकार का वर्णन ८ : १२; ९ : ३९-४१ में है।

१२ : ४७, ४८ : न्याय का वर्णन ३ : १७-२१ (टिप्पणी को देखिए); ५ : २२-२४, २७ और ८ : १५, १६ में है।

१२ : ४९ : यीशु के पिता पर निर्भर रहने का विचार अनेक बार पाया जाता है, उदाहरणार्थ ५ : १९, २० (टिप्पणी); ७ : १६-१८।

१२ : ५० : अनंत जीवन का उल्लेख बार बार है। ३ : १६ की व्याख्या को देखिए।

३ : १७-२१ की व्याख्या में उपरोक्त अनेक विचारों का प्रतिपादन किया गया है।

५ यीशु के शिक्षात्मक प्रवचन १३ : १—१६ : ३३

(१) यीशु का शिष्यों के पैरों को धोना १३ : १-११

अब यीशु के "चिह्नों" का वर्णन समाप्त है और उसके दु:खभोग के विवरण की तैयारी में ये प्रवचन हैं। इन के संबंध में "भूमिका" पृष्ठ १२० पढ़िए।

१३ : १-११ : इस सुसमाचार में अंतिम भोज के ब्योरों का विवरण नहीं है, परंतु स्पष्ट है कि यह घटना उसी अवसर पर हुई। इस घटना की तुलना लू. २२ : २४ क्र. से, विशेषकर पद २७ से, कीजिए। यहां यीशु व्यावहारिक रूप से यही शिक्षा देता है। परंतु इस से बढ़कर इस सार्थक अंश में प्रतीकात्मक रूप से यीशु की क्रूस संबंधी मृत्यु और उसके प्रभाव का विवरण है। १३ : १ में स्पष्ट बताया गया है कि यह भोज फसह के दिन नहीं हुआ। यह बात मर. १४ : १२ से असंगत है। इस असंगति को दूर करने अनेक प्रयत्न किए गए हैं, परंतु वे असफल रहे हैं। इसके संबंध में मर. १४ : १२ की व्याख्या और "भूमिका" पृष्ठ ११८ को पढ़िए। "अंत तक" का अनुवाद हिं. सं. में "अंतिम सीमा तक" किया गया है। यूनानी मूल शब्दों में (एस तेलस) दोनों अर्थ निहित हैं, और संभाव्यत: दोनों लेखक के अभिप्राय में थे। "अंत तक" का अर्थ जान देने तक है। इसी पहले पद में यीशु की मृत्यु के साथ इस वर्णन का गहन संबंध स्पष्ट किया गया है। १३ : २ : पद १७ और लू. २२ : ३ से तुलना कीजिए। यूहन्ना और लूका ही यहूदा के संबंध में शैतान का उल्लेख करते हैं। १३ : ३ : यीशु ने यह कार्य इसी कारण किया कि वह परमेश्वर से आया। इसके विपरीत मनुष्य जब बड़प्पन का अनुभव करते

हैं तब नीचा माने जानेवाले कामों से कतराते हैं। "परमेश्वर के पास जाता हूं" शब्दों में उसकी मृत्यु की ओर एक और संकेत है। १३ : ४, ५ : यीशु की नम्रता स्पष्ट प्रकट की गई है। प्रतीकात्मक रूप से जल से शिष्यों के पैर धोने का अर्थ यीशु का अपनी मृत्यु द्वारा मनुष्य को सारे पाप से पवित्र और शुद्ध करना है। यीशु यहां एक दास के समान अपने कपड़े बांधता है। "उतार दिए" उस यूनानी शब्द (तिथनै) का अनुवाद है जिसका प्रयोग यीशु की मृत्यु के संबंध में किया गया है (१० : ११, १५, १७)।

१३ : ६–९ : पतरस को यीशु का यह कार्य बहुत अप्रिय लगा, क्योंकि उस ने इसका अभिप्राय नहीं समझा था। वह एक सेवा करनेवाले ख्रिस्त की कल्पना नहीं कर सकता था। "तू इसके बाद समझेगा" का अर्थ यीशु की मृत्यु और पुनरुत्थान के पश्चात है। "धोना" बपतिस्मा का प्रतीक है, और बपतिस्मा पाना यीशु की मृत्यु में भागी होना है (रो. ६ : ३)। पतरस यीशु के कथन के शाब्दिक अर्थों से आगे नहीं बढ़ पाता। १२ : १० : "जो नहा चुका है" शब्दों के संबंध में इस प्रथा का उल्लेख किया जाता है कि निमंत्रित व्यक्ति अपने घर में नहाकर आता था, अतः भोजन के लिए आकर उसे केवल पांव धोने की आवश्यकता होती थी। यहां भी बपतिस्मा की ओर संकेत है, जो शुद्धि-करण का प्रतीक है। अनेक हस्तलेखों में "पांव के सिवा" शब्द नहीं है, परंतु अधिकांश विद्वानों की मान्यता है कि वे मूल पाठ में सम्मिलित हैं। यद्यपि यीशु की मृत्यु अब तक नहीं हुई, जिस से पूर्ण शुद्धिकरण हो जाता है तो भी यीशु के साथ रहने के कारण अंशतः शिष्यों का शुद्धिकरण हो गया था। फिर भी उन में से एक यीशु को पकड़वाने को था (पद १० उ, ११)।

(२) उपरोक्त घटना के आधार पर शिक्षा १३ : १२-१७

अपने वस्त्र पहनकर यीशु एक यहूदी रब्बी के समान बैठ गया। "गुरु" का अर्थ रब्बी, अर्थात यहूदी अध्यापक है। गुरु चेले का पारस्परिक संबंध वही था जो भारत में है। चेला गुरु की सेवा करता था। यीशु की यह शिक्षा संसार के साधारण व्यवहार के विपरीत है। १३ : १४ में उर्दू अनुवाद अच्छा है, "एक दूसरे के पैर धोया करो"। हम देख चुके हैं कि "धोने" के अर्थ में यीशु की मृत्यु का अर्थ निहित है। हम तब ही एक दूसरे की सेवा मुक्त भाव से कर सकते हैं जब हम अपने अहं को यीशु के साथ क्रूसित करते हैं। यीशु हमारा आदर्श है (पद १५)। १३ : १६ : यीशु परमेश्वर की ओर से भेजा गया, अतः वह "भेजा हुआ" था। यहां भी यीशु की अधीनता और निर्भरता व्यक्त है (५ : १९, २०, आदि)। १३ : १७ : इस शिक्षा को कार्यात्मक रूप देना आवश्यक है, तुलना कीजिए मत्त. ७ : २४; या. १ : २५।

(३) यहूदा पकड़वानेवाले का भेद खुलना १३ : १८-३०

१३ : १८ : यीशु ने जानबूझकर यहूदा को चुन लिया था, उस ने धोखा नहीं खाया था। प्रमाण में भ. ४१ : ९ उद्धृत है, जिस में दाऊद, जो इस भजन का लेखक माना जाता था, दुहाई देता है। यह बात यहूदा पर लागू की गई। १३ : १९ में "मैं वही हूं"

के संबंध में ६ : २० और उसकी टीका को देखिए। **१३ : २०** : अब यीशु शिष्यों को "भेजने" को है। वे शिष्य ही नहीं रहेंगे वरन प्रेरित बनेंगे। उनको और उनके संदेश को ग्रहण करना यीशु और परमेश्वर को ग्रहण करने के तुल्य होगा। तुलना कीजिए १२ : ४४; मत्त. १० : ४०। **१३ : २१** "व्याकुल" वही शब्द है जिसका प्रयोग १२ : २७ में भी है। यीशु का मानवत्व स्पष्ट व्यक्त किया गया है। यीशु देखता है कि यहूदा इस काम से बाज़ नहीं आएगा। यीशु के शब्द लगभग वही हैं जो मर. १४ : १८ में भी हैं। **१३ : २२** : इस समस्त विवरण में शिष्य नहीं पहचानते कि यीशु किसकी ओर संकेत कर रहा है। **१३ : २३** में पहली बार "प्रिय शिष्य" का उल्लेख है (देखिए १९ : २६, २० : २; २१ : ७, २०)। साधारण मान्यता के अनुसार प्रिय शिष्य यूहन्ना, जबदी का पुत्र था। संभाव्यतः यह अनुमान ठीक है। सुसमाचार में प्रिय शिष्य के नाम का उल्लेख नहीं है। इस संबंध में "भूमिका" पृष्ठ १२५ को भी देखिए। इस भोजन पर वे सब बाईं बांह का सहारा लिये बैठे थे, कि दाहिने हाथ से भोजन कर सकें। उनकी यही प्रथा थी, और फसह के भोज के लिए ऐसी आज्ञा थी। अतः वह शिष्य जिस से यीशु प्रेम रखता था उसके दाहिने बैठा था, जिस से यीशु उस से सरलता से बात कर सकता था। संभवतः यहूदा यीशु की दूसरी ओर बैठा था। **१३ : २४** का अर्थ यह है कि पतरस ने प्रिय शिष्य को संकेत किया कि प्रिय शिष्य यीशु से पूछे कि कौन अभिप्रेत है।

१३ : २५-२९ : यह वर्णन संक्षिप्त है, अतः ऐसा प्रतीत होता है कि प्रिय शिष्य ने अवश्य यीशु को टुकड़ा डुबोकर यहूदा को देते हुए देखा होगा। परंतु पद २८ से ज्ञात होता है कि प्रिय शिष्य भी नहीं जानता था कि पकड़वानेवाला कौन है। तुलना कीजिए मर. १४ : १८-२०; मत्त. २० : २१-२३, २५; लू. २२ : २१-२३। **१३ : २७** (तुलना १३ : २) का अर्थ यह है कि वही समय था जब य हूदा पूर्ण रूप से शैतान की पकड़ में आ गया, जब उस ने पूरा निश्चय किया कि यीशु को पकड़वाए। यीशु ने उसे अवसर दिया था, परंतु अब वह उसे रोकने का प्रयत्न नहीं करता। वह जानता है कि उसका समय आ गया है। शिष्य अपने विचारों के अनुकूल अनुमान ही लगा सकते हैं (पद २९) (तुलना १२ : ६ से कीजिए)। **१३ : ३०** के अंतिम शब्द अत्यंत सार्थक हैं। यहूदा अंधकार में चला जाता है, रात का समय है, अर्थात यहूदा यीशु को पकड़वानेवाला है, और वह अन्तिम रात होनेवाली है जिसका वर्णन अनेक बार इस सुसमाचार में हुआ है। अंधकार का कार्य होने को है।

(४) प्रेम करने का आदेश। पतरस के अस्वीकरण की भविष्यवाणी १३ : ३१-३८

१३ : ३१, ३२ : यह वह महिमा है जो यीशु की मृत्यु, पुनरुत्थान और स्वर्गारोहण से प्रकट हुई। अब तक ये घटनाएं नहीं हुई थीं, परंतु वह प्रक्रिया आरंभ हो गई थी जिसका वे अंतिम परिणाम थीं। यीशु शीघ्र ही महिमान्वित होनेवाला था। 'परमेश्वर के साथ ही महिमान्वित होने' का अर्थ यह है कि परमेश्वर पिता पुत्र के साथ क्रूसीकरण की प्रक्रिया में सम्भागी था। "मनुष्य का पुत्र" का अर्थ १ : ५१ की टीका में बताया गया है। **१३ : ३३** की तुलना ७ : ३३-३६ और ८ : २१-२३ से कीजिए। यीशु अपने

पिता के पास जानेवाला है। १३ : ३४, ३५ : लै. १९ : १८ से प्रकट होता है कि यह आज्ञा स्वयं नई नहीं थी : "एक दूसरे से अपने समान प्रेम रखना"। नई बात है, "जैसा मैं ने तुम से प्रेम रखा है. . . ."। यहूदियों ने उपरोक्त आज्ञा के प्रयोग की परिधि को बहुत सीमित कर दिया था। यीशु उसको व्यापक कर देता है, क्योंकि उसका अपना प्रेम असीम था। इस प्रेम का प्रकाशन क्रूस के द्वारा हुआ। यथार्थ ख्रिस्ती की पहचान ऐसे प्रेम से ही होती है। हम सब इसी कसौटी पर कसे जाते हैं।

१३ : ३६-३८ : पतरस ने अब तक नहीं समझा था कि यीशु अपनी मृत्यु की ओर जा रहा था। "पीछे आने" का अर्थ "अनुयायी होना" है, परंतु यहां मरना और पिता के पास जाना अभिप्रेत है। एक परंपरा है कि कालांतर में पतरस रोम में क्रूसित हुआ। १३ : ३७ की तुलना मर. १४ : २९ से कीजिए। यीशु जानता था कि पतरस उस समय प्राण देने को तैयार नहीं था। १३ : ३८ मर. १४ : ३०; मत्त. २६ : ३४; लू. २२ : ३४ के समान है।

(५) भविष्य के विषय प्रतिज्ञाएं १४ : १-४

१४ : १ : "व्याकुल" वही शब्द है जिसका प्रयोग ११ : ३३; १२ : २७ और १३ : २१ में यीशु के संबंध में किया गया है। यीशु इस व्याकुलता का अनुभव कर चुका था। अतः भविष्य में, अर्थात यीशु की मृत्यु के पश्चात शिष्यों को व्याकुल होने की आवश्यकता नहीं होगी। हिं. सं. का अनुवाद ठीक है, "परमेश्वर पर विश्वास रखो और मुझ पर भी विश्वास रखो"। स्थिर विश्वास व्याकुलता को दूर कर देता है। १४ : २ : "रहने के स्थान" (यूनानी "मनै") और १५ : ४ में "बने रहो" (यूनानी "मेनते") सजातीय शब्द हैं। वास्तव में यीशु पर विश्वास करने वाले के लिए यथार्थ रहने का स्थान यीशु ख्रिस्त है। वही है जो मनुष्य को पिता के पास पहुंचा सकता है। यीशु अपनी मृत्यु के द्वारा "जाता" है। १४ : ३ : साधारण मान्यता के अनुसार यीशु का "फिर आना" युगांत के समय होगा, परंतु यहां यह विचार भी विद्यमान है कि पवित्र आत्मा द्वारा वह जी उठने के उपरांत उनके पास आएगा (तुलना कीजिए १४ : १८, १९)। यह मुख्यतः इस सुसमाचार का दृष्टिकोण है। १४ : ४ : सहदर्शी सुसमाचारों के अनुसार यीशु ने बहुत स्पष्ट शब्दों में अपने शिष्यों को अपनी मृत्यु के लिए तैयार किया था। यह "मार्ग" क्रूस का मार्ग था (तुलना कीजिए ७ : ३३)।

(६) यीशु पिता का दर्शन कराता है १४ : ५-१४

१४ : ५ में थोमा सब की ओर से बोलता है। उन्हों ने क्रूस का मार्ग नहीं समझा था। १४ : ६ में उल्लेखनीय है कि "मैं हूं" शब्द हैं, ६ : २० की व्याख्या को देखिए। इस में यीशु के ईश्वरत्व का महत्व प्रकट किया गया है। यीशु मार्गदर्शक ही नहीं, वह स्वयं मार्ग है। अपने देहधारण, शिक्षा, जीवन के आदर्श, क्रूस और पुनरुत्थान के कारण वह मार्ग है। उसके साथ एकात्म होने से हम उस मार्ग पर चल सकते हैं। "सत्य' का अर्थ नैतिक और आत्मिक है। इस सत्य की अभिव्यक्ति यीशु के शारीरिक जीवन में

हुई। यीशु जीवन का स्रोत भी है (१ : ४ और उसकी व्याख्या को देखिए)। केवल ख्रिस्त पिता परमेश्वर के पास पहुंचाने का मार्ग है। उसका क्रूस लोगों को आकर्षित करता है (१२ : ३२)। **१४ : ७-९ :** शिष्यों को जानना चाहिए था, परंतु वे नहीं जानते थे। फिलिप्पुस मानव-जाति की तीव्र आकांक्षा को व्यक्त करता है। यीशु स्वयं परमेश्वर की अभिव्यक्ति है, जिस ने उसको देखा है उस ने पिता को देखा है। शिष्य यीशु के साथ ही रहे थे, तो भी उन्हों ने इस तथ्य को पूर्ण रूप से नहीं पहचाना था (मर. ८ : २९-३३ और उसकी व्याख्या को देखिए)। आज भी वचन, संस्कारों और प्रार्थना के द्वारा विश्वासी अनुभव करता है कि यीशु ख्रिस्त परमेश्वर का प्रकाशन है। **१४ : १०, ११ :** पिता और पुत्र की एकता के संबंध में १० : ३० और उस की व्याख्या, और १७ : २१ को भी देखिए। "कामों" के संबंध में ५ : ३६; १० : २५, ३८ से तुलना करके १० : २५ की व्याख्या को पढ़िए।

१४ : १२ : विश्वास करना ख्रिस्त से गहरा व्यक्तिगत संबंध रखना है। यही "बड़े काम" करने का प्रतिबंध है। अधिकांश टीकाकारों की मान्यता के अनुसार "इन से भी बड़े काम" का अर्थ सुसमाचार-प्रचार, जीवन-परिवर्तन, कलीसिया की स्थापना और विविध साधनों द्वारा ख्रिस्तीय प्रेम की अभिव्यक्ति जैसे कार्य हैं। यीशु के पिता के पास जाने से समर्थ करनेवाला पवित्र आत्मा आएगा (१६ : ७)। **१४ : १३, १४ :** प्रार्थना का उत्तर मिलने का प्रतिबंध यह है कि वह "मेरे नाम से" हो। "नाम" का अर्थ "स्वभाव" है—उस प्रार्थना की पूर्ति होती है जो परमेश्वर के स्वभाव और इच्छानुसार है (या. ४ : ३ से तुलना कीजिए)। प्रार्थना और उसके उत्तर का उद्देश्य यह है कि "पुत्र के द्वारा पिता की महिमा हो"। स्वार्थ का ऐसा परिणाम असंभव है (तुलना कीजिए १५ : १६; १६ : २३, २४)।

(७) पवित्र आत्मा के विषय शिक्षा १४ : १५-२६

१४ : १५-१८ : इस "दूसरे सहायक" का अनुभव वे लोग कर सकते हैं जो यीशु से प्रेम रखते और उसकी आज्ञाओं को मानते हैं। यहां यह सहायक, यीशु के निवेदन पर, पिता की ओर से दिया जाता है। १४ : २६ के अनुसार पिता उसे यीशु के नाम से भेजता है, १५ : २६ में यीशु उसे पिता की ओर से भेजता है, और १६ : ७ के अनुसार यीशु उसे स्वयं भेजता है। उपरोक्त स्थल परमेश्वर पिता-पुत्र की पारस्परिक एकता को प्रकट करते हैं। "सहायक" (पराक्लेतस) का मूल अर्थ हिं. सं. की पादटिप्पणी में "अभिभावक (एडवोकेट), शांतिदाता, परामर्शदाता" व्यक्त किया गया है। यही शब्द १ यू. २ : १ में यीशु के लिए प्रयोग में लाया गया है। पवित्र आत्मा के द्वारा विश्वास करनेवाले का साथ देने, उसकी सहायता करने और उसका मार्गदर्शन करने के लिए यीशु सदा सर्वदा रहेगा। यीशु स्वयं सत्य है (१४ : ६) और यह सहायक सत्य का आत्मा है (१५ : २६; १६ : १३ भी)। यहां भी "सत्य" का अर्थ नैतिक और आत्मिक है। "संसार" के संबंध में ७ : ७ की टिप्पणी को पढ़िए। संसार सत्य से दूर रहता है, अतः सत्य का आत्मा ग्रहण नहीं कर सकता। **पद १७** की क्रियाएं वर्तमान

कालिक हैं, परंतु इस कथन के समय पवित्र आत्मा नहीं दिया गया था, अतः ऐसा प्रतीत होता है कि यह लेखनकाल के दृष्टिकोण से लिखा गया। परंतु संभवतः इन क्रियाओं में भविष्यकालिक अर्थ निहित है। व्यक्तिगत रूप से और सामूहिक रूप से भी "सहायक" विश्वासियों के साथ रहता है। "अनाथ" (यूनानी "अर्फनूस") उन चेलों के लिए प्रयुक्त होता था जिनका गुरु मर गया था। यीशु मरने को था, परंतु शिष्य अकेले नहीं रहेंगे। पुनरुत्थान के पश्चात यीशु ने उन्हें अपना दर्शन दिया, और पवित्र आत्मा के द्वारा वह उनके साथ है।

१४ : १९ : संसार के दुराचार के कारण संसार यीशु को नहीं देख सकेगा। विश्वासी का जीवित रहना यीशु के जीवित रहने का परिणाम है, वही है जो जीवन प्रदान करता है। एक अन्य संभव अनुवाद बुल्के के भाषांतर में व्यक्त है, "तुम मुझे देखोगे, क्योंकि मैं जीता हूं और तुम भी जीते रहोगे"। इन में से प्रथम अनुवाद अधिक सार्थक है। **१४ : २० :** "उस दिन" का अर्थ साधारणतः अंतिम दिवस, युगांत, है, परंतु यहां संभाव्यतः पुनरुत्थान के उपरांत यीशु का आत्मिक रूप से उपस्थित होना अभिप्रेत है। १४ : १० आदि से तुलना कीजिए, परंतु यहां यीशु के विश्वासी में वास करने का उल्लेख भी है। "ख्रिस्त में" रहने का उल्लेख बार बार पौलुस के पत्रों में होता है। **१४ : २१ :** यह पारस्परिक प्रेम यीशु के दर्शन पाने का रहस्य है। परमेश्वर समस्त संसार से प्रेम करता है (३ : १६), परंतु केवल उस से प्रेम करनेवाले उसके प्रेम से पूरा लाभ उठा सकते हैं। वह व्यक्ति जो यीशु से प्रेम करता है स्वाभाविक रूप से सहर्ष उसकी आज्ञाओं का पालन करता है। **१४ : २२-२४ :** इस यहूदा का उल्लेख अन्यत्र केवल लू. ६ : १६ और प्रे. १ : १३ में, शिष्यों के नामों की सूचियों में है। मर. ३ : १३-१९ की व्याख्या देखिए। यहूदा के प्रश्न का उत्तर यीशु यह देता है कि केवल वे व्यक्ति जो उस से प्रेम करते और उसके वचन के अनुसार आचरण करते हैं उसके प्रेम का अनुभव कर सकते हैं। कुछ अंशों में पद २१ की बात यहां दोहराई गई है। "वास करेंगे" में उसी शब्द का प्रयोग है (मने) जो १४ : २ में "रहने के स्थान" से अनूदित है। प्रेम की एकता से परमेश्वर से एकात्म होना है। भारत में ऐसी एकात्मता का अनुभव करने की बड़ी अभिलाषा है। यहां उसका मार्ग प्रकट किया गया है।

१४ : २५, २६ : इस सुसमाचार में केवल यहां पर दूसरा सहायक स्पष्ट शब्दों में पवित्र आत्मा कहा गया है। उसका एक विशेष कार्य यीशु के कथनों को स्मरण कराना और उनको सिखाना है। "जो कुछ मैं ने तुम से कहा है" शब्दों में "मैं" शब्द पर बल दिया गया है। वास्तव में यीशु की और पवित्र आत्मा की बातें एक ही हैं। यीशु के बहुत कथन थे जिनको शिष्यों ने नहीं समझा था, परंतु पिंतेकुस्त के दिन से वे उन्हें समझने लगे। ये बातें विशेषकर यीशु की मृत्यु और उसके अर्थ से संबंधित थीं।

(८) शांति का वरदान १४ : २७-३१

१४ : २७ : संसार की शांति अस्थायी है, वह शीघ्र ही ओझल हो जाती है, परंतु यीशु अपनी शांति, जो पिता परमेश्वर का आज्ञापालन करने और उसके साथ

रहने के परिणामस्वरूप प्राप्त होती है, विश्वासी को देता है। अतः व्याकुल और भय-भीत रहना विश्वास का अभाव और पाप है। **१४ : २८** में ऐसे विचार हैं जिन का वर्णन इस से पहले भी इस अध्याय में हो चुका है। क्रूस, जिस के द्वारा यीशु शिष्यों से पृथक होने को था, आनंद का कारण है। पिता पुत्र से महान है, सब कुछ पिता की इच्छा पर निर्भर है, अतः क्रूस पिता का इच्छानुसार होने के नाते आनंद का कारण हो सकता है। क्रूस के अनुभव में पिता और पुत्र एक हैं; पिता पुत्र को विवश नहीं करता। **१४ : ३०, ३१** : "इस संसार का सरदार" के संबंध में १२ : ३१ की व्याख्या को देखिए। यीशु में कोई ऐसी बात नहीं थी जिसका प्रयोग शैतान कर सके, उसका यीशु पर कुछ अधिकार नहीं था। "और बहुत बातें न करूंगा" और "उठो, यहां से चलें" शब्दों के कारण अनेक विद्वानों की यह मान्यता है कि इस प्रवचन की समाप्ति आरंभ में यहां थी। इसके संबंध में विभिन्न विचार हैं, मुख्यतः (i) कि अध्याय १५ और १६ आरंभ में अध्याय १४ से पहले थे, और किसी प्रकार से यह क्रम परिवर्तित हुआ। (ii) कि अध्याय १४ तथा अध्याय १५ और १६ (अनेक विद्वान अध्याय १७ भी सम्मिलित करते हैं) पृथक स्रोतों से लिए गए हैं। उन स्रोतों में एक ही प्रवचन लिखा गया था। इन में से (ii) अधिक संभाव्य प्रतीत होता है, परंतु यह भी अनुमान ही है। हस्तलेखों में कोई संकेत नहीं है कि परिवर्तन किया गया है। तो भी यह संभव है कि आरंभ में ही संपादक ने कुछ परि-वर्तन किए।

(६) सच्ची दाखलता और शाखाएं १५ : १-१७

पुराना नियम में बहुधा दाखलता अथवा दाख की बारी का रूपक इस्राएल के संबंध में प्रयोग में लाया जाता है। देखिए यश. ५ : १-७; यि. २ : २१; यहे. १५ : १-६; १९ : १०-१४; भ. ८० : ८-१६। इस विषय में मूल विचार यि. २ : २१ में स्पष्ट व्यक्त किया गया है, "मैं ने तुम्हें उत्तम जाति की दाखलता और उत्तम बीज करके लगाया था, तो फिर तू क्यों मेरे लिए जंगली दाखलता बन गई ?" इस्राएल वह सच्ची दाखलता प्रमाणित नहीं हुआ जो परमेश्वर चाहता था, वह उसकी इच्छानुसार फल नहीं लाया। सहदर्शी सुसमाचारों में भी यीशु ने इस रूपक का प्रयोग किया : मर. १२ : १-९=मत्त. २१ : ३३-४१=लू. २० : ९-१६ में दाख की बारी के स्वामी के पुत्र की हत्या का वर्णन है। मत्त. २० : १-१६ : दाख उद्यान के श्रमिकों को समान रूप से परिश्रमिक मिलता है। मत्त. २१ : २८-३८ : दो पुत्र दाख उद्यान में कार्य करने भेजे जाते हैं। लू. १३ : ६-९ : दाख उद्यान में फलहीन अंजीर का वृक्ष।

अनेक विद्वान, इस अध्याय का संबंध अध्याय १३ के साथ मानकर, इस में, विशेषकर दाख की बारी के वर्णन में, प्रभु भोज की ओर संकेत पाते हैं। प्रभु भोज प्रभु और विश्वासी की एकात्मता का प्रतीक है।

१५ : १-६ : यीशु सच्ची दाखलता, अर्थात यथार्थ इस्राएल है। परमेश्वर की जो आकांक्षा इस्राएल के लिए थी वह यीशु में ही पूरी हो गई। किसान पिता परमेश्वर है, जिस के हाथों में दाखलता है। इस में कलीसिया का चित्र निहित है। यीशु अकेला

नहीं है, परंतु यीशु से संयुक्त व्यक्ति भी इस में सम्मिलित हैं (२)। दाखलता को छांटना अत्यंत आवश्यक है, इसके बिना फल अच्छा नहीं हो सकता। यूनानी मूल शब्द ("कथैरो") का अर्थ "शुद्ध करना" है, अत: १५ : २ और ३ में समान विचार है। तुलना कीजिए १३ : १०, मानो यहूदा "छांटा गया"। यह कृषि का सामान्य शब्द है। शिष्यों को शुद्ध करने का साधन यीशु का वचन है, जिसका अर्थ उसकी शिक्षा है (तुलना १२ : ४८ से कीजिए)। इस वचन में परमेश्वर की शक्ति है। **१५ : ४** : "बने रहो" का शाब्दिक अर्थ "रहो" (हिं. सं., बुल्के) ही है। यह वही शब्द है जिसका उल्लेख १४ :२ की व्याख्या में किया गया है। यीशु में रहना इस अंश का प्रमुख विचार है, जिस का अर्थ यीशु के साथ एक गहरा व्यक्तिगत संबंध स्थापित करना और बनाए रखना है। इसकी तुलना १४ : २३ और उसकी व्याख्या से कीजिए। "फलने" का उल्लेख पद ८ और १६ में भी है। फलने की एकमात्र शर्त ख्रिस्त में रहना है। फलने के दो अर्थ हैं, (i) ख्रिस्तीय चरित्र, अर्थात सदाचार, आध्यात्मिकता, पवित्रता, प्रेम आदि। (ii) सुसमाचार-प्रचार का फल, अपने शब्दों और जीवन के आदर्श से अन्य लोगों को यीशु की ओर आकर्षित करना। **१५ : ५** : न केवल विश्वासी ख्रिस्त में है, वरन ख्रिस्त उस में भी है (१४ : २३)। ख्रिस्त विश्व और समष्टि का केंद्र है (कुल. १ : १७), अत: यह स्वाभाविक बात है कि उस से पृथक होकर हम कुछ नहीं कर सकते हैं। हम में और उस में उस प्रकार का अनिवार्य संबंध है जो शाखाओं और वृक्ष में होता है। **१५ : ६** : दाखलता की लकड़ी केवल जलाने के योग्य होती है। यीशु के जीवन से पृथक रहने का परिणाम "सूख जाना" है।

१५ : ७-१० : इस अंश में १३ : ३१-१४ : ३१ के अनेक विचार दोहराए गए हैं। आगे उस परिच्छेद की ओर, और अनेक पदों की व्याख्या की ओर, संकेत किया गया है। **१५ : ७** : "मांगने" के संबंध में १४ : १३ की व्याख्या को पढ़िए। पारस्परिक एकात्मता के संबंध में १४ : २३; १५ : ३, ५ से और "बातें तुम में बनी रहें" के विषय में १४ : १५, २१, २३, २४ (आज्ञापालन) से तुलना कीजिए। **१५ : ८** : महिमा के संबंध में १३ : ३१ (व्याख्या) और १४ : १३ को देखिए। फल के संबंध में १५ : ४ की व्याख्या को देखिए। **१५ : ९, १०** : पारस्परिक प्रेम के संबंध में १४ : २१, २३ और उनकी व्याख्या को देखिए। आज्ञापालन का उल्लेख भी उसी व्याख्या में है।

१५ : ११-१७ : इस में भी अनेक बातें दोहराई गई हैं। **१५ : ११** : आनंद के संबंध में १४ : २८ और उसकी व्याख्या को देखिए। वास्तविक आनंद केवल उस व्यक्ति का हो सकता है जो क्रूसित और पुनरुत्थित ख्रिस्त के साथ एकात्म है। **१५ : १२** में पारस्परिक प्रेम करने की आज्ञा है, जो १३ : ३४ के समान है—उसकी व्याख्या को देखिए। १४ : २१; १५ : ९, १० और १ यू. ४ : ७-११ से भी तुलना कीजिए। **१५ : १३-१५** में प्रमुख विचार यह है कि शिष्य यीशु के मित्र हैं, अत: यीशु का अपने मित्रों के लिए अपने प्राण देना ३ : १६ के विरुद्ध नहीं है, जहां कहा गया है कि यीशु की मृत्यु संसार के लिए हुई। यीशु के मित्र वे लोग हैं जो क्रूस के मार्ग में उसके अनुयायी होने को

स्वीकार करते हैं। रो. ५ : ६-११ के अनुसार क्रूस परमेश्वर के प्रेम की अभिव्यक्ति है, और वह परमेश्वर के शत्रुओं के निमित्त भी हुआ। दास विवशता से कार्य करता है, मित्र का व्यवहार स्वतंत्र रूप से और प्रेमभाव से होता है, अतः उसके लिए आज्ञा आज्ञा ही नहीं रही (१४ : २१ की व्याख्या को देखिए) वरन प्रेम की अनुक्रिया हो गई। फिर भी यीशु का "मित्र" परमेश्वर की इच्छा की पूर्ति करता है, अपनी इच्छा की नहीं, यही उसका आज्ञापालन है। यीशु अपने मित्रों के लिए परमेश्वर की बातें प्रकट करता है, यह वास्तविक मित्रता का प्रमाण है। जो यीशु के मित्र हैं वे परमेश्वर के रहस्य की बातों में भागी हो सकते हैं। १५ : १६ : "मैं" शब्द पर बल दिया गया है। इस शब्द से इस तथ्य का महत्व स्पष्ट किया गया है कि पहल करनेवाला परमेश्वर है। फल लाना मनुष्य के प्रयत्न पर नहीं वरन परमेश्वर के आह्वान पर अवलंबित है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि निर्वाचन का उद्देश्य फल लाना है। वास्तव में सुसमाचार-प्रचार करना, लोगों को ख्रिस्त के पास लाना कि वे उसके ही रहें, फल लाना है। निर्वाचन का अभिप्राय उद्धार-प्राप्ति ही नहीं वरन फल लाना भी है (तुलना १५ : ४ और उसकी व्याख्या)। १५ : १७ इस अंश और अगले अंश के बीच की कड़ी है।

(१०) संसार का विरोध १५ : १८-२५

१५: १८, २० : "संसार" के संबंध में ७ : ७ की व्याख्या को देखिए। इसके समान शिक्षा मर. ८ : २४-३८; १० : ३९; १३ : ९-१३; मत्त. १० : १६-२५ जैसे स्थलों में पाई जाती है। ऐसी शिक्षा विशेष रूप से इस सुसमाचार के रचनाकाल की कलीसिया पर लागू थी, जब उस पर सरकारी तौर पर अत्याचार हो रहा था। मुख्य तथ्य यह है कि यदि ख्रिस्ती अपने प्रभु के प्रति निष्ठावान है तो अनिवार्य रूप से "संसार" से उसकी टक्कर होती है; जैसा व्यवहार उन्हों ने यीशु (स्वामी) के साथ किया वैसा ही उसके अनुयायी (दास) के साथ करेंगे। यही कथन १३ : ३६ में भी है। ख्रिस्ती संसार का नहीं है, अतः उसके और संसार के बीच संघर्ष है (७ : ७ और १७ : १४ से तुलना कीजिए)। १५: २१ : परमेश्वर (भेजनेवाले) को न जानने के संबंध में ८ : १९ और उसकी व्याख्या को पढ़िए। १५ : २२-२४ : इसकी तुलना ९ : ३९-४१ से करके उस स्थल की टीका को भी पढ़िए। परमेश्वर ने यीशु के शब्दों (पद २२) और कार्यों (पद २४) के द्वारा मनुष्यों को अपना प्रकाशन दिया। इसको स्वीकार करना मनुष्यों, विशेषकर यहूदियों, का उत्तरदायित्व था, परंतु यीशु को अस्वीकार करने में उन्हों ने परमेश्वर को ही अस्वीकार किया। ये पापी कहे गए हैं, अर्थात वे लोग जो जान बूझकर परमेश्वर का विरोध करते हैं। प्रारंभिक कलीसिया के सब ख्रिस्ती यहूदियों में से थे, तो भी अधिकांश यहूदियों ने यीशु को अस्वीकार किया। १५ : २५ में उद्धृत शब्द दो भजनों, ३५ : १९ और ६९ : ४ में पाए जाते है। लेखक का अभिप्राय यह प्रकट करना है कि यीशु के विरोधियों की शत्रुता धर्मशास्त्र के अनुकूल थी। इस पद में "व्यवस्था" का अर्थ समस्त धर्मशास्त्र, अर्थात हमारा पुराना नियम है।

(११) पवित्र आत्मा और संसार के विरोध के विषय शिक्षा १५ : २६—१६ : १५

१५ : २६, २७ : तुलना १४ : १५-१८ और उसकी व्याख्या से कीजिए। पवित्र आत्मा, पुत्र के समान, पिता की ओर से निकलता है, तुलना कीजिए (पुत्र के संबंध में) ८ : ४२; १३ : ३; १६ : २७; १७ : ८। साक्षी के संबंध में ५ : ३०-४० और उसकी व्याख्या को पढ़िए, जहां यीशु की साक्षी देनेवालों का वर्णन है (मर. १३ : ११ से भी तुलना कीजिए)। यीशु के संसार से चले जाने के उपरांत उसकी साक्षी देने के लिए पवित्र आत्मा उपस्थित होगा। इसी प्रकार शिष्यों को भी साक्षी देनी होगी। अपने जीवनकाल में ऐसी बातें कहने की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि यीशु शिष्यों के पास था और स्वयं उन्हें शिक्षा दे सकता था।

१६ : १-४ : "ये बातें" का अर्थ संसार के विरोध के संबंध में उपरोक्त बातें है। "ठोकर खाना" ख्रिस्तीय विश्वास को अस्वीकार करना है (तु. ६ : ६१)। आराधनालय से बहिष्कार के विषय में ९ : २२ और १२ : ४२, और ९ : १८-२३ की व्याख्या को देखिए। कलीसिया के प्रारंभ में ख्रिस्ती लोग यहूदियों में से ही थे। आराधनालय में से निकाला जाना उनके लिए बड़े कष्ट की बात होती, क्योंकि उस चरण पर ख्रिस्ती लोग यहूदियों से पृथक नहीं हुए थे। "सेवा" के मूल यूनानी शब्द ("लत्रेया") का विशेष अर्थ धर्म-सेवा है। ख्रिस्ती होने से पहले पौलुस का विचार था कि ख्रिस्तियों पर अत्याचार करने में वह परमेश्वर की सेवा कर रहा था (प्रे. २२ : ३-५; २६ : ९-११)। पिता को जानने के संबंध में ८ : १९ और उसकी व्याख्या को, और १५ : २१ को देखिए। पुत्र को जानना पिता को भी जानना है (१४ : ८-११)। इस से पहले यीशु को ऐसी बातें कहने की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि वह उनकी सहायता के लिए संदेह उपस्थित था। अब से लेकर वह "दूसरे सहायक" के द्वारा उनकी सहायता करेगा।

१६ : ५-७ : १३ : ३६ और १४ : ५ के अनुसार पतरस और थोमा ने पूछा कि "तू कहां जाता है"। अतः यह मानना पड़ता है कि इस पद में यह बात केवल प्रसंग की बातों के विषय में कही गई—"कोई नहीं पूछ रहा है"। या यह भी संभव है कि यह पद और १३ : ३६ तथा १४ : ५ पृथक स्रोतों से हैं। भेजनेवाले के पास जाने के संबंध में ७ : ३३ और उसकी व्याख्या को देखिए। यीशु का जाना उनके लिए इसलिए अच्छा है कि जब वह संदेह उनके साथ था तब यह अपने मानवत्व के कारण सीमित था, परंतु पुनरुत्थान के उपरांत वह पवित्र आत्मा के द्वारा सदा सर्वदा और सर्वत्र उपस्थित होगा (तु. ७ : ३९ और उसकी व्याख्या)। १४ : १६, २६; १५ : २६ से भी तुलना कीजिए।

१६ : ८-११ : "निरुत्तर करेगा" (अलेंक्से") शब्द के अनेक अर्थभेद हैं, "काइल करना" (हि. प्र. पाद-टिप्पणी), "दोषी सिद्ध करेगा" (हिं. सं.), "भ्रम प्रमाणित करेगा" (बुल्के—ध. ग्र. इसके समान है)। ८ : ४६ के कारण, जहां इसी शब्द का प्रयोग है (पापी ठहराता है) हिं. सं. का अनुवाद स्वीकार करना चाहिए। पद ११ में एक अन्य यूनानी शब्द का प्रयोग किया गया है जिसका यही अर्थ है ("केक्रिनै", "क्रिनो"

का एक रूप)। पवित्र आत्मा लोगों को पाप के विषय में दोषी सिद्ध करता है। इस पाप की चरम सीमा यीशु पर विश्वास न करना है (तु. ६ : २९)। जहां पूर्ण व्यक्तिगत विश्वास है वहां पाप नहीं होता। यीशु के "पिता के पास जाने" का अर्थ उसकी क्रूस-संबंधी मृत्यु और पुनरुत्थान है, जिस से परमेश्वर की धार्मिकता प्रकट होती है। परमेश्वर ही भलाई और धार्मिकता का स्रोत है। मनुष्य केवल पवित्र आत्मा की सहायता से पहचान सकते हैं कि यीशु की मृत्यु और पुनरुत्थान परमेश्वर की धार्मिकता को प्रकट करते हैं। क्रूस की विजय के कारण शैतान को हार माननी पड़ती है, और उसका न्याय हो जाता है। पवित्र आत्मा की सहायता से ही लोग पहचान सकते हैं कि शैतान का पतन हो चुका है और उसकी शक्ति समाप्त हो गई।

१६ : १२-१५ : "सत्य का आत्मा" के संबंध में १४ : १७ और उसकी व्याख्या, तथा १५ : २६; १ यू. ४ : ६ को देखिए। यही शिष्यों का मार्गदर्शन (हिं. सं.) करेगा। "सब सत्य" का अर्थ सांसारिक ज्ञान नहीं वरन आध्यात्मिक ज्ञान है। विशेष रूप से पवित्र आत्मा यीशु की शिक्षा का स्पष्टीकरण करेगा (पद १४), कि शिष्य उसको समझें। अन्य सुसाचारों में हमें ज्ञात है कि बहुधा यीशु की शिक्षा, विशेषकर यह शिक्षा जो उस ने अपनी मृत्यु के संबंध में दी, उनकी समझ में नहीं आती थी। "आनेवाली बातों" में यीशु की मृत्यु और पुनरुत्थान आदि सम्मिलित हैं। संभवतः यह भी अभिप्रेत है कि वह उनके व्यक्तिगत और सामूहिक विकास में भी उनका मार्गदर्शन करेगा। **१६ : १४** में ख्रिस्त की महिमा" करने (हिं. सं. "महिमान्वित करना") का अर्थ उसके स्वभाव को प्रकट करना है। पवित्र आत्मा के द्वारा हम ख्रिस्त को पहचानते हैं, और उसकी शिक्षा हमारे लिए परमेश्वर का वचन अनुभवात्मक रूप से प्रमाणित होती है। **१६ : १५** की तुलना ५ : ३०; ७ : १७; १२ : ४९; १४ : १० से कीजिए।

(१२) यीशु अपनी मृत्यु का स्पष्टीकरण करता है १६ : १६-३३

१६ : १६-१८ : तुलना कीजिए १४ : १९ और उसकी व्याख्या। "देखने" के दो अर्थ हैं, शारीरिक और आत्मिक। यीशु की मृत्यु के कारण वह शारीरिक रूप से थोड़े समय के लिए उन से पृथक हो जाएगा, परंतु पुनरुत्थान के पश्चात शिष्य फिर उसे देखेंगे। इस सुसमाचार में इस तथ्य पर बल दिया गया है कि यीशु से एकात्म होने के लिए, अनंत जीवन की प्राप्ति के लिए, आदि, युगांत तक ठहरने की आवश्यकता नहीं है। ये वरदान अब प्राप्त हो सकते हैं। परंतु पद २१ और पद २३ की व्याख्या को भी देखिए। यहूदियों के समान (७ : ३३-३६) शिष्य इस बात को नहीं समझते।

१६ : १९-२२ : "तुम रोओगे" में "तुम" शब्द पर बल दिया गया है। यीशु की मृत्यु शिष्यों के लिए अत्यंत शोक का कारण होगी, परंतु संसार के लिए आनंद का कारण। तो भी शिष्यों का शोक पुनरुत्थान के समय आनंद में परिवर्तित होगा। स्त्री के जनने की पीड़ा का वर्णन यश. १६ : १६-१९ और ६६ : ७-१४ में है। ऐसे स्थलों के आधार पर पुराना और नया नियमों के लिखे जाने के मध्यांतर के अप्रामाणिक यहूदी साहित्य में "मसीह के जन्म की प्रसव पीड़ा" का उल्लेख बहुधा पाया जाता है। अतः

यहूदियों की मान्यता यह थी कि ख्रिस्त के आने से पहले विविध प्रकार के कष्ट और संकट होंगे। संभव है कि यह विचार यीशु के कथन की पृष्ठभूमि है। यह शिष्यों के शोक के आनंद में परिवर्तित होने का सजीव चित्रण है। वह आनंद स्थायी होगा—कोई उसे छीन नहीं सकेगा। "मैं तुम से फिल मिलूंगा" पाद-टिप्पणी में "मैं तुम्हें फिर देखूंगा" से अनुदित है, जो सही शाब्दिक अनुवाद है। इसका संबंध पद १६ क्र. से है। उसका उन्हें देखना बड़ी आशिष का कारण होगा।

१६ : २३, २४, "उस दिन" के संबंध में १४ : २० और उसकी व्याख्या को देखिए। यहां भी मुख्यतः यीशु के जी उठने के पश्चात के समय का उल्लेख है, परंतु संभवतः साथ ही साथ युगांत और यीशु के पुनरागमन की ओर भी संकेत है। ऐतिहासिक रूप से यीशु का पुनरुत्थान और पवित्र आत्मा का अवतरण शिष्यों के लिए हर्षोल्लास का समय था। संभाव्यतः हमारे अनुवाद ठीक हैं कि यहां "पूछने", अर्थात प्रश्न पूछने, और "मांगने" का भी उल्लेख है। शिष्यों से प्रश्न तो बहुत पूछे थे, परंतु अब तक कुछ नहीं मांगा था। यीशु के नाम से मांगन के संबंध में १४ : १३ और उसकी व्याख्या को देखिए। तुलना कीजिए १५ : १६; १६ : २६; मत्त. ७ : ७; १८ : १८, २०।

१६ : २५ : "दृष्टांत" एक यूनानी शब्द ("परैमिया") का अनुवाद है जिसका प्रयोग अन्य सुसमाचारों में नहीं किया गया। इस सुसमाचार में इस शब्द का अर्थ एक रहस्यमय कथन है। यह "खोलकर बताने" की विषमता में है। संभवतः दाखलता, चरवाहे आदि के विषय कथन अभिप्रेत हैं, परंतु अधिक संभव है कि इस का अर्थ अपनी मृत्यु आदि के संबंध में यीशु के रहस्यमय कथन हैं।

१६ : २६, २७ : "उस दिन" के संबंध में पद २३ की व्याख्या को देखिए। "मांगने" का विषय पद २३, २४ से संबंधित है। जब यीशु उनके साथ था तब उस ने उनके लिए बिनती की (१४ : १६, अध्याय १७, विशेषकर पद ९, १५, २०) परंतु पुनरुत्थान के पश्चात वह फिर पिता परमेश्वर के पास होगा, अतः ऐसा करना अनावश्यक होगा। पिता के प्रेम और उस से प्रेम करने वालों के संबंध में १४ : २१ और उसकी व्याख्या को पढ़िए। पिता समस्त संसार से प्रेम करता है (३ : १६)। पिता की ओर से निकलने के संबंध में ८ : ४२; १३ : ३; १६ : २८, ३०; १७ : ८ से तुलना कीजिए इस में यीशु का ईश्वरत्व प्रकट किया गया है। परंतु पद ३०, ३१ से ज्ञात होता है कि अब तक शिष्यों का यह विश्वास अपूर्ण था।

१६ : २८-३० : पद २८ में यीशु के देहधारण, क्रूस-संबंधी मृत्यु, पुनरुत्थान और स्वर्गारोहण का संक्षिप्त वर्णन है। "दृष्टांत" वही शब्द है जो पद २५ में भी है। कदाचित "तुझे प्रयोजन नहीं. . . ." शब्दों का संकेत पद १९ की ओर है, जहां शिष्यों के पूछने से पहले यीशु जानता है कि वे पूछने को हैं। शिष्यों को निश्चय है कि अब वे यीशु की शिक्षा को समझ गए हैं, परंतु अब तक उनका विश्वास अपूर्ण है। यीशु बार बार इस प्रवचन में परमेश्वर को "पिता" कहता रहा है, उदाहरणार्थ पद ९, २३, २७। परतु शिष्य कहते हैं कि "तू परमेश्वर से निकला है"। वे "पिता" शब्द का प्रयोग

नहीं करते। ऐसा प्रतीत होता है कि पिता-पुत्र के परस्पर संबंध में उनके विश्वास में कमी थी।

१६ : ३१-३३ : यद्यपि पतरस और एक अन्य शिष्य (१८ : १५) यीशु के विचार में उपस्थित थे, और क्रूस के समय कुछ स्त्रियां और प्रिय शिष्य वहां थे तो भी मौलिक रूप से वह अकेला था। मर. १४ : २७ से हमें ज्ञात है कि वह भविष्यवाणी पूर्ण हुई। इस सुसमाचार में उसकी पूर्ति का वर्णन नहीं है। संभाव्यत: "ये बातें" का अर्थ इन प्रवचनों की सब बाते हैं। शांति के संबंध में १४ : २७ और उसकी व्याख्या को देखिए। संसार के संबंध में ७ : ७ और उसकी व्याख्या को पढ़िए। यीशु इस संकटमय, कष्टपूर्ण और दुष्ट संसार पर विजेता है, अत: विश्वासी धैर्य रखकर शांति को प्राप्त कर सकता है (तु. रो. ८ : ३१)। यीशु की मृत्यु और पुनरुत्थान के द्वारा ख्रिस्ती "संसार" पर विजय प्राप्त करता है।

६. यीशु की प्रार्थना अध्याय १७

इस प्रार्थना में इस सुसमाचार के अनेक प्रमुख विचार पाए जाते हैं, जैसे पिता और पुत्र की एकता, पुत्र का आज्ञापालन, कलीसिया की एकता, पिता और पुत्र की महिमा, संसार का न होना, आदि। प्रार्थना लेखक की साहित्यिक शैली में लिखी गई है, जिसके कारण अनेक विद्वानों की मान्यता है कि यीशु ने स्वयं ऐसी प्रार्थना नहीं की होगी, वरन किसी ख्रिस्ती भविष्यवक्ता ने इसको रचा। हमारा विचार है कि यद्यपि इस प्रार्थना में रचनाकाल के संकेत विद्यमान हैं तथापि संभाव्यत: यीशु ने इस अवसर पर इस प्रकार की प्रार्थना की होगी, जिसके आधार पर लेखक ने इसको रचा। यीशु के प्रार्थना करने का वर्णन अनेक बार सहदर्शी सुसमाचारों में पाया जाता है, परंतु सामान्य रूप से इन प्रार्थनाओं की विषय-सामग्री प्रस्तुत नहीं की गई है। गतसमने की प्रार्थना हम जानते हैं (मर. १४ : ३२-४२ आदि), और मत्त. ११ : २५-२७ में यीशु की एक प्रार्थना है। सब से लम्बी प्रार्थना यूहन्ना के इस अध्याय में है।

(१) पुत्र की महिमा १७ : १-५

"घड़ी", या "समय" के संबंध में (दे. २ : ४; ७ : ६, ८, ३०; ८ : २०) २ : ४ की व्याख्या को पढ़िए। महिमा के विषय में १३ : ३१ और उसकी व्याख्या को पढ़िए और ७ : ३९; १२ : २३ से भी तुलना कीजिए। यहूदियों में आंखें स्वर्ग की ओर उठाना प्रार्थना करने की साधारण मुद्रा थी। "प्रभु की प्रार्थना" के समान यीशु परमेश्वर को यहां भी "पिता" कहकर संबोधित करता है। पुत्र अपनी मृत्यु के द्वारा पिता की महिमा को प्रकट करता है। परंतु क्रूस की घटना में पिता का प्रेम भी क्रियाशील है, क्रूस पिता के प्रेम की अभिव्यक्ति है, अत: क्रूस और पुनरुत्थान में पिता पुत्र को महिमान्वित करता है। १७ : २ : अधिकार के संबंध में ५ : २७; १० : १८ से तुलना कीजिए। पुत्र का अधिकार पिता की ओर से उसे प्राप्त है, और वह अधिकार, "सब प्राणियों" पर है। इसका अर्थ इब्रानी मुहाविरे में साधारणत: "सब मनुष्य" है, अत: बुल्के का अनुवाद

"समस्त मानव जाति पर" है, परंतु संभवतः समस्त सृष्टि अभिप्रेत है। कम से कम मानव जाति पर ख्रिस्त का अधिकार असीम है। "जिन्हें तू ने उसको दिया है" के संबंध में ६ : ३७ को देखिए, और ६ : ३५-४० की टीका को पढ़िए। "अनंत जीवन" की टिप्पणी ३ : १६ की टीका में पाई जाती है। इस अनंत जीवन का संक्षिप्त प्रतिपादन १७ : ३ में है। "जानना" बौद्धिक नहीं, अनुभवात्मक है, जिसके संबंध में १४ : ७ को देखिए और १४ : ७-९ की व्याख्या को पढ़िए। "अद्वैत" (हिं. सं. "एक मात्र") शब्द से परमेश्वर की मौलिक एकता और अद्वितीयता का महत्व प्रकट किया गया है। इस पद में पिता-पुत्र की एकता भी व्यक्त की गई है। यीशु का पिता की ओर से भेजा जाना भी इस सुसमाचार के प्रमुख विचारों में से एक है ७ : ४ : "पूरा करके" उसी शब्द (तलेयाओ) का अनुवाद है जो १९ : ३० में "पूरा हुआ" से अनुदित है। मरते समय यीशु के यही शब्द थे। अतः यह तर्कसंगत प्रतीत होता है कि उस "काम" में जो पूरा हुआ हम यीशु की मृत्यु को भी सम्मिलित मानें, भले ही यीशु की मृत्यु अब तक नहीं हुई थी। वह होने-वाली और निश्चित है, अतः उसके संबंध में भूतकालिक क्रिया का प्रयोग किया गया है। क्रूस से ही यीशु का कार्य पूरा हुआ। १७ : ५ : ख्रिस्त के पूर्व अस्तित्व का उल्लेख १ : १, २; ८ : ५८ और १७ : २४ में है। फिलि. २ : ७ से भी तुलना कीजिए। देहधारण की स्थिति में यीशु ने अपने आप को "रिक्त कर दिया", मानो अपनी उस महिमा को उतार दिया था। पुनरुत्थान के पश्चात वह फिर उसे धारण कर सकता था। यह उसके ईश्वरत्व की महिमा है।

(२) शिष्यों के लिए प्रार्थना १७ : ६-१९

१७ : ६ : परमेश्वर के "नाम" में उसका स्वभाव, उसका तत्व निहित है (तुलना १४ : १३ और उसकी व्याख्या)। यही है जिसको यीशु ने अपने शिष्यों पर प्रकट किया (तुलना १ : १८)। "मुझे दिया" के संबंध में पद २ की टिप्पणी को देखिए। "वचन" का अर्थ यहां वह संदेश है जो ख्रिस्त के जीवन और शिक्षा के द्वारा दिया गया। यह बात कालांतर की कलीसिया के दृष्टिकोण से लिखी गई, क्योंकि यह नहीं कहा जा सकता था कि उस समय शिष्यों ने पूर्ण रूप से उस वचन को मान लिया था। **१७ : ७, ८** : इसी प्रकार यहां भी एक परिपक्व विश्वास का वर्णन है। ३ : ३४; ७ : १६; १२ : ४९, ५०; १४ : १० और २४ में स्पष्ट किया गया है कि जो कुछ यीशु का था वह उसे पिता की ओर से मिला। यीशु ने विश्वस्तता से शिष्यों को वह पहुंचा दिया जो उसे पिता की ओर से मिला। ख्रिस्तीय विश्वास इस तथ्य पर आधारित है कि यीशु ईश्वरीय है, वह परमेश्वर की ओर से निकला। १६ : २७ की व्याख्या को देखिए। **१७ : ९** : यीशु समस्त संसार के उद्धार के लिए आया (३ : १६)। यह प्रार्थना एक विशेष परिस्थिति के प्रसंग में है। यीशु सुसमाचार-प्रचार का कार्य शिष्यों के हाथ में सौंपने को था, अतः उनके लिए विशेष प्रार्थना करने की आवश्यकता थी। वे परमेश्वर के हाथ में उसके कार्य की पूर्ति के साधन थे।

१७ : १० : "जो कुछ" शब्दों का अर्थ विस्तृत है, शिष्यों तक सीमित नहीं

है, परंतु संभाव्यत: "इन से" शब्दों से केवल शिष्य अभिप्रेत हैं। यीशु की महिमा विशेष रूप से इन शिष्यों से प्रकट हुई। इस पद में पिता-पुत्र की समता व्यक्त की गई है—१६ : १५ की टिप्पणी को देखिए, जहां ऐसे अन्य स्थलों का उल्लेख है। ख्रिस्त का ईश्वरत्व बहुत स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया गया है। शिष्यों ने बहुधा यीशु के कथनों को नहीं समझा, तो भी उन्हों ने उसकी महिमा प्रकट की। उन्होंने उस पर विश्वास किया और उसके निमित्त सब कुछ छोड़ दिया। यहां भी सुसमाचार के लेखनकाल का प्रभाव दृष्टिगोचर है, जब शिष्य सुसमाचार-प्रचार करने और दुख उठाने से यीशु की महिमा प्रकट कर चुके थे। १७ : ११ में इस प्रार्थना का अभिप्राय स्पष्टत: व्यक्त किया गया है। "संसार" में (७ : ७ की टिप्पणी) रहते हुए शिष्यों की रक्षा होना अत्यावश्यक था। "पवित्र" शब्द का प्रयोग पद १७ और १९ में शिष्यों के संबंध में किया गया है। परमेश्वर अपने तत्त्व की दृष्टि से मनुष्य से महान और पृथक है। "अपने उस नाम से जो तू ने मुझे दिया" का अर्थ यह है कि यीशु परमेश्वर के सत्य और सामर्थ्य को प्रकट करता है, अत: वह उनकी रक्षा कर सकता है। पिता-पुत्र की एकता का प्रतिपादन १० : ३० की टीका में किया गया है। ऐसी एकता पूर्ण और अटूट है। मौलिक रूप से सब ख्रिस्तियों को एक होना चाहिए, अत: यद्यपि यह प्रार्थना कलीसिया के संप्रदायों के संबंध में नहीं की गई तो भी वह उन पर लागू है।

१७ : १२ : "मैं ने उनकी रक्षा की" शब्दों में "मैं" पर बल दिया गया है। परंतु अब यीशु शिष्यों से पृथक होनेवाला है, अत: वह प्रार्थना करता है कि पिता उनकी रक्षा करे। "नाम" के संबंध में पद ११ और १४ : १३ और उनकी व्याख्या को देखिए। "विनाश का पुत्र" और "नाश" शब्दों में शब्द श्लेष है। "विनाश का पुत्र" शब्द २ थि. २ : ३ में भी पाए जाते हैं, जहां उनका स्पष्टीकरण "पाप का पुरुष" शब्दों से किया गया है। इस पद में यह विचार निहित है कि यहूदा इस्करियोती का ऐसा अंत निर्धारित था, क्योंकि पवित्र शास्त्र में ऐसा लिखा था। इस में संभाव्यत: १३ : १८ की ओर संकेत है, जहां इस संबंध में भ. १३ : १९ उद्धृत है। **१७ : १३** : "ये बातें" का अर्थ संभाव्यत: इस प्रार्थना की बातें है "आनंद" के संबंध में १४ : २८; १५, ११ और उनकी व्याख्या को देखिए, और १६ : २०-२२, २४ से भी तुलना कीजिए। **१७ : १४** : इस पद के विचार १५ : १८, १९ में भी पाए जाते हैं, अत: उन पदों की व्याख्या को पढ़िए। "वचन" के संबंध में पद ६ की व्याख्या को देखिए। **१७ : १५, १६** : यह भारत की उस सामान्य धारणा से असंगत है कि यथार्थ भक्त संन्यासी बनकर संसार से वियुक्त हो जाता है। ऐसा व्यक्ति संसार में भी नहीं रहता। यीशु के शिष्यों को संसार में रहते हुए उसके सामान्य दैनिक जीवन में संभागी होना है। "दुष्ट" (तू पनेरू) का अर्थ "दुष्टता" भी हो सकता है, परंतु संभाव्यत: "दुष्ट", अर्थात शैतान अभिप्रेत है। संसार में रहते हुए परीक्षा और प्रलोभन का शिकार बनने का खतरा होता है, अत: उनकी रक्षा करने की आवश्यकता है। "संसार के" न होने में यीशु स्वयं आदर्श है। वह कभी "संसार" के वश में नहीं हुआ।

१७ : १७ : "पवित्र" शब्द में "समर्पण" की भावना निहित है, अर्थात परमेश्वर के विशेष उपयोग के लिए पृथक किया हुआ, अतः बुल्के का अनुवाद है, "उन्हें समर्पित कर"। शिष्य परमेश्वर के उपयोग के लिए निर्वाचित थे, और उसका वचन, जो उसका प्रकाशन और सत्य है, वह साधन था जिसके द्वारा वे तैयार किए जा सकते थे। पद १६ में और १० : ३६ में यीशु के पवित्र किए जाने का उल्लेख है। १७ : १८ : इसकी तुलना १३ : २० और उसकी व्याख्या से, और २० : २१ से कीजिए। शिष्य अब तक "जगत" में नहीं निकले हैं, पर निकलनेवाले हैं। यह वह संसार है जिस से परमेश्वर प्रेम करता है, भले ही वह दुष्ट है (३ : १३)। १७ : १६ : पद १७ की व्याख्या को देखिए। "पवित्र करना" शब्द का प्रयोग उन याजकों के लिए किया जाता था जो बलि विधियों को संपन्न करने के लिए अपने को तैयार करते थे, अतः इस शब्द का प्रयोग मृत्यु से संबंधित था। "के लिए" शब्द भी बलिदानों के संबंध में प्रयुक्त होता था, अतः यहां पर "उनके लिए अपने आपको पवित्र करता हूं" का अर्थ यह है कि यीशु अपनी मृत्यु के लिए तैयार हो रहा है। नया नियम में बार बार इस बात का उल्लेख है कि यीशु की मृत्यु मनुष्यों "के लिए" है (१० : ११; ११ : ५०, ५२; १५ : १३, आदि)। यह वह विशेष कार्य था जो उस समय यीशु के सामने था, और जिसके लिए उसे अपने आप को पवित्र, अर्थात समर्पित, करना था। उसकी मृत्यु के द्वारा शिष्य पवित्र, समर्पित, किए जाते हैं।

(३) अन्य विश्वासियों के लिए प्रार्थना १७ : २०-२३

१७ : २० में वे सब लोग सम्मिलित माने जा सकते हैं जो कालांतर में ख्रिस्त के अनुयायी होंगे। वे अन्य लोगों की साक्षी के आधार पर विश्वास करते हैं। यह समस्त कलीसिया की एकता के लिए प्रार्थना है। १७ : २१ : यह एकता पिता-पुत्र की एकता के समान है (पद ११ की व्याख्या को देखिए)। इसका परिणाम यह होगा कि संसार विश्वास करेगा कि पिता ने पुत्र को भेजा (३ : १७ की व्याख्या को देखिए)। क्या ही सार्थक शब्द हैं ये! कलीसिया की एकता उसकी साक्षी के सत्य का प्रमाण है। इसका अर्थ यह नहीं है कि अनिवार्य रूप से कलीसिया को आराधना विधि, परंपराओं, संगठन आदि के संबंध में एक होना है। यह असंभव प्रतीत होता है, और संभाव्यतः व्यक्तिगत स्वाभाविक भिन्नताओं के आधार पर विविध आराधना विधियों आदि का प्रबंध होना चाहिए। परंतु हमारी एकता में कोई ऐसी विभिन्नता न हो जिस से यह प्रकट हो कि वास्तव में हम ख्रिस्त में एक नहीं हैं। बहुधा सब से बड़े विभेद एक ही ख्रिस्तीय संप्रदाय के अन्तर्गत होते हैं। ख्रिस्तियों में आध्यात्मिक एकता अत्यंत आवश्यक है—यह वह एकता है जिसके लिए यीशु ने प्रार्थना की। ऐसी एकता का अभाव एक कारण है कि संसार प्रतीति नहीं करता कि "तू ही ने मुझे भेजा"। १० : ३० की व्याख्या को भी देखिए। १७ : २२ : "महिमा" के संबंध में १३ : ३१ की व्याख्या को पढ़िए। यहां भी इस शब्दों में यीशु की मृत्यु की ओर संकेत है। जब यीशु शिष्यों को महिमा देता है तब वे उसकी मृत्यु में सहभागी हो जाते हैं, जिसके परिणाम स्वरूप उन में एकता उत्पन्न होती है। कलीसियाभ की एकता क्रूस पर आधारित है।

१७ : २३ में फिर उस एकता पर बल दिया गया है। यहां बुल्के का अनुवाद ठीक है, "जिस से वे पूर्ण रूप से एक हो जाएं"—उनकी एकता की पूर्णता पर बल दिया गया है। इस एकता का परिणाम वही है जो पद २१ में बताया गया है। यह प्रेम की एकता है।

(४) प्रार्थना का सारांश १७ : २४-२६

"जिन्हें तू ने मुझे दिया है" शिष्य हैं (पद २, ६, और ६ : ३५-४० की व्याख्या को देखिए)। "जहां मैं हूं" का अर्थ परमेश्वर की उपस्थिति और सहभागिता है। इस में यह विचार है कि यीशु फिर पिता के पास जाएगा और इस महिमा को प्राप्त करेगा जो देहधारण से पूर्व उसकी थी (पद ५ और उसकी व्याख्या को देखिए)। परंतु उसके सांसारिक जीवन में भी शिष्यों ने उसकी महिमा का अनुभव किया (१ : १४)। यीशु के साथ रहने से पूर्ण एकता संभव हो जाती है, क्योंकि एकता का आधार परमेश्वर का प्रेम है। पिता पुत्र से प्रेम करता है, और पुत्र पिता के प्रेम की अभिव्यक्ति है, अतः यीशु के साथ रहना प्रेम की एकता में रहना है। १७ : २५, २६ : "जानने" के संबंध में ८ : १९ और उसकी व्याख्या को देखिए—वह बौद्धिक नहीं, अनुभवात्मक है। "नाम" के संबंध में पद ११ की व्याख्या को देखिए। परमेश्वर का नाम उसके मूल तत्व का प्रतीक है, और वह मूल तत्व है प्रेम। यीशु के अनुयायी पिता-पुत्र के पारस्परिक प्रेम में सहभागी होते हैं—यह उनके लिए यीशु की प्रार्थना है।

७. यीशु की मृत्यु और पुनरुत्थान अध्याय १८-२०

इस सुसमाचार के इस अंतिम भाग में इस तथ्य का महत्व प्रकट किया गया है कि मनुष्य यीशु को विवश नहीं कर सकते, वह पूर्णतः स्वतंत्र है। उसको स्वयं अपने प्राण देने का अधिकार था। इस विवरण से हमें ज्ञात होता है कि वास्तव में यहूदियों के नेता और पिलातुस यीशु का न्याय नहीं कर रहे थे वरन उसके सामने उनका न्याय हो रहा था। यह भी स्पष्ट है कि लेखक का मौलिक अभिप्राय एक ऐतिहासिक वर्णन लिखना नहीं वरन इतिहास का तात्पर्य प्रकट करना है। यहूदा रोमी सेना और मंदिर के आरक्षियों को, जो सांसारिक शक्ति के प्रतीक हैं, ले आता है। इसी प्रकार से यूहन्ना और काइफा तथा पिलातुस के सामने, जो संसार के अधिकारी हैं, यीशु पराजित नहीं वरन विजयी दिखाई देता है। न्यायिक जांच में भी उसकी विजय होती है।

इस विवरण और सहदर्शी विवरणों में भिन्नता है, जिसका ब्योरा निम्नानुसार है : (क) वे घटनाएं और कथन जो अन्य दो या तीन सुसमाचारों में पाए जाते हैं, परंतु इस में नहीं : गतसमने में यीशु की प्रार्थना (यू. १८ : ११ में उसकी ओर संकेत है); यहूदा का यीशु को चूमना; शिष्यों का भाग जाना; रात को यीशु का महासभा के सामने प्रस्तुत किया जाना; झूठी साक्षी, महायाजक का प्रश्न और यीशु का स्वीकरण कि वह ख्रिस्त है; उपहासपूर्ण आदेश कि "भविष्यवाणी कर"; महासभा का प्रातःकाल एकत्रित होना; पिलातुस के निर्णय के पश्चात सिपाहियों का यीशु को ठट्ठों में उड़ाना; शमौन कुरेने का क्रूस को उठाना; देखनेवालों और डाकुओं का उसकी निंदा करना : मंदिर

के परदे का फट जाना; सूबेदार का स्वीकार करना कि "सचमुच यह मनुष्य परमेश्वर का पुत्र था"।

(ख) केवल मत्ती में : पिलातुस की पत्नि का संदेश; पिलातुस का अपने हाथों को धोना; भूकंप, और अन्य कुछ गौण बातें।

(ग) केवल मरकुस में : नवयुवक का गतसमने बाग से भाग जाना, पिलातुस का प्रश्न, क्या यीशु मर चुका ?

(घ) केवल लूका में : हेरोदेस के समक्ष यीशु का विचार; स्त्रियों का क्रूस के मार्ग पर यीशु के लिए विलाप करना; क्रूस पर से तीन कथन, २३ : ३४, ४३, ४६; एक डाकू का पछताना।

(च) वे बातें जो केवल यूहन्ना में हैं : यीशु की गिरफ्तारी पर उसके अधिकार-पूर्ण शब्द (१८ : ४-९); हन्ना के सामने यीशु का विचार; पिलातुस का यहूदियों को संबोधित करना, और उनके उत्तर; यीशु से पिलातुस की अधिक बातें जो १८ : २८-२९ : १६ में वर्णित हैं; यीशु का अपनी माता को प्रिय शिष्य के हाथ में सौंप देना; यीशु का कथन "पूरा हुआ"; यीशु की टांगों का तोड़ा जाना और उसका भाले से छेदा जाना; उसको गाड़ने में नीकुदेमुस की सहायता।

उपरोक्त ब्योरों के अतिरिक्त बहुत सी सूक्ष्म भिन्नताएं हैं जिन में से अनेक का उल्लेख टीका में किया गया है।

(१) यीशु को पकड़नेवाले १८ : १-११

किद्रोन का नाला यरूशलेम और जैतून के बीच की घाटी है जिस में केवल बरसात में पानी होता है। इस सुसमाचार में ही यह वर्णित है कि वे एक उद्यान में गए परंतु उसका नाम, गतसमने, नहीं बताया गया। तुलना कीजिए मत्त. २६ : ३०, ३६; मर. १४ : २६, ३२; लू. २२ : ३९, ४०। ऐसा प्रतीत होता है कि उद्यान चारों ओर बाड़े से घिरा था। इस सुसमाचार में यीशु के वहां प्रार्थना करने का वर्णन नहीं है, परंतु पद ११ में कटोरा का उल्लेख है, जो उस प्रार्थना की ओर संकेत करता है (मर. १४ : ३६)। **१८ : २** : लू. २२ : ३९ में भी वर्णित है कि यीशु "अपनी रीति के अनुसार" वहां गया। अन्य सुसमाचारों में इसका उल्लेख नहीं है। **१८ : ३** : "पलटन" साधारणतः ६०० रोमी सैनिकों की, परंतु कभी-कभी केवल २०० की होती थी। रोमी सैनिकों की उपस्थिति से ज्ञात होता है कि यहूदी नेताओं ने पिलातुस के साथ मिलकर यीशु की गिरिफ्तारी का प्रबंध किया था। रोमी सैनिकों के अतिरिक्त मंदिर के आरक्षी (प्यादे) भी आए। महायाजक और फरीसी बहुधा परस्पर विरोधी होते थे, परंतु इस कार्य में वे एका कर रहे थे। सैनिक और आरक्षी संसार की शक्ति का प्रतीक है। दीपकों और मशालों का उल्लेख केवल इस सुसमाचार में है। दीपकों और मशालों की जरूरत नहीं होनी चाहिये क्योंकि वह रात्रि पूर्णिमा की होती थी। अतः बादल हुए होंगे, या उन लोगों ने सोचा होगा कि यीशु कहीं छिप गया होगा।

१८ : ४ : अपनी गिरिफ्तारी में भी यीशु पहल करता है, वह स्वयं आगे बढ़ता

है। मर. १४ : ४५=मत्त २६ : ४६ के अनुसार यहूदा ने यीशु का चुम्बन किया, जिस से लोगों ने उसे पहचाना और गिरिफ्तार किया। यूहन्ना और सहदर्शी सुसमाचारों के वर्णन संगत नहीं किए जा सकते। यूहन्ना का अभिप्राय सैद्धांतिक और शिक्षात्मक है। **१८ : ५** में फिर यीशु उनका मार्गदर्शन करता है। वह बचने का प्रयत्न नहीं करता। "मैं हूं" शब्दों के संबंध में ६ : २० और उसकी व्याख्या को पढ़िए। **१८ : ६** भी केवल इस सुसमाचार में है। प्रतीकात्मक रूप से यह प्रकट किया गया है कि यीशु के सशक्त तेजोमय व्यक्तित्व के सामने संसार की शक्ति को (पद ३) हटना पड़ा। **१८ : ७, ८ :** इस भयानक समय भी यीशु को अपनी नहीं वरन अपने शिष्यों की चिंता थी। इस में भी यीशु का पहल करना प्रकट है। **१८ : ९** : यीशु का यह कथन १७ : १२ में पाया जाता है।

१८ : १०, ११ : तुलना कीजिए मर. १४ : ४७; मत्त. २६ : ५१-५४। केवल इस सुसमाचार के अनुसार तलवार चलानेवाला पतरस था, और जिसका कान उड़ाया गया उसका नाम मलखुस था। पर्व के समय तलवार लिए फिरना निषिद्ध था। पतरस से यीशु के कथन की तुलना मत्त. २६ : ५२ से कीजिए। यहां तलवार को म्यान में रखने का कारण यह बताया गया है कि अनिवार्य रूप से यीशु को दिया गया कटोरा उसे पीना है। यह गतसमने की प्रार्थना की ओर स्पष्ट संकेत है (मर. १४ : ३६ और उसकी व्याख्या की अंतिम पंक्तियों को पढ़िए)।

(२) यीशु का पकड़वाया जाना, हन्ना और काइफा के समक्ष जांच, पतरस का अस्वीकरण १८ : १२-२७

१८ : १२-१४ : "सूबेदार" (हिं. सं. "सेनापति", यूनानी "खिलियर्कस") वह सैनिक अधिकारी था जिसके अधिकार में ६००-१००० सैनिकों की पलटन थी। मरकुस (१५ : ५३-६५) और मत्ती (२६ : ५७-६८) के अनुसार यीशु का विचार महायाजक के सामने हुआ, जिसका नाम मत्ती काइफा बताता है। रात को यीशु का प्रतिपरीक्षण हुआ, और प्रातःकाल महासभा एकत्रित की गई कि रात का निर्णय, जो विधिविरुद्ध था, वैध करें (मर. १५ : १; मत्त. २७ : १, २)। लूका के अनुसार महासभा केवल प्रातःकाल एकत्रित हुई, और प्रतिपरीक्षण उस समय हुआ। ब्योरेवार सुसमाचारों के वर्णनों को संगत करना असंभव है।

हन्ना ई. स. १६ में महायाजक के पद से हटा दिया गया था तो भी यीशु के विचार के समय भी इसका बहुत अधिकार था। हन्ना और काइफा के संबंध में लू. ३ : २ की व्याख्या को पढ़िए। हन्ना के चार पुत्र भी समय समय महायाजक रह चुके थे। उस काल में रोमी शासक महायाजकों को नियुक्त और पदच्युत करते थे। काइफा की "सलाह" का वर्णन ११ : ५० में है, उसकी व्याख्या को देखिए।

१८ : १५-१८ : इस अंश के पहले दो पदों की जानकारी केवल इस सुसमाचार में है। वह दूसरा शिष्य कौन था जो पतरस के साथ था, यह हम नहीं जानते। अनेक टीकाकारों का अनुमान है कि वह "प्रिय शिष्य" था (२० : २-४, ८ आदि), परंतु इसका

कोई प्रमाण नहीं है। यीशु का एक गलीली शिष्य संभाव्यतः महायाजक से परिचित नहीं हुआ होगा, अतः अनेक विद्वानों की मान्यता है कि यह शिष्य यरूशलेम निवासी था, अर्थात वह बारह शिष्यों में से एक नहीं था। यह सब अनुमान ही है। इन पदों के अनुसार इसी शिष्य के कारण पतरस उस घर में प्रवेश कर सका। यह भी पता लगता है कि स्थान महायाजक का घर था। यद्यपि हन्ना उस समय महायाजक नहीं था तो भी यह शब्द भूतपूर्व महायाजकों पर भी लागू किया जाता था। केवल इस सुसमाचार के अनुसार वह दासी जिस ने पतरस से प्रश्न पूछा द्वारपालिन थी (तुलना मर. १४ : ६६-६८)। यरूशलेम अढ़ाई सहस्त्र फुट से अधिक ऊंचाई पर स्थित है, अतः उस ऋतु में रात को ठंड थी।

१८ : १९-२४ : वास्तव में महायाजक काइफा था, परंतु पद २४ के कारण मानना पड़ता है कि यहां हन्ना अभिप्रेत है। इस सुसमाचार में यीशु से केवल उसके शिष्यों और उसकी शिक्षा के विषय में पूछा जाता है। अन्य सुसमाचारों में प्रश्न उसके ख्रिस्त, परमेश्वर का पुत्र, होने के संबंध में है। १८ : २० में "मैं" शब्द पर बल दिया गया है, अतः कदाचित इस कथन में यह निहित है कि यहूदी छिपे छिपे गुप्त बातें करते थे। यहां "जगत" का अर्थ जनसाधारण है। यीशु ने एकांत में भी शिक्षा दी, उदाहरणार्थ नीकुदेमुस को (अध्याय ३), परंतु उसकी शिक्षा में विद्रोह और षड़यंत्र की बातें नहीं थीं। यदि यह औपचारिक मुकद्दमा था तो महायाजक का प्रश्न विधि-विरुद्ध था, क्योंकि ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने में यह आशंका रहती थी कि प्रतिवादी अपने आप को दोषी प्रमाणित करे, अतः यीशु का उत्तर अनुचित नहीं, विधि-अनुसार था। यीशु ने महायाजक का अपमान नहीं किया था। लेखक प्रकट करता है कि महायाजक के सामने यीशु अधिकारी था, वह नहीं दब सकता था। हन्ना ने यीशु को फिर काइफा के पास भेज दिया। संभवतः काइफा नहीं इसी मकान में था। इस सुसमाचार में काइफा के सामने विचार होने का वर्णन नहीं है। लेखक ने चुनिंदा बातों का वर्णन किया है; संभवतः उसको सहदर्शी सुसमाचारों की परंपराएं भी अंशतः ज्ञात थीं।

१८ : २५-२७ : सब सुसमाचारों के अनुसार पतरस ने तीन बार यीशु का अस्वीकार किया। वे इस पर भी सहमत हैं कि एक स्त्री ने उस से पहला प्रश्न किया। दूसरे प्रश्न के संबंध में कुछ सहमति नहीं है, और तीसरे प्रश्न में केवल मरकुस और मत्ती सहमत हैं (मर. १४ : ६६-७२; मत्त. २६ : ६९-७५; लू. २२ : ५६-६२ से तुलना कीजिए)। स्पष्ट है कि इन वर्णनों के ब्योरे संगत नहीं किए जा सकते। परंतु सब की सबल साक्षी है कि पतरस ने इस प्रकार अपने प्रभु को अस्वीकार किया। पतरस का इन्कार बहुत साफ है। केवल यूहन्ना उस कुटुंबी का उल्लेख करता है जिसका कान पतरस ने काटा। स्पष्टतः यह सहदर्शी सुसमाचारों से भिन्न परंपरा पर आधारित है। इस सुसमाचार में पतरस के रोने का वर्णन नहीं है।

(२) पिलातुस के समक्ष न्याय १८ : २८-१९ : १६

आरंभ में पिलातुस किले के बाहर यहूदियों से वार्तालाप करता है। फिर वह

तीन बार भीतर जाता है, एक बार यीशु को कोड़े लगवाने के लिए, दो बार उस से वार्तालाप करने के लिए। फिर तीन बार बाहर आकर वह यहूदियों के साथ वाद-विवाद करता है। इस प्रकार हम इस विवरण को सात छोटे अंशों में विभाजित कर सकते हैं। लेखक ने इसको प्रभावशाली नाटकीय रूप दिया है। यीशु का विचार हो रहा है, परंतु यीशु, पिलातुस और यहूदियों के कथनों से लेखक अद्‌भुत रीति से यह प्रकट करता है कि वास्तव में यीशु ही है जिसको इस समस्त कार्यवाही में अधिकार प्राप्त है।

१८ : २८-३२ : "किला" यूनानी शब्द "प्राइतोरियन" (हिं. सं.) का अनुवाद है। यहां इस शब्द का अर्थ "राज्यपाल का भवन" (हिं. सं. पाद-टिप्पणी) है। फिलि. १ : १३ में दूसरे अर्थों में इस शब्द का प्रयोग किया गया है (इसकी टीका ग्रंथ ८ में देखिए। हिं. सं. और उसकी पाद-टिप्पणी भी देखिए)। यहूदिया के रोमी राज्यपाल का निवास कैसरिया में था। केवल विशेष अवसरों पर राज्यपाल यरूशलेम आता था। विद्वानों में सहमति नहीं है कि यरूशलेम में उसका भवन अंतोनिया का बुर्ज या हेरोदेस का भवन था। "भोर के समय" का अर्थ प्रातःकाल छः बजे से पहले है। यहूदियों की मान्यता थी कि एक अयहूदी के घर में प्रवेश करके वे अशुद्ध हो जाते थे। कदाचित उस घर में खमीर था, जिस से वे पर्व के लिए अशुद्ध हो जाते। इस सुसमाचार के अनुसार फसह का पर्व उस दिन संध्या को आरंभ होने को था। ये नेता एक धर्मात्मा मनुष्य की जान लेने की धुन में थे, परंतु अपनी व्यवस्था की सूक्ष्म बातों के संबंध में चिंतित थे। अतः पिलातुस को उनके पास बाहर आना पड़ा। इस प्रकार वह भीतर जाकर यीशु से एकांत में वार्तालाप कर सकता था। पिलातुस ई. स. १६-३६ तक यहूदिया का राज्यपाल रहा। उस ने आरंभ में सही औपचारिक प्रश्न किया। **१८ : ३०** : यहूदी स्पष्ट उत्तर न देकर बात को टाल देते हैं। यदि वे सही अभियोग लगाते, अर्थात कि यीशु ने स्वयं को परमेश्वर के तुल्य कहकर परमेश्वर निंदा की, तो पिलातुस कुछ ध्यान न देता। चारों सुसमाचारों में सहमति है कि इन्हों ने यह राजनीतिक अभियोग लगाया कि यीशु स्वयं को राजा बनाना चाहता था (पद ३३)। **१८ : ३१** : पिलातुस इस उत्तरदायित्व से हाथ धो लेना चाहता था। यहूदियों को मृत्युदंड देने का अधिकार था या नहीं इसके संबंध में विद्वानों में सहमति नहीं है। प्रे. ७ : ५७-६० से तुलना कीजिए। संभवतः उस वर्णन में पत्थरों से वह प्रहार अवैध रूप से हुआ। जब तक स्पष्ट विपरीत प्रमाण नहीं मिलता हम इस पद की साक्षी स्वीकार कर सकते हैं। १८ : ३२ : हिं. सं. का अनुवाद स्पष्ट है, "यह इस लिए हुआ कि यीशु के वे बचन पूर्ण हों जिन से उन्हों ने संकेत किया था कि उनकी मृत्यु कैसे होनेवाली है"। इस कथन के लिए ३ : १४, १५; ८ : २८; १२ : ३२, ३३ को देखिए।

१८ : ३३-४० : पिलातुस भीतर जाकर यीशु से जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न करता है कि यहूदियों के अभियोग का अर्थ क्या है। केवल लूका (२३ : २) स्पष्ट रूप से बताता है कि यहूदियों ने पिलातुस के सामने यह अभियोग लगाया कि वह लोगों को बहकाता, कैसर को कर देने से मना करता और अपने आपको मसीह राजा कहता है।

है। मरकुस, मत्ती और यूहन्ना में आरंभ में ही यह प्रश्न किया जाता है कि "क्या तू यहूदियों का राजा है ?" चारों सुसमाचारों में इस प्रश्न का शब्द-रूप समान है। "तू" शब्द पर बल दिया गया है, जिस से आश्चर्य और अविश्वास की भावनाएं व्यक्त होती हैं—"तू यहूदियों का राजा !"। १८ : ३४ में कदाचित यीशु की मृत्यु के संबंध में यहूदियों को दोषी प्रमाणित करना एक अभिप्राय है, परंतु यह भी है कि यदि पिलातुस केवल यहूदियों का अभियोग दोहरा रहा था तब उस ने यीशु के राजा होने का अर्थ तनिक भी नहीं पहचाना था। यदि वह अपनी ओर से कह रहा था तब कदाचित उस ने अंशत: यथार्थ को पहचान लिया था। पिलातुस के उत्तर में (पद ३५) यहूदियों के तिरस्कार की ध्वनि है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसे शंका है कि यहूदियों ने स्पष्ट रूप में वास्तविक अभियोग नहीं बताया। १८ : ३६ : सहदर्शी सुसमाचारों के अनुसार यीशु इस समय मौन रहा। राज्य के संबंध में ३ : ३, ५ से तुलना कीजिए। यीशु का राज्य सांसारिक नहीं वरन आध्यात्मिक है। यह राज्य स्थापित हो चुका है, नहीं तो शिष्यों का उसके लिए लड़ने का उल्लेख ही न होता। यह कथन विचारनीय है, क्योंकि इतिहास में कलीसिया बहुधा "न लड़ने" के संबंध में पथभ्रष्ट रही है। ३ : ३ और ५ की व्याख्या को भी पढ़िए। १८ : ३७ में भी "तू" शब्द पर बल दिया गया है (पद ३३ को देखिए)। यीशु के उत्तर का अनुवाद हिं. सं. में ठीक है, "आप ही कह रहे हैं कि मैं राजा हूं" (तुलना कीजिए मर. १५ : २)। यीशु अपने संसार में आने का प्रमुख अभिप्राय सत्य का प्रकाशन करना बताता है, तुलना कीजिए १ : १४ और उसकी व्याख्या; १ : १७; ८ : ३२ (और व्याख्या), १४ : ६ (व्याख्या); आदि। यहां भी "मैं" शब्द पर बल दिया गया है। यदि पिलातुस में तनिक भी सत्य है तो वह यीशु के इस कथन को समझ लेगा (७ : १७ और उसकी व्याख्या से तुलना कीजिए)। १८ : ३८ पू प्रकट करता है कि पिलातुस "सत्य का" नहीं है। संभाव्यत: "सत्य क्या है ?" व्यंग्यात्मक कटूक्ति है।

१८ : ३८उ-४० : पिलातुस का कथन कि वह यीशु में कोई दोष नहीं पाता है अन्य सुसमाचारों के वर्णनों से संगत है (मर. १५ : १४; मत्त. २७ : २३; लू. २३ : २२)। एक अपराधी को छोड़ने की प्रथा का उल्लेख और कहीं नहीं मिलता, परंतु उस पर शंका करने की आवश्यकता नहीं है। पिलातुस जानता था कि यीशु को "यहूदियों का राजा" कहकर वह यहूदी नेताओं का विरोध उभार सकता था, अत: कदाचित वह नेताओं की उपेक्षा करके जनता को संबोधित कर रहा था। "चिल्लाकर" एक प्रबल शब्द (क्रत्सो) का अनुवाद है। बरअब्बा के संबंध में मर. १५ : ७ और उसकी व्याख्या को पढ़िए।

१९ : १-७ : मरकुस और मत्ती के अनुसार यीशु को न्याय निर्णय के पश्चात कोड़े लगवाए गए। यूहन्ना में स्पष्ट रूप से वर्णित नहीं है कि न्याय-निर्णय कब किया गया, परंतु ऐसा प्रतीत होता है कि पद १६ में उसकी ओर संकेत है। अत: कोड़े निर्णय से पहले लगवाए गए। यह विधि विरुद्ध था, अत: संभवत: यहां पर यूहन्ना का क्रम

ऐतिहासिक नहीं है। १९ : २, ३ : तुलना कीजिए मर. १५ : १६-२० और दे. उसकी व्याख्या। यह घटना भी मरकुस और मत्ती के अनुसार न्याय निर्णय के पश्चात हुई। लू. २३ : ११ से भी तुलना कीजिए। लेखक ने ऐतिहासिक क्रम की उपेक्षा करके इस घटना को भी नाटकीय दृश्य के रूप में प्रस्तुत किया है। यह सब अपमानपूर्ण उपहास है। कोड़े लगवाने और उपहास करने की घटनाओं को न्याय निर्णय से पहले वर्णित करके लेखक प्रकट करना चाहता था कि पिलातुस को आशा थी कि अब यहूदी संतुष्ट होंगे और यीशु के छोड़े जाने को स्वीकार करेंगे। १९ : ४, ५ : फिर यीशु की निर्दोषता पर बल दिया गया है। "देखो, यह पुरुष" शब्द बहुत सार्थक हैं। निस्संदेह पिलातुस का अर्थ केवल यह था कि "लो, यह वह मनुष्य है", अर्थात एक साधारण व्यक्ति। परंतु इस सुसमाचार के प्रसंग में इन शब्दों से यीशु सिद्ध पुरुष के रूप में प्रदर्शित किया गया है। अर्थात मानव वही है। १९ : ६, ७ : तुलना कीजिए मर. १५ : १३, १४। इस चिल्लाने में महायाजक अगुए थे। पिलातुस व्यंग्यात्मक रूप से यहूदियों को यीशु को क्रूसित करने का आदेश देता है, क्योंकि वह भली भांति जानता है कि वे ऐसा नहीं कर सकते। यह एक रोमी दंड था; यहूदियों में मृत्युदंड पत्थरों से प्रहार करना था (लै. २४ : १६)। अब तीसरी बार पिलातुस यीशु को निर्दोष कहता है (१८ : ३८; १९ : ४। लूका में भी यह तीन बार कहा गया है, लू. २३ : ४, १४, २२)। यहूदियों के उत्तर से उनका वास्तविक अभियोग प्रकट हो जाता है। "व्यवस्था" का अर्थ यहां लै. २४ : १६ है, जिसका संकेत ऊपर किया गया है। यह ईश निंदा संबंधी नियम था। इस सुसमाचार के अनुसार यहूदियों ने अनेक बार यीशु पर ईशनिंदा करने का दोष लगाया, उदाहरणार्थ ५ : १८; १० : ३३।

१९ : ८-१६ : इस से पहले पिलातुस के डरने का उल्लेख नहीं है, अतः "और भी डर गया" के स्थान पर "बहुत डर गया" होना चाहिए। पिलातुस यीशु के व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुआ। **१९ : ९** : "तू कहां का है" वह प्रश्न है जो इस सुसमाचार में यहूदी पूछते रहे, ७ : ७-२९, ४०-४३; ८ : १४-१६; ९ : २९, ३३। संभव है कि पिलातुस ने पहचाना था कि यीशु एक अत्यंत असाधारण व्यक्ति है। वह इस सत्य को समझने के योग्य नहीं था कि यीशु परमेश्वर की ओर से था (८ : ४२ : १३ : ३; १६ : २७, २८, ३०; १७ : ८), अतः यीशु मौन रहा। **१९ : १०, ११** : पिलातुस का अधिकार सरकारी था, परंतु यीशु कहता है कि ऐसा अधिकार भी परमेश्वर से ही प्राप्त हो सकता है (रो. १३ : १ क्र. से तुलना कीजिए)। यीशु की जान भी परमेश्वर पिता के हाथ में थी और बिना परमेश्वर की अनुमति के पिलातुस उसे क्रूस पर नहीं चढ़ा सकता था। "जिस ने मुझे. . .पकड़वाया" काइफा, अथवा महायाजक-गण है।

१९ : १२ : पिलातुस यीशु को छोड़ देने का अंतिम प्रयत्न करता है। यहूदी अपनी सब से प्रबल युक्ति काम में लाते हैं। पिलातुस जानता था कि इस संबंध में सम्राट के सामने उस पर अनिष्ठा का अभियोग लगाकर यहूदी उस को कम से कम पदच्युत करा सकते थे। रोमी सम्राट साधारणतः "कैसर" कहा जाता था। पिलातुस

के लिए यीशु को छोड़ देना खतरनाक था। **१९ : १३** : अतएव पिलातुस अपने इस प्रयत्न में असफल रहकर हार मानता है। उस ने अपनी रक्षा को सच्चे न्याय से अधिक प्रिय जाना। कभी कभी न्याय आसन बाहर रखा जाता था। गब्बथा उस स्थान का अरामी नाम था। अब वह स्थान अज्ञात है। **१९ : १४** : "तैयारी का दिन" का अर्थ फसह के लिए तैयारी है, न कि सबत के लिए तैयारी, अतः इस सुसमाचार के अनुसार फसह यीशु के क्रूसीकरण के दिन संध्या को आरंभ होनेवाला था। इसके अनुसार अंतिम भोज फसह का भोज नहीं था, परंतु सहदर्शी सुसमाचारों के अनुसार वह फसह का भोज था। इसके संबंध में १३ : १ की व्याख्या, "भूमिका" पृष्ठ ११८, और मर. १४ : १२ की व्याख्या को पढ़िए। "छठे घंटे के लगभग भी मर. १५ : २५ से असंगत है, जहां समय "पहर दिन चढ़ा" बताया गया है, अर्थात यूहन्ना के अनुसार लगभग दो पहर, परंतु मरकुस के अनुसार लगभग नौ बजे यीशु के क्रूसीकरण का समय बताया गया है। इस समस्या का विवेचन मर. १५ : २५ की टीका में पढ़िए। मानना पड़ता है कि उन परंपराओं में, जिन पर ये सुसमाचार आधारित हैं, असंगति है, अथवा लेखकों ने आध्यात्मिक सत्यों का स्पष्टीकरण करने के अभिप्राय से ऐतिहासिक क्रम को परिवर्तित किया है। यूहन्ना के अनुसार यीशु उस समय क्रूसित हुआ जब फसह की भेड़ें वध की जा रही थीं, जिस से वह फसह के मेमने का प्रतिरूप हो। **१९ : १५** : पिलातुस फिर यहूदियों को चिढ़ाने के लिए यीशु को "तुम्हारा राजा" कहता है। उत्तर में महायाजक बड़ी निंदा की बात कहते हैं। धर्मनिष्ठ यहूदी नेता होने के नाते उनकी मान्यता यह होनी चाहिए थी कि केवल परमेश्वर हमारा राजा है, परंतु इसके विपरीत वे अपनी निष्ठा अन्यजाति सम्राट के प्रति घोषित करते हैं! **१९ : १६** : "उनके हाथ" का अर्थ यहूदियों के हाथ है। यद्यपि रोमियों से उसे क्रूस पर चढ़ाया तथापि क्रूसीकरण के यथार्थ कर्त्ता यहूदी थे।

(४) क्रूस पर चढ़ाया जाना और मृत्यु १९ : १७-३७

यूहन्ना और मरकुस में समान बातें : गुलगुता जाने, क्रूस पर दोष पत्र के लिखे जाने, वस्त्र के बांटे जाने, स्त्रियों के उपस्थित होने, सिरके के पिलाए जाने और यीशु के मारे जाने के वर्णन।

केवल यूहन्ना में : यीशु का स्वयं क्रूस उठाना, वस्त्र के बांटे जाने और सिरके के पिलाए जाने में भविष्यवाणियों का पूरा होना, यीशु का अपनी माता को प्रिय शिष्य के हाथ सौंपना, यहूदियों का पिलातुस के दोष-पत्र पर आपत्ति करना, यीशु के शब्द, "मैं प्यासा हूं" और "पूरा हुआ"।

मरकुस में परंतु यूहन्ना में नहीं : क्रूस के समय जनता और महायाजकों और शास्त्रियों का यीशु का उपहास करना, "तू ने मुझे क्यों छोड़ दिया" शब्द। अन्य अनेक सूक्ष्म भिन्नताएं हैं। जो बातें केवल मत्ती या लूका में है उनके संबंध में उनकी टीकाओं में देखिए।

१९ : १७-२२ : हम इस मान्यता को स्वीकार करके चल रहे हैं कि लेखक ने सहदर्शी सुसमाचारों पर नहीं वरन एक पृथक् परंपरा या परंपराओं पर अपनी रचना

को आधारित किया। १९ : १७ : सहदर्शी सुसमाचारों के अनुसार शमौन कुरेनी बेगार में पकड़ा गया कि यीशु का क्रूस उठाकर ले जाए। मर. १५ : २१ की व्याख्या को पढ़िए जहां इस असंगति का एक संभव समाधान प्रस्तुत किया गया है। साधारणतः अपराधी क्रूस की आड़ी लकड़ी लिए चलता था। "गुलगुता" के संबंध में मर. १५ : २२ की टिप्पणी देखिए। १९ : १८ : क्रूस और क्रूसीकरण के वर्णन के लिए मर. १५ : २४ की व्याख्या को पढ़िए, और बाइबल ज्ञानकोश में भी देखिए। १९ : १९, २० : दोष-पत्र के शाब्दिक रूप में चारों सुसमाचारों में कुछ अंतर है, परंतु वह अंतर महत्वपूर्ण नहीं है। इब्रानी लातीनी और यूनानी, ये तीन भाषाएं अंशतः प्रचलित थीं। ऐसा दोष-पत्र लगाना प्रचलित प्रथा थी। इस दोष पत्र में अपराधी का अपराध घोषित किया जाता था कि यदि किसी को निश्चय हो कि वह अपराधी नहीं है तो वह कह सके, और जांच पड़ताल हो सके। १९ : २१, २२ : यहूदी भली भांति पहचान गए कि दोषपत्र के शब्दों में उनका तिरस्कार था, अतः उन्हों ने यह आपत्ति की। पिलातुस ने बड़ी और महत्वपूर्ण बातों में यहूदियों की इच्छा को पूरा किया, तो भी वह इस छोटी और गौण बात में आग्रही रहा।

१९ : २३, २४ : मर. १५ : २४ से तुलना कीजिए। अपराधी के कपड़े बांटना भी प्रचलित प्रथा थी। केवल यूहन्ना में सीवन रहित कुरते का वर्णन है। यह वस्त्र अन्य वस्त्रों के नीचे पहिना जाता था। योसेपस, यहूदी इतिहास लेखक, ने ऐसे ही शब्दों में महायाजक के कुरते का वर्णन किया (तुलना नि. २८ : ३१, ३२)। अतः यहां संभाव्यतः लेखक का अभिप्राय यह प्रकट करना है कि यीशु हमारा महायाजक है जो अपने आप को हमारे लिए बलिदान करता है। संभवतः कुरते का सीवन रहित होना कलीसिया की एकता का प्रतीक है। "शास्त्र की बात" भ. २२ : १८ का उद्धरण है, जो ख्रिस्त-संबंधी भजन माना जाता था। यही भजन है जिसका पहला पद मर. १५ : ३५ में, यीशु की पुकार में उद्धृत है।

१९ : २५-२७ : अन्य सुसमाचारों के अनुसार स्त्रियां दूर खड़ी रहीं। हि. प्र. और हिं. सं. के अनुसार केवल तीन स्त्रियां थीं, परंतु कदाचित बुल्के का अनुवाद ठीक है, जिसके अनुसार वे चार थीं : "ईसा की माता, उसकी बहन, क्लोपस की पत्नी मरियम और मरियम मगदलेना उनके पास खड़ी थीं"। इस अनुवाद को स्वीकार करने से यह नहीं मानना पड़ता है कि एक ही परिवार में दो मरियम थीं। मर. १५ : ४० और मत्त. २७ : ५६ की तुलना करने से यह अनुमान लगाया गया है कि यूहन्ना में यीशु की माता की बहन, मरकुस में शलोमी और मत्ती में जबदी के पुत्रों की माता एक ही थीं, और यों यूहन्ना, जबदी का पुत्र (जो प्रिय शिष्य माना जाता है) और यीशु नातेदार थे। यह एक तर्कसंगत अनुमान है। स्त्रियों की उपस्थिति यीशु के लिए अत्यंत सांत्वना और सहायता का कारण हुआ होगा। उन्हों ने बहुत साहस और प्रेम दिखाया। १९ : २६, २७ : यह केवल इस सुसमाचार में है। यीशु के भाई उस पर विश्वास नहीं करते थे (७ : ५), अतः यीशु ने अपनी माता को एक विश्वासी के हाथों में सौंप दिया। मर. १० : ३० से तुलना कीजिए। यथार्थ घर ख्रिस्त और उसकी कलीसिया है। इस स्पष्ट

प्रतीकात्मक तात्पर्य के कारण अनेक टीकाकार इस घटना को अनैतिहासिक मानते हैं। परंतु इस घटना से यह प्रकट होता है कि अत्यंत संकट और दुख के समय भी यीशु ने अपनी माता की चिंता करके उसका प्रबंध किया।

१९ : २८-३० : सब कुछ "हो चुका" में वही शब्द है (ततेलस्तै) जो पद ३० में इस सुसमाचार के अनुसार यीशु का अंतिम शब्द था। यहां इसका अर्थ यह है कि जो काम यीशु संसार में करने के लिए आया वह पूरा हो गया था। "पूरी हो" भी उसी शब्द का एक रूप है (तलेयोथे)। केवल इस स्थल पर पवित्र शास्त्र की बात के पूरी होने के संबंध में इस शब्द का प्रयोग किया गया है, अतः इन पदों में इस तथ्य का महत्व स्पष्ट प्रकट किया गया है कि यीशु की मृत्यु के कारण उसका काम बंद नहीं हुआ, वह पूर्ण हो गया। साथ ही साथ "मैं प्यासा हूं" शब्द यीशु की यथार्थ मानवता को प्रकट करते हैं, क्योंकि उनका स्पष्ट अर्थ यह है कि वह शारीरिक रूप से प्यासा था। क्रूसित व्यक्ति को प्यास का तीव्र अनुभव होता था। संभव है कि यहां यीशु के मानवत्व को ज्ञानवादी मानवाभासवादियों के विरोध में महत्व दिया गया हो। "पवित्र शास्त्र की बात" भ. ६९ : २१ में पाई जाती है। **१९ : २९** : मर. १५ : ३६ से तुलना कीजिए, जहां सरकंडे के द्वारा सिरका देने का वर्णन है। जूफा एक पौधे की छोटी शाखा थी। जूफा से सिरका देना कठिन था। संभवतः लेखक या उसके स्रोत ने जूफे का उल्लेख इस लिए किया कि नि. १२ : २२ के अनुसार इसी से लहू चौखटों पर छिड़कने का आदेश है, जिस से लोग सुरक्षित रहें। वैसे ही यीशु के लहू के द्वारा उस पर विश्वास करनेवाला सदा सुरक्षित है। अर्थात यह जूफा यहां ऐतिहासिक नहीं, प्रतीकात्मक है। यह सिरका सामान्य पेय था। वह मुर मिले हुए दाखरस से भिन्न था, जो पीड़ा को घटाने के लिए दिया जाता था। मर. १५ : २३ के अनुसार यीशु ने उसे अस्वीकार किया। **२९ : ३०** : "पूरा हुआ" शब्दों के संबंध में पद २८ की व्याख्या को देखिए। क्रूस पर भी यीशु ने पहल किया—उस ने स्वयं सिर झुकाया और प्राण त्याग दिए।

१९ : ३१-३७ : इन बातों का विवरण सहदर्शी सुसमाचारों में नहीं है। "तैयारी का दिन" का अर्थ यहां सबत की तैयारी का दिन है, अर्थात शुक्रवार। शवों को उतारने की आवश्यकता व्य. २१ : २३ के कारण थी। वह दिन "बड़ा" इसलिए था कि यूहन्ना के अनुसार फसह के पर्व का दिन था। परंतु सहदर्शी सुसमाचारों के अनुसार भी वह बड़ा दिन था क्योंकि उस दिन फरीसियों की परंपरा के अनुसार पहली उपज का पूला प्रस्तुत किया जाता था (लै. २३ : ११)। क्रूसित व्यक्ति की टांगें बहुधा तोड़ी जाती थीं। इस वर्णन से ज्ञात होता है कि वह इस प्रकार शीघ्र मर जाता है। **१९ : ३२-३४** : यीशु शीघ्र ही मर गया था, और लेखक यह सुझाव देता है कि वह अपनी इच्छा से ही मर गया—इस में भी उसका अधिकार था। अनेक चिकित्सकों की मान्यता है कि कुछ परिस्थितियों में लहू और पानी शव में से बह सकते हैं, अतः इस घटना को मन गढ़ंत मानने की आवश्यकता नहीं है। संभवतः सिपाही ने बिना किसी विशेष अभिप्राय के यह किया, परंतु निस्संदेह लेखक इसका वर्णन इसलिए करता है कि लहू और जल

ख्रिस्तीय संस्कारों के सार्थक प्रतीक हैं (१ यू. ५ : ६, ८ से तुलना कीजिए)। जल जीवन का प्रतीक भी है, ३ : ५; ४ : १४; ७ : ३८, ३९। **१९ : ३५** : "जिस ने देखा" कौन था, इस का कोई स्पष्ट उत्तर नहीं मिलता। अनेक टीकाकारों की मान्यता के अनुसार वह प्रिय शिष्य था, परंतु इसका प्रमाण नहीं मिलता। २१ : २४ में भी एक साक्षी का उल्लेख है जो स्पष्ट शब्दों में प्रिय शिष्य कहा गया है (२१ : २०), परंतु उस पद की ऐतिहासिक सत्यता पर शंका की जाती है। २१ : २४ की व्याख्या को और "भूमिका" पृष्ठ १२४ को देखिए। लेखक भाले की घटना को सत्य प्रमाणित करने के लिए यह साक्षी सम्मिलित करता है।

१९ : ३६ : स्पष्ट नहीं है कि यह उद्धरण कहां से लिया गया। संभवतः यह नि. १२ : ४६ या गि. ९ : १२ से है, जहां यह आज्ञा दी गई है कि फसह के मेमने की कोई हड्डी तोड़ी न जाए। भ. ३४ : २० में भी एक प्रतिज्ञा है कि धर्मी की हड्डियां सुरक्षित रहेंगी और तोड़ी नहीं जाएंगी। **१९ : ३७** : इस में ज. १२ : १० उद्धृत है, जिस में इस्राएली जाति पछताती है, परमेश्वर का अनुग्रह उस पर होता है, और वह किसी राष्ट्रीय वीर पर, जो मारा गया है, शोक करती है। यह कथन यहां अनुकूल है। यीशु के शत्रु उसके पुनरागमन के समय उसे देखेंगे।

(५) कबर में रखा जाना १९ : ३८-४२

१९ : ३८-४२ की तुलना मर. १५ : ४२-४७; मत्त. २७ : ५७-६१ और लू. २३ : ५०-५६ से कीजिए। इन स्थलों की व्याख्या को भी पढ़िए। मत्ती भी बताता है कि यूसूफ यीशु का चेला था। मत्ती के अनुसार वह धनी था और मरकुस और लूका के अनुसार वह महासभा का सदस्य था (मरकुस में "मंत्री" का यही अर्थ है)। नीकुदेमुस का उल्लेख ३ : २ और ७ : ५० में भी है। वह भी यीशु का गुप्त शिष्य था। यहां ये दोनों व्यक्ति साहसी कार्य करते हैं। केवल इस सुसमाचार में वर्णित है कि इस में नीकुदेमुस ने यूसुफ का साथ दिया। गुप्त शिष्यों के संबंध में १२ : ४२ को देखिए। पचास सेर गंधरस आवश्यकता से बहुत अधिक था, वह एक राजा को गाड़ने के लिए भी बहुत था। यीशु राजा से अधिक था। सहदर्शी सुसमाचारों के अनुसार (मर. १६ : १; लू. २३ : ५६, २४ : १) स्त्रियां इतवार को प्रातःकाल कबर के पास ऐसी वस्तुएं लाईं कि शव को तैयार करें। वे नहीं जानती थीं कि यूसुफ और नीकुदेमुस यह कार्य कर चुके थे। केवल यूहन्ना में यह वर्णित है कि कबर एक उद्यान में स्थित थी और कि वह निकट थी। मत्ती और लूका भी बताते हैं कि कबर नई थी।

(६) पुनरुत्थान और यरूशलेम में दर्शन २० : १-३१

२० : १-१० : पद १ : सप्ताह का पहला दिन इतवार था। अन्य सुसमाचारों के अनुसार दो या तीन स्त्रियां आईं (इस अध्याय के संबंध में मर. १६ : १ क्र.; मत्त. २८ : १ क्र. और लू. २४ : १ क्र. और उनकी व्याख्याओं से तुलना कीजिए)। ऐसा प्रतीत होता है कि इस सुसमाचार का लेखक इस तथ्य से परिचित था, क्योंकि **पद २** में मरियम कहती है कि **"हम नहीं जानतीं"** (मर. १६ : ९-११ में भी, जो परिशिष्ट

माना जाता है, केवल मरियम मगदलीनी का उल्लेख है)। सब सुसमाचारों में यह वर्णित है कि स्त्रियों ने शिष्यों के पास जाकर उन्हें बताया। मरियम के कोमल और करुण शब्दों से उसका यीशु के प्रति प्रेम व्यक्त होता है। "वे...निकाल ले गए हैं" शब्दों से ज्ञात नहीं है कि कौन अभिप्रेत है। संभवतः इस में यह निहित है कि परमेश्वर उसे ले गया। "प्रिय शिष्य" के संबंध में १३ : २३ की व्याख्या को पढ़िए। **२० : ३-७ :** कदाचित प्रिय शिष्य पतरस की अपेक्षा जवान था, तब ही पहले पहुंच गया। उसके झुकने से ज्ञात होता है कि कबर का प्रवेश-द्वार नीचा सा था। संभवतः वह भयभीत होने के कारण भीतर नहीं गया। यदि कोई चोरी करके यीशु को ले गया होता तो अंगोछा इस प्रकार लिपटा हुआ न मिलता। ११ : ४४ से तुलना कीजिए। लू. २४ : १२ और २४ में भी पतरस के और शिष्यों के कबर पर जाने का वर्णन है (लू. २४ : १२ कतिपय हस्तलेखों में नहीं है, अतः अनेक टीकाकार उसे अप्रामाणिक मानते हैं। लूका की व्याख्या को भी देखिए)। **२० : ८-१० :** यह तथ्य उल्लेखनीय है कि प्रिय शिष्य रिक्त कबर को देखते ही विश्वास करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि पतरस ने अब तक विश्वास नहीं किया है। प्रिय शिष्य इस बात के संबंध में मरियम से भी आगे बढ़ता है। वह "देखकर" विश्वास करता है (तुलना कीजिए २० : २९)। परंतु थोमा ने यीशु को देखकर विश्वास किया। प्रिय शिष्य केवल रिक्त कबर को देख सकता था। अतः वह उन सब लोगों का प्रतिरूप है जो शारीरिक यीशु को न देखकर विश्वास करते हैं। तो भी प्रिय शिष्य भी "पवित्र शास्त्र की बात" नहीं समझता था। ख्रिस्तियों ने संभाव्यतः पवित्र शास्त्र के ख्रिस्त-संबंधी प्रमाण-उद्धरणों का समूह संकलित किया था, जो लिखित रूप में था (तु. लू. २४ : २६)। प्रे. २ : २७ में भ. १६ : ९ उद्धृत है, यह यीशु के पुनरुत्थान के विषय में एक विशेष उद्धरण माना जाता था। संभवतः यहां भी इसी की ओर संकेत है।

२० : ११-१८ : मरियम दो दूतों को देखती है। मर. १६ : ५ के अनुसार "एक जवान", मत्त. २८ : २ के अनुसार "एक दूत" और लू. २४ : ४ के अनुसार "दो पुरुष" थे। ब्योरेवार इन विवरणों को संगत करना असंभव है, परंतु प्रत्येक का अर्थ यह है कि स्त्रियों को परमेश्वर की ओर से संदेश मिला। **२० : १३-१६ :** सहदर्शी सुसमाचारों की विषमता में यहां स्वर्गदूत कोई संदेश नहीं देते (मर. १६ : ६, ७; मत्त. २८ : ५-७; लू. २४ : ५-७, २३)। मरियम विश्वास नहीं वरन निराशा व्यक्त करती है। संभवतः भावुक उत्तेजना के कारण मरियम यीशु को नहीं पहचान सकी। जब वह बोला तब भी मरियम ने उसका स्वर नहीं पहचाना। "महाराज" (हिं. सं. "महोदय") वही शब्द है (किरियस) जिसका अनुवाद पद २, १३, १८, २०, २५, २८ में "प्रभु" किया गया है। इस परिच्छेद में यह शब्द क्रमानुसार अधिक सार्थक होता जाता है। मरियम यह मानकर चल रही है कि कोई व्यक्ति यीशु का शव ले गया है, यह नहीं कि यीशु जीवित है। यीशु की भेड़ें उसका शब्द पहचानती हैं (१० : ३)। ज्यों ही यीशु मरियम के नाम का उच्चारण करता है वह तत्क्षण उसे पहचान लेती है। "रब्बूनी"

"रब्बी" के समान एक अरामी शब्द है जो प्रचलित था। इसका महत्व यह है कि मरियम पहले के समान यीशु को गुरु मानकर संबोधित करना चाहती थी।

२० : १७ : संभवतः पाद-टिप्पणी ठीक है, "मत पकड़े रह"। बुल्के का अनुवाद स्पष्ट है, "चरणों से लिपटी रह कर मुझे मत रोकना"। मरियम मानव यीशु के पास, जो उसका गुरु था, रहना चाहती थी। "परंतु यीशु के पिता के पास" जाने के पश्चात एक अधिक गहन संबंध संभव हो जाता है। यीशु पिता के पास जानेवाला है, परंतु अब तक नहीं गया। "ऊपर गया" एक शब्द (अनबैनो) का अनुवाद है जिसका प्रयोग इन अर्थों में अन्यतः केवल ३ : १३ और ६ : ६२ में है। यीशु के पिता के पास जाने का विचार बहुत बार इस सुसमाचार में पाया जाता है (देखिए ७ : ३३; १३ : १, ३; १४ : ४, २८; १६ : ५, १७, १२ ; १७ : १३)। यूहन्ना में स्वर्गारोहण की घटना का कोई वर्णन नहीं है। पवित्र आत्मा के दिए जाने का वर्णन २० : २२ में है—उसकी व्याख्या को देखिए। इस सुसमाचार में इस संबंध में प्रमुख विचार उपरोक्त "परमेश्वर (पिता, भेजनेवाला) के पास जाना" है। इस सुसमाचार में **विश्वासी परमेश्वर के पुत्र नहीं, उसकी संतान कहे गए हैं**। केवल यीशु पुत्र है। कदाचित यह व्याख्या है कि यीशु ने कहा "अपने पिता . . .और तुम्हारे पिता. . ."। परंतु साथ ही इसी पद में शिष्य "मेरे भाई" कहे गए हैं। उनमें और यीशु में एक गहरा रिश्ता था जो और भी गहरा होता जा रहा था। यीशु का और विश्वासी का एक ही पिता परमेश्वर है। **२० : १८** अब फिर मरियम यीशु को "प्रभु" कहती है।

२० : १९-२३ : शिष्यों को ऐसे दर्शन का उल्लेख लू. २४ : ३६-४९ में, और बहुत संक्षिप्त रूप में मर. १६ : १४-१८ (परिशिष्ट) और १ कुर. १५ : ५ में है। **२० : १९** से ज्ञात होता है कि शिष्य अब तक भयभीत थे। यह नहीं बताया गया कि कौन से और कितने शिष्य एकत्रित थे। लू. २४ : ३३ के अनुसार दस के अतिरिक्त (थोमा वहां नहीं था) अन्य शिष्य भी उपस्थित थे। बंद द्वारों के बावजूद यीशु अनायास उनके बीच में उपस्थित हुआ, जिस से ज्ञात होता है कि यीशु का शरीर साधारण मानव शरीर से भिन्न था। "तुम्हें शांति मिले" साधारण औपचारिक अभिवादन था ("सलाम" के समान), परंतु यहां यह कथन औपचारिक नहीं वरन विशेष रूप से सार्थक है। ये शब्द १४ : २७, १६ : ३३ में भी हैं। जीवित यीशु की उपस्थिति से घबराहट और व्याकुलता दूर हो जाती है। **२० : २०** : यद्यपि यीशु की देह परिवर्तित रूप में है तथापि वह पहचानने योग्य है। संभवतः यह कथन मानवाभासवादियों के विरुद्ध यहां सम्मिलित किया गया। **२० : २१** : इस सुसमाचार में बारंबार यह वर्णित है कि यीशु पिता की ओर से भेजा गया, उदाहरणार्थ अध्याय ५, ७, ८ और १७ में अनेक बार इसका उल्लेख है। ४ : ३८; १३ : २०; १७ : १८ में यीशु के शिष्यों को भेजने का वर्णन है। "प्रेरित" शब्द, जिसका अर्थ है "भेजा हुआ" यहां नहीं पाया जाता। इन सब विवरणों में विशेष प्रेरितों का ही नहीं वरन सामान्य रूप से ख्रिस्ती लोगों का, कलीसिया का, वर्णन है। ख्रिस्त कलीसिया को साक्षी देने के लिए भेजता है। "जैसे पिता ने मुझे भेजा है "शब्दों

में यह निहित है कि जिस प्रकार यीशु पिता का आज्ञाकारी रहा (४ : ३४; ५ : १७; १० : ३७; १७ : ४) उसी प्रकार अवश्य है कि कलीसिया भी पिता की आज्ञाकारी रहे।

२० : २२ : यह पवित्र आत्मा के दिए जाने का वर्णन है। इस सुसमाचार में स्पष्ट कहा गया है कि पवित्र आत्मा केवल यीशु के महिमान्वित होने (७ : ३९) और उसके पिता के पास जाने (१६ : ७) के पश्चात दिया जाएगा। जिन शब्दों का प्रयोग यहां किया गया है उनसे प्रकट होता है कि यहां एक सृजनात्मक घटना अभिप्रेत है (तुलना कीजिए उ. २:७ और यहे. ३७ : ९)। इन में "श्वांस फूक दिया" और "समा जा" सेपत्वा-गिंता में उसी यूनानी शब्द से अनूदित हैं जिसका अनुवाद यहां "फूंका" किया गया है (एम्फूसाओ)। निष्कर्ष यह कि यह पद और प्रे. २ : १ क्र. की घटना भिन्न परंपराओं पर आधारित हैं, जो संगत नहीं की जा सकतीं। संभवतः दोनों लेखकों ने, अथवा उन परंपराओं के रचयिताओं ने जिन पर ये लेख आधारित हैं अपने शिक्षात्मक अभिप्राय की पूर्ति में इस घटना के ऐतिहासिक रूप को परिवर्तित किया। इस अनुभवात्मक घटना में ये भिन्नताएं मौलिक नहीं हैं। मूल तथ्य यह है कि पुनरुत्थित और जीवित ख्रिस्त के द्वारा कलीसिया को पवित्र आत्मा की सामर्थ्य प्राप्त हुई। **२० : २३** : तुलना कीजिए मत्त. १६ : १९; १८ : १८; लू. २४ : ४७ और उनकी व्याख्या। पवित्र आत्मा के दिए जाने के फलस्वरूप कलीसिया का महान उत्तरदायित्व है। इस पद में वर्णित अधिकार समस्त कलीसिया को प्राप्त है। अनुवाद इस प्रकार भी संभव है, "यदि तुम किसी के पाप क्षमा करो. . .", जो अधिक स्वीकार्य है। इस पद का अर्थ यह नहीं है कि कलीसिया के पादरियों को अधिकार है कि वे व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से प्रत्येक व्यक्ति के विषय में यह निर्णय करें कि उसके पाप क्षमा किए जाएं या नहीं। अर्थ यह है कि कलीसिया का जीवन ऐसा प्रकाशमय होना चाहिए कि उसके द्वारा अपने आप ही मनुष्यों का न्याय हो जाए। इस सुसमाचार में बारंबार यह विचार व्यक्त किया गया है कि मानो इसी संसार में मनुष्य अपना न्याय कराते हैं, उदाहरणार्थ ३ : १९-२१।

२० : २४, २५ : अन्य सुसमाचारों में, शिष्यों के नामों की सूचियों को छोड़, थोमा का वर्णन नहीं है। इस सुसमाचार में उसका उल्लेख ११ : १६; १४ : ५; २१ : १ में भी है। उसके नाम के संबंध में ११ : १६ की व्याख्या को देखिए। शिष्यों के शब्द वही हैं जो मरियम बोली (पद १८)। सब सुसमाचारों में कुछ शिष्यों के संशय का वर्णन है (मर. १६ : १३; मत्त. २८ : १७; लू. २४ : २२-२६, ३८, ४१)। ऐसा प्रतीत होता है कि थोमा स्वभाव से संदेह करनेवाला था। चाहिए था कि वह अन्य शिष्यों की साक्षी के आधार पर विश्वास करता (पद २९ को देखिए)।

२० : २६-२९ : इस बार इस बात का उल्लेख नहीं है कि यहूदियों का डर था। ऐसा प्रतीत होता है कि यह दर्शन विशेष थोमा के निमित्त हुआ। थोमा बारह शिष्यों में से एक था, अतः उसको अवसर मिलता है कि वह उनके समान देखकर विश्वास करे। इस वर्णन का मुख्य अभिप्राय यह प्रकट करना है कि वास्तविक ख्रिस्तीय विश्वास "देखने"

पर निर्भर नहीं है। जब थोमा उसे देखता है तब वह २० : २५ की मांग की उपेक्षा करके यीशु की वंदना करता है। रोमी सम्राट दोमित्यान के आग्रह पर दोमित्यान को "प्रभु परमेश्वर" संबोधित किया जाता था, अतः संभवतः इस सुसमाचार के लेखनकाल में इस अंश के द्वारा यह प्रकट किया गया कि वास्तविक प्रभु परमेश्वर सम्राट नहीं वरन ख्रिस्त है (तुलना कीजिए १:१; ५:१८; १०:३३)। अन्यत्र केवल रो. ९ : ५ और तीत. २ : १३ में संभावना है कि नया नियम में यीशु "परमेश्वर" कहा गया। इन स्थलों की व्याख्या "नया नियम टीका" ग्रंथ ८ में देखिए। इस सार्थक स्वीकरण से इस सुसमाचार की उपयुक्त समाप्ति हो जाती है। २० : २९ : केवल पहले शिष्य शारीरिक आंखों से यीशु को देख सकते थे, तब से जितने विश्वासी हुए हैं वे सब बिना देखे विश्वास करते हैं (१ पत. १ : ८ और २ कुर. ५ : ७ से तुलना कीजिए)।

२० : ३०, ३१ : स्पष्ट है कि यह सुसमाचार का वास्तविक उपसंहार है (भूमिका पृष्ठ १२४ को देखिए)। इन पदों से ज्ञात होता है कि लेखक के पास अन्य सामग्री थी जिसका प्रयोग उसने नहीं किया, उस ने अपने अभिप्राय के अनुकूल सामग्री को चुन लिया। संभाव्यतः वह उन परंपराओं से परिचित था जिन पर सहदर्शी सुसमाचार आधारित थे। उसका मुख्य अभिप्राय यह था कि लोग विश्वास करें। संभाव्यतः वे लोग जो "विश्वास करो" शब्दों से संबोधित किए गए हैं ख्रिस्ती और अख्रिस्ती दोनों थे (भूमिका पृष्ठ १२१ को भी देखिए)। "यीशु ही परमेश्वर का पुत्र मसीह है" ख्रिस्तीय विश्वास का सारांश है। यह धर्मविश्वास मात्र नहीं है, अनुभवात्मक कथन भी है, क्योंकि इसका परिणाम यह है कि "उसके नाम से जीवन पाओ"। इस सुसमाचार का एक प्रमुख विचार शाश्वत जीवन है (३ : १६, आदि)।

८. परिशिष्ट २१ : १-२५

ऊपर कहा गया है कि २० : ३०, ३१ सुसमाचार का वास्तविक उपसंहार है, जिसके फलस्वरूप अध्याय २१ को एक प्रकार का परिशिष्ट मानना पड़ता है। यह अध्याय सब प्राचीन हस्तलेखों में है, अतः यदि वह सुसमाचार के लिखे जाने के पश्चात जोड़ा गया तो यह शीघ्र ही हुआ, इस से पूर्व कि प्रतियां बनने लगीं। सूक्ष्म अनुसंधान के आधार पर इस अध्याय और सुसमाचार के शेष भाग की साहित्यिक शैली और शब्दावली की तुलना की गई है, कि ज्ञात हो जाय कि इस अध्याय के लेखक ने अथवा किसी अन्य व्यक्ति ने इस अंश को लिखकर जोड़ा, परंतु यह अनुसंधान अनिश्चयात्मक ही रहा है। इस अध्याय की अनेक बातें पूर्ण रूप से सुसमाचार के शेष भाग में संगत नहीं हैं। सामान्य मान्यता यह है कि यदि सुसमाचार के लेखक ने इसे जोड़ा होता तो वह इन असंगतियों को न रहने देता। संभाव्यतः वह इस अंश को सुसमाचार के उपसंहार के पश्चात न जोड़कर उसकी सामग्री को अधिक दक्षता के साथ कहीं और सुसमाचार में सम्मिलित करता। अतः किसी अन्य व्यक्ति ने इसे जोड़ा होगा। परंतु वह व्यक्ति लेखक के सहयोगियों के समूह का था।

इसके जोड़े जाने के अभिप्राय के संबंध में अनेक विचार हैं, जिन में से कुछ

निम्नांकित हैं : (क) कि यह प्रकट किया जाए कि पुनरुत्थान के पश्चात पतरस पहले के समान नेता रहा। (ख) कि इस सुसमाचार में यीशु के गलील में दर्शन देने का वर्णन हो, जिस से इस सुसमाचार में और मरकुस एवं मत्ती में संगति हो। (ग) कि यह प्रमाणित किया जाए कि इस सुसमाचार का लेखक यूहन्ना जबदी का पुत्र था (२१ : २४ की टीका को देखिए)। (घ) कि वह भ्रम जो पद २२ के अनुसार यीशु के कथन के विषय में प्रचलित हुआ दूर किया जाए। (च) कि लूका ५ : ४-११ की घटना के आधार पर एक शिक्षात्मक विवरण प्रस्तुत किया जाए। उस अंश और इस अध्याय की बहुत बातों में समानता है। (छ) इस तथ्य का स्पष्टीकरण करने के लिए कि पुनरुत्थित ख्रिस्त भूत मात्र नहीं वरन परिवर्तित रूप में वही यीशु है।

ये सब अनुमान मात्र हैं, परंतु इन में अवश्य कुछ सच्चाई है।

(१) गलील में दर्शन और पतरस को आदेश २१ : १-२३

२१ : १-१४ : "तिबिरियास" नाम के संबंध में ६ : १ की व्याख्या को देखिए। यह गलील की झील है, परंतु किसी विशेष स्थान का उल्लेख नहीं है। यूहन्ना रचित सुसमाचार में इस से पूर्व यीशु के दर्शन यरूशलेम में ही हुए। मर. १४ : २८=मत्त. २६ : ३२; मर. १६ : ७=मत्त. २८ : ७; और मत्त. २८ : १० गलील में यीशु के दर्शन देने का समर्थन करते हैं। लूका केवल यरूशलेम में दर्शन का वर्णन करता है। उपरोक्त स्थलों की व्याख्या को देखिए। २१ : २ में सात शिष्यों का उल्लेख है। पतरस, यूहन्ना और याकूब का उल्लेख सब सुसमाचारों में बहुधा होता है, नतनएल और थोमा का वर्णन केवल इस सुसमाचार में है, और शेष दो अज्ञात हैं। यह नहीं बताया गया कि वे "बारह" में से थे या नहीं। २१ : ३ : इस वर्णन का आधार कोई ऐतिहासिक घटना होगी, परंतु लेखक ने उसका संदर्भ और कालक्रम परिवर्तित किया होगा। इस घटना में और लू. ५ : १-११ की घटना में इतनी समानता है कि अनेक टीकाकारों की यह मान्यता रही है कि एक लेखक ने दूसरे की सामग्री को परिवर्तित रूप में प्रयुक्त किया। अधिक संभावना इसकी है कि दोनों वर्णन एक ही परंपरा पर आधारित हैं। शेष विवेचन के लिए लू. ५ : १-११ की व्याख्या को देखिए। यह स्वाभाविक बात थी कि ये शिष्य गलील को लौटकर अपने पुराने धंधे में लग जांए, परंतु यह असंभाव्य प्रतीत होता है कि २० : २१-२३ की बातों के पश्चात वे इस प्रकार से लौटते। ऐतिहासिक क्रम की उपेक्षा करके इस वर्णन के शिक्षात्मक और प्रतीकात्मक अर्थ पर ध्यान देना चाहिए। "मछली पकड़ना" लोगों को यीशु के अनुयायी बनाने का प्रतीक है (मर. १ : १६, १७)।

२१ : ४ : इसकी तुलना २० : १४ से कीजिए। कदाचित दूर होने के कारण उन्हों ने यीशु को नहीं पहचाना। २१ : ५, ६ : "बालको" शब्द से आत्मीयता व्यक्त है। संभाव्यतः यीशु का प्रश्न यह था, "क्या तुम ने कुछ पकड़ लिया है ?" (बुल्के, "खाने को कुछ मिला?")। यीशु उनके शिकार की सफलता के संबंध में पूछता है। जब शिष्य यीशु के मार्गदर्शन के अनुसार काम करते हैं तब उन्हें सफलता प्राप्त होती है। इस प्रकार "मनुष्यों" को पकड़ने" में भी है—यीशु के मार्गदर्शन की आवश्यकता है।

फल लाना "यीशु में रहने" पर निर्भर होता है (अध्याय १५)। **२१ : ७ :** प्रिय शिष्य पहले प्रभु को पहचानता है (तुलना २० : ४, ८, जहां यही शिष्य पतरस से पहले पहुंचता है, और विश्वास करता है)। काम करने के लिए पतरस ने ऊपर के कपड़े उतारे थे। अब अपने स्वभाव के अनुसार वह आवेगपूर्वक झील में कूद पड़ता है। **२१ : ८-१० :** इतनी मछलियों को खींचने के लिए सहयोग की आवश्यकता थी। कलीसिया के सुसमाचार-प्रचार कार्य में भी ऐसे सहयोग की आवश्यकता होती है। यीशु ने स्वयं नाश्ता तैयार किया था। इस वर्णन में और ६ : १-१३ में कुछ समानता है, परंतु वहां अन्य लोग खाद्य पदार्थ देते हैं। यीशु स्वयं सब लोगों को तृप्त कर सकता है। परंतु वह शिष्यों को भी उस शिकार में से कुछ लाने को कहता है।

२१ : ११ : प्राचीन काल से मछलियों की यह संख्या प्रतीकात्मक मानी गई है। इसकी अनेक विचित्र और आश्चर्यजनक व्याख्याएं भी की गई हैं, जिन में से कदाचित सब से तर्कसंगत यह है कि १५३ एक सिद्ध संख्या है : १+२+३+४.....+१७ =१५३। इसके अतिरिक्त १०+७=१७, और १० और ७ सिद्ध संख्याएं मानी जाती थीं। अतः यह सख्या, १५३, पूर्ण और सिद्ध कलीसिया का प्रतीक है, जो प्रेरितों और कालांतर के ख्रिस्तियों की साक्षी के द्वारा बनती है। सब मछलियां एक ही जाल में थीं और जाल नहीं टूटा : यह कलीसिया की एकता का प्रतीक माना जाता है। **२१ : १२ :** शिष्य पहचानते थे कि यह यीशु है, परंतु ऐसा प्रतीत होता है कि वे इस परिवर्तित यीशु की उपस्थिति में विस्मित थे। यह प्रश्न, कि यीशु कौन है, इस सुसमाचार में बहुधा पूछा गया है, उदाहरणार्थ ८:२५। **२१ : १३:**उनका इस प्रकार मिलकर भोजन करना प्रभु भोज के समान है। ६ : ११ से तुलना कीजिए, जहां अनेक ऐसे शब्दों का प्रयोग किया गया है जो इस पद में भी हैं। ६ : ११ की व्याख्या को पढ़िए। प्राचीन काल के अनेक ख्रिस्तीय चित्रों में प्रभु भोज के चित्रण में रोटी के साथ मछली भी दिखाई गई है। **२१ : १४ :** यदि यह टिप्पणी ऐतिहासिक है तो मरियम मगदलीनी को दर्शन की उपेक्षा की गई है क्योंकि उसके बिना यह तीसरा दर्शन है। परंतु यीशु को देखकर शिष्यों का उसे न पहचानना और उनका विस्मय संकेत करते हैं कि उन्हों ने इस से पूर्व उसे नहीं देखा था, और कि यह वर्णन कालक्रमानुसार यहां नहीं जोड़ा गया है।

२१ : १५-१७ : तीन बार प्रभु पतरस से एक ही प्रश्न करता है; यह संभाव्यतः पतरस के तीन बार प्रभु को अस्वीकार करने के अनुरूप है। इस विवरण में एक ही विचार को व्यक्त करने के लिए भिन्न शब्दों का प्रयोग किया गया है—"प्रेम रखना" और "प्रीति रखना", "मेमना" और "भेड़ें"; "चरा" और "रखवाली कर"। संभव है कि लेखक ने भिन्न विचारों को व्यक्त करने के लिए भिन्न शब्दों का प्रयोग किया। यीशु का तीसरा प्रश्न है, "क्या तू मुझ से प्रीति रखता है," जिस में "प्रीति" शब्द का प्रयोग किया गया है। यह वह शब्द है जिसका प्रयोग पतरस के पहले दो उत्तरों में है। "प्रीति रखना" (फिलेओ) " "प्रेम रखने" (अगपाओ) से कुछ कम सार्थक माना जाता है। यदि यह व्याख्या ठीक है तो पतरस इस कारण उदास हुआ कि तीसरी

बार यीशु ने इस कम सार्थक शब्द का प्रयोग किया। परंतु बहुत विद्वानों की मान्यता है कि भिन्न शब्दों का प्रयोग, अन्य स्थलों के समान, यहां भी लेखक की शैली की विशेषता है, अतः इन शब्दों के प्रत्येक युग्म में दोनों शब्द समानार्थक हैं। इस प्रकार बुल्के और ध. ग्रं. अनुवादों में उपरोक्त दोनों शब्दों का अनुवाद "प्यार करना" किया गया है।

इस विवरण का मूल विचार यह है कि कलीसिया में परमेश्वर की सेवा करने का आधार ख्रिस्त के प्रति प्रेम है। इसी आधार पर ही पास्तरीय कार्य उचित रीति से हो सकता है। यीशु स्वयं अच्छा चरवाहा है। २१ : १५ में "इन से बढ़कर" शब्दों का अर्थ संभाव्यतः यह है कि जितना प्रेम ये लोग मुझ से करते हैं क्या तू उस से अधिक मुझ से प्रेम करता है? तुलना कीजिए १ पत. ५ : १-४। प्रभु के लिए प्रेम की अभिव्यक्ति उसकी भेड़ों को चराना, अर्थात उसके अनुयायियों का पालन पोषण करना है।

२१ : १८, १९ : उपरोक्त अंश में पतरस को कलीसिया के पालन पोषण का उत्तरदायित्व सौंपा गया। अब उसको सूचित किया जाता है कि वह किस प्रकार की मृत्यु से मरेगा। पद १८ का ऊपरी अर्थ केवल यह है कि युवावस्था और बुढ़ापे में विषमता है, परंतु अगले पद में इसका स्टष्टीकरण है। "अपने हाथ लंबे करना" शब्दों का एक अर्थ "क्रूसित होने के लिए हाथ फैलाना" था। इस प्रकार संभवतः "जहां तू न चाहेगा" का संकेत क्रूस को खड़ा करने की ओर संकेत है। "बांधने" का संकेत क्रूस पर बांधने की ओर है। कभी-कभी क्रूसीकरण में कीलों के स्थान पर रस्सियां हाथ पांव बांधने के लिए प्रयुक्त होती थीं। "महिमा करना" शब्द इस सुसमाचार में बहुधा यीशु की मृत्यु के संबंध में प्रयुक्त हुए हैं, उदाहरणार्थ १७ : १, ४। एक प्राचीन परंपरा के अनुसार पतरस लगभग ई. स. ६४ में रोम में क्रूसित हुआ। "मेरे पीछे हो ले" वे शब्द हैं जो मर. १ : १७ के अनुसार आरंभ में ही पतरस से कहे गए। मर. ८ : ३४ से भी तुलना कीजिए, जहां यीशु के पीछे आने और क्रूसवहन का उल्लेख एक साथ है।

२१ : २०-२३ : पतरस से कहा गया था कि "मेरे पीछे हो ले", परंतु वास्तव में प्रिय शिष्य "पीछे आते" देखा गया। प्रिय शिष्य वही कर रहा था जिसे करने का आदेश पतरस को दिया गया था। २१ : २१ : ऐसा प्रतीत होता है कि पतरस ने यह प्रश्न, "इसका क्या हाल होगा?" अपने उत्तरदायित्व से कतराने के अभिप्राय से किया। प्रश्न का अर्थ यह है कि उसकी मृत्यु कैसी होगी? अनेक टीकाकारों की मान्यता है कि अध्याय २० और २१ में संकेत हैं कि पतरस और प्रिय शिष्य में, अथवा उनके अनुयायियों में कुछ तनाव और प्रतिद्वंद्विता थी। २१ : २२ : यीशु के उत्तर में झिड़की की ध्वनि है। "तू" शब्द पर बल दिया गया है। व्यक्तिगत रूप से हम में से प्रत्येक का प्रत्यक्ष संबंध यीशु ख्रिस्त द्वारा पररेश्वर के साथ है। हमें यह नहीं देखना है कि अन्य लोग क्या कर रहे हैं—"इसका क्या हाल होगा?" आदि। प्रभु का कथन अत्यंत सार्थक है, "तू मेरे पीछे हो ले"। २१ : २३ : प्रारंभिक ख्रिस्तियों का विचार था कि ख्रिस्त शीघ्र ही लौटेगा। इस पद से ऐसा प्रतीत होता है कि इस सुसमाचार के लेखनकाल में प्रिय शिष्य मर चुका था। अनेक ख्रिस्तियों ने यीशु के इस कथन से कि

"यदि मैं चाहूं कि वह मेरे आने तक ठहरा रहे" यह गलत परिणाम निकाला था कि यह शिष्य नहीं मरेगा, अतः जब वह मर गया तब वे लोग व्याकुल हुए। इस गलतफहमी और इस व्याकुलता को दूर करने के लिए लेखक ने यीशु के कथन के अर्थ का स्पष्टीकरण किया। यीशु ने यह नहीं कहा कि यह शिष्य नहीं मरेगा वरन यह कि "यदि मैं चाहूं. . ."।

२१ : २४ : इस पद के संबंध में "भूमिका" पृष्ठ १२४ को भी देखिए। "वही चेला" का अर्थ प्रिय शिष्य है, जिसका वर्णन पद १६-२३ में हो रहा था। "इन बातों" का अर्थ (क) समस्त सुसमाचार (ख) अध्याय २१ या (ग) २१ : १५-२३ हो सकता है। इस समस्या का कोई निश्चित समाधान नहीं मिलता। यदि उपरोक्त (क) मान्य है तो दो संभावनाएँ, (i) कि प्रिय शिष्य, जो संभाव्यतः यूहन्ना, जब्दी का पुत्र था, समस्त सुसमाचार का लेखक था, अथवा (ii) किसी ने इसी अभिप्राय से पद २४ को सम्मिलित किया कि यूहन्ना, जब्दी का पुत्र सुसमाचार का लेखक मान लिया जाए। "भूमिका" में हम कह आए हैं कि अन्य कारणों से भी यह मानना कि वही यूहन्ना स्वयं लेखक था कठिन है। इस पद की तुलना १६ : ३५ से कीजिए।

संभव है कि "हम जानते हैं" शब्दों में लेखक स्वयं को और पाठकों को सम्मिलित करता है। परंतु अधिक विद्वानों की मान्यता के अनुसार किसी समूह ने यह बात यहां जोड़ी। कदाचित उनका अभिप्राय यूहन्ना, जब्दी के पुत्र को सुसमाचार का लेखक प्रमाणित करना था।

यदि उपरोक्त (ख) अथवा (ग) मान लिया जाए तो इस पद का अर्थ केवल यह है कि प्रिय शिष्य ने अध्याय २१ अथवा उसके १५-२३ पदों को लिखा। इस पद में इतनी अनिश्चितियां हैं कि उस पर लेखक के संबंध में कोई ठोस परिकल्पना आधारित नहीं की जा सकती। तो भी इस से बहुत प्राचीन प्रमाण मिलता है कि इस सुसमाचार की रचना पर प्रिय शिष्य, अर्थात यूहन्ना, जब्दी के पुत्र का बड़ा प्रभाव हुआ।

पद २५ : यह सुसमाचार का द्वितीय उपसंहार है। कुछ बातों में वह २० : ३०, ३१ के समान है। इसमें अतिशयोक्ति है, परंतु यह भी स्पष्ट है कि सुसमाचार में केवल चुनिंदा बातें है, यीशु के अधिक कार्य और कथन ब्योरेवार नहीं लिखे गए।

अध्याय ५

प्रेरितों के काम

निर्देश—इस पुस्तक पर सामान्य सामग्री (लेखक, तिथि, अभिप्राय, रूपरेखा आदि) के लिये पढ़िए नया नियम की भूमिका, पृष्ठ १३२-१४७। विस्तृत टीका के लिये देखिए 'प्रेरितों के काम : टीका', मसीही आध्यात्मिक शिक्षा माला, ग्रंथ संख्या १२।

१ कलीसिया का जन्म १ : १–५ : ४२

(१) चालीस दिन और उनके बाद १ : १-२६। (२) पिन्तेकुस्त का दिन २ : १-४७। (३) एक आश्चर्यकर्म और उसका परिणाम ३ : १–४ : ३१। (४) एक भंडार और एक समाज ४ : ३२–५ : ११। (५) सनहेद्रिन से प्रेरितों का संघर्ष ५ : १२-४२।

(१) चालीस दिन और उनके बाद १ : १-२६

१ : १-५ में प्रेरितों के काम की पुस्तक का प्राक्कथन है। लूका रचित सुसमाचार और प्रेरितों के काम की पुस्तकों में जो प्राक्कथन हैं, उनसे यूनानी इतिहासकाल के हेलेनी युग का बोध होता है। साथ ही यह ज्ञात होता है कि लूका उस युग के अनुरूप साहित्यकार है, और उच्च कोटि का साहित्यकार है। १ : १-२ "थियुफिलुस"—देखिए लूका १ : ३। वहां 'श्रीमान थियुफिलुस' है। थियुफिलुस शब्द का अर्थ कदाचित 'परमेश्वर का प्रेमी' है, और यह सुझाव किया गया है कि इस शब्द का साधारण अर्थ है मसीही पाठक जो परमेश्वर से प्रेम करता है। परंतु 'श्रीमान' शब्द से किसी व्यक्ति विशेष का बोध होता है। 'श्रीमान' के लिये मूल यूनानी शब्द 'क्रतिस्ते' (Kratiste) है। इस शब्द का प्रयोग प्रे. २३ : २६; २४ : ३ और २६ : २५ में भी हुआ है जहां इसका अनुवाद 'महाप्रतापी' (हिं. सं. परमश्रेष्ठ) किया गया है। यह शब्द किसी उच्च पदधारी व्यक्ति के लिये प्रयुक्त होता था। अतः इस नाम के किसी व्यक्ति की ओर यहां संकेत है। विभिन्न विद्वानों ने व्यक्ति विशेष संबंधी जो सुझाव प्रस्तुत किए हैं उनके लिये देखिए इंटरप्रीटर बाइबल, ग्रंथ ९, पृष्ठ २४। "पहिली पुस्तिका" का अर्थ है लूका रचित सुसमाचार। "आरंभ में किया. . .रहा"—देखिए लूका १ : ३। हिं. सं. अनुवाद में है 'जो यीशु उस दिन तक करते और सिखाते रहे जब तक कि वह, अपने निर्वाचित शिष्यों को पवित्र आत्मा द्वारा आज्ञा देने के पश्चात, ऊपर न उठा लिए गए'। पद २ का यूनानी मूल पाठ शंकास्पद है। संभव है कि इसका अधिक ठीक अर्थ है 'जब वह (यीशु) पवित्र आत्मा के विषय आज्ञा दे चुका था' (पद ४-५)।

"प्रेरित"—सुसमाचारों में 'शिष्यों' को बहुधा 'प्रेरित' नहीं कहा गया है, केवल आठ बार इस शब्द का प्रयोग है जिसमें छः बार लूका के सुसमाचार में है। प्रेरितों के काम में २८ बार इस शब्द का प्रयोग है और बारह 'प्रेरितों' को 'शिष्य' नहीं कहा गया है। शिष्य का अर्थ है सीखनेवाला और प्रेरित का अर्थ है 'भेजा हुआ'। जब यीशु उनके साथ था तब वे सीखनेवाले थे। पवित्र आत्मा पाने के बाद वे प्रेरित (या मिशनरी) बन गए।

प्रेरित का लक्षण १ : २१-२२ में यह बताया गया है कि वह यीशु के बपतिस्मा से लेकर उसके उठाए जाने तक उसके साथ रहा हो, और वह उसके जी उठने का गवाह हो। आरंभ में यह पदवी बारह प्रेरितों (यहूदा के स्थान पर मत्तिय्याह) तक सीमित थी। यह कोई पद नहीं था और इसके द्वारा कलीसिया पर शासन का अधिकार नहीं दिया जाता था। शीघ्र ही यह पदवी पौलुस और बरनबास जैसे प्रचारकों के लिये प्रयुक्त होने लगी, जिनका काम यात्रिक प्रचारक का था और जिनको कलीसिया में कोई पद नहीं था। वास्तव में बारह प्रेरितों के लिये भी यह संकेत मिलते हैं कि वे प्रमुख रूप से मिशनरी ही थे। कुछ समय बाद ही प्रेरितों के काम में बारह प्रेरित यहूदियों की महासभा, सनहेद्रिन के समानांतर एक 'प्रेरित संघ' (Apostolic College) के रूप में दिखाई देते हैं। यह संघ यरूशलेम में कुछ वर्षों बना रहा। इस संघ के हाथ में कलीसिया का प्रारंभिक प्रबंध था और प्रेरित न केवल स्थानीय कलीसियाओं के प्रधान थे, वरन विस्तृत कलीसिया के भी प्रधान थे (दे. ६ : २; ८ : १४; ११ : १)। नया नियम में इस विचार का कहीं भी समर्थन नहीं है कि कलीसिया में प्रेरित पद की कोई स्थायी या नियमित स्थापना की गई। प्रेरितों ने प्राचीनों की तो नियुक्ति की परंतु मत्तिय्याह के बाद अन्य किसी को प्रेरित नियुक्त नहीं किया कि उनके उत्तराधिकारी हों।

"पवित्र आत्मा के द्वारा"—'इन शब्दों में प्रेरितों के काम की पुस्तक का प्रमुख धर्मविज्ञानिक तथ्य व्यक्त है। यीशु के बपतिस्मा पर यीशु का पवित्र आत्मा और सामर्थ से अभिषेक हुआ (१० : ३८)। वह पवित्रता की आत्मा के भाव में मरे हुओं में से जी उठने के कारण परमेश्वर का पुत्र ठहरा (रो. १ : ४)। उसके जी उठने पर अपने शिष्यों को महान आदेश देते हुए उनसे कहा 'पवित्र आत्मा लो' (यू. २० : २२)। लूका यह स्पष्ट करता है कि उसी आत्मा के द्वारा प्रेरितों के समस्त कार्यों को प्रेरणा मिलती है जिनका वर्णन इस पुस्तक में है। अतः एक विद्वान आलोचक इस पुस्तक को **पवित्र आत्मा के काम** की पुस्तक कहता है'—एफ. एफ. ब्रूस। 'पवित्र आत्मा' के लिये पढ़िए बाइबल ज्ञानकोश पृष्ठ २६३-२६५। तुलना कीजिए मत्ती १ : १८, २०; लूका १ : ३५। "जिन्हें उसने चुना था"—तुलना कीजिए लूका ६ : १३; यूहन्ना १५ : १६। "पक्के प्रमाण. . .उन्हें जीवित दिखाया"—सुसमाचारों में यीशु के पुनरुत्थान के बाद दिखाई देने के वर्णन हैं और वे प्रामाणिक हैं। "चालीस दिन"—धर्मशास्त्र में 'चालीस दिन' एक परंपरागत संख्या है (दे. नि. ३४ : ३८; १ रा. १९ : ८; मत्ती ४ : २)। जीवित दिखाई देने की चालीस दिन की अवधि का उल्लेख केवल इसी स्थल में हुआ है। "पर-

मेश्वर के राज्य"–ये शब्द प्रेरितों के काम में सात बार आए हैं। सहदर्शी सुसमाचारों में इनका बहुत बार प्रयोग हुआ है। परमेश्वर के राज्य का प्रधान अर्थ 'मनुष्यों के हृदयों में परमेश्वर का शासन' है। इसमें राज्य क्षेत्र का भाव नहीं, वरन परमेश्वर के साथ व्यक्तिगत संबंध का भाव है। प्रेरितों के काम की पुस्तक में परमेश्वर के राज्य का अधिक संबंध कलीसिया से जान पड़ता है: सहदर्शी सुसमाचारों में परमेश्वर के राज्य के साथ भविष्य आशा संबंधी विचार भी जुड़ा हुआ है। प्रेरितों के कार्य में यह विचार निहित जान पड़ता है (दे. प्रे. ८ : १२; १४ : २२; १९ : ८; २० : २५; २८ : २३, ३१)। १ : ४ "से मिलकर"—हिं. सं. में मूल अनुवाद में 'भोजन करते समय' और पद-टिप्पणी में 'से मिलकर' है। बात यह है कि मूल यूनानी में यहां जो शब्द है उसका अर्थ होता है 'उनसे मिलकर'। परंतु यदि उस शब्द में एक अक्षर भिन्न हो जाए तो अर्थ हो जाता है 'उनके साथ भोजन करते समय'। मूल यूनानी शब्द का अर्थ 'साथ निवास करते हुए' भी हो सकता है। आर.एस. व्ही. में अनुवाद है'Staying with them'। विभिन्न शब्दार्थ से मूल भाव में कोई अंतर नहीं होता। "यरूशलेम...सुन चुके हो"—तुलना कीजिए लूका २४ : ४९। "प्रतिज्ञा"—यह पवित्र आत्मा के उतरने की प्रतिज्ञा है। यह प्रतिज्ञा २ : ३३ में पूरी होती है। "पिता" शब्द का प्रयोग प्रेरितों के काम में केवल यहां, १ : ७ और २ : ३३ में हुआ है। १ : ५ "यूहन्ना का बपतिस्मा"—वर्तमान काल में बपतिस्मा शब्द से मसीही संस्कार का बोध होता है। प्रेरितों के काल में बपतिस्मा संस्कार नहीं था। 'बपतिस्मा' का शाब्दिक अर्थ है डुबाना या भिगोना या जल में डुबकी देना। यूहन्ना का बपतिस्मा 'पापों की क्षमा के लिये मनफिराव' का बपतिस्मा था (मर. १ : ४)। उस अपतिस्मा को पानेवाले अपने पापों को मानते और यह विश्वास व्यक्त करते थे कि आनेवाले मसीह के द्वारा वे पापों की क्षमा प्राप्त करेंगे। इस बपतिस्मा के द्वारा वे परमेश्वर के आनेवाले राज्य में प्रवेश करने के लिये अपने समर्पण को प्रकट करते थे। "पवित्र आत्मा से बपतिस्मा" पाने का अर्थ है पवित्र आत्मा से भर जाना या ओतप्रोत होना।

इस पद में लूका यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाले के शब्दों को यीशु द्वारा उच्चरित कर रहा है (लू. ३ : १६)।

१ : ६-११ यीशु के स्वर्गारोहण का वर्णन है। १ : ६ ऐसा प्रतीत होता है कि शिष्यों ने पद ५ में यीशु के प्रतिज्ञा संबंधी कथन का अर्थ नहीं समझा। वे प्रतिज्ञा का संबंध प्रतिज्ञात मसीह-राज्य से जोड़ते हैं। वे अभी भी यह समझते थे कि यीशु ख्रिस्त इस पृथ्वी पर ही अपना राज्य स्थापित करेगा, और वह इस्राएल जाति का राज्य होगा, और उस राज्य में उन को उच्च पद और स्थान प्राप्त होगा। इसीलिये वे "इस्राएल को राज्य फेरने" के संबंध में प्रश्न करते हैं। सुसमाचारों में यीशु स्वर्ग-राज्य के आने की चर्चा अधिक करता है, पवित्र आत्मा के आने की कम। परंतु 'प्रेरितों के काम' पुस्तक के लिखे जाने के समय तक और पवित्र आत्मा के दिए जाने के बाद कलीसिया यह अधिकाधिक समझने लगी कि यीशु का वास्तविक रूप में आगमन पवित्र आत्मा की सामर्थ

में था। १ : ७ "उन समयों या कालों का जानना. . ."—तुलना कीजिए मरकुस १३ : ३२। आज भी कई मसीही इस विषय पर बड़े बड़े अनुमान लगाते हैं जिस विषय के लिये यीशु ने कहा कि 'यह तुम्हारा काम नहीं है'। १ : ८ इस पद में शिष्यों के प्रश्न का वास्तविक उत्तर है। यह पद समस्त प्रेरितों के काम पुस्तक का केन्द्रीय विषय और मूल विचार है। इस पद में तीन तत्व हैं : पवित्र आत्मा का पाना, सामर्थ पाना और गवाह होना। **यरूशलेम** से अर्थात सब से कठिन स्थान से गवाही आरंभ करना है। यदि चेले गलील से शुरू करने का निर्णय करते तो कदाचित यरूशलेम तक नहीं पहुचते। इस केन्द्र से गवाही का वृत्त बढ़ता जाता है, सारे यहूदिया. . .सामरिया. . .पृथ्वी की छोर तक। "मेरे गवाह"—अर्थात यीशु के ही सेवक या दास होकर, और केवल उसी के जीवन और कार्य की गवाही देने वाले। गवाह शब्द १३ बार प्रेरितों के काम में प्रयुक्त हुआ है—दो बार कानूनी अर्थ में, शेष मसीही अर्थ में। गवाह का अर्थ है वह व्यक्ति जिसने अपनी आंखों से देखा और कानों से सुना है। गवाह के लिए मूल यूनानी शब्द 'मारतिर' (martyr) जिसका अर्थ साक्षी और शहीद दोनों है। १ : ९ "ऊपर उठा लिया गया"—मत्ती और यूहन्ना के सुसमाचारों में स्वर्गारोहण का वर्णन नहीं है। मरकुस १६ : १९ और लूका २४ : ५१ में स्वर्गारोहण का उल्लेख है। यीशु के स्वर्गारोहण के लिये दो प्रकार की अभिव्यक्ति है : एक, 'ऊपर चढ़ गया' (दे. यू. ३ : १३; २० : १७; इफि. ४ : ८, ९, १०) और दूसरी 'ऊपर उठा लिया' गया। पहली अभिव्यक्ति में क्रिया ख्रिस्त की है, दूसरी में क्रिया परमेश्वर की है। 'ऊपर चढ़ जाना' और 'ऊपर उठा लिया जाना' में वास्तविक क्रिया में कोई अंतर नहीं है। स्वर्गारोहण के संबंध में पाठक एच. के. मोल्टन की विस्तृत टीका का अध्ययन करें (अंग्रेजी, दी एक्ट्स ऑफ दी अपोस्ल्स, पृष्ठ ७२-७३)। संक्षेप में स्वर्गारोहण ख्रिस्त के चले जाने के लिये प्रतीकात्मक भाषा है। इसका अर्थ यह है कि 'ख्रिस्त जिस विशुद्ध आत्मा-संसार से आया था वहीं लौट गया जिससे आगे को उसके अनुयायी उसकी भौतिक उपस्थिति पर निर्भर न रहें, वरन उसके आत्मा के सर्वोपस्थित सामर्थ और मार्गदर्शन पर निर्भर रहें (दे. यू. १६ : ७)। देहधारण की समाप्ति हुई कि आत्मा का जीवन आरंभ हो सके'। "बादल ने. . .छिपा लिया"—इन शब्दों को भी हमें प्रतीकात्मक अर्थ में स्वीकार करना चाहिये। तुलना कीजिए दानिय्येल ७ : १३। पुराना नियम में बादल यहोवा के अगम और अतीत होने को छिपानेवाला है। वह यहोवा के शेकीनाह या दिव्य तेज का प्रतीक है। अब ख्रिस्त उसी दिव्य तेज में ग्रहण कर लिया गया। बादल परमेश्वर की उपस्थिति का प्रतीक भी है। १ : १०-११—"दो पुरुष श्वेत वस्त्र पहिने हुए"—यहां और लूका २४ : ४ में लूका दो श्वेत (लूका, झलकते हुए) वस्त्रधारी पुरुषों का उल्लेख करता है। लूका उनको स्वर्गदूत नहीं कहता। 'प्रेरितों के काम' में २२ स्थलों पर लूका दिव्य प्राणियों के रूप में स्वर्गदूतों का उल्लेख करता है। अतः कुछ विद्वानों का विचार है कि 'पुरुष' शब्द के प्रयोग से और साथ ही 'हे गलीली पुरुषो' संबोधन से यह संकेत होता है कि ये दोनों यहूदिया प्रांत के अज्ञात शिष्य होंगे। वे स्वर्गदूत हैं या मानव संदेशवाहक यह बात

महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण बात है संदेश की दिव्यता। उनका संदेश है कि 'यीशु फिर आएगा'। "उसी रीति से फिर आएगा"—देखिए मर. १४ : ६२; लूका २१ : २७; प्रक. १ : ७ जहां बादलों पर लौटने का उल्लेख है। इन वर्णनों में ख्रिस्त के महिमा-सहित लौटने का वर्णन है। प्रारंभिक मसीहियों की आशा थी कि ख्रिस्त शीघ्र ही लौटेगा (दे. मर. ९ : १; १ थिस. ४ : १३-१८; प्रक. २२ : २०)। ऐसा नहीं हुआ। मरकुस १३ : ३३ में ख्रिस्त की चेतावनी को ध्यान में रखना चाहिये। इस संदेश में प्रमुख तथ्य यह नहीं है कि कब यीशु लौटेगा और न बादलों पर आने का प्रतीक प्रमुख तथ्य है। प्रमुख तथ्य यह है कि समस्त इतिहास की गतिविधि परमेश्वर के हाथ में है और वह ख्रिस्त के प्रकाशन के अनुरूप उस इतिहास की पूर्ति करेगा।

१ : १२-२६ में यहूदा इस्करियोती के स्थान पर मत्तिय्याह के चुने जाने का वर्णन है। **१ : १२** "जैतून"—यह यरूशलेम के पूर्व में है। यरूशलेम और इस पहाड़ के बीच एक खाई है। "एक सबत की दूरी"—यहूदी नियमावली में यह अनुमत था कि सबत के दिन अधिक से अधिक १००० मीटर चला जा सकता था। **१ : १३** "अटारी" —संभव है कि यह वही उपरैला कक्ष हो जहां अंतिम भोज खाया गया था (दे. लू. २२ : १२)। कदाचित यह मरकुस यूहन्ना की माता का घर था (दे. प्रे. १२ : १२)। "पतरस, यूहन्ना. . यहूदा रहते थे"— यीशु के बारह चेलों की सूची के लिये देखिए मत्ती १० : १२; मर. ३ : १६; लूका ६ : १२। **१ : १४** "स्त्रियों"— या तो ये शिष्यों की पत्नियां हैं, अथवा प्रेरितों के समूह के साथ सेवा करनेवाली स्त्रियां है जैसी लूका ८ : २-३ और २४ : १० में वर्णित हैं। "उसके भाइयों"—(दे. मर. २ : १२; ३ : ३१; ६ : ३; यू. ७ : ३; गल. १ : १९)। यीशु के भाइयों के संबंध में मत-वैभिन्न्य है। तीन मान्यताएं व्यक्त की जाती हैं : एक, कि ये यूसुफ और मरियम के यीशु से छोटे पुत्र थे; दूसरी कि पहली पत्नी से यूसुफ के पुत्र थे; तीसरी कि ये मरियम की बहिन के बेटे अर्थात यीशु के मौसेरे भाई थे। मरकुस ३ : ३१ से यह संकेत मिलता है कि यीशु के भाई उससे बड़े होंगे। अतः दूसरी मान्यता को बल मिलता है। रोमी कलीसिया पहली मान्यता को स्वीकार नहीं करती। "एक चित्त होकर"—ये शब्द प्रेरितों के कार्य में १० बार आए हैं। नया नियम में अन्यत्र केवल रो. १५ : ६ में है। "प्रार्थना में लगे रहे"—संभव है कि ये यरूशलेम के मंदिर में प्रार्थना करते थे (दे. प्रे. २ : ४२)। प्रे. १६ : १३, १६ से संकेत होता है कि कदाचित सभाघर में प्रार्थना करते थे।

१ : १६-१७ नया नियम में पुराने नियम का प्रयोग विभिन्न संदर्भों में हुआ है। यहां यहूदा के संबंध में पुराना नियम का प्रयोग है। "पवित्र शास्त्र. . . .ने कही थीं" —इस पद में भजन ६९ : २५ और १०९ : ८ की ओर संकेत है। भजन से उद्धरण १ : २० में है। "सेवकाई"—(हिं. सं., सेवा)। पद २० में 'पद' शब्द और 'प्रेरिताई' शब्दों पर भी ध्यान दीजिए। यहूदा इन तीनों कार्यों में विफल हुआ। "अगुवा"— हिं. सं. 'मार्गदर्शक' अधिक सार्थक अनुवाद है। देखिए मरकुस १४ : ४३-४४। **१ : १८-२०** "यहूदा की मृत्यु" के संबंध में तीन परंपराएं हैं : (क) यहां अर्थात प्रेरितों के

काम १ : १८-२० में है। (ख) मत्ती २७ : ३-१० में है जहां वह अपने आप को फांसी लगा लेता है।(ग) पापियास का वर्णन, कि यहूदा एक बुरी बीमारी से पीड़ित हुआ जिससे उसका बदन बहुत अधिक सूज गया और वह एक सकरी गली में गाड़ी से दबकर मर गया। यह सुझाव किया गया है कि पापियास का वर्णन प्रेरितों १ : १८-२० पर ही निर्भर है, क्योंकि 'सिर के बल गिरने' के लिये जो मूल यूनानी शब्दावली है उसका अर्थ "सूजकर' भी हो सकता है। १ : २१-२२ प्रेरित की योग्यता के लिये आवश्यक है कि व्यक्ति यीशु के बपतिस्मा से लेकर स्वर्गारोहण तक यीशु के साथ रहा हो, अर्थात वह समझे कि यीशु कौन था। प्रेरित का कर्तव्य था कि वह पुनरुत्थान का साक्षी हो। प्रेरितों के अतिरिक्त अन्य कई लोग यीशु के पीछे चलते थे (दे. मर. ४ : १०; लू. १० : १; २४ : ३३)। १ : २३-२६ "बरसबा" और "मत्तिय्याह"—इन दोनों का नया नियम में अन्यत्र उल्लेख नहीं है। 'बरसबा' शब्द का अर्थ है 'सबत का पुत्र' जिससे कदाचित इस व्यक्ति के जन्म दिवस का संकेत होता है। 'मत्तिय्याह' शब्द का अर्थ है 'याह का वरदान'। "प्रभु"—स्वभाविक रूप से यह संबोधन परमेश्वर को है। परंतु १ : २ में प्रभु यीशु द्वारा चुने जाने का उल्लेख है, अतः यह संभव है कि इसमें 'प्रभु यीशु' को संबोधन है। "सब के मन जानता है" के लिये हिं. सं. अंतर्यामी सुंदर शब्द है। "अपने स्थान को गया"—पतरस स्थान का स्पष्टीकरण नहीं करता। यह अर्थ निहित है कि यीशु ने जो स्थान यहूदा के लिये चुना था वह यहूदा ने छोड़ दिया और उस स्थान को गया जहां उसने अपनी नियति बनाई थी। "चिट्ठियां डालीं"—पुराना नियम की पद्धति यह थी कि कंकड़ों पर नाम लिखकर एक पात्र में डाले जाते थे और उस समय तक हिलाए जाते थे जब तक एक पत्थर पात्र में से न गिर जाए (यहोशू १५-१९ अध्याय)। यह प्रथा पिंतेकुस्त के बाद नहीं अपनाई गई। प्रे. ६ : ३-६ और १३ : २ में इसकी विषमता देखिए।

(२) पिन्तेकुस्त का दिन २ : १-४७

इस अंश का अध्ययन चार भागों में किया जा सकता है। पवित्र आत्मा का उतरना और साथ घटित होनेवाले तत्व (२ : १-१३) ; पतरस का उपदेश (२ : १४-३६); उपदेश का प्रभाव (२ : ३७-४१); कलीसियाई जीवन का आरंभ (२ : ४२-४७)।

२ : १-१३ पवित्र आत्मा का अवतरण

२ : १ "पिन्तेकुस्त का दिन"—पिन्तेकुस्त शब्द का अर्थ है 'पचासवां'। यह दिन यहूदियों के लिये पर्व का दिन था। यह फसह के पर्व के बाद आता था। फसह का पर्व निसान मास के १४वें दिन को मनाया जाता था। उस महीने के १६वें दिन से पचा-सवां दिन पिन्तेकुस्त का पर्व होता था। यह माना जाता है कि जिस वर्ष यीशु क्रूस पर चढ़ाया गया उस वर्ष निसान मास की १४वीं तिथि शुक्रवार को थी। इसीलिये रविवार को १६वीं तिथि थी और उसके बाद पचासवां दिन भी रविवार था। पिन्तेकुस्त पर्व को 'कटनी का पर्व' (नि. २३ : १६) अथवा 'अठवारों का पर्व' (निर्गमन ३४ : २२)

कहते थे। इस पर्व पर भी सब यहूदी पुरुषों को यरूशलेम जाने का आदेश था (नि. २३ : १४-१७)। यहूदी धर्म में यह दिवस मूसा को व्यवस्था दिए जाने का दिन भी माना जाता है। रब्बियों की परंपरागत मान्यता यह भी थी कि मूसा को मनुष्यों की सब भाषाओं में व्यवस्था दी गई थी। मसीहियों के लिये यह दिन पवित्र आत्मा के उतरने और कलीसिया के जन्म का दिन हो गया। "सब"—या तो लगभग १२० जन (दे. १ : १५) या बारह प्रेरित। २ : १४ से संकेत होता है कि 'सब' शब्द से बारह प्रेरितों का बोध होता है। २ : २-३ "आंधी . . .शब्द. . .आग की सी जीभें"—इनका विवेचन करना संभव नहीं। ये या तो भौतिक घटनाएं हो सकती हैं अथवा गहन अनुभव के प्रतीक। मूसा को व्यवस्था दिए जाने के समय भी कुछ ऐसा ही वर्णन है (नि. १९ : १६, १८)। 'हवा' जीवन के श्वास का और 'आग' ईश्वरीय शक्ति एवं अधिकार का प्रतीक है। 'आग की सी जीभें' पवित्र आत्मा की सार्वलौकिकता अथवा सब लोगों के लिये होने का प्रतीक हैं। इस तथ्य पर ध्यान देना चाहिये कि 'ये ब्यौरे सामयिक और गौण हैं, इनमें व्यंजित आत्मिक अनुभव स्थायी और प्रधान है'। २ : ४ "वे अन्य अन्य भाषा बोलने लगे"—अन्य भाषाएं बोलने का तथ्य प्रेरितों के काम की पुस्तक में सामान्यतः स्वीकृत है। परंतु यह एक बड़ी समस्या है। २ : ९-११ में लेखक बताता है कि विभिन्न देशों की भाषाएं बोलनेवाले प्रेरितों के वचनों को अपनी अपनी भाषा में समझ रहे थे। प्रे. १० : ४५-४६ और १९ : ६ में भी अन्य अन्य भाषाओं के दान का उल्लेख है परंतु वहां अभि-व्यक्ति के रूप का वर्णन नहीं है। प्रारंभिक कलीसिया में यह एक बड़ी समस्या थी। अन्य भाषाएं बोलने के दान के संबंध में देखिए १ कुरिंथियों १४ वां अध्याय।

इस पद की ब्यौरेवर व्याख्या के लिये पढ़िए अंग्रेजी में प्रेरितों के काम की टीका, लेखक एच. के. मोल्टन, पृष्ठ ८२-८३।

२ : ५-१३ में पवित्र आत्मा के अवतरण के प्रारंभिक प्रभाव का वर्णन है। २ : ५ "भक्त" (हि. सं. श्रद्धालु)—मूल यूनानी शब्द का अर्थ है 'वह व्यक्ति जो किसी वस्तु को सतर्कता से काम में लाए, या आदरपूर्वक काम में लाए' (दे. लूका २ : २५; प्रे. ८ : २; २२ : १२)। उन अयहूदी लोगों को 'भक्त' कहा जाता था जो यहूदी धर्म के एकेश्वरवाद को मानते थे, पुराना नियम पढ़ते थे और सभाघर की आराधना में भाग लेते, परंतु जो खतना विधि तथा अन्य धर्मकृत्यों को नहीं अपनाते थे। २ : ९ "पारथी, मेदी और एलामी"—ये लोग तीन पूर्वी देशों के हैं। ये देश कस्पियन सागर और फारस की खाड़ी के भाग थे (देखिए बाइबल मानचित्रावली, नक्शा ८ और ११)। "यहूदिया, कप्पदूकिया, पुन्तुस, आसिया, फ्रूगिया और पमफूलिया"—ये भूमध्य-सागर के आसपास के प्रांत थे (दे. प्रेरितों के काम, मसीही आध्यात्मिक शिक्षामाला, क्रमांक १२ में नक्शा)। २ : १० "लिबूआ"—मिस्र देश के पश्चिम में और आफ्रिका के उत्तरी किनारे पर एक देश। इसका नाम 'पूत' भी है (यि. ४६ : ९; यहे. २७ : १०; देश। इसका नाम 'पूत' भी है (यि. ४६ : ९; यहे. २७ : १०; ३० : ५; ३८ : ५)। "कुरेन"—उत्तरी आफ्रिका में पूर्वी लिबूआ का मुख्य नगर। यहां बहुत से यहूदी बस

गए थे (दे. मत्ती २७ : ३२)। "रोमी प्रवासी"—रोम नगर के वे निवासी जो यरूशलेम में पिन्तेकुस्त पर्व पर यात्रा के लिये आए थे। इनमें यहूदी तथा अन्य जातीय लोग भी थे। "यहूदी मत धारण करने वाले"—मूल यूनानी शब्द 'प्रोसेलित' (Proselyte) है। नया नियम में इस शब्द का आशय है वह अन्यजातीय व्यक्ति जो खतना कराके यहूदी धर्म अपनाता था। बहुतसे अन्यजातीय लोग यहूदी धर्म के एकेश्वरवाद से प्रभावित होते थे। उनमें से कुछ 'भक्त' (प्रे. १० : २) होते थे और कुछ यहूदी मतावलंबी हो जाते (६ : ५; १३ : ४३) थे। "क्रेती और अरबी" अर्थात क्रेते और अरब के निवासी (देखिए प्रेरितों की काम, म. आ. ग्रं. माला क्रमांक १२ में नक्शा)। पद ९ और १० में यह व्यंजना है कि संसार के सब देशों और भाषाओं के लोग परमेश्वर के बड़े बड़े कामों की चर्चा सुन रहे थे।

२ : १४-३६ पतरस का उपदेश। इस उपदेश के तीन उपविभाग हैं : एक १४-२१ जिसमें अन्य अन्य भाषायें बोलने की घटना को योएल नबी की भविष्यवाणी से संबद्ध किया गया है; दूसरा २ : २२-३१ जिसमें यीशु की जीवनी की मुख्य घटनाओं पर प्रकाश डाला गया है; तीसरा २ : ३२-३६ जिसमें महिमान्वित यीशु को पवित्र आत्मा का देनेवाला तथा प्रतिज्ञात मसीह प्रस्तुत किया गया है।

२ : १५ पहर दिन—अर्थात प्रातः ९ बजे। २ : १६-२१ "योएल भविष्यद्वक्ता"—ई. पू. चौथी सदी में नबी था। इन पदों में योएल २ : २८-३२ का उद्धरण है। योएल नबी की मान्यता पुराना नियम की मान्यता है कि आत्मा एक 'दिव्य जीवन-शक्ति' है। पतरस एक अधिक गहरे अर्थ में आत्मा शब्द का प्रयोग करता है। आत्मा अब सामर्थी व्यक्ति है। "प्रभु का दिन"—पुराना नियम में प्रभु का दिन विशेषकर अन्यजातियों के न्याय और दंड का दिन है। "प्रभु"—योएल की नबूवत में (योए. ३ : ४) यहोवा को 'प्रभु' कहा गया है। पतरस के भाषण में 'प्रभु' का अर्थ यीशु ख्रिस्त है।

२ : २२ "परमेश्वर की ओर से होने का प्रमाण"—वास्तव में इसी रूप में यीशु ने पतरस के समक्ष अपने को प्रस्तुत किया था (दे. मर. ८ : २९)। "आश्चर्य-कर्म और चिन्ह"—ये शब्द ८ बार प्रे. के काम में और ७ बार नया नियम में अन्यत्र आए हैं। आश्चर्य कर्म केवल अदभुत कार्य है। 'चिन्ह' वह अदभुत कार्य है जिससे परमेश्वर किसी तथ्य को मनुष्यों पर प्रकट करता है। २ : २३ "ठहराई. . .अनुसार"—तु. १ पत १ : २। इस में यह विचार व्यक्त है कि क्रूस परमेश्वर की निश्चित योजनानुसार घटित हुआ। प्रश्न यह होता है कि यहूदा, यहूदी अधिकारियों और पीलातुस का क्या दोष ? परंतु नया नियम में इनको दोषी माना गया है (यू. १३ : २१ क्र., मत्त. २७ : २०; मर. १५-१५)। मानव की स्वतंत्र इच्छा और परमेश्वर की सर्वोपरि इच्छा के सामंजस्य की समस्या कठिन समस्या है। यह निश्चित है कि मनुष्य भले और बुरे को चुनने के लिये स्वतंत्र है। अतः स्वतंत्रता का दुरुपयोग उनको दोषी ठहराता है। यह भी स्पष्ट है कि परमेश्वर अपनी सर्वसत्तात्मक (Sovereign) इच्छा में सर्वोपरि है और जगत के लिये कल्याणकारी कार्य करता है। "अधर्मियों"—अर्थात

रोमी लोग। २ : २४ "परमेश्वर ने. . .जिलाया"—नया नियम में पुनरुत्थान परमेश्वर का कार्य है, और कभी उसे ख्रिस्त स्वयं का कार्य कहा गया है। २ : २५-३१ में पतरस भजनसंहिता के उल्लेख से पुनरुत्थान को प्रमाणित करता है। २५-२८ में उद्धरण भजन १६ : ८-११ से है। पद ३० में भजन १३२ : ११ से उद्धरण है। पतरस का तर्क यह है कि भजन १६ का कथन दाऊद के संबंध में नहीं हो सकता क्योंकि दाऊद मरा और उसकी कबर विद्यमान है। इसलिये वह दाऊदवंशी व्यक्ति के लिये है। और यह कथन यीशु में पूर्ण हुआ है। "गवाह"—प्रेरितों के काम में यीशु के पुनरुत्थान के गवाह होने पर विशेष बल दिया गया है। २ : ३३-३६—इन पदों में भजन ११० : १ की ओर संकेत है। पतरस का तर्क है कि भजन ११० : १ दाऊद के संबंध में नहीं हो सकता। वह मसीह के लिये है। पद ३३ में कहा गया है कि यीशु 'परमेश्वर के. . .सुनते हो'। इसलिये यीशु ही प्रतिज्ञात मसीह है। २ : ३६ में वह निचोड़ है जो पतरस अपने सुननेवालों के मनों में डालना चाहता है। क्रूसित यीशु ही प्रभु (यहूदी लोग यहोवा के लिये यह पद काम में लेते थे) और प्रतिज्ञात मसीह है। (प्रभु के लिये तु. १ कुर. १२ : ३; रो. १० : ९; फिलि. २ : ११)।

२ : ३७-४१ में पतरस के उपदेश का प्रभाव व्यक्त है।

२ : ३७ पतरस के उपदेश का भारी प्रभाव होता है। कदाचित पिन्तेकुस्त के अनुभव से ही ऐसा प्रभाव संभव है। २ : ३८ प्रेरितों के प्रचार में 'मन फिराना' एक प्रमुख तथ्य है। "यीशु के नाम में बपतिस्मा"—प्रे. २ : ३८; ८ : १६; १० : ४८ और १९ : ५ में इसका उल्लेख हुआ है। प्रेरितों के काम में त्रिएक परमेश्वर के नाम में बपतिस्मा (मत्ती २८ : १९) का उल्लेख नहीं है। त्रिएक के नाम में बपतिस्मा देने का सूत्र बाद में कलीसिया में आया जब कदाचित मूर्तिपूजकों को कलीसिया में सम्मिलित किया जाने लगा। उपरोक्त चारों स्थलों में उन लोगों को बपतिस्मा दिया गया जो पहले से परमेश्वर पर विश्वास करते थे। प्रत्येक स्थल में बपतिस्मा के साथ पवित्र आत्मा का दान भी मिलता है। इन चारों स्थलों में प्रौढ़ बपतिस्मा है। बाल बपतिस्मा के लिए देखिए प्रे. १६ : ३३।

'यूहन्ना के बपतिस्मा और मसीही बपतिस्मा के चिन्ह में अंतर यह था कि यूहन्ना का बपतिस्मा एक बाहरी चिन्ह मात्र रह गया। यीशु का बपतिस्मा (दे. मर. १ : ८) के साथ एक आत्मिक शक्ति और जीवन की नवीनता आई, जिसे पिन्तेकुस्त के बाद कलीसिया ने पवित्र आत्मा के साथ संबद्ध किया' (एच. के. मोल्टन, दी एक्ट्स ऑफ दी अपोस्लस पृष्ठ ९१)। २ : ३९ कदाचित पतरस के मन में यशायाह ५७ : १९ रहा होगा। पतरस के मन में तितर बितर यहूदी ही होंगे। परंतु इफि. २ : १७ में यह पद अन्यजातीय लोगों के विषय में है। २ : ४० "टेढ़ी जाति"—दे. व्य. ३२ : ५; भ. ७८ : ८। २ : ४१ "सो"—यह शब्द प्रे. के नाम में अनेक बार पिछले अंश के सारांश और आगामी अंश को इंगित करने के लिए प्रयुक्त हुआ है (दे. १ : ६; ५ : ४१; ९ : ३१; ११ : १९; १२ : ५; १३ : ४; १५ : ३, ३०; १६ : ५)।

२ : ४२-४७ **मसीही समाज के जीवन का आरंभ**। इन पदों में मसीही समाज के लोगों के नौ लक्षण दिखाई देते हैं : वे विश्वासी थे; वे साथ थे; उनकी सब वस्तुएं साझे की थीं; वे अपनी धनसंपत्ति कलीसिया की सेवा के लिये देते थे; मंदिर में नियमित प्रार्थना करते थे; घरों में प्रतिदिन आराधना करते थे; दूसरे धर्म और जाति के लोगों में लोकप्रिय थे; एक भोज की सहभागिता करते थे; वे परमेश्वर की प्रशंसा करते थे; वे साक्षी देनेवाले थे जिससे दूसरे लोग उद्धार पाकर उनमें मिल जाते थे। २ : ४२ मूल यूनानी से यह स्पष्ट नहीं है कि इस पद में कितने तत्व व्यक्त हैं। हिंदी अनुवाद में चार तत्व व्यक्त हैं। (क) प्रेरितों से शिक्षा पाना—यह नये कान्वर्ट और मुतलाशियों को यीशु के जीवन तथा नैतिक शिक्षा संबंधी शिक्षा थी। लिखित साहित्य के अभाव में यह शिक्षा देना अत्यंत महत्व की बात थी। (ख) **संगति रखना**—यह संगति आध्यात्मिक, आर्थिक (रो. १५ : २६), और सहभोज संबंधी थी (१ कुर. १० : १६। २ कुर. १३ : १४ में पौलुस इसे पवित्र आत्मा की संगति कहता है। यूनानी में इसके लिये कोइनोनिया (Koinonia) शब्द है। (ग) **रोटी तोड़ना**—अर्थात साथ साथ भोजन करना जिसमें अंतिम बियारी का विशेष रूप से स्मरण किया जाता था। रोटी तोड़ने में तीन बातें होती थीं—एक, आरंभ में धन्यवाद की प्रार्थना; दूसरी, साथ भोजन करना (२ : ४४-४५); तीसरी, यीशु ख्रिस्त की याद (१ कुर. ११ : २१-२२)। (घ) **प्रार्थना करना**—इसमें मंदिर में निश्चित समयों पर प्रार्थना करने का आशय है (दे. प्रे. ३ : १)। नई कलीसिया का अभी यहूदी समाज से संबंध-विच्छेद नहीं हुआ था।

२ : ४३-४७। २ : ४३ "अदभुत काम और चिन्ह"—देखिए २ : २२ और उसकी टीका। २ : ४४-४५ "सब वस्तुएं साझे की थीं"—और देखिए ४ : ३२-३७। 'प्रारंभिक मसीहियों को यह प्रतीत हुआ कि वे अपनी भौतिक संपत्ति एक दूसरे के साथ न बांट लें तो अपने विश्वास में भी एक दूसरे के साथ सहभागी नहीं हैं। यह प्रयोग अधिक दिन तक नहीं चला। आंशिक कारण है हनन्याह और सफीरा जैसे लोगों का स्वार्थ और आंशिक कारण यह है कि उस प्रयोग का कोई ठोस आर्थिक आधार नहीं था'। परिस्थिति के बदलने पर पौलुस ने कुरिंथुस नगर से यरूशलेम की कलीसिया की सहायता की (२ कुर. ८ : ६; रो. १५ : २५-२६)। यद्यपि यह प्रयोग अधिक दिन तक नहीं चला, तथापि उसकी मूल भावना ठीक थी क्योंकि वह ख्रिस्तीय प्रेम पर आधारित थी। (इस विषय पर विस्तृत विवेचन के लिये पढ़िए डा. एच. के. मोल्टन की 'दी एक्ट्स ऑफ दी अपोस्ल्स टीका', पृष्ठ ४४-४५)। २ : ४६ "घर घर रोटी तोड़ते"—इसके तीन अर्थ हो सकते हैं। (क) वे एक एक परिवार होकर रोटी तोड़ते थे। (ख) वे समूह होकर घर घर में भोजन करते थे। (ग) वे प्रत्येक घर में बारी बारी से रोटी तोड़ते थे (रोटी तोड़ते के लिये देखिए २ : ४२ की व्याख्या)। इस पद में यह भी निहित है कि मसीही आराधना अब केवल यरूशलेम के मंदिर में ही नहीं, वरन घर पर भी होने लगी थी, और मसीही आराधना का प्रमुख भाग रोटी तोड़ना था। "परमेश्वर की स्तुति करते थे"—देखिए २ : ४२ प्रार्थना करते थे। "लोग उनसे प्रसन्न थे"—लूका

यह बताना चाहता है कि आरंभ में यहूदी लोग ख्रिस्तीय आंदोलन के विरोधी नहीं थे।

(३) एक आश्चर्यकर्म और उसका परिणाम ३ : १–४ : ३१

टिप्पणी—कुछ विद्वानों का विचार है कि ३ : १–५ : १६ पवित्र आत्मा के दिए जाने का जो वर्णन अध्याय २ और ५ : १७-४२ में है उसका ही एक रूप है, और कि ३ : १–५ : १६ में कलीसिया के जन्म का अधिक विश्वसनीय वर्णन है। इस मान्यता के अनुसार ४ : ३१ पिन्तेकुस्त के वर्णन का आदिम रूप होगा।

३ : १-८ लंगड़े मनुष्य का स्वस्थ किया जाना। **३ : १** "पतरस और यूहन्ना"—यूहन्ना का स्थान प्रेरितों के काम में महत्वपूर्ण नहीं है। इन दोनों का प्रेरितों के काम की पुस्तक में छ: बार उल्लेख हुआ है। कुछ विद्वानों का विचार है कि यह यूहन्ना यूहन्ना प्रेरित नहीं, वरन यूहन्ना मरकुस था। परंतु इस विचार के विपक्ष में यह कहा जा सकता है कि लूका जब भी यूहन्ना मरकुस संबंधी घटना का वर्णन करता है तो यूहन्ना नाम के साथ मरकुस भी लिखता है (१२ : १२, २५; १५ : ३७)। "तीसरे पहर"—संध्या के तीन बजे। मंदिर में प्रात:काल और सायंकाल बलिदान चढ़ाए जाते थे (नि. २९ : ३८ क्र.; लै. ६ : १९ क्र.)। इनके साथ प्रार्थना संबद्ध थी। सायंकालीन बलिदान का समय सायंकाल ३ बजे का था। **३ : २** "सुंदर द्वार"—इस की निश्चित जानकारी नहीं है। संभाव्यत: यह मंदिर की पूर्वी ओर "निकानोर' द्वार था जिससे बाहरी अहाते से स्त्रियों के आंगन में आते थे। इस द्वार से बहुत लोग आते थे। भीख मांगनेवाले के लिये यह बड़ा उपयुक्त स्थान था। **३ : ४** "ध्यान से देखकर"—(हिं. सं. एकटक दृष्टि से उसे देखा)। लूका का यह प्रिय शब्द है। प्रेरितों के काम में १२ बार प्रयुक्त है। **३ : ६** "यीशु. . .. चलफिर—प्रभु यीशु की शारीरिक उपस्थिति के हट जाने के पश्चात चेलों का यह पहला आश्चर्यकर्म है। यह यीशु के नाम में किया गया। बाइबल में **नाम** शब्द से संपूर्ण व्यक्तित्व एवं चरित्र का बोध होता है (उदा. यश. ५७ : १५; उत. ३२ : २८)। यीशु का चरित्र और व्यक्तित्व स्वस्थ करनेवाला चरित्र है। 'यीशु के नाम' का सूत्र इस पुस्तक में सामान्य सूत्र है (दे. २ : ३८; ३ : १६; ४ : १२; ५ : ४१; ९ : १४; १६ : १८; १९ : १३)। **३ : ७-८** की शैली में डाक्टरी शब्दावली की छाप दर्शनीय है। इससे प्रतीत होता है कि लेखक डाक्टर था (दे. कुलु. ४ : १४)।

३ : ११-२६ पतरस का उपदेश—आश्चर्यकर्म का स्पष्टीकरण। **३ : ११** "सुलैमान का ओसारा"—इसकी स्थिति का भी निश्चय नहीं है। यदि सुंदर द्वार पूर्व की ओर था तो यह ओसारा भा उसी ओर था। यीशु इस ओसारे में चला फिरा (यू. १० : २३)। यहां चेले एकचित्त होकर इकट्ठे होते थे (प्रे. ५ : १२)। **३ : १३** "अपने सेवक"—'सेवक' के लिये जो मूल यूनानी शब्द है उसका अर्थ 'सेवक' और 'पुत्र' दोनों हो सकता है। यहां, ३ : २६, ४ : २७, ३० में कदाचित यीशु के पुत्रत्व की ओर संकेत है। 'सेवक' शब्द में कदाचित यशायाह के दास-काव्य अंशों की भावना निहित है जिसका चरमोत्कर्ष यश. ५२ : १३–५३ : १२ में मिलता है। यद्यपि नया नियम में 'परमेश्वर का सेवक' का प्रयोग सामान्यतया मिलता है (मत्त ८ : १७; यू. १२ : ३८;

रो. ४ : २५; १० : १६; इब्र. ६ : २८; प्रक. ५ : ६) परंतु बाद में यह प्रयोग बंद सा हो गया। 'परमेश्वर का पुत्र' अधिक प्रचलित हो गया। "पीलातुस"—इसका उल्लेख इसलिये किया जाता रहा कि क्रूसीकरण का मानव इतिहास के साथ संबंध बना रहे। **३ : १४** "**पवित्र और धर्मी**—नया नियम में इन दोनों उपाधियों का प्रयोग बहुधा यीशु के लिये हुआ है (पवित्र : मर. १ : २४; १ यू. २ : २०; प्रे. ४ : २७, ३०। धर्मी : प्रे. ७:५२; २२ : १४; १ यू. २ : १; मत्त. २७ : १६; लू. २३ : ४७)। धर्मी शब्द 'मसीह' से संबंधित शब्द है, उदा. २ श. २३ : ३; यश. ३२ : १; ५३ : ११; जक. ६ : ६। संभव है कि प्रारंभिक मसीहियों के मन में भी इन उपाधियों का संबंध 'मसीह' से हो। **हत्यारा** अर्थात बरब्बा। **३: १५** "जीवन के कर्ता"—इसके लिये जो मूल यूनानी शब्द है वह यहां; प्रे. ५ : ३१; इब्र. २ : १० और इब्र. १२ : २ में पाया जाता है। इस शब्द का अर्थ है 'जो आरंभमें नेतृत्व करता है।' अत: इसका अर्थ प्रवर्तक (आरंभ-कर्ता) या अधिनायक (हिं. सं) है। यीशु जीवन का प्रवर्तक तथा अधिनायक दोनों है। ३ : १६ "विश्वास के द्वारा"—यह विश्वास या तो पतरस का हो सकता है या उस मनुष्य का या दोनों का। इस पद में आश्चर्य-कर्म की दो शर्तें स्पष्ट हैं : (१) ख्रिस्त के नाम (स्वरूप और चरित्र) से आश्चर्य कर्म होना चाहिये, और (२) ख्रिस्त के नाम पर विश्वास होना चाहिये। **३ : १८** "उसका मसीह दुख उठाएगा"—तुलना कीजिए ३ : २०। 'यीशु' और 'मसीह' (ख्रिस्त) इन दोनों शब्दों का नाम जैसा प्रयोग प्रतीत होता है। परंतु ख्रिस्त एक उपाधि है जिसका अर्थ है 'अभिषिक्त जन'। पुराना नियम में भजनों में तथा यशायाह में धर्मी जन के दुख उठाने के उल्लेख हैं। उन उल्लेखों को प्रारंभिक मसीहियों ने यीशु पर लागू किया। ३ : १६ "मन फिराओ और लौट आओ" —दोनों में एक ही क्रिया है। दोनों में यह अंतर प्रतीत होता है कि 'मन फिराओ' में पश्चाताप का आंतरिक या मनोवैज्ञानिक अनुभव है, और 'लौट आओ' में परमेश्वर की ओर लौटने, अपने मार्ग को छोड़कर परमेश्वर की ओर लौटने की क्रिया है। मन फिराओ में व्यक्तिगत कार्य है और लौट आने में व्यक्ति और समाज दोनों का कार्य है। "विश्रांति के दिन"—इस पदांश के दो अर्थ हैं : एक, मसीह के लौट आने का युग जिसमें सब कुशल होगा। दूसरा, संजीव होने के विभिन्न समय जो मसीह के लौटने के पूर्व मसीही लोगों को प्राप्त होंगे। "प्रभु के सन्मुख से"—यह कथन का इब्रानी ढंग है। इसका सीधा अर्थ है 'प्रभु से'। **३ : २०-२१** "सब बातों का सुधार न कर ले" 'सब बातों' से सृष्टि के सुधार की ओर संकेत संभव है (दे. रो. ८ : १८-२३)। 'सुधार' का अर्थ 'स्थापना' या 'पूर्ति' भी हो सकता है। इस दृष्टि से इस पद का अर्थ होगा 'जब तक मसीहसम्मत नबूवतों की पूर्ति या स्थापना न हो जाए'। **३ : २२-२३** में उद्धरण में व्य. १८ : १५ और लै. २३ : २६ को मिलाया गया है। मसीही प्रचार में 'उस भविष्य-वक्ता' को यीशु कहा गया। यहूदी लोग 'उस भविष्यवक्ता' और 'मसीह' को पृथक मानते थे (दे. यू. १ : २१; ६ : १४; ७ : ४०)। ३ : २४ "सामुएल"—यहां और १३ : २० में सामुएल को भविष्यवक्ता कहा गया है (दे. १ श. ३ : २०)। यहूदी लोग

शमूएल की पुस्तक को 'प्रारंभिक नबियों' में गिनते थे। ३ : २५ "भविष्यवक्ताओं की संतान"—उन प्रतिज्ञाओं के वारिस जो नबियों को दी गई थीं। "इब्राहीम से बांधी"—दे. उत. १२ : ३; २२ : १८। ३ : २६ "अपने सेवक"—देखिए ३ : १३ की टीका। "पहिले"—प्रारंभिक प्रचार यहूदियों को ही किया गया। इस बात पर लगातार बल दिया गया है (दे. प्रे. १३ : ४६; १८ : ६; १९ : ८-९; २८ : १७-२८; रो. १ : १६)। "उठाकर"— संभव है कि इस शब्द से 'पुनरुत्थान' व्यक्त होता है। परंतु इसका साधारण अर्थ है 'उठाकर प्रस्तुत कर'।

४ : १-३१ में आश्चर्य कर्म के परिणाम हैं। पद १-२२ में कलीसिया के बाहर जो परिणाम हुए : बहुतों ने विश्वास किया, धर्म के नेताओं ने चेलों को पकड़ा, चेलों का साहस और छोड़ा जाना। पद २३-३१ दूसरा परिणाम कलीसिया के भीतर यह है कि कलीसिया विश्वास में दृढ़ होती है और उसे फिर से सामर्थ का दान प्राप्त होता है।

४ : १-२२ में वर्णन है कि आश्चर्यकर्म का क्या प्रभाव कलीसिया के बाहर के लोगों पर हुआ। ४ : १ "मंदिर के सरदार" (हिं. सं. मंदिर-नायक)—सरदार एक यहूदी पदाधिकारी था जो महायाजक के हाथ के नीचे था। उसका काम था मंदिर में व्यवस्था बनाए रखना। मंदिर के लिए वह पुलिस अधीक्षक जैसा था। उसके साथ लेवीय सिपाहियों का एक दल होता था (दे. यू. ७ : ३२)। रोमी सैनिक मंदिर में अन्य जातियों के आंगन से आगे नहीं जा सकते थे (दे. २१ : ३२)। यहूदी महायाजक को यह अधिकार था कि मंदिर के भीतर व्यवस्था बनाए रखने के लिये अधिकारी और सिपाही रखे। "सदूकी"—पढ़िए बाइबल ज्ञानकोश पृष्ठ ५१९-५२०। ये लोग पुनरुत्थान में विश्वास नहीं करते थे। पद २ में इनके क्रोध का यही कारण बताया गया है। ४ : ५ "पुरनिये"—पुराना नियम के प्रारंभिक काल में पुरनिये वे लोग थे जो संपत्ति, प्रभाव और स्थिति के कारण इस्राएली गोत्रों के प्रमुख थे। धार्मिक और नागरिक जीवन में उनका प्रमुख स्थान था (नि. ३ : १६; १२ : २१; व्य. २७ : १)। इस्राएलियों के कनान में बसने के बाद पुरनियों का महत्व बहुत बढ़ गया और प्रत्येक नगर में नगर के पुरनिये होते थे (रूत ४ : २; १ रा. २१ : ८)। बंधुआईकाल में और उसके उसके बाद भी पुरनियों का स्थान और कार्य बना रहा (यहे. ८ : १; एज्रा ५ : ९ क्र.; भ. १०७ : ३२)। आगे चलकर सनहेन्द्रिन सभा बन गई जिसमें पुरनियों का महत्वपूर्ण स्थान था। नया नियम में पुरनिये (प्राचीन या 'धर्मवृद्ध') के लिये देखिए प्रे. १४ : २३ की टीका; १ तीम ५ : १७; तीत. १ : ७। "शास्त्री"—पुराना नियम में इस शब्द का विभिन्न अर्थों में प्रयोग हुआ है, जैसे सामान्य लेखक (यि. ३६ : ४, १८, ३२), सचिव या शासकीय लेखक (२ रा. १२ : १०; एज्रा ४ : ८), व्यवस्था की प्रतिलिपियां बनानेवाला (यि. ८ : ८; एज्रा ७ : ६, १०)। नया नियम में ये लोग यहूदी व्यवस्थापक या व्यवस्था के शिक्षकों के रूप में प्रस्तुत हैं। इनका काम था : (क) व्यवस्था का अध्ययन और उसकी व्याख्या करना और दैनिक जीवन में उसके व्यवहार का विवेचन करना। महान शास्त्रियों के निर्णय यहूदियों के लिये मौखिक व्यवस्था

या परंपरा बन गए। (ख) ऐतिहासिक तथा सैद्धांतिक दृष्टि से धर्मशास्त्र का अध्ययन करना। (ग) धर्मशास्त्र की शिक्षा देना। सुप्रसिद्ध शास्त्रियों का शिष्य दल भी होता था। ४ : ६ "हन्ना"—यह ई. स. ६–१५ तक महायाजक के पद पर था। इसके पांच पुत्र विभिन्न समय पर महापुरोहित के पद पर रहे। "कैफा"—हन्ना महायाजक का दामाद था (यू. ८ : ३१)। यह ईस्वी सन् १८-३६ तक महापुरोहित के पद पर रहा। "यूहन्ना"—इस महायाजक का उल्लेख अन्यत्र नहीं मिलता। परंतु एक मूलप्रति में "योनातान" नाम मिलता है। यह हन्ना का एक पुत्र था और ई. स. ३६-३७ में महायाजक था। "सिकंदर"—इस महायाजक के संबंध में कोई जानकारी नहीं है। ४ : १० "भला चंगा"—मूल यूनानी में जो शब्द है उसका अर्थ 'उद्धार' भी है। ४ : ११ "वही पत्थर है"—उद्धरण भजन ११८ : २२ से है। तुलना कीजिए मर. १२ : १०। पुराना नियम के संदर्भ में 'पत्थर' इस्राएल जाति का प्रतीक है। यह एक छोटी जाति थी और अन्य जातियां इसे तुच्छ समझती थीं। परमेश्वर ने इस जाति को अपने अभिप्राय के लिये चुना और महान बनाया। नया नियम में यीशु अपने लिये इस शब्द का प्रयोग करता है (मर. १२ : १०)। इस पद में यीशु की ओर संकेत है। प्रारंभिक कलीसिया ने क्रूसित एवं पुनरुत्थित ख्रिस्त के महात्म्य को प्रकट करने के लिये भजन ११८ : २२ के शब्दों का बहुधा प्रयोग किया। "कोने के सिरे का पत्थर"—यह या तो नींव का पत्थर हो सकता है (दे. यश. २८ : १६; रो. ९ : ३३; इफ. २ : २०), अथवा छत पर कोने का पत्थर हो सकता है जो दोनों ओर की दीवारों के कोनों पर चुन दिया जाता है (हिं. सं., मेहराब की केन्द्रशिला) (दे. १ पत. २ : ३)। ४ : १२ इस पद में ख्रिस्तीय विश्वास और ख्रिस्त की अद्वितीयता का कथन है। भारतवर्ष में तथा अन्य धर्म जहां प्रचलित हैं उन देशों में इस अद्वितीयता की समस्या क्या है और उसे कैसे हाथ में लेना चाहिये—इस विषय के लिये देखिए एच. के. मोल्टन, दी एक्ट्स ऑफ दी अपोस्ल्स, पृष्ठ १०९-११०। **उद्धार** शब्द के लिये मूल यूनानी शब्द में शारीरिक स्वास्थ्य और आत्मिक उद्धार दोनों सम्मिलित हैं। ४ : १३ "हियाव"—मूल यूनानी शब्द में भाव है 'बोलने की स्वतंत्रता' (दे. ४ : २९, ३१)। "अनपढ़"—यहां इस शब्द का अर्थ है 'वह व्यक्ति जो धर्मशास्त्र के अध्ययन में प्रशिक्षित नहीं है' (दे. यू. ७ : १५, ४९)। "साधारण मनुष्य"—अर्थात् धर्म अध्ययन की दृष्टि से 'लेमेन'। ४ : १४ "सभा"—सनहेन्द्रिन महासभा।

४ : २३-३१ आश्चर्यकर्म का कलीसिया के भीतर प्रभाव। मसीही प्रतिक्रिया दो रूपों में होती है : संगति में आना और परमेश्वर की स्तुति तथा उससे प्रार्थना। ४ : २४ में भजन १ : १-२ से उद्धरण है। भजन २ को मसीह विषयक भजन कहा जाता है। ४ : २६ "उसके मसीह"—दे. ३ : १८ और उसकी टीका। ४ : २७ "सेवक"—दे. ३ : १३ और उसकी टीका। "हेरोदेस"—यह हेरोदेस अंतिपास था जो पू. ४ से ई. स. ३९ तक यहूदिया का शासक रहा। देखिए बाइबल ज्ञानकोश, पृष्ठ ५७४। यह हेरोदेस पद २६ में उल्लिखित राजा का प्रतिनिधि है। "पीलातुस"—पद २६ में

उल्लिखित 'हाकिम' (हिं. सं. शासकगण) का प्रतिनिधि है। ४ : २८ के लिये देखिए २ : २३ और उसकी टीका। "चिन्ह और अदभुत काम" के लिये देखिए २ : २२ और उसकी टीका। ४ : ३१ में २ : १-४ से समानता है। "स्थान हिल गया"—भुईंडोल ईश्वरीय क्रियाशीलता का बाह्य चिन्ह है (दे. १ रा. १९ : ११-१२)।

(४) एक भंडार और एक समाज ४ : ३२-५ : ११

४ : ३२-३७ निस्वार्थ संपत्ति-साझेदारी। ४ : ३२ इसके लिए पढ़िए २ : ४४ और उस की व्याख्या। "प्रेरितों के पांवों पर रखते थे"—कदाचित इसमें एक पुरानी कानूनी प्रथा की झलक है। उस प्रथा में जब किसी को संपत्ति अंतरित की जाती थी तो उसे पानेवाले के पांवों पर या नीचे रखा जाता था। **४ : ३६** "कुप्रुस"—यह भूमध्य सागर में एक टापू है। यह एशिया माइनर के दक्षिण में कोई ८० किलोमीटर पर है। "बरनबा"—इसका नाम अनेक बार प्रेरितों के काम में आया है। इसका अत्यंत उज्वल चरित्र है (दे. ९ : २७; ११ : २६, ३०; अध्याय १३, १४, १५)।

५ : १-११ "हनन्याह और सफीरा"— हनन्याह का अर्थ है 'याह अनुग्रहकारी है' और सफीरा का अर्थ है 'सुंदर'। नाम के अनुसार सब के काम नहीं होते। **५ : ३** "शैतान ने तेरे मन में यह बात क्यों डाली"—बुराई का उदगम कहां से है यह सरल समस्या नहीं है। इस के विवेचन के लिये पढ़िए एच. के. मोल्टन, दी एक्ट्स ऑफ दी अपोस्ल्स पृष्ठ ११७-११८, ५ : ३ की टीका। 'शैतान' के लिये देखिए बाइबल ज्ञान-कोश पृष्ठ ५१४। "पवित्र आत्मा से झूठ बोले"—पवित्र आत्मा ही मसीही संगति को, चाहे आर्थिक हो, सामाजिक अथवा आध्यात्मिक हो, बनाए रखता है। अतः हनन्याह का अपराध पवित्र आत्मा के विरुद्ध था। ५ : ४ में हनन्याह का अपराध परमेश्वर से झूठ बोलना है। **५ : ५** पतरस ने हनन्याह पर मृत्युदंड की घोषणा नहीं की। हनन्याह को अपने रंग हाथों पकड़े जाने का इतना भारी धक्का लगा कि वह मर गया। **५ : ९** "आत्मा की परीक्षा के लिये"—यह देखना कि बिना पकड़े गए और सजा पाए कितनी दूर तक हम पाप कर सकते हैं। "तुझे भी बाहर ले जाएंगे"—हनन्याह की मृत्यु में पतरस परमेभवर के न्यायदंड को देखता है। इसीलिये वह सफीरा पर मृत्यु दंड की घोषणा करता है। ५ : ११ "कलीसिया"—कलीसिया के लिये मूल यूनानी शब्द 'एक्लेसिया' है। इसका शाब्दिक अर्थ है उन नागरिकों की सभा जिनको अपने अपने घर से एक सार्वजनिक स्थान पर बुलाया गया है। प्रेरितों के काम में कलीसिया शब्द का यहां प्रथम प्रयोग है। सुसमाचारों में यह शब्द तीन बार (मत्ती.) में, प्रेरितों के काम में २३ बार, पत्रियों में, ६८ बार और प्रकाशित वाक्य में २० बार प्रयुक्त हुआ है। इस शब्द का चार अर्थों में प्रयोग हुआ है : (क) किसी नगर की राजनीतिक सभा (प्रे. १९ : ३९)। (ख) इस्राएली लोगों की सभा (प्रे. ७ : ३८)। (ग) स्थानीय मसीही मंडली (प्रे. ५ : ११ और संत पौलुस की पत्रियों में, प्रक. २ और ३ अध्याय)। (घ) सार्वलौकिक कलीसिया (इफिसियों की पत्री में) (कदाचित प्रे. २० : २८)।

(५) प्रेरितों का सनहेन्द्रिन से संघर्ष (५ : १२-४२)

५ : १२-१६ इन पदों में लूका की लेखनशैली की एक विशेषता दिखाई देती है। वह प्रत्येक चिन्ह और अदभुत काम (हिं. सं. चिन्ह और चमत्कार) का ब्यौरेवार वर्णन नहीं कर सकता इसलिये कहीं कहीं वह चित्रोपम सारांश दे देता है (दे. ५ : १२-१६; ८ : १-३; १५ : ३२-३५; १६ : ४-५; १९ : ८-१२; २० : १-२)। **५ : १२** "सुलैमान का ओसारा" (हिं. सं. 'मंडप')—देखिए ३ : ११ और उसकी टीका। पद १३-१४ में विरोध है जिसका कोई स्पष्टीकरण नहीं है। संभव है कि लूका अपनी स्रोत सामग्री को ठीक क्रम नहीं दे सका है। "प्रभु की कलीसिया"—मूल यूनानी में केवल 'प्रभु' है। परंतु 'प्रभु में मिलते रहे' का अनुवाद 'प्रभु की कलीसिया में मिलते रहे' बहुत उचित है। हिं. सं. में अनुवाद इस प्रकार है : 'अस्तु, प्रभु पर विश्वास करनेवालों की संख्या बढ़ती गई'। **५ : १५** "छाया ही पड़ जाए"—तुलना कीजिए मर ६ : ५६ जहां यीशु के वस्त्र की कोरों को छूने से लोग चंगे होते हैं, और प्रे. १९ : १२ जहां पौलुस की देह से रूमाल और अंगोछे छुआकर उनसे लोग अच्छे होते थे। बहुतों के लिये इस प्रकार का विश्वास प्रभावकारी होता है। **५ : १६** अशुद्ध आत्माओं"—ये शब्द प्रे. के काम में केवल यहां और ८ : ७ में ही पाए जाते हैं। अशुद्ध आत्माओं को निकालने के प्रसंग प्रे. के काम में कम हैं। सुसमाचारों में १८ प्रसंग हैं। अशुद्ध आत्माओं और दुष्ट आत्माओं में कोई विशेष अंतर नहीं किया गया है।

५ : १७-४२। ५ : १७ "सदूकी पंथ"—सब महायाजक सदूकियों में से होते थे। देखिए ४ : १ और उसकी टीका। "डाह"—कदाचित् प्रेरितों की लोकप्रियता के कारण। **५ : १९** "स्वर्गदूत"—मूल यूनानी शब्द का अर्थ 'संदेश वाहक' है। यह मानवीय व्यक्ति भी हो सकता है। **५ : २०** "जीवन"—मूल शब्द यदि अरामी भाषा का होगा तो उसके दोनों अर्थ होते हैं 'जीवन' और 'उद्धार'। **५ : २१** "महासभा" (हिं. सं. परिषद)—यह सनहेन्द्रिन सभा थी। "पुरनिये" (हिं. सं. धर्मवृद्ध)—देखिए ४ : ५ और उसकी टीका। **५ : २२** "प्यादे" (हिं. सं. सेवक)—मंदिर के नायक के सिपाही। **५ : २४** "सरदार"—देखिए ४ : १ और उसकी टीका। **५ : २८** "उस व्यक्ति का लोहू" (हिं. सं. इस व्यक्ति की हत्या) अर्थात यीशु की हत्या का दोष। **५ : २९** "मनुष्यों की. . .कर्तव्य कर्म है"—इस पद में लूका यहूदी समाज के समक्ष अपने विश्वास तथा धर्ममंडन के मूल तत्व को बड़े सबल रूप में प्रस्तुत किया है। लूका के काल में मसीही मंडली को दो शक्तियों के वातावरण में जीना था : एक, धर्मप्रधान यहूदी समाज; दूसरा, राजनीतिक सत्ता प्रधान रोमी साम्राज्य। धर्मप्रधान समाज के प्रति मसीही का कर्तव्य इस पद में व्यक्त है। रोमी साम्राज्य के प्रति कर्तव्य का सिद्धांत लूका २० : २५ में व्यक्त है : 'जो कैसर का है वह कैसर को दो और जो परमेश्वर का है वह परमेश्वर को दो'। **५ : ३१** "प्रभु"—इसके लिये मूल यूनानी में वही शब्द है, जिसका प्रेरितों के काम ३ : १५ में 'कर्ता' अनुवाद किया गया है। हिंदी संशोधित अनुवाद में दोनों स्थलों पर 'अधिनायक' अनुवाद किया गया है।

५ : ३४ "गमलीएल"—यह सुविख्यात रब्बी हिल्लेल का पोता था और स्वयं सुप्रसिद्ध रब्बी था। पौलुस ने इसके चरणों में शिक्षा पाई थी (प्रे. २२ : ३)। "फरीसी" —प्रेरितों के काम में फरीसी लोग विरोधी नहीं हैं जैसे सुसमाचार में वे मसीह के विरोधी हैं। फरीसियों का उल्लेख प्रे. के काम में ८ बार हुआ है जिसमें पांच बार २३ : ६-९ में है। फरीसी के लिये देखिए, बाइबल ज्ञानकोश, पृष्ठ ३०४। ५ : ३६ "थियूदास" —यहूदी इतिहासकार योसेपस एक थियूदास का उल्लेख करता है जो ई. स. ४५ में हुआ। वह बड़ी भीड़ को यरदन नदी पर ले गया। वह कहता था कि अपने आदेश से वह यरदन के जल को दो भागों में विभाजित करेगा। रोमी लोगों ने उसे पकड़कर मार डाला। पर यह थियूदास गमलीएल के कथन के बाद हुआ है। अतः कुछ विद्वानों का विचार है कि गमलीएल के कथन के पूर्व एक थियूदास हुआ होगा जिसका वर्णन इतिहास में नहीं है। ५ : ३७ "नामलिखाई के दिनों"—यह कदाचित वही नामलिखाई थी जो यीशु के जन्म के समय हुई (लूका २ : १)। "यहूदा गलीली"—योसेपस के अनुसार यहूदा गलीली का विद्रोह (जूइश वार्स, २ : ८-१) अधिक भयंकर था। यह विद्रोह पूरी तरह नहीं नष्ट किया गया। इस विद्रोह से ही 'जेलोती' संप्रदाय का जन्म हुआ जिनके विप्लव के कारण ई. स. ७० में यरूशलेम का विनाश हुआ। ५ : ४१ "आनंदित हुए"—प्रेरित सताव को डर का कारण नहीं आनंद का कारण मानते हैं। तुलना कीजिए १ पत. ४ : १३ क्र.; मत्त. ५ : ११-१२।

२. कलीसिया का प्रसार—सताव के परिणामस्वरूप (६ : १—९ : ३१)

(१) स्तिफनुस (६ : १-७ : ६०)। (२) फिलिप्पुस (८ : १-४०)। शाऊल का धर्मपरिवर्तन (९ : १-३१)।

(१) स्तिफनुस ६ : १—७ : ६०

६ : १-७ में सात पुरुषों की नियुक्ति का वर्णन है जिनमें स्तिफनुस एक है। ६ : १ "चेले"—यह शब्द प्रथम बार यहां आया है। इस पुस्तक में इसका २८ बार प्रयोग हुआ है। यह मसीहियों का एक नाम है, जैसे अन्य नाम हैं : विश्वासी जन, भाई और ख्रिस्ती। "यूनानी भाषा बोलनेवाले"—मूल यूनानी में इसके लिये 'हेलेनिस्तीस' (Hellenistes) शब्द है। यह ९ : २९; ११ : २० में भी आया है। इसके दो अर्थ हो सकते हैं : एक यूनानी भाषा बोलने वाले यहूदी; दूसरा यूनानी (अर्थात् अन्यजातीय)। "प्रतिदिन की सेवकाई में"—(हिं. सं. में अधिक स्पष्ट है : 'दैनिक दान-वितरण के समय')। २ : ४५; ४ : ३५ को देखिए जहां लिखा है कि आवश्यकतानुसार वस्तुएं या पैसे वितरित किए जाते थे। वितरण में विधवाओं का विशेष ध्यान रखा जाता होगा। ६ : २ "खिलाने पिलाने की सेवा"—मूल यूनानी में 'मेज़ की सेवा' है जिससे 'खजाने की मेज' और 'खाने की मेज' दोनों का बोध होता है। अतः भोजन की व्यवस्था अथवा वित्तीय व्यवस्था दोनों अर्थ हो सकते हैं।

६ : ३-७ "सात सुनाम पुरुष"—यह कलीसिया में लेमेनों से सेवा लेने का

प्रथम प्रसंग है। इनको बहुधा डीकन कहा गया है। लूका इनको डीकन नहीं कहता। इन सातों के नाम यूनानी हैं। जो यहूदी तितर बितर हो गए थे उनमें से कई व्यक्तियों के यूनानी नाम थे। सातों में से केवल **स्तिफनुस** और **फिलिप्पुस** का उल्लेख अगले अध्यायों में है। फिलिप्पुस के लिये देखिए ८ : ५-४०; २१ : ८ क्र.। अन्य पांच के **संबंध** में जानकारी नहीं है। नीकुलाउस के लिये कहा गया है कि वह अंताकिया निवासी था। **अंताकिया** का यहां प्रथम उल्लेख है। प्रे. के काम में अंताकिया का १४ बार उल्लेख है। **नीकुलाउस यहूदी मत में आ गया है** (हिं. सं. नव यहूदी था)। इसके लिये मूल यूनानी शब्द प्रोसेलित' (proselyte) है। देखिए २ : १० और उसकी टीका।

इन सात पुरुषों के गुण (पद ३) और नियुक्ति की पद्धति का अध्ययन बड़ा रोचक और लाभप्रद है। सारी कलीसिया उनको चुनती है, प्रेरित उनको स्वीकार करते हैं और वे प्रार्थना करके तथा उन पर हाथ रखके उनको अधिकार देते हैं। "हाथ रखना"—इसके लिये देखिए बाइबल ज्ञानकोश पृष्ठ ५६६।

६ : ७ "याजकों का एक बड़ा समाज"—याजकों के समाज का मसीह को स्वीकार करना नया नियम में एक अद्वितीय घटना है। एक विद्वान का कथन है कि ये याजक कदाचित् महायाजक के परिवार के नहीं थे, वरन साधारण परिवारों के होंगे।

६ : ८-१५ स्तिफनुस का प्रचारकार्य और पकड़ा जाना। **६ : ८** "स्तिफनुस" शब्द का अर्थ मुकुट है और स्तिफनुस का कार्य और शहीदी मौत मुकुट जैसी दीप्तिमान है। ६ : ९ "आराधनालय"—यह शब्द प्रे. के काम में १९ बार प्रयुक्त है। आराधनालय यहूदियों के सभागृह थे। यरूशलेम के मंदिर में बलिदान चढ़ाने की आराधना होती थी। ये सभाघर सब स्थानों में थे जहां जहां यहूदी रहते थे। इन सभाघरों में वचन की सेवा (शिक्षा, उपदेश आदि) होती थी। ये घर यहूदी समाज के पंचायत घर होते थे। सप्ताह के अन्य दिनों में यहां पाठशाला लगती थी। अन्य स्थानों से यरूशलेम में आए हुए यहूदियों का अपने लिये आराधनालय बना लेना स्वाभाविक बात थी। यरूशलेम के सभाघर भिन्न देशों से आनेवाले यहूदी यात्रियों के लिये विश्रामालय भी थे। इस पद की मूल शब्दावली कुछ जटिल है। संभव है कि लूका का भाव यह है कि इस पद में जितने प्रकार के लोग उल्लिखित हैं उन सब का एक ही आराधनालय था। इसके विपरीत कुछ विद्वान मानते हैं कि इस पद में पांच सभागृहों का उल्लेख है। एक विद्वान की मान्यता है कि इस पद में यह विचार है कि 'कुरेन और सिकंद्रिया के लिबरतीनों का एक आराधनालय था, और साथ ही किलिकिया और एशिया के कुछ लोगों का एक समूह था'। "लिबरतीनों"—वे लोग थे जो पहले गुलाम थे और अब मुक्त कर दिए गए थे। **कुरैनी**—दे. २ : १० और उसकी टीका। "सिकन्द्रिया"—नील नदी के मुहाने के पश्चिम में एक नगर। इसे ई. स. ३३२ में सिकंदर महान ने बसाया था। उस काल में व्यापार और विद्या के लिये विख्यात था। आज भी यह नगर मिस्र देश का सब से बड़ा बंदरगाह है। "किलिकिया"—एशिया माइनर के दक्षिणी किनारे

पर कुप्रुस द्वीप के उत्तर में एक प्रांत। यह पौलुस का प्रांत था (२२ : ३)। संभव है पौलुस इस समूह में रहा हो। "एशीया"—यह एशिया महाद्वीप नहीं है और न एशिया माइनर है। यह रोमी प्रांत था जिसमें एशिया माइनर का पश्चिमी भाग था। इफिसुस इसकी राजधानी थी।

६ : ११-१४ स्तिफनुस पर वैसे ही दोष लगाए गए जैसे यीशु पर (तु. मर. १४ : ५७; १४ : ६४; १४ : ५८)। **६ : १५** "मुखड़ा स्वर्गदूत का सा देखा"—परमेश्वर से संदेश प्राप्ति का प्रभाव है, जैसे मूसा का चिहरा भी था (दे. नि. ३४ : २९ क्र.) और यीशु का मुख था (मत्ती १७ : २)।

७ : २-५३ स्तिफनुस का भाषण। एक विद्वान की यह टिप्पणी है कि 'स्तिफनुस का भाषण युगांतकारी भाषण है। इससे स्पष्ट होता है कि ख्रिस्तीय धर्म यहूदी धर्म में सुधार मात्र नहीं है, वरन उससे भिन्न है, यद्यपि उससे घनिष्ट रूप से संबद्ध है। अब ख्रिस्तीय धर्म विश्वधर्म बन जाता है और उसका मिशन विश्वीय है। स्तिफनुस ने उस दिन जो अभियान आरंभ किया उसकी गति आज तक बनी हुई है'।

स्तिफनुस यहूदी इतिहास का सिंहावलोकन करके यह बताता है कि यहूदी जाति ने परमेश्वर की व्यवस्था का पालन नहीं किया। वे बाहरी बातों पर निर्भर रहे: पवित्र देश, व्यवस्था और मंदिर। यहूदियों ने मनुष्यों के साथ परमेश्वर की क्रियाशीलता को नहीं समझा। उन्हों ने परमेश्वर के संदेश वाहकों को मार डाला और अब उसके मसीह को मार डाला। स्तिफनुस अपना भाषण समाप्त नहीं कर सका परंतु वह चरमोत्कर्ष की घोषणा कर सका, 'देखो, मैं स्वर्ग को खुला हुआ, और मनुष्य के पुत्र को परमेश्वर की दाहिनी ओर खड़ा हुआ देखता हूँ'—ख्रिस्त सर्वोपरि है।

भाषण में पुराना नियम के संकेत सरलता से देखे जा सकते हैं **७ : २**, ३—दे. उत. ११ : ३१, १२ : १। **७ : ४**—दे. उत: ११ : ३२; ४८ : ४। **७ : ५**—दे. उत. १२ : ७; १३ : १५। **७ : ६**—दे. उत. १५ : १३-१४। **७ : ७**—दे. नि. ३ : १२। **७ : ८**—दे. उत. १७ : १०। **७ : ९-१६**—दे. उत. अध्याय ३९-४६। **७ : १७-३५**-दे. नि. १-३ अध्याय। ७ : ३० **सीना**—निर्गमन ३ : १ में 'होरेब' है। पंचग्रंथ में सीना और होरेब दोनों पर्वतों के नाम मूल पाठों में मिलते हैं। **एक स्वर्गदूत**—निर्गमन और प्रेरितों के काम की पुस्तकों में 'स्वर्गदूत', 'प्रभु की वाणी' और 'प्रभु' पर्याय शब्दों के समान प्रयुक्त हुए हैं। **७ : ३६**—दे. नि. ७ : ३, १०; १४ : २१। **७ : ३७**—दे. व्य. १८ : १५; प्रे. ३ : २२ और उसकी टीका। **७ : ३८** "निर्जन प्रदेश की कलीसिया"—जिस यूनानी शब्द का अनुवाद 'कलीसिया' किया गया है उसका अर्थ 'नागरिकों की महासभा' भी है। व्य. १८ : १६ में यह शब्द इस्राएलियों की उस सभा के लिये किया गया है जिसमें वे व्यवस्था सुनने के लिये एकत्र हुए थे। स्तिफनुस का विचार है कि परमेश्वर ने ख्रिस्त में जिस कलीसिया का निर्माण किया है वह उन प्रतिज्ञाओं की वारिस है जिनकी यहूदियों ने उपेक्षा की है। "उस स्वर्गदूत. . .किया था"—पंचग्रंथ में कोई ऐसा उल्लेख नहीं है कि परमेश्वर की ओर से सीनै पर्वत पर किसी स्वर्गदूत ने बातें की।

परंतु परवर्ती काल में यहूदी लोग परमेश्वर को इतना लोकातीत मानने लगे थे कि स्वर्गदूतों के माध्यम से ही परमेश्वर से संपर्क साधा जा सकता था। स्तिफनुस के युग में यह माना जाता था कि व्यवस्था सीधी परमेश्वर द्वारा नहीं, वरन स्वर्गदूतों के माध्यम से दी गई (तु. ७ : ५३; गल. ३ : १९; इब्र. २ : २)। ७ : ३९—दे. गि. १४ : ३। ७ : ४०-४१—दे. नि. ३२ : २-६। ७ : ४२-४३ "नबियों की पुस्तक"—ये बारह 'छोटे नबियों' की रचनाएं हैं (होशे से मलाकी)। इब्रानी बाइबल में ये एक पुस्तक हैं। पद ४२-४३ में यि. १९ : १३ और आमोस ५ : २५-२७ के उद्धरण हैं। आमोस ५ : २५-२७ पदों और प्रे. ७ : ४२-४३ हिं. प्रचलित और हिंदी संशोधित संस्करणों से नीचे प्रस्तुत किए जाते हैं। इनमें अंतर देखिए। ये अंतर आलोचकों और अनुवादकों के लिये बड़ी उलझी हुई समस्याएं हैं। परंतु इन अंतरों से स्तिफनुस के मूल विचार में कोई अंतर नहीं आता :

आमोस ५ : २५-२७	**प्रे. ७ : ४२-४३ हिं.प्र.**	**प्रे. ७ : ४२-४३ हिं. सं.**
हे इस्राएल के घराने, तुम जंगल में चालीस वर्ष तक पशुबलि और अन्नबलि क्या मुझी को चढ़ाते रहे ? नहीं, तुम तो अपने राजा का तम्बू, और अपनी मूरतों की चरणपीठ, और अपने देवता का तारा लिए फिरते रहे। इस कारण मैं तुमको दमिश्क के उस पार बंधुआई में कर दूंगा।	हे इस्राएल के घराने, क्या तुम जंगल में चालीस वर्ष तक पशुबलि और, अन्नबलि मुझी को चढ़ाते रहे ? और तुम मोलेक के तंबू और रिफान देवता के तारे को लिए फिरते थे; अर्थात उन आकारों को जिन्हें तुमने दंडवत करते के लिये बनाया था सो मैं तुम्हें बाबुल के परे ले जाकर बसाऊंगा।	हे इस्राएल वंश, क्या तूने चालीस वर्ष तक मुझे पशुबलि और उपहार अर्पित किए ! नहीं, तुम लोग तो मोलक के शिविर को, और रिफान देवता के तारे को अर्थात प्रतिमाओं को जो तुमने पूजने के लिये बनाई थीं, अपने साथ लिये फिरे। तुमको मैं बाबुल पार निर्वासित करूंगा।

७ : ४४—देखिए नि. २५ : ४०। ७ : ४५ दे. व्य. ३२ : ४९; यहो. ३ : १४; १८ : १। ७ : ४६—दे. २ श. ७ : २; १ रा. ५-६ अध्याय। ७ : ४८-५०—दे. यश. ६६ : १-२। डा. मोल्टन का कथन है कि 'इन पदों में मंदिर संबंधी विचारधारा का चरमोत्कर्ष है। सर्वोच्च परमेश्वर मानव निर्मित भवनों में नहीं रहता। दे. ७ : ४१ और तु. मर. १४ : ५८। (निर्जन प्रदेश के) निवासस्थान का उत्तराधिकारी मंदिर नहीं है, परंतु ख्रिस्त की पुनरुत्थित देह, उसकी कलीसिया है,—"जिसमें सारी रचना एक साथ मिलकर प्रभु में एक पवित्र मंदिर बनती जाती है, जिसमें तुम भी आत्मा के द्वारा परमेश्वर का निवासस्थान होने के लिये एक साथ बनाए जाते हो" (इफि. २ : २१-२२)'। **नबी**—*यशायाह* नबी, दे. ६६ : १-२।

७ : ५१-५३ में स्तिफनुस अपने भाषण को सुननेवालों पर लागू करता है। "हठीले. . .खतना रहित"—हठीले के लिये देखिए नि. ३३:५। "मन के खतना रहित के लिये दे. व्य. १०:१६। "कान के खतना रहित" के लिये दे. यि. ६:१०। ७:५२ "भविष्य

वक्ताओं को...मार डाला"—यही दोष यीशु ने यहूदियों पर लगाया था (दे. मत्ती २३ : २६-३७)। प्रामाणिक यहूदी धर्मशास्त्र में ऐसे उल्लेख नहीं मिलते जिनमें भविष्य-वक्ताओं को मारा गया है। परंतु यहूदियों के ऐसे कुछ ग्रंथों में, जिनको प्रामाणिक धर्मशास्त्र में स्थान नहीं दिया गया (उदाहरणार्थ 'यशायाह का उदग्रहण' ग्रंथ), यह उल्लेख मिलता है कि नबियों को मारा गया। एलिय्याह और यिर्मयाह जैसे नबियों के सताए जाने के वर्णन पुराना नियम (प्रामाणिक धर्मशास्त्र) में मिलते हैं। **७:५३** के लिये देखिए ७ : ३८ की टीका (तु. गल. ३ : १६; इब्र. २ : २)।

७:५४-६० स्तिफनुस की शहीदी मौत। शाऊल का प्रथम उल्लेख। **७: ५५** "खड़ा देखा"—साधारणतः यह वर्णन मिलता है कि यीशु परमेश्वर के दाहिने हाथ बैठा है। केवल इसी पद में 'खड़ा' शब्द है। इसमें संकेत है कि यीशु मानो स्तिफनुस का स्वागत करने खड़ा है। "स्वर्ग को खुला"—ये शब्द परमेश्वर से सीधे संबंध के सूचक हैं (दे. मत्ती ३ : १६; यू. १ : ५१; प्रक. ४ : १)। "मनुष्य का पुत्र"—सुसमाचारों को छोड़कर नया नियम में केवल यहीं यह शब्द प्रयुक्त है। इस पदवी की विस्तृत टीका के लिये पढ़िए बाइबल ज्ञानकोश, पृष्ठ ३७२-३७३। यहां केवल इतना कहना पर्याप्त होगा कि यहां 'मनुष्य का पुत्र' का अर्थ 'मानव यीशु' नहीं है। स्तिफनुस अंतिम आशा संबंधी, अंतिम समय के महिमामय यीशु का विचार कर रहा है जैसा यीशु ने अपने विषय मर. १४ : ६२ में कहा है। ७ : ५८ "नगर के बाहर"—यहूदी नियमों के अनुसार अपराधी को नगर के बाहर ले जाकर पत्थरवाह किया जाता था (व्य. १७ : ५-७)। तुलना कीजिए मत्ती २१ : ३६; यू. १६ : १७, २०; इब्र. १३ : १२। "पत्थरवाह करने लगे"—नियमित रूप से पत्थरवाह करने की एक विशेष पद्धति थी। रोमी हाकिम की आज्ञा लेना आवश्यक था। तब पहला गवाह दंडित व्यक्ति को एक ऊंची चट्टान से नीचे गिराता था और दूसरा गवाह उस पर एक भारी पत्थर पटकता था। यदि अपराधी न मरे तो सारी मंडली उसे पत्थरों से मार डालती थी। परंतु यह संभव है कि बिलकुल अनियमित तौर से स्तिफनुस को पत्थरवाह किया गया हो; क्योंकि रोमी हाकिम कैसरिया में था और उसकी अनुपस्थिति में अनियमित कार्य किए जाते होंगे। "शाऊल"—यह शाऊल (बाद में पौलुस) का प्रथम उल्लेख है। **७:५६** "मेरी...ग्रहण कर"—तु. लू. २३ : ४६। **७:६०** के लिये तु. कीजिए मत्त. ५ : ४४; लू. २३ : ३४। "सो गया" 'मरने' के लिये वह बड़ा सुंदर और सार्थक शब्द है (तु. १ थिस. ४ : १३ क्र.; १ कुर. १५ : १२ क्र.)।

(२) स्तिफनुस की शहीदी मौत के परिणाम स्वरूप कलीसिया का प्रचार। फिलिप्पुस का सामरिया में कार्य (८ : १-४०)।

८:१-३ "बड़ा उपद्रव"—इस सताव के ब्यौरों का वर्णन नहीं मिलता। "प्रेरितों को छोड़"—इन शब्दों से प्रतीत होता है कि सताव विशेषकर यूनानी ख्रिस्तियों का किया गया। "बड़ा विलाप"—यहूदी नियमों के अनुसार अपराधी के लिये विलाप करना वर्जित था। भक्तों के विलाप से उनका साहस प्रकट होता है। "भक्त" के लिये

देखिए २ : ५ की टीका। ८ : ३—ऐसा प्रतीत होता है कि शाऊल द्वारा सताव सामान्य सताव का ही एक अंग था।

८ : ४ "फिलिप्पुस"—यह सात सुनाम व्यक्तियों में से एक था (दे. प्रे. ६ : ५)। यह फिलिप्पुस प्रेरित नहीं था। **८ : ५** "मसीह"—'सामरी लोग भी एक 'मसीह' के आने पर विश्वास करते थे (तु. यू. ४ : २५, २९)। उसे वे "ताहेब' या सुधारक कहते थे और व्य. १८ : १५ में वर्णित नबी मानते थे'। "सामरिया" के लिये विस्तृत टिप्पणी देखिए एच. के. मोल्टन, एक्ट्स ऑफ दी एपोस्ल्स, पृष्ठ १४९-१५०। **८ : १०** "परमेश्वर की वह शक्ति है जो महान कहलाती है"—हिं. सं. अनुवाद अधिक स्पष्ट है : 'यह मनुष्य परमेश्वर की शक्ति है जो महाशक्ति कहलाती है'। 'सामर्थ' या 'शक्ति' यहूदियों में परमेश्वर का एक नाम था (दे. मर. १४ : ६२, सर्वशक्तिमान)। **८ : १२** "परमेश्वर के राज्य"—इन शब्दों में यह भाव निहित है कि परमेश्वर का राज्य शमौन टोन्हे के द्वारा नहीं, वरन केवल यीशु मसीह के द्वारा आएगा। "शमौन को भी विश्वास हुआ" (हिं. सं.)—यह विश्वास गहरा नहीं था जैसा कि ८ : १८-२४ से स्पष्ट होता है।

८ : १४-२५ पतरस और यूहन्ना प्रेरित सामरिया में आकर फिलिप्पुस के कार्य का समर्थन करते हैं। **पद १४** "यूहन्ना"—यह यूहन्ना प्रेरित माना जाता है, जिसने एक बार सामरी नगर पर अग्नि वर्षा की इच्छा प्रकट की थी (लूका ९ : ५४)। इस प्रसंग के बाद यूहन्ना प्रेरित इस पुस्तक में फिर दिखाई नहीं देता। संभव है कि यह यूहन्ना यूहन्ना मरकुस हो (दे. ३ : १ और उसकी टीका)। **८ : १५-१७** इन पदों से कई महत्वपूर्ण प्रश्न खड़े होते हैं। (क) बपतिस्मा और पवित्र आत्मा पाने के दान संबंध। इन पदों में बपतिस्मा के बाद पवित्र आत्मा मिलता है (१९ : १-७ में भी)। कुरनेलियस और उसके मित्रों को पवित्र आत्मा पहले मिलता है और बपतिस्मा बाद में होता है (१० : ४४-४८)। १ कुर. १२ : १२ में पौलुस बपतिस्मा और पवित्र आत्मा के दान को एक अनुभव कहता है। बाल-बपतिस्मा की प्रथा के कारण दृढ़ीकरण एक पृथक कार्य बन गया और दृढ़ीकरण के समय हाथ रखने के द्वारा बपतिस्मा का दान मिलता है। इस विषय के अनुशीलन से यह निश्चित रूप से विदित होता है कि आदर्श की दृष्टि से प्रौढ़ के लिये बपतिस्मा और दृढ़ीकरण एक ही कार्य होना चाहिये।

(ख) प्रेरितों के काम की पुस्तक में 'हाथ रखने' का उद्देश्य क्या है? क्या इससे बपतिस्मा के समय की कमी की पूर्ति होती है?

इस पुस्तक में 'हाथ रखने' से दृढ़ीकरण का नहीं वरन् अभिषेक का कार्य होता है (दे. ६ : ६; ९ : १२-१७; १३ : ३)। अतः ८ : १७ में 'हाथ रखने' का संबंध प्रचार कार्य से है; और १९ : ६ में भी यही दायित्व ख्रिस्तियों को दिया जाता है। जो लोग दृढ़ीकरण को 'लेमेन का अभिषेक' कहते हैं वे इस मान्यता के अधिक निकट हैं। इस अभिषेक से लेमेन अपने वचन और जीवन से ख्रिस्त की सामर्थ के गवाह होते हैं।

८ : २३ "पित्त की सी कड़वाहट"—पित्त और कड़वाहट का संबंध मूर्ति पूजा

से है (दे. व्य. २९ : १८) । "अधर्म का बंधन"—यशायाह ५९ : ६ से उद्धृत है। एक अनुवाद है 'पाप का बंधन' ।

८ : २६-४० एक व्यक्ति का परिवर्तन । **८ : २६** "एक स्वर्गदूत"—तुलना कीजिए ८ : २९, ३९ । लूका आत्मा और स्वर्गदूत को एक ही मानता है । और भी देखिए १० : ३; १० : १९; २३ : ८ । "दक्खिन"—मूल यूनानी शब्द का अर्थ 'दो-पहर' भी होता है । "अज्जाह" (गाजा)—यह भूमध्यसागर के पूर्वी किनारे पर एक नगर था । पुराना नगर सिकंदर महान ने उजाड़ा और नया नगर ई. स. ६६ में नष्ट किया गया । **८ : २७** "कूश देश. . .कूशियों"—कूशी लोग वास्तव में नूबी जाति के थे जो मिस्र देश के दक्षिण में नील नदी के क्षेत्र में रहते थे । अबीसीनिया शब्द इस देश के लिये बहुत बाद में प्रयुक्त हुआ । वर्तमान इथियोपिया देश है । "खोजा"—प्राचीन राजाओं के अंगरक्षक । राजाओं के रनिवास के लिये ऐसे पुरुषों को रखा जाता था । व्यवस्था विवरण २३ : १ के अनुसार कोई खोजा इस्राएलियों की सभा में भाग नहीं ले सकता था । कन्दा के—यह नाम नहीं, उपाधि है, जैसे मिस्र के राजा की उपाधि फिरौन थी । "भजन करने"—अर्थात तीर्थ यात्रा करने । इन शब्दों से यह संकेत होता है कि यह व्यक्ति नवयहूदी नहीं था । संभव है यह 'भक्त' हो । **८ : ३२-३३** ये पद सेपत्वा-गिंता (यूनानी पुराना नियम) अनुवाद के यश. ५३ : ७-८ से उद्धृत हैं । **८ : ३५** में 'दुःखी दास' को स्पष्ट यीशु ख्रिस्त के साथ एक किया गया है (देखिए ३ : १३ और उसकी टीका) । **८ : ३७** कुछ प्राचीन प्रतियों में यह पद नहीं मिलता । इस पद में मसीही विश्वासवचन का सब से छोटा रूप है । **८ : ३९** "प्रभु का आत्मा" तुलना कीजिए २ रा. २ : १६ । 'प्रेरितों के काम' पुस्तक में केवल यहीं यह पद आया है । इसका अर्थ कदाचित 'यीशु का आत्मा' है (दे. प्रे. १६: ७) । एक प्राचीन हस्तलिपि में यह पद इस रूप में पाया जाता है : 'पवित्र आत्मा खोजे पर उतरा और प्रभु का एक स्वर्गदूत फिलिप्पुस को उठा ले गया' । इस रूप में बपतिस्मा के साथ पवित्र आत्मा के दान की भी पूर्ति होती है । "वह आनंद करता हुआ चला गया"—परंपरा यह कहती है कि यह खोजा अपने देश के लोगों के लिये सुसमाचार प्रचारक बन गया । परंतु इतिहास में कूश देश में ई. स. ४ थी शताब्दी के पूर्व कलीसिया के अस्तित्व का उल्लेख नहीं है । **८ : ४०** "अशदोद"—अज्जाह के समान यह भी फिलिश्ती लोगों का एक नगर था । यह उज्जाह से ३२ किलोमीटर उत्तर में था । "कैसरिया"—यह नगर अशदोद के उत्तर में लगभग १०० किलोमीटर दूर था । अशदोद और कैसरिया के बीच याफा और लुद्दा नगर थे (दे. ९ : ३२ क्र.) । प्रे. २१ : ८ में फिलिप्पुस का उल्लेख है । वह अपनी चार पुत्रियों समेत कैसरिया में रहता था । मसीही इतिहास में यह बहुत महत्वपूर्ण नगर है । प्रेरितों के काम में इस नगर का उल्लेख अध्याय १० और ११ और २३ : २३-२७ : १ में हुआ है ।

(३) शाऊल का हृदय-परिवर्तन (९ : १-३१) ।

९ : १-९ दमिश्क के मार्ग पर शाऊल को यीशु का दर्शन । इस घटना के तीन

वर्णन हैं : ९ : १-९; २२ : ४-११; २६ : १२-१८। तीनों वर्णनों में मूल घटना में कोई अंतर नहीं है परंतु ब्यौरों में कुछ भिन्नताएं हैं। तीनों की तुलना किसी भी अध्येता के लिये बड़ी रोचक है। भिन्नताएं घटना की पूरक हैं। जब घटना का बार बार वर्णन किया जाता है तो इस प्रकार की भिन्नताएं स्वाभाविक हैं। शाऊल पर टिप्पणी और घटना के तीनों वर्णनों में भिन्नताओं के लिये पढ़िए इंटरप्रीटर बाइबल ग्रंथ ९ पृष्ठ ११७-१२३; एच. के. मोल्टन, दी एक्ट्स ऑफ दी अपोस्ल्स पृष्ठ १६०-१६१।

९ : १—प्रेरितों ८ : ३ से कथा का संबंधसूत्र है। "महायाजक"—कैफा (देखिए ४ : ६ और उसकी टीका)। १ मकाबी १५ : २१ से पता चलता है कि रोमी शासन की ओर से महायाजक को शिमौन महायाजक के काल (ई. पू. १४३-१३५) से अनुमति थी कि अपराधियों को दूसरे देशों और नगरों से निकाल कर ला सकें। ९ : २ "दमिश्क" संभव है यहां वे मसीही थे जिन्होंने स्तिफनुस की मृत्यु के बाद सताव के समय यहां शरण ली थी। दमिश्क गलील सागर के उत्तर में लगभग १०० किलोमीटर की दूरी पर था। यह नगर इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण नगर रहा है। आज सीरिया देश की राजधानी है। "इस पंथ"—मसीही धर्म के लिये एक प्रारंभिक नाम था 'वह पंथ'। प्रे. के काम में इसका छः बार प्रयोग है (९ : २; १९ : ९, २३; २२ : ४; २४ : १४, २२)। और देखिए १६ : १७; १८ : २५, २६। 'यह ध्यान देने योग्य बात है कि प्रेरितों और बैरियों ने भी मसीह का विशेष दान जीवन के नये मार्ग के रूप में समझा। मसीह ने स्वयं को पिता के पास जाने का मार्ग कहा' (दे. यू. १४ : ६)। **९ : ४** "शब्द"—पुराना नियम में साधारणतः परमेश्वर या कोई स्वर्गदूत सीधे मनुष्यों से बोलता है। परवर्ती काल में रब्बी लोगों ने श्रद्धावश परमेश्वर या स्वर्गदूत के स्थान पर 'शब्द' या 'वाणी' का ही प्रयोग किया (दे. मर. १ : ११; ९ : ७)। "शाऊल"—यह सामी भाषा का रूप है। ७ : ५४, ६०, यहां, ९ : १७, २२ : ७ और २६ : १४ में इस रूप का प्रयोग हुआ है। **९ : ७** "शब्द"—संभव है कि इसका अर्थ यह है कि उन्होंने पद ४ के शब्द को और पौलुस के शब्दों को भी सुना। २२ : ९ के अनुसार उन्हों ने ज्योति देखी पर शब्द न सुना।

९ : १०-१९ पू हनन्याह का भेजा जाना। "हनन्याह"—नाम के अर्थ के लिये देखिए ५ : १ की टीका। **९ : ११** "यहूदा"—इसके संबंध में इस पद से अधिक जानकारी नहीं है। प्रेरितों के काम में लूका छः आतिथ्य सत्कार करने वालों का उल्लेख करता है (९ : ११; ९ : ४३; १६ : १५; १७ : ५; १८ : ७; २१ : १६)। **"तारसी"** (हिं. सं. तरसुस निवासी)—तरसुस के लिये दे. ९ : ३०; ११ : २५; २१ : ३९; २२ : ३। यह नगर रोमी प्रांत किलिकिया की राजधानी था। अथेने, सिकन्द्रिया और तरसुस सुप्रसिद्ध ज्ञान-पीठ थे। अथेने साहित्य और दर्शन, सिकंद्रिया गणितशास्त्र, और तरसुस चिकित्सा शास्त्र के लिये प्रसिद्ध थे। **९ : १३** "पवित्र लोगों"—पौलुस की पत्रियों में 'पवित्र लोग' शब्द मसीही लोगों के लिये काम में लिया गया है। 'पवित्र' का अर्थ है जो अलग किया गया है, जो भिन्न है। बाद में इसका अर्थ हो गया सच्चरित्र

या निर्दोष लोग। ९ : १५ "हाथ रखकर"—देखिए ८ : १५-१७ और उनकी टीका। ९ : १८ "बपतिस्मा और पवित्र आत्मा" के दान के विषय देखिए ८ : १५-१७ की टीका। यहां ऐसा निहित है कि हनन्याह ने ही बपतिस्मा दिया। १ कुर. १ : १३-१७ से इंगित होता है कि बपतिस्मा देने के लिये अभिषिक्त धर्मसेवक की आवश्यकता नहीं थी : धर्मसेवक द्वारा बपतिस्मा देने का नियम बाद में बनाया गया।

९ : १९उ-२२ इस वर्णन की तुलना गलतियों १ : १५-२४ से कीजिए। इन दोनों वर्णनों में कुछ उलझानेवाली विषमताएं हैं। (क) गलतियों १ : १७ में बताया गया कि अपने मत-परिवर्तन के बाद पौलुस अरब गया। प्रे. ९ : २० में वर्णन है कि वह तुरंत आराधनालयों में प्रचार करने लगा। लूका के वर्णन से पौलुस का वर्णन अधिक शुद्ध प्रतीत होता है। (ख) पौलुस के यरूशलेम जाने के संबंध में गलतियों १ : १८ में बयान है कि पौलुस तीन बरस बाद गया। प्रे. के काम में 'बहुत दिन बीतने' पर पौलुस यरूशलेम को गया। गलतियों २ : १ में वर्णन है कि १४ वर्ष बाद पौलुस बरनबास के साथ यरूशलेम को गया। प्रे. ९ : २७ में बरनबा पौलुस को अपने साथ 'बहुत दिन बीतने' पर ले जाता है। प्रे. ९ : २९ में पौलुस 'निधड़क' यरूशलेम में प्रचार करता है। गलतियों १ : १५-२४ के वर्णन में ऐसा भाव नहीं मिलता। (ग) प्रे. ९ : ३० में पौलुस कैसरिया में लाया जाता है और तरसुस को भेजा गया। गलतियों १ : २१ में पौलुस बताता है कि 'मैं सूरिया और किलिकिया के देशों में आया'। ब्यौरों में विषमताओं के संबंध में यह कहा जा सकता है कि दोनों वर्णन विशिष्ट उद्देश्यों को समक्ष रखकर लिखे गए हैं। उनमें महत्वपूर्ण विरोध नहीं हैं।

९ : २० परमेश्वर का पुत्र—प्रेरितों के काम में केवल इसी स्थल में इस उपाधि का प्रयोग है। पुराना नियम में इस पदवी का प्रयोग (क) इस्राएल जाति के लिये (उदा. नि. ४ : २२; हो. ११ : १), (ख) इस्राएल के अभिषिक्त राजा के लिये (उदा. २ श. ७ : १४; भ. ८९ : २६ क्र.), (ग) आनेवाले मसीह के लिये (उदा. भ. २ : ७) हुआ है। पुराना और नया नियम के मध्यंतर कालीन साहित्य में इस उपाधि का प्रयोग आनेवाले मसीह के लिये हुआ है (दे. १ हनोक १०५ : २; २ एज्रा ७ : २८ क्र.; इत्यादि)। नया नियम में प्रभु यीशु के लिये इस पदवी के प्रयोग में पुराना नियम के तीनों अर्थों का समन्वय है। परंतु यह पदवी मात्र नहीं है। यीशु परमेश्वर और स्वयं के मध्य एक अद्वितीय संबंध मानता है और यीशु का कार्य है परमेश्वर को प्रकाशित करना। पौलुस की पत्रियों में परमेश्वर के पुत्रत्व का गहन विवेचन है। यहां प्रे. ९ : २० में इस उपाधि से इस तथ्य पर विशेष बल दिया गया है कि यीशु परमेश्वर का मसीह है—एफ. एफ. ब्रूस। **९ : २२** "मसीह यही है"—प्रेरितों के कामों में प्रचार का प्रमुख विषय यही है (दे २ : ३६; १७ : ३; १८ : ५)। **९ : २३-२५** में पौलुस के विरुद्ध प्रथम षड़यंत्र का वर्णन है। **९ : २४** "फाटकों पर लगे रहे"—तुलना कीजिए २ कुर. ११ : ३२ क्र.।

९ : २६-३० यरूशलेम में पौलुस का प्रथम प्रवेश; दूसरा षड़यंत्र और तरसुस को जाना। **९ : २७** 'बरनबा'—दे. ४ : ३६ और उसकी टीका। **९ : २९** "यूनानी

भाषा बोलनेवाले यहूदी"––दे. प्रे. ६ : १ और उसकी टीका। ९ : ३० इस पद के बाद पौलुस का वर्णन ११ : २५ में आता है। "तरसुस" के लिये दे. ९ : ११ और उसकी टीका। ९ : ३१ में परिस्थिति का संक्षिप्त वर्णन है। "सो" शब्द के लिये देखिए १ : ६।

३. कलीसिया का विस्तार-विजातीय समाज में ख्रिस्तीय विश्वास का प्रवेश एवं प्रसार (९ : ३२-१२ : २५)

(१) पतरस, पच्चिमी पलिश्तीन में (९ : ३२-४३)। (ख) कुरनेलियुस का वृत्तांत (१० : १-११ : २८)। (३) अंताकिया में प्रसार (ख्रिस्ती कहलाए) (११ : १९-३०)। (४) हेरोदेस अग्रिप्पा प्रथम और कलीसिया (१२ : १-२५)।

(१) पतरस, पश्चिमी पलिश्तीन में (९ : ३२-४३)। "लुद्दा"––यरूशलेम और याफा नगरों के मध्य याफा से कोई १६ किलोमीटर की दूर पर एक नगर "पतरस"––८ : २५ के बाद यहां पतरस को देखते हैं। ९ : ३४ "बिछौना बिछा"––तु. लू. ५ : २१। इसका यह अर्थ भी हो सकता है कि 'भोजन के लिये अपना कौच बिछा", अर्थात उठकर भोजन प्राप्त कर। "शारोन"––इस इब्रानी शब्द का अर्थ है "मैदान'। यह उस उपजाऊ क्षेत्र का नाम है जो कोई १३५ किलोमीटर लम्बा है और याफा से कर्मेल पर्वत तक फैला है(दे. यश. ३५ : २)। ९ : ३५ में एक समूह आंदोलन निहित है।

९ : ३६-४३ में याफा में दोरकास के जिलाने का और बहुतेरों के विश्वास करने का वर्णन है। ९ : ३६ "तबीता"––हिरनी के लिये अरामी भाषा का शब्द है, और **दोरकास** यूनानी भाषा का शब्द है। ९ : ३९ "विधवाएं"––वे असहाय विधवाएं थीं जिनकी सहायता दोरकास किया करती थी। ९ : ४० तुलना कीजिए मर. ५ : ४०। "पवित्र लोगों और विधवाओं"––पवित्र लोगों का अर्थ 'मसीही लोग' है। विधवाओं के पृथक उल्लेख से यह नहीं मानना चाहिये कि वे मसीही नहीं थीं। "चमड़े का धंधा"––यह धंधा पलिश्तीन में अशुद्ध माना जाता था। लूका कदाचित इस बात की ओर संकेत कर रहा है कि पतरस अपने मसीही जीवन में प्रगति करता जा रहा है। देखिए ९ : ११ की टीका।

(२) कुरनेलियुस का हृदय-परिवर्तन १० : १-११ : २८

एक विद्वान का कथन है कि 'लूका इस घटना को मूलभूत (बुनियादी) घटना मानता है। इसमें यूनानी-रोमी संसार में सुसमाचार के प्रथम प्रवेश का वर्णन है, जिसका लूका स्वयं एक सदस्य था। लूका कुरनेलियस के हृदय-परिवर्तन को पौलुस के हृदय-परिवर्तन की घटना से दुगुना स्थान देता है, परंतु इस घटना के वर्णन की पुनरावृत्ति नहीं करता'।

१० : १ **कैसरिया**––दे. ८ : ४० की टीका। "इतालियानी नाम पलटन"––यह कदाचित इतालिया देश के (इटली) के मुक्त दासों की पलटन थी जो सूरिया में ई. स. ६९ में रखी गई थी। पलटन में ५००-१००० सिपाही होते थे। "सूबे-

दार" (हिं. सं. शतपति)—लूका सात सूबेदारों का उल्लेख बड़ी सहृदयता के साथ करता है। ये सब सच्चरित्र व्यक्ति थे और मसीही धर्म के प्रति मित्रभाव रखते थे (लू. ७ : २; प्रे. १० : १; २२ : २५; २३ : १७; २४ : ३३; २७ : १)। १० : २ "भक्त" के लिये देखिए २ : ५ की टीका। तु. १० : २२; १३ : १६, २६। "परमेश्वर से डरता था"—परमेश्वर से डरनेवाले वे लोग थे जो न तो पूर्ण भक्त थे (२ : ५) और न यहूदी मत धारण करनेवाले थे (दे. २ : १० की टीका)। परंतु ये ऐसे लोग थे जो यहूदी धर्म को स्वीकार करते थे और सभाघर जाते थे, जैसे मानो भारतवर्ष में कोई हिन्दु या मुस्लिम भाई मसीही मत को माने, गिरजा आए, परंतु बपतिस्मा न ले और अन्य सामाजिक कार्यों में भाग न ले। और देखिए १० : २२; १३ : १६, २६। १० : ४ "तेरी प्रार्थनाएं. . . .स्मरण के लिये परमेश्वर के सामने पहुँचे हैं"—'स्मरण के लिये पहुँचना' शब्द पुराना नियम के सेपत्वागिता अनुवाद लैव्य. अध्याय २ में प्रयुक्त हैं। इसका अर्थ यह है कि कुरनेलियुस के दान और प्रार्थनाएं परमेश्वर ने बलिदान स्वरूप ग्रहण की हैं, और कि परमेश्वर अन्यजातीय लोगों की भी प्रार्थनाएं सुनता और उनके दान ग्रहण करता है। १० : ७ "**भक्त सिपाही**"—कुरनेविलयुस के भक्त जीवन का प्रभाव उसके अधीनस्थ लोगों पर भी पड़ा। **भक्त** के लिये देखिए २ : ५ की टीका। १० : १४ "मैंने कभी. . .खाई है"—यहूदियों के भोजन संबंधी नियमों के लिये देखिए लैव्य. ११ : १-४७। १० : १५ "जो कुछ. . .मत कहो"—मरकुस ७ : १४-१९ में यीशु ने भोजन संबंधी शिक्षा दी है। इस दर्शन के द्वारा पतरस उस शिक्षा के अर्थ को समझ गया। प्रतीकार्थ यह है कि पतरस किसी मनुष्य या परमेश्वर की सृष्टि को अशुद्ध न समझे (१० : २८)। यह प्रतीकार्थ १० : ३५ में भी प्रस्तुत है। १० : १९ "आत्मा ने उससे कहा"—१० : १३-१५ में पतरस 'शब्द' को प्रभु (यीशु) संबोधित करता है। करता है। दर्शन में मानो वह प्रभु से बातें करता है। चेतनावस्था में आत्मा मार्ग-दर्शन करता है। क्या पतरस कुरनेलियुस से बोलनेवाले 'स्वर्गदूत' (१० : ३), और पतरस से बोलनेवाले 'आत्मा' में अंतर करना चाहता है ? (देखिए ८ : २६ की टीका)। टीका)। १० : २३ "भाइयों"—११ : १२ में छः संख्या का उल्लेख है। इस पद से संकेत होता है कि इस नये कार्य में पतरस स्थानीय कलीसिया से भी सहयोग प्राप्त करता है। १० : २५—एक मूलपाठ में यह पद इस प्रकार है : 'जब पतरस कैसरिया के निकट पहुँच रहा था, तो एक दास आगे दौड़ा और सूचना दी कि वह (पतरस) आ रहे हैं। कुरनेलियुस कूदकर गया और पतरस से भेंट की'। "पांवों पड़के प्रणाम किया"—मूल यूनानी शब्दों में परमेश्वर और अपने से बड़े मनुष्य दोनों के प्रति आदर व्यक्त करने के लिये ऐसा किया जाता है। नया नियम में मत्ती १८ : २६ को छोड़कर 'पांवों पड़ना' धर्म क्रिया के रूप में अर्थात परमेश्वर के प्रति ही आदर व्यक्त करने के लिये किया गया है। इसीलिये पतरस "पद २६" में उसे ऐसा करने को मना करता है (तु. प्रक. १९ : १०; २२ : ९)। १० : २८ "अधर्म"—अर्थात नियम-विरुद्ध आचरण। **हिं. सं.** का अनुवाद यों है : 'तुम स्वयं जानते हो कि किसी यहूदी के लिये अन्य जाति के व्यक्ति

से संपर्क रखना अथवा उसके घर जाना वर्जित है। **१० : ३०** "पुरुष चमकीला वस्त्र पहिने हुए"—१० : ३ में 'स्वर्गदूत' कहा गया है। देखिए १ : १० की टीका।

१० : ३५-४३ पतरस का भाषण। **१० : ३५** "परमेश्वर किसी का पक्ष नहीं करता"—यह शिक्षा नये नियम के रो. २ : ११; इफि. ६ : ६; कुलु. ३ : २५; १ पत. १ : १७ में भी पाई जाती है। "धर्म के काम"—विधिकर्म से आशय नहीं, वरन नैतिक कर्म से आशय है। **१० : ३८** "अभिषेक किया"—अर्थात् 'मसीह बनाया' या 'ख्रिस्त बनाया'। तुलना कीजिए लूका ४ : १८; प्रे. ४ : २७। पतरस यीशु के बपतिस्मा को उसके मसीह होने से संबद्ध करता है। वास्तव में लूका मानता है कि यीशु जन्म से ही मसीह था (दे. लूका १ : ३५)। "शैतान"—तुलना कीजिए लूका १० : १८। **१० : ३९** "काठ पर लटकाकर"—१ पत. २ : २४ में भी यही शब्द 'काठ' प्रयुक्त है। दे. प्रे. ५ : ३०। **१० : ४१** "उसके साथ खाया पीया"—दे. लू. २४ : ४१-४३; यू. २१ : २१ : ६ क्र.। **१० : ४२** "न्यायी ठहराया है"—'मनुष्य के पुत्र' या 'मसीह' को प्रकाशन-ग्रंथों में युगांत में न्यायी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। तुलना कीजिए प्रे. १७ : ३१; १ पत. ४ : ५; २ तीम. ४ : १।

१० : ४४-४८ सुननेवालों को पवित्र आत्मा का दान और तत्पश्चात् उनका बपतिस्मा। १० : ४४ अन्यजातीय लोगों का पिंतेकुस्त है (दे. २ : ४)। **१० : ४८** "यीशु मसीह के नाम में बपतिस्मा"—दे. २ : ३८ की टीका।

११ : १-१८ पतरस यरूशलेम की कलीसिया को अपने कार्य का औचित्य समझाता है। **११ : १-२** आगामी वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि यरूशलेम की कलीसिया ने पतरस के कार्य के विषय शंका की और आपत्ति की। एक मूलपाठ में (पश्चिमी मूलपाठ) ये पद इस रूप में हैं जिससे आपत्ति की भावना व्यक्त नहीं होती : 'सो कुछ समय पश्चात पतरस ने यरूशलेम को जाने की इच्छा प्रकट की। अतः भाइयों को एकत्र कर और उनको वचन से सुदृढ़ कर वह विदा हुआ। सारे क्षेत्र में वह प्रचार करता और शिक्षा देता गया। यरूशलेम पहुँचकर उसने उनसे (यरूशलेम की कलीसिया से) भेंट की और परमेश्वर के अनुग्रह का वर्णन किया। परंतु खतना किए हुए भाई उससे विवाद करने लगे'। **११ : २** "खतना किए हुए लोग"—वे लोग जो यहूदी जाति से मसीही हुए थे। वे मसीही होने के बाद भी यहूदी धर्म की परंपराओं को मानते थे। **११ : ३** में यही लोग पतरस के व्यवहार के प्रति आपत्ति प्रकट करते हैं। **११ : १२** "बेखटके"—मूल यूनानी शब्द का अर्थ है (यूनानी और यहूदी के बीच) 'बिना किसी भेद-भाव के'। **११ : १५** "आरंभ में"—अर्थात् पिंतेकुस्त के समय (दे. प्रे. २ : १-४)।

(**११ : ५-१८** इन पदों में पतरस अपने व्यवहार की सफाई देता है कि जो कुछ किया गया वह पवित्र आत्मा की अगुवाई से किया गया। पतरस की सफाई को प्रेरितों ने स्वीकार किया, और अन्यजातियों के लिये उद्धार का मार्ग खुल जाता है)। **११ : १६**— "प्रभु का यह वचन स्मरण आया"—यह एक कथन-सूत्र जैसा है (दे. २० : ३५)। इस पद में प्रे. १ : ५ का स्मरण है। लूका ३ : १६ में यह कथन, 'यूहन्ना. . .पाओगे'

यूहन्ना का है, प्रभु का नहीं है। ११:१८ "चुप रहे"— पतरस के विरुद्ध जो आपत्तियां उन्हों ने उठाई थीं उनको मानो वापिस ले लिया। इस पद में पतरस द्वारा उठाए गए नये कदम का स्वागत किया गया है। परंतु इस बैठक से ही अन्यजातियों के प्रवेश की समस्या समाप्त नहीं हुई। अध्याय १५ में यरूशलेम की सभा होती है जहां इस समस्या का अंतिम निर्णय होता है। परंतु ११ : १-१८ में 'मानो लड़ाई जीत ली गई है, यद्यपि युद्ध समाप्त नहीं हुआ है'।

(३) अंताकिया में प्रसार (ख्रिस्ती कहलाएं) (११ : १९-३०)

११:१९ "अंताकिया"—दे. ६ : ५ की टीका। अंताकिया के इतिहास और महत्व के लिये पढ़िए एच. के. मोल्टन, एक्ट्स ऑफ दी अपोस्ल्स, इन्ट्रोडक्शन एंड कमेन्टरी, पृष्ठ १८७-१८८, और बाइबल ज्ञानकोश, पृष्ठ ११। "जो तितर बितर हो गए थे"—दे. ८ : ४। इस पद से यह स्पष्ट होता है कि जैसे सामरिया, दमिश्क और कैसरिया में प्रभु का काम फैला, वैसा ही अंताकिया में भी हुआ। "कुप्रुस"—दे. ४ : ३६। **११:२०** कुरैनी—दे. २ : १० की टीका। **११:२२** "बरनबास"—दे. ४ : ३६ की टीका। अंताकिया की मंडली के लिये बरनबास अधिक उपयुक्त व्यक्ति था क्योंकि वह स्वयं कुप्रुस का था और पद २० में कुप्रुसियों का उल्लेख है। साथ ही पद २४ में बताया जाता है कि वह भला मनुष्य था, और आत्मा और विश्वास से परिपूर्ण था। **११:२५-२६**—बरनबास शाऊल को अंताकिया लाता है। ९ : ३० के बाद यहां शाऊल का उल्लेख है। "**कलीसिया**"—दे. ५ : ११ पर टीका। "मसीही" (हिं. सं. ख्रिस्तीय)—यह शब्द नया नियम में केवल ३ स्थानों में ही आया है : यहां, २६ : २८; १ पत. ४ : १६। कलीसिया ने अपने लिये इस शब्द का प्रयोग नहीं किया, बाहरवालों ने किया, और वह भी उपहास रूप में प्रयोग किया। यह इतना ही विचित्र है जितना आज कोई मसीहियों को मसीह-वाले कहें। संभव है कि बाहर के लोगों ने यूनानी शब्द ख्रिस्तॉस (Christos) और ख्रेस्तॉस (Chrestos) शब्दों को एक मानकर मसीहियों के लिये इस शब्द का प्रयोग किया हो (ख्रेस्तॉस का अर्थ है, उपयोगी या दयालु। यह नाम 'ख्रिस्ती' शीघ्र प्रचलित हो गया। जब लूका ने प्रेरितों के काम पुस्तक लिखी तो यह नाम प्रचलित हो गया था)।

११ : २७-३० यरूशलेम की कलीसिया को सहायता। **११ : २७** "भविष्यद्वक्ता" (हिं. सं., नबी)—नया नियम में नबियों का कई स्थलों में उल्लेख है और इनकी श्रेणी प्रेरितों के बाद आती है (दे. १ कुर. १२ : २८; इफि. २ : २०; ३ : ५; ४ : ११; प्रक. २२ : ९)। प्रे. के काम में १३ : १; १५ : ३२; २१ : ९-१० में नबियों का उल्लेख हुआ है। इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता कि नया नियम काल में 'नबी' का अभिषेक किया जाता-था। 'नबी की मुख्य पहिचान यह है कि परमेश्वर उससे सीधे अधिकृत रूप से बोलता है, जिससे प्रकट होता है कि जीवित परमेश्वर का सीधा व्यक्तिगत संबंध मनुष्यों से है। यह महत्व की बात नहीं है कि नबी वर्तमान के विषय बोलता है अथवा भविष्य के विषय'। एक विद्वान का कथन है : 'प्रारंभिक मसीही धर्म को

समझने के लिये यह समझना जरूरी है कि वह मूलतः एक नबूवतात्मक आंदोलन था'। **यहूदी लोग मानते थे कि नबूवत बंधुआई के बाद समाप्त हो गई थी। अतः जब यूहन्ना** आया तो लोग कहने लगे कि यूहन्ना नबी है (मर. ११ : ३२)। पतरस और स्तिफनुस अपने भाषणों में इस तथ्य पर बल देते हैं कि यीशु में नबियों की नबूवतों की पूर्ति होती है (प्रे. ३ : २२; ७ : ३७)। प्रारंभिक कलीसिया में नबियों की एक श्रेणी थी जैसे ऊपर कहा गया है। "उन्हीं दिनों में"—अर्थात् १२ : १ में उल्लिखित सताव के समय। **११ : २८** 'अगबुस"—इसका उल्लेख २१ : १० में भी हुआ है। "आत्मा की प्रेरणा से"—मूल यूनानी में केवल 'आत्मा से' शब्द हैं। हिन्दी का अनुवाद बड़ा सार्थक है। देखिए २१ : ४। "क्लौदियुस" यह ४१-५४ ई. स. तक रोमी सम्राट रहा। इतिहासकार बताते हैं कि इस सम्राट के काल में कई अकाल पड़े। यहूदिया में ई. स. ४६ में भीषण अकाल पड़ा था। **११ : २९**—तुलना कीजिए : पौलुस ने अपनी तीसरी मिशनरी यात्रा के समय सहायता भेजने का विस्तृत प्रबंध किया था (२ कुर. ८-९ अध्याय; रो. १५ : २५ क्र., प्रे. २४ : १७)। **११ : ३०**—"प्राचीन"—मूल में 'प्रेसबुतिर'। इस पद में प्राचीनों का पदाधिकारियों के रूप में प्रथम उल्लेख है। संभव है कि ये यरूशलेम की विभिन्न गृह-कलीसियाओं के प्रधान हों। १५ : ६, २३ में प्रेरित और ये (प्राचीन) मिलकर सभा बन जाते हैं। संभव है कि ६ : ६ में उल्लिखित व्यक्ति इन प्राचीनों में रहे हों। देखिए ६ : ६ की टीका। 'बरनबास और शाऊल"—प्रे. के काम पुस्तक में पौलुस तीन बार यरूशलेम जाता है (दे. ९ : २६; ११ : ३०; १५ : ४)। गलतियों की पत्री में पौलुस लिखता है कि वह दो बार यरूशलेम गया। इस भिन्नता का क्या स्पष्टीकरण है? विद्वान लोग यह स्पष्टीकरण देते हैं कि पौलुस ने गलतियों की **पत्री अपनी प्रथम मिशनरी यात्रा के बाद और यरूशलेम को तीसरी बार जाने के पहले** लिखी (दे. नया नियम की भूमिका पृष्ठ १७२-१७६)। विद्वान लोग यरूशलेम में पौलुस के आने की तिथियां भी इस प्रकार निर्धारित करते हैं :

हृदय-परिवर्तन	ई. स. ३१ या ३९
यरूशलेम को प्रथम आगमन	,, ३३ या ४२
अकाल के समय आना	,, ४६ या ४६
महासभा के समय आना	,, ४९

(४) हेरोदेस अग्रिप्पा प्रथम द्वारा सताव और कलीसिया का विस्तार (१२ : १-२५)

टिप्पणी—'यह अध्याय एक अन्तर्कथा जैसा है। विद्वानों का यह सुझाव है कि यह अध्याय पौलुस की एक यरूशलेम यात्रा के दो वर्णनों के बीच का स्थान भरने के लिये यहां रखा गया है। यदि पतरस का बंदी किया जाना ऐतिहासिक है तो इस अध्याय की घटना की तिथि ई. स. ४४ मानी जा सकती है। यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि हेरोदेस की मृत्यु के पूर्व पतरस यरूशलेम से निकल गया। हेरोदेस की मृत्यु संभाव्यतः सन् ४४ की वसंत ऋतु में हुई। पतरस को बंदीगृह में डालने की घटना पौलुस की अकाल के समय की यरूशलेम-यात्रा से पहले हुई, अर्थात सन ४५ या ४६ के पहले हुई।

अतः अध्याय १२ वास्तव में ११ : १६ क्र. के पहिले आना चाहिये'। ऐतिहासिक क्रम कुछ इस प्रकार का होगा :

(क) प्रे. १२ : १७ (सन ४४)। (ख) प्रे. ६ : ३२-१० : ४८; ११ : २२-२६ (सन ४४-४५)। (ग) प्रे. ११ : २; प्रे. ११ : ३० (सन ४६)। (घ) गल. २ : १-१० (सन ४६)।

१२ : १ "हेरोदेस"—यह सुसमाचारों में उल्लिखित हेरोदेस महान (ई. पू. ३७ से ई. पू. ४; दे. मत्त. २ : १; लू. १ : ५) का पोता था। इसे हेरोदेस अग्रिप्पा प्रथम कहते हैं। इसका जन्म ई. पू. ११ में हुआ था। इसके पिता का नाम अरिस्तोबुलुस था जिसे ई. पू. ६ में उसके पिता हेरोदेस महान ने मरवा डाला था। हेरोदेस अग्रिप्पा का शिक्षण रोम में हुआ। वह सम्राट केलिगुला और सम्राट क्लौदियुस का कृपापात्र बन गया। चौथाई के राजा फिलिप की ई. स. ३७ में मृत्यु के बाद और सन ३६ में चौथाई के राजा अंतिपास के देश निकाले के बाद यह हेरोदेस अग्रिप्पा उनके राज्यों का अधिकारी बनाया गया। ई. स. ४१ में यहूदा के प्रांत का शासन भी उसके हाथ में आ गया। यह ई. स. ४४ में मरा। इसकी मृत्यु का वर्णन प्रेरितों के काम के १२वें अध्याय में है। इसका पुत्र हेरोदेस अग्रिप्पा द्वितीय था जिसका वर्णन प्रेरितों के काम २५ वें अध्याय में है। "हाथ डाले"—अर्थात सताया या अत्याचार किया। हेरोदेस अग्रिप्पा प्रथम कट्टर यहूदी था। संभव है कि इसी कारण उसने मसीहियों को सताया। **१२ : २** "याकूब को मरवा डाला"—कुछ विद्वानों का विचार है कि यूहन्ना भी उसी समय मारा गया और वे मूलपाठ का अनुवाद यों करते हैं, 'याकूब को और उसके भाई यूहन्ना को मरवा डाला'। प्रारंभिक कलीसिया की परंपरा यह है कि यूहन्ना पहली शताब्दी के अंत तक जीवित रहा। इसको भी प्रमाणित नहीं किया जा सकता परंतु यह परंपरा संभाव्यतः सत्य है। **१२ : ३** "अखमीरी रोटी के दिन" —ये निसान महीने (मार्च-अप्रैल) की १४ वीं तिथि से २१ वीं तिथि तक होते थे। पहला दिन फसह का पर्व होता था (१२ : ४)। परंतु अखमीरी रोटी के दिन और फसह बहुधा पर्याय जैसे प्रयुक्त हुए हैं (तु. लू. २२ : १)। इस पर्व के नियम नि,. १२ : १-२० में मिलते हैं। **१२ : ४** "फसह के बाद. . .लाए"—कारण यह था कि फसह के पर्व के दिनों में मुकद्दमे वर्जित थे। **१२ : ५** "लौ लगाकर"—मूल यूनानी में जो शब्द है वह लूका २२ : ४० में भी है, जहां 'और भी अधिक वेदना से' (हिं. सं. और भी आग्रहपूर्वक) शब्दों से अनूदित हुआ है। **१२ : ७** "प्रभु का एक स्वर्गदूत"—देखिए ५ : १६ की टीका। **१२ : १०** "पहले और दूसरे पहरे"—इसका अर्थ स्पष्ट नहीं है। १२ : ४ से कुछ स्पष्टीकरण मिल सकता है, अथवा पद ६ से जहां दो बंधे हुए सिपाही पहला पहरा और पहरुए दूसरा पहरा माने जा सकते हैं। "लोहे. . .ओर है"—हमें पता नहीं कि पतरस किस बन्दीगृह में बंद था। अनुमान है कि वह मंदिर के उत्तर की ओर अन्तोनिया के गढ़ में बंद किया गया था। प्रे. २१:४० में पौलुस ने उसी गढ़ की सीढ़ियों पर खड़े होकर लोगों को संबोधित किया था। इस गढ़ के फाटक से मंदिर की ओर और नगर की ओर भी

जा सकते थे। **१२ : ११** "सचेत होकर"—मूल यूनानी में इसके लिये जो शब्द है वही लूका १५ : १७ में भी प्रयुक्त है जहां अनुवाद है 'अपने आपे में आया'। **१२ : १२** "मरियम के घर"—देखिए १ : १३ की टीका। "यूहन्ना मरकुस"—यूहन्ना यहूदी नाम है और मरकुस अन्य जातीय नाम। मरकुस सुसमाचार लेखक है। प्रेरितों के काम में इसका उल्लेख १२ : २५; १३ : ५, १३; १५ : ३७-३९ में हुआ है। कुलु. ४ : १० में उसे बरनबास का भाई कहा गया है। फिले. १ : २४; २ तीम. ४ : ११ में भी इसका उल्लेख है। यह भी बड़ी रोचक बात है कि सब स्थलों में लूका भी प्रसंग में आता है। ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों सुसमाचार लेखकों की पर्याप्त संगति रही जिससे उनको अपने संस्मरणों का मिलान करने का अवसर मिला होगा। १ पत. ५ : १३ में पतरस उसे 'मेरा पुत्र मरकुस' कहता है। **१२ : १३** "रुदे"—इस नाम का अर्थ गुलाब है। **१२ : १५** "उसका स्वर्गदूत होगा"—प्रत्येक मनुष्य और राष्ट्र का एक स्वर्गदूत है—इस विचारधारा का संकेत धर्मशास्त्र में मिलता है (दे. उत. ४८ : १६; दा. १० : २०, २१; १२ : १; मत्त. १८ : १०; प्रक. १ : २०)। 'प्रभु का स्वर्गदूत' (८ : २६; १२ : ११) और इस स्वर्गदूत में अंतर है। आज की भाषा में कहें तो कदाचित कहेंगे 'पतरस का भूत'। विद्वानों का विचार है कि इस विचारधारा को कदाचित फारसी मत से यहूदियों ने अपना लिया हो। **१२ : १७** "याकूब"—उस समय यरूशलेम की कलीसिया का प्रमुख था। यह प्रभु का भाई याकूब है। सुसमाचारों से विदित होता है कि यीशु के भाई उस पर विश्वास न लाए (यू. ३ : ५)। वे यीशु को पागल समझते थे (मर. ३ : २१)। १ कुर. १५ : ७ से ज्ञात होता है कि पुनरुत्थान के बाद यीशु इसे दिखाई दिया। एक दंतकथा है कि यीशु के पुनरुत्थान के बाद याकूब ने यह मन्नत मानी कि जब तक यीशु उसे पुनः न दिखाई दे, वह न खाएगा न पीएगा। यीशु मसीह दैहिक जीवन में जो न कर सका, पुनरुत्थित स्थिति में उसने किया। याकूब ने अपने भाई को देखा और नई सृष्टि हो गया। 'याकूब' के लिये अन्य स्थल भी देखिए : प्रे. १५ : १३; २१ : १८; गल. १ : १९; २ : ९; मर. ६ : ३ (=मत्त. १३ : ५५); या. १ : १। "निकलकर दूसरी जगह चला गया"—इस टिप्पणी के तीन अनुमान लगाए गए हैं। (क) पतरस नगर में किसी दूसरे घर में रखा गया जहां वह छिपकर रह सके (४ : ३१ में स्थान का अर्थ घर है)। (ख) अन्ताकिया चला गया। यदि वहां गया तो फिर वहां पतरस का नाम क्यों नहीं आया ? इसके कुछ उत्तर दिए जाते हैं, परंतु स्पष्ट प्रमाण नहीं है। (ग) यूसेब (४ थी शताब्दी) एक परंपरा का उल्लेख करता है कि पतरस रोम चला गया जहां वह बिशप बन गया। रोमन काथलिक कलीसिया इसी परंपरा को मानती है। नया नियम में इस परंपरा के विपरीत प्रमाण मिलते हैं। रोमियों की पत्री (लेखनकाल ५४ सन्) १५ : २० में निहित है कि कोई अगुवा वहां नहीं पहुँचा था। फिर प्रे. १५ : ७ में यह प्रमाण है कि पतरस यरूशलेम में था। एक मान्यता यह है कि संभाव्यतः वह ई. स. ५५ में नेरो सम्राट के काल में रोम गया। **१२ : १९** "कैसरिया"—यह कुछ विचित्र पद है। वास्तव में कैसरिया यहूदिया प्रांत की राजधानी था।

देखिए ८ : ४० की टीका। **१२ : २०** "सूर और सैदा"—देखिए ११ : १९। "अप्रसन्न था"—हेरोदेस की अप्रसन्नता का कारण ज्ञात नहीं है। "राजा का देश"—गलील प्रांत जहां से सूर और सैदा नगरों को अनाज प्राप्त होता था (दे. १ रा. ५ : ९-११)। **१२ : २१** "ठहराए हुए दिन"—योसेपस के अनुसार यह सम्राट के सम्मानार्थ उत्सव दिवस था। लूका का अभिप्राय कदाचित यह है कि सूर और सैदा के शिष्टमंडल के लिये विशेष दिन नियुक्त किया गया था और यह वह दिन था। **१२ : २०-२३**—यहूदी इतिहासकार योसेपस हेरोदेस की मृत्यु के संबंध में समान वर्णन प्रस्तुत करता है। वह बताता है कि रोमी सम्राट का जन्म-दिवस का उत्सव था। हेरोदेस चांदी का वस्त्र पहिने था। वह सूर्य की किरणों में झिलमिला रहा था। लोगों ने बड़े उत्साह से उसे ईश्वर कहा। उसने उनकी चापलूसी की निंदा न की। उसी समय एक उल्लू उसके सिर पर दिखाई दिया। तुरंत हेरोदेस के पेट में भयंकर पीड़ा शुरू हुई और पांच दिन में वह मर गया। लूका का वर्णन 'कीड़े पड़के मर गया' हेरोदेस के दंड की तीव्र अभिव्यक्ति है।

१२ : २४-२५ "परंतु" शब्द में हेरोदेस की मृत्यु और परमेश्वर के वचन के जीवते होने में बड़ी स्पष्ट विषमता प्रकट है। "यूहन्ना"—दे. १२ : १२। **१२ : २५** "यरूशलेम से"—अधिकांश प्रामाणित हस्तलेखों में है 'यरूशलेम को'। 'लेक' नामक विद्वान का कथन है कि अध्याय १२ और अध्याय ११ साथ साथ प्रसंग हैं, अतः इस पद में ११ : ३० में वर्णित यात्रा का उल्लेख है। 'से' और 'को' की समस्या का कोई निश्चित समाधान नहीं है।

४. कलीसिया का विस्तार-पौलुस की प्रथम मिशनरी यात्रा (१३ : १–१४ : २८)

(१) बरनबास और शाऊल का कुप्रुस को जाना (१३ : १-१२)। (२) पिसि दिया के अंताकिया में (१३ : १३-५२)। (२) इकुनियुम, लुस्त्रा, दिरबे में (१४ : १-२८)।

अध्याय १३-१४—इन अध्यायों में पौलुस और बरनबास की प्रथम मिशनरी यात्रा का वर्णन है। पलिश्तीन और उसके निकटवर्ती क्षेत्रों में कलीसिया स्थापित हो हो चुकी थी। वचन अंताकिया तक पहुँच चुका था (दे. ११ : १९-२१)। अन्य जातियों की दुनिया में सुसमाचार के प्रवेश के लिये अंताकिया द्वार बन गया। यह प्रथम यात्रा कुप्रुस टापू और एशिया माइनर के दक्षिणी भाग तक ही सीमित है। परंतु इससे सुसमाचार अन्यजातियों में प्रवेश करता है। यह यात्रा यात्रिक सुसमाचार-प्रचार का प्रथम प्रयोग है।

ऐसा प्रतीत होता है कि यह यात्रा संबंधी वर्णन लूका का आखों देखा वर्णन नहीं है। मरकुस इस यात्रा के प्रारंभिक भाग में पौलुस और बरनबास के साथ था और लूका ने अपनी सामग्री मरकुस से प्राप्त की हो। यात्रा के दूसरे भाग के लिये उसने अन्य व्यक्तियों से (जैसे तीमुथियुस जो लुस्त्रा का रहनेवाला था) प्राप्त की हो।

संभव है कि लूका को अंताकिया की कलीसिया से संबंधित किसी लिखित स्रोत से यह सामग्री मिली हो।।

पौलुस की मिशनरी यात्राओं के लिये देखिए बाइबल मानचित्रावली, नक्शा १५-१७।

(१) बरनबास और पौलुस प्रचारकार्य के हेतु पृथक किए जाते हैं। कुप्रुस को जाना (१३ : १-१२)।

१३ : १-३ "भविष्यद्वक्ता और उपदेशक"—'भविष्यद्वक्ता' के लिये देखिए ११ : २७ की टीका। इन दोनों के कार्य एक ही थे, यद्यपि भविष्यवक्ता का स्थान कुछ ऊंचा था। एक विद्वान का कथन है कि इन दो शब्दों में कलीसिया के पदों तथा अभिषेक पद्धति आदि का प्रतिपादन नहीं है। 'उपदेशक' के लिये देखिए १ कुर. १२ : २८; इफ ४ : ११। "बरनबास"—दे. ४ : ३६ की टीका। "शमौन नीगर"—उस समय यह साधारण बात थी कि कई यहूदी जनों के दो नाम होते थे, एक यहूदी और अन्यजातीय (दे. १२ : १२)। 'नीगर' का अर्थ है काला। संभव है कि यह अफ्रीका निवासी रहा हो। कुछ विद्वानों का कहना है कि यह शमौन कुरैनी होगा (दे. मर. १५ : २१)। "लूकियुस कुरैनी"—'कुरैनी' के लिये दे. १ : १० की टीका। कुछ विद्वान मानते हैं कि यह रो. १६ : २१ में उल्लिखित व्यक्ति है अथवा लूका स्वयं है। इस मान्यता का कोई ठोस तर्क और प्रमाण नहीं हैं। "चौथाई के राजा हेरोदेस का दूधभाई मनाहेम"—यह 'हेरोदेस' हेरोदेस अंतिपास है जिसने यूहन्ना बपतिस्मा को मरवा डाला था (और देखिए लू. ८ : ३; १३ : ३१; २३ : ७ क.)। 'दूधभाई' उन किशोरों को कहा जाता था जो राजा के साथ खेलते थे। "उपासना"—मूल यूनानी में जो शब्द है उससे निर्धारित आराधना-विधि सहित उपासना का बोध होता है। परंतु यहां कदाचित इसका अर्थ प्रार्थना है। लूका की रचना में प्रार्थना को बड़ा महत्व दिया गया है। नया नियम में उपवास सहित प्रार्थना पर बल दिया गया है (दे. प्रे. १४ : २३; लू. २ : ३७; मर. ९ : २९; प्रे. १ : १४)। "अलग करो"—तु. रो. १ : १; गल. १ : १५। अलग करना सुसमाचार प्रचार के कार्य के लिये ही हुआ है। "हाथ रखकर"—दे. ६ : ६; ८ : १५-१७ और उन पदों की टीका।

१३ : ४-१२ कुप्रुस टापू में प्रचार-यात्रा। **१३ : ४** "सिलूकिया"—यह अंताकिया का बन्दरगाह था। अंताकिया से लगभग २५ किलोमीटर की दूरी पर था। "कुप्रुस"—यह स्वाभाविक जान पड़ता है कि कुप्रुस से यात्रा आरंभ की जाए, क्योंकि बरनबास उस टापू का निवासी था (दे. ४ : ३६; ११ : १९)। पुराना नियम में इसे कित्तीम कहा गया है (दे. यश. २३ : १; यि. २ : १०)। "सलमीस"—कुप्रुस टापू का प्रमुख नगर। टापू की पूर्वी ओर है। यह यूनानी नगर था। **१३ : ५** यूहन्ना—अर्थात यूहन्ना मरकुस। "सेवक"—देखिए लूका ४ : २०। इसका अर्थ नौकर या सहायक नहीं है। इसका अर्थइब्रानी शब्द खज्जान (chazzan) के अर्थ के समान है। ऐसे व्यक्ति का कार्य था कि बालकों और अन्य लोगों को धर्मशास्त्र की शिक्षा मुखाग्र कराना। मरकुस ने यह सेवा (धर्मशास्त्र की शिक्षा को मुखाग्र कराना) कुछ समय तक

की होगी। तब उस शिक्षा को सुसमाचार के रूप में लिखा होगा। मरकुस के सुसमाचार से यह इंगित होता है कि मरकुस ने यदि पूर्णतः नहीं तो अधिकांशतः पतरस के प्रवचनों से अपनी सामग्री जुटाई है। लूका सेवक शब्द का प्रयोग लूका १ : २ में भी करता है। उस पद में कदाचित मरकुस और अन्य लेखकों की ओर संकेत करता है। १३ : ६ "पाफुस"—यह नगर कुप्रुस की राजधानी था। टापू के दक्षिण-पश्चिम में था। बार-यीशु—अर्थात यीशु या यहोशू का पुत्र। 'यीशु' नाम यहूदियों में सामान्य नाम था। बाद में यह यहूदियों और मसीहियों द्वारा मनुष्यों को नहीं दिया जाने लगा। "टोन्हा" —तु. प्रे. ८ : ९ क्र.। १३ : ७ "सूबा"—इसका शब्दशः अर्थ है रोमी प्रांतपति। रोमी साम्राज्य में दो प्रकार के प्रांत थे : एक, वे जो रोमी सीनेट द्वारा शासित थे और दूसरे, वे जो सीधे सम्राट द्वारा शासित थे। सीनेट द्वारा शासित प्रांत के प्रांतपति को प्रोकॉन्सल (Proconsul) कहा जाता था जिसका अनुवाद 'सूबा' किया गया है। रोमी सम्राट द्वारा शासित प्रांत के प्रांतपति को प्रोक्युरेटर कहा जाता था जिसका अनुवाद हिन्दी बाइबल में 'हाकिम' (हि. सं. राज्यपाल) किया गया है, (पीलातुस हाकिम या राज्यपाल था)।

ई॰ पू॰ २२ में कुप्रुस टापू रोमी प्रांत किलिकिया के अंतर्गत कर दिया गया। वास्तव में सूबा किलिकिया में रहता था। यहां सम्मानवश कुप्रुस के अधिकारी को सूबा कहा गया है। १३ : ८ "इलीमास"—इस शब्द का अर्थ 'टोन्हा' बताया गया है। संभाव्यतः इलीमास सामी भाषा का शब्द है। मूल यूनानी शब्द 'मगास' (=ज्ञानी या ज्योतिषी, मत्ती २ : १) का पर्याय है। 'मगास' का अर्थ इस पद में टोन्हा है। "विश्वास करने से रोकना चाहा"—यह स्वाभाविक था, क्योंकि सूबा के विश्वास करने पर इलीमास की कमाई ख़त्म हो जाती। १३ : ९ "शाऊल जिसका नाम पौलुस"—शाऊल यहूदी नाम है, और पौलुस रोमी नाम है। यहां से आगे लूका पौलुस नाम का प्रयोग करता है। पौलुस नाम अन्यजातीय लोगों के लिये अधिक उपयुक्त था। क्यों और कब शाऊल को यह नाम मिला इसका कोई निश्चित उत्तर नहीं दिया जा सकता। लातीनी भाषा में इस शब्द का अर्थ 'छोटा' है (दे॰ १ कुर॰ १५:९)। इब्रानी मूल से अर्थ लगता है 'चुना हुआ'। शायद पौलुस ने स्वयं यह नाम अपने लिये ले लिया हो। "पवित्र आत्मा से परिपूर्ण हो"—तुलना कीजिए प्रे॰ ६:५;११:२४। "टकटकी लगाकर"—दे॰ प्रे॰ ३:४। १३:१० "शैतान (इबलीस) की संतान"—इन शब्दों में बार-यीशु (यीशु के पुत्र) से विषमता है। 'सीधे मार्गों ''न छोड़ेगा"—इन शब्दों में कदाचित नी. १० : ९; हो. १४ : ९ की प्रतिध्वनि है। १३ : ११ इस पद में जिस प्रकार के अंधेपन का वर्णन है उसके लिये दे. व्य. २८ : २८-२९। इस पद में पौलुस के स्वयं के अंधे होने का संस्मरण है और वह कदाचित आशा करता है कि इलीमास का भी उसके समान परिवर्तन हो जाएगा। १३ : १२ तु. १ : २२। इस पद का अनुवाद इस प्रकार भी हो सकता है : 'चकित होकर उसने प्रभु की शिक्षा (उपदेश) पर विश्वास किया'।

(२) पिसिदिया के अंताकिया में (१३ : १३-५२)

१३ : १३ अब पौलुस प्रचारक - समूह का प्रमुख हो गया है। "पंफुलिया" —यह रोमी प्रांत लूकिया का एक क्षेत्र था। यह क्षेत्र उत्तर में तौरुस पर्वत और दक्षिण में समुद्र तट तक था। "पिरगा"—एशिया माइनर के दक्षिणी भाग में समुद्र-तट से कोई १२ किलोमीटर दूर एक नगर। "यूहन्ना. . .लौट गया"—इसका कारण ज्ञात नहीं। अनुमान है कि : उसे यह अनुभव हुआ कि उसे केवल कुप्रुस तक ही सेवा का आदेश था और वह विस्तृत अन्यजातीय सेवा के पक्ष में नहीं था; वह पौलुस की लोकप्रियता और बरनबास के स्थान पर नेतृत्व से कुछ दुखी हुआ; वह पहाड़ी क्षेत्र की कठिन अज्ञात यात्रा से डर गया। **१३ : १४** "पिरगा से आगे बढ़कर"—पिरगा में प्रचारकार्य इस समय नहीं किया गया। रेमज़े नामक विद्वान का सुझाव है कि पौलुस को मलेरिया हो गया इसलिये अच्छा होने के लिये वह पहाड़ी क्षेत्र में आ गया (दे. गल. ४ : १३)। "**पिसिदिया का अंताकिया**"—अंताकिया रोमी प्रांत गलतिया का एक क्षेत्र था। अंता-किया—यह दक्षिण गलतिया का सब से प्रमुख नगर था। यह नगर एक रोमी बस्ती थी और सैनिक केन्द्र था। यह नगर पिरगा से कोई १४५ किलोमीटर उत्तर में था। इसकी ऊंचाई समुद्र की सतह से ३६०० फुट थी।

रोमी प्रांत गलतिया और उस क्षेत्र की मंडलियों की स्थिति की विस्तृत जानकारी के लिये पढ़िए नया नियम की भूमिका, पृष्ठ १७०-१७२। **१३ : १५** "व्यवस्था और भविष्यद्वक्ताओं की पुस्तक"—यहूदी लोगों के लिये 'पुराना नियम' का कोई अर्थ नहीं है, क्योंकि वे 'नया नियम' को नहीं मानते। वे अपने धर्मशास्त्र को 'व्यवस्था, नबियों की पुस्तकें और लेख' कहते हैं।

१३ : १६-४१ पौलुस का उपदेश है। इस उपदेश के तीन भाग हैं : '(क) निर्गमन से लेकर दाऊद राजा तक इस्राएली लोग से परमेश्वर का व्यवहार, जिससे इस बात पर जोर दिया गया है कि यीशु दाऊद का पुत्र है (पद १६ -२३)। (ख) यूहन्ना बपतिस्मादाता की साक्षी, यहूदियों का यीशु को तुच्छ जानना, क्रूस और पुनरुत्थान (जिससे इस बात पर जोर दिया गया है कि तितर बितर यहूदियों को एक उद्धारकर्ता प्रस्तुत किया जाता है)। (ग) यीशु के जी उठने के विषय गवाही जिसका समर्थन पुराना नियम से होता है और सुननेवालों को चेतावनी कि स्वीकार न करने का क्या परिणाम होता है'।

१३ : १६ "परमेश्वर से डरनेवालो"—दे. प्रे. १० : २ की टीका। **१३ : १७** —दे. नि. ६ : १, ६। **१३ : १८**—दे. नि. १६ : ३५; गि. १४ : ३४; व्य. १ : ३१। "सहन किया"—कुछ प्राचीन मूल प्रतियों में इसके स्थान पर है 'उनकी देखभाल की'। **१३ : १९** "सात जातियां"—दे. व्य. ७ : १; यहो १ : ४२। "सामुएल नबी"—दे. प्रे. ३ : २४ की टीका। **१३ : २०**—दे. न्य. २ : १६; १ श. ३ : २०। **१३ : २१**— दे. १ श. ८ : ५; १० : २१-२४। **१३ : २२**—दे. भ. ८९ : २०; यश. ४४ : २८; १ श. १३ : १४; १६ : १२-१३। **१३ : २३**—दे. २ श. ७ : १२; यश. ११ : १।

१३ : २४—दे. लू. ३ : ३ । १३ : २५ "दौर पूरा करने पर था" (हिं. सं. अपना जीवन-कार्य समाप्त करने को थे) । दे. यू. १ : २०, २७; लू. ३ : १६; मर. १ : ७ । १३ : २६ "तुम"—अर्थात वे यहूदी जो तितर बितर होकर पलिश्तीन से बाहर के देशों में हैं । १३ : २७-२९ का मूल पाठ अशुद्ध और चटिल है । १३ : २८—दे. मत्त २७ : २२-२३ । १३ : २९ मत्त २७ : ५९-६० । १३ : ३० दे. प्रे. ३ : १५ । १३ : ३१—दे. प्रे. १ : ३ । १३ : ३२—दे. प्रे. १३ : २३ । १३ : ३३—दे. भ. २ : ७ । १३ : ३४—दे. यश ५५ : ३; भ. ८९ : ३३-३७ । उसने—भजन लेखक ने । १३ : ३५—दे. भ. १६ : १०; प्रे. २ : २७ । १३ : ३६—दे. १ रा. २ : १०; प्रे. २ : २९-३१ । १३ : ३८—दे. २ : ३८ की टीका । दे. प्रे. १० : ४३; इब्र. ९ : ९ । १३ : ३९ "विश्वास करनेवाला उसके द्वारा निर्दोष ठहरता है" (हिं. सं. यीशु के द्वारा प्रत्येक विश्वासी को विमुक्ति प्राप्त है) । इस पद में पौलुस की शिक्षा का सारांश है । इस शिक्षा का प्रतिपादन पौलुस ने रोमियों और गलतियों की पत्रियों में भी किया है (दे. रो. २ : १३; ३ : २०; ८ : ३; गल. २ : १६ । डा. एच. के. मोल्टन ने इस सिद्धांत में तीन तत्व बताए हैं । (क) यूनानी भाषा में विश्वास के लिये जो शब्द है उसका अर्थ है परमेश्वर पर भरोसा करना और निर्भर होना । विश्वास करना प्रमुख रूप से बुद्धि से विश्वास नहीं है । इसका अर्थ यह है कि परमेश्वर ने हमें अपने से मिलाने के लिये अपने पुत्र को भेजकर पहल की है । अब यह हमारा कार्य है कि हम पूर्ण दीनता और पूर्ण भरोसे के साथ उसके प्रेम के प्रकटीकरण और सामर्थ को अपनाएं और ग्रहण करें ।

(ख) निर्दोष या धर्मी ठहराया जाना एक कानूनी रूपक है जिसका अर्थ है एक कैदी का बरी होना । पौलुस इस के अर्थ को अधिक विस्तार देता है । पौलुस का विचार है कि हमें पापों की क्षमा प्राप्त होती है जिसके हम योग्य नहीं हैं, और हम इस स्थिति में आ जाते हैं जिसमें परमेश्वर से ठीक और उचित संबंध संभव है । निर्दोष ठहराने और धार्मिकता शब्द यूनानी भाषा में एक ही मूल शब्द से निकलते हैं । ख्रिस्त के द्वारा परमेश्वर हमें अपने अतीत पापी जीवन से ठीक करता है, और अपने साथ ठीक संबंध स्थापित करता है ।

(ग) पौलुस ने यह अनुभव किया कि कोई व्यक्ति अपना उद्धार, अपनी विमुक्ति या निर्दोषता कमा नहीं सकता । मूसा का नियमशास्त्र (अथवा कोई भी नियमशास्त्र) हमें यह बता सकता है कि उचित बात क्या है । वह पाप में फंसे हुए मनुष्य को कोई आत्मिक सामर्थ प्रदान नहीं कर सकता ।

१३ : ४०-४१—दे. हब. १ : ५ । १३ : ४२-४३ भाषण का परिणाम व्यक्त है । "यहूदी मत में आए हुए भक्त" (हिं. सं. नवयहूदी)—दे. प्रे. २ : ११ की टीका । और दे. ६ : ५; १० : २ ।

१३ : ४४-५२ यहूदियों द्वारा अवहेलना और अन्यजातियों (हिं. सं. विजातियों) में सुसमाचार प्रचार के आरंभ का वर्णन है । १३ : ४६ यह पद प्रेरितों के काम में एक बड़ा जबर्दस्त मोड़ है । इसके बाद भी पौलुस यहूदियों को पहला मौका देता चलता है

(दे. १४ : १; १६ : १३; १७ : १, १०; १८ : ४; १६ : ८; २८ : १७)। लूका अन्यजातीय था। उसने इस पद का लेखन बड़े आनंद के साथ किया होगा। पौलुस को दुख हुआ होगा कि वह अपने लोगों से मुड़कर विजातियों की ओर जाए, परंतु यही उसकी बुलाहट भी थी (दे. गल २ : ६; रो. १ : ५; इफ. ३ : ८, इत्यादि)। "अनंत जीवन" (हि. सं. शाश्वत जीवन)—दे. यूहन्ना ३ : १६; १३ : ४८। यह केवल काल की दृष्टि से अमर जीवन नहीं, परंतु एक 'भिन्न बहुतायत का जीवन है जो परमेश्वर भविष्यकाल में ही नहीं, वर्तमान में भी प्रदान करता है' (दे. एम. आर. रॉबिन्सन, यूहन्ना रचित सुसमाचार टीका, पृष्ठ २३२-२३४)। **१३ : ४७** इस पद में यश. ४६ : ६ से उद्धरण है। **१३ : ४८**—दे. प्रे. २ : २३ की टीका। "ठहराए गए थे"—यहां मूल यूनानी शब्द वह नहीं है जो पूर्व निर्धारण (predestination) के लिये प्रयुक्त हुआ है। यहां मूल शब्द का अर्थ यह भी हो सकता है : क्रमबद्ध करना, आदेश देना, अंकित करना, भरती करना, (पूर्व-निर्धारण के लिये देखिए २ : २३ की टीका)। **१० : ५१** "धूल झाड़ना"—इस क्रिया से यह व्यक्त किया जाता था कि जिस व्यक्ति के प्रति यह क्रिया की जा रही है उससे पूरा संबंध-विच्छेद किया जा रहा है। इस क्रिया का आशय यह भी है कि उस व्यक्ति को अयहूदी और विजातीय माना जा रहा है। इसका अर्थ दायित्व से मुक्त होना भी है। यहूदी लोग विदेश से लौटकर पलिश्तीन में प्रवेश करने के पहले अपने पावों की धूल झाड़ते थे। "इकुनियुम"—अंताकिया से लगभग १३० किलोमीटर दूर दक्षिणपूर्व में एक नगर था। **१० : ५२** में नवजीवन के दो बड़े चिन्ह हैं—एक अंतर्जीवन को ओतप्रोत करना है, दूसरा नवीन अंतर्जीवन को बहिर्जगत में गत्यात्मक बनाना है।

(३) इकुनियुम, लुस्त्रा, दिरबे में (१४ : १-२८)

इकुनियुम में अन्य नगरों की तरह काम हुआ : आराधनालय से आरंभ, पहले पहल सुननेवालों में वैसा ही उत्साह, यहूदियों द्वारा विरोध और उपद्रव और अंत में सताव, परिणामस्वरूप दूसरे स्थान को जाना जैसा प्रभु आज्ञा दे। हमें स्मरण रखना चाहिये कि सब समय और सभी स्थानों में ख्रिस्तीय सेवा की नवीन पद्धति संभव नहीं है, यद्यपि पौलुस सदा नवीन पद्धति का प्रयास करता था। ख्रिस्तीय सेवा मूलतः विश्वास एवं प्रभावशील रूप में यीशु ख्रिस्त को प्रस्तुत करना है।

१४: २ "और बिगाड़ कर दिया"—हि. सं. में अनुवाद अधिक स्पष्ट है "भाइयों के विरुद्ध उनका मन बिगाड़ दिया"। **१४ : ३** "प्रभु के भरोसे पर. . .थे"—आर. एस. व्ही. में और हि. सं. में अनुवाद है : "निर्भयतापूर्वक प्रभु का प्रचार करते रहे"। दोनों ही अनुवाद अच्छे हैं। मूल यूनानी का दोनों रूपों में अनुवाद किया जा सकता है। "वह" अर्थात प्रभु। "चिन्ह और अदभुत काम" के लिये देखिए २ : २२ की टीका। "गवाही देता था" का अर्थ दृढ़ करता या उनका समर्थन करता था (दे. मर. १६ : २०)। **१४ : ४** में पौलुस और बरनबास को पहिली बार "प्रेरित" कहा गया है (तु. १४ : १४; १ कुर. ६ : ५, ६)। प्रेरित शब्द केवल १२ प्रेरितों के लिये ही प्रयुक्त नहीं होता था

(दे. २ : २५; १ थिस. २ : ६ जहां अन्य व्यक्तियों के लिये इस शब्द का प्रयोग किया गया है। "प्रेरित" शब्द का अर्थ है 'भेजा हुआ')। १४ : ५ "सरदारों"—लूका इस शब्द का प्रयोग सामान्य तथा यहूदी अधिकारियों या नेताओं के लिये करता है (लू. ८ : ४१; प्रे. ३ : १७; १३ : २७)। परंतु मूल यूनानी शब्द से सरकारी पदाधिकारियों का भी बोध होता है। यहां सरकारी पदाधिकारी नहीं हो सकते क्योंकि यदि वे पौलुस और बरनबास का पीछा करते तो पौलुस और बरनबास का इकुनियुम लौटना असंभव सा होता। १४: ६ "लुकाउनिया के लुस्त्रा और दिरबे नगर"—प्रशासनिक दृष्टि से इकुनियुम भी लुकाउनिया प्रांत में था। परंतु फारसी राज्य के काल से इकुनियुम फ्रूगिया प्रांत की सीमा पर था और वहां के निवासी अपने को लुकाउनिया के निवासी नहीं मानते थे। लुस्त्रा और दिरबे नगरों के निवासी अपने को लुकाउनिया प्रांत के मानते थे। इस दृष्टि से लूका का यह वर्णन उचित जान पड़ता है।

१४ : ८-१८ "लुस्त्रा" में प्रचारकार्य। लुस्त्रा नगर इकुनियुम के दक्षिण में कोई ३२ किलोमीटर की दूरी पर है। वर्तमान नाम "जोलदेरा" है। १४ : ८-१० और प्रे. ३ : २-८ की घटना में बहुत साम्य है। दोनों जन्म के लंगड़े हैं, दोनों को टकटकी लगाकर देखा गया और दोनों उछलकर चलने फिरने लगते हैं। अंतर यह है कि यह आश्चर्यकर्म अन्यजातीय लोगों के बीच है। १४ : १२ "ज्यूस"—यूनानी देवताओं का प्रधान। यह आकाश का देवता माना जाता था। लातीनी नाम 'यूपितर' है। बरनबास गंभीर और शांत व्यक्तित्व का दिखाई दिया। इसलिये उसे ज्यूस माना गया। "हिरमेस"—यह ज्यूस का पुत्र और देवताओं का संदेशवाहक माना जाता था। यह वक्तृत्वकला का संरक्षक देवता था। लातीनी नाम 'मरकरी' है। यह स्वाभाविक ही है कि पौलुस को हिरमेस माना जाए। १४ : १३ "मंदिर" शब्द मूल यूनानी में नहीं है परंतु निहित मानना आवश्यक है। "फूलों के हार" प्रेरितों के लिये नहीं हैं वरन बलि के बैल को पहनाने के लिये हैं। "फाटक" का अर्थ मंदिर के फाटक या नगर के फाटक अथवा उस घर के फाटक जहां पौलुस और बरनबास ठहरे थे हो सकता है। परंतु अधिक संभव नगर के फाटक हैं जहां लंगड़ा मनुष्य बैठा था। १४ : १४ "कपड़े फाड़ना"—अपने पैरों से धूल झाड़ना के समान कपड़े फाड़ना भी ईश-निंदा के प्रति विरोध प्रकट करने के लिये किया जाता था (दे. मर. १४ : ६३)। १४ : १५-१७ में पौलुस का भाषण उन लोगों को है जिनको यहूदी धर्म की कोई जानकारी नहीं थी। इसी प्रकार का भाषण प्रे. १७ : २२-३१ में है। यह भाषण जनसाधारण को दिया गया है। परंतु यह वर्ग अयहूदी लोगों का है। यह भाषण तात्कालिक भाषण है। इस भाषण की निम्नांकित विशेषताएं हैं : जीवित, सृष्टिकर्ता और भलाई करनेवाले और रक्षा करने वाले परमेश्वर का वर्णन है। साथ ही यह बताया गया है कि सारी सृष्टि से सर्वत्र परमेश्वर की गवाही मिलती है। ख्रिस्त का इस भाषण में नाम तक नहीं है। इस भाषण से हमें यह ज्ञान मिलता है कि इससे पूर्व कि मनुष्य ख्रिस्त के विषय समझ सकें उनको एक सिरजनहार, सच्चे, कृपालु, रक्षक परमेश्वर पर विश्वास करना आवश्यक है। दूसरे

शब्दों में यों कहें कि नया नियम के परमेश्वर को समझने के लिये पुराना नियम के नैतिक एकेश्वरवाद को समझना आवश्यक है। यह भी द्रष्टव्य है कि इस भाषण में मूर्तिपूजा के प्रति कटु आलोचना के उपागम को नहीं अपनाया गया है, जैसा हम पुराना नियम के कुछ स्थलों में देखते हैं (दे. भ. ११५ : ४; १३५ : १५-१७)। "हम दुख सुख... मनुष्य हैं"—इन शब्दों से प्रेरितों की नम्रता व्यंजित होती है। साथ ही यह एक सत्य भी है। **४१ : १५** "सुसमाचार"—प्रेरितों के काम के अन्य स्थलों में इस शब्द का अर्थ 'मसीही सुसमाचार' है। यहां सुसमाचार यह है कि 'परमेश्वर सृष्टिकर्ता है और भला है, और उसकी ओर लौटना आवश्यक है। "व्यर्थ वस्तुओं"—अर्थात मूर्तियों और प्रतिमाओं। **१४ : १६** "सब जातियों को चलने दिया"—इसमें भाव यह है कि अन्य-जातियों की अज्ञानता के कारण परमेश्वर ने उनकी मूर्तिपूजा को दृष्टि ओट किया। इसमें यह भाव भी निहित है कि अब वे अज्ञानता के बहाने की शरण नहीं ले सकते इसलिये उनको सच्चे परमेश्वर की ओर फिरना है (तु. १७ : ३०; रो. ३ : २५)। **१४ : १७**—दे. रो. १ : २०।

१४ : १६ "अंताकिया" लुस्त्रासे कोई १५० किलोमीटर दूर था और "इकुनियुम" से कोई ३२ किलोमीटर दूर। इस पद से पौलुस और इसके संदेश के प्रति यहूदियों की तीव्र द्वेष भावना व्यंजित होती है। "लोगों को अपनी ओर कर लिया"—प्रे. के काम में भीड़ के मनोविज्ञान का स्पष्ट चित्रण है, जैसे यहां है। "पत्थरवाह किया"—दे. २ कुर. ११ : २५। **१४ : २०** "दिरबे"—यह नगर कदाचित लुस्त्रा के दक्षिणपूर्व में कोई ३२ किलोमीटर की दूर पर था। **१४ : २१-२५** में अंताकिया को लौटने की यात्रा का वर्णन है। प्रेरित चार काम करते हैं: चेलों के मन को दृढ़ करना; विश्वास में बने रहने के उपदेश; क्लेश में विजय प्राप्ति से परमेश्वर के राज्य में प्रवेश करने की सजगता; प्राचीनों की नियुक्ति कर उनको प्रभु के हाथ सौंपना। "परमेश्वर का राज्य"—दे. १ : ३ की टीका। "प्राचीन"—प्रेरितों के काम में १० बार यह शब्द मंडली के अगुवों के लिये प्रयुक्त हुआ है (११ : ३०; १४ : २३; १५ : २, ४, ६, २२, २३; १६ : ४; २० : १७; २१ : १८)। मूल यूनानी शब्द 'प्रिसबुतिर' है। विस्तृत अध्ययन के लिये पढ़िए एच. के. मोल्टन, दी एक्ट्स ऑफ अपोस्ल्स, पृष्ठ २२७-२२८। "पिसिदिया"—दे. १३ : १४। "पंफूलिया"—दे. १३ : १३ की टीका। "पिरगा"—दे. १३:१३, १४ की टीका। **१४ : २६-२८** पौलुस और बरनबास कलीसिया के केन्द्र स्थान अंताकिया में लौट आते हैं। **पद २७** में ख्रिस्तीय कलीसिया के इतिहास की प्रथम मिशनरी मीटिंग है जिसमें मिशनरी लौटकर परमेश्वर ने उनके द्वारा जो बड़े काम किए उनका हृदय को उमंगित करने वाला वर्णन करते हैं, और यह बताते हैं कि परमेश्वर ने अन्य जातियों के लिये "विश्वास का द्वार खोल दिया है"।

१४ : २८ "बहुत दिन"—विद्वानों का कहना है कि इसी अवधि में पौलुस ने गलतिया निवासियों को, अर्थात उन मंडलियों को जिनको अभी हाल में वह स्थापित करके आया था, पत्री लिखी। ऐसा प्रतीत होता है कि पौलुस को सूचना मिली कि यहूदी

मसीही शिक्षक गलतिया पहुँचे और उनसे कहा कि विश्वास के साथ उनको खतने की भी आवश्यकता है (दे. गल. १ : ५-९; ३ : १ क्र.)। १५ : १ से पता चलता है कि ऐसे शिक्षक अंताकिया भी आए और पतरस को भी उन्हों ने अपनी तरफ कर लिया (गल २ : १२)। अतः पौलुस ने एक ओर तो पत्र लिखा और दूसरी ओर यरूशलेम गया ताकि याकूब तथा सब भाइयों से इस विषय का स्पष्टीकरण कराए। इसका विकल्प भी विद्वान प्रस्तुत करते हैं। विस्तृत अध्ययन के लिये देखिए नया नियम की भूमिका पृष्ठ १७२-१७६।

५. मंडलियों को दृढ़ करना—यरूशलेम की सभा १५ : १-३५

(१) यरूशलेम की सभा (१५ : १-२९)। (२) सभा का पत्र और प्रतिनिधि-मंडल (अंताकिया, सूरिया और किलिकिया को) (१५ : २२-२९)। (३) पत्र का प्रभाव (१५ : ३०-३५)।

टिप्पणी—प्रेरितों के काम की पुस्तक के १५वें अध्याय के संबंध में इतनी समस्याएं खड़ी की गई हैं जितनी किसी अध्याय के संबंध में नहीं। यहां तक कहा गया है कि लूका ने अपने वर्णन में बड़ा गड़बड़ झाला किया है और उसने वादविवाद को पूर्णरूप से समझा ही नहीं है। परंतु यरूशलेम की सभा तक जिन घटनाओं का वर्णन किया गया है, और १२ : १ क्रमिक पदों के संबंध में जो टिप्पणी दी गई है और जो तिथिक्रम बताया गया है, और यरूशलेम की सभा और गलतियों की पत्री के वर्णनों के बीच जो संबंध प्रस्तुत किया गया है (दे. ११ : ३० की टीका), इनसे यह स्पष्ट होता है कि **वादविवाद के दो विषय** हैं, और यदि लूका के वर्णन में किसी प्रकार की अस्पष्टता है तो वह इस कारण है कि वह इन दो विषयों को वह पृथक नहीं रखता। सभा के सामने वादविवाद के विषय थे : (१) कट्टर यहूदीवादी मसीही कहते थे कि कलीसिया में प्रवेश के पूर्व अन्यजातीय कन्वर्ट व्यक्तियों को खतना कराना आवश्यक है। इनका वाद १५ : १ में प्रस्तुत है। ये लोग हृदय की सच्चाई से यह मानते थे। इनके तर्क कदाचित यह थे कि मूसा की व्यवस्था के अनुसार खतना न कराया जाए तो यहूदी सुसमाचार राष्ट्रीयता से वंचित (denationalise) हो जाएगा, मसीह अयहूदी उद्धार कर्ता मान लिया जाएगा, और उद्धार सामाजिक (इस्राएल समाज का) न होकर केवल व्यक्तिगत रह जाएगा। इस समस्या के कारण मसीही धर्म के सार्वलौकिक धर्म न रह जाने का खतरा था।

(२) गल. २ : ११-१४ से विदित होता है कि लगभग उसी समय यहूदी और अन्यजातीय मसीहियों के बीच सामाजिक व्यवहार की समस्या उत्पन्न हुई। यह समस्या भोजन से संबंधित थी। पतरस भी इसके संबंध में बहक गया था (गल २ : ११-१२)। यह बड़ी गंभीर बात थी क्योंकि मसीहियों के सहभोज और प्रेमभोज में ही मसीही सहभागिता की गहरी अभिव्यक्ति होती थी। अतः इस समस्या के कारण कलीसिया में विभाजन का खतरा था।

इन दोनों समस्याओं का निर्णय ११ : १-१८ में मानो किया जा चुका है। परंतु अब वे बड़े ही तीव्र रूप में सामने आईं। यरूशलेम की सभा में जो निर्णय हुआ

वह एक मध्यम मार्ग था। न तो वह रूढ़िवादियों के पक्ष में था और न पूर्णत: प्रगतिवादियों के पक्ष में। परंतु इस सभा के निर्णय से लेकर आज तक की सभाओं के निर्णयों से यह स्पष्ट होता है कि मनुष्यों की सभाओं के सतर्क और बहुधा अनाड़ी निर्णयों के माध्यम से परमेश्वर अपने अभिप्राय में प्रगतिशील है।

१५ : १ "कितने लोग यहूदियों से आकर"—कदाचित ये वही लोग हैं जिनका गल २ : १२ में उल्लेख है। पौलुस कहता है कि ये 'याकूब' की ओर से आये थे। प्रे. १५ : २४ में यरूशलेम की कलीसिया मानती है कि ये यरूशलेम की कलीसिया के थे परंतु उनको अंताकिया में गड़बड़ी करने की आज्ञा नहीं दी गई थी। १५ : २ "हममें से कितने और व्यक्ति"—प्रश्न उठता है कि क्या इनमें लूका भी सम्मिलित था ? "प्रेरितों और प्राचीनों" के लिये देखिए ६ : २ की टीका और ११ : ३०। वर्तमान प्रसंग में यह छ: बार प्रयुक्त हुआ है (दे. १५ : २, ४, ६, २२, २३, और १६ : ४)। **१५ : ३** "फीनीके"—पूर्वी भूमध्यसागर पर समुद्री किनारे की सकरी पट्टी। आजकल इसे लेबनान कहते हैं। सूर और सीदोन इस प्रांत के प्रमुख नगर थे। स्तिफनुस के पत्थरवाह किए जाने के उपरांत मसीही लोगों ने वहां प्रचार किया था (प्रे. ११ : १९)। "सामरिया" में फिलिप्पुस ने प्रचारकार्य किया था (दे. प्रे. ८ : ४ क्र.)। "मन फेरने" के लिये पद-टिप्पणी देखिए "दीक्षित होने'। अंग्रेजी में 'कन्वर्शन' (conversion) शब्द है जिसमें मन-परिवर्तन और मत-परिवर्तन दोनों भाव हैं। **१५ : ५** और १५ : १ में विषमता ध्यान देने योग्य है। यहां यह नहीं कहा गया है कि 'खतना बिना उद्धार नहीं'।

१५ : ७-११ बहुत वाद-विवाद के बाद "पतरस" बड़ी निर्भीकता से फरीसी-दलीय मसीहियों के विपक्ष में अपने अनुभव का तर्क देकर पौलुस और बरनबास का समर्थन करता है (दे. प्रे. १० : ४४-४७)। खतना रहित अवस्था में अन्यजातियों को पवित्र आत्मा और बपतिस्मा दिया गया। **१५ : ८** "मन के जांचनेवाले" के लिये दे. १ : २४। "उन की गवाही दी"—हि. सं. का अनुवाद है "उनके पक्ष में साक्षी दी'। **१५ : १०** "क्यों परमेश्वर की परीक्षा करते हो ?"—दे. ५ : ९ की टीका। "जूआ रखना"—यहूदियों के लिये धार्मिक कर्तव्य को व्यक्त करने के लिये यह एक मुहाविरा था। यहां 'जूआ' का आशय मूसा की व्यवस्था से है। **१५ : ११** में वाद-विवाद का निष्कर्ष है। व्यवस्था से नहीं, अनुग्रह से ही उद्धार है (दे. गल २ : १६; इफ. २ : ४-१०)।

१५ : १२ में पौलुस और बरनबास के व्यावहारिक कार्य की साक्षी का समर्थन है। **१५ : १३-२१** याकूब का निष्कर्ष और सभा का निर्णय है। "याकूब" के लिये देखिए प्रे. १२ : १७ की टीका। **१५ : १४** "शमौन" पतरस का इब्रानी नाम है। **१५ : १५** "भविष्यद्वक्ताओं की पुस्तक" अर्थात १२ छोटे नबियों की पुस्तक। **१५ : १६** में उद्धरण आमोस ९ : ११, १२ से है। "दाऊद का गिरा हुआ डेरा उठाने" में मसीही कलीसिया (नई इस्राएल) की ओर संकेत है। **१५ : १७** "जो मेरे नाम के

कहलाते हैं" के लिये दे. यश. ४३ : ७; यि. १४ : ९ और दा. ९ : १९। इनमें अन्य-जातीय लोग भी सम्मिलित हैं। १५:१९ "हम उन्हें दुख न दें"—हिं. सं. अनुवाद है 'हम उन्हें उलझन में न डालें'। मूल यूनानी शब्द का अर्थ 'उलझन' यहां अधिक सार्थक है। १५:२० इस अध्याय का सब से कठिन पद है। कोदेक्स बेजै (Codex Bezae) मूलपाठ में "गला घोटे हुओं के मांस से" शब्द नहीं पाए जाते, और उनमें ये अतिरिक्त शब्द पाए जाते हैं: "जो वे नहीं चाहते कि लोग उनके साथ करें, वे उनके साथ न करें"।

यदि "गला घोटे हुए मांस से" शब्द इस पद में स्वीकृत किए जाएं तो चार बातों से अन्यजातीय मसीहियों को परे रहना है: मूरतों की अशुद्धताओं, व्यभिचार, गला घोटे हुओं के मांस, और लोहू से। तब यह सारा आदेश भोजन संबंधी हो जाता है। "मूरतों की अशुद्धताओं" का अर्थ होगा वे भोज जिनमें वह मांस परोसा जाता है जो पहले मूर्तियों को चढ़ाया जाता है (तु. १ कुर. ८ : १०; १० : १९; प्रक. २ : १४)। "व्यभिचार" से अर्थ होगा मूर्तिपूजा से संबंधित भ्रष्ट प्रथाएं। "लोहू" का अर्थ होगा यहूदी नियमों के प्रतिकूल वध किए पशुओं का रक्त।

यदि "गला घोटे हुओं के मांस से" शब्द हम न स्वीकृत करें तो तीन बातों की मनाही की जा रही है: मूर्तिपूजा, यौन व्यभिचार और हत्या, जो मूसा की व्यवस्था की दूसरी, सातवीं और छठवीं आज्ञाएं हैं। इन तीनों के संबंध में अन्यजातीय लोगों का चरित्र गिरा हुआ था।

विद्वानों में इस विषय पर बड़ा मत-वैभिन्न्य है कि यरूशलेम की सभा ने जो निर्णय किया है वह भोजन संबंधी है अथवा आचरण संबंधी। पौलुस ने इस निर्णय को कैसे स्वीकार कर लिया? विद्वानों में इस प्रश्न पर भी मत-वैभिन्न्य है। कुछ विद्वान कहते हैं कि पौलुस केवल भोजन संबंधी प्रतिबंध स्वीकार नहीं करता। नैतिक नियम की दृष्टि से भी यह निर्णय अपर्याप्त है। फिर भी पौलुस संतुष्ट हुआ। बात यह है कि सुसमाचार प्रचार की उद्देश्य-पूर्ति में पौलुस छोटी छोटी गौण बातों में समझौता करने के लिये नहीं हिचकता (दे. १६ : ३; १ कुर. ९ : २२, २३)। कदाचित पौलुस ने यह सोचा कि इस निर्णय को स्वीकार करने से अन्यजातीय मसीहियों की बिना हानि किए यरूशलेम की कलीसिया का विश्वास प्राप्त कर लेगा। मूल विश्वास की बातों में पौलुस कभी समझौता नहीं करता। १५:२१ याकूब के तर्क को समझना कठिन है। एक विद्वान ने निम्न लिखित अर्थ दिए हैं: (क) यहूदी व्यवस्था के प्रचारक कम नहीं है, इसलिये यरूशलेम की कलीसिया को मूसा की व्यवस्था के प्रचार के विषय चिंतित नहीं होना चाहिये। (ख) प्रत्येक नगर में भक्त यहूदी विद्यमान हैं और उनके साथ कुछ सामान्य संपर्क बनाना आवश्यक है। (ग) "नगर नगर" शब्दों का संबंध पद १७ से है, और कि नगर नगर के सभाघर इस आशय से स्थापित हैं कि वे अन्यजातीय तथा यहूदी सब को परमेश्वर के सत्य का प्रचार करें। तीनों अर्थों से हम कुछ न कुछ सीख सकते हैं।

(२) १५ : २२-२९ में अन्यजातीय मंडलियों को परिपत्र है । १५ : २२ "अच्छा लगा"—इसके लिये मूल यूनानी शब्द का प्रयोग 'मतदान से निर्णय हुआ' के लिये काम में आता है । "यहूदा जो बरसब्बा"—यह कदाचित प्रे. १ : २३ में उल्लिखित 'यूसुफ जो बरसबा कहलाता है' का भाई था । "सीलास"—पौलुस की द्वितीय मिशनरी यात्रा का साथी । १५ : २२ और १८ : ५ के बीच इसका नाम १२ बार आया है । संभाव्य है कि इसका लातीनी नाम सिलवानुस था (दे. १ थिस. १ : १; २ थिस. १ : १; १ पत. ५ : १२) । पौलुस के समान यह भी रोमी नागरिक था । "पौलुस और बरनबास के साथ भेजें"—यरूशलेम की कलीसिया के प्रतिनिधि अंताकिया की मंडली में दोनों पक्षों के लिये समाधान का साधन होंगे । **१५ : २३** "अंताकिया" के लिये दे. ६ : ५ की टीका । "सूरिया"—यह अराम देश का यूनानी नाम था । यह देश पलिश्तीन के उत्तर पूर्व में था । नया नियम काल में सूरिया रोमी प्रांत था जिसके अंतर्गत सारा पलिश्तीन था । सूरिया मृतक सागर के उत्तर का समग्र भाग था । इसका तथा किलिकिया का प्रशासन साथ ही होता था । "किलिकिया" के लिये देखिए ६ : ९ की टीका । **१५ : २४** के लिये देखिए १५ : १ की टीका । **१५ : २५** "प्यारे"—यह शब्द प्रे. के काम में केवल यहीं प्रयुक्त हुआ है । नया नियम की पत्रियों में यह सामान्य रूप से प्रयुक्त है । यहां भी यह पत्री में प्रयुक्त है । **१५ : २६** में प्रशंसा और सिफारिश दोनों हैं । भारत की मंडली को सच्ची प्रशंसा करने की आदत डालना चाहिये । **१५ : २८** "पवित्र आत्मा. . .ठीक जान पड़ा" —यह निर्णय पवित्र आत्मा की प्रेरणा से हुआ है । यह निर्णय मनुष्यों की बुद्धि के माध्यम से हुआ परंतु केवल मानवीय निर्णय नहीं था (तु. प्रे. ५ : ३२) । **१५ : २९** के लिये देखिए १५ : २० की टीका । "आगे शुभ" —यूनानी पत्र-प्रथा में पत्र का अंत इन्हीं शब्दों में किया जाता था । पत्र के आरंभ में 'नमस्कार' है, और यह भी यूनानी पत्र-प्रथा के अनुकूल है ।

(३) निर्णय और पत्र का प्रभाव (१५ : ३०-३५) । "वे" अर्थात चार जन जिनके नाम १५ : २० में हैं । "भविष्यवक्ता"—दे. ११ : २७ की टीका । **१५ : ३४** पद कोष्टक में है । यह पद अनेक प्राचीन मूललिपियों में नहीं मिलता । पद ३३ में लिखा है कि यहूदा और सीलास बिदा हुए । परंतु पद ४० में बताया जाता है कि पौलुस अंताकिया से सीलास के साथ द्वितीय प्रचार-यात्रा पर गया । इसीलिये कुछ प्रतियों में १५ : ३४ में लिखा गया कि "सीलास को वहां (अंताकिया में) रहना अच्छा लगा" ।

६. कलीसिया का विस्तार - पौलुस की दूसरी मिशनरी यात्रा (१५ : ३६—१८ : २२)

(१) पौलुस और बरनबास में मतभेद, पौलुस की गलतिया की मंडलियों से पुनः भेंट (१५ : ३६-१६-१०) । (२) यूरोप में विस्तार : फिलिप्पी (१६ : ११-४०) । (३) थिस्सलुनीके से अथेने तक (१७ : १-३४) (४) कुरिंथुस (१८ : १-१७) । (५) इफिसुस में प्रवेश, यात्रा की समाप्ति (१८ : १८-२२) ।

(१) पौलुस और बरनबास में मतभेद, पौलुस की गलतिया की मंडलियों से पुनः भेंट १५ : ३६-१६ : १० ।

१५ : ३६ "पौलुस ने. . .कैसे"—दो बातें इस पद में दर्शनीय हैं : एक, अब पौलुस प्रमुख हो गया है, वह पहल करता है; दूसरी, पौलुस का पास्तरीय हृदय (दे. २ कुर. ११ : २५-२७)। इनके साथ हमें पौलुस के सुसमाचार-प्रचार उत्साह को भी हमें स्मरण रखना चाहिये। १५ : ३७ "यूहन्ना जो मरकुस कहलाता है"—दे. १२ : ५ की टीका। १५ : ३८ के लिये दे. १३ : १३। १५ : ३९ "टंटा हुआ"—संभव है कि इस टंटा का कारण केवल मरकुस का साथ छोड़ देना नहीं था। गलतियों २ : १३ से पता चलता है कि बरनबास भी अन्यजातीय लोगों के मसीही कलीसिया में प्रवेश की समस्या पर 'कपट में पड़ गया था'। यह मत-वैभिन्न्य कदाचित मूल कारण था। यह टंटा बहुत समय तक नहीं रहा। बाद में पौलुस बरनबास का उल्लेख करता है (१ कुर. ९ : ६; कुल. ४ : १०)। मरकुस से भी वह स्नेह करता है (२ तीम. ४ : ११)। प्रेरितों के काम में इस पद के पश्चात बरनबास का उल्लेख नहीं है। "कुप्रुस"—यह टापू बरनबास की मातृभूमि था (दे. ४ : ३६)। १५ : ४० "सीलास"—दे. १५ : २२ की टीका। "सौंपा जाकर चला गया"—लूका यह संकेत करता है कि कलीसिया पौलुस के साथ है। बरनबास के लिये केवल यह लिखा है "चला गया"। १५ : ४१ 'स्थिर करता हुआ" के साथ कोदेक्स बेज़े और अन्य पश्चिमी प्रतियों में यह भी है : 'प्राचीनों के आदेशों को सुनाता हुआ'। परंतु ये तो लिखित रूप में पहले ही सूरिया और किलिकिया के क्षेत्रों में पहुंच गए थे (१५ : २३)।

१६ : १ "दिरबे और लुस्त्रा"—दे. १४ : ६ की टीका। "वहां"—दिरबे या लुस्त्रा में ? विद्वानों में मतभेद है। "तीमुथियुस"—यहां से पौलुस के शेष जीवन में यह जवान पौलुस का साथी रहा। प्रे. के काम में १७ : १४-१५; १८ : ५; १९ : २२; २० : ४ में इसका उल्लेख है। २ कुरिंथियों, फिलिप्पियों, १ और २ थिस्सलुनीकियों, और फिलेमोन को पत्रियां लिखते समय यह पौलुस के साथ था। पौलुस की अन्य पत्रियों और इब्रानियों में भी इसका अनेक स्थलों में उल्लेख है। "चेला"—संभव है कि पौलुस की प्रथम यात्रा के समय तीमुथियुस कनवर्ट हुआ था। "विश्वासी यहूदिनी"—२ तीम. १ : ५ में उसका नाम 'यूनीके' बताया गया है। विश्वासी शब्द में यह अर्थ है कि वह मसीही धर्म में विश्वास करती थी।

१६ : ३ "उसका खतना किया"—अभी कुछ समय पहले पौलुस ने बड़े जोरदार रूप में कहा था कि खतने की आवश्यकता नहीं है। यह बड़ा विचित्र जान पड़ता है कि पौलुस ने तीमुथियुस का खतना किया। एक विद्वान का कथन है : 'इसमें पौलुस की परिस्थिति-अनुकूलता का अभिव्यक्ति है'। सैद्धांतिक रूप से पौलुस इस पर दृढ़ था कि उद्धार के लिये खतना की आवश्यकता नहीं है। यहां समाज के प्रति व्यवहार की कुशलता दिखाई पड़ती है। खतना करने से तीमुथियुस की उपयोगिता कहीं अधिक हो जाती है। उस समय यहूदी मसीहीयत से निकलकर मसीही धर्म सार्वलौकिक धर्म बन रहा था और सुसमाचार प्रचार के लिये बाह्य विधि में कट्टरता से हानि होने की आशंका थी। हम उस व्यक्ति से कट्टरता की अपेक्षा नहीं करते जिसने १ कुर. ९ : २०-

२२ पदों को लिखा। १६ : ४ "उन विधियों को" के लिये दे. १५ : २०। "प्रेरितों" —प्रेरितों के काम में 'प्रेरितों' का यह अंतिम उल्लेख है।

१६ : ६-७ इन पदों में लूका की शब्दावली से पौलुस के यात्रा मार्ग को समझने में कठिनाई होती है। दूसरी मिशनरी यात्रा को ठीक से समझने के लिये देखिए बाइबल मानचित्रावली (एटलस) नक्शा नं. १७ और १८। "फ्रूगिया और गलतिया देशों" —इस पद के संबंध में विद्वानों में बहुत अधिक वाद-विवाद मिलता है। निम्नलिखित मान्यता स्वीकृत की जा सकती है। 'एशिया माइनर में फ्रूगिया एक प्राचीन राज्य था। गौल की एक जाति ने (अथवा गलती जाति) ई. पू. २७८ में इस पर आक्रमण किया। ई. पू. २५ में रोमी लोगों ने इस क्षेत्र को ले लिया और गलतिया नामक प्रांत बनाया जिसकी सीमाएं गौल जाति के राज्य से भिन्न थीं। रोमी गलतिया प्रांत में फ्रूगिया का कुछ दक्षिणी भाग आ गया और पुराने फ्रूगिया का अधिकांश क्षेत्र एशिया नामक रोमी प्रांत में आ गया। लूका का आशय कदाचित है—फ्रूगिया का वह क्षेत्र जो गलतिया प्रांत में था'। "एशिया में वचन सुनाने से मना किया"—'एशिया' के लिये देखिए प्रे. २ : ९ और ६ : ९ और उनकी टीका। एशिया रोमी प्रांत था। इसके अंतर्गत मूसिया, लुदिया और कदाचित केरिया क्षेत्र सम्मिलित थे। ई. पू. ११६ में प्राचीन फ्रूगिया का कुछ भाग इसके अंतर्गत आ गया। इस पद से ऐसा प्रतीत होता है कि वे एशिया पहुँच गए थे और वहां पवित्र आत्मा ने उनको मना किया। परंतु एशिया में आने के लिये उनको फ्रूगिया और गलातिया में से होकर आना पड़ता। अतः यह अर्थ लगाया जाता है कि जब वे लुस्त्रा और इकुनियुम में थे तभी उनको पवित्र आत्मा की प्रेरणा प्राप्त हो गई थी।

लूका यह प्रस्तुत करता है कि पौलुस के जीवन में सब बड़े मोड़ों पर उसे ईश्वरीय मार्गदर्शन प्राप्त हुआ (दे. ९ : ३-५; ११ : २८; १३ : २; १६ : ९; १९ : २१; २१ : ११; २२ : १७-२१; २३ : ११)।

१६ : ७ "मूसिया"—यह एशिया प्रांत का पश्चिमोत्तर भाग था। "बितूनिया"—यह प्रांत फ्रूगिया प्रांत के उत्तर में और काला सागर के दक्षिण में था। यह वही प्रांत था जिसका हाकिम या राज्यपाल प्लिनी दी यंगर (Pliny the younger) था जिसने ई. स. ११३ में त्रयान सम्राट को एक सुप्रसिद्ध पत्र लिखा जिसमें मसीहियों की स्थिति और सताव का वर्णन मिलता है। "यीशु के आत्मा"—यह पद नया नियम में और कहीं नहीं मिलता। १६ : ६ में पौलुस पवित्र आत्मा के संबंध में कहता है। पवित्र आत्मा और यीशु का आत्मा एक ही हैं। पौलुस परमेश्वर के मार्गदर्शन में ही कार्य करता है। एक टीकाकार 'यीशु के आत्मा' के संबंध में एक बड़ा सुंदर प्रश्न करता है : क्या लूका के कथन में यह निहित है कि पौलुस को यीशु का दर्शन हुआ जैसे २३ : ११ में होता है? (दे. २ कुर. ३ : १७)। १६ : ८ "त्रोआस" में आए—इस पद से प्रतीत होता है कि मूसिया में उन्हों ने प्रचार नहीं किया। त्रोआस—यह एशिया माइनर के पश्चिमोत्तर समुद्री किनारे पर एक बंदरगाह था। यहां से यूरोप को जाते थे। पौलुस

यहां तीन बार और आया (दे. २ कुर. २ : १२; प्रे. २० : ५, ६ और २ तीम. ४ : १३)। **१६ : ६** "एक मकिदूनी पुरुष"—डबल्यु. एम. रेमज़े नामक विद्वान का सुंदर अनुमान है कि यह पुरुष लूका स्वयं था, कि लूका फिलिप्पी नगर का था, और कि लूका पौलुस को त्रोआस में मिला और पौलुस के मन में विचार डाला कि वह मकिदुनिया आकर प्रचार करे।

११ : २८ में कोदेक्स बेजै मूल प्रति का पाठ यह है : 'और वहां बड़ा आनंद मनाया। और जब हम एकत्रित हुए, तो उनमें से अगबुस नाम एक (भविष्यवक्ता) ने बताया. . .'। इससे पता चलता है कि लूका अंताकिया में था। विद्वानों का कथन है कि लूका यदि अंताकिया का निवासी भी हुआ तब भी वह फिलिप्पी नगर से प्रार्थना लेकर आ सकता था कि पौलुस मकिदुनिया आए। "मकिदुनिया"—नया नियम काल में एक रोमी प्रांत था जो एजियन समुद्र से एड्रिएटिक समुद्र तक फैला था। आजकल बालकन प्रायःद्वीप कहलाता है। इसमें वे भूभाग सम्मिलित थे जो आजकल यूनान, अल्बानिया और यूगोस्लाविया कहलाते हैं। **१६ : १०** "हम"—प्रेरितों के काम में यह 'हम' सर्वनाम का पहिला प्रयोग है। 'हम' शब्द से यह बोध होता है कि लेखक अर्थात लूका उनमें सम्मिलित है, और यहां से लेखक मानो आंखों देखा वर्णन कर रहा है।

(२) यूरोप में विस्तार : फिलिप्पी नगर में पहुंचना (१६ : ११-४०)

१६ : ११ "सुमात्राके"—यह त्रोआस और मकिदुनिया के समुद्री तट के बीच एक द्वीप है। त्रोआस से लगभग १०० किलोमीटर दूर। इसमें ५००० फुट ऊंचा पर्वत आज भी मल्लाहों के लिये एक प्रमुख निशान है। "नियापुलिस"—फिलिप्पी नगर से लगभग १६ किलोमीटर दूर एक बंदरगाह। इस शब्द का अर्थ है 'नया नगर'। वर्तमान नाम 'कवल्ला' है। **१६ : १२** 'फिलिप्पी"—इस शब्द का अर्थ है 'प्रथम नगर' यह नगर मकिदुनिया क्षेत्र का मुख्य नगर था। "रोमियों की बस्ती" (हिं. सं. रोमी उपनिवेश)—रोमी साम्राज्य में ऐसे भागों के नगरों में जहां साम्राज्य का प्रभाव कम होना था ऐसी बस्तियां बसाई जाती थीं जिनमें अधिकांश रोमी सेना के अवकाश प्राप्त पदाधिकारी और योद्धा रहते थे। इस प्रकार के नगरों में व्यापारी वर्ग के लोगों को विशेष प्रलोभन दिया जाता था कि वहां आकर बसें और व्यापार करें। फिलिप्पी इस प्रकार का नगर था और उसमें ऐसी बस्ती थी। इस नगर में तीन वर्ग के लोग थे : अधिकांश यूनानी जनता, रोमी नागरिक और एशिया के प्रवासी या व्यापारी। रोमी उपनिवेश होने के कारण फिलिप्पी नगर को तीन अधिकार प्राप्त थे : स्वायत्तशासन, साम्राज्यीय कर से छूट, और रोमी नागरिक अधिकार। यह नगर 'नियापुलिस' नगर से १६ किलोमीटर दूर था। इस नगर की स्थापना ई. पू. ३६० में सिकंदर महान के पिता फिलिप ने की थी। **१६ : १३** "प्रार्थना करने का स्थान"—फिलिप्पी नगर में यहूदी जनता बहुत कम थी। इसलिये उनका कोई सभाघर नहीं था। अतः सबत के दिन खुले स्थान में नदी के किनारे प्रार्थना के लिये यहूदी लोग एकत्र होते होंगे। "बैठकर" —जैसे गुरु बैठते हैं (दे. लूका ४ : २०)। "स्त्रियों से. . .बातें करने लगे"— स्त्रियों

में अधिक भक्ति भावना और धार्मिक प्रवृत्ति होती है। यहूदी आराधना में स्त्रियां भाग लेती थीं। इस पद से यह भी संकेत होता है कि मकिदुनियां में स्त्रियां अधिक स्वतंत्र थीं। १६ : १४ "लुदिया"—यह यूरोप में प्रथम मसीही विश्वासी है। "थुआ-तीरा"— यह नगर एशिया माइनर में था। यह लुदिया प्रांत का एक नगर था। यह बैंजनी रंग और वस्त्र के लिये प्रसिद्ध था। १६ : १५ "घराने समेत"—इसमें परिवार के लोग और गुलाम आदि सब होंगे। १६ : १६ "भावी कहनेवाली आत्मा"—शब्दश: 'एक आत्मा, एक अजगर' है। यूनान में यह माना जाता था कि यूनानी देवता अपोलो का डेलफी नामक स्थान में अजगर के रूप में साकार रूप है। अपोलो देवता की नबिया उस अजगर के ऊपर चट्टानी गुफा में बैठती थी और प्रश्नकर्ता भक्तों को पहेली जैसे उत्तर देती थी। उन उत्तरों की व्याख्या पुरोहित करता था। "कमा लाती थी"—भावी कहनेवाले लोग अज्ञानी और अंधविश्वासी लोगों से अच्छी कमाई कर लेते थे। ज्ञानी और राजनीतिज्ञ भी इनसे बच नहीं पाते थे। १६ : १७ "पौलुस और हमारे"—इस पद के बाद, प्रथम पुरुषवाचक सर्वनाम का प्रयोग २० : ६ तक नहीं होता जिससे संकेत होता है कि लेखक पौलुस के साथ इस पद के बाद नहीं है (दे. २१ : १८ भी)। "परमप्रधान परमेश्वर" (हि. सं. सर्वोच्च परमेश्वर) —दे. ७:४८ की टीका; तु. लू. ८ : २८। यहूदी श्रोताओं के लिये यह परमेश्वर यहोवा लेकिन यूनानी श्रोताओं के लिये ज्यूस देवता है।

उद्धार—जैसे विभिन्न श्रोताओं के लिये 'परमप्रधान परमेश्वर' का अर्थ भिन्न था, उसी प्रकार 'उद्धार' शब्द का भी यहूदी और यूनानी एवं रोमी श्रोताओं के लिये भिन्न अर्थ था। १६ : १९ "स्वामियों" (पद १७ में भी)— कुछ विद्वानों का विचार है कि बहुवचन अनावश्यक है। बहुवचन से प्रतीत होता है कि वह किसी संगठन की सेवा में थी। उनका कहना है कि स्वामियों का अर्थ है 'दासी के मालिक-मालकिन'। "पौलुस और सीलास"—दोनों यहूदी और प्रमुख प्रचारक थे। लूका और तीमुथियुस को नहीं पकड़ा; कदाचित इसलिये भी कि लूका यूनानी था और तीमुथियुस आधा यूनानी। "प्रधान" (हि. सं. शासक)—यूनानी नगरों में नगरपालिका के अधि-कारियों के लिये यह सामान्य शब्द था। अगले पद में इनको 'फौजदारी के हाकिम' (हि. सं. दंडाधिकारी) अर्थात न्यायाधीश कहा गया है। १९ : २० "ये लोग जो यहूदी हैं. . .रहे है"—यहूदी धर्म रोमी साम्राज्य में मान्यता प्राप्त धर्म था परंतु रोमी लोगों को प्रचार और रोमी लोगों का धर्मपरिवर्तन नहीं किया जा सकता था। १६ : २२-२४ वर्णन से स्पष्ट है कि पौलुस और सीलास के प्रति न्याय नहीं किया गया। २ कुर. ११ : २५ में पौलुस तीन बार बेत खाने का उल्लेख करता है। यह उनमें से एक प्रसंग है। १६ : २५-३४ दरोगा के कनवर्शन का अत्यंत चित्रोपम और सशक्त वर्णन है। विशेष टीका की आवश्यकता नहीं है। १६ : २७ "दरोगा अपने आप को मार डालना चाहता है", क्योंकि यदि बंधुए भाग जाते तो दरोगा को दूसरे दिन लज्जा सहनी पड़ती और मृत्युदंड मिलता (दे. १२ : १९)। १६ : ३१ में मसीही धर्मविज्ञान का सारांश

हैं। १६ : ३३ यह सपरिवार बपतिस्मा का दूसरा प्रसंग है (दे. १६ : १५)। इन पदों के आधार पर बाल बपतिस्मा की प्रथा का उद्‌भव हुआ। (इस दरोगा के विषय हमें कोई अन्य उल्लेख नहीं मिलता। संभव है कि यह स्तिफनास हो जो अखया का पहला ख्रिस्ती पुरुष है और जिसका उल्लेख १ कुर. १६ : १५; १ कुर १ : १६ में है)।

१६ : ३६-४० में पौलुस और सीलास के मुक्त किए जाने तथा हाकिमों की क्षमा-याचना का वर्णन है। १६ : ३५ "प्यादे"—मूल यूनानी शब्द का अर्थ है 'डंडा-वाहक'। ये पुलिसमैन जैसे थे जो दंडाधिकारी या न्यायाधीश के साथ एक कुल्हाड़ी के साथ डंडों का गट्ठा बांधकर चला करते थे। 'डंडे' और 'कुल्हाड़ी' यातना और दंड के अधिकार के प्रतीक थे। १६ : ३७ "बिना दोषी ठहराए" का अर्थ है बिना मुकद्दमा किए और दोषी ठहराए। ई. पू. २४८ में एक कानून बनाया गया था जिसमें रोमी नागरिकों को बेंत लगाने, कोड़े मारने और क्रूस पर ठोंके जाने की सजा नहीं दी जा सकती थी। १६ : ३९ पश्चिमी मूल प्रति (कोदेक्त बैजे) में यह ब्यौरा है : और वे (हाकिम) अनेक मित्रों के साथ बंदीगृह में आए और उनसे बिनती की कि नगर से चले जाएं। हाकिमों ने कहा कि हम तुम्हारे बारे में सच्चाई से अवगत नहीं थे कि तुम धार्मिक मनुष्य हो। उन्हों ने उनको बाहर निकाला और उनको मनाया कि वे नगर से चले जाएं, जिससे जनता के लोग झगड़ा न करें और तुम्हारे विरुद्ध हमारे सामने आकर न चिल्लाएं"। १६ : ४० "लुदिया के यहां गए"—ऐसा प्रतीत होता है कि लुदिया का घर कलीसिया का केन्द्र हो गया था।

पौलुस फिलिप्पी से लगातार संपर्क साधे रहा (दे. फिलि. ४ : १० क्र.; प्रे. २० : १; २० : ६)। यहां की मंडली दृढ़ रूप से स्थापित हो गई थी।

पौलुस की प्रचार पद्धति को एक बार फिर देख लें : एक स्थान को जाना, प्रबलता से प्रचार करना, कुछ विश्वासी बनाना, विश्वासियों की सहभागिता बनाए रखने के लिये एक सरल संगठन बनाना (दे. फिलि. १ : १) और तब उसे पवित्र आत्मा के भरोसे छोड़ दुना। बाद में उनको पत्र और भेंट करने से दृढ़ करना। आज भी यह पद्धति अपनाई जानी चाहिये।

(३) थिस्सलुनीके से अथेने तक (१७ : १-३४)

१७ : १ "वे" से यह संकेत होता है कि लूका उनके साथ नहीं है। "अम्फिपुलिस"—फिलिप्पी से लगभग ५० किलोमीटर दक्षिण पश्चिम में एक नगर। "अपुल्लोनिया"—लगभग ४५ किलोमीटर उसी दिशा में और आगे। "थिस्सलुनीके"—यह नगर लगभग ५६ किलोमीटर उसी दिशा में और आगे था। इस नगर का नाम सिकंदर महान की सौतेली बहिन 'थेस्सली' के नाम पर रखा गया था। रोमी शासन ने इसे मकिदुनिया की राजधानी बनाया। ई. स. ४२ में यह 'स्वतंत्र नगर' बनाया गया। इसका वर्तमान नाम 'सलोनिका' है। ये तीनों नगर इग्नातिया नामक राजमार्ग पर थे जिससे रोम के साथ सीधा संबंध था। १७ : २ "अपनी रीति के अनुसार"—तु. १३ : ५, १४, ४६; १४ : १; १७ : १०, १७। १७ : ३ पौलुस यहू-

दियों को दो बातें प्रमाणित करता था : एक, मसीह को दुख उठाना था; दूसरी यीशु ही मसीह या ख्रिस्त है। यहूदी लोगों का कहना है कि मसीह दुख से परे है और वह अभी तक नहीं आया है। मसीही लोगों का कहना है कि यशायाह ५३ में मसीह के सेवाकार्य की उच्चतम परिकल्पना है और यह यीशु में पूर्ण होती है। १७ : ४ "भक्त"—दे. २ : ५ की टीका; और १० : २। १७ : ५ "बाजारू लोगों में से कई दुष्ट मनुष्यों"—हिं. सं. बाजारू गुंडों। "यासोन"—इसका नया नियम में अन्यत्र कहीं उल्लेख नहीं है। रो. १६ : २१ का यासोन इससे भिन्न व्यक्ति है। १७ : ६ "नगर के हाकिमों"—दे. १६ : १९ में 'प्रधानों' शब्द पर टीका। "उलटा पुलटा कर दिया है"—इसके लिये जो मूल यूनानी शब्द है उसका अर्थ है 'बलवा या राजद्रोह कराना' (दे. प्रे. २१ : ३८)। इन शब्दों में यहूदी लोग एक सत्य की अभिव्यक्ति कर रहे थे, क्योंकि मसीही लोग वास्तव में उलटे को सीधा और नीतिवान बनाते हैं। १७ : ७ के लिये तुलना कीजिए यू. १९ : २२ क्र.। १७ : ९ "मुचलका लेकर"—एक बंधपत्र कि यदि पौलुस और सीलास उसके घर रहे अथवा फिर हुल्लड़ हुआ तो उसे बंधपत्र में लिखी हानि उठानी पड़ेगी।

१७ : १०-१५ **बिरीया** में मसीही विश्वास के विस्तार का वर्णन है। "बिरीया"—यह नगर थिस्सलुनीके से ९६ किलोमीटर पश्चिम में है। १७ : १५ सीलास और तीमुथियुस की गतिविधि इसके बाद कुछ अस्पष्ट है (तुलना १८:५; १ थिस. ३:१-६)।

१७ : १६-३४ पौलुस अथेने नगर में।

१७ : १६ "अथेने"—प्राचीन संसार का एक सबसे प्रसिद्ध नगर। ई. पू. ५वीं सदी में यह यूनान देश का सब से महान प्रजातांत्रिक नगर, था। यह नगर सदियों तक शिल्प, साहित्य और दर्शन का केन्द्र रहा। बाद के युगों में यहां एक प्रसिद्ध विश्व-विद्यालय रहा। सुकरात और प्लेटो सुप्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक इसी नगर के थे। अरस्तू, इफिकूरस और जेनो दार्शनिकों ने अपने अपने दर्शन का प्रचार इसी नगर में किया था। एक टीकाकार का कथन है कि 'अथेने ही एक ऐसा स्थान है जहां पौलुस के प्रचार से कोई सताव उत्पन्न नहीं हुआ। कदाचित यह भी द्रष्टव्य है कि यहां पौलुस पूर्णरूप से असफल भी रहा। यह व्यापार केन्द्र था। सुप्रसिद्ध विश्वविद्यालय यहां था। इसकी ख्याति थी कि इसमें अनेक धर्म पंथ थे और यह उनका स्वागत करता था'। "जी जल गया"—कारण यह कि यहूदी के लिये मूर्तिपूजा घोर पाप और व्यभिचार था (दे. रो. १ : २३ क्र.; १ कुर. १० : २०)। (हि. सं. बहुत क्षोभ हुआ)। १७ : १८ "इपिकूरी" और "स्तोईकी"—उस युग के दार्शनिक संप्रदाय थे। इपिकूरी—इस दर्शन का प्रवर्तक इपिकूर (Epicurus) था जो ३४१-२७० ई. पू. तक रहा। उसकी मान्यताएं थीं : प्रकृति के परमाणु अक्षय हैं। अनेक देवताओं का अस्तित्व है। सब देवता आनंद (pleasure) में रहते हैं और मानवीय गतिविधियों में उनका कोई भाग नहीं है। जीवन का चरम लक्ष्य आनंद है। परंतु आनंद का अर्थ केवल दैहिक आनंद नहीं है। ई. पू. ३०६ में उसने अपना शिक्षा केन्द्र स्थापित किया।

इपिकूर का आचरण इतना उच्च कोटि का था कि लोग समझते थे कि उसमें कोई कामनाएं नहीं हैं। **स्तोईकी**—इस दर्शन का प्रवर्तक कुप्रुस टापू के कित्तिम नगर का ज़ेनो (zeno) था (ई. पू. ३३६-२६४)। 'स्तोआ' यूनानी शब्द का अर्थ (द्वार) मंडप है (portico)। ज़ेनो स्तोआ में ही शिक्षा देता था इसीलिये उसके दर्शन नाम स्तोइकी पड़ा। उसके दर्शन में निम्नांकित तत्व थे : विश्वात्मा है, और वही आत्मा मनुष्यों में है। मनुष्य की बुद्धि और यह आत्मा एक हैं। प्रकृति में चार तत्व हैं : भूमि, जल, वायु और अग्नि। आचरण संबंधी सिद्धांत यह था कि मनुष्य प्रकृति के अनुसार जीवन व्यतीत करे। बुद्धि (logos) सर्वोपरि है इसलिये मनुष्य को अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखना चाहिये। मनुष्य को अपनी कामनाओं का दमन करना चाहिये।

१७ : १८ "बकवादी"—मूल यूनानी शब्द का अर्थ है 'दाने चुननेवाला', जैसे पक्षी दाने चुगते हैं या गरीब लोग दाने बीनते हैं। ज्ञान के संबंध में इसका अर्थ हुआ वह व्यक्ति जो निकम्मा या इधर उधर बिखरा हुआ ज्ञान बटोरनेवाला है। "अन्य देवताओं"—'यीशु और पुनरुत्थान' के लिये मूल यूनानी में शब्द हैं 'जीज़स एंड अनस्तासिस'। सुननेवालों को ऐसा प्रतीत हुआ मानो ये दोनों देवता और देवी के नाम हैं। **१७ : १९, २२** "अरियुपगुस"—'अरेस' या 'मार्स' देवता की पहाड़ी। युद्ध-देवता का नाम लातीनी में अरेस और यूनानी में मार्स है। इस पहाड़ी पर अथेने का प्राचीनतम न्यायालय था। 'अरियुपगुस पर ले गए' का अर्थ यह हो सकता है कि वे इस नाम के न्यायालय में उसे ले गए, अथवा वे उसे पहाड़ी की ढाल पर ले गए। पद २२ में 'बीच में खड़ा होकर' से न्यायालय में ले गए अर्थ अधिक संभाव्य है।

१७ : २२-३१ में पौलुस का भाषण है। इस भाषण में पौलुस की पद्धति धर्ममंडनात्मक (Apologetic) है। पौलुस ने पहले उन विचारों को प्रस्तुत किया जिनको वे मानते थे और तब ख्रिस्त तक उनको ले आया, यद्यपि ख्रिस्त का नाम इस भाषण में नहीं है। पौलुस ने निम्नलिखित विचार प्रस्तुत किए : परमेश्वर के खोजी होना। परमेश्वर को सृष्टिकर्ता मानना। परमेश्वर ने सब मनुष्यों को एक मूल से बनाया। परमेश्वर हाथ की बनाई वस्तुओं के समान नहीं है। परमेश्वर मनुष्यों को आज्ञा देता है कि वे अपनी अज्ञानता से मन फिराएं। परमेश्वर मसीह के द्वारा सब मनुष्यों का न्याय करेगा। इन तथ्यों का समर्थन करने में वह कभी उनके ही साहित्य का उल्लेख करता है।

डा. एच. के. मोल्टन का कथन है कि पौलुस के इस भाषण से हम भारत में प्रचार कार्य के लिये शिक्षा ले सकते हैं : (क) यह महत्वपूर्ण है कि हम जितने अधिक आधारों पर संपर्क बना सकते हैं, बनाएं। (ख) संपर्क की संभावनाएं भिन्न स्थानों पर भिन्न होंगी जैसे अथेने और कुरिंथुस में। (ग) सुननेवालों को यह स्पष्ट समझ में आ जाए कि तुम्हारे संदेश का चरमोत्कर्ष ख्रिस्त है, और यदि इस चरमोत्कर्ष से उनको ठोकर

लगती है तो चिंता न करें। (घ) श्रोताओं में अनावश्यक विरोध उभाड़ना अनुचित है। अपनी ओर से हम ऐसी बात न करें जिससे हमारे लिये द्वार बंद हो जाए। यदि उनकी ओर से द्वार बंद होता है तो दायित्व उनका है। मसीही प्रचारक के लिये यह आवश्यक है कि वह सहृदयता एवं प्रेम से प्रचार-द्वार खुला रखे।

१७ : २३ "अनजाने (हिं. सं. अज्ञात) ईश्वर के लिये"—अज्ञात ईश्वर की मूर्ति बनाने के आरंभ होने के विषय एक दंतकथा है। कहते हैं कि ई. पू. छठी सदी में अथेने नगर में एक महामारी फैली। सब ज्ञात देवताओं को बलि चढ़ाने के बाद भी मरी न हटी। हताश होकर अथेने के नागरिकों ने क्रेते द्वीप के कवि और भावी कहनेवाले एपिमेनीदेस को बुलाया। वह अरियुपुगुस की ओर काली और सफेद भेड़ों का एक झुंड ले गया और वहां से उन भेड़ों को जहां वे चाहें जाने दिया। अरियुपुगुस से चलने के बाद जहां भी भेड़ लेटी, वहीं 'उचित देवता को' वह भेड़ बलि चढ़ाई गई। इस उपाय से महामारी हट गई। महामारी हटने के बाद जहां जहां भेड़ों की बलि चढ़ाई गई थी वहां वहां 'अनजान देवता' की वेदी बना दी गई। उस समय से 'अनाम वेदियां' बनाने की परंपरा चल गई। उन वेदियों पर यह समर्पण होता था : 'अनजाने ईश्वर के लिये' अथवा 'अनजाने ईश्वरों के लिये'—डेविड स्मिथ, लाइफ एंड लेटर्स ऑफ पॉल, पृष्ठ ११-१२। "न मनुष्यों के हाथों की सेवा लेता है"—यह विश्वास इपीकूरी संप्रदाय का भी था। "वह. . .देता है"—स्तोईकी संप्रदायवाले भी यह मानते थे। १७ : २६ "उसने. . . बनाई है—पश्चिमी मूल प्रति में 'एक ही मूल' के स्थान पर 'एक ही रक्त' है। ए. व्ही. अनुवाद में 'एक ही रक्त से बनाया' अनुवाद है। भाव यह है कि समस्त मानव जाति एक ही परिवार है।

१७ : २६ अथेने के लोग यह गर्व करते थे कि वे अपनी भूमि से ही निर्मित हैं। परंतु इस गर्व का कोई आधार नहीं है। सब मानव जाति एक ही मूल से है—सब को परमेश्वर ने बनाया और सब का आदि पूर्वज एक ही है। इस विचार से इस विश्वास की नींव ढह जाती है कि यूनानी लोग बर्बर लोगों से श्रेष्ठ थे। न प्रकृति की और न अनुग्रह की योजना में जातीय श्रेष्ठता के विचारों को कोई स्थान हो सकता है।

परमेश्वर ने मनुष्य जाति का एक मूल से निर्माण कर उसे सारी पृथ्वी निवास करने के लिये प्रदान की है। "निवास के सिवानों" का अर्थ यह नहीं है कि विभिन्न जातियों को विभिन्न सिवाने या क्षेत्र प्रदान किए गए हैं, परंतु यह है कि सारी मानव जाति को संपूर्ण पृथ्वी में निवास योग्य क्षेत्र प्रदान किए गए हैं। उत्पत्ति के वर्णन में मनुष्य के बनाए जाने के पूर्व उसका निवास अर्थात पृथ्वी बनाई गई। इस निवास के बनाने में एक अंग है "उनके ठहराए हुए समय" जिसका सरल अर्थ यह है कि मनुष्यों के खाने पीने की व्यवस्था के लिये परमेश्वर ने ऋतुएं बनाई हैं। यदि हम 'उनके ठहराए हुए समय' में 'उनके' का अर्थ जातियां लें तो 'उनके ठहराए हुए समय को बांधा है' का अर्थ संभवतः यह है कि परमेश्वर ने जातियों के उत्थान पतन के समय निर्धारित किए

हैं (दे. दा. ८ : १०; लू. २१ : २४; प्रक. १२ : १४), परंतु यह अर्थ बहुत संभाव्य नहीं है।

१७ : २७ में यह बताया गया है कि 'ठहराए हुए समय और निवास के सिवानों को निर्धारित' करने का अभिप्राय यह है कि मनुष्य परमेश्वर को ढूंढ़ें, इस आशा से कि कदाचित उसे टटोलकर पालें। "टटोलकर पा जाएं" में ध्वनि यह है कि परमेश्वर के पूर्ण प्रकाशन की ज्योति के अभाव में मनुष्य प्रकृति और अपनी कल्पनाओं में ही परमेश्वर को मानो टटोलता है। पौलुस रोमियों १ : २०-२१ में कुछ इसी प्रकार का विचार व्यक्त करता है : 'क्योंकि उसके अनदेखे गुण, अर्थात उसकी सनातन सामर्थ, और परमेश्वरत्व जगत की सृष्टि के समय से उसके कामों के द्वारा देखने में आते हैं, यहां तक कि वे निरुत्तर हैं। इस कारण कि परमेश्वर को जानने पर भी उन्हों ने परमेश्वर के योग्य बड़ाई और धन्यवाद न किया, परंतु व्यर्थ विचार करने लगे, यहां तक कि उनका मन अंधेरा हो गया'।

पद २७ और २८ का हिं. सं. अनुवाद देखिए जो विचार को अधिक स्पष्ट रूप से व्यक्त करता है। "वह हम में से किसी से दूर नहीं है" के लिये देखिए व्य. ४ : ७; भ. १४५ : १८। १७ : २८ "हम उसी. . .हैं"—यह माना जाता है कि इसमें क्रेते निवासी कवि एपीमिनीदिस की पंक्ति की प्रतिध्वनि है। यह कवि ई. पू. ६ वीं सदी में था। तीतुस १ : २ में भी इसी कवि की रचना से उद्धरण है। "हम तो उसी के वंश भी हैं"—यह उद्धरण अरातुस कवि की रचना से है। यह कवि ई. पू. ३१० में पैदा हुआ था। यह पौलुस के प्रांत किलिकिया का कवि था। इस उद्धरण में कवि एक ईश्वर की ओर नहीं परन्तु सर्वदेववाद के अर्थ में परमदेवता ज्यूस की ओर संकेत करता है। पौलुस की वास्तविक विचारधारा १५ : ४७-५० पदों में देखिए। १७ : २६ में पौलुस का तर्क यह है कि यदि मनुष्य परमेश्वर के वंश हैं, तो वह प्रतिमाओं के, जो मनुष्य की कारीगरी हैं, सदृश नहीं है। हिं. सं. में इस पद का अनुवाद अधिक स्पष्ट है : 'अब यदि हम उनके (परमेश्वर के) वंशज हैं तो हमें समझना चाहिये कि परमेश्वर-तत्व, सोने, चांदी अथवा पत्थर के सदृश नहीं जो मनुष्य की कला और कल्पना की उपज हैं' (तुलना कीजिए रो. १ : २०, २२-२३)। १७ : ३० "इसलिये परमेश्वर अज्ञानता के समयों से आनाकानी करके"—हिं. सं. अधिक स्पष्ट है 'परमेश्वर ने अज्ञानता के युगों पर ध्यान नहीं दिया'। इसमें भाव यह है कि यदि मनुष्य परमेश्वर के विषय अज्ञान है तो उस समय मनुष्य को दोषी नहीं ठहराया जाता (विषमता कीजिए १ कुर. १५ : ३४; रो. १ : १८; तुलना कीजिए रो. ३ : २५; १४ : १६)। "अब. . .आज्ञा देता है"—मसीही प्रचारकों का काम है कि इस आज्ञा को दूसरों तक पहुंचाएं। १७ : ३१ इस पद में 'मसीह' का 'मनुष्य का पुत्र' ("मनुष्य" शब्द से प्रायः निश्चित ही 'मनुष्य का पुत्र' व्यंजित है) होने की विचारधारा की झलक है। "एक दिन"—न्याय के दिन की विचारधारा व्यक्त है जिसमें मसीह न्याय करेगा। 'जिसे उसने ठहराया है"—हिं. सं. अनुवाद है 'पूर्व-निर्धारित मानव"! "धर्म से न्याय करने के लिये" देखिए

१० : ४२; २४ : २५। पौलुस इसमें यहूदी उपासना शब्दावली का प्रयोग करता है (दे. भ. ९ : ८; ९६ : १३; ९८ : ९)। "मरे हुओं. . प्रमाणित कर दी है"—कि यह "मनुष्य" संसार का धर्मपूर्वक न्याय करेगा।

१७ : ३२-३४ पौलुस के भाषण का प्रभाव वर्णित है। **१७ : ३२** "मरे हुओं के. . ठट्ठा करने लगे"—यूनानी दर्शन में अमरता का विचार था परंतु 'देह का पुनरुत्थान' का विचार यूनानी दर्शन के लिये अपरिचित था।

देह का पुनरुत्थान हमारे लिये भी कोई सरल विचार नहीं है। इसके साथ अनेक समस्याएं उत्पन्न होती हैं जिनका कुछ मंथन पौलुस ने १ कुर. १५ और १ थिस. ४ अध्यायों में किया है। इसके साथ हमारे सामने दो समस्याएं और आती हैं : एक है यीशु द्वारा कुछ लोगों का जिलाया जाना (मर. ५ : ४२; लू. ७ : १५; यू. ११ : ४४)। दूसरी है यीशु स्वयं का पुनरुत्थान (लू. २४ : ४३; यू. २० : २७; लू. २४ : १६; यू. २१ : ४; रो. ६ : ९ आदि)। परंतु पुनरुत्थान के विचार में दो बड़े महत्वपूर्ण तथ्य हैं; एक यह है कि हमारा अनंत जीवन परमेश्वर के अनुग्रह पर अवलंबित है; वह हमें जिलाता है। दूसरा यह कि हमारा व्यक्तित्व बना रहता है। हममें से अधिकांश यह पार्थिव शरीर पुनरुत्थित अवस्था में नहीं चाहेंगे और नहीं चाहेंगे कि हमारा व्यक्तित्व परमात्मा के सागर में विलीन हो जाए। **१७ : ३४** "उसके साथ मिल गए"—दे. १७ : ४। ध्यान देने की बात है कि नया नियम में अथेने की मंडली का कहीं उल्लेख नहीं है। देखिए १७ : १६ की टीका, और देखिए १ कुर. २ : १६। "दियुनुसियुस अरियुपगी"—इसके संबंध में कोई जानकारी नहीं मिलती। इतना निश्चित है कि यह महत्वपूर्ण व्यक्ति था क्योंकि अरियुपगी सभा में केवल ३० सदस्य ही हो सकते थे। यूसेब धर्माचार्य कहता है कि यह अथेने का पहिला बिशप था और इसने कुछ साहित्य की सर्जना भी की। "दमरिस"—इसके विषय भी कोई जानकारी नहीं मिलती। रेमज़े नामक विद्वान का अनुमान है कि यह या तो कोई विदेशी स्त्री होगी या बदनाम स्त्री, क्योंकि अथेने में सामान्यतः स्त्रियां घर से बाहर नहीं निकलती थीं।

(४) कुरिंथुस में (१८ : १-१७)

१८ : १ "कुरिंथुस"—अथेने से लगभग ८० किलोमीटर पश्चिम में एक प्रसिद्ध व्यापारी बंदरगाह। यह बड़ी धनी नगर था। यह ई. पू. २७ से अखाया प्रांत की राजधानी था। यहां प्रेम और सौंदर्य की देवी, वीनस का विशाल मंदिर था जिसमें एक हजार देवदासियां थीं। यह भ्रष्टाचार और दुराचार का अड्डा माना जाता था (विशेष विवरण के लिये देखिए नया नियम की भूमिका, पृष्ठ १६०-१६१) (पौलुस और कुरिंथुस की कलीसिया के संबंध, आदि के लिये देखिए 'नया नियम की भूमिका', पृष्ठ १६०-१६९ और डब्ल्यु. बी. हेरिस की पुस्तक 'कुरिंथियों को पौलुस का प्रथम पत्र : टीका', मसीही आध्यात्मिक शिक्षा माला क्रमांक १८, भूमिका भाग)। **१८ : २** "उक्विला. . प्रिस्किल्ला"—भक्त दम्पत्ति है। इनका उल्लेख १८ : १८; १८ : २६; रो. १६ : ३; १ कुर. १६ : १९; २ तीम. ४ : १९ में भी है। प्रे. १८ : २ और

१ कुर. १६ : १९ को छोड़ प्रिस्किल्ला का नाम अपुल्लोस के पहले आया है जो आसधारण है। प्रिस्किल्ला अपुल्लोस जैसे व्यक्ति को शिक्षा दे सकती है। पत्रियों में प्रिस्किल्ला को प्रिस्का कहा गया है। हार्नाक जैसे जरमन विद्वान की धारणा है कि इसने और इसके पति ने इब्रानियों की पत्री लिखी। संभव है कि ये दोनों रोम में यहूदी मसीही हों। लूका उनके मतपरिवर्तन का उल्लेख नहीं करता। हार्नाक का सुझाव है कि ये दोनों पिन्तेकुस्त के समय विश्वास लाए थे (प्रे. २ : १०) और रोमी कलीसिया के निर्माता थे। "पुन्तुस"—यह संभाव्यत: एशिया माइनर का उत्तर-पूर्वी भाग था और रोमी प्रांत था (दे. १ पत. १ : १)। "क्लौदियुस"—यह ई. स. ४१-५४ तक रोमी सम्राट था। संभाव्यत: सन् ४९ में यहूदियों को निकल जाने की आज्ञा दी गई थी। रोमी इतिहासकार सुतोनियुस यह लिखता है कि 'रोम के यहूदी लोग ख्रेस्तुस नामक व्यक्ति के उसकाने के कारण भयानक विद्रोह कर रहे थे'। इसमें 'ख्रेस्तुस' शब्द से ख्रिस्त की ओर संकेत होता है जो जन साधारण के विचार अनुसार अभी तक जीवित था। संभव है कि ख्रेस्तुस कोई अन्य व्यक्ति हो। १८: ३ "उनका उद्यम तंबू बनाने का था"—पौलुस के प्रांत किलिकिया में बकरी के बालों का कपड़ा बनता था। उससे परदे बनाए जाते थे। इस कपड़े को किलिकियम कहते थे। कुछ विद्वान मानते हैं कि पौलुस के युग में तंबू बनाने के लिये जो मूल यूनानी शब्द है उससे 'चमड़े का काम' का बोध होता था। पौलुस अपनी पत्रियों में बार-बार कहता है कि वह कलीसियाओं पर आर्थिक भार नहीं बना (दे. प्रे. २० : ३४; १ थिस. २ : ९, २ थिस. ३:८), यद्यपि आर्थिक सहायता पाना सेवक का अधिकार है (दे. १ कुर. ९ : १२, १५, १८; २ कुर. ११ : ९; १३ : १४; १ कुर. ९ : ४, ७, १४)। आज भी भारत की कलीसियाओं के सामने यह समस्या बनी हुई है। १८ : ५ "सीलास और तीमुथियुस. . .आए"—देखिए १७ : २ और देखिए १ थिस. ३ : ६। संभवत: इसी समय थिस्सलुनीकियों को पत्रियां लिखी गईं। "वचन सुनाने की धुन में लगकर" —इसमें संभवत: यह निहित है कि सीलास और तीमुथियुस मकिदुनिया से कुछ दान लाए थे (२ कुर. ११ : ९)। इसलिये अब पौलुस उद्यम का समय भी प्रचार में लगाने लगा। "यीशु ही मसीह है"—आर. एस. व्ही. में अनुवाद है 'मसीह ही यीशु है'। हिन्दी अनुवाद उचित है। १८ : ६ "कपड़े झाड़कर"—दे. १३ : ५१ की टीका। इस क्रिया से संबंध-विच्छेद का बोध होता है। पौलुस सभाघर के भीतर है इसलिये पैरों की धूल न झाड़कर कपड़े झाड़ता है। इससे भी संबंध-विच्छेद का भाव व्यक्त होता है। "तुम्हारा लोहू. . .रहे"—अर्थात तुम्हारे विनाश का दायित्व तुम पर ही है। इस सूत्र के लिये दे २ श. १ : १६; मत्त. २७ : २५। "अब से मैं. . .जाऊंगा"—तुलना कीजिए १३ : ४६; २८ : २८। अब वह पूर्ण रूप से अन्य जातियों के पास जाएगा। १८ : ७ "तितुस युस्तुस"—कुछ विद्वान इसे पत्रियों का 'तीतुस' मानते हैं। एक विद्वान इसे रोमियों १६ : २३ में उल्लिखित 'गयुस' मानता है। संभव है कि यह कोई रोमी व्यक्ति था जो यहूदी मतावलंबी था। "भक्त" के लिये देखिए २ : ५ और १० : २ की टीका। १८ : ८ "क्रिसपुस"—शायद यह वह व्यक्ति था जिसके बपतिस्मा का उल्लेख १ कुर.

१ : १४ में है। "आराधनालय का सरदार"—दे. १३ : १५। "सारे घराने समेत" —तु. ११ : १४; १६ : १५, ३१। १८ : ९ "दर्शन के द्वारा"—पौलुस के मसीही जीवन में दर्शन का बड़ा स्थान है। देखिए ९ : ३; १६ : ९; २३ : ११; २७ : २३; तु. २ कुर. १२ : १-४। एक विद्वान दर्शन के संबंध में दो बातों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है : (क) कुछ लोग चित्र रूप में सत्य को देखकर समझते हैं। दूसरे लोग यूहन्ना २० : २९ में वर्णित लोगों के समान हैं। (ख) दर्शन चाहे सत्य हो या कल्पना, दर्शन की अपेक्षा उससे प्राप्त किया हुआ सत्य और आदेश ही महत्व की बात है। इस दर्शन का आदेश सब के लिये महत्व का है : 'मत डर, कहे जा, चुप मत रह'। **१८ : १०** "लोग"—मूल यूनानी में जो शब्द है उससे 'चुने हुए लोग' का भाव व्यक्त होता है। **१८ : ११** "डेढ़ वर्ष तक"—संभाव्यतः गल्लियो के आने के पूर्व डेढ़ वर्ष, क्योंकि पेशी के बाद भी वह वहां बहुत दिन तक रहा (दे. १८ : १८)।

१८ : १२-१७ गल्लियों हाकिम के सामने पेशी। १८ : १२ "गल्लियो" यह सुविख्यात रोमी दार्शनिक सेनेका का बड़ा भाई था और लूकन कवि का चाचा। एक शिलालेख के अनुसार यह ई. स. ५१-५३ तक हाकिम था। इससे यह कहा जा सकता है कि पौलुस ई. स. ४९ में किसी समय या ई. स. ५० के आरंभ में कुरिंथुस आया। **१८ : १३** "व्यवस्था के विपरीत"—तुलना कीजिए १६ : २१-१७ : ७। यहूदियों के लिये 'व्यवस्था' शब्द का अर्थ था उनकी अपनी व्यवस्था (पुराना नियम : उत्पत्ति से व्यवस्था विवरण)। परंतु वे यह अपेक्षा करते थे गल्लियो 'व्यवस्था' का अर्थ रोमी व्यवस्था या कानून समझेगा। उस युग में यहूदी धर्म रोमी साम्राज्य द्वारा मान्यता-प्राप्त धर्म था (दे. १६ : २०)। यहूदी लोग गल्लियो पर यह प्रभाव डालना चाहते थे कि पौलुस लोगों को यहूदी धर्म से अलग करने में रोमी कानून को भंग कर रहा है, अतः पौलुस का कार्य साम्राज्य विरोधी है। **१८ : १४ १५** "अन्याय या दुष्टता की बात" का अर्थ है दीवानी या फौजदारी मामला या वादविवाद। "वादविवाद शब्दों, नामों या व्यवस्था" —अर्थात दार्शनिक और धार्मिक वादविवाद। **१८ : १७** "सोस्थिनेस"—यदि यह वही व्यक्ति है जिसका उल्लेख १ कुर. १ : १ में है तो वह इस पद में वर्णित घटना के बाद मसीही हुआ होगा।

(५) **१८ : १८-२२ दूसरी यात्रा की समाप्ति।** इफिसुस जाना, वहां से कैसरिया और (यरूशलेम को) और तब अंताकिया को लौटना। **१८ : १८** "बहुत दिन रहा"—संभाव्यतः पौलुस ने ई. स. ५२ या ५३ के आरंभिक महीनों में कुरिंथुस छोड़ा। लूका निश्चित नहीं बताता कि कब तक पौलुस कुरिंथुस में रहा। "किंख्रिया" —यह कुरिंथुस नगर का पूर्वी बन्दरगाह था। "सिर मुंडाया...मानी थी"—यह मन्नत कदाचित नाजीरी मन्नत थी (दे. गि. ६ : १-२१)। बाल न काटने की नाजीरी मन्नत आजीवन ही नहीं मानी जाती थी, वह अल्पकाल के लिये भी मानी जा सकती थी। इस पद की मूल यूनानी से यह स्पष्ट नहीं होता कि पौलुस ने अथवा अक्विला ने सिर मुंडाया। संभाव्यतः पौलुस ही ने सिर मुंडाया। कुछ विद्वानों का विचार है कि

यहां उल्लिखित मन्नत २१ : २०-२६ की घटना के संबंध में मानी गई थी और उसे यहां स्थान दिया गया है। १८ : १९ "इफिसुस"—१८ : १९-२० से यह प्रतीत होता है कि इफिसुस में अभी तक कलीसिया नहीं बनी थी। १८ : २१ २२ "यदि ईश्वर चाहे"—पुराना नियम में इस प्रकार की अभिव्यक्ति नहीं मिलती। नया नियम में यह १ कुर. ४ : १९ और या. ४ : १५ में भी मिलती है। कुछ भिन्न रूप में प्रे. २१ : १४ और अन्य स्थलों में मिलती है। मूर्तिपूजक लोग साधारण रूप से इसका प्रयोग करते थे। मुसलमानों में यह अभिव्यक्ति बहुत चलती है (इन्शाल्लाह)। "कैसरिया"—दे. ८ : ४० की टीका। पद २२ के शब्द स्पष्ट नहीं हैं। इस पद का अर्थ यह हो सकता है कि पौलुस कैसरिया के बन्दरगाह पर उतरकर नगर में गया और कलीसिया को नमस्कार कर चला गया। इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि वह कैसरिया से यरूशलेम को गया और वहां की मातृ कलीसिया को नमस्कार कर अंताकिया में आया। पहले अर्थ के पक्ष में यह तर्क है कि यरूशलेम में क्या कुछ हुआ उसका कुछ वर्णन नहीं है; और २१ : १७ क्र. से यह विदित होता है कि यरूशलेम की सभा (अध्याय १५) के बाद पौलुस यरूशलेम नहीं आया। दूसरे अर्थ के पक्ष में यह तर्क है कि यदि पौलुस को अंताकिया ही लौटना था तो कैसरिया आने की जरूरत नहीं थी।

दो तीन बातें द्रष्टव्य हैं : (क) पश्चिमी मूल प्रति में पद २१ के अंत में ये शब्द मिलते हैं : 'मुझे किसी प्रकार भी आनेवाले पर्व के समय यरूशलेम में होना ही है'। परंतु विचित्र बात यह है कि उसी प्रति में १९ : १ में ये शब्द भी मिलते हैं : 'जब पौलुस अपनी ही योजना के अनुसार यरूशलेम की यात्रा करना चाह रहा था, तो पवित्र आत्मा ने उसे आसिया को लौटने का आदेश दिया, और पौलुस ऊपर के सारे देश से होकर इफिसुस में आया'। (ख) सीलास कदाचित पौलुस से यहां विदा हुआ। (ग) लूका इस समय पौलुस के साथ नहीं था। (घ) कुरिंथुस से कैसरिया और यरूशलेम और अंताकिया की यात्रा लगभग २२५० किलोमीटर की है। इस यात्रा का वर्णन इन दो पदों में बहुत ही संक्षिप्त रूप में है।

७ कलीसिया का विस्तार : पौलुस की तीसरी मिशनरी यात्रा

(१) इफिसुस (१८ : २३-१९ : ४१)। (२) इफिसुस से मकिदुनिया और यूनान के लिये प्रस्थान (२० : १-६)। (३) फिलिप्पी से मीलेतुस (२० : ५-१६)। (४) इफिसुस के प्राचीनों से विदा लेना (२० : १७-३८)। (५) मीलेतुस से यरूशलेम २१ : १-१६।

(१) इफिसुस (१८ : २३-१९ : ४१)।

१८ : २३ "गलतिया और फ्रूगिया"—दे. १६ : ६-७ की टीका। १८ : २४ "अपुल्लोस. . .जन्म सिकन्द्रिया, विद्वान, पवित्र शास्त्र को अच्छी तरह जानता था"—सिकन्द्रिया नगर नील नदी के डेल्टा पर था। प्राचीन संसार का सुप्रसिद्ध नगर। सिकंदर महान ने इसकी स्थापना ई. पू. ३३२ में की थी। यह ज्ञान और दर्शन का केन्द्र था दे. ६ : ९)। अतः अपुल्लोस का 'विद्वान' होना संभव था। सिकन्द्रिया में सेपत्वागिंता

अनुवाद, पुराना नियम का यूनानी अनुवाद हुआ था। अतः अपुल्लोस का पवित्रशास्त्र को जानना संभव था। अपुल्लोस का नाम १९ : १ और १ कुर. ३-४ अध्यायों में भी आया है। "इफिसुस" के लिये देखिए १९ : १ की टीका। **१८ : २५** "उसने... पाई थी"—उस समय तक नया नियम की रचना नहीं हुई थी इसलिये मौखिक शिक्षा ही उसे प्राप्त हुई होगी। "यूहन्ना...जानता था"—दे. १९ : ३। और दे. प्रे. १ : २२; १० : ३७; १३ : २४ और उनकी टीका। यूहन्ना का सुसमाचार इफिसुस में लिखा गया। यह उन मनुष्यों को दृष्टि में रखकर लिखा गया है जो यह मानते थे कि यूहन्ना बपतिस्मादाता यीशु से महान था (यू. ३ : २५-३०)। **१८ : २६** यहां देखिए क्रम 'प्रिस्किल्ला और अक्विला है' (दे. १८ : २ की टीका)। **१८ : २७** "अखाया"—दे. १८ : १ की टीका। अपुल्लोस कुरिंथुस नगर को गया (दे. १९ : १)। "सहायता"—इसके लिये जो मूल यूनानी शब्द है वह नया नियम में केवल यहीं है। 'अपुल्लोस इतना सफल हुआ कि कई लोग उसके प्रचार की अपेक्षा उसके व्यक्तित्व से ही अधिक आर्कषित हुए। पौलुस को इस समस्या से १ कुर. १ : १२; ३ : १-१०, ४ : ६ क्र. में उलझना पड़ा। प्रचारकों के साथ एक खतरा सदा रहता है कि लोग सुसमाचार के बदले प्रचारक के पीछे हो जाएं। पौलुस यह नहीं कहता कि इसमें अपुल्लोस का कोई दोष था'—एच. आर. मोल्टन। **१८ : २८** "यीशु ही मसीह है"—देखिए १८ : ५ की टीका। "पवित्र शास्त्र" का अर्थ है 'पुराना नियम'।

१९ : १ पश्चिमी प्रति में इस पद के विस्तार के लिये देखिए १८ : २१-२२। "ऊपर के सारे देश"—गलतिया और इफिसुस के बीच का पहाड़ी प्रदेश। "इफिसुस"—'एशिया की ज्योति' कहा जाता था। १८ : १९ और २० : १७ के बीच ९ बार इसका उल्लेख है। १ कुर. १५ : ३२; १६ : ८ और प्रक. १ : ११; २ : १ में भी इसका उल्लेख है। इस नगर को पौलुस ने पत्री लिखी है। यह नगर एशिया माइनर के पश्चिमी-दक्षिण भाग में समुद्र से तीन मील पर एक नदी के मुहाने पर बंदरगाह था। एशिया प्रांत की राजधानी पिरगमुन नगर था परंतु वास्तव में इफिसुस ही राजनगर था। यहीं प्रांत का हाकिम जहाज से उतरता था। व्यापार की दृष्टि से बड़ा समृद्ध नगर था। रोम की भावना का केन्द्र था। अरतिमिस देवी का मन्दिर संसार के सात चमत्कारों में एक माना जाता था। 'आज अरतिमिस का नाम-निशान वहां नहीं है। उसकी सीमा पर बसा हुआ गांव संत यूहन्ना के नाम पर अभी भी है। पास ही एक गुम्बज है जो संत पौलुस का बंदीगृह कहलाता है'—इंटरप्रीटर बाइबल। "चेले"—दे. ६ : १। **१९ : ४ ५** तु. प्रे. ८ : १६। पद ५ में ही केवल दुबारा बपतिस्मा का उल्लेख है। यूहन्ना के बपतिस्मा को मसीही बपतिस्मा नहीं कहा जा सकता। **१९ : ६** "हाथ "रखने" और "पवित्र आत्मा पाने" के लिये दे. ६ : ६; ८ : १६-१७ की टीका। "भविष्य वाणी करने लगे"—अर्थात मसीही गवाही देने लगे (दे. १ कुर. १४ : ५)। प्रे. ११ : २८ और २१ : १० में भविष्य कथन है और 'अगबुस' को भविष्यद्वक्ता कहा गया है।

१९ : ८ २० तीन महीने आराधनालय में और दो वर्ष तुरन्नुस की पाठशाला में। १९ : ८ "परमेश्वर के राज्य"—दे. १ : ३ की टीका **१९ : ९** "इस मार्ग"—दे. ९ : २ की टीका। "चेलों को अलग कर लिया"—ये सभी चेले यहूदी होंगे। अन्यजातीय चेले तुरन्नुस की पाठशाला में प्रचार के फलस्वरूप आए होंगे। "तुरन्नुस"—इसके विषय कोई जानकारी नहीं है। तुरन्नुस का या तो कोई कमरा होगा जो वह भाषण आदि के लिये किराए पर चलाता होगा। संभव है कि वह स्वयं एक व्याख्याता हो। पश्चिमी मूलप्रति (कोदेक्स बेज़े) में एक बड़ा रोचक पद जुड़ा हुआ है 'पांचवें घंटे से दसवें घंटे तक' विवाद करता था। **१९ : १०** "आसिया"—दे. ६ : ९ की टीका। संभव है कि कुलुस्से, हियरापुलिस, लौदीकिया और प्रकाशितवाक्य के २ और ३ अध्याय में उल्लिखित कलीसियाओं की स्थापना इसी समय हुई।

१९ : ११ २० में सामर्थ के कामों का वर्णन है। **१९ : १२** के लिये तु. प्रे. ५ : १५। **१९ : १३** "झाड़ फूंकी करनेवाले"—वे आदमी जो दुष्ट आत्माओं को शपथ खिलाकर बांधते थे और उनको निकालते थे। **१९ : १४** "स्क्किवा. . .महायाजक"—स्क्किवा नाम यहूदी नहीं है। यह यहूदी महायाजक का नाम नहीं हो सकता। यह झूठा व्यक्ति होगा और अपने को महायाजक कहता होगा। **१९ : १५** तु. लू. ४ : ४१। १९ : १६ तु. मर. १४ : ५२। **१९ : १९** "पोथियां"—ये कुंडलपत्र होंगे जिन पर मंत्र लिखे थे। "पचास हजार रुपये"—यूनानी में केवल 'पचास हजार चांदी के टुकड़े' है।

१९ : २१ २२ "आत्मा में ठाना"—अर्थात आत्मा की प्रेरणा और मार्गदर्शन से निश्चित किया। १९ : २१-२२ की योजना २० : १-२; २१ : १७ में पूरी होती है। "तीमुथियुस"—दे. १६ : १ की टीका। यह कदाचित तीमुथियुस की वह यात्रा है जिसका १ कुर. ४ : १७ और कदाचित फिलि २ : १९ में उल्लेख है। "इरास्तुस"—रो. १६ : २३ में यह नाम है, परंतु संभव है दोनों व्यक्ति एक न हों। "रोमा"—दे. १ : १०-१५; १५ : २२-२९।

१९ : २३ ४१ देमेत्रियुस द्वारा उसकाया हुआ हुल्लड़। यह एक दिन की घटना है। लूका इसका चित्रोपम वर्णन करता है। इस वर्णन में व्यक्ति और भीड़ की मनोवृत्ति का चित्रण है। **१९:२३** "उस समय"—संभाव्य है कि यह मार्च अप्रैल का समय हो जब अरतिमिस देवी का उत्सव मनाया जाता था। "उस पंथ"—देखिए ९ : २ की टीका। **१९ : २४** "देमेत्रियुस"—'शिलालेखों में "मंदिर बनाने वाला" शब्द मिला है। यह इफिसुस के मंदिर के वस्त्रालय अधिकारियों (Vestrymen) की एक तख्ती के शीर्षक स्वरूप मिला है। . . .एक शिलालेख में वस्त्रालय-अधिकारियों की सूची में देमेत्रियुस का नाम है'—इन्टरप्रीटर बाइबल। "अरतिमिस"—यूनानी देवी थी। इसका रोमी प्रतिरूप डायना था। यह शिकार की देवी थी। यह संततिदान और उर्वरता की देवी थी। यह एशिया माइनर में देवीमाता के रूप में पूजी जाती थी। पद ३५ में बताया जाता है कि इस देवी की प्रतिमा आकाश से गिरी मानी जाती थी। "चांदी के मंदिर"—मिट्टी के मंदिर तो मिले हैं, परंतु चांदी का एक भी मंदिर नहीं मिला।

परंतु मिट्टी के मंदिरों से यह माना जा सकता है कि चांदी के भी मंदिर भी बनाए जाते होंगे। मंदिर में देवी की प्रतिमा और उसके पास सिंहों की प्रतिमाएं होती थीं। **१९ : २७** अरतिमिस का मंदिर"—यह उस युग के सात चमत्कारों में से एक था। इस मंदिर की लंबाई लगभग ४०० फुट और चौड़ाई लगभग २०० फुट थी। कहा जाता है कि चूना के बदले सोने से इसकी जुड़ाई हुई थी। इसमें ६०-६० फुट ऊंचे १२७ खंभे थे। प्रत्येक खंभा एक राजा द्वारा बनवाया गया था। पवित्र स्थान ७० फुट चौड़ा था और ऊपर खुला था। ई. पू. ३५६ में यह जल गया था। परंतु तुरंत ही नया बनाया गया। **१९ : २९** "गयुस और अरिस्तरखुस" —प्रे. २० : ४ के अनुसार 'गयुस' मकिदुनी मनुष्य नहीं था परंतु दिरबे से आया था। कोदेक्स बेजै प्रति में २० : ४ में लिखा है 'दोबेरुस का गयुस'। दोबेरुस नगर मकिदुनिया में था। 'अरिस्तरखुस' का उल्लेख २० : ४; कुलु. ४ : १०; फिलेमान १ : २४ में भी है। यह थिस्सलुनीके का था, अतः मकिदुनी मनुष्य था। "रंगशाला"—१९वीं शताब्दी के अंत में यह खुदाई में निकला। इसमें २५००० लोग बैठ सकते थे। **१७ : ३१** "आसिया के हाकिमों"—इनको 'एसिआर्क्स' कहते थे। आसिया प्रांत के प्रत्येक नगर से एक हाकिम प्रति वर्ष नियुक्त किया जाता था। इनका काम था विभिन्न नगरों में सम्राटपूजा की पूजा का संचालन और निरीक्षण करना। बाद में ये सम्राटपूजा के महापुरोहित कहे जाने लगे। इनमें से कई पौलुस के मित्र थे। लूका बार बार यह संकेत करता है कि रोमी सरकार और उसके हाकिमों का मसीही धर्म से कोई विरोध नहीं था। विरोध इस काल के बाद में आया। **१९ : ३२** में भीड़ की मनोवृत्ति का सच्चा चित्रण है। "सभा"—मूल यूनानी में 'कलीसिया' शब्द का प्रयोग है (दे. ५ : ११); परंतु यह वैधानिक या व्यवस्थित सभा नहीं थी (दे. १९ : ३९)। **१९ : ३३** इस पद का अनुवाद कठिन है। दो तीन प्रकार से इसका अनुवाद किया गया है। हिन्दी का अनुवाद भी उचित है। "सिकंदर"—यह स्पष्ट नहीं है कि यह यहूदियों की ओर से प्रवक्ता है, अथवा मसीही व्यक्ति है जिसे यहूदियों के उसकाने पर भीड़ ने आगे बढ़ाया। "उत्तर दिया चाहता था"—हिं. सं. में है 'अपने पक्ष के समर्थन में कुछ कहना चाहा'। या तो वह इस पक्ष का समर्थन करना चाहता था कि यहूदियों का इस हुल्लड़ में कोई हिस्सा नहीं था (यदि वह यहूदी था)। अथवा वह इस पक्ष का समर्थन करना चाहता था कि पौलुस का इस हुल्लड़ में कोई दोष नहीं है (यदि वह मसीही था)। **१९ : ३५** "नगर का मंत्री"—नगर सभा या नगर-पालिका का कारबारी था और रोमी शासन के प्रति उत्तरदायी था। इसका भाषण चतुराई और सामान्य बुद्धि का नमूना है। **१९ : ३५** "ज्यूस की. . .टहलुआ है"—'ज्यूस' यूनानी देवताओं का प्रधान था (दे. प्रे. १४ : १२)। कुछ अनुवादों में 'ज्यूस' के स्थान पर 'आकाश' है। अरतिमिस की प्रतिमा हाथ की बनाई नहीं थी। कदाचित वह किसी पूंछल तारे का गिरा हुआ भाग थी। इसीलिये यहां कहा गया है 'ज्यूस की ओर से गिरी हुई'। "टहलुआ"—मूल यूनानी शब्द का अर्थ है 'मंदिर को झाड़ने वाला'। यह बड़े सम्मान की पदवी थी। **१९ : ३८**

"हाकिम"—इसे 'प्रोकोन्सल' (procosul) कहते थे। हि. सं. में अनुवाद है 'प्रांत-पति' जो अधिक स्पष्ट है (दे. १३ : ७ की टीका)। **१९ : ३९** "नियत सभा"—यह दस दिन में एक बार होती थी। **१९ : ४०** "हमें डर है"—पद २७ से विषमता कीजिए। "उत्तर न दे सकेंगे"—अर्थात रोमी अधिकारियों को कोई स्पष्टीकरण न दे सकेंगे। १९ : ४१ "सभा विसर्जित की"—यहां भी 'सभा' के लिये 'कलीसिया' शब्द है परंतु वह भीड़ (अव्यवस्थित समूह) के लिये प्रयुक्त हुआ है। इतनी बड़ी और उद्दंड भीड़ को शांत करना सहज काम नहीं है। नगर के मंत्री के भाषण में भी मसीहियों के प्रति सहानुभूति एवं मित्रभाव झलकता है, जो प्रे. के काम में लूका बार बार व्यंजित करता है।

(२) इफिसुस से मकिदुनिया और यूनान के लिये प्रस्थान २० : १-६

२० : १ "मकिदुनिया की ओर चल दिया"—जैसा उसने १९ : २१ में ठाना था। २० : २ "उस सारे देश में"—अर्थात मकिदुनिया, संभावतः उस मार्ग पर जो द्वितीय यात्रा के समय अपनाया गया था। (रोमियों के पत्र १५ : १९ में जो कुरिंथुस से लिखा गया, जब पौलुस तीन महीने वहां रहा जैसा २० : ३ में वर्णित है, पौलुस लिखता है कि उसने इल्लुरिकुम तक वचन का प्रचार किया। इल्लुरिकुम वह प्रांत था जो अद्रिया सागर के पूर्वी किनारे पर उत्तर में इटली से लेकर दक्षिण में मकिदुनिया तक फैला था।) २० : २ "यूनान में आया"—नया नियम में 'यूनान' का केवल यहीं उल्लेख है। अन्यत्र उसके दो प्रांतों का अर्थात अखाया और मकिदुनिया का उल्लेख हुआ है। ई. स. ५७ के आरंभ में पौलुस यहां आया होगा। २० : ३ "तीन महीने"—संभाव्यतः ई. स. ५७ में जनवरी से मार्च तक। २० : ४ "सोपत्रुस"—दे. रो. १६ : २१। "अरिस्तर्खुस और गयुस"—दे. १९ : २९। "तीमुथियुस"—संभव है कि 'दिरबे का' शब्द तीयुथियुस के साथ जाने चाहिये। "तुखिकुस"—दे. इफ. ६ : २१ (कुल. ४ : ७); २ तीम. ४ : १२; तीत. ३ : १२। कोदेक्स वेजे प्रति में "युतुखुस" है। "त्रुफिमुस"—दे. २ तीम. ४ : २०; प्रे. २१ : २९। (इस सूची में कुरिंथुस और फिलिप्पी का कोई प्रतिनिधि नहीं है। क्या पौलुस कुरिंथुस का और लूका फिलिप्पी का प्रतिनिधि था?)। "आसिया तक साथ हो लिये"—प्रामाणिक मूल प्रतिलिपियों में ये शब्द नहीं हैं। इससे संकेत होता है कि इस सूची में उल्लिखित जन यरूशलेम तक जानेवाले थे।

(३) फिलिप्पी से मीलेतुस (२० : ५-१६)

२० : ५ से 'हम' सर्वमान का प्रयोग पुनः होता है। अध्याय १६ के बाद यहां से 'हम' शब्द काम में आता है। "वे"—या तो सूची में लिखित सब जन, अथवा आसिया का तुखिकुस और त्रुफिमुस। २० : ६—दे. १२ : ३। "पांच दिन में"—विषमता कीजिए १६ : ११। २० : ७ "सप्ताह के पहले दिन"—यह स्पष्ट नहीं है कि यह शनिवार सायंकाल ६ बजे से है जैसा यहूदियों की मान्यता थी, अथवा इतवार सायंकाल से है। मसीही कलीसिया इतवार को पहला दिन मानने लगी। संभाव्यतः इतवार जो यीशु के पुनरुत्थान का दिन है। "रोटी तोड़ने के लिये"—यह संभाव्यतः प्रभुभोज था :

परंतु मिट्टी के मंदिरों से यह माना जा सकता है कि चांदी के भी मंदिर भी बनाए जाते होंगे। मंदिर में देवी की प्रतिमा और उसके पास सिंहों की प्रतिमाएं होती थीं। **१९ : २७** अरतिमिस का मंदिर"—यह उस युग के सात चमत्कारों में से एक था। इस मंदिर की लंबाई लगभग ४०० फुट और चौड़ाई लगभग २०० फुट थी। कहा जाता है कि चूना के बदले सोने से इसकी जुड़ाई हुई थी। इसमें ६०-६० फुट ऊंचे १२७ खंभे थे। प्रत्येक खंभा एक राजा द्वारा बनवाया गया था। पवित्र स्थान ७० फुट चौड़ा था और ऊपर खुला था। ई. पू. ३५६ में यह जल गया था। परंतु तुरंत ही नया बनाया गया। **१९ : २९** "गयुस और अरिस्तरखुस"—प्रे. २० : ४ के अनुसार 'गयुस' मकिदुनी मनुष्य नहीं था परंतु दिरबे से आया था। कोदेक्स बेजै प्रति में २० : ४ में लिखा है 'दोबेरुस का गयुस'। दोबेरुस नगर मकिदुनिया में था। 'अरिस्तरखुस' का उल्लेख २० : ४; कुलु. ४ : १०; फिलेमान १ : २४ में भी है। यह थिस्सलुनीके का था, अतः मकिदुनी मनुष्य था। "रंगशाला"—१९वीं शताब्दी के अंत में यह खुदाई में निकला। इसमें २५००० लोग बैठ सकते थे। **१९ : ३१** "आसिया के हाकिमों"—इनको 'एसिआर्क्स' कहते थे। आसिया प्रांत के प्रत्येक नगर से एक हाकिम प्रति वर्ष नियुक्त किया जाता था। इनका काम था विभिन्न नगरों में सम्राटपूजा की पूजा का संचालन और निरीक्षण करना। बाद में ये सम्राटपूजा के महापुरोहित कहे जाने लगे। इनमें से कई पौलुस के मित्र थे। लूका बार बार यह संकेत करता है कि रोमी सरकार और उसके हाकिमों का मसीही धर्म से कोई विरोध नहीं था। विरोध इस काल के बाद में आया। **१९ : ३२** में भीड़ की मनोवृत्ति का सच्चा चित्रण है। "सभा"—मूल यूनानी में 'कलीसिया' शब्द का प्रयोग है (दे. ५ : ११); परंतु यह वैधानिक या व्यवस्थित सभा नहीं थी (दे. १९ : ३९)। **१९ : ३३** इस पद का अनुवाद कठिन है। दो तीन प्रकार से इसका अनुवाद किया गया है। हिन्दी का अनुवाद भी उचित है। "सिकंदर"—यह स्पष्ट नहीं है कि यह यहूदियों की ओर से प्रवक्ता है, अथवा मसीही व्यक्ति है जिसे यहूदियों के उसकाने पर भीड़ ने आगे बढ़ाया। "उत्तर दिया चाहता था"—हिं. सं. में है 'अपने पक्ष के समर्थन में कुछ कहना चाहा'। या तो वह इस पक्ष का समर्थन करना चाहता था कि यहूदियों का इस हुल्लड़ में कोई हिस्सा नहीं था (यदि वह यहूदी था)। अथवा वह इस पक्ष का समर्थन करना चाहता था कि पौलुस का इस हुल्लड़ में कोई दोष नहीं है (यदि वह मसीही था)। **१९ : ३५** "नगर का मंत्री"—नगर सभा या नगर-पालिका का कारबारी था और रोमी शासन के प्रति उत्तरदायी था। इसका भाषण चतुराई और साभान्य बुद्धि का नमूना है। **१९ : ३५** "ज्यूस की...टहलुआ है"—'ज्यूस' यूनानी देवताओं का प्रधान था (दे. प्रे. १४ : १२)। कुछ अनुवादों में 'ज्यूस' के स्थान पर 'आकाश' है। अरतिमिस की प्रतिमा हाथ की बनाई नहीं थी। कदाचित वह किसी पुच्छल तारे का गिरा हुआ भाग थी। इसीलिये यहां कहा गया है 'ज्यूस की ओर से गिरी हुई'। "टहलुआ"—मूल यूनानी शब्द का अर्थ है 'मंदिर को झाड़ने वाला'। यह बड़े सम्मान की पदवी थी। **१९ : ३८**

"हाकिम"—इसे 'प्रोकोन्सल' (procosul) कहते थे। हि. सं. में अनुवाद है 'प्रांत-पति' जो अधिक स्पष्ट है (दे. १३ : ७ की टीका)। १६ : ३६ "नियत सभा"—यह दस दिन में एक बार होती थी। १६ : ४० "हमें डर है"—पद २७ से विषमता कीजिए। "उत्तर न दे सकेंगे"—अर्थात रोमी अधिकारियों को कोई स्पष्टीकरण न दे सकेंगे। १६ : ४१ "सभा विसर्जित की"—यहां भी 'सभा' के लिये 'कलीसिया' शब्द है परंतु वह भीड़ (अव्यवस्थित समूह) के लिये प्रयुक्त हुआ है। इतनी बड़ी और उद्दंड भीड़ को शांत करना सहज काम नहीं है। नगर के मंत्री के भाषण में भी मसीहियों के प्रति सहानुभूति एवं मित्रभाव झलकता है, जो प्रे. के काम में लूका बार बार व्यंजित करता है।

(२) इफिसुस से मकिदुनिया और यूनान के लिये प्रस्थान २० : १-६

२० : १ "मकिदुनिया की ओर चल दिया"—जैसा उसने १६ : २१ में ठाना था। २० : २ "उस सारे देश में"—अर्थात मकिदुनिया, संभावतः उस मार्ग पर जो द्वितीय यात्रा के समय अपनाया गया था। (रोमियों के पत्र १५ : १६ में जो कुरिंथुस से लिखा गया, जब पौलुस तीन महीने वहां रहा जैसा २० : ३ में वर्णित है, पौलुस लिखता है कि उसने इल्लुरिकुम तक वचन का प्रचार किया। इल्लुरिकुम वह प्रांत था जो अद्रिया सागर के पूर्वी किनारे पर उत्तर में इटली से लेकर दक्षिण में मकिदुनिया तक फैला था।) २० : २ "यूनान में आया"—नया नियम में 'यूनान' का केवल यहीं उल्लेख है। अन्यत्र उसके दो प्रांतों का अर्थात अखाया और मकिदुनिया का उल्लेख हुआ है। ई. स. ५७ के आरंभ में पौलुस यहां आया होगा। २० : ३ "तीन महीने"—संभाव्यतः ई. स. ५७ में जनवरी से मार्च तक। २० : ४ "सोपत्रुस"—दे. रो. १६ : २१। "अरिस्तर्खुस और गयुस"—दे. १६ : २६। "तीमुथियुस"—संभव है कि 'दिरबे का' शब्द तीयुथियुस के साथ जाने चाहिये। "तुखिकुस"—दे. इफ. ६ : २१ (कुल. ४ : ७); २ तीम. ४ : १२; तीत. ३ : १२। कोदेक्स बेज़े प्रति में "युतुखुस" है। "त्रुफिमुस"—दे. २ तीम. ४ : २०; प्रे. २१ : २६। (इस सूची में कुरिंथुस और फिलिप्पी का कोई प्रतिनिधि नहीं है। क्या पौलुस कुरिंथुस का और लूका फिलिप्पी का प्रतिनिधि था?)। "आसिया तक साथ हो लिये"—प्रामाणिक मूल प्रतिलिपियों में ये शब्द नहीं हैं। इससे संकेत होता है कि इस सूची में उल्लिखित जन यरूशलेम तक जानेवाले थे।

(३) फिलिप्पी से मीलेतुस (२० : ५-१६)

२० : ५ से 'हम' सर्वमान का प्रयोग पुनः होता है। अध्याय १६ के बाद यहां से 'हम' शब्द काम में आता है। "वे"—या तो सूची में लिखित सब जन, अथवा आसिया का तुखिकुस और त्रुफिमुस। २० : ६—दे. १२ : ३। "पांच दिन में"—विषमता कीजिए १६ : ११। २० : ७ "सप्ताह के पहले दिन"—यह स्पष्ट नहीं है कि यह शनिवार सायंकाल ६ बजे से है जैसा यहूदियों की मान्यता थी, अथवा इतवार सायंकाल से है। मसीही कलीसिया इतवार को पहला दिन मानने लगी। संभाव्यतः इतवार जो यीशु के पुनरुत्थान का दिन है। "रोटी तोड़ने के लिये"—यह संभाव्यतः प्रभुभोज था :

यह सायंकाल को हुआ जैसे अंतिम भोज हुआ था। नया नियम में प्रातःकाल में प्रभु भोज का उल्लेख नहीं है। २० : ८ "युतुखुस"—इस शब्द का अर्थ 'भाग्यवान' है। वास्तव में वह भाग्यशाली था कि पौलुस वहां उपस्थित था। २० : १० तुलना कीजिए एलिय्याह और एलीशा के कार्य (१ रा. १७ : २१; २ रा. ४ : ३४-३५)। २० : १३ 'अस्सुस'—त्रोआस से लगभग ४० किलोमीटर दक्षिण में। २० : १४ "मितुलेने"—अस्सुस से ४८ किलोमीटर दक्षिण में। यह लेसबस द्वीप का मुख्य नगर था। २० : १५ "खियुस"—लेसबस द्वीप के दक्षिण में ९६ किलोमीटर दूर एक द्वीप। "सामुस"—खियुस से दक्षिण में ६५ किलोमीटर दूर एक द्वीप। "मीलेतुस"—सामुस से ७२ किलोमीटर दूर एशिया माइनर के दक्षिण-पश्चिम किनारे पर एक नगर। यह नगर इफिसुस से कोई ४०-४५ किलोमीटर दक्षिण में था। २० : १६ "पिन्तेकुस्त"—दे. २ : १ की टीका। पौलुस पिन्तेकुस्त के दिन यरूशलेम पहुँचा अथवा नहीं, इसकी जानकारी नहीं मिलती।

(४) २० : १७-३८ इफिसुस के प्राचीनों (धर्मवृद्धों) से विदा लेना।

२० : १७ "प्राचीन"—दे. १४ : २३ की टीका। २० : १९ "यहूदियों के षड्यंत्र"—दे. १ कुर. १५ : ३२; २ कुर. १ : ८; ११ : २३। २० : २२ "आत्मा में बंधा हुआ"—पवित्र आत्मा द्वारा बाध्य होकर। २० : २३ "पवित्र आत्मा... तैयार है"—प्रेरितों के काम में केवल दो उदाहरण हैं—दे. २१ : १०-१४। २० : २४ "दौड़"—दे. पौलुस के शब्द २ तीम. ४ : ७। २० : २५ "परमेश्वर के राज्य"—दे. १ : ३; ८:१२; १९ : ८। प्रेरितों के काम के आधार पर यह निश्चित करना असंभव है कि 'परमेश्वर के राज्य' का अंतिम आशा संबंधी अर्थ अभिप्रेत है, अथवा कलीसिया को परमेश्वर का राज्य कहा गया है। २० : २६ "लोहू से निर्दोष हूं"—सब के दायित्व से मुक्त हूं (दे. १८ : ६)। २० : २७ "परमेश्वर की सारी मनसा"—अर्थात उद्धार का पूरा संदेश, और कि विश्वासियों का अपने जीवन के और सुसमाचार के प्रति दायित्व क्या है। २० : २८ "झुंड"—दे. यू. १० : १६; १ पत. ५ : २। "अध्यक्ष"—मूल यूनानी शब्द 'एपिस्कॉपॉस' है जिससे बिशप शब्द निकला है। इस शब्द का अर्थ 'संरक्षक' या 'निरीक्षक' है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'प्राचीनों (प्रिसबुतिरों) और बिशपों के कार्य में अंतर नहीं माना गया है। "परमेश्वर की कलीसिया"—कुछ मूल प्रतियों में 'परमेश्वर' के स्थान पर 'प्रभु' है। "जिसे उसने अपने लोहू से मोल लिया है"—यह पद कठिन है क्योंकि 'परमेश्वर के लोहू से मोल लेने' का भाव विचित्र है। अर्थ है 'अपने पुत्र के लोहू से मोल लिया है'। 'कलीसिया"—दे. ५ : ११ की टीका। २० : २९-३० "फाड़नेवाले भेड़िये"..."ऐसे मनुष्य...बातें कहेंगे"—इनसे भ्रांत मत फैलानेवाले शिक्षकों का बोध होता है (दे. १ तीम १ : ३-७; ६ : २०-२१; यहूदा १ : १७-२३; २ पत. ३ : १६-१७)। २० : ३१ "जागते रहो"—यह बड़े महत्व का आदेश है। नया नियम में यह आदेश २३ बार दिया गया है। "तीन वर्ष"—'इन वर्षों में पौलुस ने कुरिंथियों को पत्र लिखे और कदाचित अन्य पत्र भी लिखे। २ कुर.

११ : २३ में बंदीगृह में डाले जाने के उल्लेख हैं। संभव है यह इस अवधि में हुए हों। डा. जी. एस. डंकन नामक विद्वान की एक रोचक पुस्तक है "सेंट पॉल्स इफिसियन मिनिस्ट्री"। उसमें डंकन ने तीन वर्ष की सेवा का नियोजित रूप प्रस्तुत किया है। लूका ने १९वें अध्याय में केवल इफिसुस के सेवा की पांच घटनाओं का वर्णन किया है। वास्तव में तीन वर्ष में बहुत कुछ हुआ होगा।' **२०:३२** "उसके अनुग्रह के वचन को"—परमेश्वर के सेंतमेंत प्रेम का संदेश, जो ख्रिस्त में प्रकट हुआ है। "और सब...मीरास दे सकता है"—इसमें व्य. ३३ : ३-४ की ध्वनि है। मसीही कलीसिया को पुराना नियम की सब प्रतिज्ञाएं मीरास में प्राप्त हैं (तु. २६ : १८; इब्र. ६ : १२; दे. रो. ८ : १६-१७)। **२०:३५** "आप ही कहा है : लेने से देना धन्य है"—यीशु का यह एक कथन है जो सुसमाचारों में नहीं मिलता। यीशु के अनेक ऐसे कथन होंगे जो उपलब्ध नहीं हैं (दे. यू. २१ : २५)। इसका अर्थ यह है कि उदार व्यक्ति स्वयं को और उसके मित्रों को वास्तविक रूप से सुखी बनाता है; लालची व्यक्ति किसी को सुखी नहीं बनाता। परंतु अनुग्रह के संबंध में लेना और देना दोनों धन्य हैं। **२०:३७** "घुटने टेके"—बहुधा खड़े होकर प्रार्थना की जाती थी (दे. लू. १८ : ११)। विशेष गंभीर अवसरों पर ही घुटने टेके जाते थे (दे. ९ : ४०; २१ : ५; लू. २२ : ४१; इफ. ३ : १४)। "उसे चूमने लगे"—दे. उत. ३३ : ४; ४५ : १४; ४६ : २९; लू. १५ : २०। **२०:३८** यह दृश्य बाइबल में विदाई के दृश्यों में अत्यंत मार्मिक है।

(४) मीलेतुस से यरूशलेम २१ : १-१६

इन पदों में यात्रा का सीधा सरल वर्णन है। इस यात्रा में लूका पौलुस के साथ है। इसीलिये 'हम' सर्वनाम का प्रयोग किया गया है। बाइबल मानचित्रावली नक्शा नं. १७ देखिए।

२१:१ "कोस"—मीलेतुस से ७२ किलोमीटर दक्षिण में एक टापू। "रुदुस"—रुदुस एक टापू का नाम है जो कोस के दक्षिणपूर्व में कोई ११२ किलोमीटर पर है। इस टापू के उत्तर में रुदुस नगर था। "पतरा"—यह नगर एशिया माइनर के दक्षिण पश्चिमी किनारे पर रुदुस के दक्षिण पूर्व में कोई १०४ किलोमीटर दूर था। कोदेक्स बेजै प्रति में 'पतारा और मूरा' है। 'मूरा' पतारा के ६४ किलोमीटर पूर्व में है। एक दिन में इतनी यात्रा संभव नहीं है। **२१:२** "फीनीके"—दे. ११ : १९ की टीका। **२१:३** "कुप्रुस को बाएं हाथ छोड़ा"—अर्थात कुप्रुस के दक्षिण से हमारा जहाज गया। "सूरिया"—इस नाम का रोमी प्रांत। फीनीके इसका एक क्षेत्र मात्र था। "सूर" देखिए ११ : १९ की टीका। पतारा से सूर की दूरी ६४० किलोमीटर है। **२१:४** "चेलों को पाकर"—संभव है कि स्तिफनुस की मृत्यु के बाद सताव के समय भागे हुए मसीही लोगों ने सूर में मंडली की स्थापना की हो (दे. ११ : १९)। **२१:५** "घुटने टेककर"—तु. २० : ३६। **२१:७** "पतुलिमयिस"—'सूर' से ४२-४३ किलोमीटर दूर कर्मेल पहाड़ के उत्तर में एक नगर। "भाइयों"—दे. २१ : ४ 'चेलों को पाकर'। **२१:८** "कैसरिया"—दे. ८ : ४० की टीका। "फिलिप्पुस"—देखिए ६ : ३-५।

इसका पिछला उल्लेख ८ : ४० में है। "प्रचारक"—दे. २ तीम. ४ : ५; इफ. ४ : ११। यह ख्रिस्तीय सेवा का विशेष कार्य था। इससे किसी स्थान में पहलेपहल सुसमाचार सुनानेवाले का बोध होता है। २१ : ९ भविष्यवाणी"—दे. १९ : ६ पर टीका। २१ : १० "अगबुस"—दे. ११ : २८। २१ : ११ "पटका लिया. . .कहा"—यह एक क्रियात्मक दृष्टांत है। ऐसी पद्धति को नबी अपनाया करते थे (तु. यश. २० : २ क्र.; यि. १३ : १-११)। "पवित्र आत्मा यह कहता है"— तु. २० : २३; २१ : ४। २१ : १३ "यरूशलेम में जाने को तैयार हूं"—तु. यीशु यरूशलेम जाने के लिये उन्मुख हुआ (लूका ९ : ५१)। २१ : १४ "प्रभु की इच्छा पूरी हो"—दे. १८ : २१ की टीका। २१ : १५ "बांध छांद कर यरूशलेम को चल दिए"—हि. सं. अनुवाद है 'हमने तैयारी की और यरूशलेम को चल दिए'। २१ : १६ "मनासोन. . .ले आए" आर. एस. व्ही. में अनुवाद है : 'कुप्रुस निवासी मनासोन नाम पुराने चेले के घर ले आए'। कोदेक्स बेजै प्रति में अनुवाद है : 'और वे हमें वहां ले आए जहां हमें टिकना था। और किसी गांव में पहुँचकर हम मनासोन के यहां रहे'। 'मनासोन' शब्द का अर्थ है 'स्मरण रखनेवाला'। पौलुस क्यों मनासोन के घर में टिका जब कि उसके इतने मित्र यरूशलेम में थे ? इसका उत्तर संभवतः यह है कि पौलुस के साथ बहुत अन्य जातीय साथी थे और यहूदी के घर में टिकना संभव न होता। मनासोन अन्यजातीय मसीही था।

८. पौलुस, यरूशलेम में (२१ : १७-२३ : ३०)

२१ : १७ "यरूशलेम में पहुँचे"—लूका यह नहीं बताता कि वे लाग पिन्तेकुस्त पर्व तक वहां पहुँचे या नहीं (दे. २० : १६)। २१ : १८ "याकूब"—दे. १२ : १७ की टीका। द्रष्टव्य है कि यहां 'प्रेरित' नहीं हैं। २१ : २० "व्यवस्था के लिये धुन लगाए हैं"—हि. सं. में अनुवाद है जा इसका अर्थ भी व्यक्त करता है : 'ये सब नियम शास्त्र के कट्टर समर्थक हैं'। २१ : २१ "यहूदियों को. . .सिखाता है"—यह आरोप झूठा है क्योंकि पौलुस ने यहूदी मसीहियों के लिये खतना का निषेध नहीं किया। वास्तव में उसने तीमुथियुस का खतना कराया (दे. १६ : ३)। पौलुस का कहना था कि अन्यजातीय मसीहियों के लिये खतना की आवश्यकता नहीं है। "रीतियों" अर्थात 'विधियों'। २१ : २४ "शुद्ध कर. . .मुड़ाएं"—लूका सारी स्थिति को स्पष्ट नहीं करता। पौलुस को उन चार व्यक्तियों का साथ देना था। उनकी मन्नत नाजीरी मन्नत प्रतीत होती है (प्रे. १८ : १८)। इस मन्नत के माननेवालों के शुद्धीकरण की विधि गि. ६ : १-१७ में मिलती है। यदि किसी के पास शुद्धीकरण के बलि-चढ़ावे के लिये पैसा नहीं होता था तो व्यवस्था के नियमों के अनुसार दूसरा जन उसके लिये 'खर्च' दे सकता था। "कुछ जड़ नहीं है' अर्थात मिथ्या है। २१ : २५—'इस पद तथा संबंधित समस्याओं के लिये देखिए १५ : २० की टीका। विषय सामग्री से संबंधित समस्याओं के अतिरिक्त जिनका विवेचन १५ : २० में है, इस पद के संबंध में रचना संबंधी एक समस्या सामने आती है। यह आश्चर्य की बात है कि याकूब पौलुस को उस निर्णय की सूचना दे रहा है जो पौलुस के सामने हुआ और जिससे पौलुस का घनिष्ट संबंध था। इस कठिनाई

के कारण कदाचित कोदेक्स बेजै (पश्चिमी मूल प्रति) में इस प्रकार का पाठ है : "जहां तक अन्यजातीय विश्वासियों का संबंध है, उनको (यहूदी मसीहियों को) तुझ से कुछ भी नहीं कहना है, क्योंकि हमने यह निर्णय उनके पास लिख भेजा है कि वे मूरतों. . .बचे रहें" । याकूब पौलुस को स्मरण मात्र करा रहा है कि अन्यजातीय मसीहियों के लिये कोई और कार्यवाही करने की आवश्यकता नहीं है'—एच. के. मोल्टन । हिं. सं. में अनुवाद है : 'और रहा विजातियों के विषय में, जिन्हों ने विश्वास कर लिया है—इस संबंध में हमने निर्णय भेज ही दिया है कि वे मूर्तियों. . .बचाएं' । २१ : २६ "मंदिर में गया"—मूल यूनानी में क्रियारूप से संकेत होता है कि पौलुस कई बार गया । "चढ़ावा चढ़ाए"—दे. २१ : २४; गि. ६ : १०-१२ ।

२१ : १७-२६ के वर्णन के संदर्भ में पौलुस के चरित्र के संबंध में एक भारी समस्या उत्पन्न होती है । समस्या यह है कि स्वतंत्र अन्यजातीय कलीसिया का जबर्दस्त समर्थक पौलुस क्या इस प्रकार का पाखंड कर सकता था जैसा इन पदों में दर्शाया गया है । इस संक्षिप्त टीका में इस समस्या के विवेचन के लिये स्थान नहीं है । अंग्रेजी जाननेवाले पाठकों से आग्रह किया जाता है कि इसके लिये वे इन्टरप्रीटर बाइबल, ग्रंथ ६, पृष्ठ २८३-२८४ का अध्ययन करें । उस विवेचन का अंतिम वाक्य हम साभार उद्धृत करते हैं : 'लूका (प्रेरितों के काम का लेखक) का इस समस्त घटना के वर्णन में प्रकट करना उद्देश्य नहीं था कि पौलुस एक कट्टर यहूदी था, वरन यह प्रकट करता है कि यहूदी धर्म के प्रति उसकी अभी भी यहां तक सहृदयता थी कि वह ऐसे धर्मकृत्य में भाग ले सकता था जिसमें उसे अपने सिद्धांतों के साथ किसी प्रकार का समझौता नहीं करना पड़ता हो' ।

२१ : २७-४० मंदिर में हुल्लड़ और पौलुस के बन्दी किए जाने का वर्णन है । २१ : २७ "आसिया के यहूदियों"—ये कदाचित पिंतेकुस्त के पर्व के लिये आए थे । संभाव्यतः ये इफिसुस के थे । क्योंकि पद २९ में बताया जाता है कि वे त्रुफिमुस को पहचानते थे । २१ : २८ "यूनानियों. . .अपवित्र किया है" । यरूशलेम के मंदिर में अन्यजातियों के आंगन से आगे यहूदी स्त्रियों का आंगन, उससे आगे इस्राएलियों का आँगन और तब पुरोहितों का स्थान और परमपवित्र स्थान थे । अन्यजातियों के आंगन की ३ हाथ ऊंची दीवार पर सूचना लिखी होती थी कि कोई अन्यजातीय व्यक्ति इससे आगे आएगा तो उसकी मौत का वही उत्तरदायी होगा । पौलुस पर लगाया गया आरोप सरासर झूठा है । **२१ : २९** "त्रुफिमुस" के लिये देखिए २० : ४ की टीका । **२१ : ३०** "मंदिर के द्वार"—मंदिर की उस दीवार के द्वार (९ द्वार थे) जिसके द्वारा यहूदियों के आंगन और पवित्र स्थान अन्यजातियों के आंगन से अलग किए जाते थे । यह दीवार ६० फुट ऊंची थी । **२१ : ३१** "पलटन के सरदार"—हिं. सं. 'सैन्यदल के सहस्र पति' । पलटन में १००० सैनिक होते थे । प्रे. २३ : २६ में इसका नाम 'क्लौदियुस लूसियास' था । **२१ : ३२** "सूबेदारों"—हिं. सं. 'शतपतियों' । प्रत्येक के अधीन १०० सैनिक होते थे । कम से कम दो सौ सैनिकों को बुलाया गया । **२१ : ३७** "क्या

तू यूनानी जानता है ?"—यूनानी शिक्षित लोगों की भाषा थी । इसीलिये सहस्रपति आश्चर्य से प्रश्न करता है कि यह हुल्लड़ करनेवाला यहूदी यूनानी बोलता है । २१ : ३८ "वह मिसरी. . .ले गया"—फेलिक्स जब राज्यपाल था तब एक मिस्र निवासी ने विद्रोह खड़ा किया था । यहूदी इतिहासकार 'योसेपस एक मिस्री का वर्णन करता है जो इस घटना के तीन वर्ष पहले अपने आप को भविष्यद्वक्ता कहके ३०,००० लोगों को लेकर यरूशलेम पर चढ़ आया था । उसने दावा किया था कि ज्योंही वे यरूशलेम के निकट पहुँचेंगे त्योंही दीवारें स्वयं गिर पड़ेंगी । परंतु फेलिक्स (दे. २३ : २४) राज्यपाल ने सेना भेजकर ६०० विद्रोहियों को मार डाला या बन्दी कर लिया और अन्य तितर बितर हो गए । उनका नेता भी भाग गया । सहस्रपति ने विचार किया कि पौलुस वही मिस्री है'—एच. के. मोल्टन और इंटरप्रीटर बाइबल । "चार हजार"—यूनानी भाषा में तीस हजार और चार हजार के अंकों के लिये जो चिन्ह हैं उनमें सरलता से गड़बड़ी हो सकती है । "कटारबन्द" (हि. सं. कृपाणधारी)—यह यहूदी हिंसावादियों का एक गोपनीय दल था । इस दल में धार्मिक और राजनीतिक दक्षिणपंथी लोग थे जो जनसाधारण को भरमाकर अपने साथ मिला लेते थे । इनका उद्देश्य था रोमी सत्ता से स्वतंत्रता प्राप्त करना । ये हिंसा, लूटमार, हत्या आदि साधनों का उपयोग करते थे । २१ : ३९ "तरसुस". . ."किलिकिया"—देखिए ९ : ११ की टीका । २१ : ४० "इब्रानी भाषा"—बाइबल की इब्रानी भाषा नहीं, वरन संभवत: उस समय की साधारण बोलचाल की अरामी भाषा ।

२२ : १-२१ भीड़ के सामने पौलुस अपने हृदय-परिवर्तन की गवाही के आधार पर अपना प्रत्युत्तर देता है । इन पदों में पौलुस के हृदय-परिवर्तन का वर्णन दूसरी बार किया गया है । पहला वर्णन ९ : १-९ में है । तीसरी बार वर्णन २६ : १२-१९ में है । इन तीनों के ब्यौरों में कुछ अंतर है जो परिस्थितियों के अनुकूल हैं । परंतु मूल घटना में कोई भिन्नता नहीं है । पाठक स्वयं इन तीनों वर्णनों की भिन्नताएं देख सकता है ।

एक विद्वान लेखक की टिप्पणी है कि भीड़ की उत्तेजित स्थिति की दृष्टि से इस समस्त वर्णन को स्वीकार करने में कुछ कठिनाई जान पड़ती है । साथ ही यह द्रष्टव्य है कि २१ : ३४ में पौलुस जिस स्थिति में है वही स्थिति २२ : २४ में है । अतएव उक्त विद्वान का कथन है कि यह घटना ऐतिहासिक घटना होने के बजाए लूका की ही रचना है । लूका ने विचार किया कि पौलुस को जनता के समक्ष निर्दोष सिद्ध करने के लिये इस से अच्छा उपाय नहीं है कि पौलुस अपने ही शब्दों में अपनी गवाही प्रस्तुत करे । हमारा विचार है कि घटनाओं के तारतम्य का जब हम अध्ययन करते हैं तो यह घटना मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचित्र जान पड़ते हुए भी ऐतिहासिक दृष्टि से असंभव नहीं प्रतीत होती ।

२१ : १ "भाइयो और पितरो"—सामान्य संबोधन था (तु. ७ : २) । २२ : २ "इब्रानी भाषा" —दे. २१ : ४० की टीका । २२ : ३ "किलिकिया का तरसुस"—

दे. ९ : ११ की टीका। "गमलीएल"—दे. ५ : ३४ की टीका। २२ : ४ "इस पंथ" —दे. ९ : २ की टीका। हिं. सं. 'मार्ग'। २२ : ५ "महापुरोहित और पुरनिए"—ये मिलकर सनहेन्द्रिन महासभा थे। २२ : ८ "नासरी"—दे. २ : २२। २२ : ९ "उसका शब्द न सुना"—तु. ९ : ७। २२ : १४ "धर्मी" (हिं. सं. 'धर्मपुरुष')—दे ३ : १४ की टीका। २२ : १७ "जब मैं फिर यरूशलेम. . .बेसुध हो गया"—अध्याय ९ में भी बताया गया है कि पौलुस अपने मत-परिवर्तन के बाद यरूशलेम लौटा (प्रे. ९ : २६-३०)। परंतु यरूशलेम लौटने का वर्णन पौलुस द्वारा गलतियों १ : १८ क्र. से संगत नहीं है। यरूशलेम के मंदिर में दर्शन की घटना का उल्लेख प्रे. ९ : २६-३० में नहीं है। परंतु यह बेसुध होना या दर्शन की घटना उसी समय हुई होगी। संभव है कि २ कुर. १३ : १-४ में उल्लिखित दर्शन यही दर्शन हो। २२ : १८ "झट निकल जा"—विषमता देखिए प्रे. ९ : २६-३०। २२ : २० "गवाह"—दे. १ : ८ की टीका। "कपड़ों की रखवाली करता था"—दे. ७ : ५८। २२ : २३ "अन्यजातियों. . .भेजूंगा"—अन्य-जाति शब्द से मानो आग लग गई, विस्फोट हो गया। साधारणतः यहूदी लोग अन्य-जातियों के कन्वर्शन के विरोधी थे। और मंदिर में तो अन्यजातियों के मत-परिवर्तन की बात मानो ईश-निंदा हो गई और विरोध की फिर क्या सीमा !

२२ : २२-२९ में पौलुस के भाषण की प्रतिक्रिया वर्णित है। २२ : २७ "क्या तू रोमी है"—२२ : २५-२९ की प्रे. १६ : २९-३९ के कथोपकथन से तुलना कीजिए और उस अंश की टीका भी देखिए।

२२ : ३०-२३ : १० पौलुस महासभा के सामने। **टिप्पणी**—इस अंश के संबंध में कुछ आधुनिक विद्वानों के सामने कुछ समस्याएं उत्पन्न होती हैं। उनका विचार है कि यह अंश निम्नलिखित कारणों से ऐतिहासिक नहीं हो सकता और कि यह लूका स्वयं की रचना है :

(क) यह संभव नहीं प्रतीत होता कि लूसियास जैसा रोमी पदाधिकारी एक रोमी नागरिक को सनहेन्द्रिन के विचारार्थ प्रस्तुत करे 'यह ठीक ठीक जानने की इच्छा से कि यहूदी उस पर क्यों दोष लगाते हैं'। पेशी का वर्णन भी अस्पष्ट है। यह संभव नहीं है कि पौलुस महायाजक को न जाने।

(ख) २३ : ६ में पौलुस ने सभा में फूट डालने की जो चेष्टा की है वह प्रेरित के चरित्र के लिये अशोभनीय है। लूका पौलुस का मित्र था और वह इस प्रकार पौलुस के चरित्र का वर्णन नहीं कर सकता।

(ग) मान भी लिया जाए कि पौलुस ने यह चतुराई की तौ भी जो परिणाम सभा में हुए वे स्वाभाविक नहीं हैं।

इन तर्कों के संतोषप्रद उत्तर भी अन्य विद्वानों ने दिए हैं :

(क) लूसियास ने पौलुस को सनहेन्द्रिन के न्याय के लिये नहीं सौंपा परंतु यह तो उसका कर्तयव्य जान पड़ता है कि यदि रोमी न्यायालय के सामने पौलुस को उसे

प्रस्तुत करना है तो वह जाने कि यहूदी लोगों के प्रतिनिधि क्या दोष लगाते हैं। संभव है हनन्याह ने हाल ही में पद संभाला हो और पौलुस महायाजक को न जानता हो।

(ख) यदि लूका अपने मित्र के लिये ऐसी बात लिखता है जो उसके चरित्र में धब्बा स्वरूप जान पड़ती है तो ऐसी बात की ऐतिहासिकता में शंका नहीं की जा सकती। साथ ही फिलि. ३ : ४–६; २ कुर. ११ : २१-२२ जैसे अंशों से यह स्पष्ट होता है कि मसीही पौलुस अपने को फरीसी कहे तो आश्चर्य की बात नहीं है। अतः यह समस्या नैतिक भले ही हो परंतु सनहेन्द्रिन के सामने विचार का वर्णन ऐतिहासिक है।

(ग) पौलुस के प्रचार में यीशु का 'पुनरुत्थान' केन्द्रीय विषय था और पद ८ में जो विषमता फरीसियों और सदूकियों में बताई गई है उससे सभा में जो परिणाम हुए उनका समर्थन ही होता है।

इन समस्याओं के विस्तृत विवेचन के लिये देखिए इंटरप्रीटर बाइबल, ग्रंथ ९, पृष्ठ २९४-२९६।

२२ : ३० "नीचे ले जाकर" (दे. २१ : ३२)—पलटन अन्तोनिया के गढ़ में रहती थी। यहां वे बैरकें थीं जिन्हें हेरोदेस महान ने बनवाया था। यह गढ़ मंदिर के उत्तरपश्चिमी भाग से लगा हुआ था और मन्दिर के अहाते में इससे सीढ़ियां आती थीं (दे. २२ : ३५, ४०)। २१ : ३२ और २२ : ३० में इन्हीं सीढ़ियों से पौलुस को नीचे लाया गया। **२३ : १** "टकटकी लगाकर"—दे. ३ : ४ की टीका। "विवेक"—पौलुस का एक प्रिय शब्द (दे. रो. २ : १५; १ कुर. ८ : ७; २ कुर. १ : १२) (हिं. सं. 'अंतःकरण')। **२३ : २** "हनन्याह"—यह सन् ४७ से लगभग ५९ तक महायाजक था। ई. स. ६६ में रोम का समर्थक होने के कारण यह मारा गया। "मुंह पर थप्पड़ मारने की आज्ञा"—क्योंकि पौलुस ने स्वयं को परमेश्वर के सामने निर्दोष बताया। **२३ : ३** "चूना फेरी हुई भीत"—संभव है भीत में संकेत हो 'कबर की भीत' (तु. मत्त. २३ : २७)। **२३ : ५** "मैं नहीं जानता था"—देखिए २२ : ३०-२३ : १० की टिप्पणी। "अपने लोगों. . .कह"—इसमें नि. २२ : २८ की ओर संकेत है। **२३ : ९** "स्वर्गदूत"—विस्तृत अध्ययन के लिये पढ़िए बाइबल ज्ञानकोश पृ. ५५५-५५६; हेस्टिंग्स डिक्शनरी ऑफ दी बाइबल, ग्रंथ ४।

२३ : ११ "प्रभु ने. . .कहा"—हम एक बार फिर यह देखते हैं कि पौलुस के जीवन के प्रत्येक महत्वपूर्ण मोड़ पर उसे दर्शन होता है (दे. १८ : ९-१०)। १९ : २१ के अनुसार पौलुस के मन में रोमा जाने का विचार प्रविष्ट हो चुका है। अब पौलुस को प्रभु का समर्थन प्राप्त हो गया है।

२३ : १२-३५ यहूदियों का षड़यंत्र और पौलुस का कैसरिया पहुँचाया जाना। इस अंश की ऐतिहासिकता के संबंध और उनके समाधान के संबंध में देखिए इंटरप्रीटर बाइबल, ग्रंथ ९ पृष्ठ ३०१-३०२। **२३ : १६** "भांजे"—पौलुस के रिश्तेदारों के संबंध में यही एक उल्लेख है। 'पौलुस की बहिन और पौलुस के भांजे के विषय इससे अधिक जानकारी हमारे पास नहीं है. परंतु यह आनंद की बात है कि मसीही हो जाने पर

भी पौलुस ने अपने परिवार के लोगों से उचित संबंध बनाए रखा'। २३ : २३ "भालैत" —मूल यूनानी शब्द का अनुवाद अनुमान से ही किया गया है। "पहर रात बीते"— नौ बजे रात के बाद। "कैसरिया"—यरूशलेम से ९६ किलोमीटर उत्तर पश्चिम में। कैसरिया में राज्यपाल रहता था। २३ : २४ "फेलिक्स हाकिम" (हिं. सं. राज्यपाल)—फेलिक्स दासों में से स्वतंत्र किया व्यक्ति था। उसका भाई पल्लास सम्राट क्लौदियुस का कृपापात्र था। उसके कारण फेलिक्स की भी उन्नति हुई। फेलिक्स पहले सामरिया का हाकिम बनाया गया। तब ई. स ५२ में वह यहूदिया प्रांत का राज्यपाल बनाया गया। ई. स. ५८ में वह वापिस बुला लिया गया। उसमें सब प्रकार का भ्रष्टाचार और कामुकता थी। द्रुसिल्ला (२४ : २४) इसकी तीसरी पत्नी थी। रोमी इतिहासकार 'टैसीटस' इसके विषय कहता है 'यह गुलाम की मनोवृत्ति से राजा के अधिकार का उपयोग करता था'। २३ : २५ "चिट्ठी"—लूका पत्र का सारांश मात्र देता है। यह शब्दशः पत्र नहीं है।

२३ : २६ "महाप्रतापी"—हिं. सं. परमश्रेष्ठ। भारत में परमश्रेष्ठ शब्द से राज्यपाल को संबोधित किया जाता है।

९. पौलुस बन्दी, कैसरिया में (२३ : ३१-२६ : ३२)

(१) पौलुस और फेलिक्स (२३ : ३१-२४ : २७)। (२) पौलुस और फेस्तुस (२५ : १-२७)। (३) अग्रिप्पा के समक्ष पौलुस की सफाई (२६ : १-३२)

(१) पौलुस और फेलिक्स (२३ : ३१-२४ : २७)

२३ : ३१-३५ "अंतिपत्रिस"—यरूशलेम से लगभग ६४ किलोमीटर दूर। २३ : २४ "देश"—हिं. सं. प्रांत जो अधिक स्पष्ट है। २३ : ३५ "मुद्दई"—हिं. सं. 'अभियोगी'। "हेरोदेस का किला"—किले के लिये मूल यूनानी शब्द 'प्रेतोरियुम' है। संभाव्यतः यह हेरोदेस महान का राजभवन था। रोमी अधिकारियों ने प्रशासकीय कार्यों के लिये ले लिया था। किले के लिये दे. मर. १५ : १६; यू. १८ : २८। पौलुस रोमी नागरिक था। इसीलिये उसे फेलिक्स ने निजी सुरक्षा में रखा।

२४ : १-२३ **फेलिक्स के सामने पेशी।** २४ : १ "तिरतुल्लुस"—यह वकील था। यूनानी भाषा जानता होगा। अधिक जानकारी नहीं है। इसकी वकालत बड़ी लचर है। २४ : २ "बड़ा कुशल होता है" (हिं. सं. शांति स्थापित है)—कारण यह था कि बड़ी निर्दयता से डाकुओं का दमन करता था। अर्थ यह निहित है कि पौलुस को मिटाने से शांति बनी रहेगी। "प्रबंध"—इसका अर्थ 'दूरदर्शिता' भी है। २४ : ५ पौलुस के विरुद्ध तीन अभियोग हैं : "यह उपद्रवी है" (आर. एस. व्ही. और संशोधित हिन्दी अनुवाद में है 'संक्रामक रोग के सदृश')। (१) जगत (अर्थात समग्र रोमी साम्राज्य) के सारे यहूदियों में बलवा करानेवाला। (२) नासरी कुपंथ का मुखिया (३) मंदिर को अशुद्ध करने वाला है। इनमें से यदि एक भी अभियोग सिद्ध हो जाए तो पौलुस को प्राणदंड दिया जा सकता था।

२४ : १२ में पौलुस पहले अभियोग का उत्तर देता है। २४ : १४-१६ में पौलुस दूसरे अभियोग का उत्तर देता है। "धर्मी और अधर्मी दोनों के जी उठने"—बाइबल में इस के संबंध में कठोर सिद्धांत नहीं है। १ कुर. १५ : २३; लू. १४ : १४; २० : ३५ में केवल धर्मियों के जी उठने का उल्लेख है। दा. १२ : २; यू. ५ : २९ में बुरे-भले दोनों के जी उठने का संकेत है। प्रक. २० : ४-६ में मसीही शहीदों का और २० : १२-१३ में सामान्य पुनरुत्थान का उल्लेख है। २४ : १७-२१ में तीसरे अभियोग का उत्तर है। "बहुत वर्षो के बाद"—लगभग ५ वर्ष बाद (दे. १८ : २२)। "अपने लोगों को दान पहुँचाने"—दे. २० : ४; २१ : १९। "भेंट चढ़ाने"—कदाचित २१ : २६ की ओर संकेत है। "आसिया के कई यहूदी"—इन्हों ने गड़बड़ शुरू की थी (दे. २१ : २७)। "इस पंथ की बातें ठीक ठीक जानता था"—कदाचित अपनी पत्नी द्रुसिल्ला से जानकारी प्राप्त की हो। द्रुसिल्ला यहूदिनी थी। वह हेरोदेस अग्रिप्पा प्रथम की पुत्री थी (दे. १२ : १)।

२४ : २४-२७ फेलिक्स से एकांत में बातचीत। "धर्म और संयम और आनेवाले न्याय"—तीनों ही दृष्टि से फेलिक्स का चरित्र दोषी थी। वह रिश्वत खानेवाला था (दे. २४ : २६)। उसने जादूगर की सहायता से द्रुसिल्ला को बहकाया और उसने अपने पति को छोड़ दिया। द्रुसिल्ला फेलिक्स की तीसरी पत्नी थी। अतः संयम की दृष्टि से फेलिक्स दोषी था। "दो वर्ष बीत गए"—प्रे. के काम में तिथियां निश्चित रूप से निर्धारित नहीं की जा सकतीं। परंतु इस कथन से हम ई. स. ५८ पर पहुँच जाते हैं। इन दो वर्षों में लूका को बहुत जानकारी प्राप्त हुई होगी। "पुरकियुस फेस्तुस"—यहूदी इतिहासकार योसेपस कहता है कि यह फेलिक्स से कहीं अच्छा व्यक्ति था परंतु उतना विख्यात नहीं था।

(२) पौलुस और फेस्तुस (२५ : १-२७)

२५ : १ "पहुँचकर"—अर्थात अधिकार ग्रहण कर। "तीन दिन. . .यरूशलेम को गया"—कैसरिया यहूदिया प्रांत की राजनीतिक राजधानी थी परंतु यरूशलेम धार्मिक राजधानी। फेस्तुस शीघ्र यरूशलेम गया क्योंकि प्रांत में अराजकता फैली थी। २५ : ४-१२ तक पौलुस का मुकद्दमा वैसा ही है जैसा फेलिक्स के सामन हुआ था। २५ : १० "कैसर के न्यायासन के साम्हने खड़ा हूं"—पौलुस थोड़े समय के लिये भी यहूदियों के अधिकार में दिए जाने का विरोध करता है। पौलुस अपने रोमी नागरिकता के अधिकार की मांग करता है कि रोमी न्यायालय में ही उसका न्याय हो। २५ : ११ "मैं कैसर की दुहाई देता हूं"—कैसर से अपील करने का अधिकार भी रोमी नागरिक को था। जिस समय की यह घटना है उस समय समस्त अपीलें नेरो सम्राट के समक्ष जाती थीं। नेरो सम्राट ने प्रथम पांच वर्ष अच्छा प्रशासन किया। फेस्तुस इस अपील से प्रसन्न ही हुआ। उसने सोचा अपने सिर पर से एक बला टली। पौलुस दो उद्देश्य सिद्ध करता है : एक कि यहूदियों के हाथ में पड़कर अकाल मृत्यु से बच जाए; दूसरा, जो पहले कारण से बड़ा था : कि वह रोम पहुँचे और साम्राज्य की राजधानी में तथा

सम्राट के समक्ष ख्रिस्त का प्रचार करे। २५ : १२ "मंत्रियों की सभा के साथ बातें करके" (हिं. सं. मंत्रिमंडल से परामर्श कर)—ऐसा प्रतीत होता है कि कैसर को अपील बिना विचार किए ही नहीं स्वीकृत होती थी। मंत्रिमंडल (रोमी अधिकारी और सलाहकार) से परामर्श लिया जाता था। परंतु निर्णय राज्यपाल ही करता था। पौलुस की अपील स्वीकृत की जाती है।

२५ : १३-२२ फेस्तुस राजा अग्रिप्पा से परामर्श करता है।

२५ : १३ "अग्रिप्पा"—यह हेरोदेस अग्रिप्पा द्वितीय था। यह हेरोदेस अग्रिप्पा प्रथम (दे. १२ : १ की टीका) का पुत्र था। उसने सन् ५० से १०० तक शासन किया। सन् ५० में वह लबानोन के एक छोटे प्रांत का राजा बनाया गया। वह रोम का कृपापात्र था फिर भी उसे अपने पिता का राज्य (यहूदिया राज्य) नहीं दिया गया। ई. स. ५३ में उसे फिलिप और लूसानियास राजाओं के चौथाई राज्य दिए गए जिसमें बाद में गलील और पीरिया के कुछ नगर भी मिलाए गए। उसे यरूशलेम के मंदिर की संपत्ति का अधिकारी भी बनाया गया और महायाजक की नियुक्ति का अधिकार भी दिया गया, परंतु महायाजक के वस्त्र और साज रखने का अधिकार नहीं दिया गया। यह अधिकार रोमी राज्यपाल को ही था। विशेष पर्वों पर वे वस्त्र और साज दिए जाते थे और पर्व के बाद ले लिये जाते थे। सन् ६६ में अग्रिप्पा ने यहूदियों को यह समझाने का प्रयत्न किया कि वे रोम के विरुद्ध बलवा न करें परंतु वह असफल रहा। उसकी मृत्यु ई. स. १०० में हुई। उसके कोई बच्चे न थे। अतः इसे हेरोदेस वंश का अंतिम वंशज माना जा सकता है।

"बिरनीके"—यह हेरोदेस अग्रिप्पा द्वितीय की बहिन थी और द्रुसिल्ला की बड़ी बहिन थी। यह बड़ी मोहिनी थी। अपने भाई के समान इसने भी ई. स. ६६ में बहुत प्रयत्न किया कि यहूदी लोग रोम के विरुद्ध बलवा न करें। एक बार उसने बड़ा साहस प्रदर्शित किया जब वह अपनी जान की बाजी लगाकर नंगे पाव प्रांतपति गेस्सियुस फ्लोरुस के समक्ष यह प्रार्थना करने के लिये गई कि यहूदियों का संहार न किया जाए। यहूदी वामपंथियों ने इस कार्य के लिये बिरनीके के प्रति कोइ कृतज्ञता प्रकाशित नहीं की। इन्हों ने यरूशलेम में यहूदी बिरनीके और अग्रिप्पा के महलों को आग लगा दी। अंत में बिरनीके फ्लेवियन सम्राटों की भक्त बन गई। वह ई. स. ७५ में अग्रिप्पा के साथ रोम आई और सम्राट टाइटस की रखैल बन गई, क्योंकि रोमी लोगों ने टाइटस को उससे विवाह करने की अनुमति नहीं दी। २५ : १९ "मत"—मूल यूनानी शब्द का अर्थ है 'भ्रांत विश्वास' अथवा 'अंधविश्वास'। २५ : २१ "महाराजाधिराज"—मूल शब्द है "औगस्तुस"। इस शब्द का अर्थ है 'भव्य'। यह जुलियस कैसर के दत्तक पुत्र की व्यक्तिगत पदवी थी (दे. लूका २ : १)। परंतु बाद में सभी रोमी सम्राटों ने इस पदवी को अपनाया।

२५ : २३-२७ में अग्रिप्पा के समक्ष और दरबार के समक्ष पौलुस के वाद का विवरण है।

२५ : २६ "स्वामी"—मूल यूनानी में इस शब्द के लिये 'कुरियस' (kurios) शब्द है जिसका अर्थ प्रभु भी किया गया है। हमारे धर्मशास्त्र में इस शब्द का प्रयोग चार रूपों में हुआ है : (क) परमेश्वर यहोवा के लिये, सेपत्वगिंता अनुवाद में (उदा. व्य. १८ : १५; भ. २ : २, इत्यादि)। (ख) रोमी यूनानी देवताओं के लिये। देवताओं की उपासना में उनको प्रभु कहकर संबोधित किया जाता था। (ग) रोमी सम्राट को संबोधन के लिये। (घ) ख्रिस्त के लिये—सब से पहले अरामी भाषा बोलने वाली मसीही मंडली ने ख्रिस्त के लिये अरामी भाषा के 'प्रभु' शब्द का प्रयोग किया (दे. १ कुर. १६ : २२; प्रक. २२ : २०)। नया नियम में जीवित ख्रिस्त के लिये 'प्रभु' शब्द का प्रयोग हुआ है, विशेषकर पौलुस की पत्रियों में।

इस पद में 'कुरियस' शब्द सम्राट के संबंध में प्रयुक्त है। अतः यह उचित है कि अनुवाद 'प्रभु' नहीं किया गया, वरन 'स्वामी' किया गया है। द्रष्टव्य यह है कि इस समय तक रोमी सम्राट ईश्वरीय सम्मान के इच्छुक हो चले थे।

(३) अग्रिप्पा के समक्ष पौलुस अपने दर्शन के आधार पर सफाई देता है (२६ : १-३२)

यह अंश इतना कलात्मक और सुगठित है कि ऐसा प्रतीत होता है कि लूका की ही संपादकीय रचना है। परंतु ध्यान से इसका अध्ययन करने पर यह वास्तविक ऐतिहासिक घटना जान पड़ती है। इस अंश में पौलुस के बचाव का चरमोत्कर्ष है। पौलुस के पास उसका सबसे ठोस तर्क दमिश्क के मार्ग पर उसका अनुभव और परिवर्तन है।

२६ : १ "पौलुस...उत्तर देने लगा"—पश्चिमी मूलप्रति में "पौलुस' के बाद ये शब्द भी हैं 'पवित्र आत्मा द्वारा निश्चय एवं आश्वासन पाकर'। २६ : ४ "अपनी जाति के बीच"—अर्थात किलिकिया प्रांत के अपने लोगों के बीच, अथवा तरसुस के यहूदी लोगों के बीच। २६ : ५ "सब से खरे पंथ"(हिं. सं. 'कठोर पंथ')—अर्थात फरीसी पंथ जो बड़ी शुद्धता और कठोरता से यहूदी व्यवस्था और उसके नियमों उपनियमों का पालन करता था। "धर्म"—मूल यूनानी शब्द नया नियम में यहां, कुल. २ : १८ और या. १ : १६, २७ में ही पाया जाता है। इस शब्द से धर्मभाव के व्यावहारिक और बाह्य विधि पक्ष का बोध होता है; सैद्धांतिक पक्ष का इतना बोध नहीं होता। २६ : ६ "प्रतिज्ञा की आशा"—अर्थात मसीह और उसके जी उठने की प्रतिज्ञा की आशा (तु. १३ : ३२ क्र.; २३ : ६; २४ : १५)। "हमारे बापदादों"—अर्थात अब्रहाम, इसहाक और याकूब आदि पितर। २६ : ७ "हमारे बारहों गोत्र"—मूल यूनानी में 'बारहों गोत्र' के लिये जो शब्द है वह एकवचन है। इससे यह संकेत होता है कि बारहों गोत्र एक समाज थे और उस समग्र समाज की एक आशा थी। "सेवा"—अर्थात उपासना।

२६ : ९-१८ में पौलुस के मन और मत परिवर्तन का तीसरी बार वर्णन है। अन्य वर्णन अध्याय ९ और २२ में हैं। तीनों के ब्यौरों की तुलना पाठक स्वयं करें। यह रोचक अध्ययन है। २६ : १० "अब वे मार डाले जाते थे"—पिछले अध्यायों में

केवल स्तिफनुस और याकूब के मारे जाने का ही वर्णन है। परंतु बहुतसे मसीही मारे गए होंगे जिनका उल्लेख नहीं हुआ है। २२ : ४ से ऐसा संकेत मिलता है। "मैं भी . . .अपनी सम्मति देता था"—इस से संकेत होता है कि पौलुस स्वयं यहूदी महासभा का सदस्य था, परंतु इससे यह बात प्रमाणित नहीं होती (तु. २२ : २०)। **२६ : ११** "आराधनालयों. . .दिलाकर"—आराधनालय न केवल आराधना के घर थे परंतु न्यायालय भी थे (तु. २२ : १९)। "निंदा करवाता था" अर्थात यीशु के नाम का इन्कार करवाता था। "निंदा करवाना" इस काल के बाद होता था जब मसीहियों का सम्राट की मूर्ति के सामने चुटकी भर धूप जलाकर 'कैसर ही प्रभु है' कहना पड़ता था, जो यीशु की निंदा थी। ऐसा प्रतीत होता है कि इन शब्दों में परवर्ती काल की रचना की झलक है। **२६ : १३** 'सूर्य के तेज से भी बढ़कर'—ये शब्द केवल इसी वर्णन में हैं, पौलुस के परिवर्तन के अन्य दो वर्णनों में नहीं हैं। "अपने साथ चलनेवालों" (हिं. सं. सहयात्रियों)—ये शब्द केवल इसी वर्णन में हैं। **२६ : १४** "जब हम सब भूमि पर गिर पड़े"—केवल इसी वर्णन में है। "इब्रानी भाषा में"—ये शब्द केवल इसी वर्णन में हैं। "पैने पर लात मारना तेरे लिये कठिन है"—केवल इसी वर्णन में है। यह एक यूनानी और लातीनी मुहाविरा है (अरामी मुहाविरा नहीं है)। परंतु अरामी भाषा में ये शब्द सुनाई दिए हैं। कृषक वर्ग के लोग इसे सरलता से समझ सकते हैं। हिं. सं. में अनुवाद है, अंकुश पर पद-प्रहार करना तुम्हारे लिये दुष्कर है। रूपक बैलों को हांकने से लिया गया है। हांकनेवाले के हाथ में आर या अंकुश रहता है। यदि बैल पैर मारे तो उसे ही अंकुश गहरा गड़ेगा और अधिक पीड़ा होगी। इस रूपक का अर्थ यह है कि यदि पौलुस सताव का कार्य चालू रखेगा तो उसके विवेक को ही अधिक पीड़ा होगी। **२६ : १६** यहां अन्य दो वर्णणों के समान हनन्याह का वर्णन नहीं है। "उठ, अपने पावों पर खड़ा हो"—तु. यहे. २ : १। "सेवक"—दे. लू. १ : २; १ कुर ४ : १; प्रे. १३ : ५। "गवाह ठहराऊं"—वही शब्द है जो हनन्याह प्रयोग करता है। "मैं तुझे दर्शन दूंगा"—इस पद की मूल यूनानी कुछ विचित्र है। परंतु इसमें इस दर्शन का और आगे दिए जानेवाले दर्शनों की ओर संकेत है (उदा. १८ : ९-१०; २२ : १७-२१; २३ : ११)। 'तेरे लोगों. . .बचाता रहूंगा" केवल इसी वर्णन में है। **२६ : १७-१८** तुलना कीजिए ९ : १५-१६। यह पद अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसमें उद्धार की प्रक्रिया के चार तथ्य प्रस्तुत हैं : (क) मनुष्य की आंखें अंधकार (असत्य) से ज्योति (सत्य) की ओर खुलें। (ख) शैतान के अधिकार (पाप) से परमेश्वर की ओर (धर्म) फिरें (पश्चाताप कर मन फिराएं)। (ग) परमेश्वर से पापों की क्षमा पाएं। (घ) पवित्र (पृथक) किए हुए विश्वासियों के समाज में सम्भागी होकर मीरास पाएं। "मीरास पाएं" (हिं. सं. अधिकृत स्थान पाएं)—देखिए २० : ३२; १३ : १९; ७ : ५। ध्यान देने की बात यह है कि **पद १७** में यह कहा गया है कि यह उद्धार केवल व्यक्तिगत उपभोग की बात नहीं है परंतु प्रत्येक मसीही को इस उद्धार को दूसरों तक पहुँचाने के लिये 'भेजा जाता' है।

इस आदेश की तुलना और अंतर हमारी भारतभूमि की सुप्रसिद्ध प्रार्थना से की -जिए जो बृहदारण्यक उपनिषद, अध्याय १, तृतीय ब्राह्मण, पद २८ में मिलती है : 'मुझे असत्य से सत्य की ओर ! अंकार से प्रकाश की ओर ! मृत्यु से अमरत्व की ओर ले चल !' यह प्रार्थना व्यक्ति की है, प्रे. २६ : १७-१८ का आदेश व्यक्ति और समाज दोनों के लिये है। प्रार्थना में क्षमा का विधान नहीं है, इस आदेश में क्षमा का विधान है इत्यादि।

२६ : १९-२३ पौलुस बताता है कि वह आज तक उस स्वर्गीय दर्शन के प्रति आज्ञाकारी रहा है। "स्वर्गीय दर्शन की बात न टाली"—यह उपदेश का सुंदर विषय है। मसीह के कार्य की सफलता की कुंजी है। **२६ : २२** "भविष्यद्वक्ताओं और मूसा . . होनेवाली हैं"—ख्रिस्तीय विश्वास यहूदी धर्म की परिपूर्ति है। **२६ : २३** इस पद में पौलुस के प्रचार के दो मूल तत्वों की अभिव्यक्ति है। "पहिले"—दे. १ कुर. १५ : २०; कुल. १ : १८।

२६ : २४-२९ इसमें फेस्तुस को चुनौती है और सारे संसार के लोगों के लिये प्रार्थना है कि वे ख्रिस्त यीशु पर विश्वास करें। **२६ : २४** "तू पागल है"—ऐसा प्रतीत होता है कि अपनी बातों के समर्थन में पौलुस ने धर्मशास्त्र से अनेक उल्लेख किए होंगे। पुनरुत्थान के विषय सबल चर्चा के कारण यहूदी फेस्तुस पौलुस को पागल कहता है। "विद्या" का अर्थ यहां विशेष रूप से धर्मशास्त्र -ज्ञान है। **२६ : २५-२७** पौलुस के उत्तर से ही उसके 'पागल न होने' का प्रमाण मिलता है। **२६ : २८** इस पद की मूल यूनानी शब्दावली का अनुवाद करना कठिन है। शब्दशः है 'क्या तू थोड़े में ही मुझे मसीही बनाना चाहता है'। 'थोड़े में ही' का अर्थ हो सकता है 'थोड़े ही समझाने'; अथवा 'संक्षेप में कहा जाए तो'; अथवा 'अनायास ही'; अथवा 'अल्प समय में ही'; अथवा 'थोड़े से प्रयत्न से ही'। **२६ : २९** "क्या थोड़े में, क्या बहुत में"—पिछले पद के अर्थ के अनुरूप 'बहुत में' का भी अर्थ लगाया जा सकता है।

२६ : ३०-३२ पौलुस निर्दोष सिद्ध होता है। परंतु इससे हम इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचते कि कैसर के सामने पौलुस छूट जाएगा। अग्रिप्पा के समक्ष पेशी शासकीय पेशी नहीं थी। फेस्तुस के समक्ष पेशी शासकीय थी। फेस्तुस ने क्या लिखा (२५ : २६-२७) इसके संबंध में जानकारी नहीं है। इतना निश्चित है कि पौलुस रोम में प्रचार के लिये जाएगा।

१०. कलीसिया का विस्तार : पौलुस की रोम-यात्रा (२७ : १-२८ : ३१)

(१) समुद्र यात्रा और नौका का डूबना (२७ : १-४४)। (२) मिलिते (माल्टा) टापू में (२८ : १-१०)। (३) रोम पहुँचना (२८ : ११-१५) (४) रोम में (२८ : १६-३१)।

टिप्पणी—रोम-यात्रा का वर्णन बड़ा चित्रोपम है। ऐसा प्रतीत होता है कि वर्णन आंखों देखा ही नहीं, वरन ऐसे व्यक्ति द्वारा किया है जो समुद्र यात्रा की प्रणाली से सुपरिचित हो। इस यात्रा के अध्ययन के लिये देखिए बाइबल मान चित्रावली नक्शा संख्या १७।

२७ : १ "हम"—२१ : १८ के बाद यहां से फिर 'हम' शब्द मिलता है जो २८ : १६ तक है। "यूलियुस"—इस घटना से अधिक जानकारी इसके संबंध में नहीं है। "औगुस्तुस की पलटन"—टीकाकार इसके अनेक अर्थ बताते हैं। संभव है कि यह औगुस्तुस नामक पलटन हो (तुलना. १० : १)। २७ : २ "अद्रमुत्तियुम"—एशिया माइनर के पश्चिमोत्तर समुद्री तट पर अस्सुस से ५६ किलोमीटर पूर्व में एक बंदरगाह। वहां जानेवाले जहाज़ पर चढ़कर वे कैसरिया से निकले। "अरिस्तर्खुस"—दे. १९ : २९ की टीका। २७ : ३ "सैदा"—कैसरिया के उत्तर में ११२ किलोमीटर दूर। २७ : ४ "कुप्रुस की आड़ में"—इस समय हवा की दिशा के कारण ये लोग कुप्रुस के उत्तर से गए। २७ : ५ "किलिकिया" के लिये देखिए ६ : ९ की टीका और पंफूलिया के लिये १३ : १३ की टीका। "लूसिया के मूरा"—लूसिया एक पृथक रोमी प्रांत था जिसके दो अच्छे बंदरगाह थे—मूरा और पतारा। यह प्रांत एशिया माइनर के दक्षिण पूर्व भाग में था। २७ : ६ "सिकन्द्रिया का एक जहाज"—पद ३८ से स्पष्ट है कि यह अनाज लाने वाला जहाज था। रोम को मिस्र से अनाज प्राप्त होता था। 'सिकन्द्रिया' के लिये देखिए प्रे. १८ : २४ की टीका। २७ : ७ "कनिदुस"—एशिया माइनर के पश्चिम-दक्षिण में मूरा से २४० किलोमीटर दूर एक बन्दरगाह। "सलमोने"—क्रेते टापू के पूर्वी किनारे पर एक बंदरगाह। "क्रेते की आड़ में चले"—हवा की स्थिति से इसका अर्थ होगा क्रेते टापू के दक्षिण में। "क्रेते"—भूमध्यसागर में एक द्वीप। २७ : ८ "शुभलंगरबारी" (हिं. सं. मनोहर पोताश्रय)—मूल यूनानी है 'कलॉस लिमनास'। आज भी इस स्थान का नाम स्ताउसकलॉलिमनास अथवा 'कलॉलॉमोनिआ' है। 'कलॉस' का अर्थ सुंदर या शुभ है। हिन्दी में इसी शब्द का अनुवाद किया गया है। यह स्थान क्रेते द्वीप के दक्षिणी किनारे पर मताला अंतरीप में है। "लसया"—यह स्थान 'शुभ लंगरबारी' से ८ किलोमीटर पर था। कदाचित वे दाना पानी के लिये यहां ठहरे।

२७ : ९ "उपवास के दिन"—अर्थात प्रायश्चित दिवस (दे. लै. १६ : २९-३३) जो सितंबर के अंत या अक्टूबर के आरंभ में होता था। सन् ५९ में यह अक्टूबर ५ को पड़ा था। उस काल में सितंबर १४ के बाद यात्रा करना समुद्री तूफान के कारण जोखिम की बात हो जाती थी और नवंबर ११ के बाद फरवरी तक जलयात्रा बंद हो जाती थी। २७ : ११ "मांझी"—जहाज का कप्तान। "स्वामी"—जहाज यदि सरकार का संपत्ति होगा तो वह ठेके पर दिया गया होगा। तब 'स्वामी' का अर्थ यहां ठेकेदार अथवा उसका प्रतिनिधि है; अथवा शासन का प्रतिनिधि है। यदि जहाज किसी व्यक्ति की निजी संपत्ति होगा तो स्वामी का अर्थ स्वयं मालिक या उसका प्रतिनिधि है। "वह बंदरस्थान"—अर्थात शुभ लंगरबारी'। २७ : १२ "फीनिक्स"— शुभलंगरबारी से ८० किलोमीटर पश्चिम में। इसी पद में बताया जाता है कि यह क्रेते टापू का एक बंदरस्थान है। विद्वानों का कहना है कि यह वर्तमान 'फिनेका' बंदरगाह है। "जो दक्खिन-पश्चिम और उत्तर-पश्चिम की ओर खुलता है"—मूल यूनानी शब्दावली का अनुवाद

करना एक समस्या है। मूल शब्दावली का अनुवाद 'उत्तर-पूर्व और दक्षिण पूर्व' भी किया जा सकता है (देखिए पाद-टिप्पणी हिं. सं. अनुवाद)। आज तो उस स्थान पर एक अंतरीप है जिसके दोनों ओर एक एक बंदरस्थान है। पूर्व में 'लुत्रो' बंदरस्थान है जो अधिक सुरक्षित है। पश्चिम में 'फिनेका' है जो वही पुराना नाम है। जो वर्णन इस पद में दिया गया है वह लुत्रो बंदरगाह के लिये ठीक जान पड़ता है। ध्यान रहे कि जहाज वहां नहीं पहुँचा। २७ : १४ "युरकुलीन"—यह यूनानी और लातीनी का मिश्रित शब्द है। 'यूर' शब्द यूनानी है और 'कुलीन' शब्द लातीनी भाषा का है। इस शब्द का अर्थ है 'पूर्वोत्तर'। यह भयंकर आंधी होती है। आज भी आइडा नामक ७६०० फुट ऊंचे पहाड़ से बहती है। २७ : १६ "कौदा"—कुछ प्राचीन प्रतियों में "क्लौदा" नाम है। २७ : १६ "जहाज की नीचे से बांधा"—यह जानकारी नहीं है कि यह कार्य कैसे किया गया। विद्वान लोग प्राचीन जलयात्रा और जलयानों के आधार पर इस कार्य की पद्धति के संबंध में विभिन्न अनुमान प्रस्तुत करते हैं (दे. इन्टरप्रीटर बाइबल, ग्रंथ ९, पृष्ठ ३३६)। "सुरतिस"—यह 'एक उथली खाड़ी का नाम' है। (दे. हिं. सं. अनुवाद)। इस शब्द का अर्थ है 'चोर बालू'। 'आफ्रिका के उत्तरी किनारे पर ट्यूनिस और बार्से के अंतरीपों के बीच में खतरनाक रेतीले किनारे हैं। इन्हें चोरबालू कहा गया है'। २७ : २१ "बहुत उपवास कर चुके" (हि. सं. 'कई दिनों से निराहार थे')—इनका उपवास धर्मकृत्य नहीं था, वरन संभाव्यत: जलयात्रा की बीमारी के कारण था। २७:२२-२४ में पौलुस की साक्षी है। उसका अटूट विश्वास भी दर्शनीय है। "स्वर्गदूत ने. . .कहा"—जीवन के प्रत्येक मोड़ पर पौलुस को दर्शन दिया गया है।

२७ : २७ "अद्रिया समुद्र"—यह वर्तमान आद्रियातिक समुद्र नहीं है जो इटली और दलमतिया के बीच में है। 'उस युग में यह नाम सामान्यत: समस्त पूर्वी भूमध्य-सागर के लिये प्रयुक्त होता था'। एक विद्वान का कहना है कि यह क्रेते और सिसिली टापूओं के बीच भूमध्यसागर भाग के लिये प्रयुक्त होता था। २७ : २८ "पुरसा" (हिं, सं. 'व्याम' अर्थात हाथों को अगल बगल पूरा फैलाने पर उंगलियों के सिरे तक की लंबाई)। यह लंबाई छ: फुट होती है। २७ : ३५—तुलना कीजिए मर ८ : ६; १४ : २२, २३। यह रोटी तोड़ना साधारण भोजन के लिये था, प्रभु भोज के लिये नहीं। दैनिक भोजन के समय भी परमेश्वर को धन्यवाद दिया जाता था। २७ : ३७ "दो सौ छिहत्तर जन"—कुछ मूलप्रतियों में है 'लगभग छिहत्तर'। २७ : ४१ "दो समुद्र के संगम की जगह"—संभाव्यत: वह स्थान जो दो धाराओं के मिलने के कारण उथला हो। यह स्थान कौनसा था आज निश्चित रूप से नहीं बताया जा सकता। २७ : ४४ "सब कोई. . .बच निकले"—२७ : २४ में पौलुस का कहा हुआ भविष्यकथन पूरा होता है।

(२) मिलिते (माल्टा) टापू में (२८ : १-१०)

२८ : १ "मिलिते"—वर्तमान माल्टा द्वीप है। कुछ मूल प्रतियों में 'मिलितेने' है। यह टापू रोमी प्रांत सिसिली का भाग था। सिसिली द्वीप से यह लगभग ९६ किलोमीटर दक्षिण में है। २८ : २ "जंगली"—मूल यूनानी शब्द है 'बर्बर' (Bar-

barian)। इसका अर्थ 'असभ्य' नहीं है। इसका अर्थ वे लोग है जोयूनानी भाषा और सभ्यता से अप्रभावित हैं। तत्कालीन रोमी और यूनानी लोगों की दृष्टि में ये लोग असभ्य माने जाते थे। मिलीते टापू के लोग सामी या फिनीकी भाषा बोलते थे। २८ : ३-६ "सांप लिपट गया"—मूल यूनानी शब्द यूनानी वैद्यों द्वारा सांप के काटने को व्यक्त करने के लिये काम में लिया जाता था। मूल यूनानी शब्द से संकेत होता है कि सांप ने काटा और जहर पौलुस के शरीर में प्रविष्ट हुआ। आज माल्टा में कोई ज़हरीले सांप नहीं हैं। इस के आधार पर कुछ विद्वान मानते हैं कि पौलुस को काटने-वाला सांप ज़हरीला नहीं था। परंतु पद ४-६ से यह विदित होता है कि उस टापू के निवासी मानते थे कि सांप जहरीला था और वे अपेक्षा करने लगे कि पौलुस मर जाएगा। "न्याय" (हिं. सं. न्याय की देवी)—यूनानी लोग 'दीके' देवी को न्याय की देवी मानते थे। वह ज्यूस और थेमिस की पुत्री मानी जाती थी। संभवतः मिलिते के लोगों की अपनी कोई देवी होगी जो न्याय की देवी मानी जाती थी। हिन्दुधर्म में 'यमराज' न्याय का देवता है और यह कहते हैं यमराज से बच नहीं सकता'। इन पदों की तुलना मर. १६ : १८ से कीजिए। २८ : ८ "पुबलियुस"—यह व्यक्ति उस टापू पर रोमी सरकार का प्रमुख प्रतिनिधि होगा। "प्रधान" (हिं. सं. मुखिया)—मूल यूनानी शब्द का अर्थ है 'प्रथम' (मनुष्य)। "ज्वर"—मूल यूनानी में बहुवचन है "बुखारों"। इसका अर्थ यह है कि बुखार बार बार आता था। संभव है मलेरिया बुखार हो। २८ : १० "टापू के बाकी बीमार" (हिं सं. द्वीप के अन्य अन्य रोगी)— यह द्वीप लगभग २५ किलोमीटर लंबा और अधिक से अधिक १५ किलोमीटर चौड़ा है। अन्य बीमारों का आना संभव है। "हमारा. . .हम. . .हमें"—लूका यहां साथ है और संभव है लूका ने बीमारों को चंगा करने में सहायता की।

(३) रोम पहुँचना (२८ : ११-१५)

२८ : ११ "शीतकाल"—नवबंर से फरवरी तक। "तीन महिने के बाद"—अर्थात फरवरी में। एक इतिहासकार ८ फरवरी को यात्रा के आरंभ की तिथि मानता है। "दियुसकूरी" (हिं. सं. 'अर्थात यमजदेव')—ये दो देवता थे : केस्टर और पोलक्स (मिथुन नक्षत्र के दो चमकीले तारे)। ये ज्यूस के पुत्र माने जाते थे। ये नाविकों के इष्ट देवता थे। २८ : १२ "सुरकूसा"—सिसिली द्वीप का प्रसिद्ध बंदरगाह। मिलिते से १६० किलोमीटर उत्तर में। २८ : १३ "रेगियुस"—सुरकूसा से १२० किलोमीटर उत्तर में इटली देश का बन्दरगाह। "पुतियुली"—इतालिया (इटली) के पश्चिमी किनारे पद 'रेगियुम' से ३२० किलो-मीटर उत्तर में और रोम के दक्षिणपूर्व में लगभग १८४ किलोमीटर दूर एक बंदरगाह। २८ : १४ "भाई"—अर्थात मसीही लोग। इटली में मसीही धर्म पहुँच गया था। तीन वर्ष पूर्व पौलुस रोम के मसीहियों को अपनी पत्री लिख चुका था। "उनके यहां सात दिन तक रहे"—इस पद के लिखने का अभिप्राय यह बताना है कि पौलुस के साथ रोमी अधिकारियों का व्यवहार सहानुभूति पूर्ण था और

कि पौलुस का चरित्र और व्यवहार ऐसा था कि बंधुआ होते हुए उसे ऐसी स्वतंत्रता प्राप्त थी (तु. २७ : ३)। २८ : १५ "वहां" अर्थात रोम से। "भाई"—देखिए २८ : १४। "हमारा समाचार सुनकर"—ऐसा प्रतीत होता है कि पुतियुली के सात दिन के पड़ाव के समय कुछ साथी आगे रोम गए और भाइयों को सूचना दी। "अप्पियुस का चौक" —चौक का अर्थ बाजार है। यह रोम से लगभग ७० किलोमीटर दूर दक्षिणपूर्व में था। यह उस मार्ग पर था जिसे अप्पियुस क्लौदियुस ने ई. पू. ३१२ में बनवाया था। यह मार्ग 'रानी मार्ग' कहलाता था। "तीन सराए"—यह रोम से ५३ किलोमीटर दूर थीं। "भेंट करने को"—मूल शब्द में भाव है जैसे राजा के भेंट करने' (तु. मत्त. २५ : १, ६; १ थिस. ४ : १७)।

(४) रोम में (२८ : १६-३१)

टिप्पणी—"हम" शब्द पद १६ से समाप्त हो गया है। कुछ विद्वानों का विचार है कि पद १७-३० तक लूका की अपनी संपादकीय रचना है, और इनमें वर्णित घटना ऐतिहासिक नहीं है। परंतु इन पदों में जिस पद्धति का वर्णन किया गया है वह पौलुस की ही थी। अत: पौलुस के शब्दों को ऐतिहासिक मानने में कोई शंका नहीं है। पद २१-२२ में यहूदियों का जो उत्तर है वह तत्कालीन परिस्थिति से संगत नहीं है। पौलुस के पहुँचने तक रोम में एक मजबूत कलीसिया स्थापित थी और वहां से 'भाई' लोग पौलुस का स्वागत करने तीन सराय तक आए। हमें यह भी ज्ञात है (दे. १८ : २) कि ई. स. ४९ में ख्रिस्तियों की उपस्थिति के कारण यहूदियों को रोम से निकाला गया था। पद २५-२९ तक वर्णन पौलुस की बुद्धिमत्ता के प्रतिकूल जान पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक यहूदियों के विरोध और अन्याय को प्रकट करने के लिये पौलुस के मुख में ऐसी शब्दावली रखता है। परंतु संभव है कि इन पदों में पौलुस यहूदियों के लगातार विरोध के उत्तर स्वरूप पराकाष्टा में ऐसी शब्दावली का प्रयोग करता है।

२८ : १६ "एक सिपाही"—पौलुस एक सिपाही से बंधा रहता था। परंतु सिपाही बदलता रहता होगा। इस प्रकार उनको सुनाकर भी पौलुस परमेश्वर का राज्य फैलाता होगा। **२८ : १९** "कैसर की...लगाना था"—पौलुस यह समझाना चाहता है कि उसने अपने बचाव के लिये ही कैसर की दुहाई दी। उसे यहूदी राष्ट्र के विरुद्ध कुछ नहीं कहना है। पौलुस आरोपी नहीं था अभियुक्त था। **२८ : २०** "इस्राएल की आशा"—मसीह और पुनरुत्थान संबंधी आशा (दे. २३ : ६; २४ : १५; २६ : ६-८)। **२८ : २१** "चिट्ठियां न पाईं"—यह बिलकुल संभव है क्योंकि शीतकाल में तो जहाजों का आना जाना बंद रहता था। "भाइयों"—यहूदी समाज के सदस्य। **२८ : २२** "इस मत"—देखिए २४ : ५; ५ : १७। **२८ : २३** "परमेश्वर के राज्य"—दे. १ : ३; ८ : १२ और उनकी टीका। **२८ : २४** के लिये दे. १३ : १६-४१; १७ : २-३; २४ : १४; २६ : २२-२३। **२८ : २५-२८**—ये पद यशायाह ६ : ९-१० से उद्धृत हैं और सेपत्वागिंता अनुवाद से उद्धृत हैं (दे. मर. ४ : ११-१२; लू. ८ :

१०; यू. १२ : ४०)। २८ : २८ "अन्यजातियों के पास"—तुलना कीजिए प्रे. १३ : ४६। २८ : २९ कुछ सर्वश्रेष्ठ प्रामाणिक मूल प्रतियों में यह पद नहीं पाया जाता (दे. हिं. सं. अनुवाद)। २८ : ३० "अपने भाड़े के घर में"—आर. एस. वही. अनुवाद है 'अपने व्यय से'। यह अनुवाद २८ : १६ से संगत जान पड़ता है। २८ : ३१ "प्रभु यीशु मसीह"—पश्चिमी मूल प्रति में ये शब्द भी मिलते हैं : के विषय सिखाता रहा, 'यह कहकर कि यही मसीह, परमेश्वर का पुत्र है, और कि इसी के द्वारा संपूर्ण जगत का न्याय किया जाएगा'। इन शब्दों में प्रेरितों की पुस्तक का अंत अंतिम आशा संबंधी भी हो जाता है।

अंत—प्रेरितों के काम की पुस्तक का अंत ऐसा लगता है मानो कथा का सूत्र अचानक टूट गया है। पाठक के मन में निम्नलिखित प्रश्न सहसा उत्पन्न होते हैं :
(१) पौलुस ने कैसर को जो अपील की थी उसका परिणाम क्या हुआ ? दो वर्ष के बाद क्या हुआ ? क्या पौलुस को इसलिये बरी किया गया कि उसके दोष लगाने वाले न आए ?
(२) क्या पौलुस सम्राट नेरो के राज्य काल में शहीद हुआ ?
(३) लूका इतना सतर्क इतिहास लेखक है, तो फिर लूका जैसा सतर्क लेखक क्यों पाठक को ऐसी स्थिति में छोड़ देता है जिससे पाठक की जिज्ञासा का समाधान नहीं हो सकता ?

इन समस्याओं के संबंध में विद्वानों ने अपने अनुमान प्रस्तुत किए हैं परंतु वे अनुमान ही हैं। इन समस्याओं के संक्षिप्त विवेचन के लिये अंग्रेजी जानने वाले पाठक इन्टरप्रीटर बाइबल, ग्रंथ ९ पृष्ठ ३४९-३५२ का अनुशीलन करें और अपने उत्साहवर्धन के लिये एफ. डबल्यु. फर्रर की पुस्तक दी लाइफ एंड वर्क ऑफ सेंट पॉल का ५२वां अध्याय पढ़ने का प्रयास करें। एक बड़ा सुंदर वाक्य फर्रर ने उद्धृत किया है : 'परमेश्वर अपने कार्यकर्ताओं को दफन करता है परंतु अपना कार्य आगे बढ़ाए चलता है'। वही रोम, जिसमें पौलुस और पतरस कदाचित शहीद हुए, प्रभु के चरणों पर लोट गया। उसी रोम का वैभव यह है कि वहां लोग सेंट पॉल्स और सेंट पीटर्स देखने जाते हैं और वही रोमन काथलिक कलीसिया का केन्द्र बना हुआ है।

अध्याय ६

सहदर्शी सुसमाचारों में संमातर अंशों की अनुक्रमणिका

(टॉमस नेल्सन एंड संस द्वारा प्रकाशित गॉस्पेल पेरेलेल्स से साभार संकलित)

मत्ती, मरकुस और लूका रचित सुसमाचारों के संतोषप्रद अध्ययन के लिये तीनों सुसमाचारों में समांतरता का अध्ययन आवश्यक है। इस अध्याय में सारणी रूप में समांतर अंशों की अनुक्रमणिका प्रस्तुत की जा रही है। इनका व्यौरेवर विवेचन और प्रस्तुतिकरण नहीं किया जा रहा है। मोटे अंकों में जो उल्लेख हैं (प्रथम तीन स्तंभ) वे प्रधान प्रसंग हैं। पतले अंकों में जो उल्लेख हैं (द्वितीय तीन स्तंभ) वे प्रसंग से संबद्ध समांतर अंश माने जा सकते हैं।

१. यीशु की शिशु अवस्था का वर्णन

(१) मत्ती रचित सुसमाचार अध्याय १-२ में

यीशु की वंशावली	१: १-१७
यीशु का जन्म	१:१८-२५
ज्योतिषियों की भेंट	२: १-१२
मिस्र-गमन और लौटना	२:१३-२३

(२) लूका रचित सुसमाचार अध्याय १-२ में

सुसमाचार का प्राक्कथन	१:१-४
यूहन्ना बपतिस्मादाता की प्रतिज्ञा	१:५ -२५
यीशु के जन्म के संबंध में दूत का संदेश	१:२६-३८
मरियम - इलीशिबा मिलन	१:३९-५६
बपतिस्मादाता का जन्म	१ ५७-८०
यीशु का जन्म	२:१ -२०
यीशु का खतना और मंदिर में अर्पण	२:२१-४०
बारह वर्ष का यीशु	२:४१-५२

२. गलील प्रांत से संबंधित अंश : मत्ती ३-१८=मरकुस १-९=लूका ३ : १-९ : ५०

क्र.सं.	वर्णन या घटनाएं	मत्ती	मरकुस	लूका	मत्ती	मरकुस	लूका
१	यूहन्ना बपतिस्मादाता	३:१-६	१:१-६	३:१-६	११:१०	१:१५	७:२७
२	यूहन्ना की शिक्षा : मन फिराव संबंधी	३:७-१०	—	३:७-९	७:१९		
३	यूहन्ना की शिक्षा : विभिन्न समूहों को	—	—	३:१०-१४			
४	यूहन्ना की शिक्षा : मसीह संबंधी	३:११-१२	१:७-८	३:१५-१८			
५	यूहन्ना का बंदीगृह में डाला जाना	—	—	३:१९-२०	१४:३-४	६:१७-१८	
६	यीशु का बपतिस्मा	३:१३-१७	१:९-११	३:२१-२२			
७	यीशु की वंशावली	—	—	३:२३-३८	१:१-१६		
८	यीशु की परीक्षा	४:१-११	१:१२-१३	४:१-१३			
९	गलील में शिक्षा देने का आरंभ	४:१२-१७	१:१४-१५	४:१४-१५			
१०	नासरत में यीशु का अस्वीकार	—	—	४:१६-३०	१३:५४-५८	६:१-६	
११	प्रथम शिष्यों का आवाहन	४:१८-२२	१:१६-२०	—			५:१-११
१२	यीशु कफरनहूम के सभागृह में	—	१:२१-२८	४:३१-३७	७:२८-२९		
१३	पतरस की सास को स्वस्थ करना	—	१:२९-३१	४:३८-३९	८:१४-१५		
१४	सायंकाल को रोगियों को स्वस्थ करना	—	१:३२-३४	४:४०-४१	४:२४; ८:१६-१७; १२:१६	३:१०-११	
१५	यीशु का कफरनहूम से जाना	—	१:३५-३८	४:४२-४३			
१६	गलील में शिक्षा देने के लिये यात्रा	४:२३-२५	१:३९	४:४४	८:१६; ९:३५; १२:१५; १४:३५	३:७,८,१०; ६:५४-५५	६:१७-१९

क्र.सं.	वर्णन या घटना	मत्ती	मरकुस	लूका	मत्ती	मरकुस	लूका
१७	बहुत मछलियों का अद्भुत शिकार	—	—	५:१-११	४:१८-२२	१:१६-२०	
	पर्वत प्रवचन						
१८	आरंभ	५:१-२	—	—		३:१३	६:१२,२०
१९	धन्यवचन	५:३-१२	—	—			६:२०-२३
२०	नमक और ज्योति के रूपक	५:१३-१६	—	—		४:२१; ९:५०	८:१६; ११:३३; १४:३४-३५
२१	व्यवस्था संबंधी शिक्षा	५:१७-२०	—	—	२४:३५	१३:३१	१६:१७; २१:३३
२२	हत्या संबंधी ,,	५:२१-२६	—	—			१२:५७-५९
२३	व्यभिचार ,, ,,	५:२७-३०	—	—	१८:८-९	९:४३-४८	
२४	पत्नी-त्याग ,, ,,	५:३१-३२	—	—	१९:९	१०:११,१२	१६:१८
२५	शपथ ,, ,,	५:३३-३७	—	—	२३:१६-२२		
२६	प्रतिकार ,, ,,	५:३८-४२	—	—			६:२९-३०
२७	अपने शत्रुओं से प्रेम ,, ,,	६:४३-४८	—	—			६:२७-२८; ६:३२-३६
२८	दान संबंधी शिक्षा	६:१-४	—	—			
२९	प्रार्थना ,, ,,	६:५-८	—	—			
३०	प्रभु की प्रार्थना	६:९-१५	—	—	१८:३५	११:२५(२६)	११:२-४
३३	उपवास संबंधी शिक्षा	६:१६-१८	—	—			
३२	धन ,, ,,	६:१९-२१	—	—			१२:३३-३४
३३	ठीक आंख ,, ,,	६:२२-२३	—	—			११:३४-३६
३४	दो स्वामियों की सेवा ,, ,,	६:२४	—	—			१६:१३
३५	चिंता ,, ,,	६:२५-३४	—	—			१२:२२-३१

क्र.सं.	वर्णन या घटनाएं	मत्ती	मरकुस	लूका	मत्ती	मरकुस	लूका
३६	ोष लगाने संबंधी शिक्षा	७:१-५	—	—		४:२४	६:३७-३८; ६:४१-४२
३७	पवित्र वस्तुओं को अपवित्र न करना	७:६	—	—			
३८	प्रार्थना के संबंध में प्रतिज्ञा	७:७-११	—	—			११:९-१३
३९	स्वर्ण नियम	७:१२	—	—			६:३१
४०	संकीर्ण फाटक	७:१३-१४	—	—			१३:२३-२४
४१	अच्छाई की कसौटी	७:१५-२०	—	—	३:१०; १२:२३-३५		३:९; ६:४३-४५
४२	आत्म-वंचना के विरुद्ध चेतावनी	७:२१-२३	—	—			६:४६; १३:२६-२७
४३	वचन को सुनने और उस पर आचरण करने वाले	७:२४-२७	—	—			६:४७-४९
४४	प्रवचन की समाप्ति	७:२८-२९	—	—			
४५	कोढ़ी को शुद्ध करना	८:१-४	१:४०-४५	५:१२-१६		१:२१-२२	४:३१-३२:७:१पू
४६	शतपति का दास	८:५-१३	—	—		१:३५	४:४२; ७:१-१०; १३:२८-३०
४७	पतरस की सास को चंगा करना	८:१४-१५	—	—		१:२९-३१	४:३८-३९
४८	सायंकाल को रोगियों को स्वस्थ करना	८:१६-१७	—	—		१:३२-३४	४:४०-४१
४९	शिष्य बनने की उत्सुकता	८:१८-२२	—	—		४:३५	९:५७-६०
५०	आंधी को शांत करना	८:२३-२७	—	—		४:३५-४१	८:२२-२५
५१	गिरासेन का भूतग्रसित	८:२८-३४	—	—		५:१-२०	८:२६-३९

क्र.सं.	वर्णन या घटनाएँ	मत्ती	मरकुस	लूका	मत्ती	मरकुस	लूका
५२	अर्धांगी को स्वस्थ करना	६:१-८	२:१-१२	५:१७-२६			
५३	लेवी को बुलाना	६:६-१३	२:१३-१७	५:२७-३२			१५:१-२
५४	उपवास का प्रश्न	६:१४-१७	२:१८-२२	५:३३-३६			
५५	याईर की पुत्री और प्रदर-पीड़ित स्त्री को चंगा करना	६:१८-२६	—	—		५:२१-४३; १०:५२	७:५०; ८:४०-५६ १८ : ४२
५६	दो अंधों को दृष्टिदान	६:२७-३१	—	—	२०:२०-३४	१०:४६-५२	१८:३५-४३
५७	गूंगे भूतग्रस्त को चंगा करना	६:३२-३४	—	—	१२:२२-२४	३:२२	११:१४-१५
५८	बारह शिष्यों को भेजना	६:३५-१०:१६	—	—	४:२३; १५:२४	३:१३-१६; ६:६-११,३४	६:१३-१६; ८:१ ६:१-५; १०:१-१२
५६	शिष्यों को क्या मिलेगा	१०:१७-२५	—	—	२४:६,१३	१३:६-१३	६:४०; १२:११-१२; २१:१२-१७,१६
६०	निडर होकर यीशु का अंगीकार करो	१०:२६-३३	—	—		४:२२; ८:३८	८:१७; ६:२६; १२:२-६; २१:१८
६१	परिवार में विभाजन	१०:३४-३६	—	—			१२:५१-५३
६२	शिष्य होने के प्रतिबंध	१०:३७-३६	—	—	१६:२४-२५	८:३४-३५	६:२३-२४; १४:२६-२७; १७:३३
६३	शिष्य संबंधी प्रवचन की समाप्ति	१०:४०-११:१	—	—	१८:५	६:३७,४१	६:४८; १०:१६
६४	यीशु से यूहन्ना का प्रश्न	११:२-६	—	—			७:१८-२३
६५	यूहन्ना के संबंध में यीशु का विचार	११:७-१६	—	—	२१:३२	१:२; ६:१३	७:२४-३५; १६:१६
६६	गलील के नगरों पर शोक	११:२०-२४	—	—			१०:१३-१५
६७	यीशु पिता का धन्य मानता है	११:२५-२७	—	—			१०:२१-२२
६८	बोझ से दबे लोगों को विश्राम	११:२८-३०	—	—			

क्र.सं.	वर्णन या घटनाएं	मत्ती	मरकुस	लूका	मत्ती	मरकुस	लूका
६९	सबत के दिन बालें तोड़ना	१२:१-८	२:२३-२८	६:१-५			
७०	सूखे हाथवाले को चंगा करना	१२:९-१४	३:१-६	६:६-११			१३:१५-१६; १४:३,५
७१	भीड़ को चंगा करना	१२:१५-२१	३:७-१२	६:१७-१९	४:२४-२५; १४:३६	६:५६	४:४१
७२	बारह को बुलाना	—	३:१३-१९	६:१२-१६	५:१; १०-१-४	६:७	९:१,२
	मैदान में प्रवचन; लूका ६:२०-४९						
७३	धन्यवचन	—	—	६:२०-२३	५:३,४,६,११,१२		
७४	शोक या हाय	—	—	६:२४-२६			
७५	शत्रुओं से प्रेम	—	—	६:२७-३६	५:३९-४२,४४-४८; ७:१२		
७६	दोष लगाना	—	—	६:३७-४२	७:१-५; १०:२४-२५; १५:१४	४:२४	
७७	अच्छे होने की कसौटी	—	—	६:४३-४६	७:१६-२१; १२:३३-३५		
७८	वचन के सुननेवाले और उस पर चलनेवाले	—	—	६:४७-४९	७:२४-२७		
७९	शतपति का दास	—	—	७:१-१०	७:२८पू; ८:५-१३		
८०	नाईन की विधवा का पुत्र	—	—	७:११-१७			
८१	यीशु से यूहन्ना के प्रश्न	—	—	७:१८-२३	११:२-६		
८२	यूहन्ना के संबंध में यीशु का कथन	—	—	७:२४-३५	९११:७-१; २१:३२	१:२	

क्र.सं	वर्णन या घटनाएं	मत्ती	मरकुस	लूका	मत्ती	मरकुस	लूका
८३	चरण अभ्यंजन	—	—	७:३६-५०	९:२२; २६:६-१३	५:३४; १०:५२; १४:३-९	
८४	सेवा करनेवाली स्त्रियां	—	—	८:१-३	४:२३; ९:३५; १५:४१; १६:९ २७:५५		
८५	यीशु के प्रति आरोप	१२:२२-२४	३:२०-२२	—	९:३२-३४		११:१४-१६
८६	घर जिसमें फूट है	१२:२५-३७	३:२३-३०	—	७:१६-२०	९:४०	६:४३-४५; ९:५०
८७	चिन्ह ढूंढ़ने के विरुद्ध वचन	१२:३८-४२	—	—			११:१७-२३; १२:१०
८८	दुष्ट आत्मा का लौटना	१२:४३-४५	—	—	१६:१,२,४	८:११-१२	११:२९-३२
८९	यीशु के सच्चे रिश्तेदार	१२:४६-५०	३:३१-३५	—			११:२४-२६
९०	बीज बोनेवाले का दृष्टांत	१३:१-९	४:१-९	८:४-८			८:१९-२१
९१	दृष्टांतों में शिक्षा का कारण	१३:१०-१५	४:१०-१२	८:९-१०			५:१-३
९२	शिष्यों की धन्य स्थिति	१३:१६-१७	—	—		४:२५	८:१८उ
९३	बीज बोनेवाले के दृष्टांत का अर्थ	१३:१८-२३	४:१३-२०	८:११-१५			१०:२३-२४
९४	दृष्टांतों का उद्देश्य	—	४:२१-२५	८:१६-१८	५:१५; ७:२; १०:२६; १३:१२; २५:२९		६:३८; ११:३३; १२:२; १९:२६
९५	बीज के चुपचाप उगने का दृष्टांत	—	४:२६-२९	—			
९६	जंगली दानों का दृष्टांत	१३:२४-३०	—	—			
९७	राई के दाने का दृष्टांत	१३:३१-३२	४:३०-३२	—			१३:१८-१९
९८	खमीर का दृष्टांत	१३:३३	—	—			१३:२०-२१

क्र सं.	वर्णन या घटनाएँ	मत्ती	मरकुस	लूका	मत्ती	मरकुस	लूका
९९	दृष्टांत शैली का प्रयोग	१३:३४-३५	४:३३-३४	—			
१००	जंगली दानों के दृष्टांत की व्याख्या	१३:३६-४३	—	—			
१०१	गुप्त निधि और अमूल्य रत्न के दृष्टांत	१३:४४-४६	—	—			
१०२	जाल का दृष्टांत	१३:४७-५०	—	—			
१०३	गृहस्थ का दृष्टांत	१३:५१-५२	—	—			
१०४	यीशु के सच्चे नातेदार	—	—	८:१९-२१	१२:४६-५०	३:३१-३५	
१०५	आंधी को शांत करना	—	४:३५-४१	८:२२-२५	८:१८,२३-२७		
१०६	गिरासेन का दृष्टात्मा ग्रसित	—	५:१-२०	८:२६-३९	८:२८-३४		
१०७	याईर की पुत्री और प्रदर-पीड़ित स्त्री को चंगा करना	—	५:२१-४३	८:४०-५६	९:१८-२६		
१०८	नासरत में यीशु का अस्वीकार	१३:५३-५८	६:१-६	—			४:१६-३०
१०९	बारह शिष्यों का भेजा जाना	—	६:६-१३	९:१-६	९:३५; १०:१, ९-११,१४	३:१४-१५	१०:१-१२
११०	हेरोदेस का विचार कि यीशु यूहन्ना है	१४:१-२	६:१४-१६	९:७-९			
१११	यूहन्ना बपतिस्मादाता की मृत्यु	१४:३-१२	६:१७-२८	—			३:१९-२०
११२	बारह का लौटना, और पांच हजार को खिलाना	१४:१३-२१	६:३०-४४	९:१०-१७	९:३६; १५:३२-३९	८:१-१०	१०:१७
११३	पानी पर चलना	१४:२२-३३	६:४५-५२	—			
११४	गन्नेसरत क्षेत्र में चंगाई का काम	१४:३४-३६	६:५३-५६	—	४:२४	१:३२क.; ३:१०	४:४०क.; ६:१८-१९ ६:३९
११५	कौनसी बात मनुष्य को अशुद्ध करती है	१५:१-२०	७:१-२३	—			

क्र,सं.	वर्णन या घटनाएं	मत्ती	मरकुस	लूका	मत्ती	मरकुस	लूका
११६	सुरूफिनीके क्षेत्र की स्त्री	१५:२१-२८	७:२४-३०	—			
११७	बहुत बीमारों को चंगा करना; गूंगे बहरे को चंगा करना	१५:२९-३१	७:३१-३७	—			
११८	चार हजार को खिलाना	१५:३२-३९	८:१-१०	—	१४:१३-२१	६:३०-४४	९:१०-१७
११९	फरीसी चिन्ह ढूंढ़ते हैं	१६:१-४	८:११-१३	—	१२:३८-३९		११:१६,२९; १२:५४-५६
१२०	खमीर पर प्रवचन	१६:५-१२	८:१४-२१	—			१२:१
१२१	बैतसैदा के अंधे को दृष्टिदान	—	८:२२-२६	—			
१२२	कैसरिया फिलिप्पी में स्वीकरण और दुख उठाने का प्रथम भविष्यकथन	१६:१३-२३	८:२७-३३	९:१८-२२	१८:१८		
१२३	शिष्य बनने की शर्तें	१६:२४-२८	८:३४-९:१	९:२३-२७	१०:३३,३८-३९		१२:९; १४:२७; १७:३३
१२४	रूपांतर	१७:१-८	९:२-८	९:२८-३६			
१२५	एलिय्याह का आना	१७:९-१३:	९९-१३	—			९:३७
१२६	मिरगी पीड़ित बालक को चंगा करना	१७:१४-२१	९:१४-२९	९:३७-४३पू	१७:९; २१:२१	९:९; ११:२२-२३	१७:६
१२७	दुख उठाने का द्वितीय भविष्य-कथन	१७:२२-२३	९:३०-३२	९:४३उ-४५			
१२८	मंदिर का कर	१७:२४-२७	—	—			
१२९	महानता के संबंध में वादविवाद	१८:१-५	९:३३-३७	९:४६-४८	१०:४०; २०:२६-२७; २३:११-१२	१०:१५,४३-४४	१०:१६; १४:११; १८:१४,१७; २२:२६

क्र.सं.	वर्णन या घटनाएं	मत्ती	मरकुस	लूका	मत्ती	मरकुस	लूका
१३०	विचित्र भूत निकालनेवाला	—	६:३८-४१	६:४६-५०	१०:४२; १२:३०		११:२३
१३१	परीक्षाओं के संबंध में चेतावनी	१८:६-६	६:४२-४८	—	५:२६-३०		१७:१-२
१३२	नमक का महत्व	—	६:४६-५०	—	५:१३		१४:३४-३५
१३३	भटकी हुई भेड़	१८:१०-१४	—	—			१५:३-७
१३४	अपराधी भाई का सुधार	१८:१५-२०	—	—	१६:१६		१७:३
१३५	मेल-मिलाप	१८:२१-२२	—	—			१७:४
१३६	अक्षमाशील दास का दृष्टांत	१८:२३-३५	—	—	६:१५		
	३. लूका का विशिष्ट अंश : लूका ६:५१-१८:१४						
१३७	सामरी नगर	—	—	६:५१-५६			
१३८	शिष्य होने का स्वरूप	—	—	६:५७-६२	८:१६-२२		
१३६	सत्तर शिष्यों को भेजना	—	—	१०:१-१६	६:३७-३८; १०:७-१६,४०; ११:२१-२३; १८:५	६:६-११; ६:३७	६:१-५,४८
१४०	सत्तर शिष्यों का लौटना	—	—	१०:१७-२०		६:३०; १६:१७ १७-१८	६:१०
१४१	यीशु की अपने पिता के प्रति कृतज्ञता	—	—	१०:२१-२२	११:२५-२७		
१४२	शिष्यों की धन्यता	—	—	१०:२३-२४	१३:१६-१७		
१४३	शास्त्री का प्रश्न	—	—	१०:२५-२८	२२:३४-४०	१२:२८-३१	
१४४	दयालु सामरी का दृष्टांत	—	—	१०:२६-३७			

क्र.सं	वर्णन या घटनाएं	मत्ती	मरकुस	लूका	मत्ती	मरकुस	लूका
१४५	मरियम और मरथा	—	—	१०:३८-४२			
१४६	प्रभु की प्रार्थना	—	—	११:१-४	६:६-१३		
१४७	मध्यरात्रि को आनेवाला मित्र	—	—	११:५-८			
१४८	प्रार्थना का उत्तर	—	—	११:६-१३	७:७-११		
१४६	बालजबूल संबंधी वादविवाद	—	—	११:१४-२३	६:३२-३४; १२ :२२-३०; १२: ३८; १६:१	३:२२-२७; ६:४०; ८:११	६:५०; ११:२६
१५०	दुष्ट आत्मा का लौटना	—	—	११:२४-२६	१२:४३-४५		
१५१	यीशु की माता की धन्यता	—	—	११:२७-२८			
१५२	इस पीढ़ी के लिये चिन्ह	—	—	११:२६-३२	१२:३८-४२; १६:१,२,४	८:११-१२	११:१६
१५३	दीपक से शिक्षा	—	—	११:३३-३६	५:१५; ६:२२-२३	४:२१	८:१६
१५४	फरीसी एवं शास्त्रियों की भर्त्सना	—	—	११:३७-१२:१	१५:१क्र.; १६:६,१२; २३:४-३६	७:१क्र.; ८:१५ १२:३८,३६	२०:४६
१५५	निडर होकर अंगीकार करना	—	—	१२:२-१२	१०:१६-२०, २६-३३; १२:३२	३:२८-२६; ४:२२; ८:३८; १३:११	८:१७; ६:२६; २१: १४,१५
१५६	धनवान मूर्ख का दृष्टांत	—	—	१२:१३-२१			
१५७	पृथ्वी की बातों के लिये चिंता	—	—	१२:२२-३४	६:१६-२१, २५-३३		

क्र.सं.	वर्णन या घटनाएं	मत्ती	मरकुस	लूका	मत्ती	मरकुस	लूका
१५८	जागते रहो और विश्वस्त रहो	—	—	१२:३५-४६	२४:४३-५१; २५:१-१३	१३:३५-३६	
१५९	विश्वासपात्र दास	—	—	१२:४७-४८			१७:७-१०
१६०	समय को समझना	—	—	१२:४९-५६	१०:३४-३६; १६:२-३	१०:३८	
१६१	अपने वादी से समझौता	—	—	१२:५७-५९	५:२५-२६		
१६२	हृदय-परिवर्तन या सर्वनाश	—	—	१३:१-९			
१६३	कुबड़ी को स्वस्थ करना	—	—	१३:१०-१७	१२:११-१२		१४:१-६
१६४	राई के दाने का और खमीरका दृष्टांत	—	—	१३:१८-२१	१३:३१-३३	४:३०-३२	
१६५	राज्य से वंचित होना	—	—	१३:२२-३०	७:१३-१४,२२-२३; ८:११-१२; २५:१०-१२; १९:३०; २०:१६	१०:३१	
१६६	गलील से प्रस्थान	—	—	१३:३१-३३			
१६७	यरूशलेम के लिये विलाप	—	—	१३:३४-३५	२३:३७-३९		
१६८	जलोदर-पीड़ित को स्वस्थ करना	—	—	१४:१-६	१२:९-१४	३:१-६	६:६-११; १३:१०-१७
१६९	नम्रता संबंधी शिक्षा	—	—	१४:७-१४	१८:४; २३:१२		१८:१४
१७०	बड़े भोज का दृष्टांत	—	—	१४:१५-२४	२२:१-१०		
१७१	शिष्य होने का मूल्य	—	—	१४:२५-३५	५:१३; १०:३७-३८; १६:२४	८:३४; ९:५०	९:२३

क्र.सं.	वर्णन की घटनाएं	मत्ती	मरकुस	लूका	मत्ती	मरकुस	लूका
१७२	खोई हुई भेड़ और खोई हुई मुद्रा	—	—	१५:१-१०	९:१०-११; १८:१२-१४	२:१५-१६	५:२९-३०
१७३	उड़ाऊ पुत्र	—	—	१५:११-३२			
१७४	अधर्मी भंडारी	—	—	१६:१-१३	६:२४		
१७५	फरीसियों का कपट (पाखंड)	—	—	१६:१४-१५			
१७६	व्यवस्था और पत्नी त्याग	—	—	१६:१६-१८	५:१८,३२; ११:१२-१३; १९:९	१०:११-१२	
१७७	धनवान मनुष्य और निर्धन लाजर	—	—	१६:१९-३१			
१७८	दूसरों को पाप में फंसाना	—	—	१७:१-२	१८:६-७	९:४२	
१७९	क्षमा-दान	—	—	१७:३-४	१८:१५,२१-२२		
१८०	विश्वास	—	—	१७:५-८	१७:२०; २१:२१	११:२२-२३	
१८१	दास की मजदूरी	—	—	१७:७-१०			
१८२	दस कोढ़ियों को चंगा करना	—	—	१७:११-१९			
१८३	परमेश्वर का राज्य	—	—	१७:२०-२१	२४:२३	१३:२१	
१८४	मानव-पुत्र का दिन	—	—	१७:२२-३७	१०:३९; १६:२५; २४:१७-१८,२६-२८, ३७-४१	८:३५; १३:१५-१६	९:२४
१८५	अधर्मी न्यायाधीश	—	—	१८:१-८			
१८६	फरीसी और महसूल लेनेवाले का दृष्टांत	—	—	१८:९-१४	१८:४; २३; १२		१४:११

क्र.सं.	वर्णन या घटनाएं	मत्ती	मरकुस	लूका	मत्ती	मरकुस	लूका
	४. यहूदिया प्रांत से संबंधित अंश : मत्ती १६-२७ = मरकुस १०-१५ = लूका १८:१५-२३·४०						
	(१) यरूशलेम की यात्रा: मत्ती १९-२० = मरकुस १० = लूका १८:१५-१९:२७						
१८७	विवाह और तलाक	१९:१-१२	१०:१-१२	—	५:३२		१६:१८
१८८	बालकों को आने दो	१९:१३-१५	१०:१३-१६	१८:१५-१७	१८:३		
१८९	धनवान जवान	१९:१६-३०	१०:१७-३१	१८:१८-३०	२०:१६		१३:३०; २२:२८-३०
१९०	दाख-उद्यान में श्रमिक का दृष्टांत	२०:१-१६	—	—	१९:३०		
१९१	दुख उठाने के विषय तृतीय भविष्यकथन	२०:१७-१९	१०:३२-३४	१८:३१-३४			
१९२	यीशु और जबदी के पुत्र	२०:२०-२८	१०:३५-४५	—	२३:११	९:३५	९:४८उ; १२:५०; २२:२४-२७
१९३	बरतिमाई अंधे को दृष्टिदान	२०:२९-३४	१०:४६-५२	१८:३५-४३	९:२७-३१		
१९४	जक्कई	—	—	१९:१-१०			
१९५	मुद्राओं का दृष्टांत	—	—	१९:११-२७	१३:१२; २५:१४-३०	४:२५	८:१८
	(२) यरूशलेम में : मत्ती २१ २५ = मरकुस ११-१३ = लूका १९:२८-२१:७						
१९६	यरूशलेम में प्रवेश	२१:१-९	११:१-१०	१९:२८-३८			
१९७	यरूशलेम के विनाश की भविष्य-वाणी	—	—	१९:३९-४४	२१:१४-१६		
१९८	यीशु मंदिर में	२१:१०-१७	११:११	१९:४५-४६		११:१५-१९	१९:३९-४०
१९९	अंजीर के वृक्ष को शाप	२१:१८-१९	११:१२-१४	—			
२००	मंदिर का परिस्करण	—	११:१५-१९	१९:४७-४८	१२:१२-१३; २२:३३		१९:४५-४६; २१:३७

क्र.सं.	वर्णन या घटना :	मत्ती	मरकुस	लूका	मत्ती	मरकुस	लूका
२०१	अंजीर-वृक्ष के सूखने का अर्थ	२१:२०-२२	११:२०-२५(२६)	—	६:१४-१५; १७:२०		१७:६
२०२	अधिकार संबंधी प्रश्न	२१:२३-२७	११:२७-३३	२०:१-८			
२०३	दो पुत्रों का दृष्टांत	२१:२८-३२	—	—			७:२९-३०
२०४	दुष्ट कृषकों का दृष्टांत	२१:३३-४६	१२:१-१२	२०:९-१९	२२:२२		
२०५	विवाह-भोज का दृष्टांत	२२:१-१४	—	—			१४:१६-२४
२०६	कैसर को कर देने का प्रश्न	२२:१५-२२	१२:१३-१७	२०:२०-२६			
२०७	पुनरुत्थान के संबंध में प्रश्न	२२:२३-३३	१२:१८-२७	२०:२७-४०		१२:१२	
२०८	प्रमुख आज्ञा	२२:३४-४०	१२:२८-३४	—		११:१८; १२:३२,३४	१०:२५-२८; २०:३९-४०
२०९	दाऊद-पुत्र के विषय प्रश्न	२२:४१-४६	१२:३५-३७पू	२०:४१-४४		१२:३४	२०:४०
२१०	फरीसियों और शास्त्रियों की भर्त्सना	२३:१-३६	१२:३७उ-४०	२०:४५-४७	३:७; २०:२६, २७	९:३५; १० :४३-४४	३:७; ९:४८; ११:३९-५२; १४:११; १८:४,१४; २२:२६
२११	यरूशलेम के लिये विलाप	२३:३७-३९	—	—			१३:३४-३५
२१२	विधवा का दान	—	१२:४१-४४	२१:१-४			
२१३	मंदिर के विनाश की भविष्यवाणी	२४:१-३	१३:१-४	२१:५-७			

युगांत संबंधी प्रकाशन : मत्ती २४:४-३६=मरकुस १३:५-३७=लूका २१:८-३६

क्र.सं.	वर्णन या घटना	मत्ती	मरकुस	लूका	मत्ती	मरकुस	लूका
२१४	पुनः आगमन के चिन्ह	२४:४-८	१३:५-८	२१:८-११	२४:२३-२६	१३:२१-२२	१७:२३
२१५	दुखों का आरंभ	२४:९-१४	१३:९-१३	२१:१२-१९	१०:१७-२२,३०		१२:७,११,१२
२१६	विनाशकारी घृणित वस्तु	२४:१५-२२	१३:१४-२०	२१:२०-२४			१७:३१

क्र.सं.	वर्णन या घटनाएं	मत्ती	मरकुस	लूका	मत्ती	मरकुस	लूका
२१७	दुखों की चरम सीमा	२४:२३-२५	१३:२१-२३	—			१७:२१
२१८	मानव-पुत्र का दिन	२४:२६-२८	—	—			१७:२३-२४; ३७
२१९	मानवपुत्र का पुन: आगमन	२४:२९-३१	१३:२४-२७	२१:२५-२८			
२२०	अंजीर के वृक्ष का दृष्टांत	२४:३२-३३	१३:२८-२९	२१:२९-३१			
२२१	पुनरागमन का समय	२४:३४-३६	१३:३०-३२	३१:३२-३३	५:१७; १६:२८	९:१	९:२७; १६:१७
२२२	प्रकाशन संबंधी प्रवचन की मरकुस में समाप्ति	—	१३:३३-३७	—	२४:४२; २५:१३-१४,१५उ		१२:३८,४०; १९:१२-१३
२२३	,, ,, ,, लूका में समाप्ति	—	—	२१:३४-३६			
२२४	जागरूक रहने की आवश्यकता	२४:३७-४१	—	—			१७:२६-२७,३४-३५
२२५	जागरूक गृहस्थ	२४:४२-४४	—	—		१३:३३,३५	१२:३९-४०
२२६	विश्वस्त और बुद्धिमान दास	२४:४५-५१	—	—			१२:४२-४६
२२७	दस कुमारियों का दृष्टांत	२५:१-१३	—	—		१३:३५-३७	१२:३५-३६; १३:२५
२२८	तलंतों (तोड़ों) का दृष्टांत	२५:१४-३०	—	—	१३:१२	४:२५; १३:३४	८:१८; १९:१२-२७
२२९	अंतिम न्याय	२५:३१-४६	—	—			
२३०	यरूशलेम में व्यतीत दिनों का सारांश	—	—	२१:३७-३८	२१:१७	११:१९	

(३) दुख भोग का विवरण : मत्ती २६-२७=मरकुस १४-१५=लूका २२-२३

क्र.सं.	वर्णन या घटनाएं	मत्ती	मरकुस	लूका	मत्ती	मरकुस	लूका
२३१	यहूदियों का षड्यंत्र	२६:१-५	१४:१-२	२२:१-२			
२३२	बैतनिय्याह में अभ्यंजन	२६:६-१३	१४:३-९	—			७:३६-५०
२३३	यहूदा का विश्वासघात	२६:१४-१६	१४:१०-११	२२:३-६			
२३४	फसह की तैयारी	२६:१७-१९	१४:१२-१६	२२:७-१३			

क्र.सं.	वर्णन या घटनाएं	मत्ती	मरकुस	लूका	मत्ती	मरकुस	लूका
	अंतिम भोज : मत्ती २६:२०-२९=मरकुस १४:१७-२५=लूका २२:१४-३८						
२३५	विश्वासघाती	२६:२०-२५	१४:१७-२१	२२:१४			२२:२१-२३
२३६	प्रभु भोज की स्थापना	२६:२६-२९	१४:२२-२५	२२:१५-२०			
२३७	अंतिम वचन :	—	—	२२:२१-३८			
	(क) विश्वासघात का भविष्य-कथन	—	—	२२:२१-२३	२६:२१-२५	१४:१८-२१	
	(ख) परमेश्वर के राज्य में महानता	—	—	२२:२४-३०	१९:२८; २०:२५-२८	९:३५; १०:४२-४५	९:४८ब
	(ग) पतरस के इन्कार का भविष्यकथन	—	—	२२:३१-३४	२६:३०-३५	१४:२६-३१	
	(घ) दो तलवारें	—	—	२२:३५-३८			
२३८	गतसमने का मार्ग : पतरस के इन्कार का भविष्यकथन	२६:३०-३५	१४:२६-३१	२२:३९			२२:३१-३४
२३९	यीशु, गतसमने की बारी में	२६:३६-४६	१४:३२-४२	२२:४०-४६			
२४०	यीशु का बंदी बनाया जाना	२६:४७-५६	१४:४३-५२	२२:४७ ५३			
२४१	यीशु सनहेद्रिन के समक्ष; पतरस द्वारा इन्कार	२६:५७-७५	१४:५३-७२	२२:५४-७१	२७:१	१५:१	
२४२	यीशु, पीलातुस को सौंपा जाता है	२७:१-२	१५:१	२३:१			२२:६६
२४३	यहूदा की मृत्यु	२७:३-१०	—	—			
२४४	पीलातुस के समक्ष मुकद्दमा	२७:११ १४	१५:२-५	२३:२-५			
२४५	हेरोदेस के समक्ष यीशु	—	—	२३:६-१६	२७:१२	१५:३	
२४६	प्राण-दण्ड	२७:१५-२६	१५:६-१५	२३:१७-२५			

क्र.सं.	वर्णन या घटनाएं	मत्ती	मरकुस	लूका	मत्ती	मरकुस	लूका
२४७	सिपाहियों द्वारा ठट्ठा	२७:२७-३१	१५:१६-२०	—			२३:२६
२४८	गुलगुता का मार्ग	२७:३२	१५:२१	२३:२६-३२	२७:३८	१५:२७	
२४९	क्रूसीकरण	२७:३३-४४	१५:२२-३२	२३:३३-४३	२७:४८	१५:३६	
२५०	क्रूस पर मृत्यु	२७:४५-५६	१५:३३-४१	२३:४४-४९			८:३; २३-३६
२५१	यीशु का गाड़ा जाना	२७:५७-६१	१५:४२-४७	२३:५०-५६		१६:१	
२५२	कबर पर पहरुए	२७:६२-६६	—	—			
२५३	खाली कबर	२८:१-१०	१६:१-८	२४:१-१२			

५. पुनरुत्थित ख्रिस्त का दिखाई देना

क्र.सं.	वर्णन या घटनाएं	मत्ती	मरकुस	लूका
(१)	**मत्ती रचित सुसमाचार में :**	२८:११-२०		
१	सिपाहियों को घूस	२८:११-१५	—	
२	अंतिम आदेश	२८:१६-२०	—	
(२)	**लूका के सुसमाचार में : २४:१३-५३**			
१	इम्माऊस के मार्ग में	—	—	२४:१३-३५
२	यरूशलेम में जी उठे ख्रिस्त का दिखाई देना	—	—	२४:३६:४९
३	स्वर्गारोहण	—	—	२४:५०-५३
(३)	**मरकुस के सुसमाचार का अंतिम अंश**			
१	सुसमाचार का लम्बा उपसंहार	—	१६:९-२०	—

३०. इस्राएली लोगों का इतिहास (पुराना नियम काल)	६.००
३१. सुसमाचार-प्रचार दर्शन और व्यक्तिगत प्रचार कार्य	२.५०
३२. नया नियम टीका (रोमियों से प्रकाशितवाक्य)	१०.००
३३. यूहन्ना का प्रकाशितवाक्य (प्रस्तावना और टीका)	४.००
३४. पास्तरी परामर्शदान प्रवेशिका	४.००
३५. नया नियम टीका (मत्ती से प्रेरितों के काम)	१५.००
३६. पुराना नियम टीका (अय्यूब से यशायाह) प्रेस में	
३७. पुराना नियम टीका (यिर्मयाह से मलाकी) प्रेस में	
३८. अय्यूब : एक अध्ययन	५.००

बार्कले दैनिक अध्ययन बाइबल माला

१. मत्ती रचित सुसमाचार (अध्याय १-७)	५.००, ६.००
२. मत्ती रचित सुसमाचार (अध्याय ८-१६)	५.००, ६.००
३. मत्ती रचित सुसमाचार (अध्याय १७-२८)	५.००, ६.००
४. यूहन्ना का प्रकाशित वाक्य (अध्याय १-५)	६.००

प्राप्ति स्थान : १. नार्थ इंडिया क्रिश्चियन ट्रेक्ट एण्ड बुक सोसायटी
१८ क्लाइव रोड, इलाहाबाद, उ० प्र०
२. आय. एस. पी. के.—एल. पी. एच. डिस्ट्रीब्यूटर्स
पोस्ट बॉक्स १५८५, काश्मीर गेट
दिल्ली ११०००६